उत्तरप्रदेश
'ज़ब्तशुदा साहित्य' विशेषांक अगस्त, 1997 वर्ष : 26 अंक : 4

सम्पादक :
विजय कुमार राय
सम्पादकीय सहकर्मी :
ललित मोहन
राजेन्द्र कुमार पाण्डेय
सम्पादकीय सम्पर्क :
सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश, सूचना भवन,
पार्क रोड, हजरतगंज, लखनऊ-226 001
दूरभाष : 223681

आवरण प्रथम : दुर्गादत्त पाण्डेय
आवरण चतुर्थ : शहीद स्मारक, पटना

प्राप्ति स्थल :

❑ ए.एच. व्हीलर के रेलवे बुक स्टालों पर ❑ **मुम्बई :** रमन मिश्र, 6, दादी संतुक लेन, इंजीनियरिंग हाउस, धोबी तालाब, मैरीन लाइन ❑ **नई दिल्ली :** आर. एस. शुक्ला न्यूज एजेंसी, पाल न्यूज एजेंसी (कनॉट प्लेस), उदय न्यूज एजेंसी (किदवई नगर), महेन्द्र प्रसाद न्यूज पेपर एण्ड मैगजीन सप्लायर (शकरपुर), तानी भार्गव बुक कार्नर, श्रीराम सेंटर (सफदर हाशमी मार्ग), दानूक बुक कार्नर, त्रिवेणी कला संगम, 205, तानसेन मार्ग ❑ **उत्तर प्रदेश— लखनऊ :** राज्य सूचना केन्द्र (हजरतगंज), दुबे न्यूज पेपर एजेन्सी (हजरतगंज), भोला बुक स्टाल (हजरतगंज), इंडियन बुक डिपो (अमीनाबाद), भारत बुक सेंटर (अशोक मार्ग) ❑ **मोहनलालगंज :** श्वेता बुक स्टाल ❑ **नॉयडा :** पाण्डेय न्यूज एजेंसी (सेक्टर-20) ❑ **कानपुर :** राजा बुक स्टाल, बुक मार्केट, परेड ❑ **सहारनपुर :** सेंट्रल न्यूज एजेंसी (सहिदगंज), आहूजा बुक एजेंसी (भगतसिंह मार्केट), रीड्स पैराडाइज़, निकट इंडियन बैंक (कोर्ट रोड), दुआ न्यूज एजेंसी (पालिका मार्केट), एक्स परिजन पूजा काम्प्लेक्स (कचहरी रोड), सहारनपुर बुक डिपो (दालमंडी पुल), कैम्ब्रिज बुक डिपो (रेलवे रोड) ❑ **बलिया :** प्रतिभा प्रकाशन, नारायण बुक सेन्टर, तिवारी पुस्तक केन्द्र, नेशनल बुक सेंटर ❑ **गोरखपुर :** वीनस बुक स्टाल (गोलघर) ❑ **सुल्तानपुर :** खन्ना बुक स्टाल (वस स्टेशन) ❑ **रायबरेली :** सर्वोदय बुक स्टाल, रेलवे प्लेटफार्म (उत्तर रेलवे) ❑ **इटावा :** सोनिया बुक स्टाल (बकेवर) ❑ **गोण्डा :** बिरजू बुक स्टाल ❑ **वाराणसी :** लक्ष्मीनारायण न्यूजपेपर एजेंसी ❑ **मीरजापुर :** रमेश चंद्र गोयल (न्यूजपेपर एजेंट) ❑ **आगरा :** न्यू बुक सेंटर (राजा मण्डी), किशोर बुक सेंटर (हरि पर्वत चौराहा), एन.एस. बुक स्टाल (राजा मण्डी चौराहा) ❑ **कानपुर :** महेश बुक डिपो (गोपाल टाकीज) ❑ **बदायूँ :** मार्डन बुक स्टाल, सब्जीमण्डी ❑ **बाँदा :** प्रमोद कुमार दीक्षित, भवानी गंज, अतर्रा, नरेन्द्र पुण्डरीक, छाबी तालाब ❑ **मुजफ्फरनगर :** चंचल शर्मा, ए-34, नई मण्डी ❑ **इलाहाबाद :** स्वराज स्टेशनर्स, गल्ला चुंगी (निकट प्रयाग) ❑ **मध्य प्रदेश— जबलपुर :** पीपुल्स बुक सेन्टर (नेपियर टाउन) ❑ **रतलाम :** जय प्रकार अग्रवाल, एम०आई०जी०-96-97, अमर सागर कालोनी ❑ **शहडोल :** गोपालदास बंसल, बस स्टैण्ड ❑ **रायपुर :** सर्वोदय साहित्य भण्डार (रेलवे स्टेशन), परख न्यूज एजेंसीज, 3, नूतन काम्प्लेक्स, ओल्ड बस स्टैण्ड ❑ **बिलासपुर :** कपूर वासनिक, सी-15, सम्यक् विहार (अज्ञेय नगर) ❑ **बिहार— मधुबनी :** राजकुमार मैग्जीन सेंटर (शंकर चौक) ❑ **पूर्णिया :** लालमणि बुक स्टाल ❑ **भागलपुर :** सर्वोदय बुक स्टाल (रेलवे स्टेशन) ❑ **पटना :** जिज्ञासा प्रकाशन, झेलम अपार्टमेंट, पाटलिपुत्र पथ, राजेन्द्रनगर ❑ **बक्सर :** पत्रिका केन्द्र (शारदा सदन) ❑ **राजस्थान— जयपुर :** राजेश मनीष एजेन्सीज़, अंजमण्डी, (जोहरी बाज़ार) ❑ **आंध्र प्रदेश— हैदराबाद :** श्री गोविन्द अक्षय, सम्पादक, अक्षय फीचर सर्विसेज, सारस्वत सदन, 13-6-411/2, रामसिंह पुरा (कारवान) ❑ **चण्डीगढ़ :** पंजाब बुक सेंटर ❑ **प० बंगाल— खडगपुर :** तारकेश कुमार ओझा (भगवानपुर) ❑ **कलकत्ता :** मोतीलाल बनारसीदास, शान्ति निकेतन बिल्डिंग (कैमक स्ट्रीट) ❑ **उड़ीसा :** बालंगीर : च्वॉयस बुक सेंटर, बस स्टैण्ड

इस अंक का मूल्य	:	रु० 25/-
वार्षिक सदस्यता	:	रु० 55/-
द्विवार्षिक	:	रु० 100/-
त्रैवार्षिक	:	रु० 150/-

सदस्यता-शुल्क मनीऑर्डर द्वारा निदेशक, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग (प्रकाशन प्रभाग), उ. प्र., सूचना भवन, पार्क रोड, लखनऊ - 226 001 के पते पर भेजें। ❑

इस अंक में

पृष्ठ संख्या

सम्पादकीय

विचार तो यह था कि आज़ादी की स्वर्ण जयंती पर प्रकाशित इस विशेषांक में देश के मूर्धन्य क्षेत्रज्ञ विशेषज्ञों, साहित्यकारों और लेखकों द्वारा आज़ादी के बाद की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और वैचारिक विकास-यात्रा पर मूल्यांकनपरक लेख प्रकाशित किये जायें पर ऐसा करना मुमकिन न हो सका। घोषणा का स्वरूप बदलकर पूरे अंक को 'ज़ब्तशुदा साहित्य' पर केन्द्रित कर दिया गया। स्वाधीनता आन्दोलन के दरम्यान अंग्रेज सरकार द्वारा जो साहित्य की ज़ब्ती हुई उसकी एक बानगी है यह विशेषांक। तीस दिन के भीतर जिस तरह से सामग्री एकत्र कर इसे प्रकाशित किया गया उसमें हमारे सहकर्मियों, मुद्रक और रचनाकार मित्र ज्ञानेन्द्रपति, डॉ० शरद नागर, वीरेन्द्र यादव, शकील सिद्दीकी, अखिलेश, गौतम चटर्जी और अक्षय कुमार ने भरपूर सहयोग दिया। पूरे अंक को संयोजित करने में हमने अपने मान्य पाठकों के लिए ऐसा ज़ब्त साहित्य तलाश कर निकाला, जिससे उस दौर की एक मुकम्मिल तस्वीर बन सके और साथ-साथ ऐसा साहित्य ढूंढ़कर पढ़ने के प्रति उत्सुकता भी पैदा हो सके।

1857 से लेकर 1947 यानि आज़ाद होने के ऐन एक दिन पहले तक के ज़ब्त साहित्य का कोई सिलसिलेवार ब्यौरा उपलब्ध नहीं है। सारा कुछ बिखरा पड़ा है जिसे तलाश कर पुस्तक रूप में प्रकाशित किया जाना अभी शेष है। यह एक कठिन, श्रमसाध्य एवं शोधपरक कार्य है जिसे स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा इस स्वर्ण जयंती वर्ष में ही किया जाना चाहिए। यह काम इसलिए भी होना जरूरी है, क्योंकि अब तक उपलब्ध अधिकांश तत्कालीन इतिहास अंग्रेजों या उनके प्रभाव के भारतीयों द्वारा विरचित है और इसकी राष्ट्रीय व्याख्या तभी संभव हो सकती है जब हम उन देशभक्त अमर शहीदों और स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों द्वारा लिखित रचनाओं को तलाशकर निकालें और उसे पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित करें। इससे हमारी नई पीढ़ी को यह तालीम भी मिल सकेगी कि जिस आज़ाद माहौल में वे आज सांस ले रहे हैं-- दरअसल वह एक लगातार लम्बी लड़ाई और तमाम कुर्बानियों के नतीजतन ही है। आज के संदर्भों में स्वाधीनता संघर्ष में शहीद हुए उन देशभक्तों के योगदान को न केवल जानना बल्कि उनके आदर्शों को अपने जीवन में उतारना भी निहायत ज़रूरी है।

अमर शहीद अशफ़ाक़ उल्ला खां ने 'बरादरान-ए-वतन के नाम' अपने 16 दिसम्बर, 1927 को (फ़ैज़ाबाद जेल से) जो आखिरी पैगाम भेजा था, उसमें अपने देश और देशवासियों की तत्कालीन हालत के प्रति उनकी चिंता स्पष्ट देखी जा सकती है। 'गरीब किसान बारिश के मूसलाधार पानी और जेठ-बैसाख की तपती हुई दोपहर में खेतों में जमा होकर जंगल में मंडलाते हुए हमारी खुराक का सामान पैदा करते हैं। यह बिल्कुल सच है कि जो वह पैदा करते हैं, जो वह बनाते हैं, उसमें उनका हिस्सा नहीं होता और हमेशा दुखी और मफलुकुल हाल रहते हैं। मैं इत्तफ़ाक करता हूँ कि इन तमाम बातों के जिम्मेदार हमारे गोरे आक़ा और उनके एजेन्ट हैं। मगर इसका इलाज क्या है कि उनको इस हालत पर ले आयें कि वह महसूस करने लगें कि वह क्या है कि वह क्या हैं ? इसका वाहिद ज़रिया यह है कि तुम उन जैसी वजअ कतअ अख्तयार करो और जण्टलमैनी छोड़कर देहात का चक्कर लगाओ, कारखानों में डेरे डालो और उनकी हालत स्टडी करो, उनमें अहसास पैदा करो। तुम *कैथराइन ग्राण्डमदर आफ रशा* की सवानह उमरी पढ़ो और वहां के नौजवानों की कुरबानियां देखो। तुम कालर, टाई और उम्दा सूट पहनकर लीडर ज़रूर बन सकते हो, मगर किसानों और मजदूरों के लिए मुफ़ीद साबित नहीं हो सकते। दीगर पालिटिकल पार्टियों से मुन्तहद होकर काम करो और माद्दापरस्ती से किनारा करो कि यह फ़ज़ूल है। मेरे दिल में तुम्हारी इज्जत है और मैं मरते हुए भी तुम्हारे सियासी मक़ासिद से बिल्कुल मुन्तफ़िक हूँ। मैं हिन्दोस्तान की ऐसी आजादी का ख्वाहिशमंद था जिसमें गरीब खुशी और आराम से रहते और सब बराबर होते। खुदा मेरे बाद वह दिन जल्द लाये जबकि छतर मंजिल, लखनऊ में अब्दुल्ला मिस्त्री और धनिया चमार और किसान भी मिस्टर ख़लीकुज्जमां, जगतनारायण और नवाब महमूदाबाद के बराबर कुर्सी पर बैठे नज़र आयें।'

अत्यंत अल्पावधि में जिस तरह इस 'ज़ब्तशुदा साहित्य' पर केन्द्रित विशेषांक को प्रकाशित किया गया है उसमें कुछ ख़ामियों का रह जाना स्वाभाविक है। फिर भी हमारी कोशिश रही है कि अलग-अलग विधाओं की नुमाइंदगी पूरे विशेषांक में हो सके। मुझे उम्मीद है कि इस विशेषांक पर आप अपनी विस्तृत प्रतिक्रिया हमें अवश्य भेजेंगे। आपके रचनात्मक सुझावों से हमें बल मिलेगा।

क्रान्तिकारी और साहित्य

○ यमुनादेवी माहौर

[श्रीमती यमुनादेवी माहौर क्रांतिकारी डॉ. भगवानदास माहौर की धर्मपत्नी हैं। वे क्रान्तिकारी आन्दोलन, विशेषतः उसमें स्त्रियों के योगदान के सम्बन्ध में लिखती हैं। --सं.]

अंग्रेजी में एक कहावत है : 'द पेन इज़ माइटर दैन द सोर्ड', अर्थात् लेखनी तलवार से अधिक शक्तिशालिनी होती है। इसमें जो सत्य निहित है उसको सभी मनीषी स्वीकार करते आये हैं और भारतीय क्रान्तिकारियों ने भी इस सत्य को भलीभाँति हृदयंगम किया था। यों तो रण में वीरों का यशोगान करके उनकी वीरता को उभारने वाले गीत और काव्य सुनाने वाले चारणों की यशस्वी परम्परा भारत में रही है परन्तु वह सामन्तवादी मनोवृत्ति से अभिभूत रही है। हमारे 1857 के सिपाहियों के स्वातंत्र्य युद्ध के काल से हमारी वीरता की धारा में स्वतंत्र जनवादी राष्ट्रवाद के सर्वप्रथम दर्शन हुए थे। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध क्रान्तिकारी डॉ. भगवानदास माहौर ने अपने ग्रन्थ **'1857 के स्वाधीनता संग्राम का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव'** में सन् सत्तावन के स्वातंत्र्य सैनिकों का जो झण्डा गीत या प्रयाण गीत प्रस्तुत किया है उसे यहाँ उद्धृत करके उसकी व्याख्या प्रस्तुत करना उपयुक्त होगा।

'ऐसी मान्यता है कि इस शहीद राष्ट्रगीत की रचना 1857 के क्रान्तिवीर अजीमुल्ला ने की थी।।'

1857 के क्रान्तिकारी सिपाहियों का झण्डा गीत

हम हैं इसके मालिक, हिन्दुस्तान हमारा।
पाक वतन है कौम का, जन्नत से भी प्यारा।।
ये है हमारी मिल्कियत, हिन्दुस्तान हमारा।
इसकी रूहानियत से रोशन है जग सारा।।
कितना कदीम, कितना नईम, सब दुनियाँ से न्यारा।
करती है जरखेज जिसे गंगो-जमुन की धारा।।
ऊपर बर्फीला पर्वत पहरेदार हमारा।
नीचे साहिल पर बजता सागर का नक्कारा।।
इसकी खानें उगल रहीं हैं सोना हीरा पारा।
इसकी शानो-शौकत का दुनियाँ में जयकारा।।
आया फिरंगी दूर से ऐसा मंतर मारा।
लूटा दोनों हाथ से प्यारा वतन हमारा।।
आज शहीदों ने है तुमको अहले वतन ललकारा।
तोड़ो गुलामी की जंजीरें बरसाओ अंगारा।।
हिन्दू मुसलमाँ सिख हमारा, भाई-भाई प्यारा।
यह है आजादी का झण्डा इसे सलाम हमारा।।

"1857 के क्रान्तिकारी सिपाहियों का यह झण्डा गीत हमारे राष्ट्रीय गीतों की माला का सुमेरु होने का अधिकारी है। यह सीधा, सरल, साफ और अमित शक्ति से भरा है। श्रद्धेय बंकिम बाबू के 'आनन्दमठ' के 'सप्तकोटि कण्ठ कल-कल निनाद कराले' वाले 'वन्देमातरम' स्तुति गीत से भी यह अधिक शक्तिशाली है और अल्लामा इकबाल के 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' गीत से भी कहीं ज्यादा पुरजोर है। इसमें केवल देश की स्तुति ही नहीं है, स्वातंत्र्य संघर्ष के लिए तुरन्त आह्वान भी है, ललकार भी है। इसमें घोषित किया गया है कि समस्त भारतवासियों की एक कौम है, एक राष्ट्र है, हिन्दुस्तान जिसका पाक वतन (पवित्र जन्मभूमि) है; इसमें रहने वाले हिन्दू, मुसलमान, सिख आदि सब भाई-भाई हैं; यह जन्मभूमि 'स्वर्गादपि गरीयसी' है, यह ऊपर हिमाचल नाम नगाधिराज से नीचे आसमुद्र विस्तीर्ण है, अनन्त रत्नप्रभवा है, धनधान्य-सम्पन्ना है। इसे फिरंगी ने दूर से आकर मंतर मारकर-- हमें शौर्य और वीरता में पराजित करके नहीं-- दोनों हाथ से लूटा है। यह बात विशेष ध्यान देने की है कि यहाँ 'मंतर' का अर्थ जादू-टोना नहीं है, राजनीतिक 'मंत्र' यानी युक्ति या चाल है।"

"गुलामी की जंजीरों को तोड़ने के लिए जो झण्डा सिपाहियों ने उठाया है वह कौम की आजादी का झण्डा है, किसी सामन्त या सम्राट का निजी झण्डा नहीं। इस गीत की भावना में जनवाद है, राष्ट्रवाद है, सामन्तवाद नहीं। इसमें शत्रुता और आक्रोश विदेशी लुटेरे, आततायी फिरंगी के प्रति है, कौम नसारा या ईसाई के प्रति नहीं। यदि 1857 के ये क्रान्तिकारी सिपाही किसी साम्प्रदायिक विद्वेष या ईसाई विरोध की भावना से परिचालित होते तो उनके इस गीत की एक तुक में किसी बुरे विशेषण

चित्र : दुर्गादत्त पाण्डेय

के साथ 'नसारा' भी होना बहुत स्वाभाविक होता।''

''इस गीत की यह भी एक विशेषता है कि इसमें 1857 के भी पहले अंग्रेजों के विरुद्ध हुए स्वातंत्र्य संघर्षों में मारे गये वीरों को 'शहीद' शब्द से याद किया गया है। संभवतः इस गीत में ही सबसे पहले राजनीतिक स्वातंत्र्य संघर्ष में प्राण होमने वालों को शहीद कहा गया है, इसके पूर्व यह शब्द केवल धर्मयुद्धों या जिहाद में मारे गये लोगों के लिए ही प्रयुक्त होता था।''

''1857 के सिपाहियों का यह गीत तत्कालीन क्रान्तिकारी अख़बार 'पयामे-आजादी' में छपा था जिसकी एक प्रति ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित रखी गयी है। परन्तु हिन्दुस्तान में इसकी सभी प्रतियाँ ढूँढ-ढूँढकर न केवल नष्ट कर दी गयी थीं, बल्कि जिसके पास इसकी कोई प्रति मिलती थी तो यदि वह हिन्दू हुआ तो उसके मुँह में गो-मांस ठूँसकर और यदि मुसलमान हुआ तो उसके मुँह में सुअर का गोश्त ठूँसकर, बिना किसी प्रकार का मुकदमा चलाये, या तो उसे फाँसी दे दी जाती थी या गोली मार दी जाती थी। विदेशी सरकार इस गीत की भनक भी किसी भारतीय के कानों में पड़ने नहीं देना चाहती थी, क्योंकि इस गीत में उन सभी आक्षेपों का करारा जवाब है जो हमारे 1857 के स्वातंत्र्य संग्राम पर, उसे धर्मान्ध सिपाहियों का निरा गदर या सामन्ती प्रतिक्रियावादियों का एक प्रतिक्रान्ति का प्रयास प्रतिपादित करने वाले करते रहे हैं।''

''उन आक्षेपों और उनके समर्थन में प्रस्तुत तर्कों को आज कोई महत्व नहीं देता, अतः उनकी बात करना अब व्यर्थ है। यदि और कुछ भी न हुआ होता, बस केवल इतना ही हुआ होता कि कुछ मुट्‌ठी भर लोग ही सर से कफन बाँधकर हार-जीत और जीवनमरण की चिन्ता जरा भी किये बिना राष्ट्रीय झण्डा उठाकर, इस गीत को गाते हुए विदेशी आततायियों से लड़ मरते, तो भी उनकी वह लड़ाई राष्ट्रीय होती, समस्त राष्ट्र के हित के लिए होती और वे होते हमारे राष्ट्रीय शहीद जिनका यश राष्ट्रीय काव्यों में गाया जाना सदैव राष्ट्र का मनोबल बढ़ाता। जिन भेजे वालों को यह गीत 1857 के स्वातंत्र्य संग्राम के वास्तविक नेता भारत की गरीब किसान और कारीगर जनता से आये सिपाहियों और उनके नेताओं के उच्च राष्ट्रीय आदर्श को हृदयंगम नहीं करा सकता उनसे सहृदयों को मगज मारना व्यर्थ है।''

''इस राष्ट्रीय गीत को गाते हुए जितना भारतीय रक्त बहा है, स्वातंत्र्य संग्राम में मारे गये शहीद सैनिकों के जितने रक्त से यह गीत अभिषिक्त है, संभवतः उतना कोई अन्य गीत नहीं। यह केवल हमारे शहीदों का ही गीत नहीं है, विदेशी आततायी सरकार के अत्याचार से यह गीत स्वयं शहीद हुआ है, जिसकी स्मृति हम स्वाधीनता प्राप्त करने पर ही कर सके। ज़ब्त किये जाने वाले राष्ट्रीय गीतों में यह सर्वप्रथम और ऐसे गीतों की माला का सुमेरु है। अन्य ज़ब्त किये गये गीतों को तो फिर भी गाते और गुनगुनाते रहे, एक यही गीत है जो आततायी सरकार के अत्याचार से पूर्णतया लुप्त हो गया था। हम कह सकते हैं कि अन्य गीतों को यदि सरकारी ज़ब्ती का कुछ काल तक के लिए कारावास मात्र मिला था, जिससे वे कालान्तर में मुक्त भी हुए, परन्तु इस गीत को तो, कहना चाहिए, उनके द्वारा फाँसी ही दे दी गयी थी।''

''अपने स्वातंत्र्य संघर्ष की निरन्तर चलती रहने वाली धारा को ध्यान में रखते हुए और आज की स्थिति में उसके समाजवादी मोड़ और गति को ध्यान में रखते हुए अपने 1857 के प्रथम स्वातंत्र्य संग्राम के इस गीत को धुन में गाते हुए हम आगे बढ़ सकते हैं'' :--

भारत में साम्राज्यवाद का होगा नहीं गुजारा,
पूंजीवादी लूट ठगी का, होगा नहीं पसारा।
आज शहीदों ने है हमको अहले वतन ललकारा,
उनके सपने पूरे करना है अब काम हमारा।।
''हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, सब भाई'' है नारा,
स्वतंत्रता, समता, सुबन्धुता से महके जग सारा।
महके जग में बराबरी, आजादी, भाईचारा,
हम हैं इसके मालिक, हिन्दुस्तान हमारा।
पाक वतन है कौम का, जन्नत से भी प्यारा।।''

-- भगवानदास माहौर

1857 के बाद से गुप्त क्रान्ति प्रयास में स्वयं सक्रिय क्रान्तिकारी भी, और अन्य सहानुभूति रखने वाले प्रतिष्ठित साहित्यकार भी, क्रान्तिकारी साहित्य का निरन्तर सृजन करते रहे। राजद्रोही साहित्य के सम्बन्ध में भारतीय दण्ड विधान की धारा 124-ए के प्रहार से बचने के लिए औपचारिक राजभक्ति की ऊपरी बातें करते हुए, तथा अन्य प्रकार की अनेक साहित्यिक तरकीबों का प्रयोग करते हुए भी वे क्रान्तिकारी प्रभावपूर्ण साहित्य करते ही रहे। राजभक्ति की ऊपरी आड़ रहते हुए भी उनकी कृतियाँ सरकार द्वारा ज़ब्त होती रहीं और वे भी दण्डित होते रहे।

बंगाल में 'आनन्दमठ' और 'वन्देमातरम'

बंकिम बाबू का संन्यासी विद्रोह पर लिखा गया प्रसिद्ध उपन्यास 'आनन्दमठ' इसी क्रान्ति की चेतना को प्रदीप्त रखने के उद्देश्य से ही लिखा गया था और क्रान्तिकारी दल में नये भर्ती किये गये सदस्यों को क्रान्तिकारी शिक्षणार्थ दी जाने वाली वह प्रथम पाठ्‌य पुस्तक होती थी। उसका 'वन्देमातरम्' गीत तो क्रान्तिकारियों का राष्ट्रीय क्रान्तिकारी गीत ही बन गया था। अनेक क्रान्तिकारी शहीद 'वन्देमातरम्' गाते हुए फाँसी पर चढ़े। तब से बंगाल में क्रान्तिकारी लेखकों की यशस्वी परम्परा क्रान्तिकारियों की परम्परा के साथ निरन्तर चलती रही। इस संक्षिप्त लेख में उनकी सभी कृतियों का उल्लेख हो सकने का अवकाश नहीं है।

हिन्दी का भारतेन्दु युगीन साहित्य

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के साहित्य में, विशेषतः उनके रूपक 'भारत-दुर्दशा' में, तथा उनके मण्डल के अन्य साहित्यकारों के साहित्य में भी भारत के उद्धार के लिए ''कठिन धार करवार कर, कृष्ण कल्कि अवतार'' की पुकार-- अर्थात् सशस्त्र क्रान्ति की पुकार--भली-भाँति व्यंजित हुई। उसकी इस क्रान्तिकारी प्रेरणा से प्रेरित होकर अमर शहीद भगतसिंह आदि 'भारत-दुर्दशा' रूपक अभिनीत किये जाने का आयोजन करते थे और उसमें स्वयं भी अभिनय करते थे।

महाराष्ट्र के क्रान्तिकारी साहित्यकार

महाराष्ट्र में मराठी में भी प्रचुर क्रान्तिकारी साहित्य का निर्माण हुआ और उसके रचयिताओं को राजद्रोह के अपराध में या अन्य भाँति भी दण्डित किया जाता रहा। इस सम्बन्ध में स्मरणीय है कि प्रसिद्ध क्रान्तिवीर स्वर्गीय विनायक दामोदर सावरकर ने 1857 के स्वातंत्र्य संग्राम पर जो महान क्रान्तिकारी ग्रन्थ लिखा था उससे ब्रिटिश सरकार इतनी आतंकित हुई थी कि उस ग्रन्थ के प्रकाशित होने के पूर्व ही उसने उसे ज़ब्त घोषित कर दिया था। परन्तु उसकी प्रतियां चोरी-छिपे भारत में आती ही रहीं और वह ग्रन्थ भी क्रान्तिकारियों की बौद्धिक शिक्षा का एक पाठ्‌य ग्रन्थ बना। उल्लेखनीय है, यह इतिहास ग्रन्थ होते हुए भी इसमें एक महान वीर काव्य के समान भावोद्रेक करने की शक्ति है। स्वर्गीय विनायक दामोदर सावरकर

बलिदान तथा साम्प्रदायिकता

○ शिवदानसिंह चौहान

श्री गणेश शंकर विद्यार्थी 25 मार्च, 1931 को इसी शहर में शहीद हुए थे। वह भीषण हिन्दू-मुस्लिम दंगा, जो शायद उस समय तक का सबसे भयंकर साम्प्रदायिक नरसंहार था, उसने आगे चलकर होने वाले हिन्दू-मुस्लिम दंगों का पैटर्न निश्चित किया था। याद रहे कि ऐन उसी समय करांची में राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा था। भारत का स्वतंत्रता-संग्राम अपनी चढ़ती कला पर था और भारत की जनता मुकम्मल आज़ादी की जंग में बड़ी से बड़ी कुर्बानी देने के लिए कटिबद्ध थी-- बस राष्ट्र नेता महात्मा गाँधी और जवाहर लाल नेहरू के आह्वान का इन्तजार था। लाहौर कांग्रेस में ब्रिटिश सरकार को भारत को आज़ादी देने के लिए एक साल की जो मोहलत दी गई थी, उसकी अवधि समाप्त हो गई थी। सारा वातावरण, विदेशी शासन के दमन-चक्र का मुकाबला करने के लिए, इन्कलाबी शायर राम प्रसाद बिस्मिल के शब्दों में, ''सरफरोशी की तमन्ना'' के नारों से गूँज रहा था। वह एक मायने में ''दौरे शहीदी'' था, जिसका आग़ाज़ (आरम्भ) एक महीना पहले चन्द्रशेखर ''आज़ाद'' ने इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में पुलिस की गोली से शहीद होकर किया था।

ब्रिटिश सरकार ने आसन्न जन-आन्दोलन को कुचलने के लिए पूरी तैयारी कर रखी थी। कराँची से ''पूर्ण स्वतंत्रता'' के लिए सत्याग्रह का ऐलान होने से पहले ही उसने प्रहार किया--भारतीय जनता की भावनाओं और उसके आत्म-सम्मान को ठोकर मार कर, यानी जन-प्रतिवाद के बावजूद 23 मार्च,1931 को लाहौर जेल में देश के तीन आज़ादी के दीवाने नौजवानों-- शहीदे-आज़म सरदार भगतसिंह और उनके साथ सुखदेव और राजगुरू को फांसी देकर और फिर दो दिन बाद ही, राष्ट्रीय एकता, डिमॉक्रेटिक विचारधारा और राजनीति में धर्म-निरपेक्षता, सम्याचार-राष्ट्रीय संग्राम के इन तीनों आधार-स्तंभों को हिन्दू-मुस्लिम दंगे के डायनामाइट से उड़ाया गया, इसी कानपुर शहर में, अंग्रेज़ हुकूमत की शह पर फैलायी गई नफरत भरी अफवाहों के ज़रिये, एक दूसरे के विरुद्ध सन्देह जगा कर। साम्प्रदायिक हिंसा की इस भीषण आग को बुझाने में श्री ग़णेश शंकर विद्यार्थी ने अपने प्राणों की आहुति दी और शहीद हो गये।

> साम्प्रदायिक एकता की ख़ातिर दिये गये विद्यार्थी जी के इस बलिदान से एक उतनी ही उदात्त मानववादी और सेक्युलर परम्परा का आरम्भ हुआ, जितनी उदात्त मानववादी और डिमॉक्रेटिक परम्परा उन असंख्य क्रान्तिकारियों और स्वतंत्रता सेनानियों के बलिदानों की है, जिन्होंने देश की आज़ादी की खातिर गोलियां खायीं और जेलों में असह्य यातनाएं झेलीं। शहादत की दोनों परम्पराएं एक-दूसरे की पूरक हैं।

साम्प्रदायिक एकता की ख़ातिर दिये गये विद्यार्थी जी के इस बलिदान से एक उतनी ही उदात्त मानववादी और सेक्युलर परम्परा का आरम्भ हुआ, जितनी उदात्त मानववादी और डिमॉक्रेटिक परम्परा उन असंख्य क्रान्तिकारियों और स्वतंत्रता सेनानियों के बलिदानों की है, जिन्होंने देश की आज़ादी की खातिर गोलियां खायीं और जेलों में असह्य यातनाएं झेलीं। शहादत की दोनों परम्पराएं एक-दूसरे की पूरक हैं, और जिनके हाथों विद्यार्थी जी या आजादी मिलने के बाद गाँधी जी शहीद हुए,उनके मानस-पुत्र आज जिस दंभ और उद्दण्डता से इतिहास को तोड़ते-मरोड़ते हैं, डिमॉक्रेटिक और सेक्युलर विचारों और मानव-मूल्यों को ठुकराते हैं, भारतीय राष्ट्र और भारतीय संस्कृति को हिन्दू-साम्प्रदायिकता का पर्याय घोषित करके अनेकानेक मानव-जातीय समुदायों और संस्कृतियों के परस्पर आदान-प्रदान से लगातार समृद्धि होती जाने वाली ऐक्य-भावना का गला घोंट रहे हैं, हिन्दुत्व की स्थापना के लिए, अर्थात् राजनीतिक सत्ता हथियाने के लिए वे

चित्र : अरुण सिंह
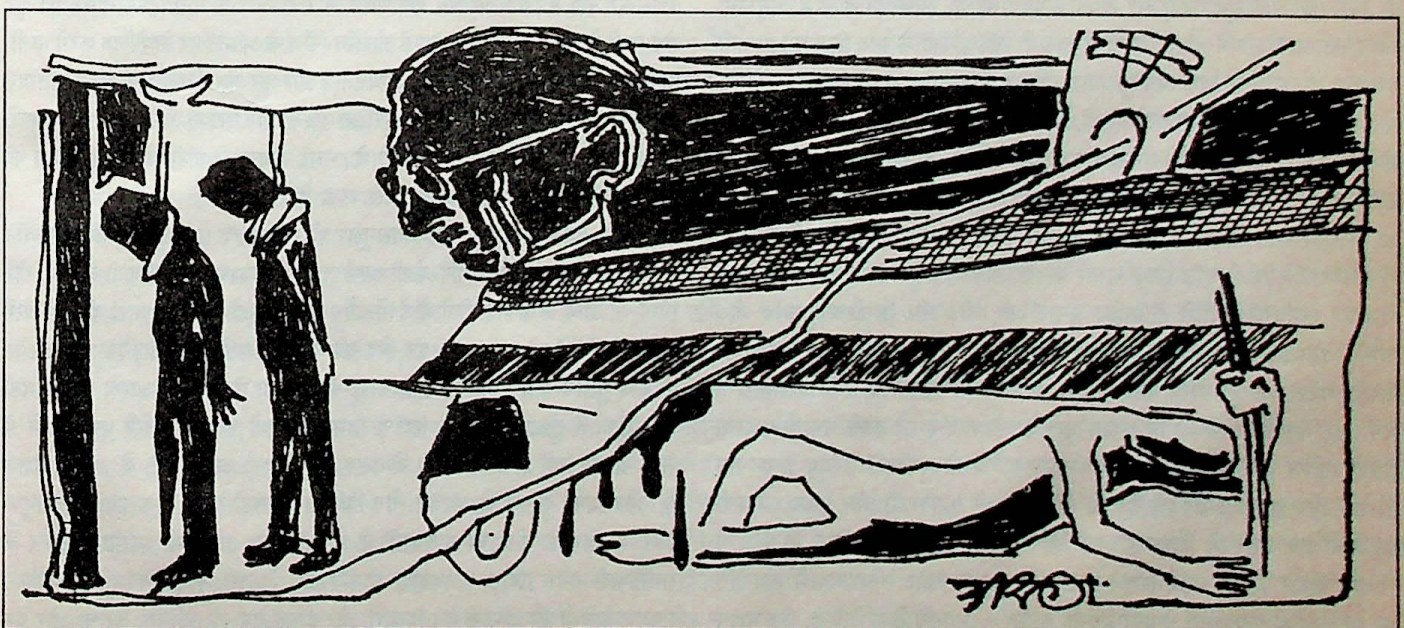
भोली-भाली, अज्ञान और ग़रीबी से पीड़ित सहज विश्वासी हिन्दू जनता को राम जन्म भूमि और बाबरी मस्जिद की समस्या खड़ी करके जिस तरह साम्प्रदायिक हिंसा और धर्मान्धता को बढ़ावा दे रहे हैं, वह हर देश भक्त और जनवादी व्यक्ति के लिए गम्भीर चिन्ता का विषय बन गया है। गाँधी जी ने आशा व्यक्त की थी कि विद्यार्थी जी का "निष्पाप ख़ून हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य को सुदृढ़ बनायेगा।" दुर्भाग्य से ऐसा नहीं हुआ, जो हुआ वह यह कि हिन्दू और मुस्लिम सम्प्रदायवादी ब्रिटिश साम्राज्यवाद की मदद से हिन्दू और मुसलमान जनता में एक-दूसरे के प्रति भय, सन्देह, नफ़रत और भ्रान्तियां पैदा करने में सफल हो गये, जिससे देश का बँटवारा हुआ और पाकिस्तान बना। सम्प्रदायवादियों ने राष्ट्र या नेशन की अवधारणा को इतना संकीर्ण बना दिया कि वह हिन्दू या मुस्लिम सम्प्रदाय का पर्याय बन गयी। नतीजा यह हुआ कि भारतीय भाषाओं के आधुनिक साहित्यों में "सूफ़ी सन्तों--कबीर, दादू, नानक और शेख फरीद की उदात्त मानववादी परम्परा धुंधली पड़ती गई और उसकी जगह अपने धार्मिक सम्प्रदाय को ही बुद्धिजीवी, कवि और साहित्यकार राष्ट्र का पर्याय मान बैठे--हिन्दू कवि या उपन्यासकार चाहे बंगाल का हो या महाराष्ट्र का या उत्तर प्रदेश का, उसकी अंतस्चेतना हिन्दू राष्ट्रवाद की अलगाववादी भावना से कहीं न कहीं प्रभावित जरूर है, चाहे वह चेतना रूप में हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का समर्थक क्यों न हो। हिन्दू हो या मुसलमान, बुद्धिजीवी या ऊँची जाति के भद्र लोग, उन सभी में प्रायः एक द्वैत भावना काम करती रही है। जब अंग्रेजों ने आकर बंगाल में अपने पैर जमा लिए तो पाश्चात्य सभ्यता की चुनौतियों के प्रति वहां के भद्रलोक में परस्पर-विरोधी प्रतिक्रियाएं हुईं। सभी धर्मों के अमीर लोग चाहते थे कि उन्हें ही यहां की सत्ता और संस्कृति का वारिस माना जाये। राजा राम मोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, द्वारकानाथ ठाकुर, कवि डिरोजियों और देवेन्द्र नाथ ठाकुर ने योरप के उदारतावादी और जनवादी (डिमॉक्रेटिक) चिन्तन से प्रभावित होकर सुधारवादी आन्दोलन का सूत्रपात किया। इसके विपरीत राजा राधाकान्त देव ने पाश्चात्य शिक्षा का भरपूर लाभ उठाने का समर्थन करते हुए जात-पात के भेदभाव पर आधारित अपनी ब्राह्मणी परम्पराओं और रूढ़ियों का पुनरुद्धार करने पर ज़ोर दिया। शिष्ट वर्ग के लोगों की द्वैत भावना का परिणाम यह हुआ कि इस सदी के आरम्भ में सनातन धर्म सभा अपनी विरोधी संस्था आर्य-समाज से मिल गई और सुधारवादी सर सैयद अहमद खां के अलीगढ़ी बौद्धिक अनुगामी खिलाफत आन्दोलन में अपने विरोधी देवबंद के रूढ़िवादियों के साथ मिल गये। स्वामी दयानन्द सुधारवाद के साथ साथ पुनरुत्थानवाद के भी समर्थक थे। वे चतुष्वर्ण व्यवस्था के भी समर्थक थे। वे ब्राह्मणवाद के नहीं, ब्राह्मणों में फैले भ्रष्टाचार और अंध-विश्वास के विरोधी थे। सुधारवाद और पुनरुत्थानवाद का गठजोड़ आसानी से राजनीतिक सत्ता हथियाने की महत्वाकांक्षा पैदा होते ही ब्राह्मणी सम्प्रदायवाद में परिवर्तित हो सकता था, जैसा कि हुआ। ब्राह्मण होकर भी राजा राम मोहन राय और ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने मानववादी दृष्टि से बुद्धि संगत सुधार का जो आन्दोलन शुरू किया था, उसने आगे चल कर उन्नीसवीं सदी में ही अक्षय कुमार दत्त, जी० जी० अगारकर, एम० जी० रानाडे, आर०जी० भंडारकर और बहराम मलाबारी जैसे दिग्गज विचारक पैदा किये। राष्ट्रीय कांग्रेस के उदारपंथी नेता भी ऐसे ही दिग्गज विचारक थे, रूढ़िग्रस्त ब्राह्मणी धर्म और मनुष्यों में ऊँच-नीच, छुआ-छूत का भेदभाव करने वाली समाज-व्यवस्था को वे सप्रश्न दृष्टि से देखते थे। लेकिन उग्रवादियों के मुकाबले में जब वे बदनाम हो गये और अपना प्रभाव खो बैठे तो कांग्रेस में भी सुधारवादी और पुनरुत्थानवादी प्रवृत्तियां एक-दूसरे में विलय हो गईं और कांग्रेस की राजनीति पर भी ब्राह्मणी साम्प्रदायिकता का रंग चढ़ने लगा। राजनीतिक उग्रवाद और सम्प्रदायवादी राजनीति का गठबंधन हो गया। बाल गंगाधर तिलक कांग्रेस में उग्रवादियों के नेता थे, एक महान देशभक्त, विद्वान और प्रचारक। सबसे पहले, "स्वराज मेरा जन्म-सिद्ध अधिकार है" की क्रान्तिकारी उद्घोषणा उन्होंने ही की थी। लेकिन उनका सामाजिक दृष्टिकोण उतना ही रूढ़िवादी और पुनरुत्थानवादी था। लड़कियों के बाल-विवाह पर पाबन्दी लगाने का उन्होंने विरोध किया, विट्ठल भाई पटेल द्वारा अन्तर्जातीय विवाह को वैध करार देने वाले बिल का उन्होंने हिन्दू-विरोधी और ब्राह्मण-विरोधी कहकर विरोध किया। राजनीतिक उद्देश्य से उन्होंने महाराष्ट्र में एक बड़े पैमाने पर गणपति और शिवाजी के उत्सव मनाने का सिलसिला शुरू किया, जिससे हिन्दुओं में पुनरुत्थानवादी भावनाओं और अन्धविश्वासों को बढ़ावा मिला। उन्होंने "एक शक्तिशाली हिन्दू राष्ट्र" का निर्माण करने का आह्वान भी किया।

जर्मन भाषाविद् मैक्समूलर ने संस्कृत-फारसी-यूनानी जैसी प्राचीन भाषाओं में पर्याप्त साम्य पाकर एक इण्डो-यूरोपीय भाषा-समूह या भाषा-कुल की अवधारणा की थी। संस्कृत साहित्य में शिष्ट संबोधन के लिए "आर्य" शब्द के प्रयोग से प्रभावित होकर उसने अपनी खोज के ऐतिहासिक महत्व से उत्साहित होकर इस भाषा-कुल को "आर्य-कुल की भाषाएं" कह डाला, जिससे यह ध्वनि भी निकलती थी कि अति प्राचीनकाल में मध्य एशिया में कोई प्रोटो-आर्य जाति के यायावर क़बीले रहते थे, जो कालान्तर में यूनान, योरोप, रूस, फारस और भारत में जा बसे। आधुनिक नृशास्त्र के अनुसार समस्त मानव जाति मूलतः एक है, फिर भी रंग-भेद के आधार पर मनुष्य मात्र को तीन प्रजातियों (रेसेज़) में बांटा गया है-- गोरे रंग के कॉकशियन, पीले रंग के मंगोलियन और काले रंग के अफ्रीकी नेग्रिटो। इनमें से कोई भी जाति मानवीय गुणों, सौन्दर्य बोध, नैतिक भावना या बौद्धिक क्षमता, रचनात्मक-कल्पना शक्ति और शारीरिक पराक्रम में दूसरी जाति से श्रेष्ठ या घटिया नहीं है-- यह परीक्षित वैज्ञानिक सत्य है। तीनों प्रजातियों का रंग-भेद उसी तरह का है जैसे गुलाब के फूल अनेक रंगों के होते हैं। युग-युगान्तर से तीनों प्रजातियों के यायावरी कबीले अनुकूल वातावरण और भोजन की तलाश में एक-दूसरे देशों में प्रवास करते रहे हैं-- भाषाई, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक भिन्नताओं और अक्सर ज़र और जमीन पर कब्जा जमाने के लिए आपस में होने वाले युद्धों और नरसंहारों के बावजूद। विशेषकर भारत में तीनों प्रजातियों में हजारों साल से इतना अधिक मिश्रण हुआ है कि हमारे देश में शायद ही कोई हो जो वर्णसंकर नहीं है। यह तब जब ब्राह्मणवाद ने रोटी-बेटी के मानवीय सम्बन्धों की क्रूर वर्जनाओं में जकड़बंद करके इन्सानों को ऊँच-नीच के आधार पर नियोजित करने वाली, धार्मिक अंधविश्वासों से पोषित घोर अमानवीय और क्रूर सामाजिक अन्याय की मूर्तिमान चतुष्वर्ण व्यवस्था को स्थायी रूप से सुरक्षित रखने और उसका अतिक्रमण करने वालों को दंडित करने के भयंकर विधान रचे थे। मगर जीवन की धारा को किसी विधान की पिटारी में बांधकर कौन, कब तक रख सका है ?

हां, इतना ज़रूर हुआ कि मैक्समूलर की अवधारणा से निकलने वाली इस ध्वनि से कि आदिकाल में कोई स्वर्ण-केशी आर्य जाति थी, पाश्चात्य, पूंजीवादी देशों के गोरे लोगों का अन्य पांचों महाद्वीपों के देशों और सातों समुद्रों में फैले हज़ारों द्वीपों में बसी अश्वेत जातियों को साम-दाम-दंड-भेद की नीति का प्रयोग कर आर्थिक लूट-खसोट के लिए ग़ुलाम बनाने का एक विज्ञान-सम्मत बहाना मिल गया। अपनी गोरी चमड़ी और कुछ के सुनहरे बालों के कारण साम्राज्यवादियों को इस नतीजे पर पहुंचने में जरा भी देर नहीं लगी कि वे ही श्रेष्ठतर (सुपिरियर) आर्य-जाति के असली वंशज हैं, और बाकी दुनिया के अश्वेत लोग विभिन्न निम्नकोटि की, एक प्रकार से मनुष्य और जानवर के बीच की प्रजातियों के हैं। हालांकि उन दिनों फ्रांसीसी क्रान्ति के समतावादी और उदार मानववादी डिमॉक्रेटिक विचारों का बोलबाला था लेकिन साम्राज्यवादियों की दृष्टि में इन विचारों और ईसाई धर्म की अहिंसा, करुणा और प्रेम

पर आधारित नैतिकता का केवल योरोप के गोरे निवासियों के लिए ही मूल्य था। डार्विन के "विकास सिद्धान्त" की मनगढ़न्त व्याख्या करके साम्राज्यवाद के पोषक समाजशास्त्रियों ने "सोशल डार्विनिज़्म" नाम से एक समाजशास्त्रीय सिद्धान्त की उद्भावना कर डाली। ईश्वर ने काली जातियों को गौरांग प्रभुओं की सेवा के लिए बनाया है और उन्हें प्रतिवाद करने पर कीड़े-मकोड़ों की तरह मारा जा सकता है-- इस मानवद्रोही सिद्धान्त की यही मूल विचार-वस्तु थी। पश्चिम में एक मिथिकल आर्य-जाति की कल्पना ने रंग-भेद पर आधारित एक क्रूर और नृशंस जातिवाद को जन्म दिया।

किन्तु हमारे यहां सामाजिक वैषम्य का औचित्य सिद्ध करने के लिए "सोशल डार्विनिज़्म" जैसे किसी मसनूई सिद्धान्त का सहारा लेने की ज़रूरत नहीं थी। हिन्दुओं के विभिन्न बुद्धिजीवी समुदायों को और लोकप्रिय नेताओं और विद्वानों को लगा जैसे मैक्समूलर ने वेदों की भाषा से भी पहले की प्रोटो (आदि)संस्कृति के अस्तित्व की संभावना का संकेत करके यह सिद्ध कर दिया है कि ब्राह्मणी सभ्यता और संस्कृति की जननी और कोई नहीं, वह आर्य-जाति ही थी, जो इण्डो-यूरोपीय भाषाएं बोलती थी। विवेकानन्द, तिलक, रानाडे, केशवचन्द्र सेन, अरविन्द घोष, बंकिम चन्द्र आदि उस ज़माने के प्रमुख हिन्दू विद्वानों को इस विचार ने प्रभावित किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती तो आर्य जाति की मिथक से इतने प्रभावित हुए कि इसे सत्य मानकर उन्होंने ब्राह्मणवादी कल्पना के वैदिक धर्म का पुनरुत्थान करने का बीड़ा उठा लिया और आर्य-समाज की स्थापना कर डाली।

भारतीय इतिहास फिर एक मिथक का हिस्सा बन गया। अपने पूर्वज आर्यों के मूल-स्थान की खोज शुरू हुई। तिलक महाराज से लेकर सम्पूर्णानन्द जी तक अनेक विद्वानों ने उत्तरी ध्रुव से लेकर मध्य एशिया में रवीवा की घाटी के बारे में अटकलें लगाई-- अन्त में सम्पूर्णानन्द जी ने अपनी कल्पना को इतनी लम्बी यात्राओं पर दौड़ाने की बजाय कुछ तर्क जुटाकर सिद्ध कर दिया कि आर्यों का आदि देश कोई और नहीं स्वयं भारत ही था-- इस प्रकार इस बौद्धिक प्रयास ने ब्राह्मण-सम्प्रदाय को अंग्रेजों से अपने आपको श्रेष्ठ समझने का अवसर प्रदान किया। इससे नेशनलिस्ट भावना की भी तुष्टि हुई और हिन्दू साम्प्रदायिकता को भी बल मिला। दरअसल तब से हिन्दू साम्प्रदायिकता उत्तरोत्तर अधिक संगठित और आक्रामक होती गई है।

इन सब बातों की चर्चा मैंने अकारण नहीं की। मेरा उद्देश्य यह बताना है कि हिन्दू या मुस्लिम सम्प्रदायवाद का उत्थान हमारे देश की विशिष्ट परिस्थितियों के कारण हुआ। दोनों फिरकों की साम्प्रदायिकता में अनेक समानताएं भी हैं-- दोनों मानववादी डिमॉक्रेटिक भावना और परम्परा की कट्टर विरोधी हैं और उच्च जातियों और नगरों के सम्पन्न व्यवसायी और पेशेवर समुदायों के आर्थिक हितों की समर्थक और पोषक प्रवृत्तियां हैं। तिलक महाराज का जब तक राष्ट्रीय कांग्रेस पर वर्चस्व रहा, तब तक भारतीय राष्ट्रवाद और हिन्दू सम्प्रदायवाद में गहरा अन्तर्सम्बन्ध भी बना रहा। उस समय तक हिन्दू सम्प्रदायवाद मुख्यतः रूढ़िग्रस्त समाज में किंचित सुधार लाने और लुप्त धार्मिक परम्पराओं और पद्धतियों का पुनरुत्थान करने में विशेष रुचि लेता था या सरकारी नौकरियां हथियाने में मुसलमानों से आगे रहने के लिए अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार में योग देता था। इस प्रकार दोनों फ़िरकों की साम्प्रदायिकता अंग्रेजी शासन की बरकतों का पूरा फ़ायदा उठाने में अपने-अपने सम्प्रदाय का लाभ देखती थी। विदेशी गुलामी से निजात पाना सम्प्रदायवादियों के प्रोग्राम में कभी नहीं शामिल रहा। इसलिए तिलक के बाद जब गांधी जी ने राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व संभाला तो उन्होंने कांग्रेस को राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के लिए समस्त भारतीय जनता की सामान्य संगठित शक्ति बनाने की कोशिश की। उन्होंने जाति, धर्म, रंग, सेक्स या गरीब-अमीर का भेद न करके सभी भारतीयों (विभिन्न जातीय इकाइयों-- नेशनलिटीज़), मजदूर-किसान, पूंजीपति-ज़मींदार, बुद्धिजीवी-दस्तकार, हिन्दू-मुसलमान, पारसी, सिख, ईसाई के लिए राष्ट्रीय कांग्रेस के दरवाजे खोल दिए ताकि ये सभी अपने और एक-दूसरे के हितों के लिए मिलकर आवाज उठा सकें। राष्ट्रीय कांग्रेस जनमानस में एक स्वतंत्र डिमॉक्रेटिक और धर्म-निरपेक्ष भारत का निर्माण करने की आकांक्षाएं जगाकर लोगों को साम्राज्यवाद से टक्कर लेने के लिए संगठित करने लगी। जलियानवाला बाग के हत्याकाण्ड में हजारों हिन्दू-मुसलमान और सिखों का पवित्र ख़ून मिलकर बहा था और उसने साम्प्रदायिक एकता की सकल-मानववादी धर्म-निरपेक्ष भावना को मज़बूत किया था। गांधी जी अपने आपको सनातनधर्मी हिन्दू कहते थे, लेकिन दरअसल वे बौद्धों और जैनों की अहिंसावादी श्रमण-परम्परा और मध्यकालीन सूफ़ी-संतों और भक्तों की मानव-प्रेम और एकता पर ज़ोर देने वाली समन्वयवादी परम्परा के स्वयं एक महान संत थे। एक इतिहासकार के अनुसार उन्होंने एक ओर श्रमण और ब्राह्मणवादी पुनरुत्थानवाद की परम्पराओं और अभिजातवर्गीय तंत्र और डिमॉक्रेटिक तंत्र के बीच की खाई पाटने का प्रयत्न किया, जिसमें वे सफल नहीं हो सके। हिन्दू और मुस्लिम दोनों फिरकों के सम्प्रदायवादी उन्हें अपने मार्ग का रोड़ा समझने लगे। यह हमारे देश का सौभाग्य है कि इस सदी में भारतीय जन-मानस को कवि-गुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी और जवाहर लाल नेहरू जैसे महान विश्व मानवों ने डिमॉक्रेटिक और धर्म-निरपेक्ष भावनाओं और विचारों से समृद्ध किया। यही कारण है कि राष्ट्रीय आन्दोलन और आज़ादी के बाद राष्ट्रीय कांग्रेस और उससे निकले अनेक समाजवादी और वामपन्थी ग्रुप पारस्परिक झगड़ों और हिन्दू या मुस्लिम साम्प्रदायिकता के प्रश्न पर अपनी ढुलमुल नीतियों के बावजूद इन सिद्धान्तों में कमोवेश आस्था रखते हैं।

डिमॉक्रेसी और मानववाद का तकाजा है कि साम्प्रदायिक भावना से ऊपर उठकर अगर मानवमात्र के हित में तत्काल न सोच सकें, तो कम से कम इस साधारण सच्चाई का दामन तो न छोड़ें कि हमारा भारत किसी भी सम्प्रदाय से बड़ा है और यह कि डिमॉक्रेसी का अर्थ यह नहीं है कि अगर हिन्दू सम्प्रदाय बहु-संख्यक है, तो यह देश उनका ही है, छोटे सम्प्रदायों को गैर समझा जाय या जो मानवोचित और डिमॉक्रेटिक अधिकार हर किसी को मिलने चाहिए, उन्हें उनसे वंचित रखा जाये। साथ ही यह भी याद रखना जरूरी है कि भारतीय संस्कृति, भारतीय राष्ट्र, हिन्दू संस्कृति या राष्ट्र का पर्याय नहीं है। भारतीय संस्कृति के निर्माण में हड़प्पा संस्कृति के लोगों से लेकर अब तक भारत में बाहर से आये विभिन्न मानव समुदायों का योगदान है-- उनमें अरब, ईरानी, तुर्क, मंगोल जैसी प्राचीन जातियों का भारतीय संगीत, कला स्थापत्य, भाषा-विज्ञान, आरोग्यशास्त्र, संस्कृति आदि सभी के विकास में और उन्हें समृद्ध करने में पूरा योगदान है। इस कम्पोज़िट भारतीय कल्चर का वैविध्य ही इसकी महानता है।

कालेज के दिनों में मैंने हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान और श्रेष्ठ कवि पं० राम नरेश त्रिपाठी को भाषण देने के लिए बुलाया था। उन्होंने बहुत साल पहले के हिन्दू सम्प्रदायवादियों की ण्डूकता की खिल्ली उड़ाते हुए घर, रसोई, भोजन की चीज़ों, बर्तनों, पोशाकों, मिठाइयों, पकवानों आदि के नामों की व्युत्पत्ति बताते हुए कहा कि इनमें से अधिकतर तुर्की, अरबी या फारसी भाषा के हैं। इनके बगैर हमारे घरों में तवा, चूल्हा, कड़छी या पहनने का कुर्ता-पाजामा, मिठाई-पकवानों में बरफी, इमर्ती, बालूशाही, समोसा वगैरह कुछ भी नहीं रहेगा। इसलिए कूपमण्डूकता त्यागकर गाँधी जी के शब्दों में अपने घर की खिड़कियां खोल कर रखें, तभी, साम्प्रदायिकता का ज़हर हमारे अन्दर के वातावरण को दूषित नहीं कर सकेगा और भारतीय जनतंत्र अपने सभी नागरिकों को समान अधिकार और सुविधाएं दे सकेगा। ❑ ❑

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस काकोरी के शहीदों की गाथा सुनाते थे

❍ **कैप्टन रामसिंह,** भू०पू० कप्तान, आज़ाद हिन्द फौज

जो लोग आज़ाद हिन्द फ़ौज में सबसे पहले भर्ती हुए, उनमें मैं भी एक था। सन् 1857 की जंगे आज़ादी से लेकर सन् 1939-40 में, दूसरी दुनियाई जंग तक भारत की स्वाधीनता की लड़ाई मे जो शहीद हुए हैं, उनकी पवित्र जीवन गाथाएँ सुना-सुनाकर नेताजी सुभाषचन्द्र बोस जापानियों द्वारा गिरफ्तार किये गये अंग्रेजी सेना के हम भारतीय क़ैदी सिपाहियों में देशभक्ति और देश की जंगे आज़ादी में मर मिटने के भाव उभारते थे। उनमें काकोरी काण्ड के अमर शहीद रामप्रसाद 'बिस्मिल', अशफ़ाक़ उल्ला खाँ, राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी और रोशनसिंह के बलिदान की पावन गाथाएँ भी वह सुनाते थे। अमर शहीद अशफ़ाक उल्ला खाँ की शहादत हमारे मुसलमान भाइयों के दिलों में देश-भक्ति की भावना और हिन्दू-मुस्लिम भाई-चारे की भावना बड़े दृढ़ रूप में भरती थी। यों तो 1857 से लेकर जंगे आज़ादी में बहुत-से मुसलमान शहीद हुए हैं, लेकिन अंग्रेजों द्वारा उभारे गये हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्यों और झगड़ों के जिस माहौल में अमर शहीद अशफ़ाक उल्ला ने अपनी कुर्बानी से एकता और भाईचारे की भावना को हम लोगों में जीता-जागता रखा, उसका अपना अलग ही और विशेष महत्व है।

मेरा जन्म 15 अगस्त, 1914 में हिमाचल प्रदेश के काँगड़ा जिले के धर्मशाला ग्राम में हुआ और 14 वर्ष की आयु में ही मैं 2/1 गोरखा रेजिमेण्ट में भर्ती हो गया था। मुझे सिपाही बनने की और संगीत की बड़ी लगन थी। अतः मैं फ़ौज के बैण्ड में लिया गया। मेरे गानों और वायलिन-वादन से सभी सिपाही और अफ़सर भी बहुत उत्साहित और प्रसन्न होते थे।

दूसरी दुनियाई जंग में हमारी रेजिमेण्ट को भी मलेशिया के मोर्चे पर भेजा गया। जापानियों की फ़ौज और उसकी जंगी तैयारी फ़ौज से अधिक ताकतवर साबित हुई और सिंगापुर में अंग्रेजी फ़ौजों को जापानियों के सामने आत्मसमर्पण करना पड़ा। इस प्रकार जापानियों के हाथ में हम भारतीय सिपाही युद्धबन्दी के रूप में पड़ गये जो बाद में आज़ाद हिन्द फ़ौज में भरती हुए। हम और हमारे बुजुर्ग अंग्रेजों की फ़ौज में भर्ती होते रहे थे और हमने कभी यह सोचा भी न था कि हम कभी शक्तिशाली अंग्रेज़ सरकार की हुकूमत के खिलाफ़ टक्कर ले सकते हैं और अंग्रेजों की गुलामी से भारत को आज़ाद करा सकते हैं।

बर्लिन में ओरलांदो मोजेतो के भेष में सुभाष बाबू

"हम आज़ाद हिन्द के सैनिक यह बड़े गर्व से कह सकते हैं कि जब अंग्रेजों की साजिश से हिन्दू-मुसलमानों में वैमनस्य उभारा जा रहा था और मजहबों के भेद के आधार पर हिन्दुस्तान के बटवारे का वातावरण बन रहा था, हमारी आज़ाद हिन्द फ़ौज में सभी हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई भाई-भाई की तरह कंधे से कंधा मिलाये शत्रुओं से लड़ रहे थे। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के हृदय में गाँधी के प्रति महान श्रद्धा सदैव रही थी; वह कांग्रेस में अपना विश्वास और महात्मा गाँधी के प्रति पूरी फ़ौज में श्रद्धा जागृत करने का कोई मौका कभी हाथ से न जाने देते थे। आजाद हिन्द फौज में 'गाँधी ब्रिगेड', 'नेहरू बिग्रेड', नाम की ब्रिगेडें थीं और स्त्रियों की एक 'लक्ष्मीबाई ब्रिगेड' भी थी, जिनमें सभी मजहबों के, सभी प्रान्तों के पुरुष और महिलाएँ थीं।"

रामायण और महाभारत की कथाओं ने, गीता के सन्देश ने और सबसे बढ़कर तो अंग्रेजों के विरुद्ध चली आ रही हमारी आज़ादी की तहरीक में हुए शहीदों के जीवन पर नेताजी की पुरज़ोर तकरीरों ने, हम सभी के मन से अंग्रेज सरकार का आतंक मिटा दिया और हम भारत की आज़ादी के लिए खुशी-खुशी जान देने को तैयार हो गये। जैसा कि मैं ऊपर लिख चुका हूँ, हमारे भीतर बलिदान की भावना भरने में क्रान्तिकारी शहीदों की शहादत ने बहुत प्रेरणा दी।

आज़ाद हिन्द फ़ौज के सैनिक बैण्ड के संगठन का कार्य नेताजी ने मुझे सौंपा, और जो बैण्ड मैंने संगठित किया, उससे वह भी बहुत प्रसन्न और उत्साहित हुए। अंग्रेजों की फ़ौज में मैं हवलदार मेजर था। आज़ाद हिन्द फ़ौज में तरक्की करते-करते मैं कैप्टेन हुआ। मुझे इस बात का विनीत गर्व है कि आज़ाद हिन्द फौज के गानों और उनकी धुनों में अनेक गानों के शब्द भी मैंने सँजोये थे और स्वर तो प्रायः सभी के मैंने ही दिये थे। इस गाने में जिसे गाते हुए आज़ाद हिन्द फ़ौज के सिपाही मार्च करते थे, देश की आजादी के लिए खुशी-खुशी मर मिटने का हमारा उत्साह भली-भाँति प्रकट हुआ है :

**कदम-कदम बढ़ाए जा, ख़ुशी के गीत गाए जा,
ये ज़िन्दगी है क़ौम की, तू क़ौम पै लुटाए जा।
तू शेरे हिन्द आगे बढ़, मरने से भी तू न डर
उड़ा के दुश्मनों का सर, जोशे वतन बढ़ाए जा।
तेरी हिम्मत बढ़ती रहे, खुदा तेरी सुनता रहे
जो सामने तेरे अड़े, तो ख़ाक में मिलाए जा।
'दिल्ली चलो' पुकार के, क़ौमी निशाँ सँभाल के
लाल किले में गाड़ के, लहराए जा, लहराए जा।**

और इस नीचे लिखे गीत और उसको मेरे द्वारा दी गयी धुन को नेताजी ने बहुत पसन्द किया था :

वतन की राह में वतन के नौजवाँ शहीद हो
पुकारते हैं यह जमीन आसमाँ शहीद हो।
शहीद तेरी मौत ही तेरे वतन की ज़िन्दगी
तेरे लहू से जाग उठेगी चमन की ज़िन्दगी।
वतन की लाज रखना है अजीज अपनी जान से
वह नौजवान जा रहा है आज कितनी शान से।
पाक वतन की खाक पर, हर एक जवाँ शहीद हो।
गुलाम उठ वतन के दुश्मनों से इन्तकाम ले
इन अपने बाजुओं से तू ख़ंजरों को थाम ले।
पहाड़ तक भी काँपने लगें तेरे लो खून से
वतन की राह में वतन के नौजवाँ शहीद हो।

सब देख सकते हैं कि इन गीतों के बोलों में अमर शहीद क्रान्तिकारियों के आत्मबलिदान की प्रेरणा ही सर्वत्र गूँज रही है।

आजाद हिन्द फ़ौज का पूरा इतिहास देने की यहाँ जगह नहीं है। अपने बारे में भी मैं यहाँ कुछ नहीं कहना चाहता हूँ जो हमारे क्रान्तिकारियों का सपना था कि उनके बलिदान से प्रेरित होकर फ़ौज के सिपाही उपयुक्त अवसर और कुशल नेता के नेतृत्व में भारत की आजादी के सैनिक बनकर देश को अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त करने के लिए लड़ेंगे, वह आज़ाद हिन्द फ़ौज और उसकी लड़ाई के रूप में साकार हुआ।

हम आज़ाद हिन्द के सैनिक यह बड़े गर्व से कह सकते हैं कि जब अंग्रेजों की साजिश से हिन्दू-मुसलमानों में वैमनस्य उभारा जा रहा था और मजहबों के भेद के आधार पर हिन्दुस्तान के बटवारे का वातावरण बन रहा था, हमारी आज़ाद हिन्द फ़ौज में सभी हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई भाई-भाई की तरह कंधे से कंधा मिलाये शत्रुओं से लड़ रहे थे। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के हृदय में गाँधी के प्रति महान श्रद्धा सदैव रही थी; वह कांग्रेस में अपना विश्वास और महात्मा गाँधी के प्रति पूरी फ़ौज में श्रद्धा जागृत करने का कोई मौका कभी हाथ से न जाने देते थे। आजाद हिन्द फ़ौज में 'गाँधी ब्रिगेड', 'नेहरू बिग्रेड', नाम की ब्रिगेडें थीं और स्त्रियों की एक 'लक्ष्मीबाई ब्रिगेड' भी थी, जिनमें सभी मजहबों के, सभी प्रान्तों के पुरुष और महिलाएँ थीं।

जीवन भर में उस दिन की याद नहीं भूल सकता जब मई, 1946 में पूज्य बापूजी के वाल्मीकि आश्रम में आज़ाद हिन्द फ़ौज के सभी प्रान्तों के लोग उनका आर्शीवाद लेने पहुँचे थे और उन्हें अपना कौमी तराना सुनाया था। नेताजी की प्रशंसा करते हुए बापूजी ने कहा था, "नेताजी ने वह काम थोड़े ही समय में कर दिखाया है जिसे हम लम्बे समय में भी नहीं कर पाये थे।" इस गीत की गाँधीजी ने बहुत प्रशंसा की थी, जिसमें आज़ाद हिन्द फ़ौज का लक्ष्य और आदर्श भलीभाँति जाहिर हुआ था--

आओ मिलकर गायें गीत।
आओ प्रेम की ज्योति जलायें। बिछड़ों को आपस में मिलायें।
बैर मिटायें, प्रेम बढ़ायें। सबको कर लें अपना मीत।
आओ मिलकर गायें गीत।
आओ अपना ढंग बनायें। दुखियों का दुख दर्द मिटायें।
देश की बिगड़ी बात बनायें। सेवा की है जग में जीत।
आओ मिलकर गायें गीत।
आओ भारत माँ के काम आयें। दुख की कैद से उसको छुड़ायें।
आज़ादी लें या मर जायें। फिर सुख चैन के गायें गीत।
आओ मिलकर गायें गीत।
हिन्दू मुस्लिम सिख ईसाई। आपस में हम भाई-भाई।
ना झगड़ा ना कोई लड़ाई। प्रेम की कैसी प्यारी रीत।
आओ मिलकर गायें गीत।

काकोरी के शहीदों का वह गीत, जो वे अदालत में गाते थे और जिसको गाते-गाते वे शहीद हुए, हम आज़ाद हिन्द फ़ौज वाले बड़े उत्साह से गाते थे और उससे हमें प्रेरणा मिलती थी। उस गीत के शुरू के बोल थे :

सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है
देखना है ज़ोर कितना बाजुए क़ातिल में है।

देश की आज़ादी के लिए खुशी से गाते हुए मरने का हौसला हमें काकोरी के शहीदों की शहादत की उन कहानियों से सदा मिलता रहा जो नेताजी हमें समय-समय पर अपने भाषणों में सुनाते रहते थे। ❑ ❑

(डॉ० भगवानदास माहौर द्वारा संपादित 'काकोरी शहीद स्मृति' से साभार)

वे दीवाने

अनुत्तरदायी ? जल्दबाज ? अधीर आदर्शवांदी ? डाकू ? हत्यारे ? अरे, ओ दुनियादार तू उन्हें किस नाम से , किस गाली से विभूषित करना चाहता है ?

वे मस्त हैं, वे दीवाने हैं, वे इस दुनिया के नहीं। वे स्वप्नलोक की वीथियों में विचरण करते हैं। उनकी दुनिया में, शासन की कटुता से, माँ धरित्री का दूध अपेय नहीं बनता। उनके कल्पना लोक में ऊँच-नीच का, धनी-निर्धन का, हिन्दू-मुसलमान का भेद नहीं है। इसी सम्भावना का प्रचार करने के लिए वे जीते हैं। इसी दुनिया में उसी आदर्श को स्थापित करने के लिए वे मरते हैं। दुनिया के पठित मूर्खों की मण्डली उनको गालियाँ देती है। लेकिन यदि सत्य के प्रचारक गालियों की परवाह करते तो शायद दुनिया में आज सत्य, न्याय, स्वातंत्र्य और आदर्श के उपासकों के वंश में कोई नामलेवा और पानीदेवा भी न रह जाता। लोकरुचि अथवा लोकोक्तियों के अनुसार जो अपना जीवन-यापन करते हैं, वे अपने पड़ोसियों की प्रशंसा के पात्र भले ही बन जायें, पर उनका जीवन औरों के लिए नहीं होता। संसार को जिन्होंने ठोकर मारकर आगे बढ़ाया वे सभी अपने-अपने समय में लांछित हो चुके हैं। दुनिया खाने, पीने, पहनने, ओढ़ने तथा उपभोग करने की वस्तुओं का व्यापार करती है। पर कुछ दीवाने चिल्लाते फिरते हैं--

"सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है !"

ऐसे कुशल किन्तु औघट व्यापारी भी कभी देखे हैं ? अगर एक बार आप-हम उन्हें देख लें तो कृत्कृत्य हो जायें।

(गणेश शंकर विद्यार्थी द्वारा सम्पादित 'प्रताप' के एक अग्रलेख से साभार)

शहीदों के गीत : हमारी नयी गीता

○ दुर्गा देवी वोहरा

[श्रीमती दुर्गा देवी वोहरा (जन्म 7 अक्टूबर, 1907) अमर शहीद भगवतीचरण वोहरा की पत्नी हैं, जिनकी शहादत अमर शहीद भगतसिंह को जेल से छुड़ाने की योजना में प्रयोग में लाये जानेवाले बमों में से एक से, रावीतट के जंगल में परीक्षण करते समय हुई थी। आप अपने पति के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर काम करती थीं और लाहौर में ए.एस.पी. साण्डर्स के वध के बाद भगतसिंह को, उनकी पत्नी के छद्म वेश में, लाहौर में पूर्णतः सुरक्षित निकाल ले आने का श्रेय आपको ही है। पति की शहादत के बाद अपनी असीम व्यथा को अपने मन में छुपाये आप अमर शहीद चन्द्रशेखर आज़ाद के नेतृत्व में द्विगुणित उत्साह से क्रान्तिकारी दल का कार्य करती रहीं। पुराने क्रान्तिकारी बाबा पृथ्वीसिंह आज़ाद के साथ आपने ही बम्बई में लेमिंगटन रोड के पुलिस थाने पर गोली चलायी थी। मगर घटनास्थल से पृथ्वीसिंहजी के साथ आप भी साफ बच निकली थीं और लगभग तीन वर्ष फरार रहीं। बाद में आपको लाहौर में गिरफ्तार किया गया था तथा 1818 के रेग्युलेशन के अन्तर्गत आपको जेल में नज़रबन्द रखा गया था। आपने आठ महीने नज़रबन्दी और एक साल कैद की सज़ा काटी थी।]

आज जब हम काकोरी के शहीदों की अर्धशताब्दी का समारोह करने जा रहे हैं। तो जाने मन कैसा-कैसा हो रहा है। कभी लगता है कि यह हमारा सौभाग्य है--सौभाग्य इसलिए कि जिस उद्देश्य के लिए इन अमर शहीदों रामप्रसाद 'बिस्मिल', अशफ़ाक़ उल्ला खां, राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी और रोशनसिंह ने अपना बलिदान किया था वह पूर्ण हुआ और भारत आज पूर्ण स्वतंत्र है। कभी यह कुछ दुर्भाग्य सा भी लगता है--दुर्भाग्य इसलिए कि आज भी उनकी शहादतों की याद करके एक दुःखपूर्ण रोमांच भी हो आता है और विशेषतः इसलिए कि हमें आज उस क्रान्तिकारी उत्साह के दर्शन नहीं हो रहे हैं जिसका परिचय इन शहीदों ने अपने आचरण से दिया था और उस समय निश्चित रूप से उनका वह उत्साह जनता में मानो बीज की तरह पड़कर एक लहलहाती खेती के रूप में उपजा था। उस खेती को साम्राज्यवाद के पशुओं ने बहुत चरा परन्तु वह लहलहाती ही रही। लेकिन आज तो उसकी पत्तियों को भी देखने को आँखें तरस जाती हैं। फिर भी इन शहीदों की याद में ऐसा कुछ है जो मन को पूरी तरह उदास और निराश नहीं ही होने देता। हमारे मन में जो यह अर्धशताब्दी मनाने का संकल्प जागा है वह हमें लगता है, आम जनता में उन भावनाओं के पुनः जागृत होने का ही परिणाम है, उस बीज से उत्पन्न फल ही है, जिसे इन शहीदों ने अपने खून से यह गाते हुए सींचा था :

सूख जाए न कहीं पौदा ये आज़ादी का
खून अपने से इसे इसलिए तर करते हैं
दरो दीवार पै हसरत से नज़र करते हैं
खुश रहो अहले वतन, हम तो सफर करते हैं।

1920-21 के असहयोग आन्दोलन के समाप्त हो जाने के बाद जनता के मन में जो एक मुर्दनी-सी छा गयी थी, वह इस काकोरी काण्ड से दूर हो गयी थी और इन शहीदों के खून से सिंचकर आज़ादी की आशा की के बीज पुनः अंकुरित हुए थे और बढ़े थे। हमें आशा है कि इन शहीदों के इस अर्धशताब्दी महोत्सव से उनकी आशा की जनतंत्री समाजवादी आज़ादी का उत्साह जनता में फिर उसी प्रकार लहलहायेगा।

यह मेरा सौभाग्य रहा है कि मुझे अपने पति अमर शहीद भगवतीचरण वोहरा और उनके अमर शहीद साथियों सरदार भगतसिंह और चन्द्रशेखर आज़ाद आदि के नेतृत्व में क्रान्तिकारी दल में कार्य करने का अवसर मिला था। वास्तव में काकोरी काण्ड के सम्बन्ध में जो गिरफ्तारियाँ, सजाएँ और फाँसियाँ हुई थीं उनसे दल बुरी तरह छिन्न-भिन्न अवश्य हो गया था परन्तु उससे बचे साथियों ने विशेषतः अमर शहीद चन्द्रशेखर आज़ाद और भगतसिंह ने, उसे दृढ़तर रूप में संगठित और विकसित कर लिया था। अमर शहीद रामप्रसाद 'बिस्मिल' ने जेल में फाँसी की कोठरी से लिखे देशवासियों के लिए अपने सन्देश में इस शेर में यह आशा व्यक्त की थी :

मरते बिस्मिल, रोशन, लहरी, अशफ़ाक़ अत्याचार से।
होंगे पैदा सैकड़ों, इनके रुधिर की धार से।।

उनकी यह आशा वास्तव में क्रान्तिकारी शहादत के पौधे में फले लाहौर षड़यंत्र केस के अमर शहीदों यतीन्द्रनाथ दास, सरदार भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु और उनके साथी चन्द्रशेखर आजाद और भगवतीचरण वोहरा आदि शहीदों के रूप में तो तत्काल ही फूली-फली और इसमें आगे सूर्यसेन आदि अमर शहीदों की लम्बी परम्परा फूलती-फलती रही।

काकोरी काण्ड और भले जो भी हो, और दल की आर्थिक स्थिति के कारण भले नियोजित हुआ हो, परन्तु उसकी सबसे बड़ी विशेषता यही थी कि यह साम्राज्यवादी आततायी अंग्रेजी सरकार को खुली चुनौती थी और आम जनता के मन पर उसी का स्वस्थ प्रभाव हुआ था, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, विशेषतः असहयोग आन्दोलन बन्द कर दिये जाने की निराशा और अवसाद के वातावरण में।

तदनन्तर ये क्रान्तिकारी चुनौतियाँ आततायी सरकार को दी ही जाती रहीं। हमारे दल ने काकोरी काण्ड में फाँसी की सज़ा पाये अपने नेताओं और अन्य बन्दी नेताओं को जेल से बाहर निकाल लाने की अनेक साहसपूर्ण योजनाएँ बनायीं और उन्हें कार्यान्वित करने का प्रयास किया। यह दूसरी बात है कि योजनाएं सफल नहीं हुईं। इन असफलताओं का महत्व कम नहीं है। आगे के अनेक क्रान्तिकारी काम तो केवल सरकार को शुद्ध चुनौती और ललकार देने के लिए ही हुए। लाहौर में ए.एस.पी. साण्डर्स का वध और दिल्ली की असेम्बली में बम-विस्फोट तो क्रान्तिकारी इतिहास की स्वर्णाक्षरी घटनाएँ हुईं जो सीधे काकोरी की चुनौती की परम्परा में थीं।

जीवन की पैसों की तंगी, भूख, बिना दवा-दारू की बीमारी, क्रान्तिकारी आपस में विनोद करते सहते रहे। इसके लिए हमें मानसिक बल काकोरी काण्ड के शहीदों और अन्य बन्दियों की इन कष्टों और यंत्रणाओं की कथाओं से मिलता रहा जो उन्होंने सही थीं और तब भी सह रहे थे। ये कथाएँ हमारी धर्म-कथाएँ थीं और उनके द्वारा फाँसी की कोठरी में गाये गये गीत हमारी 'गीता' थी। हमें इनसे वैसा ही महान मनोबल मिलता रहा जैसा मनोबल आम श्रद्धालु जनता में संचरित करने के लिए ही हमारे पूर्वकाल के ऋषियों ने ये धर्म-कथाएँ लिखी थीं और श्रीमद् भगवद्गीता का प्रचार किया था।

सच तो यह है कि हमारी धार्मिक कथाओं में जो कल्पना-प्रसूत अति-प्राकृतिक बातों का समावेश हुआ है, उनसे हम बुद्धिजीवियों के तार्किक मन पर अब विशेष प्रभाव पड़ने की आशा नहीं की जा सकती, परन्तु हमारे शहीदों की ये कथाएँ तो हमारी अपनी आँखोंदेखी अनुभव की हुई बातें हैं। जनता के मन को अब यही कथाएं जीवन को जनतंत्री समाजवादी धरातल पर उठाने का मनोबल दे सकती हैं। शहीदों के ये गीत ही अब हमारी गीता है। ❑ ❑

(डॉ० भगवानदास माहौर द्वारा संपादित 'काकोरी शहीद स्मृति' से साभार)

'कला भी देखती थी आजादी का स्वप्न

○ मिथिलेश श्रीवास्तव

आज हमारी कला पर भले ही बाजार और व्यापार हावी हो गया है, पर स्वाधीनता संघर्ष के दिनों में अनेक कलाकार आंदोलन से जुड़े थे। नंदलाल वसु और यामिनी राय गांधी जी से बहुत प्रभावित थे। देवी प्रसाद राय चौधरी के बनाए हुए स्वाधीनता संबंधी स्मारक कला और स्वाधीनता संघर्ष से जुड़ाव के अनोखे प्रमाण हैं।

सन् बयालीस की अगस्त क्रांति को आज केवल 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' या 'करो या मरो' के क्रांतिकारी नारों के लिए याद किया जाता है। लेकिन वास्तविकता इतनी सी नहीं थी। क्रांतिकारियों पर बरपाए गए क्रूरतम अत्याचार की कहानी पटना में स्थापित 'शहीद स्मारक' आज भी आते-जाते लोगों को सुना जाता है। ग्यारह अगस्त 1942 की शाम पटना सचिवालय पर तिरंगा फहराने के इरादे से गए एक जुलूस पर पटना जिले के कलेक्टर आर्चर ने गोली चलवाई थी। सात लोग मारे गए थे और अनेक घायल हुए थे। यह शहीद स्मारक उन्हीं सात शहीदों की स्मृति है, जो स्कूल के विद्यार्थी थे। बिहार में 'अगस्त क्रांति' की व्यापकता का एक बड़ा कारण इन सात छात्रों की हत्या से उपजा भारी जनरोष भी था।

पटना का यह शहीद स्मारक मूर्तिशिल्प कला का एक अनोखा नमूना है क्योंकि इसमें आजादी की लड़ाई के तीव्रतर दौर में हुए क्रूर अत्याचार की एक झांकी है और शहीदों के खून का जोश और उसका तनाव मूर्तियों की बनावट में है। 'शहीद स्मारक' प्रतीकात्मक तौर पर उस त्याग को दर्शाता है जो स्वतंत्रता संग्राम में भारत के लोगों ने किया। इसके शिल्पी थे प्रसिद्ध कलाकार देवी प्रसाद राय चौधरी।

देवी प्रसाद राय चौधरी का परिवार उत्तर बंगाल में जमींदार था। लेकिन राय चौधरी का मन कलाकार का था। उनके गुरू थे अवनींद्र नाथ ठाकुर। अवनींद्र नाथ के शिष्यों में नंदलाल बोस, क्षितीन्द्र नाथ मजूमदार, यामिनी राय, असित कुमार हालदार आदि थे। जिनका नाम भारतीय कला के इतिहास में अमर है। देवी प्रसाद राय चौधरी को अपनी पहचान बनाने में काफी संघर्ष करना पड़ा था। मद्रास के आर्ट स्कूल में वे अट्ठाइस वर्ष तक रहे। मूर्तिशिल्पी के रूप में उन्होंने काफी नाम कमाया। स्वतंत्रता संग्राम के शहीदों की झांकियां और आजादी के महापुरुषों की प्रतिमाएं उन्होंने काफी बनाईं। इससे आजादी की लड़ाई और उसके महत्व की ओर उनके रुझान का पता चलता है।

आजादी के आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी के सामाजिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विचारों और संघर्षों की प्रतिध्वनि देवी प्रसाद राय चौधरी के मूर्तिशिल्प और शहीद स्मारकों में मिलती है। ' द्रावणकोर मंदिर में हरिजन प्रवेश उद्घोषणा', 'ध्वंस देवता', 'अंतिम प्रहार,' 'भूख से पीड़ित', 'श्रम की विजय' आदि कांस्य में बने मूर्तिशिल्प इसका प्रमाण हैं। उनकी बनाई बड़ी मूर्तियों में सर सुरेंद्र नाथ बैनर्जी, महात्मा गांधी और मोतीलाल नेहरू की प्रतिमाएं असाधारण मानी जाती हैं। महात्मा गांधी की थकी हुई दुर्बल आकृति उस सारे आंतरिक बल को लिए हुए है, जिसने स्वतंत्रता संग्राम में राष्ट्र का नेतृत्व किया। सूझ-बूझ से रखे गए कैक्टस से उलझती उनकी चादर मार्ग की बाधाओं का सामना करने की उनकी विकट संकल्पशक्ति का प्रतीक है।
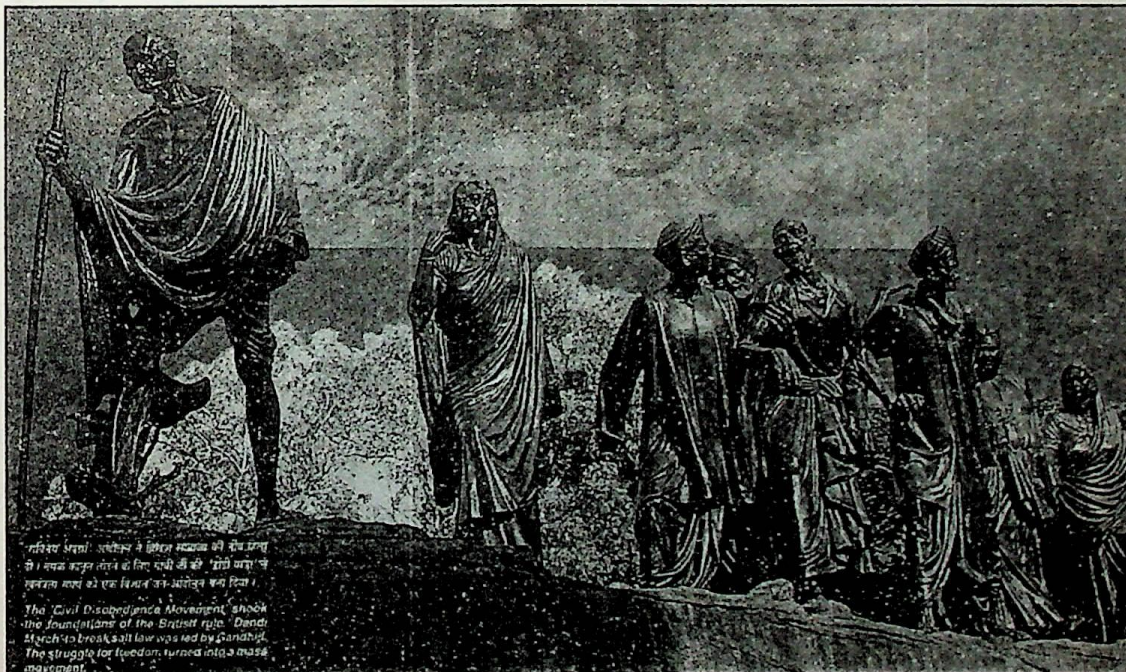
स्वतंत्रता स्मारक, नई दिल्ली

मूर्तिशिल्पी : देवी प्रसाद राय चौधरी

सन् 1954 में राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय के परिसर में मुक्ताकाश में स्थापित कांस्य की मूर्ति 'श्रम की विजय' की चारों आकृतियां एक बड़े काम में जुटे हुए लोगों के शरीर की रचना का सटीक अध्याय हैं। इस मूर्ति में निर्मित मानव समूह की सबसे खास बात है इसकी सर्वव्यापी अपील, चट्टान उलटने के काम की कठिनाई और गति का आभास।

'स्वतंत्रता स्मारक' देवी प्रसाद राय चौधरी का एक और शहीद स्मारक है, जो दिल्ली में तीनमूर्ति मार्ग और सरदार पटेल मार्ग जहां

मिलते हैं, वहां सड़क के किनारे लगा है। इसकी स्थापना 1982 में हुई थी यानी राय चौधरी की मृत्यु के बाद। पटना में स्थापित शहीद स्मारक का ही यह एक बड़ा संस्करण है जिसे बनाने का काम जवाहर लाल नेहरू ने देवी प्रसाद राय चौधरी को सौंपा था। देवी प्रसाद का दावा था कि इतनी मनुष्य आकृतियों वाली यह मूर्तिशिल्प विश्व में अपने ढंग की सबसे बड़ी रचना है। 29 मीटर लंबी सतह पर चार मीटर ऊंची ग्यारह आकृतियों वाला यह संयोजन 'अनेकता में एकता' का प्रतीक है। हर आकृति अपनी शारीरिक बनावट और विशिष्ट पहनावे के द्वारा एक-एक खास राज्य का प्रतिनिधित्व करती है। इसमें सबसे आगे लंबी-सी छड़ी हाथ में लिए आगे बढ़ती हुई आकृति महात्मा गांधी की है। लोग इसे नमक सत्याग्रह से जोड़कर भी देखते हैं।

शंखो चौधरी (1916) लघु और बड़े आकार के मूर्तिशिल्प की रचना समान खूबी से कर सकते हैं। कांसे में गढ़ी हुई महात्मा गांधी की प्रतिमा (कार्ल खंडेलवाल के शब्दों में) राष्ट्रपिता का सबसे उत्कृष्ट मूर्तिशिल्प है। यह मूर्तिशिल्प ब्राजील में है। शंखों का बनाया खान अब्दुल गफ्फार खान का पोर्ट्रेट शैली का मूर्तिशिल्प भी महत्वपूर्ण है। अंग्रेजों के खिलाफ देशव्यापी असहयोग आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने वाले अन्य कलाकारों में भवेशचंद्र सान्याल भी थे जो सन्1929 में हुए लाहौर कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने कलकत्ता से गए थे।

लाहौर में सान्याल को लाला लाजपत राय की प्रतिमा बनाने का काम सौंपा गया था। लाहौर उन्हें इतना पसंद आया कि वे वहीं रह गए। आजादी के बाद देश का बंटवारा हुआ और उन्हें लाहौर को अलविदा कहकर दिल्ली लौटना पड़ा।

शताब्दी के पूर्वार्द्ध में राष्ट्रीय आंदोलन ने यामिनी राय और नंन्दलाल बसु जैसे दो महान कलाकार भारत में पैदा किए। वे दोनों एक दूसरे महान कलाकार अवनींद्र नाथ ठाकुर के शिष्यों में थे।

यामिनी राय और नंदलाल बसु उस कला आंदोलन की देन थे जो देशभक्त की तरह सोचता, समझता और काम करने की इच्छा से प्रेरित था।

नंदलाल बसु की दृष्टि उनको महात्मा गांधी के बहुत निकट लाई। कहा जाता है कि महात्मा गांधी के संपर्क में आने के बाद नंदलाल बसु की कला में एक नया मोड़ आया। राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत बसु 'असहयोग आंदोलन', 'नमक-कर विरोध आंदोलन' आदि में सक्रिय भूमिका में थे।

आजादी की लड़ाई के दौरान पारंपरिक और राष्ट्रीय अवधारणाओं के मेल से जो आधुनिक अवधारणाएं संकल्पित हुई थीं, उनका प्रभाव तत्कालीन कलाकारों की कला में आ रहा था। हाशिए पर रख छोड़ी गई स्त्रियों की क्षमता और शक्ति को गांधी जी ने पहचाना और आजादी की लड़ाई में उसका सदुपयोग किया।

नंदलाल बसु के हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन में बनाए एक विशेष पोस्टर श्रृंखला में औरत की आध्यात्मिक शक्तियां चित्रित हुई थीं।

दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद गांधी 1915 में कुछ समय के लिए शांति निकेतन में ठहरे थे जहां उनकी भेंट रवींद्रनाथ टैगोर से हुई थी। 'मैं ऐसा साहित्य और ऐसी कला चाहता हूं जिसमें करोड़ों लोगों से संवाद की संभावना हो।' यह महात्मा गांधी का कला दर्शन था। नंद लाल बसु की कला की सारी प्रेरणा भारतीय संवेदना की प्रतीक थी। 1936 में महात्मा गांधी अपने विचारों को फलितार्थ देखना चाहते थे। इसलिए अखिल भारतीय कांग्रेस के अधिवेशन में ग्रामीण कला और क्राफ्ट की एक कला प्रदर्शनी लगवाई गई थी। परिकल्पना गांधी की थी और नंदलाल बसु ने उसे साकार किया था। महात्मा गांधी ने उस अधिवेशन के पहले नंदलाल बसु को सेवाग्राम में बुलवाया और अपना दृष्टिकोण समझाया।

हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन में भी इसी प्रकार की प्रदर्शनी की रचना हुई थी। दोनों ही जगहों पर गांधीवादी कला दृष्टि अभिव्यक्त हुई। दुर्भाग्यपूर्ण बात यह है कि उन प्रदर्शनियों की कोई निशानी बची नहीं है।

कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में नंदलाल बसु और यामिनी राय, दोनों ने मिलकर कुछ म्यूरल बनाए थे। यामिनी राय उन दिनों बंगाल के पटुआ लोक परंपरा में काम कर रहे थे। इसके भी कोई अवशेष नहीं बचे हैं।

महात्मा गांधी के कहने पर गुरुदासपुर (पंजाब) के रहने वाले चित्रकार सोभा सिंह दिल्ली छोड़कर हिमाचल प्रदेश की अंद्रेटा में जाकर बसे। वहां कांगड़ा घाटी के सौंदर्य को अपने चित्रों में उतारते रहे।

'अमर म्यूजियम' जम्मू में उनकी पंद्रह कलाकृतियां रखी हुई हैं। बंगाल के प्रसिद्ध मूर्तिशिल्पी राम किंकर बैंज भी अपनी कला में भारतीय मिथकों के माध्यम से राष्ट्रीय और सांस्कृतिक एकता की झांकी दिखाते थे। दूसरे और तीसरे दशकों में नंदलाल बसु और बंगाल स्कूल के अनेक कलाकारों को गांधीवादी अवधारणाएं प्रिय रहीं।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ब्रिटिश कला शैली के विरोध में अवनींद्र नाथ टैगोर के नेतृत्व में राष्ट्रीय शैली का एक कला आंदोलन बंगाल स्कूल के नाम से शुरू हुआ। बंगाल-स्कूल के कलाकारों की जड़ें भारतीयता में थीं। बंगाल का विनाशकारी सूखा हो, युद्ध हो, ध्वंस हो, साम्प्रदायिक दंगे हों, भूख हो, आजादी की लड़ाई हो, देश का बंटवारा हो, विस्थापितों की समस्याएं हों, सभी उनकी कला का विषय बने। ❑ ❑

शहीद स्मारक, पटना — मूर्तिशिल्पी : देवी प्रसाद राय चौधरी

स्वतंत्रता-संग्राम और मुसलमान

अंग्रेजों को थर्रा देने वाला आन्दोलन 'रेशमी रूमाल'

❍ सैयद इख़्तियार जाफ़री

बहुत कम लोग जानते हैं कि भारत के स्वतंत्रता संग्राम में अंग्रेजों के अधीन भारत से अलग काबुल (अफगानिस्तान) में आजादी के कुछ दीवानों ने 1915 में एक सरकार का गठन किया था। इस सरकार के अध्यक्ष या राष्ट्रपति राजा महेन्द्र प्रताप सिंह और प्रधानमंत्री प्रोफेसर बरकतुल्ला भोपाली थे। यह हुकूमत 'रेशमी रूमाल आन्दोलन' के अन्तर्गत वजूद में आई थी।

'रेशमी रूमाल' के सिलसिले में कई तरह की बातें या कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। यह रूमाल देवबन्द के मशहूर क्रान्तिकारी मौलाना महमूदुल हसन ने अपनी क्रान्तिकारी पार्टी (जमात) के विश्वस्त और आजादी के दीवाने क्रान्तिकारियों को दिये थे। उनके जिम्में अंग्रेजों के खिलाफ एक शक्तिशाली बगावत करने की जिम्मेदारी थी। इसके लिये एक विशेष दिन और समय निश्चित था। लेकिन समय से पूर्व यह रहस्य उजागर हो गया। यह रूमाल एक विशेष प्रकार से बने हुए थे और इसके कुछ धागों को आगे-पीछे सरकाया जाता तो मौलाना महमूदुल हसन का हस्ताक्षर उभर आता था।

इस प्रकार बातें कुछ भी रही हों,लेकिन 'रेशमी रूमाल आन्दोलन' अंग्रेजों को जबरदस्ती हिंसक तरीकों से देश से निकालने की एक जबरदस्त कोशिश थी। यह गुप्त और अण्डरग्राउण्ड चलने वाला आन्दोलन अंग्रेजों की होशियारी और तेजरफ्तार की बदौलत समाप्त हो गया। प्रथम विश्व युद्ध (1914-18) के दौरान पूरा विश्व धुरी राष्ट्र और मित्र राष्ट्र, दो धड़ों में विभाजित हो गया था। स्वतन्त्रता संग्राम की अग्रिम पंक्ति के इन हथियारबन्द सेनानियों ने यह मंसूबा बनाया कि अंग्रेज विरोधी धड़े को अपना साथी बनाकर अंग्रेज-भारत पर आक्रमण के लिये उभारा जाये और ठीक निश्चित समय पर बगावत कर दी जाये। विश्व युद्ध में उलझा हुआ अंग्रेज समुदाय दोनों ओर के आक्रमणों को सहन नहीं कर सकेगा और हिन्दुस्तान की आजादी का रास्ता आसान हो जायेगा। इस सम्बन्ध में जानकारियों और पत्रो के आदान-प्रदान के लिये वह रास्ता इख़्तियार किया गया जो अत्यधिक खुफिया और दूसरों की समझ में न आने वाला था। यह एक रेशमी रूमाल था, जिसमें 'कोड लैंग्वेज' सांकेतिक भाषा में खुफिया जानकारी और निर्देश भेजे जाते थे। इस आन्दोलन के अन्तर्गत देश के युवा स्वतंत्रता सेनानियों को अफगानिस्तान के रास्ते तुर्की और जर्मनी भेजा जाता था, जहां उन्हें सैन्य व खुफिया प्रशिक्षण दिया जाता था और इसके लिये देशप्रेमियों और भारत-भक्तों से आर्थिक सहायता ली जाती थी।

इस आन्दोलन के बुनियादी संस्थापक और संचालक मौलाना महमूदुल हसन देवबन्दी, मौलाना उबैदुल्ला सिन्धी, प्रोफेसर बरकतुल्ला भोपाली और राजा

चित्र : दुर्गेश पाण्डेय
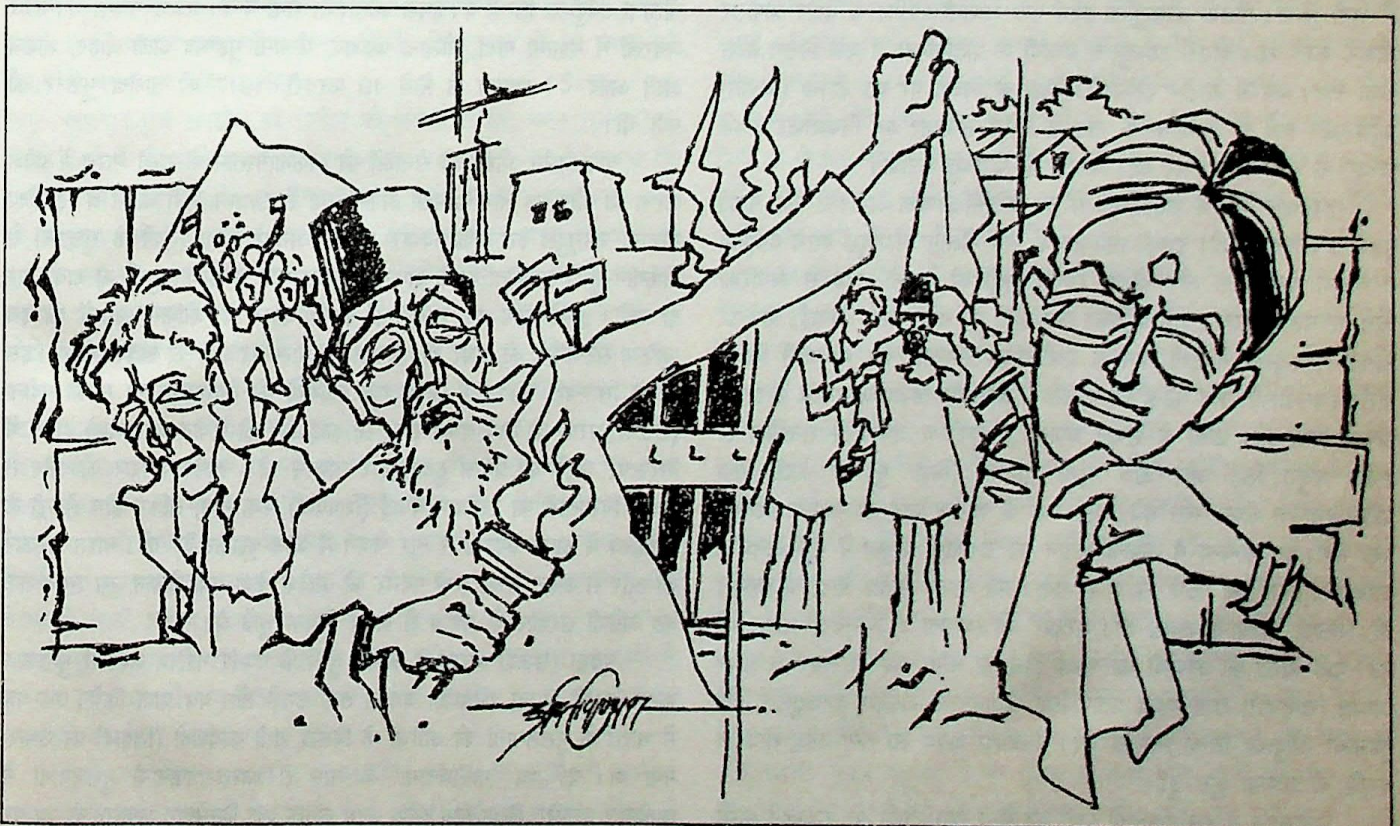
महेन्द्र प्रताप सिंह आदि थे। इन लोगों ने अफगानिस्तान की राजधानी काबुल में एक 'स्वतंत्रता संग्राम पार्टी '(इंकलाबी जमात) कायम कर ली थी, जो कि 1905 के पश्चात सदैव अपनी रणनीति पर अमल करती रही। इसका आशय अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समस्त राष्ट्रों को भारत की स्वतंत्रता के हक में तैयार करना और तुर्की की सहायता करना था ताकि जर्मन और तुर्की सेनाएं भारत पर आक्रमण करें तो अन्य राष्ट्र या तो उनकी हिमायत करें या फिर तटस्थ रहें। इस सम्बन्ध में एक प्रतिनिधि मण्डल 1905 और 1908 में मौलाना मकबूलुर्रहमान सरहदी और शौकत अली के प्रतिनिधित्व में चीन और बर्मा (म्याँमार) भेजा गया । इसमें आठ व्यक्ति थे। इन्होनें दिखावे के लिये धार्मिक लाइन पर काम करते हुए चीन में 'सीरत कमेटी' के नाम से एक संस्था स्थापित करके एक मासिक पत्रिका 'अलयकीन' जारी करके चीनी और उर्दू भाषा में लोगों को अपना हमनवा (सहयोगी) बनाना शुरू किया और काफी सफल रहे।

यही प्रतिनिधिमण्डल 1909 में चीन से बर्मा (अब म्याँमार) पहुँचा और वहाँ 'इंसानी बिरादरी' के नाम से एक संस्था स्थापित की। खर्च चलाने के लिये एक दवाखाना (क्लीनिक) खोला, जिसमें मौलाना मकबूल यूनानी और मिस्टर शौकत अली अंग्रेजी दवाओं से इलाज करते थे। बर्मा जाते हुए इन लोगों ने अपना औषधालय बेचकर यात्रा का खर्च निकाला। बर्मा में खर्च चलाने के लिए इन्होंने कपड़े का व्यापार किया। 1916 में आन्दोलन की नाकामी के बाद शौकत अली हिन्दुस्तान वापस आये।

पाँच लोगों का एक प्रतिनिधिमण्डल प्रोफेसर बरकतुल्ला भोपाली के प्रतिनिधित्व में जापान पहुँचा। वहां उन्होंने एक दल 'दि इस्लामिक फ्रेटरनिटी' के नाम से बनाया और इसी नाम से एक दैनिक समाचार पत्र जापानी और अंग्रेजी भाषाओं में जारी किया। मौलवी बरकतुल्ला स्वयं एक जापानी कॉलेज में बतौर प्रोफेसर नौकरी करते रहे। चौधरी रहमतुल्ला पंजाबी के प्रतिनिधित्व में एक मिशन फ्रांस भेजा गया। बाद में सेन्ट्रल कौंसिल ऑफिस के निर्देश पर वह टोक्यो (जापान) पहुँचे और वहाँ से 'इंकलाब' के नाम से दैनिक समाचार पत्र निकालकर अपने विचारों से वहाँ की सरकार और जनता को परिचित कराया।

हरदयाल सिंह के प्रतिनिधित्व में एक प्रतिनिधिमण्डल अमेरिका भेजा गया। इसमें 6 व्यक्ति थे और इसकी सहायता के लिये मौलाना महमूदुल हसन देवबन्दी ने मौलवी बरकतुल्ला और चौधरी रहमत अली को अपनी जगह से अमेरिका जाने का मशवरा दिया। वहाँ पहुँचकर उन लोगों ने 'गदर पार्टी ' बनाई। प्रोफेसर मौलवी बरकतुल्ला ने इसी नाम से एक दैनिक समाचार पत्र भी जारी किया। बर्लिन (जर्मनी) में राजा महेन्द्र प्रताप सिंह ने तीन वर्ष रहकर जबरदस्त कारनामा अंजाम दिया और उन्हीं के सफल प्रयासों से तुर्की व जर्मनी में समझौता हो सका। मथुरा सिंह और डॉ० खुशी मुहम्मद (मिर्जा मुहम्मद अली) एक प्रतिनिधिमण्डल लेकर रूस गये। वहाँ रूस के शासक जार को अपना सहयोगी बना सके। इस सम्बन्ध में अफगानिस्तान की राजधानी काबुल में एक अन्तरिम अस्थाई सरकार का गठन भी किया गया। यह पहली स्वतंत्र भारतीय सरकार थी, जिसकी राजधानी काबुल थी। सरकार की स्थापना 1 दिसम्बर, 1915 को हुई। यही भारत की आजादी का पहला दिन भी माना गया। सरकार के प्रथम अध्यक्ष (राष्ट्रपति) राजा महेन्द्र प्रताप सिंह, प्रधानमन्त्री प्रोफेसर बरकतुल्ला और गृहमन्त्री उबैदुल्ला सिन्धी नियुक्त हुए। बाकायदा शपथ ली गयी और संविधान बनाने की प्रक्रिया शुरू हुई।

हिन्दुस्तान में इस इंकलाबी पार्टी की सैन्य गतिविधियों का संचालन करने और आन्दोलन को सुदृढ़ बनाने के लिए देश के विभिन्न भागों में स्वयंसेवकों व सैनिकों की भर्ती के लिये केन्द्र स्थापित किये गये थे। पानीपत (हरियाणा), रान्देर (गुजरात), लाहौर, दीनपुर (भावलपुर-पंजाब) करांची, सिन्ध, जंग जई (अफगानिस्तान-सरहद), आसाम और बंगाल में यह केन्द्र बड़ी खुफिया और शक्तिशाली तरीके से चलाये गये। उत्तर प्रदेश में देवबन्द, मुजफ्फर नगर, आजमगढ़, लखनऊ आदि स्थानों को सब डिवीजनल ऑफिस बनाया गया। सी. आई.डी. विभाग में पार्टी के कुछ भरोसेमन्द लोगों को मुलाजिम करा दिया गया था, जो एक तरफ तो विभाग की खुफिया खबरें और गतिविधियाँ पार्टी को उपलब्ध कराते, दूसरी ओर समझदार व देशभक्त सरकारी मुलाजिमों व फौजियों को समझाकर अपने साथ मिलाते।

देश के बाहर अंग्रेज विरोधी स्थानों विशेषतः तुर्की, रूस, मदीना (सऊदी अरब), इस्तंबूल, बर्लिन (जर्मनी), अंकारा और कुस्तुन्तुनिया (तुर्की) में पार्टी के डिवीजनल कार्यालय स्थापित किये गये। उन सबका हैडक्वार्टर काबुल (अफगानिस्तान) में था। कार्यक्रम के अनुसार जर्मनी व तुर्की सेनाओं को काबुल के रास्ते स्वतन्त्र कबाइल (अफगानों) को साथ लेकर एक तरफ कलात व मकरान की ओर से करांची पर मोर्चा बनाना था। दूसरी ओर वह खैबरदर्रे के रास्ते मुहन्द व सऊदी कबीलों के साथ पेशावर पर मोर्चा जमाती, तीसरा मोर्चा गरजली और कान्धार के रास्ते से केटा (पाकिस्तान) में खुलता, चौथा मोर्चा पर्वतीय श्रंखला हिन्दुकुश के रास्ते से होते हुए ओगी नामक स्थान पर खोला जाना था। ठीक इसी दिन और समय पर सम्पूर्ण भारत में एक साथ बगावत की पताका बुलन्द करनी थी। इसके लिये एक 'ईश्वरीय सेना' (खुदाई फौज) गठित की गयी थी। इसके सुप्रीम कमाण्डर स्वयं मौलाना महमूदुल हसन थे। काबुल में इसके सेनापति मौलाना उबैदुल्ला सिन्धी थे। इनके अतिरिक्त सेना में 11 फील्ड मार्शल थे। मेजर जनरलों में महात्मा गांधी, मौलाना आजाद, मौलाना मुहम्मद अली जौहर, शौकत अली आदि थे। बगावत के लिये 19 फरवरी, 1917 की तारीख मुकर्रर की गयी थी।

चूंकि जर्मन और तुर्की सेनाओं को अफगानिस्तान के रास्ते भारत में प्रवेश करना था और यह लोग खामखाँ अफगानियों से उलझना नहीं चाहते थे। इसलिए मौलाना महमूदुल हसन का विचार था कि अनवर पाशा (तुर्की के सुल्तान) से अफगान-तुर्की समझौता करके अफगान सरकार को समझाकर तुर्की को खबर कर दी जाये। इसके लिये वह स्वयं तुर्की जाना चाहते थे। लेकिन अंग्रेजों को इन खुफिया सरगर्मियों की खबर थी, मौलाना के गिरफ्तार होने का खतरा भी था। इस कारण सितम्बर, 1915 में अपने कुछ साथियों को लेकर मौलाना मक्का-मदीना (सऊदी अरब) के लिये तैयार हुए। सी.आई.डी. की रिपोर्ट पर उनको देहली में गिरफ्तार करने का प्रयास हुआ मगर नाकाम रहे। गवर्नर जनरल की ओर से उनकी गिरफ्तारी का टेलीग्राम बम्बई (शिपपोर्ट) भेजा गया, लेकिन होम सेक्रेट्री के कार्यालय में अपने आदमी ने तार भेजने में जान-बूझकर देर की। भारत सरकार की ओर से अदन सरकार के गवर्नर को आदेश भेजा गया लेकिन उस समय तक वह अंग्रेजी सरकार के प्रभाव से बाहर निकल चुके थे।

मक्का (सऊदी अरब) में आपने तुर्की के गवर्नर गालिब पाशा से मुलाकात करके उनको अपना हमख्याल बनाया तथा उनसे तीन पत्र प्राप्त किये। एक पत्र में भारत के मुसलमानों को अंग्रेजों के विरुद्ध जंगी कार्यवाही (जिहाद) पर उभारा गया था। यह पत्र 'गालिबनामा' के नाम से भारत-अफगानी मुसलमानों में छपवाकर प्रसारित किया गया ताकि आम जनता एक जिम्मेदार अफसर के पत्र पर

निश्चित हो जाये। दूसरा पत्र मदीना के गवर्नर बसरी पाशा के नाम था। जिसमें गवर्नर को निर्देश दिया गया था कि मौलाना महमूदुल हसन को पूरी इज्जत और हिफाजत के साथ तुर्की की राजधानी इस्ताम्बूल भेज दिया जाये। तीसरा पत्र तुर्की के अनवर पाशा के नाम था कि मौलाना की बातों पर हमदर्दी से गौर करके इनकी बात मानी जाये और इनकी मांगों को पूरा करने की कार्रवाई तेजी से करने के निर्देश दिये जायें। मदीना में उनकी मुलाकात तुर्की के युद्धमन्त्री अनवर पाशा और शाम (सीनिया) के गवर्नर जमाल पाशा से हुई। अनवर पाशा ने मौलाना को एक पत्र दिया जिसमें भारतीय मुसलमानों को जेहाद पर उभारने के साथ ही तुर्की की समस्त जनता और सरकारी कर्मचारियों से आह्वान किया गया था कि अपने मित्र भारत देश को स्वतंत्र कराने के लिये सरगर्म मौलाना महमूदुल हसन और उनकी इंकलाबी कौंसिल की हर प्रकार की भरपूर सहायता की जाये। इसके अलावा एक पत्र में तुर्की और शेखुलहिन्द मौलाना महमूदुल हसन देवबन्दी की इंकलाबी पार्टी के बीच समझौता था। तीसरे पत्र में तुर्की और अफगानिस्तान सरकार के बीच समझौते की शर्तें और दिशानिर्देश आदि थे। इसमें तुर्की की ओर से तो समझौते को अन्तिम रूप से मान लिया गया था, बस उस पर अफगान सरकार की रजामन्दी हासिल करना शेष रह गया था। ताकि तुर्की हमले के लिये तैयार हो जाये।

मक्का में हज करने के तुरन्त बाद भारतीय मुसलमानों को अंग्रेज विरोधी जेहाद वाला खत मौलाना ने मौलाना कासिम नानौतवी के भाई मौलाना मुहम्मद मियाँ के हाथ भारत के रास्ते अफगानिस्तान भिजवा दिया। यह पत्र लकड़ी की एक छड़ी में बन्द था और मौलाना मुहम्मद मियाँ ने अपना नाम बदलकर मुहम्मद मंसूर रख लिया था। हुलिया भी बदल लिया था। इस तरह सी.आई.डी. की पूरी कोशिश के बावजूद यह आसानी से बागिस्तान (अफगान) पहुँच गया। मौलाना अबुल कलाम आजाद द्वारा गठित जमात (पार्टी) 'हिज्बुल्लाह' ने इस फतवा को फैलाने में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया।

अफगान-तुर्क समझौते को सागौन की लकड़ी के एक बक्स (सन्दूक) के निचले तख्ते में दो पतले तख्तों के दरम्यान इस प्रकार फिट कर दिया गया कि दोनों एक ही प्रतीत होते थे। इसे लेकर मौलाना हादीहसन और हाजी शाह बख्श को हिन्दुस्तान के लिये रवाना किया गया, ताकि मुजफ्फर नगर (उ०प्र०) के मुहम्मद नवी को पहुँचा दिया जाये और उन्हें निर्देश दिया गया था कि वह इन कागजों को हाजी नूरूल हसन देहलवी के ही हवाले करें, जो सभी कागजों की फोटो तैयार कराके सभी शाखाओं और अफगान सरकार को पहुँचा देंगे।

लेकिन इन दस्तावेजों का मदीना से भारत होते हुए अफगानिस्तान पहुँचना इतना आसान न था। सी.आई.डी. को इन कार्रवाईयों की भनक लग चुकी थी। जहाज के मुम्बई बन्दरगाह पर पहुँचते ही खुफिया विभाग ने जहाज पर छापा मारा। कुछ हाथ न आने पर मौलाना हादी हसन और खलील अहमद को गिरफ्तार करके नैनीताल जेल भेज दिया गया। मुजफ्फर नगर में खुफिया पुलिस ने मौलाना मुहम्मद नबी साहब के घर पर छापा मारा। हाजी नूरूलहसन और देहली में मिर्जा अहमद फोटोग्राफर की दूकान पर भी छापा मारा गया। इसके बावजूद पुलिस कुछ भी बरामद करने में नाकाम रही। यह दस्तावेज इन हाथों से गुजरता रहा। अन्त में जब मौलाना हादी हसन जेल से रिहा हुए तो वह स्वयं इन दस्तावेजों को लेकर अफगानिस्तान गये।

तुर्की-अफगानिस्तान समझौते की दस्तावेज जब काबुल पहुँची, तो अफगान सम्राट अमीर हबीबुल्लाह खाँ ने मंत्रियों, सैन्य अधिकारियों और स्वतंत्र कबीलों के सरदारों की मीटिंग में यह मामला पेश किया। हिन्दुस्तानी क्रान्तिकारी पार्टी की जानिब से मौलाना उबैदुल्ला सिन्धी ने वकालत की। बहुत बहस और खींचतान के बाद मीटिंग में युद्ध की तैयारी के लिये प्रस्ताव पारित हो गया। यह तय पाया गया कि जर्मन, तुर्की सेनाएँ कुछ चुनिंदा रास्तों से ही भारत पर आक्रमण करेंगी। अफगान सरकार स्पष्ट रूप से इस जंग में शामिल नहीं होगी। लेकिन अवाम और कुछ सेना पर (जो स्वयं भाग लेना चाहें) कोई पाबन्दी नहीं होगी और अफगान सरकार यह कहकर अलग हो जायेगी कि कबायली और अवाम सरकार से बगावत कर रहे हैं।

दूसरा कदम उठाने से पूर्व इसकी सूचना मौलाना महमूदुल हसन को सऊदी अरब में देना आवश्यक थी। इसके लिये ही अफगान सरकार के उपाध्यक्ष (नायब अमीर) नसरूल्ला खाँ और मौलाना उबैदुल्ला सिन्धी ने पारित स्कीम के विवरण भेजने के लिये ही 'रेशमी खत' लिखा, जिसके नाम पर यह क्रान्तिकारी आन्दोलन 'रेशमी रूमाल आन्दोलन' बन गया। मौलाना हुसैन अहमद मदनी (मौलाना महमूद के परम शिष्य, भक्त और आन्दोलन के प्रमुख) ने इस रेशमी रूमाल का परिचय कराते हुये लिखा है : ''मौलाना सिन्धी और नसरूल्ला खाँ ने मिलकर एक माहिर कारीगर से एक रेशमी रूमाल इस प्रकार बनवाया कि इसकी बुनाई में समझौते की पूरी इबारत और भारत पर आक्रमण की तारीख तक की मंजूरी की इबारत बन गई। यह इबारत अरबी भाषा में थी। अमीर हबीबुल्ला, उनके तीनों बेटों- अमानुल्ला खाँ, नसरूल्ला खाँ और इनायतउल्ला खाँ के हस्ताक्षर एक बार बुनने में आ गये थे। फिर रूमाल के ऊपर उन चारों के हस्ताक्षर पीली रोशनाई से करा दिये गये थे। यह रूमाल भी पीले रंग का था जिसकी लम्बाई एक गज और चौड़ाई भी इतनी ही थी।''

इस विशिष्ट समझौते के दस्तावेज के अतिरिक्त मौलाना सिन्धी का एक रेशमी पत्र शेख अब्दुल रहीम (आचार्य कृपलानी के सगे भाई) के नाम मदीना पहुँचाने के लिये था। एक पत्र और पत्र में दोनों सरकारों के दरम्यान होने वाली दूसरी सूचनायें और आवश्यक जानकारियाँ थीं। एक तीसरा पत्र मौलाना मुहम्मद मियाँ का मौलाना महमूद के नाम था जिसमें गालिबनामा की तकसीम से सम्बन्धित रिपोर्ट थी (यह तीनों रेशमी पत्र या रूमाल अपनी असली हालत पर इण्डिया आफिस लाइब्रेरी, लन्दन में सुरक्षित हैं)।

इन तमाम पत्रों को अफगानिस्तान से हिन्दुस्तान के रास्ते सऊदी अरब भेजा जाना था। इसके लिये एक कपड़ों के व्यापारी शेख अब्दुल हक को तैयार किया गया। यह अफगानिस्तान-हिन्दुस्तान के बीच कपड़े की लम्बी तिजारत करते थे। इनके साथ ही मौलाना उबैदुल्ला सिन्धी के भतीजे मुहम्मद अली भी थे, जिनके पास कुंवर महेन्द्र प्रताप सिंह का एक पत्र वृन्दावन (मथुरा, उ०प्र०) के एक मालदार मगर उनके लिये अपरिचित व्यक्ति के लिये आर्थिक सहायता हेतु था। मुहम्मद अली अपने मिशन में कामयाब रहे और नकदी व सोना लेकर सकुशल काबुल पहुँच गये। शेख अब्दुल हक ने इसी ढंग, रंग और साइज के पांच दर्जन रूमाल खरीदे और उन्हीं के दरम्यान उसको रखकर भारत की यात्रा आरम्भ की। मगर पेशावर में पुलिस की बार-बार की जाँच पड़ताल से तंग आकर उन्होंने यह रूमाल हक नवाज खाँ के हवाले कर दिया। उन्होंने यह रूमाल दूसरे दिन दीनपुर (भावलपुर-पाकिस्तान) के ख्वाजा गुलाम मुहम्मद के पास पहुँचा दिया, जिन्होंने शेख अब्दुल रहीम-हैदराबाद (सिन्ध) तक पहुँचाया। इसी दरम्यान हक नवाज खाँ और ख्वाजा गुलाम मुहम्मद के घर पुलिस ने छापा मारा। दोनों गिरफ्तार भी हो गये। दोनों पर सख्ती भी की गयी लेकिन उन्होंने कोई राज नहीं खोला। शेख

अब्दुल रहीम खत लेकर घर से निकलने ही वाले थे कि पुलिस ने रात के समय उनके घर की घेराबन्दी कर ली और दीवार फाँदकर घर के अन्दर दाखिल हो गई। शेख घबराकर फरार हो गये और फिर उनका कहीं सुराग न मिल सका। लेकिन यह पत्र अंग्रेजों के हाथ लग गये और इंकलाबी बगावत का यह लम्बा और मेहनतों से तैयार किया गया आन्दोलन बिखरकर रह गया। कामयाबी के करीब पहुँचकर पूरी मेहनत एक लम्हे में बरबाद होकर रह गयी । तमाम रहस्यों से पर्दा उठ गया। तमाम शाखायें जो अन्तिम तैयारियों में थीं और आक्रमण या बगावत के 'लास्ट कॉशन' की प्रतीक्षा में थीं, लेकिन बना बनाया खेल समय से पहले ही बिखर गया।

इस आन्दोलन से पर्दा उठने पर ब्रिटिश गवर्नमेन्ट के पैरों तले से जमीन खिसक गयी, बड़े पैमाने पर तलाशियाँ हुईं, छापे मारे गये और गिरफ्तारियाँ हुईं। पहले गिरफ्तार होने वालों में मौलवी अहमद अली, अब्दुल्ला और अहमद चकौली थे। अब्दुल बारी और शुजाउल्ला, जो तुर्की और रूस के मिशनों पर थे, रूसी सरकार द्वारा गिरफ्तार करके ब्रिटिश सरकार के हवाले कर दिये गये। यू०पी० में मौलवी मुर्तजा, सैयद हसन, मुहम्मद मुबीन और मौलवी मसूद गिरफ्तार किये गये और उनसे सख्त किस्म की पूछताछ हुई। काबुल में रह रहे इंकलाबी पार्टी के छोटे-बड़े तमाम लीडरों को ब्रिटिश सरकार के इशारे पर अफगान सरकार ने गिरफ्तार कर लिया। मौलाना उबैदुल्ला सिन्धी एक मकान में नजरबन्द कर दिये गये। जहाँ वह अमीन हबीबुल्ला के कत्ल तक कैद रहे। मौलाना मुहम्मद मियाँ ने काबुल छोड़कर बागिस्तान में रहना शुरू कर दिया। 59 लोगों के विरुद्ध साजिश केस चलाया गया, जिसमें मौलाना शेखुल हिन्द महमूदुल हसन देवबन्दी बगावत के मुख्य संचालक, मौलाना हुसैन अहमद मदनी, मौलाना उबैदुल्ला सिन्धी, मौलाना अबुल कलाम आजाद, मौलाना मुहम्मद मियाँ और कुँवर महेन्द्र प्रताप सिंह, प्रोफेसर बरकतुल्ला, अब्दुलबारी, शुजाउल्ला, मौलाना हसरत मोहानी के नाम विशेष तौर पर उल्लेखनीय हैं। इन लोगों को भारत आजाद कराने, अंग्रेजों के विरुद्ध षड़यन्त्र रचने के इल्जाम में सख्ततरीन सजायें दी गयीं। लेकिन ज्यादा सख्त सजा पाने वालों में मौलाना महमूदुल हसन, मौलाना हुसैन अहमद मदनी और उनके कुछ अति विशिष्ट सहयोगी थे, जिनको हिजाज (सऊदी अरब) के सुल्तान (सम्राट) ने अंग्रेजों के इशारे पर गिरफ्तार किया।

भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के आन्दोलनों में यह आन्दोलन यद्यपि सर्वाधिक अहम और सबसे अलग था, जो बड़ी सूझ-बूझ और हिम्मत के साथ चलाया गया लेकिन रेशमी रूमाल का रहस्य समय से पूर्व ही खुल जाने, आन्दोलन के सभी संचालकों के एकमुश्त गिरफ्तार होने और पूरा आन्दोलन अंग्रेजों के सामने आ जाने से यह पूरी तरह विफल भले ही हो गया मगर बाद में जब इसके दामन को फैलाया गया तो खिलाफत आन्दोलन, असहयोग आन्दोलन आदि अनेक आन्दोलन इसी आन्दोलन के संचालकों के हाथों चलाये गये। यहाँ तक कि भारत से अंग्रेजों को निकालकर ही दम लिया।

आन्दोलन की नाकामी के कई कारण रहे। रहस्य उजागर होने का स्पष्ट कारण तो यह था कि शेख अब्दुल हक ने पुलिस की पूछताछ से परेशान होकर यह पत्र हक नवाज खाँ के हवाले कर दिये और अपने पुराने मालिक खान बहादुर रब नवाज खाँ से मिलने लाहौर चले गये, जहाँ उन्होंने अपने सीधेपन के होते हुये यह रहस्य उन्हें बता दिया। खान बहादुर उस समय के टोडियों में से थे और अंग्रेजों के वफादार। यह राज़ जानने के बाद उन्होंने अब्दुल हक को मुलतान डिवीजन के कमिश्नर के सामने पेश कर दिया। इससे सी.आई.डी. हरकत में आ गई और फिर सारी प्लानिंग फेल होती चली गई।

इब्राहिम फिक्री और तुगरा बेग ने शेख अब्दुल हक पर संदेह व्यक्त करते हुये यह रहस्य उजागर करने की जिम्मेदारी अमीर हबीबुल्ला पर डाली है। जिसने पार्टी को अंधेरे में रखते हुये अंग्रेजों को सारे रहस्य बता दिये। आन्दोलन की नाकामी का एक कारण यह भी था कि यह आन्दोलन बुनियादी तौर पर आतंकवादी लाइनों पर खुफिया काम कर रहा था। पूरा देश न तो इसके साथ था और न किसी को इसके बारे में जानकारी थी । जबकि देश का अहिंसावादी और नरमदिल वर्ग राजनीतिक लाभ के लिये और कुछ अंग्रेजों के झूठे वादों पर विश्वास करके ब्रिटिश सरकार की हिमायत कर रहा था। स्वयं भारतीय संस्कृति अहिंसावादी और समाज शान्ति प्रेमी है। इसलिये अभी तक कोई आतंकवादी सरगर्मी कामयाब नहीं हो सकी।

नाकामी का तीसरा कारण यह था कि इस आन्दोलन के सूत्र विदेशों में दूर-दराज क्षेत्रों तक में फैले हुये थे। इसकी बागडोर विभिन्न प्रकार की विचारधारा रखने वालों के हाथों में थी, उनमें से कई के उद्देश्य भी अलग-अलग थे। आपसी तालमेल कम था। केन्द्र से सभी शाखाओं और व्यक्तियों पर कन्ट्रोल भी न हो सकता था, प्रचार-प्रसार और संचार माध्यम भी सरल और व्यापक नहीं थे। इसीलिये रेशमी रूमाल का पेचीदा रास्ता इख्तियार किया गया। इसकी कोड भाषा तीन-चार व्यक्तियों के अलावा कोई और नहीं समझ सकता था। यह रास्ता पेचीदा और मुश्किल अवश्य था लेकिन बेहद खुफिया भी था।

आन्दोलन की नाकामी का चौथा कारण इस आन्दोलन का इस्लामी रास्तों के अनुसार चलना भी था। बल्कि यही मुख्य कारण भी था। इस आन्दोलन की बुनियाद और उद्देश्य यद्यपि शुद्ध राष्ट्रीय हित के थे और आन्दोलन के मूल में अंग्रेजी सरकार से भारत को येन-केन-प्रकारेण आजाद करना ही था परन्तु इससे सम्बन्धित सभी लोग एक ही मिल्लत-ए-इस्लाम के धर्मावलम्बी थे। यद्यपि यह लोग ठोस किस्म के कौमपरस्त और राष्ट्र भावना से ओत-प्रोत थे और बाद में इसी रूप में वह सामने आये भी तथा असहयोग आन्दोलन को सफल बनाने में इनकी मुख्य भूमिका रही। मगर इसके बावजूद आम जनता और तत्कालीन नेताओं में इस आन्दोलन को मकबूलियत नहीं मिल सकी। अंग्रेजों के पिट्ठुओं और सरकार -परस्त भारतीय नेताओं का ग्रुप भी शक्तिशाली था। यह लोग स्वतन्त्रता संग्राम के रास्ते का रोड़ा भी थे।

नाकामी का मुख्य कारण यह भी था कि प्रथम विश्व युद्ध में युद्ध का पासा धुरी राष्ट्रों के विरुद्ध पलट चुका था, जिनकी हिमायत पर इस आन्दोलन का दारोमदार था। इन राष्ट्रों का ताना-बाना बिखर चुका था। टेढ़े-मेढ़े रास्तों पर चलने और संचार संपर्क के कारण लगातार देर होती जाने के कारण आन्दोलन को और अधिक नुकसान और अन्त में समाप्त हो जाना पड़ा।

इन अनेकानेक कारणों की बुनियाद पर यह आन्दोलन नाकाम हो गया, मगर इसी के अनुभवों और विचारधाराओं को केन्द्र में रखकर 1920 के बाद जो राष्ट्र स्वतंत्रता की लहर उठी और बड़े पैमाने पर उग्र--हिंसावादी और अहिंसात्मक आन्दोलन उभरे, वह सफल हुए। इन आन्दोलनों के पीछे इसी आन्दोलन की रोशनी काम कर रही थी। नाकामी के बावजूद इतिहास में इसका अपना अलग स्थान है। इसी संग्राम के सेनानियों, नेताओं और मुजाहिदों ने ही बाद में दूसरे आन्दोलन चलाये, स्वतंत्रता संग्राम को शक्तिशाली बनाया और अन्ततः अंग्रेजों को देश से निकालकर दम लिया। ❑ ❑

सरदार भगत सिंह के बयान, पत्र और परिपत्र

[असेम्बली बम केस की सुनवाई दिल्ली के सेशन जज की अदालत में 7 मई, 1929 को प्रारंभ हुई और 6 जून, 1929 को भगतसिंह ने यह बयान दिया-]

हमने बम क्यों फेंके ?

हमारे विरुद्ध गम्भीर अपराधों के आरोप लगाए गए हैं, हम इस समय अपने आचरण का स्पष्टीकरण करना चाहते हैं।

इस सन्दर्भ में निम्न प्रश्न उठते हैं।

(1) क्या सदन में बम फेंके गए थे ? यदि ऐसा हुआ तो इसका क्या कारण था ?

(2) निम्न न्यायालय ने जिस प्रकार आरोप लगाया है, वह सही है अथवा नहीं ?

प्रथम प्रश्न के पूर्वार्द्ध के लिए हमारा उत्तर स्वीकारात्मक है, परन्तु कुछ साक्षियों ने घटना का असत्य विवरण प्रस्तुत किया है। हम बम फेंकने का दायित्व स्वीकार करते हैं। अतः हम यह अपेक्षा करते हैं कि हमारे इस वक्तव्य का सही मूल्यांकन किया जा सकेगा। उदाहरणार्थ, हम इस बात की ओर संकेत करना चाहते हैं कि सार्जेण्ट टेरी का यह कथन जान-बूझकर बोला गया असत्य है कि उन्होंने हममें से एक के हाथ से पिस्तौल छीनी। वस्तुतः जिस समय हमने आत्मसमर्पण किया, उस समय हम दोनों में से किसी के पास पिस्तौल नहीं थी। जिन साथियों ने यह कहा कि उन्होंने हमें बम फेंकते हुए देखा, उन्हें भी बेसिर-पैर का झूठ बोलने में कोई झिझक नहीं आई। हमें आशा है कि जिन लोगों का ध्येय न्यायिक शुद्धता तथा निष्पक्षता की रक्षा करना है, वे इन तथ्यों से स्वयं निष्कर्ष निकालेंगे। साथ ही हम स्वीकार करते हैं कि अभी तक सरकारी पक्ष ने औचित्य की रक्षा की है तथा न्यायालय ने न्यायपूर्ण रवैया अपनाए रखा है।

प्रथम प्रश्न के उत्तरार्द्ध का उत्तर कुछ विस्तार में देना होगा, जिससे कि हम इन प्रयोजनों और परिस्थितियों को एक पूर्ण और खुले रूप में स्पष्ट कर सकें, जिनके परिणामस्वरूप वह घटना हुई है, जिसने अब ऐतिहासिक स्वरूप ले लिया है। जेल में हमारे साथ जिन पुलिस अधिकारियों ने भेंट की, उनमें से कुछ ने जब हमें यह बताया कि विचाराधीन घटना के पश्चात् दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन को सम्बोधित करते हुए लार्ड इरविन ने यह कहा है कि हम लोगों ने बम फेंककर किसी व्यक्ति पर नहीं, वरन स्वयं एक संविधान पर आक्रमण किया है, उस समय हमें तुरन्त यह आभास हुआ कि उस घटना के वास्तविक महत्त्व का सही मूल्यांकन किया गया है।

मानवमात्र के प्रति हमारा प्रेम किसी से भी कम नहीं है, अतः किसी व्यक्ति के प्रति द्वेष रखने का प्रश्न ही नहीं उठता, इसके विपरीत हमारी दृष्टि में मानव जीवन इतना अधिक पवित्र है कि उस पवित्रता का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। छद्म समाजवादी दीवान चमनलाल ने हमें जघन्य आक्रमणकारी और देश के लिए अपमानकारक बताया है, यह सत्य नहीं है। साथ ही लाहौर के समाचार पत्र 'ट्रिब्यून' तथा कुछ अन्य लोगों की यह धारणा भी असत्य है कि हम उन्मत्त हैं।

हम नम्रतापूर्वक यह दावा करते हैं कि हमने इतिहास, अपने देश की परिस्थिति तथा मानवीय आकांक्षाओं का गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया है एवं हम पाखण्ड से घृणा करते हैं।

हमारा ध्येय उस संस्था (केन्द्रीय असेम्बली) के विरुद्ध व्यावहारिक प्रतिरोध प्रकट करना था, जिसने अपने आरंभ से केवल अपनी निरुपयोगिता का ही नहीं, वरन हानि पहुंचाने की दूरगामी शक्ति का भी नग्न प्रदर्शन किया है। हमने जितना अधिक चिन्तन किया, हम उतने ही अधिक इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि इस संस्था (केन्द्रीय असेम्बली) के अस्तित्व का प्रयोजन संसार के समक्ष भारतीय दीनता और असहायता का प्रदर्शन करना है तथा यह एक अनुत्तरदायी एवं स्वेच्छाचारी शासन की, दमनकारी सत्ता की प्रतीक बन गई है।

जनता के प्रतिनिधियों की राष्ट्रीय मांग को बार-बार रद्दी की टोकरी में फेंक दिया जाता रहा है। सदन द्वारा पारित पवित्र प्रस्तावों को तथाकथित भारतीय संसद के फर्श पर निरादरपूर्वक पांवों तले कुचला जाता रहा है। दमनकारी एवं स्वेच्छाचारी कानूनों के निवारण से संबंधित प्रस्तावों की सबसे अपमानपूर्वक उपेक्षा की गई तथा निर्वाचित प्रतिनिधियों ने जिन सरकारी कानूनों और प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया, उनको भी सरकार द्वारा स्वेच्छाचारितापूर्वक स्वीकृति प्रदान की जा रही है।

संक्षेप में ईमानदारी के साथ प्रयत्न करने पर भी हमारी समझ में यह नहीं आ सका है कि ऐसी संस्था का अस्तित्व किस प्रकार न्यायसंगत माना जा सकता है, जिसकी शान-शौकत बनाए रखने के लिए भारत के करोड़ों लोगों के गाढ़े पसीने की कमाई व्यय की जाती है और इसके बाद भी जो सारहीन अभिनय और शैतानी से भरा षड़यंत्र मात्र बनकर रह गई है।

इसी प्रकार हम उन नेताओं की मनोवृत्ति के औचित्य को नहीं समझ पा रहे हैं, जो भारत की इस असहाय पराधीनता के पूर्व-नियोजित प्रदर्शन पर सार्वजनिक समय और धन नष्ट कर रहे हैं। हम इस विषय में तथा ट्रेड डिस्प्यूट विधेयक प्रस्तुत किए जाने के समय श्रमिक आन्दोलन के नेताओं की व्यापक गिरफ्तारियों पर गंभीरता से चिन्तन करते रहे हैं और जब इस विषय पर होने वाले विवाद की आंखों देखी जानकारी प्राप्त करने के लिए हम असेम्बली में आए, तो हमारी यह धारणा और भी पुष्ट हो गई कि भारत के करोड़ों मेहनतकशों को एक ऐसी संस्था से कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता, जो शोषकों की दम घोंटने वाली सत्ता और असहाय श्रमिकों की पराधीनता का एक खतरनाक स्मारक मात्र बनकर रह गई है।

अन्ततः, समूचे देश के प्रतिनिधियों को इस प्रकार अपमानित किया गया है, जिसे हम अमानवीय और बर्बर कहते हैं। साथ ही देश के करोड़ों भूखे तथा दरिद्र लोगों को उनके मौलिक अधिकारों तथा आर्थिक हित के एकमात्र साधन से वंचित कर दिया गया है।
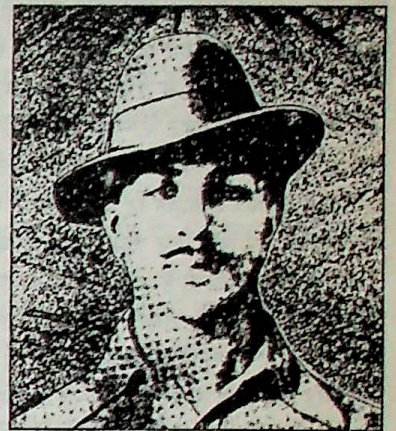
कोई भी ऐसा व्यक्ति, जिसके हृदय में मूक और पराधीन श्रमिकों की दुर्दशा के प्रति हमारे जैसी सहानुभूति है, इस दृश्य को शान्तिपूर्वक नहीं देख सकता और जिसके हृदय में उन श्रमिकों के लिए करुणा है, जिन्होंने उन शोषकों के आर्थिक ढांचे के निर्माण के लिए मौन रहकर अपना जीवन-रक्त गिराया है, जिनकी यह सरकार सबसे अधिक समर्थक है, निर्दय निर्दलन के फलस्वरूप उठने वाले आत्मा के क्रन्दन को दबा नहीं सकता। परिणामतया हमने गवर्नर जनरल की कार्यकारी परिषद् के भूतपूर्व विधि सदस्य स्वर्गीय श्री आर० एस० दास के उन शब्दों से प्रेरणा ग्रहण की, जो उन्होंने अपने पुत्र के नाम एक पत्र में लिखे थे। और जिनका तात्पर्य यह था कि इंग्लैंड को उसके दुस्वप्न से जगाने के लिए बम आवश्यक है। और हमने उन लोगों की ओर से प्रतिरोध प्रकट करने के लिए असेम्बली के फर्श पर बम फेंका, जिनके पास अपनी हृदयविदारक व्यथा की अभिव्यक्ति का कोई दूसरा मार्ग नहीं रह गया है। हमारा एकमात्र ध्येय यह था कि हम बहरों को अपनी आवाज़ सुनाएं और समय की चेतावनी उन लोगों तक पहुंचाएं, जो उनकी उपेक्षा कर रहे हैं। दूसरे लोग भी हमारी ही तरह सोच रहे हैं और यद्यपि भारतीय जाति ऊपर से एक शांत समुद्र की भाँति दिखाई दे रही है, तथापि भीतर ही भीतर एक भयंकर तूफान उफन रहा है। हमने उन लोगों को खतरे की चेतावनी दी है जो सामने आने वाली गंभीर परिस्थितियों की चिन्ता किए बिना सरपट दौड़े जा रहे हैं। हमने उस काल्पनिक अहिंसा की समाप्ति की घोषणा की है, जिसकी निरुपयोगिता के बारे में नई पीढ़ी के मन में किसी प्रकार का सन्देह नहीं बचा है। हमने ईमानदारीपूर्ण सद्भावना तथा मानव जाति के प्रति अपने प्रेम के कारण उन भयंकर खतरों के विरुद्ध चेतावनी देने के लिए मार्ग चुना है, जिनका पूर्वाभास हमें भी देश के करोड़ों लोगों की भांति स्पष्ट रूप से हुआ है।

हमने पिछले पैरा में काल्पनिक अहिंसा शब्द का प्रयोग किया है। हम इसकी व्याख्या करना चाहते हैं। हमारी दृष्टि से बल-प्रयोग उस समय अन्यायपूर्ण होता है, जब वह आक्रामक रीति से किया जाए और यह हमारी दृष्टि में हिंसा है, परन्तु जब शक्ति का उपयोग किसी विहित (समाज-सम्मत) उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाये, तो वह नैतिक दृष्टि से न्याय-संगत हो जाता है। बल-प्रयोग का पूर्ण बहिष्कार कोरी काल्पनिक भ्रांति है। इस देश में एक नया आन्दोलन उठ खड़ा हुआ है, जिसकी पूर्व सूचना हम दे चुके हैं। यह आंदोलन गुरू गोविन्दसिंह और शिवाज़ी, कमालपाशा और रज़ा खां, वाशिंगटन और गैरीबाल्डी तथा लाफायेते और लेनिन के कार्यो से प्रेरणा ग्रहण करता है।

हमें ऐसा लगा कि विदेशी सरकार और भारत के सार्वजनिक नेताओं ने इस आन्दोलन की ओर से आंखें मूंद ली हैं तथा उनके कानों में इसकी आवाज़ नहीं पड़ रही है, अतः हमें यह कर्तव्य प्रतीत हुआ कि हम ऐसे स्थान पर चेतावनी दें, जहां हमारी आवाज़ अनसुनी न रह सके।

हमने अभी तक विचाराधीन घटना के पीछे निहित प्रयोजनों की चर्चा की है; अब हम अपने प्रयोजनों की मर्यादा के बारे में भी कुछ कहना चाहते हैं।

हमारे मन में उन लोगों के प्रति कोई व्यक्तिगत द्वेष अथवा बैर नहीं था, जिनको इस घटना के दौरान मामूली चोटें आई हैं। इतना ही नहीं, असेम्बली में उपस्थित किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध हमें कोई व्यक्तिगत द्वेष नहीं था। हम तो यहां तक कह सकते हैं कि हम मानवीय जीवन को शब्दातीत रूप में पवित्र मानते हैं तथा किसी को चोट पहुंचाने के बजाय मानव जाति की सेवा के लिए हम अपने प्राण देने को तत्पर हैं। हम साम्राज्यवादी सेनाओं के उन भड़ैत सैनिकों की भांति नहीं हैं, जो हत्या करने में रस लेते हैं। इसके विपरीत हम मानव जीवन की रक्षा करने का प्रयत्न करेंगे। इसके बावजूद भी हम स्वीकार करते हैं कि हमने जानबूझकर असेम्बली भवन में बम फेंके। तथ्य स्वयं मुखर है तथा हमारा अनुरोध है कि हमारे प्रयोजनों को हमारे कार्य के परिणाम से आंका जाना चाहिए, न कि काल्पनिक परिस्थितियों तथा पूर्व मान्यताओं के आधार पर। सरकारी विशेषज्ञ द्वारा दिये गये प्रमाणों के बावजूद सत्य यह है कि हमने असेम्बली भवन में जो बम फेंके, उनसे एक खाली बेंच को मामूली क्षति पहुंची और आधा दर्जन से भी कम लोगों को मामूली खरोचें आईं। सरकार के वैज्ञानिकों ने इसे एक चमत्कार कहा है, परन्तु हमारी दृष्टि में यह पूर्णतया एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। पहली बात तो यह कि दो बम डेस्कों और बेंचों के बीच की खाली जगह में फटे, दूसरी यह कि जो लोग विस्फोट से केवल दो फुट दूर पर थे, जैसे श्री राउ, श्री शंकरराव तथा श्री जार्ज शुस्टर, उन लोगों को या तो बिल्कुल ही चोट नहीं आई या केवल कुछ खरोंचें आयीं। यदि बमों के भीतर पोटेशियम क्लोरेट और पिकरेट के प्रभावशाली तत्त्व भरे होते तो उन्होंने लकड़ी के अवरोधों को खण्डित कर दिया होता तथा विस्फोट स्थल के कई गज़ की दूरी पर बैठे बहुत-से लोग आहत हो गये होते। यदि उनके भीतर उससे भी अधिक प्रभावशाली विस्फोटक तथा विनाशकारी तत्व भरे होते, तो वे केन्द्रीय असेम्बली के अधिकांश सदस्यों की जीवनलीला ही समाप्त कर सकते थे। हम यह भी कर सकते थे कि हम उन्हें सरकारी बाक्स में फेंकते, जहां महत्त्वपूर्ण लोग बैठे थे। आखिरकार हम यह भी कर सकते थे कि उस समय अध्यक्ष-दीर्घा में बैठे हुए सर जान साइमन पर चोट करते, जिसके दुर्भाग्यपूर्ण कमीशन को देश के सभी विवेकवान लोग घृणा करते हैं, परन्तु हमारा प्रयोजन यह सब नहीं था और बमों का जिस प्रयोजन के लिए निर्माण किया गया था, उन्होंने उससे अधिक काम नहीं किया। इसमें कोई चमत्कार नहीं था, हमने जान-बूझकर यह ध्येय निश्चित किया था कि सभी लोगों का जीवन सुरक्षित रहे।

इसके पश्चात् हमने अपने कार्य के परिणामस्वरूप दण्ड प्राप्त करने के लिए स्वेच्छा से अपने-आपको प्रस्तुत कर दिया और साम्राज्यवादी शोषकों को यह बता दिया कि वे व्यक्तियों को कुचल सकते हैं, विचारों की हत्या नहीं कर सकते। दो महत्त्वहीन इकाइयों को कुचल देने से राष्ट्र नहीं कुचला जा सकता। हम इस ऐतिहासिक निष्कर्ष पर बल देना चाहते हैं कि फ्रांस में लेटर्स डे, केटचेट तथा बेस्टाइल्स की घटनाओं से क्रांतिकारी आन्दोलन को नहीं कुचला जा सका। फांसी की रस्सी और साइबेरिया में बिछाई गई सुरंग रूसी क्रांति की ज्वाला को नहीं बुझा सकी। इसी प्रकार यह भी असंभव है कि अध्यादेश और सुरक्षा विधेयक भारतीय स्वाधीनता की लपटों को बुझा सके। षड़यंत्रों का भेद खोजने, उनकी ज़ोरदार शब्दों में निन्दा करने तथा महत्तर आदर्शों का स्वप्न देखने वाले सभी नौजवानों को फांसी के तख्ते पर चढ़ा देने से क्रांति की गति अवरुद्ध नहीं की जा सकती। यदि हमारी इस चेतावनी की उपेक्षा नहीं की गई, तो यह जीवन की हानि और व्यापक उत्पीड़न को रोकने में सहायक सिद्ध हो सकती है। यह चेतावनी देने का भार हमने स्वयं अपने कन्धों पर लिया और अपने कर्तव्य का पालन किया।

निम्न न्यायालय में भगतसिंह से पूछा गया था कि वे क्रांति से क्या समझते हैं ? प्रश्न के उत्तर में हमें यह कहना है कि क्रांति में घातक संघर्षों का अनिवार्य स्थान नहीं है, न उसमें व्यक्तिगत रूप से प्रतिशोध लेने की ही गुंजाइश है। क्रांति बम और पिस्तौल की संस्कृति नहीं है। क्रांति से हमारा प्रयोजन यह है कि अन्याय पर आधारित वर्तमान व्यवस्था में परिवर्तन होना चाहिए। उत्पादक अथवा श्रमिक समाज के अत्यन्त आवश्यक तत्व हैं तथापि शोषक लोग उन्हें उनके श्रम के फलों और मौलिक अधिकारों से वंचित कर देते हैं। एक ओर सबके लिए अन्न उगाने वाले कृषक सपरिवार भूखों मर रहे हैं, सारी दुनिया के बाज़ारों में कपड़े की पूर्ति करने वाले बुनकर अपने और अपने बच्चों के शरीर को ढांपने के लिए पूरे वस्त्र प्राप्त नहीं कर पाते, भवन-निर्माण,

लोहारी और बढ़ईगिरी के कामों में लगे लोग शानदार महलों का निर्माण करके भी गन्दी बस्तियों में रहते और मर जाते हैं, दूसरी ओर पूंजीपति, शोषक और समाज पर घुन की तरह जीने वाले लोग अपनी सनक पूरी करने के लिए करोड़ों रुपये पानी की तरह बहा रहे हैं। ये भयंकर विषमताएं और विकास के अवसरों की कृत्रिम समानताएं समाज को अराजकता की ओर ले जा रही हैं। यह परिस्थिति सदा तक नहीं रह सकती तथा यह स्पष्ट है कि वर्तमान समाज-व्यवस्था एक ज्वालामुखी के मुख पर बैठी हुई आनन्द मना रही है और शोषकों के अबोध बच्चे भी करोड़ों शोषितों के बच्चों की भांति एक खतरनाक दरार के कगार पर खड़े हैं। यदि सभ्यता के ढांचे को समय रहते नहीं बचाया गया तो वह नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा, अतः क्रांतिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है, और जो लोग इस आवश्यकता को अनुभव करते हैं, उनका यह कर्तव्य है कि वे समाज को समाजवादी आधारों पर पुनर्गठित करें। जब तक यह नहीं होगा और एक मनुष्य के द्वारा दूसरे मनुष्य का तथा एक राष्ट्र के द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण होता रहेगा, जिसे साम्राज्यवाद कहा जा सकता है, तब तक उससे उत्पन्न होने वाली पीड़ाओं और अपमानों से मानव जाति को नहीं बचाया जा सकता एवं युद्ध मिटाने तथा सार्वभौमिक शान्ति के युग का सूत्रपात करने के बारे में की जाने वाली समस्त चर्चाएं कोरा पाखण्ड हैं। क्रान्ति से हमारा प्रयोजन अन्ततः एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना है, जिसको इस प्रकार के घातक खतरों का सामना न करना पड़े और जिसमें सर्वहारा वर्ग की प्रभुता को मान्यता दी जाये। इसका परिणाम यह होगा कि विश्व संघ मानव जाति को पूंजीवाद के बन्धन तथा युद्ध से उत्पन्न होने वाली बरबादी और मुसीबतों से बचा सकेगा।

हमारा आदर्श यह है कि इस आदर्श से प्रेरणा ग्रहण करके हमने एक समुचित और काफ़ी ज़ोरदार चेतावनी दी है। यदि इसकी भी उपेक्षा कर दी जाती है तथा वर्तमान शासन-व्यवस्था नवोदित प्राकृतिक शक्तियों के मार्ग को अवरुद्ध करने का काम जारी रखती है तो एक भीषण संघर्ष उत्पन्न होना निश्चित है, जिसके परिणामस्वरूप समस्त बाधक तत्त्वों को उठाकर फेंक दिया जाएगा तथा सर्वहारा वर्ग का आधिपत्य स्थापित होगा, जिससे क्रान्ति के लक्ष्य की उपलब्धि की जा सके। क्रान्ति मानव जाति का जन्मजात अधिकार है। स्वतन्त्रता सभी मनुष्यों का एक ऐसा जन्मसिद्ध अधिकार है, जिसे किसी भी स्थिति में छीना नहीं जा सकता। श्रमिक वर्ग समाज का वास्तविक आधार है। लोक-प्रभुता की स्थापना श्रमिकों का अन्तिम ध्येय है। इन आदर्शों तथा इस आस्था के लिए हम उन सब कष्टों का स्वागत करेंगे, जो हमें न्यायालय द्वारा दिये जायें। क्रांति की इस वेदी पर हम अपना यौवन धूपबत्ती की भांति जलाने के लिए सम्बद्ध हुए हैं। इतने महान ध्येय के लिए कोई भी बलिदान बड़ा नहीं माना जा सकता। हम क्रांति के उत्कर्ष की संतोषपूर्वक प्रतीक्षा करेंगे। इन्क़लाब ज़िन्दाबाद !

❑❑

'माडर्न रिव्यू' के सम्पादक श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय ने अपनी एक सम्पादकीय टिप्पणी में भगतसिंह के नारे 'इन्कलाब ज़िन्दाबाद' को खून खराबे और अराजकता का प्रतीक बताया। भगतसिंह ने 23 दिसम्बर, 1929 को अपनी और साथी बटुकेश्वर दत्त की तरफ से श्री चट्टोपाध्याय को यह पत्र लिखा।

इन्कलाब ज़िन्दाबाद क्या है ?

श्री सम्पादक जी,
'माडर्न रिव्यू'

आपने अपने सम्मानित पत्र के दिसम्बर, 1929 के अंक में एक टिप्पणी 'इन्कलाब ज़िन्दाबाद' के शीर्षक से लिखी है और इस नारे को निरर्थक ठहराने की चेष्टा की है। आप सरीखे परिपक्व विचारक तथा अनुभवी और यशस्वी सम्पादक की रचना में दोष निकालना तथा उसका प्रतिवाद करना, जिसे प्रत्येक भारतीय सम्मान की दृष्टि से देखता है, हमारे लिए एक बड़ी धृष्टता होगी। तो भी इस प्रश्न का उत्तर देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं कि इस नारे से हमारा क्या अभिप्राय है।

यह आवश्यक है, क्योंकि इस देश में इस समय इस नारे को सब लोगों तक पहुंचाने का कार्य हमारे हिस्से में आया है। इस नारे की रचना हमने नहीं की है। यही नारा रूस के क्रान्तिकारी आन्दोलन में प्रयोग किया गया है। प्रसिद्ध समाजवादी लेखक अप्टन सिंक्लेयर ने अपने उपन्यासों 'बोस्टन' और 'आईल' में यही नारा कुछ अराजकतावादी क्रांतिकारी पात्रों के मुख से प्रयोग कराया है। इसका अर्थ क्या है ? इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि सशस्त्र संघर्ष सदैव जारी रहे और कोई भी व्यवस्था अल्प समय के लिए भी स्थायी न रह सके, दूसरे शब्दों में देश और समाज में अराजकता फैली रहे।

दीर्घकाल से प्रयोग में आने के कारण इस नारे को एक ऐसी विशेष भावना प्राप्त हो चुकी है, जो संभव है कि भाषा के नियमों एवं कोष के आधार पर इसके शब्दों से उचित तर्कसम्मत रूप में सिद्ध न हो पाये, परन्तु इसके साथ ही इस नारे से उन विचारों को पृथक् नहीं किया जा सकता, जो इसके साथ जुड़े हुए हैं। ऐसे समस्त नारे एक ऐसे स्वीकृत अर्थ के द्योतक हैं, जो एक सीमा तक उनमें उत्पन्न हो गए हैं तथा एक सीमा तक उनमें निहित हैं।

उदाहरण के लिए हम यतीन्द्रनाथ ज़िन्दाबाद का नारा लगाते हैं। इससे हमारा तात्पर्य यह होता है कि उनके जीवन के महान आदर्शों तथा उस अथक उत्साह को सदा-सदा के लिए बनाये रखें, जिसने इस महानतम बलिदानी को उस आदर्श के लिए अकथनीय कष्ट झेलने एवं असीम बलिदान करने की प्रेरणा दी। यह नारा लगाने से हमारी यह लालसा प्रकट होती है कि हम भी अपने आदर्शों के लिए ऐसे ही अचूक उत्साह को अपनायें। यही वह भावना है, जिसकी हम प्रशंसा करते हैं। इसी प्रकार हमें 'इन्कलाब' शब्द का अर्थ भी कोरे शाब्दिक रूप में नहीं लगाना चाहिए। इस शब्द का उचित एवं अनुचित प्रयोग करने वाले लोगों के हितों के आधार पर इसके साथ विभिन्न अर्थ एवं विभिन्न विशेषतायें जोड़ी जाती हैं। क्रान्तिकारियों की दृष्टि में यह एक पवित्र वाक्य है। हमने इस बात को ट्रिब्यूनल के सम्मुख अपने वक्तव्य में स्पष्ट करने का प्रयास किया था।

इस वक्तव्य में हमने कहा था कि क्रान्ति (इन्कलाब) का अर्थ अनिवार्य रूप में सशस्त्र आन्दोलन नहीं होता। बम और पिस्तौल कभी-कभी क्रान्ति को सफल बनाने के साधन मात्र हो सकते हैं। इसमें भी सन्देह नहीं है कि कुछ आन्दोलनों में बम एवं पिस्तौल एक महत्त्वपूर्ण साधन सिद्ध होते हैं, परन्तु केवल इसी कारण से बम और पिस्तौल क्रान्ति के पर्यायवाची नहीं हो जाते। विद्रोह को क्रान्ति नहीं कहा जा सकता, यद्यपि यह हो सकता है कि विद्रोह का अन्तिम परिणाम क्रान्ति हो।

इस वाक्य में क्रान्ति शब्द का अर्थ 'प्रगति के लिए परिवर्तन की भावना एवं आकांक्षा' है। लोग साधारणतया जीवन की परंपरागत दशाओं के साथ चिपक जाते हैं और परिवर्तन के विचार मात्र से ही कांपने लगते हैं। यही एक अकर्मण्यता की भावना है, जिसके स्थान पर क्रान्तिकारी भावना जागृत करने की आवश्यकता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि अकर्मण्यता का वातावरण निर्मिण हो जाता है और रूढ़िवादी शक्तियां मानव समाज को कुमार्ग पर ले जाती हैं। ये परिस्थितियां मानव समाज की उन्नति में गतिरोध का कारण बन जाती हैं।

क्रान्ति की इस भावना से मनुष्य जाति की आत्मा स्थायी तौर पर ओतप्रोत रहनी चाहिए। जिससे कि रूढ़िवादी शक्तियां मानव समाज की प्रगति की दौड़ में बाधा डालने के लिए संगठित न हो सकें। यह आवश्यक है कि पुरानी व्यवस्था सदैव रहे और वह नई व्यवस्था के लिए स्थान रिक्त करती रहे, जिससे कि एक आदर्श व्यवस्था संसार को बिगड़ने से रोक सके। यह है हमारा वह अभिप्राय, जिसको हृदय में रखकर हम 'इन्कलाब ज़िन्दाबाद' का नारा ऊंचा करते हैं।

❑❑

दिल्ली के सेशन जज ने असेम्बली बम केस में भगतसिंह को आजन्म कारावास का दंड दिया था। लाहौर हाईकोर्ट में उसकी अपील की गई। दिल्ली अदालत के निर्णय की आलोचना करते हुए भगतसिंह ने हाईकोर्ट में यह दूसरा बयान दिया।

हमारे उद्देश्य पर ध्यान दें

माई लार्ड,

हम न वकील हैं, न अंग्रेज़ी के विशेषज्ञ हैं और न हमारे पास डिग्रियां ही हैं, इसलिए हमसे शानदार भाषणों की आशा न की जाए। हमारी प्रार्थना है कि हमारे बयान की भाषा सम्बन्धी त्रुटियों पर ध्यान न देते हुए, उसके वास्तविक अर्थ को समझने का प्रयत्न किया जाए। दूसरे तमाम मुद्दों (प्वाइन्ट्स) को अपने वकीलों पर छोड़ते हुए मैं स्वयं एक मुद्दे पर अपने विचार प्रगट करूंगा। यह मुद्दा इस मुकदमे में बहुत महत्त्वपूर्ण है। मुद्दा यह है कि हमारी नीयत क्या थी और हम किस हद तक अपराधी हैं।

यह बड़ा पेचीदा मामला है, इसलिए कोई व्यक्ति भी आपकी सेवा में विचारों के विकास की वह ऊंचाई प्रस्तुत नहीं कर सकता, जिसके प्रभाव में हम एक खास ढंग से सोचने और व्यवहार करने लगे थे। हम चाहते हैं कि इसे दृष्टि में रखते हुए ही हमारी नीयत और अपराध का अनुमान लगाया जाए। प्रसिद्ध कानून विशारद सालोमन के अनुसार किसी भी व्यक्ति को उसके अपराधी आचरण के लिए उस समय तक सज़ा नहीं मिलनी चाहिए, जब तक उसका उद्देश्य कानून-विरोधी सिद्ध न हो।

सेशन जज की अदालत में हमने जो लिखित बयान दिया था, वह हमारे उद्देश्य की व्याख्या करता है और उस रूप में हमारी नीयत की व्याख्या भी करता था, लेकिन सेशन जज महोदय ने कलम की एक ही नोक से यह कहकर कि "आम तौर पर अपराध को व्यवहार में लाने वाली बात कानून के कार्य को प्रभावित नहीं करती और इस देश में कानूनी व्याख्याओं में कभी-कभार उद्देश्य और नीयत की चर्चा होती है" हमारी सब कोशिशें बेकार कर दीं।

माई लार्ड, इन परिस्थितियों में सुयोग्य सेशन जज को उचित था कि या तो अपराध का अनुमान परिणाम से लगाते या हमारे बयान की मदद से मनोवैज्ञानिक पहलू का फैसला करते, पर उन्होंने इन दोनों में से एक भी काम नहीं किया।

विचारणीय बात यह है कि असेम्बली में हमने जो दो बम फेंके, उनसे किसी भी व्यक्ति की शारीरिक या आर्थिक हानि नहीं हुई। इस दृष्टिकोण से हमें जो सज़ा दी गई है, वह कठोरतम ही नहीं, बदला लेने की भावना वाली भी है। यदि दूसरे दृष्टिकोण से देखा जाये तो जब तक अभियुक्त की मनोभावना का पता न लगाया जाए, उसके असली उद्देश्य का पता ही नहीं चल सकता। यदि उद्देश्य को पूरी तरह भुला दिया जाए तो किसी भी व्यक्ति के साथ न्याय नहीं हो सकता, क्योंकि उद्देश्य को नज़रों में न रखने पर संसार के बड़े-बड़े सेनापति साधारण हत्यारे नज़र आएंगे, सरकारी कर वसूल करने वाले अधिकारी चोर, जालसाज दिखाई देंगे और न्यायाधीशों पर भी कत्ल करने का अभियोग लगेगा। इस तरह तो समाज-व्यवस्था और सभ्यता खूनखराबा, चोरी और जालसाज़ी बनकर रह जाएगी। यदि उद्देश्य की उपेक्षा की जाए, तो किसी हकूमत को क्या अधिकार है कि समाज के व्यक्तियों से न्याय करने को कहे ? उद्देश्य की उपेक्षा की जाए तो हर धर्मप्रचारक झूठ का प्रचारक दिखाई देगा और हरेक पैगम्बर पर अभियोग लगेगा कि उसने करोड़ों भोले और अनजान लोगों को गुमराह किया। यदि उद्देश्य को भुला दिया जाए तो हज़रत ईसा मसीह गड़बड़ कराने वाले, शान्ति भंग करने वाले और विद्रोह का प्रचार करने वाले दिखाई देंगे और कानून के शब्दों में 'खतरनाक व्यक्तित्व' माने जाएंगे, लेकिन हम उनकी पूजा करते हैं, उनका हमारे दिलों में बेहद आदर है, उनकी मूर्ति हमारे दिलों में आध्यात्मिकता का स्पन्दन पैदा करती है। यह क्यों ? यह इसलिए कि उनके प्रयत्नों का प्रेरक एक ऊंचे दरजे का उद्देश्य था। उस युग के शासकों ने उनके उद्देश्य को नहीं पहचाना, उन्होंने उनके बाहरी व्यवहार को ही देखा, लेकिन उस समय से लेकर इस समय तक उन्नीस शताब्दियां बीत चुकी हैं। क्या हमने तब से लेकर अब तक कोई तरक्की नहीं की ? क्या हम ऐसी गल्तियां दोहरायेंगे ? अगर ऐसा हो तो मानना पड़ेगा कि इंसानियत की कुर्बानियां, बड़े शहीदों के प्रयत्न बेकार रहे और आज भी हम उसी स्थान पर हैं, जहां आज से बीस शताब्दियों पहले थे ?

कानूनी दृष्टि से उद्देश्य का प्रश्न खास महत्त्व रखता है। जनरल डायर का उदाहरण लीजिए। उसने गोली चलाई और सैकड़ों निरपराध और शस्त्रहीन व्यक्तियों को मार डाला, लेकिन फौजी अदालत ने उसे गोली का निशाना बनाने का हुक्म देने की जगह लाखों रुपये इनाम दिये। एक और उदाहरण पर ध्यान दीजिए--श्री खडगबहादुर सिंह ने, जो एक गोरखा नौजवान है, कलकत्ता में एक अमीर मारवाड़ी को छुरे से मार डाला। यदि उद्देश्य को एक तरफ रख दिया जाए तो खड्गसिंह को मौत की सज़ा मिलनी चाहिए थी, लेकिन उसे कुछ वर्षों की सज़ा दी गई और उस अवधि से भी बहुत पहले ही मुक्त कर दिया गया। क्या कानून में कोई दरार रखनी थी, जो उसे मौत की सज़ा न दी गई ? या उसके विरुद्ध हत्या का अभियोग सिद्ध न हुआ ? उसने हमारी ही तरह अपना अपराध स्वीकार किया था, लेकिन उसका जीवन बच गया और वह स्वतंत्र है। मैं पूछता हूं, उसे फांसी की सज़ा क्यों नहीं दी गई ? उसका कार्य जंचा-तुला था। उसने पेचीदा ढंग की तैयारी की थी। उद्देश्य की दृष्टि से उसका कार्य (एक्शन) हमारे कार्य की अपेक्षा ज़्यादा घातक और संगीन था। उसे इसलिए बहुत ही नर्म सज़ा मिली क्योंकि उसका मकसद नेक था। उसने समाज को एक ऐसी जोंक से छुटकारा दिलाया, जिसने कई-एक सुन्दर लड़कियों का खून चूस लिया था। श्री खडगबहादुर सिंह को महज कानून की प्रतिष्ठा बचाये रखने के लिए कुछ वर्षों की सज़ा दी गई।

यह सिद्धान्त किस कदर गलत है। यह न्याय के बुनियादी सिद्धान्त का विरोध है, जो कि इस प्रकार है--'कानून आदमियों के लिए है, आदमी कानून के लिए नहीं है।' इस दशा में क्या कारण है कि हमें भी वे रियायतें न दी जाएं, जो श्री खडगबहादुर सिंह को मिली थीं ? स्पष्ट है कि उसे नर्म सज़ा देते समय उसका उद्देश्य दृष्टि में रखा गया था, अन्यथा कोई भी व्यक्ति, जो किसी दूसरे को कत्ल करता है, फांसी की सज़ा से नहीं बच सकता। क्या इसलिए हमें आम कानूनी अधिकार नहीं मिल रहा कि हमारा कार्य हुकूमत के विरुद्ध था या इसलिए कि इस कार्य का राजनैतिक महत्त्व है।

माई लार्ड, इस दशा में मुझे यह कहने की आज्ञा दी जाए कि जो हुकूमत इन कमीनी हरकतों में आश्रय खोजती है, जो हुकूमत व्यक्ति के कुदरती अधिकार छीनती

है, उसे जीवित रहने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं। अगर यह कायम है, तो आरज़ी तौर पर और हज़ारों बेगुनाहों का ख़ून इसकी गर्दन पर है। यदि कानून उद्देश्य नहीं देखता, तो न्याय नहीं हो सकता और न ही स्थायी शान्ति स्थापित हो सकती है।

आटे में संखिया (ज़हर) मिलाना जुर्म नहीं, बशर्ते कि इसका उद्देश्य चूहों को मारना हो, लेकिन यदि इससे किसी आदमी को मार दिया जाये तो यह कत्ल का अपराध बन जाता है। लिहाज़ा ऐसे कानूनों पर जो युक्ति (दलील) पर आधारित नहीं और न्याय के सिद्धान्त के विरुद्ध हैं, उन्हें समाप्त कर देना चाहिए। ऐसे ही न्याय-विरोधी कानूनों के कारण बड़े-बड़े श्रेष्ठ बौद्धिक लोगों ने बगावत के कार्य किये हैं।

हमारे मुकदमें के तथ्य बिलकुल सादा हैं। 8 अप्रैल, 1929 को हमने सेंट्रल असेम्बली में दो बम फेंके। उनके धमाके से चन्द लोगों को मामूली खरोंचें आईं। चेम्बर में हंगामा हुआ, सैकड़ों दर्शक और सदस्य बाहर निकल गये। कुछ देर बाद खामोशी छा गई। मैं और साथी बी० के० दत्त खामोशी के साथ दर्शक गैलरी में बैठे रहे और हमने स्वयं अपने को प्रस्तुत किया कि हमें गिरफ्तार कर लिया जाये। हमें गिरफ्तार कर लिया गया। अभियोग लगाये गये और हत्या करने के प्रयत्न के अपराध में हमें सज़ा दी गई, लेकिन बमों से 4-5 आदमियों को मामूली चोटें आईं और एक बेंच को मामूली-सा नुकसान पहुंचा, और जिन्होंने यह अपराध किया, उन्होंने बिना किसी किस्म के हस्तक्षेप के अपने आपको गिरफ्तारी के लिए पेश कर दिया। सेशन जज ने स्वीकार किया कि यदि हम भागना चाहते तो भागने में सफल हो सकते थे। हमने अपना अपराध स्वीकार किया और अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए बयान दिया। हमें सज़ा का भय नहीं है, लेकिन हम यह नहीं चाहते कि हमें गलत तौर पर समझा जाय। हमारे बयान से कुछ पैराग्राफ काट दिये गये हैं, यह वास्तविक स्थिति की दृष्टि से हानिकारक है।

समग्र रूप में हमारे वक्तव्य के अध्ययन से साफ प्रकट होता है कि हमारे दृष्टिकोण से हमारा देश एक नाजुक दौर से गुज़र रहा है। इस दशा में काफी ऊंची आवाज़ में चेतावनी देने की ज़रूरत थी और हमने अपने विचारानुसार चेतावनी दी है। सम्भव है कि हम गलती पर हों, हमारा सोचने का ढंग जज महोदय के सोचने के ढंग से भिन्न हो, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि हमें अपने विचार प्रकट करने की स्वीकृति न दी जाये और गलत बातें हमारे साथ जोड़ी जाएं।

इन्कलाब ज़िन्दाबाद और साम्राज्यवाद मुर्दाबाद के सम्बन्ध में हमने जो व्याख्या अपने बयान में दी, उसे उड़ा दिया गया है; हालांकि यह हमारे उद्देश्य का खास भाग है। इन्कलाब ज़िन्दाबाद से हमारा वह उद्देश्य नहीं था, जो आम तौर पर गलत अर्थ में समझा जाता है। पिस्तौल और बम इन्कलाब नहीं लाते, बल्कि इन्कलाब की तलवार विचारों की सान पर तेज़ होती है और यही चीज़ थी जिसे हम प्रकट करना चाहते थे। हमारे इन्कलाब का अर्थ पूंजीवादी युद्धों की मुसीबतों का अंत करना है। मुख्य उद्देश्य और उसे प्राप्त करने की प्रक्रिया समझे बिना किसी के सम्बन्ध में निर्णय देना उचित नहीं है। गलत बातें हमारे साथ जोड़ना साफ-साफ अन्याय है।

इसकी चेतावनी देना बहुत आवश्यक था। बेचैनी रोज़-रोज़ बढ़ रही है। यदि उचित इलाज न किया गया, तो रोग खतरनाक रूप ले लेगा। कोई भी मानवीय शक्ति इसकी रोकथाम न कर सकेगी। अब हमने इस तूफान का रुख बदलने के लिए यह कार्रवाई की। हम इतिहास के गंभीर अध्येता हैं। हमारा विश्वास है कि यदि सत्ताधारी शक्तियां ठीक समय पर सही कार्रवाइयां करतीं, तो फ्रांस और रूस की खूनी क्रांतियां न बरस पड़तीं। दुनिया की कई बड़ी-बड़ी हुकूमतें विचारों के तूफान को रोकते हुए खून-खराबी के वातावरण में डूब गईं। सत्ताधारी लोग परिस्थितियों के प्रवाह को बदल सकते हैं। हम पहली चेतावनी देना चाहते थे और यदि हम कुछ व्यक्तियों की हत्या करने के इच्छुक होते, तो हम अपने मुख्य उद्देश्य में असफल हो जाते। माई लार्ड, इस नीयत (भावना) और उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए हमने कार्रवाई की और इस कार्रवाई के परिणाम हमारे बयान का समर्थन करते हैं। एक और नुक्ता (प्वाइंट) स्पष्ट करना आवश्यक है। यदि हमें बमों की ताकत के संबंध में कतई ज्ञान न होता, तो हम पं० मोतीलाल नेहरू, श्री केलकर, श्री जयकर और श्री जिन्ना जैसे सम्माननीय राष्ट्रीय व्यक्तित्वों की उपस्थिति में क्यों बम फेंकते ? हम नेताओं के जीवन किस तरह खतरे में डाल सकते थे ? हम पागल तो नहीं हैं ? और अगर पागल होते तो जेल में बंद करने के बजाय हमें पागलखाने में बंद किया जाता। बमों के संबंध में हमें निश्चित जानकारी थी। उसी के कारण हमने ऐसा साहस किया। जिन बेंचों पर लोग बैठे थे, उन पर बम फेंकना कहीं आसान काम था, लेकिन खाली जगह पर बमों का फेंकना निहायत मुश्किल काम था। अगर बम फेंकने वाले सही दिमागों के न होते या वे परेशान (असंतुलित) होते तो बम खाली जगह की बजाय बेंचों पर गिरते। तो मैं कहूंगा कि खाली जगह के चुनाव के लिए जो हिम्मत हमने दिखाई, उसके लिए हमें इनाम मिलना चाहिए। इन हालतों में, माई लार्ड, हम सोचते हैं कि हमें ठीक तरह समझा नहीं गया। आपकी सेवा में हम सज़ाओं में कमी कराने नहीं आये, बल्कि अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए आये हैं। हम चाहते हैं कि न तो हमसे अनुचित व्यवहार किया जाये, न ही हमारे संबंध में अनुचित राय दी जाये। सज़ा का सवाल हमारे लिए गौण है।

❑❑

23 दिसम्बर, 1929 को श्री यशपाल ने वायसराय लार्ड इरविन की ट्रेन के नीचे बम का विस्फोट किया। इसके लिए अहिंसावादी नेतृत्व ने क्रांतिकारियों की निन्दा का तूफान उठा दिया। इसका जवाब देने के लिए 26 जनवरी, 1930 को 'बम का दर्शन' नामक परिपत्र सारे देश में एक साथ बांटा गया। भगतसिंह के उस समय के जेल के साथी और बाद में उनके जीवनचरित्र-लेखक श्री जतीन्द्रनाथ सान्याल के कथनानुसार इस परिपत्र को भगतसिंह ने अपनी कालकोठरी से भेजा था।

बम का दर्शन

(26 जनवरी, 1930)

हाल ही की घटनाएं ! विशेष रूप से 23 दिसम्बर, 1929 को वायसराय की स्पेशल ट्रेन उड़ाने का जो प्रयत्न किया गया था, उसकी निन्दा करते हुए कांग्रेस द्वारा पारित किया गया प्रस्ताव तथा 'यंग इंडिया' में गांधी जी द्वारा लिखे गये लेखों से स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने गांधी जी से सांठ-गांठ कर भारतीय क्रान्तिकारियों के विरुद्ध घोर आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया है। जनता के बीच भाषणों तथा पत्रों के माध्यम से क्रान्तिकारियों के विरुद्ध बराबर प्रचार किया जाता रहा है। या तो यह जानबूझकर किया गया या फिर केवल अज्ञान के कारण उनके विषय में गलत प्रचार होता रहा और उन्हें गलत समझा जाता रहा; परन्तु क्रान्तिकारी अपने सिद्धान्तों तथा कार्यों की ऐसी आलोचना से नहीं घबराते हैं। बल्कि वे ऐसी आलोचना का स्वागत करते हैं, क्योंकि वे इस बात का स्वर्णावसर मानते हैं कि ऐसा करने से उन्हें उन लोगों को क्रान्तिकारियों के मूलभूत सिद्धान्तों तथा उच्चादर्शों को, जो उनकी प्रेरणा तथा शक्ति के अनवरत स्रोत हैं, समझने का अवसर मिलता है। आशा की जाती है कि इस लेख द्वारा आम जनता को यह जानने का अवसर मिलेगा कि क्रान्तिकारी क्या हैं, और उनके विरुद्ध किए गए, भ्रमात्मक प्रचार से उत्पन्न होने

वाली गलतफहमियों से उन्हें बचाया जा सके।

पहले हम हिंसा और अहिंसा के प्रश्न पर ही विचार करें। हमारे विचार से इन शब्दों का प्रयोग ही गलत किया गया है, और ऐसा करना ही दोनों दलों के साथ अन्याय करना है, क्योंकि इन शब्दों से दोनों ही दलों के सिद्धान्तों का स्पष्ट बोध नहीं हो जाता। हिंसा का अर्थ है अन्याय के लिए किया गया बल प्रयोग, परन्तु क्रांतिकारियों का तो यह उद्देश्य नहीं है, दूसरी ओर अहिंसा का जो आम अर्थ समझा जाता है, वह है आत्मिक शक्ति का सिद्धान्त। उसका उपयोग व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय अधिकारों को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। अपने-आपको कष्ट देकर आशा की जाती है कि इस प्रकार अन्त में अपने विरोधी का हृदय-परिवर्तन संभव हो सकेगा।

एक क्रान्तिकारी जब कुछ बातों को अपना अधिकार मान लेता है तो वह उनकी मांग करता है, अपनी उस मांग के पक्ष में दलीलें देता है, समस्त आत्मिक शक्ति के द्वारा उन्हें प्राप्त करने की इच्छा करता है, उसकी प्राप्ति के लिए अत्यधिक कष्ट सहन करता है, इसके लिए वह बड़े से बड़ा त्याग करने के लिए प्रस्तुत रहता है और उसके समर्थन में वह अपना समस्त शारीरिक बल प्रयोग भी करता है। इसके इन प्रयत्नों को आप चाहे जिस नाम से पुकारें, परन्तु आप इन्हें हिंसा के नाम से सम्बोधित नहीं कर सकते, क्योंकि ऐसा करना कोष में दिए इस शब्द के अर्थ के साथ अन्याय होगा। सत्याग्रह का अर्थ है सत्य के लिए आग्रह। उसकी स्वीकृति के लिए केवल आत्मिक शक्ति के प्रयोग का ही आग्रह क्यों ? इसके साथ-साथ शारीरिक बल-प्रयोग भी न किया जाए ? क्रान्तिकारी स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए अपनी शारीरिक एवं नैतिक शक्ति, दोनों के प्रयोग में विश्वास करता है, परन्तु नैतिक शक्ति का प्रयोग करने वाले शारीरिक बल-प्रयोग को निषिद्ध मानते हैं। इसलिए अब सवाल यह नहीं है कि आप हिंसा चाहते हैं या अहिंसा, बल्कि प्रश्न तो यह है कि आप अपने उद्देश्य-प्राप्ति के लिए शारीरिक बल सहित नैतिक बल का प्रयोग करना चाहते हैं, या केवल आत्मिक शक्ति का।

क्रान्तिकारियों का विश्वास है कि देश को क्रान्ति से ही स्वतंत्रता मिलेगी। वे जिस क्रान्ति के लिए प्रयत्नशील हैं और जिस क्रान्ति का रूप उनके सामने स्पष्ट है, उसका अर्थ केवल यह नहीं है कि विदेशी शासकों तथा उनके पिट्ठुओं से क्रान्तिकारियों का केवल सशस्त्र संघर्ष हो, बल्कि इस सशस्त्र संघर्ष के साथ-साथ नवीन सामाजिक व्यवस्था के द्वार देश के लिए मुक्त हो जाएं। क्रान्ति पूंजीवाद, वर्गवाद तथा कुछ लोगों को ही विशेषाधिकार दिलाने वाली प्रणाली का अन्त कर देगी। यह राष्ट्र को अपने पैरों पर खड़ा करेगी, उससे नवीन राष्ट्र और नये समाज का जन्म होगा। क्रान्ति से सबसे बड़ी बात तो यह होगी कि वह मज़दूर तथा किसानों का राज्य कायम कर उन सब सामाजिक अवांछित तत्त्वों को समाप्त कर देगी, जो देश की राजनैतिक शक्ति को हथियाये बैठे हैं।

आज की तरुण पीढ़ी को जो मानसिक गुलामी तथा धार्मिक रूढ़िवादी बन्धन जकड़े है और उससे छुटकारा पाने के लिए तरुण समाज की जो बेचैनी है, उसी मे क्रान्तिकारी प्रगतिशीलता के अंकुर देख रहा है। नवयुवक जैसे-जैसे मनोविज्ञान को आत्मसात् करता जायेगा, वैसे-वैसे राष्ट्र की गुलामी का चित्र उसके सामने स्पष्ट होता जायेगा तथा उसकी देश को स्वतंत्र करने की इच्छा प्रबल होती जायेगी। और उसका यह क्रम तब तक चलता रहेगा, जब तक कि युवक न्याय, क्रोध और क्षोभ से ओतप्रोत हो अन्याय करने वालों की हत्या न प्रारम्भ कर देगा। इस प्रकार देश में आतंकवाद का जन्म होता है। आतंकवाद सम्पूर्ण क्रान्ति नहीं और क्रान्ति भी आतंकवाद के बिना पूर्ण नहीं। यह तो क्रान्ति का एक आवश्यक और अवश्यम्भावी अंग है। इस सिद्धान्त का समर्थन इतिहास की किसी भी क्रान्ति का विश्लेषण कर जाना जा सकता है। आतंकवाद आततायी के मन में भय पैदा कर पीड़ित जनता में प्रतिशोध की भावना जागृत कर उसे शक्ति प्रदान करता है। अस्थिर भावना वाले लोगों को इससे हिम्मत बंधती है तथा उनमें आत्मविश्वास पैदा होता है। इससे दुनिया के सामने क्रान्ति के उद्देश्य का वास्तविक रूप प्रकट हो जाता है। क्योंकि ये किसी राष्ट्र की स्वतंत्रता की उत्कट महत्त्वाकांक्षा का विश्वास दिलाने वाले प्रमाण हैं, जैसे दूसरे देशों में होता आया है, वैसे ही भारत में भी आतंकवाद क्रान्ति का रूप धारण कर लेगा और अन्त में क्रान्ति से ही देश को सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक स्वतंत्रता मिलेगी।

तो यह हैं क्रान्तिकारी के सिद्धान्त, जिनमें वह विश्वास करता है और जिन्हें देश के लिए प्राप्त करना चाहता है। इस तथ्य की प्राप्ति के लिए वह गुप्त तथा खुले-आम, दोनों ही तरीकों से प्रयत्न कर रहा है। इस प्रकार एक शताब्दी से संसार में जनता तथा शासक वर्ग में जो संघर्ष चला आ रहा है, वही अनुभव उनके लक्ष्य पर पहुंचने का मार्गदर्शक है। क्रान्तिकारी जिन तरीकों में विश्वास करता है वे कभी असफल नहीं हुए।

इस बीच कांग्रेस क्या कर रही थी ? उसने अपना ध्येय स्वराज्य से बदलकर पूर्ण स्वतंत्रता घोषित किया। इस घोषणा से कोई भी व्यक्ति यही निष्कर्ष निकालेगा कि कांग्रेस ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध युद्ध की घोषणा न कर क्रान्तिकारियों के विरुद्ध ही युद्ध की घोषणा कर दी है। इस सम्बन्ध में कांग्रेस का पहला वार था उसका वह प्रस्ताव जिसमें 23 दिसम्बर, 1929 को वायसराय की स्पेशल ट्रेन उड़ाने, के प्रयत्न की निन्दा की गई। इस प्रस्ताव का मसविदा गांधी जी ने तैयार किया था और उसको पारित कराने के लिए गांधी जी ने अपनी सारी शक्ति लगा दी। परिणाम यह हुआ कि 1913 की सदस्य संख्या में वह केवल 31 अधिक मतों से पारित हो सका। क्या इस अत्यल्प बहुमत में भी राजनैतिक ईमानदारी थी ? इस संबन्ध में हम सरलादेवी चौधरानी का मत ही यहां उद्धृत करें। वे तो जीवन भर कांग्रेस की भक्त रही हैं। इस सम्बन्ध में प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा है--"मैंने महात्मा-गांधी के अनुयायियों के साथ इस विषय में जो बातचीत की, उसमें मुझे मालूम हुआ कि वे इस सम्बन्ध में अपने स्वतंत्र विचार महात्मा जी के प्रति व्यक्तिगत निष्ठा के कारण प्रकट न कर सके, तथा इस प्रस्ताव के विरुद्ध मत देने में असमर्थ रहे, जिसके प्रणेता महात्मा जी थे। जहां तक गांधी जी की दलील का प्रश्न है, उस पर हम बाद में विचार करेंगे। उन्होंने जो दलीलें दी हैं, वे कुछ कम या अधिक इस सम्बन्ध में कांग्रेस में दिए गए भाषण का ही विस्तृत रूप हैं।"

इस दुःखद प्रस्ताव के विषय में एक बात मार्के की है जिसे हम अनदेखा नहीं कर सकते, वह यह कि यह सर्वविदित है कि कांग्रेस अहिंसा का सिद्धान्त मानती है और पिछले दस वर्षों से वह इसके समर्थन में प्रचार करती रही है। यह सब होने पर भी प्रस्ताव के समर्थन में भाषणों में गाली-गलौज की गई। उन्होंने क्रान्तिकारियों को बुज़दिल कहा और उनके कार्यों को घृणित। उनमें से एक वक्ता ने धमकी देते हुए यहां तक कह डाला कि यदि वे (सदस्य) गांधी जी का नेतृत्व चाहते हैं तो उन्हें इस प्रस्ताव को सर्वसम्मति से पारित करना चाहिए। इतना सब कुछ किए जाने पर भी यह प्रस्ताव बहुत थोड़े मतों से ही पारित हो सका। इससे यह बात निशंक प्रमाणित हो जाती है कि देश की जनता पर्याप्त संख्या में क्रान्तिकारियों का समर्थन कर रही है। इस तरह से इसके लिए गांधी जी हमारे बधाई के पात्र हैं कि उन्होंने इस प्रश्न पर विवाद खड़ा किया और इस प्रकार संसार को दिखा दिया कि कांग्रेस, जो अहिंसा का गढ़ माना जाता है, वह सम्पूर्ण नहीं तो एक हद तक तो कांग्रेस से अधिक क्रान्तिकारियों के साथ है।

इस विषय में गांधी जी ने जो विजय प्राप्त की वह एक प्रकार की, हार ही के बराबर थी और अब वे 'दि कल्ट आफ दि बाम' लेख द्वारा क्रान्तिकारियों पर दूसरा हमला कर बैठे हैं। इस संबंध में आगे कुछ कहने से पूर्व इस लेख पर हम अच्छी तरह विचार करेंगे। इस लेख में उन्होंने तीन बातों का उल्लेख किया है। उनका विश्वास, उनके विचार और उनका मत। हम उनके विश्वास के संबंध में विश्लेषण नहीं करेंगे, क्योंकि विश्वास में तर्क के लिए स्थान नहीं है। गांधी जी जिसे हिंसा कहते हैं और जिसके विरुद्ध उन्होंने जो तर्कसंगत विचार प्रकट किए हैं, हम उनका सिलसिलेवार विश्लेषण करें ।

गांधी जी सोचते हैं कि उनकी यह धारणा सही है कि अधिकतर भारतीय जनता को हिंसा की भावना छू तक नहीं गई है और अहिंसा उनका राजनैतिक शस्त्र बन गया है। हाल ही में उन्होंने देश का जो भ्रमण किया है, उस अनुभव के आधार पर उनकी यह धारणा बनी है, परन्तु उन्हें अपनी इस यात्रा के इस अनुभव से इस भ्रम में न पड़ना चाहिए। यह बात सही है कि (कांग्रेस) नेता अपने दौरे वहीं तक सीमित रखता है जहां तक डाक गाड़ी उसे आराम से पहुंचा सकती है, जबकि गांधी जी ने अपनी यात्रा का दायरा वहां तक बढ़ा दिया है, जहां तक कि मोटरकार द्वारा वे जा सकें। इस यात्रा में वे धनी व्यक्तियों के ही निवास स्थानों पर रुके। इस यात्रा का अधिकतर समय उनके भक्तों द्वारा आयोजित गोष्ठियों में की गई उनकी प्रशंसा सभाओं में यदा-कदा अशिक्षित जनता को दिए जाने वाले दर्शनों में बीता, जिसके विषय में उनका दावा है कि वे उन्हें अच्छी तरह समझते हैं, परन्तु यही बात इस दलील के विरुद्ध है कि वे आम जनता की विचारधारा को जानते हैं।

कोई व्यक्ति जन-साधारण की विचारधारा को केवल मंचों से दर्शन और उपदेश देकर नहीं समझ सकता। वह तो केवल इतना ही दावा कर सकता है कि उसने विभिन्न विषयों पर अपने विचार जनता के सामने रखे। क्या गांधी जी ने इन वर्षों में आम जनता के सामाजिक जीवन में भी कभी प्रवेश करने का प्रयत्न किया ? क्या कभी उन्होंने किसी सन्ध्या को गांव के किसी चौपाल के अलाव के पास बैठकर किसी किसान के विचार जानने का प्रयत्न किया ? क्या किसी कारखाने के मज़दूर के साथ एक भी शाम गुज़ारकर उसके विचार समझने की कोशिश की है ? पर हमने यह किया है और इसीलिए हम दावा करते हैं कि हम आम जनता को जानते हैं। हम गांधी जी को विश्वास दिलाते हैं कि साधारण भारतीय साधारण मानव के समान ही अहिंसा तथा अपने शत्रु से प्रेम करने की आध्यात्मिक भावना को बहुत कम समझता है। संसार का तो यही नियम है--तुम्हारा एक मित्र है, तुम उससे स्नेह करते हो, कभी-कभी तो इतना अधिक कि तुम उसके लिए अपने प्राण भी दे देते हो। तुम्हारा शत्रु है, तुम उससे किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखते हो। क्रान्तिकारियों का यह सिद्धान्त नितान्त सत्य, सरल और सीधा है और यह ध्रुव सत्य आदम और हौवा के समय से चला आ रहा है तथा इसे समझने में कभी किसी को कठिनाई नहीं हुई। हम यह बात स्वयं के अनुभव के आधार पर कह रहे हैं। वह दिन दूर नहीं, जब लोग क्रान्तिकारी विचारधारा को सक्रिय रूप देने के लिए हज़ारों की संख्या में जमा होंगे।

गांधी जी घोषणा करते हैं कि अहिंसा के सामर्थ्य तथा अपने आपको पीड़ा देने की प्रणाली से उन्हें यह आशा है कि वे एक दिन विदेशी शासकों का हृदय परिवर्तन कर अपनी विचारधारा का उन्हें अनुयायी बना लेंगे। अब उन्होंने अपने सामाजिक जीवन की इस चमत्कार की 'प्रेम संहिता' के प्रचार के लिए अपने आपको समर्पित कर दिया है। वे अडिग विश्वास के साथ उसका प्रचार कर रहे हैं, जैसा कि उनके कुछ अनुयाइयों ने भी किया है। परन्तु क्या वे बता सकते हैं कि भारत में कितने शत्रुओं का हृदय परिवर्तन कर उन्हें भारत का मित्र बनाने में समर्थ हुए हैं ? वे कितने ओडायरों, डायरों तथा रीडिंग और इरविन को भारत का मित्र बना सके हैं ? यदि किसी को भी नहीं तो भारत उनकी इस विचारधारा से कैसे सहमत हो सकता है कि वे इंग्लैंड को अहिंसा द्वारा समझा-बुझाकर इस बात को स्वीकार करने के लिए तैयार कर लेंगे कि वह भारत को स्वतंत्रता दे दे।

यदि वायसराय की गाड़ी के नीचे बमों का ठीक से विस्फोट हुआ होता तो दो में से एक बात अवश्य हुई होती, या तो वायसराय अत्यधिक घायल हो जाते या उनकी मृत्यु हो गई होती। ऐसी स्थिति में वायसराय तथा राजनैतिक दलों के नेताओं के बीच मन्त्रणा न हो पाती, यह प्रयत्न रुक जाता और उससे राष्ट्र का भला ही होता। कलकत्ता कांग्रेस की चुनौती के बाद भी स्वशासन की भीख मांगने के लिए वायसराय भवन के आस-पास मंडराने वालों के ये घृणास्पद प्रयत्न विफल हो जाते। यदि बमों का ठीक से विस्फोट हुआ होता तो भारत का एक शत्रु उचित सजा पा जाता। 'मेरठ' तथा 'लाहौर-षड़यंत्र' और 'भुसावल काण्ड' का मुकदमा चलाने वाले केवल भारत के शत्रुओं को ही मित्र प्रतीत हो सकते हैं। साइमन कमीशन के सामूहिक विरोध से देश में जो इकाई स्थापित हो गई थी, गांधी तथा नेहरू की राजनैतिक बुद्धिमत्ता के बाद ही इरविन उसे छिन्न-भिन्न करने में समर्थ हो सका। आज कांग्रेस में भी आपस में फूट पड़ गई है। हमारे इस दुर्भाग्य के लिए वाइसराय या उसके चाटुकारों के सिवा कौन ज़िम्मेदार हो सकता है ! इस पर भी हमारे देश में ऐसे लोग हैं, जो उसे भारत का मित्र कहते हैं।

देश के ऐसे भी लोग होंगे जिन्हें कांग्रेस के प्रति श्रद्धा नहीं, इससे वे कुछ आशा भी नहीं करते। यदि गांधी जी क्रांतिकारियों को इस श्रेणी में गिनते हैं तो वे उनके साथ अन्याय करते हैं। वे इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि कांग्रेस ने जन-जागृति का महत्वपूर्ण कार्य किया है। उसने आम जनता में स्वतन्त्रता की भावना जागृत की है, गोकि उनका यह दृढ़ विश्वास है कि जब तक कांग्रेस में सेन गुप्ता जैसे अद्भुत प्रतिभाशाली व्यक्तियों का, जो वायसराय की ट्रेन उड़ाने में गुप्तचर विभाग का हाथ होने की बात करते हैं, तथा अन्सारी जैसे लोग, जो राजनीति कम जानते हैं और उचित तर्क की उपेक्षा कर बेतुकी और तर्कहीन दलीलें देकर यह कहते हैं कि किसी राष्ट्र ने बम से स्वतंत्रता नहीं प्राप्त की आदि : जब तक कांग्रेस के निर्णयों में इनके विचारों का प्राधान्य रहेगा, देश उससे बहुत कम आशा कर सकता है। क्रांतिकारी तो उस दिन की प्रतीक्षा में हैं, जब कांग्रेस आंदोलन से अहिंसा की यह सनक समाप्त हो जायेगी और वह क्रांतिकारियों के कंधे से कंधा मिलाकर पूर्ण स्वतंत्रता के सामूहिक लक्ष्य की ओर बैठेंगे। इस वर्ष उन्होंने इस सिद्धांत को स्वीकार कर लिया है, जिसका प्रतिपादन क्रांतिकारी पिछले 25 वर्षों से करते चले आ रहे हैं। हम आशा करें कि अगले वर्ष वे उनके स्वतंत्रता प्राप्ति के तरीकों का भी समर्थन करेंगे।

गांधी जी यह प्रतिपादन करते हैं कि जब-जब हिंसा का प्रयोग हुआ है, तब-तब सैनिक खर्च बढ़ा है। यदि उनका मन्तव्य क्रांतिकारियों की पिछली 25 वर्षों की गतिविधियों से है तो हम उनके वक्तव्य को चुनौती देते हैं कि वे अपने इस कथन को तथ्य और आंकड़ों से सिद्ध करें। बल्कि हम तो यह कहेंगे कि उनके अहिंसा और सत्याग्रह के प्रयोगों का परिणाम, जिनकी तुलना स्वतंत्रता संग्राम से नहीं की जा सकती, नौकरशाही अर्थ-व्यवस्था पर हुआ है। आंदोलनों का, फिर वे हिंसात्मक हों या अहिंसात्मक, सफल हों या असफल, परिणाम तो भारत की अर्थ-व्यवस्था पर होगा ही।

देश में सरकार ने जो विभिन्न सुधार किये, गांधी जी उसका सम्बन्ध क्रांतिकारियों से क्यों जोड़ते हैं ? उन्होंने मार्लेमिण्टो रिफार्म, माण्टेग्यू रिफार्म या ऐसे ही अन्य सुधारों की न तो कभी परवाह की और न ही उनके लिए आंदोलन किया। ब्रिटिश सरकार

ने तो यह टुकड़े वैधानिक आंदोलनकारियों के सामने फेंके थे, जिससे उन्हें उचित मार्ग पर चलने से पथभ्रष्ट किया जा सके। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें तो यह घूस दी थी, जिससे वे क्रांतिकारियों को समूल नष्ट करने की उनकी नीति के साथ सहयोग करें। गांधी जी जैसाकि इन्हें सम्बोधित करते हैं, कि भारत के लिए ये खिलौने जैसे हैं, उन लोगों को बहलाने-फुसलाने के लिए, जो समय-समय पर होम रूल, स्वशासन, ज़िम्मेदार सरकार, पूर्ण ज़िम्मेदार सरकार, औपनिवेशिक स्वराज्य जैसे अनेक वैधानिक नाम जो गुलामी के हैं, मांग करते हैं। क्रांतिकारियों का लक्ष्य तो शासन सुधार का नहीं है, वे तो स्वतंत्रता का स्तर कभी का ऊंचा कर चुके हैं और वे उसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बिना किसी हिचकिचाहट के बलिदान कर रहे हैं। उनका दावा है कि उनके बलिदानों ने जनता की विचारधारा में प्रचंड परिवर्तन किया है। उनके प्रयत्नों से वे देश को स्वतंत्रता के मार्ग पर बहुत आगे बढ़ा ले गए हैं और यह बात उनसे राजनैतिक क्षेत्र में मतभेद रखने वाले लोग भी स्वीकार करते हैं।

गांधी जी का कथन है कि हिंसा से प्रगति का मार्ग अवरुद्ध होकर स्वतंत्रता का दिवस स्थगित होता जाता है, तो हम इस विषय में अनेक ऐसे उदाहरण दे सकते हैं, जिसमें जिन देशों ने हिंसा से काम लिया, उनकी सामाजिक प्रगति होकर उन्हें राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त हुई। हम रूस तथा तुर्की का ही उदाहरण लें। दोनों ने हिंसा के उपायों से ही सशस्त्र क्रांति द्वारा सत्ता प्राप्त की। उसके बाद भी सामाजिक सुधारों के कारण वहां की जनता ने बड़ी तीव्र गति से प्रगति की। एकमात्र अफगानिस्तान के उदाहरण से राजनैतिक सूत्र सिद्ध नहीं किया जा सकता, यह तो अपवाद मात्र है।

गांधी जी के विचार में 'असहयोग आंदोलन' के समय जो जन-जागृति हुई है, वह अहिंसा के उपदेश का ही परिणाम था,' परन्तु यह धारणा गलत है और यह श्रेय अहिंसा को देना भी भूल है, क्योंकि जहां भी अत्यधिक जन जागृति हुई, वह सीधे मोर्चे की कार्रवाई से हुई। उदाहरणार्थ, रूस में शक्तिशाली जन आंदोलन से ही वहां किसान और मज़दूरों में जागृति उत्पन्न हुई। उन्हें तो किसी ने अहिंसा का उपदेश नहीं दिया था, बल्कि हम तो यहां तक कहेंगे कि अहिंसा तथा गांधी जी की समझौता नीति से ही उन शक्तियों में फूट पड़ गई, जो सामूहिक मोर्चे के नारे से एक हो गई थीं। यह प्रतिपादित किया जाता है कि राजनीतिक अन्यायों का मुकाबला अहिंसा के शस्त्र से किया जा सकता है, पर इस विषय में संक्षेप में तो यही कहा जा सकता है कि यह अनोखा विचार है जिसका अभी प्रयोग नहीं हुआ है।

दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के जो न्यायोचित अधिकार माने जाते थे, उन्हें प्राप्त करने में अहिंसा का शस्त्र असफल रहा। वह भारत को स्वराज्य दिलाने में भी असफल रहा, जबकि राष्ट्रीय कांग्रेस स्वयंसेवकों की एक बड़ी सेना उसके लिए प्रयत्न करती रही तथा उस पर लगभग सवा करोड़ रुपया भी खर्च किया गया। हाल ही में बारदोली सत्याग्रह में इसकी असफलता सिद्ध हो चुकी है। इस अवसर पर सत्याग्रह के नेता गांधी और पटेल ने बारदोली के किसानों को जो कम से कम अधिकार दिलाने का आश्वासन दिया था, उसे भी वे न दिला सके। इसके अतिरिक्त अन्य किसी देशव्यापी आंदोलन की बात हमें मालूम नहीं। अब तक इस अहिंसा को एक ही आशीर्वाद मिला और वह था असफलता का। ऐसी स्थिति में यह आश्चर्य नहीं कि देश ने फिर उसके प्रयोग से इंकार कर दिया। वास्तव में गांधी जी जिस रूप में सत्याग्रह का प्रचार करते हैं, वह एक प्रकार का आंदोलन है, एक विरोध है, जिसका स्वाभाविक परिणाम समझौते में होता है, जैसाकि प्रत्यक्ष देखा गया है। इसलिए जितनी जल्दी हम समझ लें कि स्वतंत्रता और गुलामी में कोई समझौता नहीं हो सकता, उतना ही अच्छा है।

गांधी जी सोचते हैं 'हम नये युग में प्रवेश कर रहे हैं, परन्तु कांग्रेस विधान में शब्दों का हेर-फेर मात्र कर, अर्थात स्वराज्य को पूर्ण स्वतंत्रता कह देने से नया युग प्रारंभ नहीं हो जाता। वह दिन वास्तव में एक महान दिवस होगा, जब कांग्रेस देशव्यापी आंदोलन प्रारंभ करने का निर्णय करेगी। जिसका आधार सर्वमान्य क्रांतिकारी सिद्धांत होंगे। ऐसे समय तक स्वतंत्रता का झंडा फहराना हास्यास्पद होगा। इस विषय में हम सरलादेवी चौधरानी के इन विचारों से सहमत हैं, जो उन्होंने एक पत्र संवाददाता की भेंट में व्यक्त किए। उन्होंने कहा : "31 दिसम्बर 1929 की अर्धरात्रि के ठीक एक मिनट बाद स्वतंत्रता का झंडा फहराना, यह एक विचित्र घटना है। उस समय जी०ओ०सी०, असिस्टेन्ट जी०ओ०सी० तथा अन्य लोग इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि स्वतंत्रता का झंडा फहराने का निर्णय आधी रात तक अधर में लटका है, क्योंकि यदि वायसराय या सेक्रेटरी आफ स्टेट का कांग्रेस को यह सन्देश आ जाता है कि भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य दे दिया गया है तो रात्रि को 11 बजकर 59 मिनट पर भी स्थिति में परिवर्तन हो सकता था। इससे स्पष्ट है कि पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्ति का ध्येय नेताओं की हार्दिक इच्छा नहीं थी, बल्कि एक बाल-हठ के समान था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लिए उचित तो यही होता कि वह पहले स्वतंत्रता प्राप्त कर फिर उसकी घोषणा करती। यह सच है कि अब औपनिवेशिक स्वराज्य के बजाय कांग्रेस के वक्ता जनता के सामने पूर्ण स्वतंत्रता का ढोल पीटेंगे। वे अब जनता से कहेंगे कि जनता को उस संघर्ष के लिए तैयार हो जाना चाहिए जिसमें एक पक्ष तो मुक्केबाजी करेगा और दूसरा उन्हें केवल सहता रहेगा, जब तक कि वह खूब पिटकर इतना हताश हो जाये कि फिर न उठ सके। क्या उसे संघर्ष कहा जा सकता है और क्या इससे देश को पूर्ण स्वतंत्रता मिल सकती है ? किसी भी राष्ट्र के लिए सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्ति का ध्येय सामने रखना अच्छा है, परन्तु साथ में यह भी आवश्यक है कि इस लक्ष्य तक पहुंचने के लिए उन साधनों का उपयोग किया जाये जो योग्य हों और जो पहले उपयोग में आ चुके हों, अन्यथा सारे संसार के सम्मुख हमारे हास्यास्पद बनने का भय बना रहेगा।

गांधी जी ने सभी विचारशील लोगों से कहा कि वे लोग क्रांतिकारियों से सहयोग करना बन्द कर दें तथा उनके कार्यों की निन्दा करें, जिससे हमारे इस प्रकार उपेक्षित देशभक्तों की हिंसात्मक विचारधारा को बल न मिल सके और वे हिंसा की निरर्थकता और हिंसात्मक कार्यों से जो हानि हुई है, उसे समझ सकें। लोगों को उपेक्षित तथा पुरानी दलीलों के समर्थक कह देना जितना आसान है, उसी प्रकार उनकी निन्दा कर जनता से उनसे सहयोग न करने को कहना, जिससे वे अलग-अलग हो अपना कार्यक्रम स्थगित करने के लिए बाध्य हो जाएं। यह सब करना विशेष रूप से उस व्यक्ति के लिए आसान होगा जो कि जनता के कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों का विश्वासपात्र हो। गांधी जी ने जीवन भर जन-जीवन का अनुभव किया है, पर यह बड़े दुख की बात है कि वे फिर भी क्रांतिकारियों का मनोविज्ञान न तो समझते हैं और न समझना ही चाहते हैं। वह सिद्धांत अमूल्य है, जो प्रत्येक क्रांतिकारी को प्रिय है। जो व्यक्ति क्रांतिकारी बनता है, जब वह अपना सिर हथेली पर रखकर किसी क्षण भी आत्मबलिदान के लिए तैयार रहता है तो वह केवल खेल के लिए नहीं। वह यह त्याग और बलिदान इसलिए भी नहीं करता कि जब जनता उसके साथ सहानुभूति दिखाने की स्थिति में हो तो उसकी जै-जैकार करे। वह इस मार्ग का इसलिए अवलम्बन करता है कि उसका सद्विवेक उसे इसकी प्रेरणा देता है, उसकी आत्मा उसे उसके लिए प्रेरित करती है।

एक क्रांतिकारी सबसे अधिक तर्क में विश्वास करता है। वह केवल तर्क और तर्क में ही विश्वास करता है। किसी प्रकार का गाली-गलौज या निंदा, चाहे फिर वह

ऊंचे स्तर से की गई हो, उसे अपने निश्चित उद्देश्य प्राप्ति से वंचित नहीं कर सकती। यह सोचना कि यदि जनता का सहयोग न मिला या उसके कार्य की प्रशंसा न की गई तो वह अपने उद्देश्य को छोड़ देगा, निरी मूर्खता है। अनेक क्रांतिकारी, जिनके कार्यों की वैधानिक आंदोलनकारियों ने घोर निंदा की, फिर भी वे उसकी परवाह न कर फांसी के तख्ते पर झूल गये। यदि तुम चाहते हो कि क्रांतिकारी अपनी गतिविधियों को स्थगित कर दें तो उसके लिए होना तो यह चाहिए कि उनके साथ तर्क द्वारा अपना मत प्रमाणित किया जाये। यह एक और केवल यही एक रास्ता है, और बाकी बातों के विषय में किसी को सन्देह नहीं होना चाहिए। क्रांतिकारी इस प्रकार के डराने-धमकाने से कदापि हार मानने वाला नहीं।

हम प्रत्येक देशभक्त से निवेदन करते हैं कि वे हमारे साथ गम्भीरतापूर्वक इस युद्ध में शामिल हों। कोई भी व्यक्ति अहिंसा और ऐसे ही अजीबो-गरीब तरीकों से मनोवैज्ञानिक प्रयोग कर राष्ट्र की स्वतंत्रता के साथ खिलवाड़ न करे। स्वतंत्रता राष्ट्र का प्राण है। हमारी गुलामी हमारे लिए लज्जास्पद है, न जाने कब हममें यह बुद्धि और साहस होगा कि हम उससे मुक्ति प्राप्त कर स्वतंत्र हो सकें ? हमारी प्राचीन सभ्यता और गौरव की विरासत का क्या लाभ, यदि हममें यह स्वाभिमान न रहे कि हम विदेशी गुलामी, विदेशी झंडे और बादशाह के सामने सिर झुकाने से अपने आपको न रोक सकें !

क्या यह अपराध नहीं है कि ब्रिटेन ने भारत में अनैतिक शासन किया ? हमें भिखारी बनाया; तथा हमारा समस्त खून चूस लिया ? एक जाति और मानवता के नाते हमारा घोर अपमान तथा शोषण किया गया है। क्या जनता अब भी चाहती है कि इस अपमान को भुलाकर हम ब्रिटिश शासकों को क्षमा कर दें ! हम बदला लेंगे। जो जनता द्वारा शासकों से लिया गया न्यायोचित बदला होगा। कायरों को पीठ दिखाकर समझौता और शांति की आशा से चिपके रहने दीजिए। हम किसी से भी दया की भिक्षा नहीं मांगते हैं और हम भी किसी को क्षमा नहीं करेंगे। हमारा युद्ध विजय या मृत्यु के निर्णय तक चलता ही रहेगा। क्रांति चिरंजीवी हो।

करतार सिंह, प्रेज़ीडेंट

❑❑

भगतसिंह और उनके दोनों साथियों को फांसी लगने ही वाली है, यह सबकी राय थी। उसे किसी तरह कुछ दिन के लिए रोकना चाहिए, जिससे व्यापक रूप से उन्हें फांसी से बचाने का प्रयत्न हो सके, यह 'लाहौर षड़यंत्र-केस-डिफेंस कमेटी' के कानून-विशारदों की राय थी। इसका एक ही उपाय था कि भगतसिंह और उनके साथी गवर्नर से दया की प्रार्थना करें, पर भगतसिंह कभी भी इसके लिए तैयार नहीं हो सकते, इसे सब जानते थे।

श्री प्राणनाथ मेहता, एडवोकेट की बात भगतसिंह मानते थे। वे 19 मार्च, 1931 को जेल में भगतसिंह और उनके दोनों साथियों से मिले। घुमा-फिराकर उन्होंने उनसे 'मर्सी-पिटीशन' (दया-प्रार्थना)की बात कही और विश्वास दिलाया कि यदि आप लोग 'हां' कह दें, तो हम पिटीशन की भाषा ऐसी कर देंगे कि उससे आपका ज़रा भी सम्मान कम न हो। दूसरे दोनों साथी तो इससे नाराज हुए, पर भगतसिंह ने इसे मान लिया और कहा--अच्छी बात है, तुम तैयार कर लाओ मर्सी-पिटीशन।

श्री प्राणनाथ खुशी-खुशी लौटे और कई कानून-विशारदों के साथ रात भर मर्सी-पिटीशन का ड्राफ्ट बनाते रहे। दूसरे दिन 20 मार्च, 1931 को जब वे जेल गये तो भगतसिंह ने कहा--हमने तो भेज भी दिया गवर्नर पंजाब को अपना मर्सी-पिटीशन, और उन्होंने निम्नलिखित पत्र उनके हाथ पर रख दिया।

'फांसी नहीं, हमें गोली से उड़ाया जाए'

आदरणीय महोदय,

सेवा में सविनय निवेदन है कि भारत की ब्रिटिश-सरकार के सर्वोच्च अधिकारी वायसराय ने एक विशेष अध्यादेश जारी करके लाहौर षड़्यंत्र अभियोग की सुनवाई के लिए एक विशेष न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल) को स्थापित किया था, जिसने अक्तूबर, सन् 1930 में हमें फांसी का दंड सुनाया। हमारे विरुद्ध सबसे बड़ा दोष यह लगाया गया है कि हमने सम्राट जार्ज पंचम के विरुद्ध युद्ध किया है। न्यायालय के इस निर्णय से दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं--प्रथम यह कि अंग्रेज़ जाति और भारतीय जनता के मध्य एक युद्ध चल रहा है, दूसरे यह कि हमने निश्चित रूप से उस युद्ध में भाग लिया है। अतः हम राजकीय युद्धबन्दी हैं। यद्यपि इसकी व्याख्या में बहुत सीमा तक अतिशयोक्ति से काम लिया गया है, तथापि हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि ऐसा करके हमें सम्मानित किया गया है।

प्रथम व्याख्या पर हम ज़रा विस्तार के साथ प्रकाश डालना चाहते हैं। हमारे विचार से प्रत्यक्ष रूप में ऐसी कोई लड़ाई छिड़ी हुई नहीं है और हम नहीं जानते कि युद्ध छिड़ने से न्यायालय का आशय क्या है, परन्तु हम इस व्याख्या को स्वीकार करते हैं। इसके साथ ही हम इसको इसके ठीक अर्थों में समझना चाहते हैं।

हम यह कहना चाहते हैं कि युद्ध छिड़ा हुआ है और यह युद्ध तब तक चलता रहेगा, जब तक कि शक्तिशाली व्यक्ति भारतीय जनता और श्रमिकों की आय के साधनों पर अपना एकाधिकार जमाये रखेंगे। चाहे ऐसे व्यक्ति अंग्रेज़ पूंजीपति, अंग्रेज़ शासक या सर्वथा भारतीय ही हों। उन्होंने आपस में मिलकर एक छूट जारीकर रखी है। यदि शुद्ध भारतीय पूंजीपतियों के द्वारा ही निर्धनों का खून चूसा जा रहा हो, तब भी इस स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता। यदि आपकी सरकार कुछ नेताओं या भारतीय समाज के मुखियाओं पर प्रभाव जमाने में सफल हो जाये, कुछ सुविधायें मिल जायें अथवा समझौते हो जायें, उससे भी स्थिति नहीं बदल सकती। जनता पर इन सब बातों का प्रभाव बहुत कम पड़ता है।

इस बात की भी हमें चिन्ता नहीं है कि एक बार फिर युवकों को धोखा दिया गया है और इस बात का भी भय नहीं है कि हमारे राजनैतिक नेता पथभ्रष्ट हो गये हैं और वे समझौते की बातचीत में इन निरपराध, बेघर और निराश्रित बलिदानियों को भूल गये हैं, जिन्हें दुर्भाग्य से क्रान्तिकारी पार्टी का सदस्य समझा जाता है। हमारे राजनैतिक नेता उन्हें अपना शत्रु समझते हैं, क्योंकि उनके विचार में वे हिंसा में विश्वास रखते हैं। हमारी वीरांगनाओं ने अपना सब कुछ बलिदान कर दिया है। उन्होंने बलिवेदी पर अपने पतियों को भेंट किया, उन्होंने अपने-आपको भी न्यौछावर कर दिया, परन्तु आपकी सरकार उन्हें विद्रोही समझती है। आपके एजेंट भले ही झूठी कहानियां बनाकर उन्हें बदनाम कर दें और पार्टी की ख्याति को हानि पहुंचाने का प्रयास करें, परन्तु यह युद्ध चलता रहेगा।

हो सकता है कि यह युद्ध भिन्न-भिन्न दशाओं में भिन्न-भिन्न स्वरूप ग्रहण करे। कभी यह युद्ध प्रकट रूप ले ले, कभी गुप्त दशा में चलता रहे, कभी भयानक रूप धारण कर ले, कभी किसान के स्तर पर जारी रहे और कभी यह युद्ध इतना भयानक हो जाए कि जीवन और मरण की बाज़ी लग जाये। चाहे कोई भी परिस्थिति हो, इसका प्रभाव आप पर पड़ेगा।

यह आपकी इच्छा है कि आप जिस परिस्थिति को चाहें चुन लें, परन्तु यह

(शेष पृष्ठ 148 पर)

1916 की लखनऊ सभाएं

K.-W.
NOTES AND ORDERS
CONFIDENTIAL.
File no. 214 of 1917.
1918
GOVERNMENT, UNITED PROVINCES.
GENERAL ADMINISTRATION DEPARTMENT.
MARCH.
A Proceedings—nos. 1 to 17.
TABLE OF CONTENTS.

पराधीन भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति और व्यापक जनाधार तैयार करने की दृष्टि से प्रमुख भारतीय राजनेता पूरे देश का दौरा कर सभाएँ आयोजित करते थे। ब्रिटिश शासन ऐसी सभी सभाओं पर कड़ी दृष्टि रखता और उनकी खुफ़िया रपट तैयार करता था। सन् 1916, में जब तिलक लखनऊ आए तो 'संयुक्त प्रान्त' की तत्कालीन सरकार ने उनकी प्रत्येक गतिविधि पर न केवल अपनी नज़र रखी बल्कि उसकी एक गुप्त रपट भी तैयार की। तिलक का आगमन अंग्रेजों के लिए सिरदर्द तो था ही, साथ ही उन्हें भयभीत करने वाला भी था। प्रस्तुत अंश ब्रिटिश सरकार की उसी खुफ़िया रपट से अनूदित हैं :--

लखनऊ में आयोजित विभिन्न सभाएँ
रिपोर्ट-- III

26-12-96 -- थिओसोफिकल सभा

5. पूना के श्री बाल गंगाधर तिलक 25 दिसम्बर को मध्यान्ह में (लखनऊ) पहुँचे। यद्यपि उनके स्वागत के लिए किसी समारोह का आयोजन नहीं किया गया था फिर भी काँग्रेस कार्यकर्ताओं ने उनकी बग्घी को कैम्प तक स्वयं खींचा। 'तिलक महाराज की जय' और 'वन्दे मातरम्' के उद्घोषों से रास्ते भर उनका स्वागत् हुआ। उनके अन्तरंग मित्र श्री खापरडे (अमरावती के वकील) और बंबई के डा० दिनकर घोंडो साठ्ये उनके साथ थे।

6. एक छात्र हारमोनियम की संगत पर 'जननी हमार, बंग हमार, देश हमार' और 'हम हिन्दुस्तान के, हिन्दुस्तान हमारा है' जैसे राष्ट्रगीत गा रहा है।

संदिग्ध व्यक्ति

निम्नलिखित नये व्यक्ति इस सम्मेलन में थे :--

पंजाब के लाल चंद फलक, कलकत्ता से श्री बरोदा चरन बसु के पुत्र शचीन्द्र प्रसाद बसु और नवीन चंद्र चटर्जी के पुत्र सतीश चंद्र चटर्जी आए-- इन दोनों को ही वर्ष 1908 में 'रेगुलेशन-3' के तहत 'डिपोर्ट' किया गया था; ज्वालापुर महाविद्यालय के पं. नरदेव शास्त्री, गुरुकुल के एम.ए.-- बाबू बालकृष्ण; लाहौर के चौधरी रामभज दत्त; लुधियाना के स्वामी सत्यदेव; फिरोज़पुर के बाबू रामराखा मल; इलाहाबाद के बाबू गिरधारी लाल; इलाहाबाद के ही पं. रमाकान्त मालवीय भी नए आगन्तुक थे।

लखनऊ की सभाएँ
रिपोर्ट IV

काँग्रेस

राष्ट्रीय काँग्रेस की उद्घाटन सभा के विषय में मिलने वाली रिपोर्ट यों तो रंगहीन हैं परंतु दो बिन्दु ग़ौरतलब हैं :-
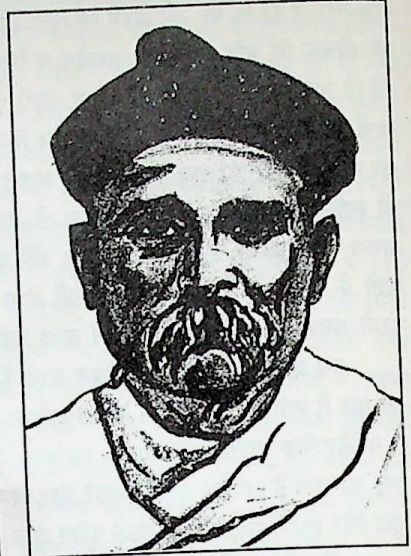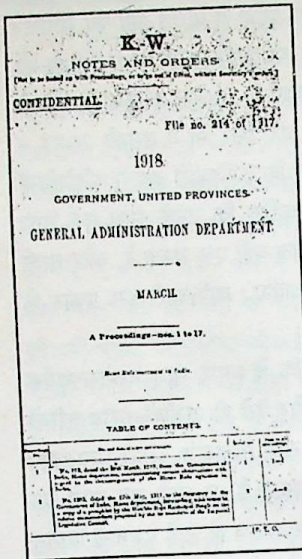
(1) राष्ट्रीय नेताओं को दिया जानेवाला स्वागत (और सम्मान)

(2) अपने भाषणों में ब्रिटिश सरकार की मुखालफ़त करने पर आने वाली प्रतिक्रिया।

सभी राष्ट्रीय नेताओं में बाल गंगाधर तिलक को ही सर्वाधिक उत्साहपूर्ण स्वागत मिला है। 'वन्दे मातरम्' और 'तिलक महाराज की जय' के उद्घोष के मध्य वे अपने आसन को ग्रहण करने के लिए बढ़े। तिलक के चरण स्पर्श के लिए लालायित जनता ने उनके आगे बढ़ने में अवरोध उत्पन्न कर दिया... वे सभी के ध्यानाकर्षण और उत्सुकता का केन्द्र बने रहे।

मैंने अपनी पिछली रिपोर्ट में श्री तिलक को लखनऊ पहुँचने पर दिए गए स्वागत का उल्लेख किया है। यहाँ पर मैं एक घटना का उल्लेख करने की अनुमति चाहूँगा। ऐसा प्रतीत होता है कि काँग्रेस पदाधिकारियों ने श्री तिलक को रेलवे स्टेशन पर 'रिसीव' करने के बाद चुपचाप उन्हें उनके निर्धारित आवास स्थल पर पहुँचाने का निर्णय लिया था। परंतु पार्टी के कार्यकर्ताओं और स्टेशन पर उपस्थित जनता को ये तरीका नागवार लगा। इन लोगों ने पहले तो काँग्रेसी पदाधिकारियों से--श्री तिलक को बग्घी पर बिठाकर और उसे स्वयं घसीटकर उनके आश्रय स्थल पर पहुँचाने की अनुमति माँगी। परंतु काँग्रेस पदाधिकारी उन्हें एक मोटर कार में चुपचाप बिठाकर ले जाना चाहते थे। जब जनता को लगा कि उसकी मंशा पूरी न हो सकेगी तब उनमें से कुछ गरम मिज़ाज लोगों ने अपना मकसद पूरा करने के लिए मोटर कार के टायर ही काट डाले। अब श्री तिलक को कैम्प तक ले जाने के लिए बग्घी में ले जाने के अलावा कोई चारा न था...

ब्रिटिश हुकूमत की खुफ़िया रिपोर्टों में दर्ज इन घटनाओं से जहाँ ये पता लगता है कि देश की भोली-भाली जनता अपने नेताओं से अगाध प्रेम रखती थी और उनमें उसका अटूट विश्वास था, वहीं इससे इस बात का भी खुलासा होता है कि अंग्रेज भारत में अपनी स्थिति के प्रति बहुत आश्वस्त न थे। उक्त रिपोर्ट उनके चौकन्नेपन की निशानी है जिसमें छोटी से छोटी बातों को भी दर्ज किया गया है।

○ प्रस्तुति-- ललित मोहन
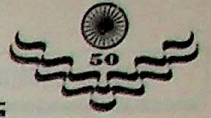
क्रान्तिकारी नेता अल्लूरि सीताराम राजु

○ डॉ० विजय राघव रेड्डी

जिस महान उद्देश्य को लेकर सन् 1857 का प्रथम स्वतंत्रता-संग्राम हुआ था, उसकी पूर्ति भले ही उस समय नहीं हुई हो, फिर भी उस संग्राम की ज्वाला उस समय से लेकर स्वतंत्रता की प्राप्ति तक देश के किसी न किसी कोने में, किसी न किसी प्रांत में, किसी न किसी दल में निरंतर जलती ही रही और उचित अवसर पाकर, या योग्य नायक का नेतृत्व पाकर प्रज्ज्वलित रूप धारण करती रही और अंग्रेज-शासन-तंत्र को झकझोरती रही। परंतु वह ज्वाला कई बार प्रज्ज्वलित हुई और कई बार उसने अनेक गोरे शासकों को भस्म कर दिया। जिस वर्ष प्रथम स्वतंत्रता संग्राम हुआ, उसी वर्ष वर्तमान पूर्व गोदावरी जिले के रंपचोडवरम् तहसील में अंग्रेज-शासन के प्रति विद्रोह हुआ जो कि 'रंप-विद्रोह' नाम से विख्यात है। सन् 1886 में वर्तमान विशाखापटनम जिले की गूडेम तहसील में वहाँ के प्रधानतः रहने वाले आदिम जाति के लोगों ने मिलकर एक विद्रोह किया जो कि 'गूडेम विद्रोह' कहलाता है। इसी प्रकार 1879 में 'मन्यम् विद्रोह' और 1916 में 'लागरायि विद्रोह' भी हुए हैं।

इसके बाद 1922 में वर्तमान श्रीकाक्कुलम और गंजाम (उड़ीसा) जिले में रहने वाले शवर आदिम जाति के लोगों ने अंग्रेज शासन की दमन-नीति का विरोध करते हुए क्रांति मचाई। इसी को 'शबर-क्रांति' कहते हैं। योग्य नायक के नेतृत्व और सुनियोजित कार्यक्रम के अभाव में ये विद्रोह भयंकर रूप धारण नहीं कर सके। लेकिन इसी वर्ष अगस्त मास में साहसी, अनन्य देश-प्रेमी और क्रांतिकारी नेता अल्लूरि सीताराम राजु के नेतृत्व में राष्ट्र-भक्ति की भावना से प्रेरित होकर गंजाम, श्रीकाक्कुलम, पूर्व गोदावरी और पश्चिम गोदावरी जिलों की जनता और इन प्रान्तों के पहाड़ों में रहने वाले कोय-जाति के लोगों ने जिस क्रांति का श्रीगणेश किया था, वह दो वर्षों तक अबाध गति से चलती रही, और इसने अत्यंत भयंकर रूप धारण कर लिया, जिसके कारण अंग्रेज शासक तिलमिला उठे। लंबी अवधि, विस्तृत भू-भाग में व्याप्त होने, सुनियोजित नेतृत्व, साहसिक कार्यों और अनन्य देश-भक्ति की भावना से प्रेरित होने के कारण यह क्रांति भारतवर्ष के स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में एक विशिष्ट स्थान रखती है और इसका परिचय पाकर देश का प्रत्येक नागरिक गौरव का अनुभव कर सकता है।

इस भयानक क्रांति के नेता श्री अल्लूरि सीताराम राजु का जन्म 4 जुलाई, 1897 में पश्चिम गोदावरी जिले के भीमवरम तहसील में मोगल्लु नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता वेंकटराम राजु स्वतंत्र विचार रखने वाले थे, अतः वे अपने माता-पिता के आदेश के विरुद्ध अंग्रेजी शिक्षा छोड़कर अपना प्रिय विषय चित्र लेखन में निपुणता पाने के लिये बंबई गए और वहाँ से लौटकर राजमहेन्द्रवरम् (राजमुंदरी) में उन्होंने अपना एक फ़ोटो स्टूडियो खोल दिया था। वेंकटराम राजु स्वयं स्वतन्त्र विचार रखनेवाले होने के कारण उन्होंने अपने पुत्र राम राजु को बचपन से ही ऐसी शिक्षा दी, जिससे कि बाल्य काल से ही राम राजु में अंग्रेज शासन के प्रति द्वेष भावना और देश को स्वतंत्र करने की आकांक्षा जागृत हुई थी। राम राजु की आठ वर्ष की आयु में ही उनके पिता का देहान्त हो गया। माता नारायणम्मा ने अनेक तकलीफ़ों को झेलकर उन्हें प्राईमरी तक पढ़ाया। बाद में राम राजु ने काकिनाड़ा
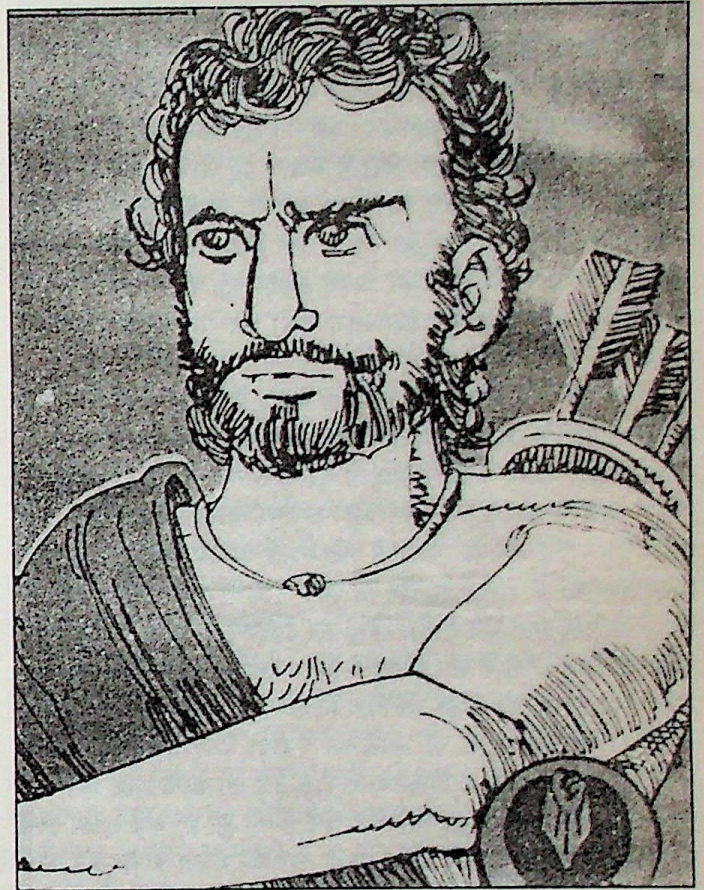
क्रांतिकारी नेता अल्लूरि सीताराम राजु, 1997 जिनका जन्म शताब्दी वर्ष है

के पीठापुरम राज के महाविद्यालय में आठवीं कक्षा तक अध्ययन किया। गरीब होने के कारण उन्हें वहाँ छात्रवृत्ति दी जाती रही। राजु को तत्कालीन शिक्षा-पद्धति से संतोष न था। वे प्रायः विद्यालय के बाहर जाकर कहीं एकांत में बैठकर घंटों सोचते कि इस शिक्षा से जो कि समाज के उद्धार के काम में नहीं आती, क्या फ़ायदा है ? इनके मन में शिक्षा त्यागकर संन्यास ग्रहण कर तदारा समाज के उद्धार करने की तीव्र इच्छा उदित हुई। एक धनवान मित्र के अनुरोध पर वे काकिनाड़ा छोड़कर विशाखापट्टनम चले गये और वहाँ के ए०वी०एन० कालेज में प्रवेश लिया। यहाँ आने पर उनकी आर्थिक स्थिति तो सुधर गई, किन्तु मानसिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया, और इसी कारण वे परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गए। राजु के चाचाजी, जो उस समय नरसापुर में नायब कलेक्टर थे, उन्हें अपने यहाँ बुलाकर वहीं पर विद्यालय में प्रवेश कराया। राजु का मन वहाँ भी पढ़ाई में नहीं लगता था, वे सदा कक्षाओं में अनुपस्थित रहा करते थे। चाचाजी ने क्रुद्ध होकर उन्हें एक दिन पीटा तो वे वहाँ से भाग गए और पूर्व-गोदावरी जिला तुनि के विद्यालय में प्रवेश लिया।

यहाँ भी वे कक्षाओं में अनुपस्थित रहा करते थे और आसपास के पहाड़ों में घूमा करते थे। राजु की इस आदत को छुड़ाने के लिए अध्यापकों ने अनेक प्रयत्न किए किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। आखिर एक दिन प्राध्यापक ने उन्हें इसी कारण से पीटा। बस, राजु ने सदा-सदा के लिये स्कूल जाना छोड़ दिया। किंतु स्कूल छोड़ने पर भी वे निजी परिश्रम से तेलुगु, हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी में प्रवीण हो गये।

देश की तत्कालीन दयनीय स्थिति से प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करने के उद्देश्य से उन्होंने हिमालय तक पैदल यात्रा की। इसी यात्रा में उनकी प्रख्यात क्रांतिकारी वीर 'पृथ्वी सिंह' से भेंट हुई और उनके साथ ही चिटगाँव जाकर उन्होंने क्रांतिकारियों की गोपनीय बैठक में भाग लिया। इस बैठक के बाद वे विशाखापटनम लौट आए और अपने एक मित्र के यहाँ रहने लगे। वहाँ मित्र की बहन सीता पर अनुरक्त हुए। किन्तु किन्हीं कारणों से उन दोनों में अनबन हुई तो वे नासिक यात्रा पर चले गए। राजु के जाते ही सीता बीमार पड़ गई और उनके लौटने के दो दिनों के बाद ही उनकी मृत्यु हुई। राजु का मन विचलित हुआ। संसार से विरक्त होकर उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया और अपनी प्रेयसी सीता की यादगार में उन्होंने अपने नाम के आगे सीता जोड़ लिया। इस प्रकार राम राजु सीताराम राजु बन गये।

कुछ समय तक उन्होंने वही पहाड़ों में तपस्या की। इससे उन्हें संतोष नहीं हुआ। उन्हें लगा कि देश को पराधीनता की श्रृंखला से विमुक्त करने का व्रत संन्यास के व्रत से कहीं अधिक अच्छा है। तब से तपस्या त्यागकर वे वहाँ के आदिवासी "कोय" लोगों के कल्याण में लग गए। कोय लोग पूर्वी-घाटियों के उत्तर के पहाड़ों में रहते हैं। ये दीर्घ काय, तीर चलाने में अति निपुण, अधिक परिश्रमी, स्वेच्छाप्रिय, विविध औषधियों के ज्ञाता, जादू-टोने की क्रिया में विशेषज्ञ और निर्मल हृदय के होते हैं। ये राम भक्त होते हैं और हिन्दू देवी-देवताओं में अटल विश्वास रखते हैं। इनको ईसाई बनाने के लिये अंग्रेजों ने अनेक प्रलोभन दिए और अनेक प्रयत्न किए। इनके सामने अपना कुछ नहीं चला तो अंग्रेजों ने इनसे बेगार लेना, इनके आजीविका के साधन जंगलों को अपने वश में लेकर उनमें इनका प्रवेश वर्जित करना आदि अनेक प्रकार के हिंसात्मक कार्यों से उन्हें तंग करना प्रारंभ किया था। पहाड़ों में दूर-दूर तक फैले हुए छोटे-छोटे गाँवों में बसे हुए इन अबोध कोय लोगों को संगठित कर राजु ने इनमें राष्ट्रीय एकता और गोरे शासन का उन्मूलन करने का प्रबंध किया। कोय लोगों के साथ रहकर इन्होंने तीर चलाना, तलवार चलाना, भाला फेंकना, बंदूक चलाना आदि सीखा और इन्हें गोरिल्ला युद्ध में शिक्षा दी, फिर इन्होंने घोषणा की कि क्रांति हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। इस प्रकार कोय लोगों में अपरिमित उत्साह फूँक देने के कारण इन्हें वे लोग अपर श्रीराम की भाँति देखने लगे। कोय लोगों ने कृष्णदेवी पेटा में (नरसीपट्टनम् तहसील) राजु के लिए एक रामालय की स्थापना की और इसी रामालय में वे कुछ समय तक रहने लगे।

आदिवासी कोय लोगों के प्रत्येक दल के लिए एक नायक रहता था जो अपने दल के लोगों की रक्षा का भार वहन करता था। अंग्रेज शासकों ने अपनी कूटनीति से इस प्रकार के अनेक नायकों को प्रलोभन देकर उन्हें कोय लोगों से अलग कर उन्हें "मुठादार" (मुठा-दल) की पदवी दी जिनको कोय लोगों से कर आदि वसूल करने में तहसीलदारों की सहायता देना और सरकारी कामों के लिए मजदूरों को भेजना आदि कार्य करने पड़ते थे। इन मुठादारों के भरणपोषण के लिये सरकार पर्याप्त धन देती थी। इस प्रकार जो पहले इनके नायक थे, अब मुठादार बनकर अंग्रेज शासकों के एजेन्ट बन बैठे और इनके कारण कोय लोगों की स्थिति और अधिक दयनीय होने लगी। उन दिनों इस प्रान्त के तहसीलदार एक अंग्रेज थे, जिनका नाम "बास्टिन" था। ये रिश्वतखोर, नीच और निर्दयी थे। ये लोगों को नाना प्रकार से सताने लगे। निरपराधी कोय लोगों पर निष्कारण कोई न कोई अपराध डालकर आदालतों में घसीटते थे, उनकी जमीन-जायदाद ज़ब्त करते थे और अधिक जुर्माना लगाकर उनको कठिन सजा देते थे। कोय लोगों में "गामु गंटमदोरा" और "गामु मल्लु दोरा" नाम के दो भाई थे, जो अधिक शक्तिशाली और स्वतंत्र प्रिय थे। इन पर कोय लोगों की असीम श्रद्धा थी। बॉस्टिन की प्रेरणा से वहाँ के मुठादार इनको तंग करने लगे, और उनकी खेती छीन ली। इस कारण जनता में उन मुठादार और तहसीलदार बॉस्टिन के प्रति द्वेष भावना फैल गई। जनता इन "गामु भाइयों" का पक्ष में हो गई और मुठादार से बदला लेने की ताक में थी।

अंग्रेजों के शासन से इस प्रकार त्रस्त कोय लोगों के कल्याण के लिए गामु भाइयों की सहायता से राजु ने एक योजना तैयार की। एक दिन कोय लोगों को एकत्र कर उन्होंने अपनी योजना सुनाई। सब ने मुक्त कण्ठ से उस योजना के अनुसार कार्य करने के लिए वचन दिया। इस योजना के अनुसार उन्होंने पंचायती राज्य की स्थापना की। इसमें जाति, धर्म और सम्पन्नता आदि के भेद-भाव के विना सब को समान रूप से प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की। कोय लोगों ने राजु के सामने सामूहिक रूप से प्रतिज्ञा की, कि वे अपने लड़ाई-झगड़ों का फैसला इस पंचायत में ही तय कर लेंगे और सरकारी अदालतों में कदापि नहीं जायेंगे। किसी भी सरकार को किसी प्रकार का कर नहीं देंगे। निश्चित और निर्धारित रूप में वे कर आदि पंचायत को ही देंगे, सरकारी मजूरी वे नहीं करेंगे। राजु के कथनानुसार शराब पीना कल्याणप्रद नहीं है, अतः वे शराब नहीं पीएँगे। इस प्रकार की प्रतिज्ञा कर इसका पालन करते रहने से सरकार को अधिक नुकसान हुआ। इस कारण सरकार ने राजु को राजद्रोही घोषित किया और उन्हें पकड़ कर नरसीपट्टनम् लाकर वहाँ जासूसों के बीच रख दिया। उनको आदेश दिया गया कि वे सरकारी आदेश पाए बिना नरसीपट्टनम् से बाहर कहीं नहीं जा सकेंगे। उस समय वहाँ फजुल्लुल्ला खाँ नायब कलेक्टर थे और ये राजु के पिता के मित्र थे, अतः वे स्वयं राजु के पास आकर उन्हें समझा-बुझाकर उनके भरण-पोषण के लिए 60 एकड़ की जमीन दिलाई और उसकी खेती-बाड़ी की व्यवस्था भी मुठादार की ओर से मुफ़्त में करवाई। किंतु बहुत दिन तक राजु इस बन्धन में रह नहीं सके। उन्होंने फजुल्लुल्ला खां को एक पत्र लिखकर यह निवेदन किया कि अब वे कोय लोगों से नहीं मिलेंगे और वे पूर्णतः संन्यास लेकर नेपाल जाएँगे और उन्हें नरसीपट्टनम् से छोड़ दिया जाए। फजुल्लुल्ला खां ने उनके बन्धन हटवाए। अपनी 60 एकड़ जमीन गरीब लोगों में बाँटकर नेपाल जाने के लिए वे नरसीपट्टनम् छोड़कर छद्म रूप से पुनः कोय लोगों से मिलकर वहीं रहने लगे। राजु के नेपाल जाने की बात सुनकर सरकार की दमन-नीति दिन ब दिन बढ़ने लगी। वह कोय लोगों को अपने वश में करने के लिए उन्हें पुनः अनेक प्रकार से सताने लगी। बॉस्टिन और सरकारी ओवरसीयर "संतानम पिल्लै" को कोय लोगों को रास्ते में लाने के लिए एक युक्ति सूझी। अधिक मजूरी देने की आशा दिखाकर उन्होंने एक दिन कोय लोगों को सरकारी काम पर बुलाया। काम समाप्त होने पर शाम को मजूरी न देकर उन्होंने सब लोगों को जिनमें स्त्री और बच्चे भी थे, निर्दयता से पिटवाया। उन्हें नंगा करके छोड़ दिया गया। यह समाचार सुनकर कोय जनता में रोष की आग फैल गई। दूसरे दिन राजु के सामने सबने एकत्र होकर यह संकल्प कर लिया कि वे अंग्रेज लोगों को इसका उचित दंड देंगे। जब तक उन्हें भारत से भगाएँगे नहीं, तब तक सुख की नींद नहीं लेंगे।

नरसीपट्टनम छोड़कर आने के बाद राजु ने कोय लोगों को एक सायुध (सशस्त्र) क्रांतिकारी दल और दूसरा निरायुध (शस्त्र-रहित) क्रांतिकारी दल नामक

दो दलों में विभाजित किया था। प्रथम दल में बलशाली और युवक सम्मिलित किए गए। इस दल को उन्होंने बंदूक चलाना, तलवार युद्ध, भाला फेंकना, तीर चलाना आदि सुनियोजित ढंग से सिखाकर उन्हें गोरिल्ला युद्ध में सिद्धहस्त बनाया था। इस दल के कुछ प्रखर बुद्धिवालों को जासूसी कार्य सौंप दिया था जो सरकार की प्रत्येक गतिविधि और कार्यवाही का पता तुरंत राजु के पास पहुँचाने में कुशल हो गए थे। दूसरे दल में किसान, मजदूर और वृद्ध सम्मिलित किए गए थे जो हड़ताल, असहयोग करने में और प्रथम दल के लोगों के खाने-पीने की व्यवस्था करने में काम आते थे। इस प्रकार अपने आपको सशक्त बनाकर राजु ने निश्चय किया कि अब सरकार पर वे हमला कर सकते हैं।

सरकारी संचालन का मुख्य अंग पुलिस विभाग है। अतः राजु ने यह निश्चय किया था कि सर्वप्रथम पुलिस स्टेशनों पर आक्रमण कर, वहाँ की अस्त्र-शस्त्र सामग्री को अपने वश में कर लेना अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए वे दिन-रात अपनी शक्ति को बढ़ाते रहे। एक दिन 12 अगस्त, 1922 की रात के समय "गांधीजी की जय" "भारत माता की जय" नारे लगाते हुए सशक्त कोय लोगों ने राजु के नेतृत्व में चिंतपल्ली पुलिस स्टेशन पर हमला बोल दिया। राजु के दोनों ओर दो वीर गामुगंढमु दोरा और गामुमल्लु दोरा थे और पीछे अन्य सैनिक बंदूक, तलवार और तीर कमान लेकर। थोड़ी देर तक लड़ाई होने पर पुलिस हार गई। राजु ने सीधे स्टेशन में प्रवेश किया। वहाँ के कोतवाल से स्टेशन के सारे रिकार्ड मँगवाये। रिकार्डों के अनुसार उस स्टेशन में जितनी भी अस्त्र-शस्त्र सामग्री थी, सब अपने वश में कर उस रिकार्ड में प्राप्ति की सूचना देते हुए हस्ताक्षर किये। उस सामग्री को अपने अनुचरों में बाँट दिया। वहाँ के रिकार्डों में लोगों पर जो गलत-सलत अभियोग दर्ज थे, उन्हें कोतवाल के सामने ही जला दिया। यहाँ से निकल कर रास्ते में कृष्णदेवी पेटा पुलिस स्टेशन पर आक्रमण किया और वहाँ से भी इसी प्रकार सारी अस्त्र-सामग्री अपने वश में कर वहाँ से चलने लगे तो कृष्णदेवीपेटा की सारी जनता ने राजु की जय-जय कार करते हुए उनका अनुसरण किया। इन दोनों आक्रमणों से राजु के अनुचर कोय जनता का उत्साह द्विगुणीकृत हो गया। सरकार ने भयभीत होकर राजु को और उनके अनुचरों को पकड़ने के लिए बाहर से हज़ारों पुलिस बुलाई। उन दुर्गम पहाड़ों में पुलिस राजु और उनके अनुचरों को ढूँढ़ते हुए दिन-रात घूमने लगी। फिर बारह दिनों के बाद 24 अगस्त, 1922 को राजु ने राजओम्मेगी पुलिस स्टेशन पर हमला किया और वहाँ की अस्त्र-सामग्री को अपने अधीन कर लेने के बाद लागरायी विद्रोह के नेता "वीरय्या दौरा" को, जो वहाँ कैद थे, छुड़वाया। तब से वीरय्या भी राजु का सहचर बन गया।

राजु और उनके अनुचर रातों में हमला करते और अपनी गुप्त बैठकों को करते और दिन भर मजदूरों का वेष धारण कर गाँवों में किसी काम में लग जाते। पुलिस इन क्रांतिकारियों को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते परेशान हो जाती थी। जब दिन में पुलिस इन्हें ढूँढ़ती रहती तब कहीं से तीर आकर उनके सामने गिरते और तीरों के साथ लाल मिर्च के साथ लपेटा हुआ पत्र भी होता था जिसमें क्रांतिकारियों की प्रतिज्ञा लिखी रहती थी। मिर्च के साथ लपेटे रहने के कारण इन पत्रों को 'मिर्चवाली डाक' (मिरपकाय टापा) कहते थे। इस मिर्चवाली डाक से पुलिस अधिक भयभीत होती थी। दिन भर घूमकर बिचारी पुलिस रात के समय अपना खाना खाकर गहरी नींद में रहती थी, तब कहीं से आकर क्रांतिकारी उन पर कूद पड़ते और उनकी बंदूक और रसद छीन लेते। कभी-कभी दिन में भी क्रांतिकारी वहीं छिपे रहकर खूंख्वार जानवरों की आवाज़ निकालते, जिन्हें सुनकर पुलिस अपने सारे सामान छोड़कर भाग खड़ी होती। राजु जब भी सरकारी संचालन तंत्र पर आक्रमण करते, किसी भी सरकारी व्यक्ति को मारते नहीं थे। उन्होंने अपने अनुचरों को भी यही आदेश दिया था कि किसी को भी मारना नहीं, हमारा उद्देश्य किसी की जान लेने का नहीं है, अपितु सरकार को आतंकित कर अंग्रेजों को यहाँ से भगाना है। 24 सितम्बर, 1922 को दो गोरे सेनापति 'हैटर' और 'स्काट क्कर्ड' विशेष सेना को लेकर राजु को पकड़ने के लिए आ रहे थे। यह समाचार पाकर गामुमल्लु दौरा और गामुगंढम दौरा कुछ अनुचरों को लेकर गए और रास्ते में ही उन दोनों को तीर से निशाना बनाकर मार डाला। उन दोनों को मरते देख बाकी सेना भाग गयी। जब राजु को यह बात मालूम हो गई तब वे अधिक क्षुब्ध हुए और उन्होंने गामु भाइयों को अच्छी तरह फटकारा। बाद में उन दोनों की लाशें पुलिस के हवाले कर दी गईं। अब दो-दो सेनाधिपति एक साथ मारे गए तो सरकार ने "नॉफ़" नामक एक विशेष सेनाधिकारी को वहाँ की स्थिति का अध्ययन कर सरकार को रिपोर्ट देने और उचित कार्यवाही करने के लिए भेजा। "नॉफ़" महोदय ने वहाँ के अन्य सैनिक, असैनिक, पुलिस के अधिकारी और कुछ अन्य स्थानीय लोगों की एक बैठक बुलायी और उस बैठक की कार्यवाही के अनुसार एक विस्तृत रिपोर्ट तैयार कर उसे सरकार के पास भेज दिया।

अपनी रिपोर्ट में नॉफ़ ने यह सिफारिश की, कि वर्तमान सेना क्रांतिकारियों को पकड़ने में पर्याप्त नहीं है। विद्रोहियों को काबू में करने के लिए अधिक सेना की आवश्यकता है, अतः यहाँ स्पेशल मलबार पुलिस जो कि उस समय अधिक पराक्रमी मानी जाती थी, उसे भेजा जाए। इस प्रांत में टेलीग्राफ़ की व्यवस्था ठीक नहीं है। तुरंत इसकी व्यवस्था और यातायात की भी व्यवस्था को सुदृढ़ बनाना अत्यंत आवश्यक है। अस्त्र-शस्त्र की यहाँ बहुत कमी है। आधुनिक अस्त्र-शस्त्र विपुल मात्रा में यहाँ सप्लाई किए जाएं। इस प्रांत के लिए एक स्पेशल मैजिस्ट्रेट कोर्ट की स्थापना अविलंब की जाए । इसी रिपोर्ट के अनुसार सरकार ने अक्तूबर, 1922 को सारी व्यवस्था की थी। इसके अतिरिक्त सरकार ने एक नया कानून भी लागू करा दिया कि कोई भी नागरिक क्रांतिकारियों को आश्रय देगा, या उनकी सहायता करेगा तो, वह राजद्रोही माना जाएगा और उसे मृत्युदंड दिया जायेगा। इन सबके पीछे सरकार का यही इरादा था कि जनता को, जो राजु के पक्ष में हो गयी है, अगर उसे तंग करेंगे तो राजु को पकड़ने में वह सरकार की मदद करेगी। जब इन सारी व्यवस्थाओं से भी काम नहीं चला तो सरकार ने उस प्रांत की जनता पर अपराध-कर नामक एक नया कर लगाया। लेकिन जब क्रांतिकारियों को यह मालूम हुआ तो वे कर वसूल करनेवालों को लूटने लगे और वसूल किया गया कर फिर जनता में बाँटना शुरू कर दिया।

नॉफ़ की सिफ़ारिश के अनुसार सारी व्यवस्था करने तथा गिरिजनों पर अपराध-कर लगाने के बावजूद भी राजु के क्रांतिकारी कार्यों में कोई अंतर नहीं आया अपितु वे और बढ़ गये। वे इसके बाद से अधिक साहसिक कार्य करने लग गये। राजु की न्यायप्रियता और साहसिकता का यह एक अच्छा सबल प्रमाण है कि वे कहीं पर भी आक्रमण करते, उसकी पूर्व सूचना सरकार को दिया करते थे। उन्होंने संबंधित तहसीलदार को यह सूचना दी थी कि मैं 15 अक्तूबर, 1922 को अड्डीगला पुलिस स्टेशन पर आक्रमण करूँगा। तहसीलदार ने जिला पुलिस सुपरिंटेंडेंट को तार देकर सेना बुलायी। 'शेल्कि' के नेतृत्व में वहाँ सेना पहुँच गयी। आक्रमण के लिए निश्चिय समय से काफ़ी पहले सेना पुलिस स्टेशन के चारों ओर चौकसी में रही। फिर भी ठीक समय पर राजु के दल ने आक्रमण बोल दिया। चारों ओर से सेना क्रांतिकारियों पर टूट पड़ी। घमासान लड़ाई हुई। आखिर सेना को मुँह की खानी पड़ी और राजु की विजय हुई। पूर्व-गोदावरी जिले के कलेक्टर

ने अड्डतीगला के संबंध में जानकारी प्राप्त करने के लिए रूद्रयया नामक एक जासूस को भेजा था जो तहसीलदार से बात करके वापस लौट रहा था उसे क्रांतिकारियों ने पकड़ लिया। राजु ने उनसे कहला भेजा कि तुम जाकर अपने कलेक्टर से कह दो कि वे 19 अक्तूबर, 1922 तक किसी भी दिन आकर मुझसे मिले। मैं उनसे बात करना चाहता हूँ। अगर वे मुझसे बात करना नहीं चाहते तो मुझसे युद्ध करने के लिए भी सेना लेकर आ सकते हैं । उस समय वहाँ के कलेक्टर 'बेकन' थे। लेकिन उस दिन राजु के पास वे नहीं आये और न उन्होंने कोई समाचार भेजा।

अपने पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार जब राजु 19 अक्तूबर,1922 को रंगचोड़वरम पुलिस स्टेशन पर हमला करने जा रहे थे, वहाँ की जनता ने राजु की जय-जयकार करते हुए स्वागत किया। अपनी असमान वीरता से राजु ने पुलिस स्टेशन को अपने वश में कर लिया। इस घटना के बाद से कुछ सरकारी अफ़सर भी राजु की तरफ हो गए। वे उनसे प्रभावित होकर, और लुकछिपकर उनकी सहायता करने लगे। राजु ने इसके बाद सरकारी टेलीग्राफ़ और यातायात व्यवस्था को ध्वस्त करने का अभियान प्रारंभ किया। राजु को पकड़ने के लिए पुनः 6 दिसम्बर, 1922 को हजारों की संख्या में सेना भेजी गयी। इस सेना में अनेक वीर सेनाधिपति थे और भयंकर विध्वंसकारी अधुनातम युद्ध सामग्री से सुसज्जित थी। जब असंख्य सेना को आते देखा तो क्रांतिकारी पहाड़ों में चारों ओर भाग खड़े हो गए तो सेना भी चार भागों में बँट कर उनका पीछा करने लगी। चारों ओर पहाड़ों में सेना और क्रांतिकारियों के बीच घमासान लड़ाई हुई और अनेक क्रांतिकारी इस लड़ाई में हताहत हुए। उन दुर्गम पहाड़ों में रक्त की नदियाँ बहने लगीं। सेना के सेनाधिपति जॉन इस रक्तपात को देखकर विजय गर्व से झूमने लगा। उन क्रांतिकारियों की मृत लाशों को गाँवों में लाकर जनता को दिखाकर उनको धमकी दी गई कि यदि राजु की सहायता करेंगे तो उनकी भी यही दशा होगी। अनेक क्रांतिकारियों के हताहत होने से दुगने उत्साह से सरकारी सेना 'हेवल' और 'स्वीन' के नेतृत्व में फिर राजु का पीछा करने लगी। लिंगपुरम की नदी के तट पर सरकार की सेना और क्रांतिकारियों के बीच घमासान लड़ाई हुई। इस बार भी अनेक क्रांतिकारी हताहत हुए, और बचे-खुचे लोगों ने दुर्गम पहाड़ों में जाकर पनाह ली।

राजु को पकड़ने के जब सारे सरकारी प्रयत्न विफल हो गए तब सरकार ने यह ऐलान किया कि जो राजु को पकड़कर सरकार को सौंप देगा उसे दस हजार रुपये का पुरस्कार दिया जाएगा। इसी प्रकार एक-एक क्रांतिकारी को पकड़कर सौंपने पर 500-500 रुपये का पुरस्कार देने की भी घोषणा की गयी। ये सारे सरकारी ऐलान भी जनता को प्रलोभित नहीं कर सके। राजु और उनके अन्य अनुचरों को पकड़कर सौंपने की बात दूर रही, जनता इन सरकारी घोषणाओं को सुनना तक पाप समझती थी।

इन सब घोषणाओं और अपने अधिकतर अनुयायियों के हताहत हो जाने के बावजूद भी राजु ने पुनः 'अन्नवरम्' पुलिस स्टेशन पर हमला किया तो वहाँ का कोतवाल राजु को देखकर काँपने लगा और उसने स्वयं अपने आप स्टेशन की सारी संपत्ति राजु को समर्पित कर दी। यह सुनकर खुशी के मारे अन्नवरम् की सारी जनता ने असीम धन राजु को भेंट किया। राजु के चले जाने के बाद अगले दिन सवेरे कलेक्टर स्वयं अन्नवरम् पहुँच गए, वहाँ की स्थिति का अध्ययन करने के लिए। यह समाचार सुनकर राजु ने उनके पास 'मिर्चवाली डाक' भेजी जिसमें यह लिखा था कि हम लोग आज शाम तक शंखवरम में रहेंगे। यदि आप चाहें तो यहाँ आकर हमसे बात कर सकते हैं और यदि हमसे बात करना उचित नहीं समझते तो आप सेना के साथ हमसे लड़ने के लिए भी आ सकते हैं। शाम तक प्रतीक्षा करने पर भी कलेक्टर के न आने से उस दिन रात को शंखवरम् पुलिस स्टेशन पर हमला कर उसकी सारी संपत्ति राजु ने लूट ली।

सरकार को यह पूर्णतः विश्वास हो गया कि वन्य प्रदेश (मन्यमु) की जनता की सहायता से ही राजु इस प्रकार के विध्वसंक कार्य कर पा रहे हैं और यदि इस प्रदेश की जनता को तंग किया जाए तो वह राजु की सहायता करना छोड़ देगी। अतः सरकार ने यह आदेश दिया कि इस प्रदेश में सरकार द्वारा जो पुलिस की व्यवस्था की गई है, उसके लिए जो खर्च हो रहा है, वह सारा खर्च वहाँ की जनता से ही वसूल किया जाएगा। चूंकि वहाँ की जनता राजु को खाद्य-पदार्थ की सप्लाई कर रही है इस कारण बाहर से वहाँ खाद्य पदार्थों को ले जाने में प्रतिबन्ध लगाया। इससे जनता को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। लेकिन राजु ने उन्हें आश्वासन दिलाया कि उन आवश्यक पदार्थों की व्यवस्था वे करेंगे। सेना और पुलिस के लिए तो सरकार को उस प्रदेश में खाद्य पदार्थ भेजना पड़ता ही था। राजु ने अपने सहचरों से प्रत्येक बार सारी खाद्य सामग्री लूटी और उसे जनता में बाँट दिया।

इस बीच एक दिन जब मल्लु दोरा अपने घर में अकेला था, तब अचानक 'किरन्स' नामक एक सेनाधिपति ने तीन सौ सैनिकों के साथ आकर उसका घर घेर लिया। कई घंटों तक उनके और सैनिकों के बीच लड़ाई चलती रही। आखिर मल्लुदोरा पकड़ लिया गया। राजु के रहस्य जानने के लिए मल्लु दोरा को विविध प्रकार से सताया गया, लेकिन इससे सरकार की दाल नहीं गली। मल्लु दोरा को कालापानी की सजा दी गयी। इसके बाद सरकारी सेना और पुलिस मिलकर निरपराध ग्रामीण जनता को तंग करने लगी। उनके घरों में आग लगाने लगी। इससे अनेक लोग बेघरबार हो गये। पुलिस-सेना और क्रांतिकारियों के मुठभेड़ में अनेक क्रांतिकारी दिन ब दिन हताहत होते गये। एक दिन अपने अनेक अनुचरों के साथ गंटम दोरा भी मार दिये गये। फिर भी क्रांतिकारियों और सेना के बीच लगातार डेढ़ वर्षों तक लड़ाई चलती रही।

इस प्रकार दिन ब दिन अपने अनुचरों की संख्या कम होने और अपने कारण वन्य प्रदेश के ग्रामीण लोग जो नागरिक जीवन से दूर रहकर सादा जीवन बिता रहे थे, तंग होते देख राजु का मन विचलित हुआ। उन्होंने तय कर लिया। कि आगे इस प्रकार दूसरों को तंग होने देने की अपेक्षा स्वयं को सरकार के सामने समर्पित कर देना उत्तम है। अतः उन्होंने 7 मई, 1924 को निकटतम पुलिस स्टेशन जाकर वहाँ अपने-आपको समर्पित कर दिया। उन्होंने अपना निर्णय अपने अनुचरों को भी सुनाया और उन्हें शांति से जीवन बिताने की सलाह दी। लेकिन दस हज़ार रुपये के, और नाम कमाने के प्रलोभन में आकर वहाँ के एक गोरे अधिकारी ने राजु को गोली मार दी और यह ऐलान किया कि उन्होंने राजु को पकड़ लिया और उन्हें गोली से मार दिया।

इस प्रकार अपनी 23 वर्ष की अल्पायु में ही आन्ध्र प्रदेश के अनन्य क्रांतिकारी नेता श्री अल्लूरि सीताराम राजु का, जिन्होंने अंग्रेजों की नाक में दम कर दिया था, देहांत हो गया। लेकिन उनकी आत्मा और उनके कार्य और उनका साहस सदा सर्वदा हमारे बीच विद्यमान है। इसीलिए सुभाष चन्द्र बोस ने राजु के बारे में एक बार ठीक ही कहा था कि सीताराम राजु की दीक्षा, उनकी लगन, उनकी हिम्मत और साहस ने उनकी ख्याति को चारों और फैला दिया। ❑❑

अंग्रेज सरकार द्वारा 'न्यू इंडियन लिटरेचर' की ज़ब्ती

○ वीरेन्द्र यादव

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लिए चौथा-दशक एक निर्णायक एवं हलचल-भरा काल था। इस दौर में अंग्रेज सरकार का दमन-चक्र अपने चरम पर था। 1929 में लाहौर षडयंत्र केस चलाकर भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव को फांसी देने के बाद अंग्रेज सरकार ने मेरठ षड़यंत्र केस का कुचक्र रचा था। मेरठ षड़यंत्र केस चलाकर ब्रिटिश सरकार ने भारत के वामपंथी आंदोलन को नेस्तनाबूद करने की भरपूर कोशिश की। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के सारे सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया गया। लेकिन इसके बावजूद कम्युनिस्ट पार्टी और उसके विभिन्न संगठन नाम बदलकर काम करते रहे। इन्हीं दिनों कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का जन्म हुआ, जिसके संस्थापकों में जयप्रकाश नारायण, आचार्य नरेन्द्र देव, अशोक मेहता आदि थे।

इन दिनों सामाजिक एवं राजनीतिक हलचलों को अभिव्यक्ति देने वाली कई साहित्यिक पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही थीं, जिनमें समाजवाद, जनवाद, किसानों की मुक्ति एवं स्वाधीनता संघर्ष की मुखर अभिव्यक्ति होती थी। ब्रिटिश सरकार इन पत्रिकाओं का चुन-चुनकर दमन कर रही थी। प्रेमचंद की पत्रिका 'हंस' एवं जागरण से सन् 1932 में जमानत मांगी गई, वाराणसी से प्रकाशित समाचार पत्र 'आज' को बंद कर दिया गया। 1930 से 1934 के बीच राजद्रोह कानून के अंतर्गत 348 समाचार पत्रों का प्रकाशन बंद कर दिया गया। इसके साथ ही समाजवादी एवं मार्क्सवादी विचारधारा के साहित्य पर प्रतिबंध लगा दिया गया। मार्क्स, लेनिन, एंगेल्स व गोर्की आदि की पुस्तकों का वितरण गैरकानूनी करार दे दिया गया और बाजार में उपलब्ध इन सभी पुस्तकों को ज़ब्त कर लिया गया।

इसी दौर में ब्रिटिश गृह सचिव एम० जी० हैलेट ने मई, 1936 के अपने एक सर्कुलर के माध्यम से भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के संबंध में स्थानीय सरकारों को सतर्क रहने की सलाह दी थी और इसी क्रम में 25 मई, 1996 एवं 8 जून, 1936 को जारी गोपनीय परिपत्रों के माध्यम से प्रगतिशील लेखक संघ की पत्रिका 'न्यू इंडिया लिटरेचर' के अंकों की ज़ब्ती के आदेश दिए थे। ब्रिटिश सरकार के द्वारा जारी ये सर्कुलर प्रगतिशील साहित्य के विरुद्ध दमन के सशक्त दस्तावेज हैं।

प्रगतिशील साहित्य के विरुद्ध अंग्रेजों की इस दमनकारी नीति के बावजूद भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ ने 'न्यू इंडियन लिटरेचर' का पुनर्प्रकाशन 1939 में लखनऊ से किया। इसके प्रथम अंक के संपादक थे अब्दुल अलीम और संपादक मंडल के अन्य सदस्यों में शामिल थे सर्वश्री सुमित्रा नंदन पंत, सज्जाद जहीर, अहमद अली, कृष्ण चंदर, हिरेन मुखर्जी (बंगाली), उमाशंकर जोशी (गुजराती), अनंत काणेकर (मराठी), आर० पी० सेतु पिल्लई (तमिल), राम कृष्ण राव (तेलगू) सी० अच्युत मेनन (मलयालम), बी० श्री कान्तया (कन्नड़)। इसके अतिरिक्त लियोनोर्ड शिफ, सैय्यद महमुदुज्जफर, राजाराव एवं मुल्कराज आनद पर अंग्रेजी भाषा एवं अन्य सामान्य विषयों से संबंधित संपादकीय दायित्व था। क्विन्टन रोड, लखनऊ से प्रकाशित होने वाली इस त्रैमासिक पत्रिका की वार्षिक सदस्यता चार रुपये थी।

भारत में 1939 में अंग्रेजी में प्रकाशित इसके प्रथम अंक में प्रगतिशील लेखन आंदोलन पर मुल्कराज आनन्द का लेख, प्रेमचंद की कहानी 'कफन', 'हिन्दुस्तानी की समस्या' पर अब्दुल अलीम का लेख एवं बंगाल में उग्रवाद पर सुधीन्द्र नाथ दत्ता की टिप्पणी प्रकाशित हुई थी।

इसके अतिरिक्त 'न्यू इंडियन लिटरेचर' के इस अंक में पंडित जवाहर लाल नेहरू, अली सरदार जाफरी, लियोनिर्ड शिफ, ज्ञान चंद, सज्जाद जहीर एवं मुल्कराज आनन्द के समीक्षात्मक आलेख भी प्रकाशित हैं। कला पर डी० पी० मुखर्जी एवं फिल्म पर नारद मुनि के आलेख भी हंस के

No. 1 **NEW INDIAN LITERATURE** 1939

CHRONICLES

On the Social Background of Contemporary Indian Painting. D. P. Mukerjee.
Films I have never seen. Narad Muni

REVIEWS

BULLETIN

Report of the Second All-India Progressive Writers' Conference held at Calcutta; Constitution; Amended Manifesto.

IPWA

ज़ब्ती के बाद भारत में 1939 से पुनर्प्रकाशित अंक का आवरण

अंक में हैं। साहित्य एवं संस्कृति की इस संपूर्ण पत्रिका के विरुद्ध अंग्रेजों का दमन-चक्र उस दौर की प्रगतिशील चेतना की बौद्धिक सामर्थ्य को ही रेखांकित करता है।

यहां प्रस्तुत हैं प्रगतिशील लेखक संघ 'न्यू इंडियन लिटरेचर' के विरुद्ध भारत में ब्रिटिश गृह सचिव एम० जी० हैलेट द्वारा जारी किए गये तीन सर्कुलर :--

होम पोलिटिकल एफ 7-9-36

विषय : भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के संबंध में स्थानीय सरकारों को सतर्कता सूचना

प्रेषक -- भारत सरकार का सचिव

स्थानीय सरकारों का गृह-विभाग

मै आपको प्रगतिशील लेखक संघ नामक संगठन के सम्बन्ध में यह लिख रहा हूँ। इस संघ का प्रथम सम्मेलन लखनऊ में अप्रैल, 1936 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के साथ ही हुआ। तब से श्री सज्जाद जहीर और उसकी कार्यकारिणी समिति के अन्य सदस्य संघ की स्थानीय शाखाएं गठित करने में लगे हुए हैं और सूचना के अनुसार अलीगढ़, इलाहाबाद, आंध्र, कलकत्ता, दिल्ली, गुजरात, हैदराबाद(दक्कन), पूना और पंजाब में उसकी शाखाएं हैं। इस संघ के कई दूसरे शिक्षा केन्द्रों से भी संपर्क हैं।

2. इस संघ का जन्म लगभग एक साल पूर्व इंग्लैंड में बने इसी नाम के गठित संघ से हुआ। लंदन का संघ काफी हद तक क्रांतिकारी लेखकों के अंतर्राष्ट्रीय संगठन के ब्रिटिश भाग से संबद्ध और नियंत्रित है। भारत में संघ सचिव सज्जाद जहीर संघ के उद्देश्यों सम्बन्धी उस मैनीफैस्टो पर हस्ताक्षर करने वालों में से एक थे, जो लंदन में तैयार किया गया था।

3. हालांकि संघ के घोषित उद्देश्यों से यही लगता है कि उसका दायरा लेखकों और पत्रकारों तक ही सीमित है और वह प्रगतिशील प्रकृति के साहित्य को विकसित करने के लिए है। लेकिन इसकी प्रेरणा व इसके संपर्क उन संगठनों और व्यक्तियों से हैं जिनमें से कई तो सक्रिय कम्युनिस्टों जैसी नीतियों की वकालत करते हैं। इस संघ में उन बुद्धिजीवियों की रुचि पैदा हो रही है तथा उनका समर्थन भी इसे मिल रहा है जिनकी साम्यवादियों के प्रति या अन्य क्रांतिकारी सिद्धांतों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं है। यह संघ कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल द्वारा अपनाई हाल की उस नीति के तरीके का एक उदाहरण है, जो कम्युनिस्ट आजकल सभी देशों में अपना रहे हैं। इस तरीके के अनुसार कुछेक पक्के और प्रशिक्षित कम्युनिस्ट उन सभी प्रकार के संगठनों और संस्थाओं से संपर्क स्थापित करते हैं जो बौद्धिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विषयों में रुचि रखती हैं। इसके द्वारा वे कम्युनिज्म का प्रचार करके नए लोगों को अपने साथ मिलाते हैं। यह कहने का अर्थ यह नहीं है कि भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ एक क्रांतिकारी संस्था है, लेकिन ऊपर दिए गए कारणों की वजह से यह जरूरी है कि उसके विकास पर निगरानी रखी जानी चाहिए और उन लोगों को इसके प्रति सतर्क करना चाहिए जो वामपंथी राजनीति से बद्ध नहीं हैं। इसलिए मैं सुझाव देना चाहूंगा कि मुख्यतः बातचीत के द्वारा उन पत्रकारों, शिक्षाविदों तथा दूसरे लोगों को उस संघ के बारे में सावधान कर देना चाहिए जो इसके लुभाने वाले कार्यक्रम की तरफ आकर्षित हो सकते हैं।

आपका
एम० जी० हैलेट
गृह-सचिव
भारत सरकार

गुप्तचर ब्यूरो : गृह-विभाग

विषय : भारत में भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के प्रकाशन 'न्यू इण्डियन लिटरेचर' की प्रतियां ज़ब्त करने के संबंध में भारतीय कार्यालय को सूचना।

सूचना मिली है कि सज्जाद जहीर ने लंदन में भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के सचिव मुल्कराज आनंद को कहा है कि भारत में संघ के प्रकाशन 'न्यू इण्डियन लिटरेचर' की सभी प्रतियां ज़ब्त कर ली गई हैं, और यह सुझाव दिया है कि इस मामले को लेकर हाउस आफ कामन्स में प्रश्न उठवाने का प्रयत्न करें।

इस संबंध में गृह विभाग निदेशक की 2 जनवरी, 1936 की साप्ताहिक रिपोर्ट संख्या 1 तथा 16 अप्रैल, 1936 की रिपोर्ट संख्या 15 के दूसरे पैरा को देख सकता है, जिसमें इस संघ की गतिविधियों का जिक्र किया गया है। यह सिद्ध हो चुका है कि भारतीय छात्रों के गुप्त कम्युनिस्ट ग्रुप के माध्यम से इस संघ का कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के साथ संबंध है और इसलिए सामान्य कम्युनिस्ट सूचना के अंतर्गत 'न्यू इंडियन लिटरेचर' की भारत में उपलब्ध या आने वाली सभी प्रतियां ज़ब्त की जा सकती हैं। जो भी प्रतियां नजर में आई वे ज़ब्त कर ली गई हैं।

गृह विभाग इन तथ्यों की सूचना भारतीय कार्यालय को देकर उनसे की जाने वाली पूछताछ को रोक सकता है।

गृह विभाग
निदेशक, गुप्तचर ब्यूरो, यू० ओ० सं० 4।
पी० एफ०। 36, दिनांक 25 मई, 1936

हवाई डाक

गुप्त

डी० ओ० सं० डी० 123
4086-36-राजनैतिक
भारत सरकार
गृह विभाग
शिमला, 8 जून, 1936

प्रिय पील,

गुप्तचर ब्यूरो के निदेशक को प्राप्त हुई सूचना से हमें इस तथ्य का पता चला है कि भारत में भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के प्रकाशन 'न्यू इंडियन लिटरेचर' की ज़ब्त की गई प्रतियों का मामला प्रश्न के रूप में हाउस आफ कामन्स में उठाया जाने वाला है। इसलिए हम जरूरी समझते हैं कि राज्य सचिव को इस मामले के तथ्यों की जानकारी दी जाये। जैसा कि आप गुप्तचर ब्यूरो के निदेशक की 2 जनवरी और 16 अप्रैल, 1936 की रिपोर्ट के दूसरे पैरा से देखेंगे कि भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ भारतीय छात्रों के गुप्त कम्युनिस्ट ग्रुप के माध्यम से कम्युनिस्ट इंटरनेशनल से घनिष्ट रूप से जुड़ा है। इस प्रकाशन की भारत में पाई गई प्रतियों को 10 सितंबर, 1932 के समुद्र कस्टम एक्ट के अंतर्गत सूचित सामान्य कम्युनिस्ट सूचना के तहत ज़ब्त किया गया है।

आपका
एम०जी० हैलेट

प्रति
आर० टी० एस्क०, सी० आई० ई०
एम० सी०, सचिव, पी० तथा जे० विभाग,
भारत कार्यालय, लंदन। ❑ ❑

स्वाधीनता का पहला संघर्ष

○ विनायक दामोदर सावरकर

[1857 के पहले स्वतंत्रता संग्राम को आज भी कुछ लोग सिपाही विद्राह कहते हैं : अंग्रेजों द्वारा लिखित इतिहास में तो यही छवि है। दरअसल ब्रिटिश राजसत्ता के विद्रोह के बाद देश भर में जो क्रांतिकारी परिस्थिति उत्पन्न हो गयी थी, उसका रोमांचक विवरण विनायक दामोदर सरकार की ऐतिहासिक कृति 'द इण्डियन वार आफ इंडेपेंडेंस के अध्याय नौ व दस से यहां साभार प्रस्तुत की जा रही है। इस पुस्तक को 1909 में इंग्लैण्ड से छपते ही ज़ब्त कर लिया गया था।]

नवाँ अध्याय

अवध प्रांत पर डलहौज़ी ने दखल की और तब से वहाँ की प्रजा दिनों दिन अधिक से अधिक कष्ट पाती गयी। नवाब के राज में आमदनी, सम्मान और अधिकार वाले सभी पदों पर गोरों की नियुक्ति हुई; देसी भाइयों को बेकार बनाया गया। नवाब की सेना तोड़ दी गयी; उसके सरदार कंगाल कर दिये गये; नवाब के मंत्री तथा बड़े अधिकारियों को उनके स्थानों से हटाकर कुली-कबारी की श्रेणी में बिठाया गया। इससे, जिस पराधीनता के कारण उनका स्वदेश वीराना हो गया और उन्हें ऐसी हीन दशा प्राप्त हुई, उस परायी दासता के बारे में ज्वलन्त द्वेष उनके मन में ओत प्रोत भर गया था। पराधीनता का यह कोड़ा मात्र राजधानी तथा राजमहल के कर्मचारियों पर ही पड़ा हो, सो बात नहीं है। पीढ़ी दर पीढ़ी के राजा तथा जमींदारों की जागीरें भी अंग्रेजों ने हड़प ली थीं। तब इन राजाओं और जमींदारों को पता चला, कि सभ्यता के शिखर पर पहुँचे पराये दास्य की अपेक्षा अच्छा बुरा, ऊबड़-खाबड स्वराज्य ही बहुत श्रेष्ठ, सम्मानित और सुखपूर्ण होता है। लगान में वृद्धि होने से किसानों में अशान्ति फैल गयी। अंग्रेजी सेना के बहुतेरे सैनिक अवध प्रांत से भरती हुए थे। वे भी अपनी मातृभूमि की पराधीनता और उसकी हीन दशा देखकर अंग्रेजों पर खार खाते थे। नवाब वाजिदअली शाह को जिन्हें दुष्ट विश्वासघात तथा कमीनी ठगबाजीसे मटियामेट कर दिया था; उन अंग्रेजों की याद आते ही हर व्यक्ति दांत किटकिटाकर तलवार पर हाथ रखता। कुलाभिमान, शौर्य, उदारता, कृतज्ञता आदि गुणों के आदर्श बने ये अवध के बड़े-बड़े जमींदार राजपूत थे। अपने राजा से अंग्रेजों ने नीच बर्ताव किया है, इसका पता लगने पर उनका राजपूती खून खौलने लगा। अवध पर दखल करने के बाद अंग्रेजों ने इन जमींदारों को नयी राजसत्ता की सेवा करने के लिये निमंत्रित किया। इन सैकड़ों स्वातंत्र्य प्रेमी तथा तेजस्वी लोगों ने उत्तर में कहा था, "हमने स्वराज्य का नमक खाया है ! परायों के दिये टुकड़े चबाने को हम कभी न जायँगे।"

इस नये अवध प्रांत पर सर हेनरी लॉरेन्स को नियुक्त किया गया। क्रांति का बीज पंजाब में दृढ़मूल होने के पहले ही, जिसकी कूट-नीतिज्ञता तथा सावधानी से, विफल कर दिया गया, उस जॉन लारेन्स का यह बड़ा भाई था। जिस तरह पंजाब के प्रधान कमिश्नर ने उस प्रांत की रक्षा की, उसी तरह, उन्ही उपायों द्वारा अवध की रक्षा उसका भाई करने लगा। हिंदुस्थान में ब्रिटिशों की सत्ता गहरी नींव पर खड़ी करने में लॉरेन्स परिवार ने सबसे अधिक, निःसन्देह, हाथ बँटाया था। अवध में पग धरते ही सर हेनरी लॉरेन्स ने वहाँ की स्थिति का तुरन्त और पूरा आकलन किया; और दूसरे किसी भी अंग्रेज के पहले क्रांति की सम्भावना का डर प्रथम प्रकट किया। सर हेनरी ने अवध की राजधानी लखनऊ ही में अपना डेरा डाला। प्रारंभ में असंतुष्ट जमींदारों को मीठे वचनों से पुचकारकर वश में करने की नीति जारी की। लखनऊ में एक दरबार लगाया, उसमें मान-सम्मान, उपाधियाँ तथा पारितोषिक वितरण कर लोगों को अपने लुप्त स्वराज्य को भुलाने के लिए उसने अनथक चेष्टाएँ कीं। हाँ, अशान्ति को दबाने के लिए इन शान्तिमय उपायों पर अवलंबित न रह कर, साथ साथ उन योजनाओ को बनाना जारी रखा जो जनता के विद्रोह के फूट पड़ते ही उसे दबाने में सफल हों। क्योंकि, सर हेनरी लॉरेन्स उसके भूतपूर्व अधिकारियों से कुछ अच्छा भले ही दिखाई पड़ता, अवध के प्रजाजन अंग्रेजों के अच्छे तथा बुरे शासन से पूरी तरह ऊब उठे थे। अब उनको तभी चैन होगी जब स्वराज्य प्राप्त कर वाजिदअली शाह को अवध के सिंहासन पर फिर से विराजमान देखें। अंग्रेजी पराधीनता की श्रृंखलाओं को तोड़कर भारत को स्वतंत्र करने की ही लगन लगी थी। आज तक उनका धर्म सिंहासन पर अधिष्ठित था, क्योंकि राजा और राज्य का वह धर्म था। अब धर्म की अप्रतिष्ठा हो रही थी। ये ही असंतोष के कारण थे। और इसका इलाज अंग्रेजी हुकूमत का सुप्रबंध कभी नहीं था, अंग्रेजों का आधिपत्य नष्ट करना ही उसका एकमात्र उपाय था। मानसिंह के समान महापराक्रमी हिंदु नरेश तथा मौलवी अहमदशाह जैसे प्रभावी मुसलमान नेता ने हिंदू-मुसलमानों के धर्म के लिए अर्थात् स्वाधीनता के लिए लड़े जाने वाले पवित्र युद्ध में अपने सर्वस्व की बलि चढ़ाने का निश्चय किया था। प्रकट या गुप्त रूप से, सुविधानुसार, हजारों पंडित और मौलवी समूचे प्रांत में दौरा कर इस पवित्र धर्मयुद्ध का प्रचार करने लगे। सैनिक शपथबद्ध हुए, पुलिस ने शपथ

ली, जमींदार प्रतिज्ञाबद्ध हुए। मतलब, सारी जनता अंग्रेजों के विरुद्ध होने वाले युद्ध के षडयंत्र में शामिल थी। और देश भर में असंतोष की आग भड़क उठी। मौलवी अहमदशाह को गिरफ्तार कर राजद्रोह तथा जनता को बहकाने के अपराध में फाँसी की सजा सुनायी गयी। किन्तु उस पर अमल करना ही असम्भव हो गया। 7वीं पलटन को निःशस्त्र किया गया। 12 मई को एक बड़ा दरबार लगाकर सैनिकों को काबू में रखने की सर हेनरी लॉरेन्स ने चेष्टा की। उस दरबार में जनता की भाषा में एक लम्बा भाषण दिया, जिसमें राजनिष्ठा के महत्व का बखान किया, रणजीतसिंह ने मुसलमानों के तथा औरंगजेब ने हिंदुओं के धर्म का कैसे अपमान किया और अंग्रेजों ने हिंदू-मुसलमान दोनों को सहायता देकर इन अत्याचारों से कैसे बचाया, इसी का वर्णन रसभीनी भाषा में किया, फिर जो सैनिक अंग्रेजों के वफादार रहे थे, उन्हें अपने हाथों तलवारें, शालों, पगड़ियों तथा अन्य वस्तुओं को भेंट में दिया। इधर 7वीं पलटन के सैनिकों से हथियार डलवाकर, पलटन ही को तोड़ दिया गया। किन्तु भावी के गर्भ में कैसी विचित्र घटनाएँ समाई थीं ! थोड़े ही समय पहले वफादारी के कारण सम्मानित किया गया था, उन्हीं को, क्रांतिकारियों से साँठ-गाँठ करने के अपराध में, फाँसी लटकाया जाने वाला था।

राजनिष्ठा का दरबार 12 मई को सम्पन्न हुआ, 13 मई को मेरठ के बलवे का समाचार आया और 14 मई को दिल्ली पर क्रांतिकारियों ने कब्जा जमा लेने तथा भारत के स्वाधीन होने की घोषणा का हर्ष पूर्ण समाचार लोगों ने सुना !

सुरक्षा की दृष्टि से सर हेनरी ने लखनऊ के पास माची भवन और रेज़ीडेन्सी इन दो स्थानों को चुना और वहाँ किलाबंदी करने के काम में वह लग गया। अंग्रेज औरतों और बच्चों को वहाँ ले जाया गया और अंग्रेज पुरुष, क्लर्क, मुलकी अधिकारी, व्यापारी, सभी को सैनिक अनुशासन, सामूहिक संचलन तथा राइफल चलाने की शिक्षा दी गयी। मेरठ में भी बलवे के बाद सब नागरी गोरों को उसी तरह सैनिक शिक्षा देकर दस दिनों के अंदर युद्ध भूमि में टिकने के योग्य बना दिया गया था। सर लॉरेन्स अब प्रांत का प्रधान सेनापति बना था ! अवध से नेपाल पास होने से सर हेनरी ने वहाँ एक शिष्टमंडल भेजकर सहायता की याचना की । सूचना यह थी, कि जंगबहादूर अपनी सेना को अवध भेजे। इस तरह सब प्रकारसे सावधानी रखी जाने पर भी हर दिन सर हेनरी को 'विश्वासयोग्य' संवाद मिलता, कि 'आज बलवा होगा,' वह भी अपनी शक्तिभर इस 'प्रमाणिक' समाचार के आधार पर, सतर्क रहता, दिन डूब जाता किन्तु बलवे का कोई चिन्ह न दीख पड़ता। कई बार इस तरह धोखा हुआ। 30 मई को भी एक अफसर ने हेनरी के कान में डाला कि 'आज रात को 9 बजे बलवा होने वाला है।

30 मई को सूरज डूब गया। अपने अधिकारियों के साथ खाना खाने में सर लॉरेन्स जुटा हुआ था। नौ की तोप दगी। तब जिसने वह संवाद सुनाया था और इसके पहले भी एक बार जो झूठा साबित हुआ था, उसकी ओर झुककर सर हेनरी व्यंग करते हुए बोला, क्यों जी, तुम्हारे मित्र समय के पक्के नहीं मालूम देते।

''समय के पक्के नहीं'' ये शब्द पूरे कहे न गये थे, तभी 71 वीं पलटन की बंदूकों की बाढ की गडगडाहट सुनायी पड़ी। निश्चित निर्णय के अनुसार नौ की तोप के साथ इस पलटन के कुछ लोगों ने अंग्रेजों के बंगलों पर धावा बोल दिया। 71वीं पलटन के भोजन गृह में आग लगा दी गयी और वहां के गोरों पर गोलियाँ चलाई गयीं। भगोड़ा ले.ग्रैंट किसी की सहायता से एक गद्दी में जा छिपा, किन्तु किसी दूसरे के बताने पर वह पकड़ा गया; तब उसे घसीट लाकर कत्ल किया गया। ले. हार्डिंग्ज अपने सवारों के साथ मार्ग में गश्त पर घूम रहा था। उसे भी तलवार का एक वार लगा। छावनियों में आग लगा दी गयी। ब्रिगेडियर हँड्सकाँब भी मारा गया। अंग्रेजी झण्डे के वफादार गोरे सोजीर और कुछ सिपाही रातभर खड़े, बलवे को काबू में रखने की शक्तिभर चेष्टा कर रहे थे। 31 मई को सवेरे, सर लॉरेन्स कुछ गोरे सैनिकों तथा अब भी राजनिष्ठ हिंदी सिपाहियों के साथ, क्रांतिकारियों पर हमला करने चला। किन्तु कुछ दूर जाने पर उसके साथ वाली 7वीं रिसाले की टुकड़ी ने बलवा किया; उसे क्रान्किारियों से जा मिलने को छोड़कर वह लौट पड़ा तोपखाने के साथ अंग्रजों के पास 32वीं पलटन लखनऊ के अड्डे पर थी; किन्तु सूर्यास्त के पहले 48वीं तथा 71 पैदल, 7वीं रिसाला पलटनों तथा अन्य अस्थायी टुकडियों ने स्वतंत्रता का झण्डा फहराया।

लखनऊ से 51 मीलों पर सीतापुर है, वहां 41 वीं पैदल पलटन तथा 9वीं और 10वीं अस्थायी पलटनें थीं। सीतापुर कमश्नरी का थाना था, जिससे और भी कुछ बड़े अफसर वहां रहते थे। 27 मई को कुछ अंग्रेजों के घरों में आग लगी थी। किन्तु वहां के गोरों को पता न था, कि ये आगें आगामी अंधेड की पूर्वसूचना देने की सैन थी। इसी से उन्होंने विशेष ध्यान नहीं दिया; और तो और, स्वयं सिपाहियों ने इन आगों को बुझाने की अनथक चेष्टा की। इस आग से दो काम हुए। एक, गुप्त संस्था के सदस्यों को सूचना मिली कि 'समय समीप है', और अंग्रेजों के आत्मविश्वास तथा भोलेपन की कसौटी हुई। 2वीं जून को एक असाधारण घटना घटी। सिपाहियों ने यह शिकायत की, कि उन्हें दी जाने वाली आटे की थैलियों में हड्डियों का आटा भरा हुआ मिला और उसे लेने से इनकार किया; तथा यह हठ पकड़ा कि उन थैलियों को गंगा में फेंक दिया जाय। अंग्रेजों ने चुपचाप वैसा ही किया। उसी दिन दोपहरी में सहसा, सिपाही अंग्रेजों के बगीचों में घुसे और अपनी इच्छा से वहां के फल तोड़कर खाने लगे। गोरों ने उन्हें रोककर खूब फटकारा, किन्तु सिपाहियों के कानों पर जूं तक न रेंगी और वे मजे में फलों पर हाथ साफ करते रहे। मीठे फलों का नाश्ता पेटभर खा चुकने पर सिपाहियों की एक टुकड़ी ने हमला कर खजाने पर कब्जा जमाया, और अन्य सिपाहियों ने चीफ कमिश्नर के घर पर हमला किया। मार्ग में मिले कर्नल बर्च तथा ले. ग्रेव्ह को नर्क में भेज दिया गया। 9वीं अस्थायी पैदल टुकड़ी ने भी अपने प्रधान अधिकारियों को मार डाला। सब सैनिक, जो भी

मिले उस अंग्रेज पर टूट पड़ते और 'फिरंगी राज का खात्मा' के नारे लगाते। कमिश्नर, उसकी पत्नी और बेटा नदी पार होने की धांधली मे मारे गये। थॉर्नहिल उसकी लुगाई के साथ गोली का शिकार हुआ। सिपाहियों ने प्रतिशोध के आवेश में लगभग 24 गोरों को काट डाला। कुछ गोरे रामकोट, मितावाली के जमींदारों के पास भाग गये। वहां 810 महीनों तक दावतें खिलाकर लखनऊ को पहुंचा दिये गये। इसके बाद सीतापुर के सब सैनिक फर्रुखाबाद गये। वहाँ के किले में अंग्रेज भागकर आये थे। घमासान मुठभेड़ के बाद सिपाहियों ने उसे जीत लिया और वहां के सभी गोरों को कत्ल कर डाला। नवाब तफ़ुजर हुसेन खाँ को फिर से, अंग्रेजों से छिने सिंहासन पर बैठाया। उसने अपने संस्था की सीमा में मिलने वाले हर अंग्रेज को खत्म कर डाला। इस तरह जुलाई 1 तक फर्रुखाबाद के टापू में अंग्रेजों का नामलेवा एक भी न बचा। सीतापुर के उत्तर 44 मीलों पर होने वाले मालन गाँव के सिपाहियों तथा जनता ने कुछ षडयंत्र करने की भनक अंग्रेजों के कान में पड़ी। सीतापुर के बलवे की खबर पाते ही, मालन के अंग्रेज अधिकारी भी घोड़ों पर चढ़कर भाग गये, और पूरा जिला अंग्रेजी रक्त की एक बूँद भी न गिराते हुए स्वतंत्र हुआ। तीसरा जिला था महमदी। वहाँ के गोरों ने अपने बाल-बच्चों को मिथौली के राजा के पास भेज दिया था। राजा ने साफ बताया कि 'प्रकट रूप से रह सको तो जंगल में रहो।' क्योंकि, अवध के सभी सैनिकों ने बलवा करने की सौगंध ली थी। निदान, गोरी स्त्रियों को राजासाहब के पास भेजकर महमदी के अंग्रेज अधिकारियों ने किले का आसरा लिया। उसी दिन रूहेलखण्ड के शाहाजहाँपुर को भागे हुये गोरों ने महमदी में हर क्षण प्राणों का भय होने से, सीतापुर के अधिकारियों की इन गोरों की रक्षा का प्रबंध करने को लिखा सीतापुर अब तक शान्त था, सो, महमदी के निराश्रितों को लिवा लाने को कुछ गाड़ियों के साथ सीतापुर के सिपाही रवाना हुए। किन्तु उनमें भी क्रांति का कीड़ा घुस चुका था। सभी गोरों को गाड़ियों में बिठाकर सीतापुर का रास्ता आधा तय किया, और सबको नीचे उतारकर उनका काम तमाम कर डाला। आठ औरतें, चार बच्चे, आठ लेफ्टीनेंट, चार कैप्टन और कुछ गोरे ढेर हुए। इस बात का पता लगते ही बचे हुए अंग्रेज अधिकारी महमदी से भाग गये और वह समूचा तहसील 4 जून को ब्रिटिश सत्ता से मुक्त हो गया।

सीतापुर के पास और एक तहसील था बहराइच। यहाँ का कमिशनर था विगफील्ड। इस तहसील में सिकोरा, गोंडा, बहराइच और मेलापुर ये चार शासन केन्द्र थे। सिकोरा में 2री पैदल पलटन तथा तोपखाने का एक विभाग था। यहां जब बलवे का भूत डराने लगा तब अंग्रेजों ने अपने परिवार लखनऊ भेज दिये। 9 जून को सबेरे कई अंग्रेज अधिकारी स्वयं जाकर बलरामपुर के राजा से सलाह माँगने लगे। बस, एक बोनहॅम, तोपखाने का प्रधान अधिकारी, था जिसने सिपाहियों पर पक्का भरोसा होने से वहां से जाना अस्वीकार किया। किन्तु शाम को सिपाहियों ने उससे स्पष्ट कहा, महाशय, व्यक्ति के नाते हम आपको कष्ट नहीं देंगे; फिर भी हम अपने देशबंधुओं के विरुद्ध लड़ने को बिलकुल सिद्ध नहीं हैं; क्योंकि, अब अंग्रेजी शासन टूट चुका है। तब बोनहॅम को वहाँ से हटना ही पड़ा। सिपाहियों ने उसे कुशल से लखनऊ पहुँचने दिया। सिकोरा स्वतंत्र हो जाने का समाचार गोंडा पहुँचते ही वहाँ भी बलवा हुआ। कमिश्नर विगफील्ड उस समय अन्य गोरों के साथ बलरामपुर गया था। वहां के राजा ने 25 गोरों को आसरा देकर, मौका पाकर, उन्हें अंग्रेजों की छावनी में पहुँचा दिया।

सिकोरा और गोंडा स्वतंत्र होने की खबर बहराइच पहुँच गयी। वहाँ के अंग्रेजों ने बलवा होने तक राह न देखकर बहराइच छोड़ दिया और 10 जून को लखनऊ भाग गये। किन्तु अवधभर में क्रांतिकारियों का जाल फैला हुआ थाः तब हिंदी वेश बनाकर किश्तियों द्वारा गोरों ने घाघरा नदी पार जाने का जतन किया; पहले किसी का ध्यान न गया; किन्तु मझधार में पहुँचते ही 'फिरंगी; फिरंगी' की चिल्लाहट सुन पड़ी। मल्लाह नीचे कूद पड़े और गोरों को कत्ल किया गया। इस तरह बहराइच से अंग्रेजी शासन उठ गया।

मेलापुर में कोई सैनिक अड्डा न था; फिर भी, वहाँकी जनता ने अंग्रेज अधिकारियों को वहाँ से भाग जाने को मजबूर किया। वहाँ के जमींदार ने भी जनकी सहायता की। फिर भी, उनमें से कुछ क्रांतिकारियों ने काट डाले और कुछ जंगल के कष्टों से मर गये।

फैजाबाद अवध के पूर्वभाग में है। वहाँ गोल्ड ने कमिशनर था। फैजाबाद तहसील में सुलतानपुर, सलोनी, और फैजाबाद प्रमुख केन्द्र थे। फैजाबाद में 22वीं पैदल पलटन, 6वीं अस्थायी पैदल पलटन, रिसाले तथा तोपखाने के कुछ विभाग थे। इन सबका अधिपति कर्नल लेनॉक्स था। फैजाबाद जिले में अंग्रेजों के अत्याचारों ने धूम मचायी थी। सर हेनरी लॉरेन्स स्वयं लिखता है : "तालुकेदारों पर मानता हूँ, बड़ी सख्ती बरती गयी थी। मैं समझता हूँ, कुछ तालुकदारों के आधे से अधिक गाँव छिन गये थे, जहाँ, कुछ तो बिलकुल बरबाद हो गये।" मेरठ के बलवे के बाद तुरन्त अंग्रेज अधिकारियों को डर लगने लगा, ये तालुकदार कहीं अब प्रतिशोध न लें। इस डर से वे बहुत बेचैन होकर अपनी रक्षा के उपाय ढूंढने लगे। क्रांतिकारियों के सब मार्ग रोके रहने पर वे अपने परिवार लखनऊ न भेज पाते थे; और फैजाबाद की सब सेना हिंदी होने से वहाँ भी प्रतिकार की कोई योजना न बना सकते थे। इस जिच में पड़ने से, निदान, अंग्रेज अधिकारी राजा मानसिंह की शरण में गये। राजासाहब अवध के हिंदुओं के माननीय मुखिया थे। नवाब के कार्यकाल में उनकी तलवार हिंदु धर्म की रक्षा के लिये सदा सँवरी रहती थी। 1857 की मई में मालगुजारी के किसी झगड़े में मानी मानसिंह को अंग्रेजों ने गिरफ्तार किया था। किन्तु मेरठ वाले बलवे से अंग्रेजों की सत्ता ढीली हो जाने के कारण, मानसिंह को अपनी ओर कर प्रसन्न रखने के लिये मुक्त कर दिया गया था।

बड़ी हिचकिचाहट के बाद राजासाहब ने औरतों और बच्चों को अपने किले में आसरा देना स्वीकार किया; तब भी वे कुडकुडाते थे, कि लोग इतना भी पसंद न करेंगे; उस बहाने किले पर धावा बोल देने से भी बाज न आयेंगे ! किसी तरह 1 जून को अंग्रेजी परिवार राजा मानसिंह के शहागंज के किले में रखे गये।

इधर इस तरह, अंग्रेज अपनी रक्षा की सावधानी रख रहे थे, उधर फैजाबाद में क्रांति की ज्वालाएं अधिक तीव्रता से भड़क उठीं। भारतीय इतिहास में अमर बने मौलवी अहमदशाह उन तालुकदारों से एक थे, जिनका सब कुछ अंग्रेजों ने छीन लिया था। हिंदुस्थान के देशभक्तों में उनका नाम सदा चमकता रहेगा। उन्होंने अपनी तालुकदारी ही नहीं, भारत की स्वाधीनता प्राप्त करने की सौगंध ली थी। स्वदेश के राजद्वार पर उन्होंने कई कष्टपूर्ण दिन और आँखों में रातें काटकर जागरित रहकर प्रहरी का काम किया था और अंदर घुसे हुए पराये शासन को निकाल बाहर कर देने के लिये हथियार उठाया था। अवध का राज्य अंग्रेजों ने जबसे हड़प लिया था, तबसे अहमदशाह ने देश और धर्म की सेवा में अपना सब कुछ लगा दिया था। वे मौलवी बने और क्रांतिधर्म का प्रचार करने को हिंदुस्थान भर में घूमने निकले। जहाँ जहाँ ये राष्ट्रीय संत पहुँचे, जनता में जबरदस्त जागरण जाग उठा। क्रांतिदल के नेताओं से वे मिले। उनका वचन अवध के राजघराने में ईश्वर का आदेश माना जाता। आगरे में गुप्त संस्था की एक शाखा खोली गयी। लखनऊ में भी ब्रिटिश राज को उलट देने का खुला प्रचार किया, अवध की जनता उन्हें असीम प्यार करती थी। तन, मन, धन, बुद्धि, वाणी सब एक ही आदर्श की प्राप्ति में लगाकर स्वाधीनता के प्रचार तथा क्रांति के निर्दोष संगठित जाले को बुनने के लिये वे दिनरात लगे रहते थे। आगे चलकर

वे लेखक बने और क्रांतिपत्रों को लिखने लगे, जो अवध प्रांत में वितरित होते थे। एक हाथ में हथियार, दूजे में लेखनी; उनके असाधारण व्यक्तित्व की दीप्ति से स्वतंत्रता की ज्योति और तेज से दमक उठी। यह देखकर अंग्रेजों ने उन्हें पकड़ने की आज्ञा दी। किन्तु इस जनप्रिय नेता को छूने अवध की पुलिस का हाथ आगे न बढ़ा; तब एक खास सैनिक टुकड़ी इस काम पर तैनात हुई और राजद्रोह के अपराध में फाँसी की सजा सुनायी गयी। कुछ समय तक उन्हें फैजाबाद के कारागार में भी रखा था।' किन्तु अब अंग्रेज ओर मौलवी में एक तरह से यह चढाऊपरी शुरू हो गयी थी, कि कौन किसे फांसी लटकायगा। इधर वह अंग्रेजी शासन को उखाड फेंकने की सिद्धता कर रहा था, उधर ब्रिटिश राज उसे फाँसी लटकाने के लिये टिकटिकी बनाने की उतावली कर रहा था। किन्तु इस जल्दबाजी में मौलवी को फैजाबाद ही के कारागार में वंद रखा; अंग्रेजों ने अपना वधस्तंभ खडा किया ! क्योंकि, मौलवी की गिरफ्तारी की चिनगारी से ही क्रांति के गोलाबारूद के अंबार में भड़ाका हुआ। सेना समेत सब नगर 'हर हर' की गर्जना कर उठा। जब सिपाहियों को साधने के लिये अंग्रेज अधिकारी संचलन भूमि पर पहुँचे, तब सिपाहियों ने करारा शब्दों में बेधड़क जताया 'अब से हम देसी अधिकारियों की ही आज्ञा मानेंगे, और हमारा नेता सूबेदार दिलीप सिंह होगा।' इस पर दिलीप सिंह ने अंग्रेज अधिकारियों को वंदी बनाया। इधर उस जनप्रिय वीर के पदरज से पवित्र बने बंदीगृह की ओर सिपाही और नागरिक सभी उमड़ पड़े। जनता के प्रेमपूर्ण उदगारों की कलध्वनि में कारागार का द्वार चरमराया और अभी तोड़ी हुई श्रृखलाओं को लतियाकर मौलवी अमहदशाह जनसंमर्द के सामने आये। मौलवी का यह पुनर्जन्म था। जो अंग्रेज शासन मौलवी को फाँसी लटकाने को आतुर था उसी का गला आखिर मौलवी ने कसकर पकडा। मौलवी मुक्त होते ही फैजाबाद के क्रांतिदल के नेता बने। और सबसे पहले उन्होंने कर्नल लेनॉक्स के पास, जो बंदी था, धन्यवाद का संदेश भेजा इसलिये कि उसने मौलवीसाब को जेल में हुक्का रखने की अनुज्ञा दी थी। देहान्त के दण्ड का यह वदला था !

और धन्यवाद के बाद मौलवी ने तुरन्त फैजाबाद से चले जाने की अंग्रेजों को चेतावनी दी। लूटफाट या ऊधम, जैसे कि अन्य स्थानों में हुआ था, न होने पावे, इसलिये सिपाहियों के रक्षक दल भेजे गये थे। मैगजीन तथा अन्य इमारतों पर भी सैनिकों का पहरा था। 15वीं पलटन के सिपाहियों ने एक युद्ध समिति बनायी और उसके निर्णय के अनुसार अंग्रेज अधिकारियों को कत्ल करना तय हुआ। किन्तु उनके प्रधान ने यह फैसला किया कि, 'प्राण जाय पर वचन न जाय' -- अंग्रेजों को जीवित जाने दिया गया। अपने साथ व्यक्तिगत सामान ले जाने की भी छूट दी गयी। हाँ, अवध के स्वामित्व की अर्थात जनता के काम की कोई वस्तु न ले जा सकेंगे। फिर क्रांतिकारियों ने स्वयं अंग्रेजों के लिए नावें सजायीं; उन्हें कुछ नकद पैसा भी दिया और अंग्रेजों ने सिपाहियों से विदा ली और घाघरा नदी पार कर गये। 9 जून को सबेरे एक घोषणा पत्र प्रकाशित हुआ, जिसके अनुसार कंपनी की सत्ता समाप्त होकर फैजाबाद स्वतंत्र हो गया और वाजिद अलीशाह की राजसत्ता फिर से शुरू हुई।

अंग्रेज जब नदी पार हो रहे थे, तब 17वीं पलटन के सिपाहियों ने उन्हें देखा। इन्हें फैजाबाद से इस मतलब का पत्र मिला था, 'इधर से आने वाले अंग्रेजों को खत्म करो,' जिससे उन्होंने किश्तियों पर हमला किया। चीफ कमिश्नर गोल्डने, ले. थॉमस, रिची, मिल, एडवर्ड्स करी आदि गोरे मारे गये। मोहदाबा जो भागे थे उन्हें पुलीस ने मार डाला। केवल एक किश्ती के लोग मल्लाहों की सहायता से छटककर गोरों की छावनी तक पहुँच पाये। राजा मानसिंह के घर के लोग पहले ही अपने शरण में आये अंग्रेज परिवारों को सुरक्षित रखने में तंग आ गये थे। ऊपर से और कुछ लोग पनाह माँगने आये। मानसिंह तब अयोध्या में था। उन्होंने अपने घरवालों को लिखित सूचना दी थी; 'किसी भी दशा में अंग्रेज पुरुषों को आसरा न दिया जाय; उनके परिवारवालों को भले ही रख लिया जाय और वह भी अपनी शर्तों पर ! उनके पालन में जरा भी आनाकानी होने का संदेह हो तो तुरन्त सबकी तलाशी ली जाय' इस प्रकार का इकरार क्रांतिकारी तथा मानसिंह के बीच हुआ था तब उनके किले से अंग्रेज पुरुष घाघरा पार जाने को निकले। मार्ग में उन्हें बहुत कष्टों तथा अड़चनों का सामना करना पड़ा। उनसे जो बच पाये वे गोपालपुरा पहुँचे। वहाँ के राजा ने गोरों को 29 दिन तक अच्छी तरह मेहमान बनाया और सकुशल अंग्रेजी अड्डे पर पहुँचा दिया। 1857 के ववंडर में जो अंग्रेज बचे थे उन्होंने अपने अनुभवों के ब्योरेवार और लम्बे चौड़े वर्णन लिख रखे हैं। इनसे हम बहुत कुछ सीख सकते हैं; भारत के लोगों की उदात्त मनोगति के ये परिचायक, जीवित स्मारक हैं। अवध में अंग्रेजों के विषय में असीम द्वेष भावना भड़की थी, फिर भी क्रांतिकारियों की सहायता करने वाले राजा महाराजाओं की शरण में जो अंग्रेज गये उन्हें आसरा देकर उनका अच्छा आतिथ्य किया गया। और ऐसे उदाहरण कुछ कम नहीं हैं बुशर लिखता है :-- अन्त में, मैं अकेला बचा। भागते भागते रास्ते में एक देहात मिला। पहले आदमी से भेंट हुई वह ब्राह्मण था; उससे मैंने पीने को पानी मांगा; मेरी बुरी दशा देखकर उसे दया आयी; उसने बताया कि उस देहात में ब्राह्मण अधिक हैं तब मेरे लिए कोई भय नहीं... बलीसिंग मेरा पीछा करते वहाँ पहुँचा। तब मैं भाग कर एक गली में घुसा; एक बुढ़िया ने मेरे पास आकर एक झोपड़े में घुसने का इशारा किया और घास में जा छिपा। थोड़े ही समय में बलीसिंग और उनके साथी वहाँ आये और अपनी तलवारों की नोकों से हर स्थान में घोप कर देखने लगे। उन्होंने जल्द ही मुझे खोज निकाला और बालों को पकड़ कर घसीटते बाहर खींचा। तब देहात के लोग इकट्ठा हुए और फिरंगियों को अनगिनत गालियां देने लगे। फिर देहातियों के कोलाहल में बलीसिंग मुझे दूसरी जगह ले गया। मेरे मरण का दिन हर रोज आगे बढ़ाया जाता। मैं पाँव पड़कर दया की याचना करता जाता। निदान, बलीसिंग मुझे अपने घर ले गया और अन्त में मुझे हमारी छावनी में पहुंचाया गया। कर्नल लेनॉक्स कहता है:-- हम भाग रहे थे तब नजीम

हुसेन खां के लोगों ने हमें पकड़ा। उनमें से एक ने चक्र (रिवाल्वर) तान कर, दांत पीसकर, कहा कि फिरंगी को गोली से उड़ा देने को उसके हाथ में कमकमहाट हो रही है। उसने कहा, किन्तु उससे ऐसा कोई काम न हुआ। फिर हमें नजीम के सामने खड़ा किया गया। वह दरबार में एक गाव तकिया से टेक लगाकर पड़ा था। उसने हमें शरबत पिलाया और निर्भय रहो कहकर धीरज बँधाया। हमें कहाँ टिकाया जाय इस पर विचार हो रहा था तब एक क्रोध भरे नौकर ने घोड़ों के अस्तबल सूचित किये, तो नवाब ने उसे फटकारा। किन्तु दूसरा आगे होकर बोला, इसमें इतना सोचने की क्या पड़ी है ? इन सब फिरंगी कुत्तों को मैं अभी खत्म किये देता हूँ, बस ! नजीम ने सबको डाँटा, और हमें प्राणदान देने का आश्वासन दुहराया। क्रांतिकारियों के डर से हम जनानखाने के पास ही छिपे रहे थे। हमें कपड़े, खाना सब कुछ ठीक मिलता।'' इसके बाद एक दिन नजीब ने उन्हें हिन्दी वेश पहनाकर अंग्रेजों की छावनी में पहुँचा दिया।

फैजाबाद से अंग्रेज अफसरों के भाग जाने के समाचार मिलते ही अवध के अन्य तहसील भी स्वतंत्र हुए और स्वाधीनता का झण्डा फहराया गया। उसी दिन अर्थात 9 जून को सुलतानपुर उठा, दूसरे दिन सलोनी में बलवा हुआ, तब वहाँ के अधिकारी जान की खैर मनाने तितर बितर भागे। उनमें से कुछ सरदार रुस्तुमशाह तथा कुछ राजा हनूमंत सिंह की शरण में गये। अवध के वीर तथा उदार राजा शरण में आये हुओं को केवल प्राणदान ही नहीं देते थे; वरंच इन अंग्रेजों की अच्छी तरह खातिर करते थे ! वास्तव में इन सभी जमींदारों को अंग्रेजों ने बहुत अपमानित और बरबाद किया था। हाँ, वे कभी न भूले, कि उनका धर्म ठुकराया गया और उनके स्वराज्य का सत्यानाश कर दिया गया था। अपने सिपाहियों को लेकर वे स्वातंत्र्य-समर में हाथ बँटाते थे। और इनमें से कुछ तो यह प्रण कर चुके थे, कि अंग्रेजों को भारत से निकाल बाहर करेंगे तब कहीं आराम करेंगे। और इस वीरतायुक्त देशभक्ति और स्वाधीनता के प्रेम के साथ साथ मन की महानता भी उनके पास थी। बहुसंख्य जनता जब बदले तथा तेहे के जोश में अंग्रेजों को गाजर मूली की तरह काट रही थी, तब अंग्रेजी परिवारों पर दया कर, उनका आतिथ्य तथा संरक्षण ही नहीं किया गया, वरंच जिन अधिकारियों ने बहुत सताया था उन्हें भी, शरण आने पर, प्राणदान दिया। जनता ने बारबार प्रार्थना की, कि 'इन अधिकारियों को जीवित रखने में अपनी भलाई नहीं है, क्योंकि, ये फिर से लड़ाई की सिद्धता करेंगे--और 1857 के उत्तरार्ध में ठीक वही हुआ भी--तो भी जमींदारों ने उनके साथ उदारता से ही बरताव किया। इस तरह की उदारता तथा दानाई, जनता के क्रोध का कारण होने पर भी, बरती जाने का उदाहरण भारत को छोड़ किस राष्ट्र में, और वह भी विप्लव के विस्फोट में, पाया जायगा ?

काला के जमींदार राजा हनुमंत सिंह राष्ट्रसेवा के लिए लड़ने की लगन में रंच भी किसी से कम न होने पर भी, केवल उनकी महान् उदारता ने शत्रु को यों कहने पर मजबूर किया :--''ब्रिटिशों ने मालगुजारी की नयी पद्धति शुरू की, जिससे इस राजपूत सूरमा की आमदनी का बहुत बड़ा हिस्सा छिन गया था। इस जुल्म तथा अपमान का शल्य यद्यपि उनके अंतस्तल में गहरा घाव कर चुका था, तो भी जिस राष्ट्र ने उसे लगभग बरबाद किया था, उस राष्ट्र के शरणार्थी अधिकारियों को, केवल विपत्ति में फँसे लाचार जीव की उदार दृष्टि के बिना, अन्य किसी भी दृष्टिकोण से देखने को उनका महान मन न मानता था ! उस संकट-समय में उन अंग्रेजों की सहायता भी की और उन्हें उनके सुरक्षित स्थान तक भी पहुंचा दिया। किन्तु विदाई के समय कैप्टन बरो ने बगावत को दबाने में राजासाहब की सहायता की इच्छा प्रकट की, तब वे तड़ाक से खड़े रहे और कहा, ''महाशय, तुम्हारे भाई इस देश में आये और उन्होंने हमारे राजा को हटा दिया। उनके मौरूसी हकों को जांचने के लिए तुमने अपने अधिकारियों को तहसीलों में भेजा। कलम के शोशे से मेरे वंश के तकवे में अनादि काल से रहे गांवों को तथा आमदनी को तुम हड़प गये ! मैं लाचार चुप रहा, किन्तु अब तुम्हारे भाग्य ने एकाएक पलटा खाया ! जिस मुझे लूटकर बरबाद कर डाला उसी के द्वार खटखटाने की बारी तुम्हें आयी; फिर भी मैंने तुम्हारी रक्षा की। बस, अब मैं अपनी प्रजा का नेतृत्व करने लखनऊ जाकर तुम लोगों को भारतवर्ष से भगा देने के कार्य में अपना जीवन लगा दूँगा।''

अवध प्रांत के लोगों ने जो उदारता ऐसे समय में दिखलायी वह किसी दुर्बलता के कारण न थी। 31 मई से जून के पहले सप्ताह के अन्त तक समूचा अवध प्रांत किसी प्रचंड यंत्र के समान सहसा जागरित हुआ था। अवध के सब जमींदार तथा राजा, ब्रिटिश पैदल सेना, रिसाले तथा तोपखाने के सहस्त्रों सैनिक, नगरी महकमों के सभी सेवक, किसान, व्यापारी, विद्यार्थी, हिन्दु, मुसलमान सब देश को स्वतंत्र करने के लिए एक देश प्रेम में लग गये ! हर एक को यह श्रद्धा थी, कि वह धर्म तथा न्याय के युद्ध में कूद पड़ा है। केवल 10 दिनों में जनता ने वाजिद अलीशाह को फिर से सिंहासन पर बिठाया। 'जनता के कल्याण के हेतु बाजिद अली को हमने पदच्युत किया है'-- डलहौजी के इस ढकोसले का कैसा मुँहतोड़ और मार्मिक उत्तर जनता ने दिया ! जुलाई के प्रथम सप्ताह के अन्त में समूचे अवध प्रांत में एक भी गांव ऐसा न था, कि जहाँ युनियन जैक के टुकड़े टुकड़े कर डलहौसी को इसी तरह का मार्मिक उत्तर न दिया गया हो।

इस तरह सब स्थिति का सत्य विवरण देने के पश्चात् श्री. फॉरिस्ट भूमिका में लिखता है :-- 'इस प्रकार केवल दस दिनों में अवध का अंग्रेजी शासन किसी सपने की तरह विला गया और गया बीता हो गया ! सेना ने बलवा किया, प्रजा ने राजभक्ति को ठुकरा दिया; न उसमें प्रतिशोध न क्रूरता की भावना थी ! शूर तथा चिढ़ी हुई जनता ने शासक-वर्ग के निराश्रित शरणार्थियों को--अंग्रेजों को-लगभग सभी स्थानों में, विशेष दयाबुद्धि से रखा। जिन शासकों ने अपनी चले तब तक परोपकार के नाम पर बहुसंख्य जनता पर असीम कष्ट ढाये थे, उन हारे हुए शासकों से--अंग्रेजों से--अवध की जनता जिस उदारता तथा शिष्टता से पेश आयी वह तो कभी नहीं भुलाया जा सकता। सुयोग्य तथा अनुभवी अंग्रेज अफसरों को अवध के वीरों के योग्य उदारतापूर्ण लोगों ने जीवित न छोड़ा होता, तो नौसिखिये अंग्रेजों के लिए फिर से अवध जीतना असम्भव हो जाता !

लगभग १० जून तक सारा अवध प्रांत स्वतंत्र होकर सब सैनिक तथा स्वयं सेवक लखनऊ को चल पड़े, जहाँ प्रभावशील अंग्रेज नेता सर हेनरी लॉरिन्स अब-तब हुई अंग्रजी राजसत्ता को होश में लाने की पराकाष्ठा की चेष्ठा कर रहा था। सारा प्रांत हाथ से निकल जाने पर भी राजधानी का स्थान अब तक उसने तावे में रख छोड़ा था। क्रांति का अंदाज पहले लगाकर उसने माचीभवन तथा रेजीडेन्सी में संरक्षक किलाबंदी का प्रबन्ध कर रखा था। 31 मई को बलवा कर जब सिपाही चले गये, तब उसने सिक्खों की एक तथा 'अत्यंत राजनिष्ठ' हिंदुस्थानियों की एक-दो मक्कम पलटनें खड़ी कीं। रहे सहे पुराने सिपाहियों ने 12 जून के पहले विद्रोह किया; सर हेनरी को इस पर आनंद ही हुआ। क्योंकि, उस समय उसके पास चुनिंदे गोरे सैनिकों की एक पलटन, तोपखाना, तथा कड़ी से कड़ी कसौटी पर जिनकी राजनिष्ठा (!) खरी उतरी थी ऐसे सिक्ख तथा हिंदुस्थानियों की दो पलटनें थीं। इस लिए वह तो लड़ाई का मौका ढूँढ ही रहा था।

सैनिक तथा अवध के नौजवान स्वयं सैनिक लखनऊ के आसपास जमा हो रहे थे। दोनों दल जानते थे, कि इस मुठभेड़ के पूर्व इसके बाद फिर से टकराना

पड़ेगा। कानपुर के घेरे की लड़ाई अब टोंच पर पहुँच चुकी थी। ऐसे समय में कानपुर के समाचार के बिना, अंग्रेज या क्रांतिकारी चढ़ाई करने को राजी नहीं थे। 23 जून को सर हेनरी ने लॉर्ड कॅनिंग को लिखा, "कानपुर यदि टिका रहे तो लखनऊ शायद ही घेरा जायेगा।" 28 जून को लखनऊ में समाचर पहुँचा कि कानपुर में एक भी अंग्रेज जीवित न रखा गया; इस संवाद से उत्साहित होकर क्रांतिकारियों ने अंग्रेजों पर धावा बोलने के लिए चिनहट की राह ली।

कानपुर की करारी तथा भयंकर हार से अंग्रेजों के रोब को हर जगह कड़ा धक्का पहुँचा। इससे सर हेनरी ने अपने मन में ठान ली थी, कि इससे दुगनी करारी हार जब तक क्रांतिकारियों को न दी जाय, तब तक लखनऊ की रेजीडेन्सी तो क्या कलकत्ते का फोर्ट विलियम भी असुरक्षित रहेगा ! कानपुर का अपमान क्रांतिकारियों के खून से धो डालने का निश्चय कर 29 जून को अंग्रेजी सेना लोहा-पुल के पास जमा हो गई। 400 गोरे सैनिक, 400 भारत द्रोही सिपाही और 10 तोपों के साथ सर हेनरी लखनऊ से चल पड़ा। शत्रु की हलचल कहीं नजर न आने से वह दूर तक चलता ही गया। निदान, वह क्रांतिकारियों की हरावल के सामने आ खड़ा हुआ। सर हेनरी ने अपने दाहिने पासे के एक महत्वपूर्ण देहात पर दखल करने की सिपाहियों को आज्ञा दी और उसके अनुसार वह गांव हाथ आया; इधर गोरे सैनिकों ने बाएं पासे के इस्माइल गंज पर दखल कर लिया। तोपखाने के हिंदी और अंग्रेज तोपचियों ने क्रांतिकारियो पर गोलों की बौछार इतनी जोरों से की, कि उनका तोपखाना बंद पड़ा ! उस दिन चिनहट में गोरों का पल्ला लगभग भारी रहा। किन्तु एकाएक क्रांतिकारियों ने बाएं पासे के एक गांव पर छुपा हमला करने की खबर आयी; अचानक अंग्रेजों पर धावा बोल, उन्हें भगा दिया और गांव जीत लिया। क्रांतिकारियों ने अंग्रेजों की पिछड़ी तथा बीच के विभाग पर एक साथ चढ़ाई की ! ज्योंही गोरे हटने लगे त्यांही क्रांतिकारियों ने अपना दबाव बढ़ाया ! अंग्रेजी सेना में गड़बड़ी पड़ी ! और अब लड़ने का अर्थ सारी सेना का सत्यानाश करना है, यह ताड़कर सर हेनरी ने पीछे हटने की आज्ञा दी। इस पीछेहट में भी गोरों को बड़ी यंत्रणाएं सहनी पड़ी। क्योंकि, चिनहट में अंग्रेजों को हराकर ही क्रांतिकारियों ने दम न लिया, उन्होंने ताबड़तोड़ गोरों को खदेड़ना शुरू किया, जिससे अनुशासन टूट गया और गोरे तितर-बितर हो गये और जान बचाते हुए भाग खड़े हुए। हारी हुए अंग्रेज सेना लखनऊ की ओर भाग रही थी। 400 गोरों से 150 चिनहट में मारे गये। हिन्दुस्थानी राजनिष्ठों की गिनती से क्या लाभ ? दो बड़ी तोपें तथा एक हाविट्झर खेत में छोड़ अंग्रेज भागे, और साथ कानपुर के प्रतिशोध का विचार वहीं छोड़ देना पड़ा। सर हेनरी, यह मार पड़ने पर, रेजीडेन्सी में लौट आया; फिर भी क्रांतिकारी उसका पीछा कर रहे थे। चिनहट की लड़ाई तभी समाप्त हुई, जब बचे हुए अंग्रेज, सिक्ख और 'राजनिष्ठ' सिपाही रेजीडेन्सी की तोपों की छाया में दम लेने लगे। हाँ, किन्तु उस लड़ाई का प्रभाव कहाँ समाप्त हुआ था ? क्रांतिकारियों ने माची भवन और रेजीडेन्सी दोनों को घेर लिया। तब एक ही स्थान का प्रतिकार पूरा बलवान करने के हेतु सर हेनरी ने माची भवन खाली करना तय किया। अनगिनत गोला-बारूद से भरे वहाँ के कोठार में आग लगाकर सब गोरे रेजीडेन्सी में आ गये ! इस स्थान में अनाज, शस्त्रास्त्र, गोलाबारूद आदि सामग्री घेरे के समय में आवश्यकता से अधिक थी। अब रेजीडेन्सी में लगभग एक सहस्र गोरे सैनिक तथा 800 हिंदी सिपाही थे। बाहर क्रांतिकारियों की असीम सेना खड़ी थी; उससे भिड़ने की सिद्धता अंग्रेजों ने की। चिनहट की लड़ाई के बाद भी रेजीडेन्सी झुझाने का अंग्रेज सेनापति का निश्चय देखकर क्रांतिकारियों को भी तेहा आ गया। विदेशी तानाशाही तथा पराधीनता का सदा के लिये अन्त कर देने के विचार से वे क्रोध से मन में जलने लगे !

इस तरह भड़के हुये अवध ने अंग्रेजी शासन को कुचलते, पीटते और पीछा करते हुए लखनऊ की छोटी सी रेजीडेन्सी में बंदी बना दिया।

दसवां अध्याय

दिल्ली, कानपुर, लखनऊ, बरेली के मरे हुए या अब-तब करते हुए राजसिंहासनों में फिर से प्राण फूँककर जिस स्वातंत्र्य-लालसा ने उन्हें जीवित किया, उसी से कुछ कुछ धुकधुकी लिए अन्य संस्थानों पर वस्तुतः क्या प्रभाव पड़ा था ?

1857 में सर्वसाधारण को यह विश्वास था, कि विदेशियों का जुआठा जब तक भारत की गर्दन पर चढ़ा हुआ है, तब तक ये संस्थान केवल चेतनाहीन कलेवरों के समान ऐसे ही सड़ते रहेंगे ! 1857 के मानवी महासागर में किसी राजा महाराजा या उनके उत्तराधिकारियों के लिए थोड़ी ही तूफान आया था ? वह तो स्वाधीनता के परम पवित्र ध्येय से प्रक्षुब्ध हो उठा था। राजा या रंक, हर कोई मानव मरने वाला है; किन्तु राष्ट्र कभी न मरना चाहिये; उसे मरने नहीं देना चाहिये। पराधीनता की भीषण श्रृंखलाओं को तोड़कर स्वदेश को स्वाधीन रखना ही उस समय का ध्येय था। और इसीसे उस साधना का मार्ग राजप्रसाद या घर-झोंपड़ों को श्मशान बनाते हुए बढ़ने वाला होने पर भी, उस साधना की पूर्ति के लिए सार्वदेशिक युद्ध की तुरही फूँकी गयी। अन्य राजा तो मृतक के समान ही थे।

गवालियर, इंदौर, राजपूताना, तथा भरतपुर आदि रियासतों की जनता भी इस स्वातंत्र्य-समर के आवेश में, ब्रिटिशों ने जिन्हें दास बनाया था उनके समान ही, प्रक्षुब्ध हो उठी थी। 'अपनी रियासत तो सुरक्षित है, फिर क्यों इस व्यर्थ के झगड़े को मोल लें' यह क्षुद्र विचार किसी के मन में भूल से भी न आया। इसी तरह 'हमारा संस्थान भले ही हथेली जितना हो, वह एक स्वतंत्र राष्ट्र है; या ब्रिटिश प्रांतों की जनता से हमें कोई सरोकार नहीं; वे स्वशासित तथा पूर्णतया अलग देशविभाग हैं' इस प्रकार की संकीर्ण भावना भी किसी के मन में न थी। एक ही मातृभूमि की संतान और एक दूसरे से परायों के समान दूर ? छि; नहीं; कदापि नहीं ! अब 1857 है; सारा भारत अब एकप्राण, अखण्ड, एक ही भाविकी रस्सी में पिरोया हुआ दीख पड़ता है।
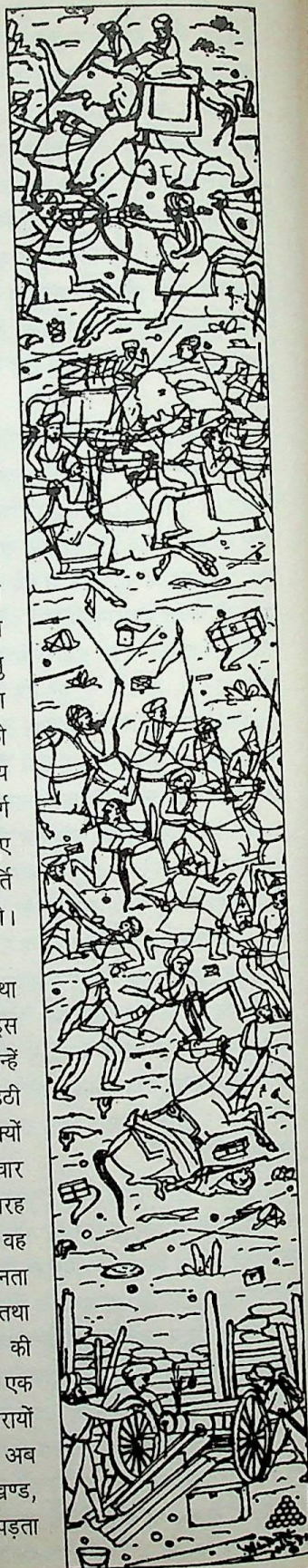
इसलिए, ओ गवालियर के शिंदे ! अंग्रेजों के साथ भिड़ने की हमें अनुज्ञा दो; हाँ केवल छूट नहीं, तुम हमारे नेता बन हमारे साथ रहो ! 'स्वदेश' और 'स्वधर्म' के महामंत्र को जप कर, श्री महादजी का अधूरा कार्य पूरा करने को अपनी सेना के साथ रण मैदान में चलो। सारा देश श्री जयाजी शिंदे के नाम पर आस लगाये बैठा है। लगाओ ! युद्धका नारा जगाओ। तब आगरा तुरन्त शरण माँगेगा, दिल्ली स्वतंत्र होगा, दखखन गरज उठेगा, विदेशियों को निकाल बाहर कर दिया जायगा, स्वदेश पराधीनता का वरदान देने वाले नरश्रेष्ठ बनोगे। बीस करोड़ मानवों का जीवित अब एक व्यक्ति की हाँ या ना पर डाँवाडोल है। इतिहास ने ऐसा प्रसंग कभी नहीं देखा !

हाय; किन्तु वह एक शब्द बोलने को शिंदे की जीभ चिपक गयी और जब वह खुली, तब 'युद्ध' के बदले 'मित्रता' के बखान करने लगी। शिंदे ने भारत से नहीं, अंग्रेजों से मित्रता निबाहने का निश्चय किया। यह मालूम पड़ते ही जनता क्रोध से भड़क उठी। शिंदे युद्ध से दूर रहना चाहते हो तो हम लड़ेंगे। मातृभूमि को मुक्त करने तुम न आना चाहो, तो तुम्हारे बिना, और ऐसा ही समय आ जाय, तो तुम्हारे विरोध में भी हम यह काम करेंगे। आजतक हम शिंदे के आ मिलने की राह देखते रहे; खैर, आज के सूरज के अस्त तक हम समय देते हैं। सूरज गर्क होगा और फिर 'हर, हर, महादेव' ! वह उधर गाड़ी में कौन जा रहा है ? श्री कूपलैंड और उनकी पत्नी ? और उनके स्वागत के लिये कौन आगे बढ़ रहा है ? 14 जून 1857 के बाद फिरंगी को नमस्ते ? अरे, वह देखो वहाँ ब्रिगेडियर आ रहा है; न किसी ने उसे वंदना करने को हाथ ऊँचा किया, न गर्दन झुकायी। ठीक है, वह ब्रिगेडियर साब हैं। अरे भई, किसने उसे ब्रिगेडियर बनाया ? फिरंगियों ने न ? प्रसाद-शिखर पर बैठ जाने से क्या कौआ गरूड़ बन जाता है ? हाँ तो, ब्रिगेडियर के सामने से गुजर जाना; उसकी ओर झाँकना तक नहीं ! ग्वालियर की सेना के सिपाहियों ने ब्रिगेडियर को माना न ध्यान दिया, सीधे चल पड़े। फिर भी शाम तक सब शान्त रहा और तब एक बंगले में आग लगी दिखायी पड़ी। हाँ, बलवे का महूरत आ लगा है शायद ? तोपखाने वाले। एक हाथ में जलती मशाल, दूसरे में चमकती करवाल लेकर, सिंहगर्जना करते हुए दश दिशाओं को गूँजा दो। भारतीय को गले लगाओ; गोरे का गला घोंटो। मारो फिरंगी को ! तुम घर में छिपते हो ? अच्छा, तो उस घर ही को जला दो। आग से बचने को बंगले से कौन भागा ? गोरा है ! उड़ा दो उसका सिर ! खबरदार, मत मारो, रुक जाए; हम औरतों पर हाथ नहीं उठाते !

रात भर इसी तरह वह पैशाचिक नृत्य जारी रहा। ग्वालियर नगर ही में केवल नहीं, शिंदे के राजमहल में भी अंग्रेजों का नामलेवा न रहना चाहिए। सभी गोरों को शिंदे के प्रदेश से ठेठ आगरे तक भगा दिया गया। गोरी मेमों को बंदी बनाया गया। परायी स्त्री से बोलना अच्छा नहीं ! किन्तु वह देखो; एक मेम उधर धूप में जल रही है! पूछें तो ! 'क्यों मेम साहब ! यहाँ की धूप कैसी है ? बहुत कड़ी है न ? और इस समय तो आप उसे और ही कड़ी महसूस करती होंगी ? आप अपने ठंढे देश में रहतीं तो ऐसी विपत्ति में क्यों कर फँसतीं ?'' इस 'शैतानी' सलाह को देते हुए सुनकर. वह दूसरा आदमी क्या कह रहा है ? ''अजी, आपको आगरे पहुँचाना है क्या ? ओ हो। तुम्हारे आदमी तो कब के मारे गये हैं ! मैंने कहा, आगरा अब दिल्ली के सम्राट की छत्रछाया में है ? क्या, फिर भी आप वहाँ जाना चाहती हैं ?'' और हास्य की एक लहर उठी ! शिंदे तो मूर्ति के समान जम गया था ! ग्वालियर की सेना ने विद्रोह किया; सिपाहियों ने गोरे अधिकारियों का काम तमाम कर डाला। अंग्रेजी स्त्री-पुरुष, उनके ध्वज और सत्ता सब कुछ ग्वालियर की सीमा के पार खदेड़ कर ग्वालियर स्वतंत्र कर दिया गया ! इसके बाद क्रांतिकारियों ने शिंदे से अपना नेतृत्व करने को कहा। बताया गया, कि अपनी सारी सेना के साथ आगरा, कानपुर और दिल्ली के टापू में भारतीय स्वातंत्र्य-समर में हाथ बँटाने शिंदे आ जायँ। किन्तु शिंदे वादे करता गया (और तोड़ता भी !) और सिपाहियों को रोकता गया। मालूम होता है, स्वयं तात्या टोपे गुप्त रूप से वहाँ पहुँचने तक ग्वालियर की सेना वहीं हाथ पर हाथ धरे बैठी रहेगी।

और तभी तो आगरे के अंग्रेजों को अब भी आशा बँधी हुई है। आगरे में रहने वाला उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत का ले. गवर्नर कोलविन तो मौत के डर से हर समय काँपता रहता है। मेरठ वाले बलवे के संवाद से बिगड़े हुए सैनिकों के सामने इसीने 'वफ़ादारी' पर एक वक्तृता झाड़ी थी। क्षमा की घोषणा भी इसी ने की थी; किन्तु क्षमायाचना करने वाला एक भी कायर सिपाही आगे तो न आयाः उलटे, इस क्षमा की घोषणा के प्रत्युत्तर स्वरूप सिपाहियों ने 5 जुलाई को आगरे पर चढ़ाई की ! नीमच तथा नसीराबाद के विद्रोही भी आगरे पर चढ़ आये। तब बितौली और भरतपुर के नरेशों की 'राजभक्त' सेना को उनका मुकाबला करने रवाना किया गया। इन सैनिकों ने साफ बता दिया, कि ''अंग्रेजों के विरुद्ध उठने का हमारा विचार कभी न होगा, किन्तु हमारे देशबंधुओं पर हम कभी शस्त्र न उठायँगे।'' अंग्रेजों के मुँह पर यह चपत पड़ी और वे निराश हो गये। हिंदी नरेश अंग्रेजों से वफ़ादार थे, किन्तु उनकी प्रजा और सेना 'अपने देशबंधुओं पर हथियार उठाने को कभी सिद्ध न थी।' इससे, केवल गोरी सेना लेकर ब्रिगेडियर पॉलव्हिल आगरे पर चढ़ आने वाले विद्रोहियों का सामना करने चल पड़ा। दोनों की मुठभेड़ सास्सिह को हुई। दिन भर लड़ाई चालू रही। किन्तु क्रांतिकारियों के सामने पैर जमाना दूभर होने से अंग्रेज हट गये। विजय से उत्तेजित क्रांतिकारियों ने भेड़िये के समान अंग्रेजों का पीछा किया। जब गोरी सेना आगरे पहुँची, तो उनके पीठ पर विजयी की पुकार करते हुए क्रांतिकारी भी दौड़ आये। वह सुअवसर, जिसकी ताक में जनता थी, आज उनके हाथ लगा। यह 6 जुलाई का दिन था। पुलिस के नेतृत्व में सारा आगरा नगर उठा ! पुलीस के अधिकारी क्रांतिकारियों से अच्छी तरह सधे हुए थे। हिंदु-मुसलमान धर्माचार्यों का एक बड़ा जुलूस निकला। आगे कोतवाल तथा अन्य पुलिस अधिकारी थे। 'स्वधर्म, और स्वराज्य की जय हो' के नारे लगाये गये और यह घोषित किया गया, कि अबसे अंग्रेजी सत्ता का अन्त होकर दिल्ली के सम्राट की सत्ता चालू हो चुकी है।

इस तरह आगरा के स्वतंत्र हो जाने पर पराजय के अपमान से लज्जित, भावी की चिंता से त्रस्त कोलव्हिन ने किले का आसरा लिया। उसे यही कुरेद पड़ी थी कि शिंदे क्या करवट लेता है ? शिंदे क्रांतिकारियों में मिला--केवल इतने समाचार ही से कोलव्हिन शरण जाता; किन्तु शिंदे की 'वफ़ादारी' के पत्रों से और उसकी सहायता से यह स्पष्ट था कि शिंदे अंग्रेजों के विरुद्ध खड़ा न होगा; और मालूम होता है इसी से आगरे पर अंग्रेजों का झण्डा टिक सका। किन्तु उसे बनाए रखने की चिंता के बोझ से, हिंदुस्थान की अंग्रेजी सत्ता को अत्यंत दुःखित दशा में छोड़कर 9 सितम्बर 1857 को कोलव्हिन मर गया।

ग्वालियर की जनता तथा सैनिकों में जो क्रांतिकारी मनोगति दीख पड़ी थी, उसके दर्शन इंदौर में भी भयानक रूप में हुए। मऊ की अंग्रेजी छावनी से होलकर की सेना ने गुप्त संबंध प्रस्थापित कर लिया था और तय हुआ था कि दोनों मिलकर बलवा करें। 1 जुलाई को इंदौर दरबार के सआदत खाँ नामक प्रतिष्ठित सरदार ने रेजीडेन्सी की गोरी सेना पर धावा बोलने की आज्ञा दी। उसने बताया कि महाराजा होलकर ने उसे यह सूचना दी है। पर हिंदी सेना को इस अनुरोध की आवश्यकता ही न थी। उन्होंने स्वाधीनता का झण्डा फहराया और तुरन्त रेजीडेन्सी पर धावा बोल दिया। वहाँ के हिंदी सैनिकों ने अंग्रेजों के लिए अपने भाइयों पर बंदूकें तानने से साफ इनकार किया, जिससे अंग्रेजों के छक्के छूटे और वे इंदौर को भाग गये। रेजीडेन्सी

वाले हिंदी सैनिकों ने गोरों को जीवित रखना मान्य किया था और अन्त तक वे उनकी रक्षा करते रहे। अंग्रेज ग्रंथकार हमेशा बड़ी छानबीन करते रहे हैं कि 'महाराजा होलकर का झुकाव अंग्रेजों की ओर था, या क्रांतिकारियों की ओर ? किन्तु 1857 के इतिहास तथा उस समय की स्थिति का बारीकी से परीक्षण करने वाले को पता चलेगा, कि बहुतेरे नरेशों ने इस ढुलमुल नीति का अवलंबन किया था। मानव मात्र में स्वाधीनता की इच्छा जन्म से होती है। क्रांति की हार न चाहने से उन्होंने अंग्रेजों की सहायता न की, जहाँ उनके इस डर से, कि कहीं कभी अंग्रेज क्रांति को दबाने में सफल हो जाय तो इनके राज या जागीरें ज़ब्त करने का एक बहाना मिल जायगा। उन्होंने क्रांतिकारियों की कुछ विशेष सहायता न की। बहुतेरे नरेश, क्रांति की सफलता की स्पष्ट सम्भावना दीख पड़ते ही, स्वाधीनता का झण्डा फहराना चाहते थे।

इस प्रकार उन्होंने अंग्रेजों की विजय का रास्ता साफ कर दिया ! उनकी अक्ल मारी गयी थी; वे इतना न समझ पाये, कि यदि वे क्रांतिकारियों के पक्ष में जाते तो अंग्रेजों को सफल होने की रंच भी आशा न रह पाती, और यदि वे तटस्थ रहते तो, क्रांति की सफलता में संदेह पैदा हो जाता था। उस कठिन समय में बहुतेरे हिंदी नरेशों की ढुलमुल नीति का यही सच्चा विश्लेषण है। जनता और सैनिक अंग्रेजों को रेजीडेन्सी से निकल बाहर करते हों, तो भले करें ! इसका मतलब केवल इतना ही होगा कि संस्थान स्वतंत्र हैं ! फिर भी, कहीं अंग्रेज विजयी हों तो जो कुछ अपना है उस पर आँच न आय इसलिए अंग्रेजों से मित्रता का राग वे सदा अलापते रहे। यही रुझान, कच्छ, ग्वालियर, इंदौर, बुंदेलखण्ड, राजपूताना आदि स्थानों के नरेशों ने लिया था।

और हिंदी रियासतियों के स्वामियों ने इस स्वार्थपरक मनोगति के कारण ही क्रांति का गला घोंट दिया। दोनों में पाँव न रखकर यदि हिम्मत और एक ही निश्चय से-- स्वाधीनता या मौत-- वे आगे बढ़ते तो अवश्य वे स्वतंत्र हो जाते। किन्तु स्वार्थ से अंधे बने और 'दुविधा में दोनों गये, माया मिली न राम' वाली गति को पहुँचे। उनके मन में भलाई की मात्रा बहुत कम और नीच स्वार्थ की मात्रा बहुत अधिक होने से उनकी भलाई बेकार गयी; हाँ, हीनवृत्ति संसार के सामने प्रकट हुई। पटियाला तथा अन्य कुछ नरेशों के समान वे खुल्लम-खुल्ला देश के दुश्मन न थे; फिर भी अप्रत्यक्ष रूप से उन्होंने विश्वासघात का काम किया। स्वतंत्र होने की उच्च आकांक्षा होते हुए हेय स्वार्थ को उस पर हावी होने दिया और इसी से उस पाप के लिए उनकी घोर निंदा हुई। अब इस पातक का प्रायश्चित वे कब करेंगे ? कब इस काले धब्बे को धो डालेंगे ?

किन्तु जहाँ हीन स्वार्थपरक मनोगति ने हिंदी नरेशों को इस हीन दशा को पहुँचाया, वह नीच स्वार्थ उनकी प्रजा के मन में क्षण भर भी न जम सका। और मात्र इसी जनता की शक्ति के प्रचंड, आक्रामक विद्रोह से सारे भारत को लगे पराधीनता के शाप को भस्म करने को पेशावर से कलकत्ते तक विप्लव की आग भड़की और खून की नदियाँ बहीं ! जनता ही के आपसी एके तथा बल के प्रभाव से और निःस्वार्थ लड़ाई से कुछ समय तक सही, अंग्रेजी शासन एक बार उखाड़ कर उसे धूल चाटनी पड़ी।

इस प्रलयंकारी भूकंप का अंदाजा कलकत्ता और इंग्लैंड भी ठीक तरह से न लगा सके ! वहाँ की सरकार के विचार में तो मेरठ वाले बलवे के पहले देश भर में शान्ति का वातावरण था। मेरठ के उठने पर तथा दिल्ली से स्वतंत्रता की प्रकट घोषणा होने पर भी इस भड़ाके का अर्थ ही कलकत्ते वाले अंग्रेजों की समझ के बाहर रहा। 10 मई से 31 मई तक बलवे की छोटी लहर भी न देखकर कलकत्ते के उस मत की--भारत में विशेष अशान्ति नहीं है--पुष्टी ही हुई। 25 मई को गृहमंत्री ने प्रकट रूप से कहा, 'कलकत्ते के केंद्र से 300 मीलों के व्यासार्द्ध पूर्ण शान्ति बनी रही है। बीच में क्षणिक तथा कहीं कहीं खतरे का रूप दीख पड़ता था वह अब नष्ट हो गया है। हमें दृढ़ विश्वास है, कि अब थोड़े ही समय में पूर्ण शान्ति और सुरक्षा का साम्राज्य हो जायेगा'।

वह थोड़ा ही समय कब का लद गया था। 31 मई की पहली किरणों ने भूमि को स्पर्श किया तब 'शान्ति और सुरक्षा का साम्राज्य' सब दूर स्थापित हो चुका था। लखनऊ की रेजीडेन्सी के चौफेर, कानपुर के मैदान में, झाँसी के जोगनबाग में, इलाहाबाद के बाजार में, बनारस के घाटों पर, सबठौर, ''शान्ति और सुरक्षा' ही का साम्राज्य फैला हुआ था। तार टूटे हुए थे, पुल उड़ा दिये गये थे, रक्त की नहरों में गोरों की लाशें बह चली थीं, फ़िर भी सर्वत्र शान्ति और सुरक्षा का राज था !

हाँ, तो तब जाकर कहीं कलकत्ते वालों की आँखें खुलीं ! 12 जून को अंग्रेज नागरिक स्वयं सेवक दल खड़े करने लगे। गोरे व्यापारी सौदागर, कलर्क, लेखक, नागरी अधिकारी-- मतलब हर एक गोरा बड़ी फ़ुर्ती से सेना में अपना नाम लिखवाने लगे। इन सबको तुरन्त सामूहिक संचलन और रायफल चलाना सिखाया गया। यह काम इतनी फुर्ती तथा उत्साह से पूरा किया गया, कि तीन सप्ताहों में इन नौसिखिये स्वयंसेवकों की एक स्वतंत्र पलटन बनी। इसमें रिसाला, पैदलसेना एवं तोपखाना भी था। कलकत्ते की रक्षा के लिए यह सेना पर्याप्त होने का विश्वास हुआ, तब उसे ही यह दायित्व सौंपा गया; और पेशावर तथा मँजे हुए सैनिकों को उस स्थान में भेजने का अंग्रेजों को अवकाश मिला, जहाँ क्रांति का जोर बढ़ा था।

13 जून को लेजिस्लेटिव्ह कौन्सिल की एक बैठक बुलाकर लॉर्ड कॅनिंग ने समाचार पत्रों के विरुद्ध एक निर्वेध (ॲक्ट) सम्मत करा लिया। क्योंकि, क्रांति का श्रीगणेश होते ही बंगाल के सभी हिंदी समाचार पत्र क्रांतिकारियों से सहानुभूति बता कर उन्हें प्रोत्साहित करने वाले लेख लिखने लगे थे।

रविवार दिनांक 14 जून को शान्ति और सुरक्षा का' एक खासा हंगामा कलकत्ते में भी जारी था। उस दिन के सभी हृदय हम एक अंग्रेज लेखक की लेखनी द्वारा अच्छी तरह पाठकों को

दिखाना चाहते हैं। ''सर्वत्र गडबड़ी, हो हल्ला, अशान्ति मची हुई थी। भयंकर समाचार तो लगातार आ ही रहे थे। 'बारिकपुर की सेना कलकत्ते पर आ रही है ! उपनगरों की जनता पहले ही बलवा कर चुकी है ! अवध के नवाब अपनी सेना द्वारा 'गार्डनरीच' को लुटवा रहा है। ऐसी बातों पर तो हर किसी का विश्वास हो गया था। बड़े अधिकारियों ही ने जनता में घबराहट फैलाना प्रारंभ किया था। उनमें कौन्सिल के सदस्यों के पास जाकर दौड़धूप करने वाले तथा अपनी पिस्तौलें 'भर' कर, दरवाजों के सामने ओटें बनाकर, सोफे पर सोनेवाले स्वयं 'गवर्नमेंट सेक्रेटरी' थे। उसी तरह घरबार छोड़कर बाल बच्चों के साथ जहाज पर आसरा लेने वाले कौन्सिल के सदस्य इनमें थे। उनसे नीची श्रेणी के कर्मचारी झुंड के झुंड, अपने 'बड़ों' की करतूत से आवश्यक सीख लेकर किले की तोपो की छाया में निर्भय बैठे रहने के लिए अपनी घर की सभी चीजें जमाकर, किले के रास्ते चल पड़े थे। भय की कल्पना से निर्मित कसाइयों की कक्षा से दूर पहुँचाने के लिए इन कायरों के लिए घोड़े, गाड़ियाँ पालकियाँ, और अन्य सब प्रकार की सवारियाँ मँगवायी गयी थीं। उपनिवेशों में तो ईसाई बस्ती का लगभग हर एक घर खाली हुआ थ। पाँच छः आदमी, जान हथेली पर लेकर जो आ जाते, तो लगभग पौना शहर जलाकर भस्म कर दे सकते....!'' अंग्रेजों की राजधानी में केवल अफवाहों का बाजार गर्म होते ही इतनी 'शान्ति और सुरक्षा' बनी रही थी। सो, इस सारे हंगामे की जड़ बारकपुर के सिपाहियों तथा अवध के नवाब को नष्ट करने का इरादा 'सरकार' ने किया। बारकपुर के सिपाही 14 जून को उठने वाले हैं, यह संवाद देने वाला व्यक्ति, उन्हीं सिपाहियों से, गोरों को मिला। तब बागियों को पहले ही तोपों का भय दिखाकर, उन्हें पकड़कर उनसे शस्त्र रखवा लिये गये और 15 जून को 'राज की सुरक्षा के हेतु' नवाब को उसके मंत्री के साथ गिरफ्तार किया गया; तथा जनाने के साथ सारे निवास स्थान की तलाशी ली गयी। तलाशी में आपत्तिजनक रुख भी न मिला, तो भी नवाब को और उसके वजीर को कलकत्ते के किले में बंद कर दिया गया। इस तरह ठीक चिनगारी पड़ने के ऐन मौके पर कलकत्ते में रचा हुआ ज्वालाग्राही कोठार धीरे धीरे खाली कर दिया गया।

कलकत्ते के एक बगीचे के मामूली घर में रहने वाले वजीर अली नकी खाँ ने अपने नवाब को अवध के सिंहासन पर फिर से प्रस्थापित करने के उद्देश्य से सब सिपाहियों तथा बंगाल भर में क्रांतिकारी संस्थाओं का संगठन किया था। किन्तु उसी के पकड़े जाने से, मानों, क्रांति का मस्तिष्क ही चू पड़ा। किले में बंद रहते हुए, एक बार क्रांतिकारियों को भद्दी गालियाँ देने वाले अंग्रेजों को उसने खरी सुनायी--'भारत भर में भड़की हुई यह घनघोर क्रांति मेरे विचार में पूरी तरह न्यायपूर्ण है ! अवध हड़प जाने का यह ठीक प्रतिशोध है। सत्य और न्याय के सीधे रास्ते चलने के बदले तुम जान बूझकर स्वार्थ तथा झूठ की कंटकपूर्ण पगडण्डी पर चले; फिर जब उन्हीं काँटों से तुम्हारे पाँव लहूलुहान हो जायँ, तो इसमें अचरज क्या है ? प्रतिशोध के बीज बोते समय तुम हँसते थे; फिर जब उन्हीं बीजों में, मौसम आते ही, कडुए फल लगे तो दूसरों को कोसते और गालियाँ क्यों देते हो ?''

हाँ तो, 1857 के विप्लव के विस्तार के बारे में स्वयं कलकत्ते में इस प्रकार की अस्पष्ट तथा भ्रमपूर्ण कल्पना थी। फिर, जब इंग्लैंड को भारत से मिलने वाले पत्रों के समाचारों पर निर्भर रहना पड़ता था, तब इंग्लैंड प्रारंभ ही से अज्ञान की घोर निद्रा में लम्बी ताने सोता होगा और जागने पर भी घबराहट के कारण सिरफिरे के समान किस तरह पागल बन के काम करता होगा इसकी कल्पना, पाठक, तुम सहज में कर सकते हो। बारकपुर, बहरामपुर, डमडम तथा अन्य स्थानों के संवाद जब इंग्लैंड पहुँचे, तब वहाँ सब के कान खड़े हो गये और आँखें भारत की ओर लगीं। किन्तु अल्प समय में सब शान्त हुआ और मामला ठंढा पड़ गया। 11 जून को हाऊस ऑफ कॉमन्स में बोर्ड ऑफ ट्रेड (व्यापार समिति) के अध्यक्ष ने एक प्रश्न के उत्तर में कहा ''बंगाल में अब तक प्रकट हुए अशान्ति से इतना डर जाने का कोई कारण नहीं है; क्योंकि मेरे सम्माननीय मित्र लॉर्ड कॅनिंग की अडिग नीति, ताबड़तोड़ इलाज तथा जीवट के कारण सेना में फैलायी गयी अशान्ति को जड़ से उखाड़ दिया गया है।'' 11 जून को पार्लियामेंट ने यह शेखी सुनी और उसी दिन भारत में 11 रिसाले के विभाग, 5 तोपखाने के दल और 50 पैदल विभाग तथा छप्पर मैना के सभी कामगार खुल्लम-खुल्ला विद्रोही बने थे ! सारा अवध प्रांत क्रांतिकारियों ने हथिया लिया था; कानपुर, लखनऊ घेरे गये थे; सरकारी खजाने से क्रांतिकारियों ने लगभग एक करोड़ रुपये उड़ाये थे ! और यह सब किस समय ? जब कि ''कॅनिंग की अडिग नीति, ताबड़तोड़ इलाज और जीवट से सेना में बोयी हुई अशान्ति को जड़ से उखाडा गया था तब !!

किन्तु क्रांति के बीज के असाधारण तथा आकस्मिक रूप से फूट निकलने के संवाद से फिर जल्द ही इंग्लैंड की नींद खराब हुई। कानपुर के हत्याकाण्ड का संवाद किसी तरह इंग्लैंड पहुँचा ! तब 14 अगस्त 1857 को भय से बेचैन, अभागे, बौखलाये अंग्रेजों ने हाउस ऑफ लॉर्डस् में यह प्रश्न पुछवाया--''क्या कानपुर के समाचार सही हैं ? अर्ल ग्रेनव्हिल ने उत्तर दिया--''मुझे जनरल पॅट्रिक ग्रॅट से व्यक्तिगत पत्र मिला, जिसके अनुसार कानपुर के हत्याकाण्ड का संवाद एकदम बेबुनियाद तथा निश्चित बनावटी है। यह अफवाह किसी सिपाही ने उड़ा दी है। उसके इस कमीने उधम की पोल खोलकर ही अंग्रेज चुप न रहे, वरंच उस सिपाही को फाँसी पर भी लटकाया गया।'' कानपुर की इस 'अफवाह' की चर्चा जब लॉर्डस् में हो रही थी, तब उसका 'सत्य' रक्त की लाल स्याही से, भयानक अक्षरों में लिखा जाकर एक महीना बीत चुका था ! कानपुर की 'गप' हाँकने वाले सिपाही को फाँसी पर लटका कर इंग्लैंड के राजनीतिज्ञ अभी आराम ही कर रहे थे, कि मूर्तिमान सत्य ही इंग्लैंड के किनारे पर उतरा ! अंग्रेजी प्रतिष्ठा पर पड़े इस जोरदार चपत से क्रोध, आवेग तथा बदले के भावों से सारा इंग्लैंड पागलपन के दौरे से चकराने लगा। हड़काये कुत्ते के समान समूचा इंग्लैंड मार्ग में कुहराम मचाने लगा ! और यह पागलपन का दौरा आज तक जारी है। आज भी अंग्रेजी इतिहासकार हर पंक्ति में लिखते आये हैं, कि क्रांतिकारियों ने जो हत्याएँ कीं, वह निस्संदेह पैशाचिक क्रूरता थी तथा मानवता के पवित्र नाम में उससे कालिख लगी है।

और इस अंग्रेजी चिल्लाहट तथा कोलाहल से सारे संसार के कान बधिर हो गये। 1857 का केवल स्मरण ही हर एक के रोएँ खड़े कर देता है और लज्जा से अपनी गर्दन झुकानी पड़ती है ! सत्तावन के क्रांतिवीरों के नामों का उल्लेख भी, न केवल शत्रुओं के, दुनिया के अन्य लोगों के, बल्कि इन हुतात्माओं ने अपना रक्त जिनके लिए बहाया उन भारतीयों के, मन में भी घृणा और अनादर पैदा करता है। उन वीरों के शत्रु तो उन्हें राक्षस, पिशाच, खूँखार, नारकीय कीड़े आदि विशेषण लगाते हैं ! तटस्थ लोग उन्हें जंगली, अमानुष, क्रूर, असभ्य कहते हैं, जहाँ भारतीय लोग उन वीरों को स्वकीय कहते भी शरमाते हैं। 1857 के समय ही नहीं, आज भी वही स्थिति, वही पुकार जारी है। और इस अखण्ड आक्रोश से संसार के कान इतने बधिर कर दिये हैं, कि सत्य की आवाज उनके कानों में जा ही नहीं सकती ! क्रांतिकारी ''शैतान ?,' नरपिशाच ? 'स्त्री-बाल घालक ? 'खूँखार नारकीय कीड़े ? हाय रे संसार ! यह भ्रम तेरे मन से कब दूर होगा ? सतन्य तू कब समझेगा ?

और यह सब क्यों ! ये गालियाँ किसलिए ? जानते हो ? स्वदेश और स्वधर्म के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध उठकर, 'प्रतिशोध' के नारे लगाते हुए, कुछ क्रातिकारियों ने कुछ अंग्रेजों की निर्दयता से हत्या की, इसलिए !

अविवेकी हत्या सदा ही घृणित पाप है। जिस समय सारी मानव जाति आत्यंतिक न्याय तथा परमानन्द के विश्रात्मक आदर्श को पहुँच पायगी, जिस समय ईश्वरीय विभूतियों, पैगंबरों तथा धर्मोपदेशकों से वर्णित रामराज्य इस भू लोक पर हर एक के अनुभव की बात बन जायगी, तब ईसामसीह के उस देववाणी से दिया उदात्त उपदेश-- "जो कोई तेरे एक गाल पर चाँटा मारे उसके आगे दूसरा गाल कर दे"--पर, इस आत्मसमर्पण के उपदेश पर, उस समय पहले गाल पर मारने वाला ही न रहने के कारण, अमल करना असम्भव होगा तभी--उस सत्युग में--यदि कोई विद्रोह करेगा, रक्त की एक बूँद गिरायगा, यहाँ तक, 'प्रतिशोध' शब्द तक उच्चारण करेगा, तो उस पापी को उस क्रूरता के केवल उच्चारण ही के लिए अनंत काल तक रौरव नरक में डुबोना ही ठीक होगा।

हर एक हृदय में जब सत्यधर्म का उदय होगा, तब विद्रोह की प्रवृति भी बहुत दुष्ट पाप मानना योग्य होगा। न्यायनीति के सूरज की किरणें जब हर आत्मा को उज्ज्वल बनायेंगी, तब 'प्रतिशोध' का उच्चारण भी सचमुच पातक माना जायगा, जाना भी चाहिये ! सत्यधर्म के उस निरपवाद न्यायपूर्ण युग में 'बदला' के पापी शब्द बोलने वाले पातकी को दण्ड देना, निस्संदेह, अदूषणीय माना जाय !

किन्तु जब तक वह सत्ययुग इस भूलोक पर उतरा नहीं है, जब तक वह परमानन्द का आदर्श शुभ काल, संत महन्त तथा प्रभु के प्यारे पुत्र के भविष्य कथन ही में गूँथा पड़ा है, जब तक वह निरपवाद न्याय हमारे अनुभव की बात बनाने के लिए मानवी मन अपनी पापी और आक्रमक प्रवृत्ति को नष्ट करने में सफल नहीं हुआ है, तब तक विद्रोह, रक्तपात और प्रतिशोध की गिनती नितांत पातकों में कभी न होनी चाहिए। जब तक 'शासन' शब्द का उपयोग 'अधिकार' न्याय और अन्याय दोनों अर्थ में किया जाता हो, तब तक उसका प्रतियोगी शब्द 'विद्रोह' भी न्याय अन्याय दोनों अर्थ में उपयुक्त हो सकेगा। इसी से, गत इतिहास या क्रांति, रक्तपात प्रतिशोध के कारण बने व्यक्ति के बारे में किसी प्रकार का बयान करने के पहले, उन वर्गों के बनाव की जड़ में होने वाली परिस्थिति की बहुत बारीकी से तथा सब पहलुओं से जाँच करना आवश्यक है। क्रांति, रक्तपात, बदला, अन्याय को जड़ से उखाड़ कर सत्यधर्म का प्रारंभ करने के लिए प्रकृति के बक्षे हुए साधन हैं। और अपने उद्धार के लिए इस प्रकार के भयानक साधन प्रत्यक्ष न्याय देवता ही जब बरतता हो, तब उसका दोष न्याय देवता पर नहीं, वैसी परिस्थिति की जड़ में होने वाले अन्याय पर ही लागू होता है। अन्याय के पीछे होने वाली पीड़क शक्ति तथा उद्दण्डता ही इन साधनों के उपयोग को निमंत्रण देती है। मृत्युदण्ड देने वाले न्यायासन को कभी कोई खून बहाने का दोषी नहीं ठहराता ! उलटे, फाँसी के फंदे में लटकने वाला अन्याय ही इस दोष का एकमेव स्वामी होता है। और इसीलिए ब्रूटस की तलवार पवित्र ! इसी से शिवाजी का बिछुवा वंदनीय ! इसीलिए इटली की क्रांति में बहा खून भी परम मंगल ! इसीलिए विलियम टेल का तीर दैवी ! इसीलिए चार्लस् (1) का कत्ल न्यायपूर्ण कार्य ! सारांश में, पैशाचिक क्रूरता के पाप का भार उन्हीं के सिर रहेगा जिन्होंने अन्याय कर उस क्रूरता को छेड़ा।

और, संसार में क्रांति, रक्तपात तथा प्रतिशोध का भय न होता तो बेरोक लूट खसोट तथा अत्याचारों की पाशविक धूम के नीचे यह पृथिवी दबोच जाती। आज या कल, जल्द या देरी से, अन्याय का प्रतिशोध लेने वाला शासक प्रकृति ही पैदा करेगी यह डर यदि अत्याचारी अन्याय को न होता, तो इस भूमण्डल पर जार जैसे तानाशाहों और खूनी डाकुओं का दौरदौरा हो जाता ! किन्तु हर हिरण्यकश्यपु को नरसिंह, हर दुःशासन को उसका भीम, हर अत्याचारी को उसका शासक, हर सेर को सवासेर मिलता है, जिससे संसार को कुछ आशा है, कि अन्याय और अत्याचार सदा बने रह नहीं पायँगे। इससे, प्रतिशोध का मतलब है, अन्याय को हटाने के लिए होने वाली प्राकृतिक प्रतिक्रिया। और, तब, प्रतिशोध की क्रूरता का पातक, मूल अन्यायी दुराचारी के सिर अवश्य उलट पड़ता है।

इसी उदात्त प्रतिशोध का अंगार 1857 में भारत के हर सपूत के हृदय में धधक रहा था। उनके सिंहासन चूर कर दिये गये थे; उनके राजमुकुट टुकड़े टुकड़े कर दिये गये थे; उनकी जागीरें ज़ब्त कर ली गयी थीं; उनकी सत्ता कौड़ी कीमत की कर दी गयी थी; केवल तोड़ने के लिए दिये हुए वचनों से उन्हें धोखा दिया गया था; और अपमानों और खुले अत्याचारों में तो तूफान आ गया था। लज्जास्पद मानखण्डना की गहरी गर्त में लोग मुँह तक डूबे हुए थे। उन्हे अपने जीवन में किसी प्रकार का कोई रस न था। जिस तरह याचनाओं का कोई उपयोग न था, उसी तरह अर्जियों, प्रार्थनाओं, शिक़ायतों, विलापों या आक्रोशों का रत्तीभर उपयोग न था ! ऐसे प्रसंग में प्राकृतिक प्रतिक्रिया से 'बदले' की कुलबुलाहट सुनायी पड़ने लगी। इतने अनगिनत पैशाचिक तथा जबरदस्ती के अन्यायों के बोझ से हिंदुस्थान इतना दबोच गया था, कि हर अन्याय का 'बदला' लेना भी न्याय होता। इतने पर भी भारत में क्रांति न होती तो फिर कहना पड़ता 'भारत मर चुका है'। किन्तु क्रोध से जलकर समूचा राष्ट्र ही जब उठा, तब उस प्रकार के अविवेकी हत्याकाण्ड हिंदुस्थान के हर स्थानों में होने के बदले एक दो स्थानों में सीमित क्यों रहे, इस पर अचरज होता है। क्योंकि, इन हत्याकाण्डों के कर्ताओं का प्रक्षुब्ध तर्कशास्त्र खड़ा सवाल करने लगा "अन्यायपूर्ण दानवी शक्ति के दमन को उग्र शक्ति-प्रदर्शन ही की आवश्यकता है।" काली नदी की लड़ाई में बंदी सिपाहियों को फाँसी पर लटकाने के पहले, पूछा गया था, कि अंग्रेज औरतों और बच्चों को उन्होंने क्यों कर मारा। फट से सीधा जवाब मिला 'साँप को मारकर उनके पिल्लों को कौन खुला छोड़ देगा ! कानपुर वाले सिपाही तो सदा कहते, कि अंगार कजलाने पर चिनगारी को चमकने देना, या साँप मारकर उसके बच्चों को छोड़ देना कहाँ की बुद्धिमानी है ?"

काली के सिपाहियों के सीधे प्रश्न का उत्तर 'साहब' क्या देता ? और मुँह तोड़ सवाल--जैसा कि अंग्रेज शिष्टता का दम भरकर

कहते हैं--केवल भारत के प्रक्षुब्ध लोगों ने या एशियाई लोगों ने ही किया था, सो बात नहीं है। जहाँ जहाँ भी राष्ट्र-व्यापी युद्ध का प्रारंभ होता है, वहाँ राष्ट्रीय अपमान का बदला, हमेशा शत्रु राष्ट्र का खून बहाकर ही लिया जाता है। स्पेन वालों ने मूरों से जब अपनी स्वतंत्रता फिर से प्राप्त की तब मूरों की उन्होंने क्या गत की ? स्पेन वाले न हिंदी हैं, न एशियाई ! फिर जो मूर स्पेन में लगभग पांच सदियों से अधिक समय टिके थे उन पर टूटकर, स्पेन वालों ने इनके स्त्री-पुरुष-बच्चों की निर्दयता से तथा अमानुष हत्या की, वह क्या केवल इसी लिए की मूर अन्य वंश के थे ? 1821 में इक्कीस सहस्त्र स्त्री-पुरुष-बालकों की हत्या भी यूनान ने क्यों कर की ? युरोप वाले जिसे वंद्य मानते हैं वह हेटेरिया नामक गुप्त संस्था इस हत्या का मण्डन कैसे करेगी ? यही कहेगी न ? कि यूनान में तुर्कियों की जनसंख्या देश में रहे तो थोड़ी, किन्तु निकाल बाहर करने में प्रचंड होने से लाचार होकर उन्हें कत्ल करना ही उस समय बुद्धिमानी की तथा आवश्यक नीति थी ! और भारत के लोगों ने भी तो यही उत्तर दिया था न ? 'साँप को मार उसके पिल्लो को छोड़ देना हो तो फिर साँप को मारने से क्या लाभ ?' यही विचार यूनानियों के मन में आकर उन्होने अपनी प्रकृतिक दया भावना ही को दबा दिया था। मतलब, साँप को कुचलने के सभी उपायों का दोष, अन्त में साँप के अपने प्राणघातक विष पर आ पड़ता है।

और, सचमुच, अपने पर होने वाले भयंकर जुल्मी अन्यायों का बदला लेने की प्राकृतिक प्रवृत्ति यदि मानव के हृदय में सदा जागरित न रहती, तो सभी मानवी व्यवहारों में मानव के अंदर के 'पशु' ही को महान् स्थान प्राप्त हो जाता। अपराध को दण्ड देना, क्या, दण्ड विधान का एक महत्वपूर्ण कार्य नहीं होता है ?

इतिहास की साख है, कि जब जब पराकाष्ठा कों पहुँचे जुल्मों और अन्यायों के परिणाम स्वरूप मानव के अंतस्तल में आत्यंतिक प्रतिशोध का भाव प्रचण्ड आवेग से बेकाबू होकर भड़क उठता है, तब तब राष्ट्र के जीवन विकास में, अन्य प्रसंगो में अक्षम्य ठहरने वाली आम हत्याएँ तथा अमानुष अत्याचार हो जाना, अनिवार्य होता है। इसी से 1857 के भारतीय क्रांतियुद्ध में चार पाँच स्थानों में हुए हत्याकाण्डों की क्रूरता से दाँतों तले उँगली दबाने की आवश्यकता नहीं है; उलटे, अचरज की बात यह है, कि ऐसे क्रूर हत्याकाण्ड इतनी थोड़ी मात्रा में हुए, और इस भयंकर प्रतिशोध-भावना की लपट देश भर में स्थान स्थान पर सभी को अपने फैलाव में भस्म करती हुई क्यों कर न बढ़ी ? अंग्रेजी बनियों के पाशविक जुलमों से सारा हिंदुस्थान अंजर पंजर होने तक पेरा गया था। अर्थात यह दशा जब पराकाष्ठा को पहुँची, तब भारतीय जनशक्ति ने भी उस अन्याय और जुल्म को कसकर थप्पड़ मारा। प्रसंग में जो कत्लें हिसाब चुकाने के रूप में हुईं वे हद से अधिक तो थीं ही नहीं; उल्टे यह दीख पडेगा, कि किसी भी राष्ट्र में राष्ट्रीय अपराधों के लिए जो दण्ड उस राष्ट्र से, आक्रामक तथा पीड़क राष्ट्र को, दिया जाता है उससे वहुत ही कम मात्रा में हुई थीं। क्रॉमवेल के कार्यकाल में हुए आयर्लेंड के हत्याकाण्ड में जिस क्रूर पातकों का दायित्व समूचे इंग्लिश राष्ट्र पर था, उतना प्रतिशोध, उतना रक्तपात औार उतना उग्र दंड, हिंदुस्थान ने अपने पर किये गये अत्याचारों तथा अन्यायों का न्यायपूर्ण प्रतिकार करने के लिए 1857 में, नहीं किया इस बात को मानना ही पड़ेगा। आयरिश लोगों के कर्रारे देशाभिमान से क्रॉम्वेल के तनबदन में कैसी आाग लगती थी, उस अभागे देश में उसने लहू की नदियाँ कैसे बहाईं, अंचल में पीने वाले नन्हों के साथ असहाय औरतों की निष्ठुर हत्या कर उन्हें खूनके खात में ही कैसे छोडा जाता था, राष्ट्र के लिए लड़ने वालों ही को नहीं, बेकसूर गरीब जनता को भी मूली गाजर की तरह कैसे काटा गया और इस तरह देश जीतने के पापी हेतु से भयंकर बदलाके पापी हेतु से भयंकर बदला, और उससे भी भयंकर खून खराबी आदि से क्रॉम्वेल के हाथ कैसे रंगे हुए थे, क्या, इसका विवरण इतिहास ही ने दिया नहीं है ? दूसरी ओर 1857 में हिंदुस्थान में नानासाहब, अवध की बेगम, बहादुरशाह तथा लक्ष्मीबाई ने प्रतिशोध के' भयंकर आवेग से भान भूले सिपाहियों के हथियारों से अंग्रेजों की औरतों तथा उनके बच्चों की रक्षा करने का उदात्त अन्त तक किया। किन्तु कानपुर में अपने पिता, भाई, बच्चे, पति आदि के प्राण बचाने वाले नानासाहब को उन्हीं अंग्रेज औरतों ने क्या परितोषिक दिया ! यही, कि उन्हीं का विश्वासघात कर खुफिया का काम किया ! और जिन अंग्रेज अफसरों के प्राण हिंदी लोगों ने बचाये थे, उन्हीं अंग्रेज अधिकारियों ने अपने उपकारकर्ता के उपकार कैसे चुकाये ? इतिहास भी बडी लज्जा के साथ साख भरता है, कि इन अंग्रेज अधिकारियों ने गोरे सैनिकों के कान, बदले की झूठी और भड़काने वाली बातें गढ़कर भर दिये, उनका नेतृत्व कर क्रांतिकारियों पर हमले किये, विद्रोही सिपाहियों के यौद्धिक दाँवपेचों का गुप्त रहस्य गोरे सैनिकों को बता दिया और जिस भोली देहाती जनता ने उनके प्राण बचाये थे उन्हीं की क्रूर हत्या की--इस तरह उपकार का बदला चुकाया ! यह अचरज नहीं, सचमुच, अचरज की चरम सीमा है, कि इस भयंकर कृतघ्नता के प्रदर्शन से भी हिंदी लोगों ने अपने मन की अभिजात उदारता को रंच भी डिगने न दिया ! पीछा किये जाने वाले तथा जान बचाने के लिए सिर पर पाँव रखकर भागने वाले कई गोरों के प्राण किसानों की झोंपडियों ने सुरक्षित रखे थे; और देहाती औरतों ने अनगिनत गोरे बच्चों और गोरी स्त्रियों को अपने हाथों काले रंग में रंगाकर तथा हिंदी वेश पहनाकर दयाभाव से अपने घर में छिपा रखा था। दिन रात भागने के कष्ट से विकल, मार्ग के छोर पर पडे कई नौसिखिए कम उम्र अंग्रेज अधिकारियों, तथा मामूली सोल्जरों का भी, ब्राह्मणों ने बार-बार अपने हाथों दूध पिलाकर पुनर्जन्म प्राप्त कर दिया। श्री फॉरेस्ट लिखित स्टेट पेपर्स पढ़ने से मालूम होगा कि, अंग्रेजों की खूनी कटार जिस अवध की छाती में गहरी घोंप दी गयी थी, उसी अवध के बाशिंदे, हैरान होकर तितर-बितर भागने वाले अंग्रेजों से असाधारण उदारता से पेश आये ! बार-बार और जगह-जगह ऐसे घोषणा पत्र प्रकट कर, कि 'औरतों और बच्चों की हत्या से अपने पवित्र कार्य में बाधा पड़ेगी तथा अपजश मिलेगा-- क्रांतिनेताओं ने अपने अनुयायियों को जताया था या नहीं ? नीमच और नसीराबाद के विद्रोहियों ने तो गोरों को जीवित जाने दिया। एक बार कुछ गोरे जान बचाने को भाग रहे थे; देहाती उन्हें देखकर चिल्लाने लगे--'मारो फिरंगी को, मारो फिरंगी को'। वहाँ एक परिवार ने यह कहकर उनकी रक्षा की--ये निर्दयी नीच अवश्य हैं, किन्तु अभी उन्होंने एक राजपूत का अन्न खाया है, अब उन्हें मार नहीं सकते।

जो भारतीय मानव स्वभाव से इतना दयालु तथा उदारमना होता है, जिसके देहात में अभी तक मानवता, प्रेम, आदर तथा निरीह जानवरों और मानवों के बारे में दयाबुद्धि का वातावरण पूर्णरूप से बना हुआ पाया जाता है, वह गरीब हिंदी मानव देहाती तथा उसके गाँव ने 1857 के हत्याकाण्ड में हाथ बँटाया हो, तो भारतीय राष्ट्र की भलमनसाहत पर जरा भी आँच नहीं आती; वरंच जिस नीच अत्याचार का अन्त कर देने का प्रण उन्होंने किया था, उस अत्याचार तथा अन्याय ही का हीनतम रूप उससे नंगा हो जाता है ! मेकॉले की सुप्रसिद्ध व्याख्या का प्रमाण यहाँ ठीक मिल जाता है-- 'अत्याचार जितना भीषण हो, उसकी प्रतिक्रिया उतनी ही भीषण होना अटल है।''

हाँ, और जिन अपराधों को भारत के सिर मढ़ा जाता है; उन अपराधों की छानबीन कर निर्णय देने को कौन बैठेगा ? तो गोरे ! क्रांतिकारियों के कृत्यों के लिए उन्हें दोषी ठहराने का अधिकार, इस विस्तीर्ण वसुंधरा में, यदि किसी को सबसे अखीर पहुँचता हो तो--अंग्रेजों को। भारत को एक दो हत्याकाण्डों के लिए अपराधी बताने वाला इंग्लैड होता है कौन ? वह, जिसने 'नील' को पैदा किया? या, वह, जिसने निष्पाप

बालबच्चों भरे गाँव तलवार से उजाड़ तथा आग में भुनाकर बीरान बना डाले ? या भारत के लिए लड़े और मंगल पांडे की वीर वृत्ती से अभिभूत सूरमाओं को फाँसी देने की सजा अधूरी सी मानकर उन्हें शूली के साथ बाँधकर जला दिया, वह इंग्लैंड? या वह जिसने निरीह देहातियों को पकड़कर टिकटी पर फाँसी दे, संगीनों से उनके शरीर की छलनी कर, शिव, शिव ! जिसके केवल उच्चारण से जीभ अपवित्र करने की अपेक्षा गाँव वालों ने फाँसी चढ़ना या जीवित जलना खुशी से मान लिया होता वह दण्ड--खून चूता हुआ गोमांस संगीन की नोंक से उन गाँव वालों के मुँह में ठूँसा, वह इंग्लैंड ? या फर्रुखाबाद के नवाब के बदन में, फाँसी के तख्ते पर खड़ा करने के पहले, सूअर की चरबी चोपड़ने की निर्लज आज्ञा, सिपहसालार के हुक्म के बावजूद जिस इंग्लैंड ने दी वह ? या इस्लाम के बंदे को कत्ल करने के पहले उसे सुअर की खाल में डालकर दम घुँटने का खेल खेलने वाला इगलैंड ? या, ऐसे अन्य अक्षम्य अपराध तथा अत्याचार, बागियों के न्याय 'प्रतिशोध' के नाम पर सराहने की निर्लजता जिसने दिखायी वह इंग्लैंड ? कहते है 'न्याय प्रतिशोध' ! प्रतिशोध ? किसका ? सौ सालों तक अन्यायपूर्ण शोषण की चक्की में पिसकर अपने देश का सर्वनाश होने से प्रक्षुब्ध बने 'प्रतिशोध की प्रतिज्ञा करने वाले 'पांडे' लोगों का ? या जिन्होंने इस भीषण चक्की में गति दी उन फिरंगियों का ?

स्वदेश की यंत्रणाओं को देख एकाध व्यक्ति या एकाध विशेष वर्ग को तीव्र विषाद महसूस हो रहा था, सो बात नहीं है। हिंदु मुसलमान, ब्राह्मण शूद्र, क्षत्रिय वैश्य, राजा रंक, स्त्री-पुरुष, पण्डित-मौलवी, सैनिक-पुलीस--इन भिन्न-भिन्न धर्म, भिन्न-भिन्न पंथ और कई भिन्न व्यवसायों के, लोगों ने स्वदेश का बुरा हाल सहते रहना असम्भव हो जाने से सब मिलकर, अकल्पनीय थोड़े अवसर में, भयानक प्रतिशोध का बवंडर खड़ा किया। इतना राष्ट्रव्यापी था वह आंदोलन ! इस एक ही बात से मालूम होगा, कि जिस पराकाष्ठा को जुल्म पहुँच गया था, उसी पराकाष्ठा को अपने प्रतिकार को पहुँचाने का जतन किया गया था। विदेशी शासन की छाँव में व्यक्तिगत रूप से मोटा ताजा बना सरकारी कर्मचारियों का वर्ग भी उस समय शासकों की ओर न रहा था ! एक अंग्रेज लेखक लिखता है-- सरकारी नौकरों में होने वाले फतूरियों की तालिका बनाने बैठें तो शायद विद्रोही प्रांतों के सभी कर्मचारियों के नाम दर्ज करने पड़ेंगे। इस तरह क्रांति की आग चहुँ ओर फैली थी ! उस समय यदि किसी को गाली देनी हो तो उसे 'राजभक्त,' या 'राजनिष्ठा' के आधार पर जो नौकरी पाते थे उन्हें 'स्वधर्म द्रोही' 'स्वदेश द्रोही' माना जाता था। जो सरकारी नौकरी में टिके रहते उन्हें जाति से बाहर कर दिया जाता। उनसे 'रोटीबेटी' व्यवहार कोई न करता। ब्राह्मण उनके घर पूजापाठ करने से इनकार करते। यहाँ तक कि उनका चिता में अग्निसंस्कार करने से भी इनकार किया जाता। विदेशियों-फिरंगियों--की सेवा करना मातृ हत्या से अधिक पाप माना जाता। इस तरह समाज के हर स्तर में बवंडर आ गया था; प्रचंड खलबली मच गई थी ! जुल्म और अन्याय की पराकाष्ठा ही का यह चिन्ह नहीं था ?

इस प्रकार, ऊपर से शान्त दीखने वाला यह ज्वालामुखी पेट में खौलकर धड़ाका होने के बिंदु तक आ पहुँचा था। क्रांति का संदेसा पहुँचाने वाली चपातियाँ आकाश मार्ग से संचार कर, थोड़े ही समय में शुरू होने वाले महा समारोह में क्रियात्मक सहायता देने के लिए हर एक को निमंत्रण दे रही थीं। और इस आवाहन का सम्मान कर परम पवित्र साधना की सिद्धि के लिए दशों दिशाओं से युद्ध देवताओं का झुण्ड वेग से भारत में आ रहा था। इस महा-समारोह के लिए आवश्यक सभी बाजे, मारूबाजे, युद्धघोष, वीरगर्जना सब कुछ मंडप में व्यवस्था से सुशोभित था। जवालामुखी की सतह पर जुल्म और अन्याय निर्भीक गर्व के साथ अकड़ते हुए घूम रहे हैं। पहाड़ की सतह मुलायम हरियाली से ढँकी हुई होने से कितनी भी शान्त और मनोहारी मालूम होती हो, उसके उदर में क्या ही प्रचण्ड खलबली-- उथलपुथल-- हो रही है ! सावधान ! वह शुभ महूरत अब आ लगा है। एक क्षण की देर है--फिर बिजली की कड़क तथा ज्वालाओं की लपटों एवं उल्कापात से सारा वायुमंडल कौंध उठेगा। देखो, देखो, आग के स्तंभ के स्तंभ ऊपर उफान रहे हैं। रक्तधारा की मूसलाधार वर्षा पृथ्वी पर हो रही है ! आर्त चीत्कारों की ध्वनि में तलवारों की खनखनाहट मिली हुई है ! भूत-प्रेत नाच रहे हैं ! वीर सिंहनाद कर रहे हैं ! ठंढी हरियाली से ढँकी ज्वालामुखी की सतह अब फट रही है ! अब वह सौ जगह फटेगी ! अैं हैं ! यह क्या ? अब तो उसमें हजारों दराजें फटी हैं ! और अब तो, शायद, प्रलय ही होने वाली है!

काठियावाड़ में कुछ स्थानों में एक अजीब जलप्रवाह होता है, जिसे 'विदारू' कहते हैं ? इस सोते की सतह खुर्दुरी भूमि के समान दीख पड़ती है, जिससे अनजान आदमी बेखटके उस भूमि पर से चलने लगता है। किन्तु एक-दो डग बढ़ते ही वह खुर्दुरी सतह हिलने लगती है; चलने वाला अपने को सम्हालने के लिए अपना पैर मक्कम रखने की चेष्टा करता है। पर, तब भूमि गायब होती है, और बिचारा यात्री पानी की धारा में डूबने लगता है ? क्रांति का सोता भी भारत भर में इसी 'विदारू' के समान गुप्त रूप से फैला हुआ था। जुल्म और अन्याय, सतह के काले रंग से, निश्चय से मानते थे, कि बिना चूंचा किए अन्याय सहने वाला यह वही हमेशा का भूपृष्ठ है। जुल्मी अन्याय ने उस पर पाँव रखा नहीं, और काला भू पष्ठ थर्राने लगा नहीं। तब तब जुल्मी अन्याय ने अपनी सत्ता के मद में इस मायावी भू पृष्ठ पर बलपूर्वक कदम रखा ! किन्तु सावधान ! भू पृष्ठ गायब होकर वहाँ फेनिल, खौलता हुआ, तथा लहरें मारता हुआ खून का अथाह दह फैला पड़ा है। अभागे जुल्म और अन्याय ! चाहे जहाँ पाँव धर, कड़ा भू पृष्ठ तुझे कहीं महसूस न होगा। कम से कम इतना तो अच्छी तरह तुझे जँचना चाहिये, कि इस काली सतह के नीचे लालीलाल खून की धारा बह रही है ! और अब भी, हिम्मत हो तो, कान फाड़ देने वाले ज्वालामुखी के विस्फोट का वह धड़ाका कान खोल कर सुन ले ! ❑ ❑
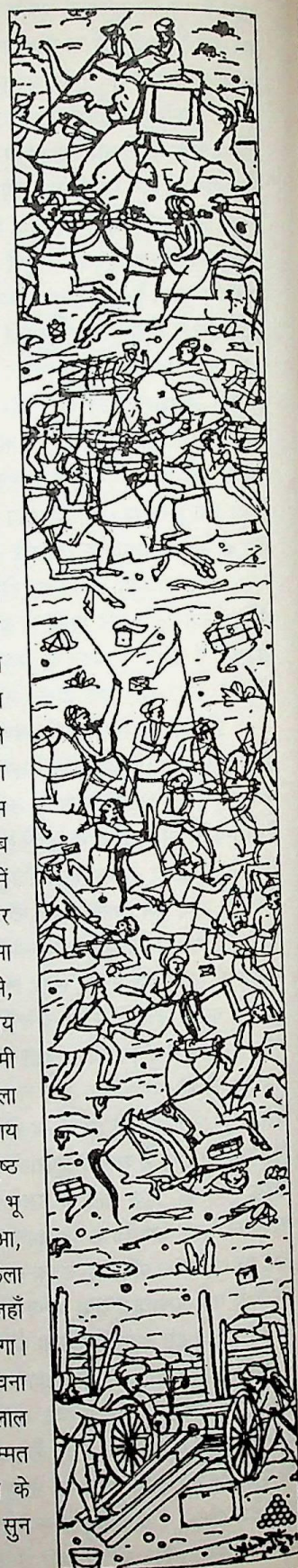
'रस और अलंकार' की ज़ब्ती का कारण

○ रामकृष्ण

हिन्दी साहित्य जगत में आचार्य किशोरी दास बाजपेयी मुख्यतः व्याकरणाचार्य के रूप में विख्यात हैं। भाषा संस्कार के लिए उन्होंने जो योगदान किया वह किसी दूसरे विद्वान ने नहीं किया। विद्वानों ने प्रशस्ति में उन्हें हिन्दी का पाणिनि कहा। परिणाम यह हुआ कि उनके कृतित्व के दूसरे पक्ष से लोगों का ध्यान हट गया। आचार्य बाजपेयी काव्य मर्मज्ञ समालोचक, रस मर्मज्ञ कवि, तत्व मर्मज्ञ सुधी पाठक और संस्कृति पोषक भारतीय लेखक भी हैं, और इससे अलग हटकर स्वतंत्रता संग्राम सेनानी भी हैं, यह बात गौण हो गयी। भारत भारती पुरस्कार से सम्मानित डॉ० विजेन्द्र स्नातक के शब्दों में संभवतः उनके (आचार्य बाजपेयी) कविरूप का बोध नयी पीढ़ी के हिन्दी पाठक को तो शायद बिल्कुल भी नहीं। हाँ पुरानी पीढ़ी के जीवितशेष मर्मज्ञ समीक्षक और जागरूक पाठक यह जानते हैं कि बाजपेयी जी ब्रजभाषा के रसिक कोटि के कवि हैं।

आचार्य बाजपेयी की पुस्तक साहित्यिक जीवन के अनुभव और संस्मरण के आधार पर यह घटना उस समय से जुड़ी है जब आचार्य बाजपेयी के प्रथम पुत्र का शरीरान्त हो गया था और इस मर्मान्तक प्रभाव में वह बीकानेर की अच्छी नौकरी छोड़कर इधर-उधर यों ही भटक रहे थे। आचार्य बाजपेयी के शब्दों में 'गृहिणी को उसके पितृ-गृह छोड़ आया था; यह ख्याल करके कि वहां जी बहल जाएगा। मैं प्रयाग पहुंचा। प्रयाग में आचार्य बाजपेयी यमुना के उस पार एकान्त स्थान में हिन्दी विद्यापीठ जा टिके। वहीं उनके मन में उत्तमा परीक्षा पास करने का विचार आया, लेकिन ईश्वर को शायद यह मंजूर न था। अतः परीक्षा होने के कोई डेढ़ मास पहले उन्होंने अपना इरादा कुछ कारणों से बदल दिया और विद्यापीठ से ही पत्र व्यवहार कर हरिद्वार के स्कूल में अध्यापक होकर आ गये। यह घटना सन् 1929 की है। सन 1930 में वह यहीं स्थायी हो गये।

यही वह समय था जब कांग्रेस ने 'सत्याग्रह' और 'सविनय अवज्ञा' आन्दोलन छेड़ दिया और आचार्य बाजपेयी बिना आगा-पीछा सोचे उसमें कूद पड़े, काम किया। सरकारी चेयरमैन मि० ह्यूम ने 'आस्तीन का साँप तथा जोरदार कांग्रेस वर्कर के खिताबों से नवाजा, बरखास्त कर दिया। साथ ही उस मास का वेतन भी ज़ब्त कर लिया। परन्तु उत्पीड़न की इस कार्यवाही ने आचार्य बाजपेयी के भीतर खौल रहे लावे को उफना दिया। वह खुलकर आजादी के यज्ञ में लग गये। साथ ही यह पुस्तक रस और अलंकार की लिखी; इस पुस्तक में आदि से अन्त तक, सबके सब उदाहरण ऐसे गढ़कर रखे जो प्रचलित आन्दोलन को उद्वेलित करने वाले थे। यहां तक कि 'श्रृंगार' तथा 'वीभत्स' रस के उदाहरण भी राजनैतिक पुट के थे।

इस पुस्तक की भूमिका में आचार्य बाजपेयी ने लिखा है कि 'कुछ दिनों से मेरा विचार है कि मैं भी हिन्दी में एक साहित्य ग्रन्थ लिखूं। इस ग्रन्थ में साहित्य के सब अंगों पर प्रकाश डालने का विचार है। शरीर अस्वस्थ रहने और स्थिति स्थिर न रहने से यह इच्छा पूरी नहीं हो सकी। शायद कभी हो जाए। मन में विचार तो रहता ही है। एक दिन एक मित्र ने सम्मेलन परीक्षाओं का जिक्र करते हुए कहा "सम्मेलन की विशारद-परीक्षा में रस और अलंकार पाठ्य रूप से निर्धारित है। मालूम नहीं आप अपनी वह 'बड़ी' पुस्तक कब लिखें। न हो तब तक रस और अलंकार पर ही एक छोटा निबन्ध लिख डालिए। जिसमें संक्षेप से, पर स्पष्ट विषय विवेचन हो, और छात्रों के लिए उपयोगी हो।" मुझे यह सम्मति अच्छी लगी और मैंने लिखा भी। वही यह पुस्तक है।

आचार्य बाजपेयी ने लिखा कि 'इस पुस्तक में रसों और अलंकारों का संक्षिप्त निरूपण है। लक्षण गद्य में और उदाहरण पद्य किंवा पद्यांशों में दिये, जिससे याद करने में सुभीता हो। सरलता का ध्यान करके मैंने स्वयं जोड़-गाँठकर उदाहरण दिये हैं। जिस लक्ष्य का जो उदाहरण दिया है, उसकी ही उसमें प्रधानता मिलेगी। जिस अलंकार का जो उदाहरण रखा गया है, उसके अतिरिक्त दूसरा अलंकार प्रायः उसमें नहीं आने दिया गया है और यदि आ भी गया है, तो लक्ष्य की प्रधानता अक्षुण्ण रखी गयी है।

उन्होंने लिखा कि 'दूसरे कवियों के जो कहीं पद्य उदाहरण के लिए ये है, उन्हें परकीय सूचक (" ") चिह्नों द्वारा अंकित कर दिया है। कोई भी माता-पिता अपने पुत्र-पुत्रियों को और गुरू अपने शिष्यों को निःसंकोच यह पुस्तक पढ़ा सकेगा। उदाहरणों में राष्ट्रीयता का रंग चढ़ा हुआ है तो कोमल मति छात्रों के लिए अत्यन्त आवश्यक है।'

अंत में उन्होंने लिखा 'रस और भाव का बीहड़ विवेचन नहीं किया गया है और अलंकारों के भेदोपभेद भी अधिक नहीं किये गये हैं; क्योंकि इस विषय के प्रारम्भिक छात्रों के लिए यह सब असल बोझ हो जाता है। मतलब यह कि सब तरह से छात्रों का ध्यान रखकर यह पुस्तक लिखी गयी है, पर इसमें लेखक को सफलता मिली है या नहीं, इसे तो छात्र ही समझेंगे।'

यह पुस्तक 'हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर' कार्यालय (मुम्बई) में तुरन्त छपी और छपते ही तत्कालीन बम्बई सरकार ने ज़ब्त कर ली। इस प्रकाशन के प्रकाशक नाथूराम प्रेमी थे। वह सज्जन व्यक्ति थे। पुस्तक ज़ब्त होने के बावजूद उन्होंने बाजपेयी जी को ठहरा हुआ पारिश्रामिक भेज दिया।

इस पुस्तक को आचार्य बाजपेयी ने महर्षि मदन मोहन मालवीय को समर्पित किया था। जब इस पुस्तक की प्रति उन्होंने महर्षि को भेंट की तो पढ़कर हंसते हुए बोले-- "बड़ा तेज बुज़ार लगाया है, मिर्चों का। जीरा आदि का बघार देते, तो अच्छा रहता।" इस पर आचार्य बाजपेयी ने हाथ जोड़कर कहा, "महाराज, भूतों को भगाने के लिये मिर्चों की धूनी ठीक रहती है।" महर्षि मुस्कराने लगे। यह घटना स्वयं आचार्य बाजपेयी ने अपने संस्मरणों में लिखी है।

रस और अंलकार : किशोरी दास बाजपेयी

शब्दालंकार

1. पुनरुक्तवदाभास

जहाँ ऊपरी तौर से, सरसरी नजर से, देखने पर, शब्दों में पुनरुक्ति मालूम पड़े और वे शब्द भिन्न-भिन्न आकार के हों; परन्तु अच्छी तरह अर्थका विचार करनेपर पुनरुक्ति न हो, वहाँ 'पुरुत्तवदाभास' अलंकार होता है :-- पुनरुत्तवत=पुनरुक्त के समान, आभास प्रतीत होना। जैसे :--

मनहर मोहनदास आर्त जनता के सेवक,
हुए प्रकट तब सहम उठे, जो थे विडाल बक।

यहाँ 'मनहर' और 'मोहन' तथा 'दास' और 'सेवक' पदों में आपाततः पुनरुक्ति मालूम होती हे; परन्तु अर्थ पर ध्यान देने से वह काफूर हो जाती है; अतएव यहाँ 'पुनरुक्तवदाभास' अलंकार है। यदि शब्दों के आकारों में भी समता हो, तो फिर यह अलंकार न होगा। 'लाटानुप्रास' होगा।

2. अनुप्रास

स्वरों में विषमता रहनेपर भी यदि पदों के व्यंजन वर्णो में साम्य हो, तो अनुप्रास अलंकार होता है। यह साम्य दो प्रकार से होता है- श्रवण-गत और उच्चारण-गत। छेक, वृत्ति, अन्त्य और लाट नामक ये चार अनुप्रास श्रुति-साम्य के आधार पर हैं। एक अनुप्रास उच्चारणसाम्य मूलक है, जिसे स्पष्टता के लिए हम 'उच्चरितानुप्रास' कहेंगे। यों अनुप्रासों के दो मुख्य भेद हुए-- 1-श्रुतानुप्रास और 2-उच्चारितानुप्रास। श्रुतानुप्रास पूर्वोक्त चार भेद हैं, अतएवं चार प्रकार का श्रुतानुप्रास और सिर्फ एक प्रकार का उच्चरितानुप्रास होता है। इस तरह कुल पाँच भेद अनुप्रासों के हुए। नीचे अलग-अलग इनके लक्षण और उदाहरण दिये जाते हैं।

क-- छेकानुप्रास

जहाँ एक से अधिक व्यंजन वर्णों की, स्वरूप और कम से, एक आवृत्ति हो--एक बार वह वर्णसमुदाय दुहराया जाय, वहाँ 'छेक' अनुप्रास होता है। उदाहरण :--

हनि 'गुण्डा-सरकार-' मद, गाँधी उदित-हुलास।
तीर तोरि डारे सबै, काटि कँटीली पास।

यहाँ 'तीर-तोरि' तथा 'काटि कँटी' में दो-दो वर्णों की एक-एक बार स्वरूप और क्रम, दोनों तरह से आवृति हुई है, अतएव उक्त छेकानुप्रास है। यदि स्वरूप से तो आवृति हो, किन्तु क्रम से न हो, क्रम बिगड़ जाय, तो फिर छेकानुप्रास न रहेगा। उदाहरण के लिए--'रीते तीर सबै किये' में 'रीते' के रेफ-तकार की स्वरूपावृत्ति 'तीर' में अवश्य है; परन्तु उस क्रम से नहीं है--क्रम बदल गया है-- तकार पहले आ गया है और रेफ बाद में; इसलिए यहाँ छेकानुप्रास नहीं है। इसी प्रकार केवल एक वर्ण की आवृत्ति में भी यह अनुप्रास नहीं होता; क्या होता है, सो अभी आगे मालूम होगा।

ख-- वृत्त्यनुप्रास

जब अनेक व्यंजनों की एक ही प्रकार से स्वरूपमात्र से ही-आवृत्ति हो, क्रम वह न रहे, अथवा अनेक वर्णों की आवृत्ति स्वरूप और क्रम दोनों तरह से (एक ही बार नहीं) कई बार हो, या सिर्फ एक ही वर्ण की आवृत्ति एक या अनेक बार हो, तो 'वृत्त्यनुप्रास' होता है। संक्षेप में यह कि छेकानुप्रास के विरुद्ध वृत्त्यनुप्रास है। उदाहरण :--

साबरमती-सुतट अमर, तहाँ भयो तिहि काल।
सत्याग्रह-आश्रम जहाँ, किय गाँधी गोपाल।

यहाँ 'रम' और 'मर' में अनेक वर्णों की एक बार, एक ही प्रकार से केवल स्वरूपमात्र से आवृत्ति हुई है।। क्रम बदल गया है-- 'रम' की 'मर' रूपसे आवृत्ति हुई है; इस लिए 'वृत्त्यनुप्रास' है। यदि क्रम भी वही रहता; अर्थात 'रम' की 'मर' से ही आवृत्ति होती, तो फिर वृत्त्यनुप्रास न होकर 'छेक' स्थान लेता, वृत्त्यनुप्रास की वृत्ति मारी जाती।

इसी उदाहरण में, दोहेके पूर्वार्ध में ही, एक वर्ण 'त' की कई बार आवृत्ति हुई है। इसलिए दूसरा वृत्त्यनुप्रास भी है। यदि कई बार न होकर एक ही बार उस एक वर्ण की आवृत्ति होती--सिर्फ़ दो तकार दृष्टिगोचर होते, तो भी वृत्त्यनुप्रास ही होता।

ग-- अन्त्यानुप्रास

आद्य स्वर और अन्तिम अंश अनुसार, विसर्ग अथवा स्वरके सहित, वाद अथवा पद के अन्त में, व्यञ्जन की आवृत्ति हो, तो उसे 'अन्त्यानुप्रास' कहते हैं। उदाहरण :--

उठे कमर कसि जन-प्रिय गाँधी,
उठी प्रबल सत्याग्रह-आँधी।
दबकी झुकि सरकार बिचारी,
मनहुँ चोर गृहपतिहिं निहारी।

पूर्वार्द्ध में अनुनासिक 'आँ' आद्य और 'ई' अन्तिम स्वर के सहित धकार की आवृत्ति पादके अन्तमें हुई है; इसलिए एक अन्त्यानुप्रास हुआ। दूसरा असके उत्तरार्ध में उसी प्रकार 'आरी' की आवृत्ति में है। हिन्दी तुकान्त छन्दों में, यह अवश्य होता है।

घ-- लाटानुप्रास

शब्द वे ही हों और उनका अर्थ भी वही हो, पूर्ण पुनरुक्ति हो; सिर्फ़ तात्पर्य में भेद हो--अन्वयमें अन्तर हो--तो 'लाटानुप्रास' होता है। उदाहरण :--

स्वर्ग भी दुखमयनरक परतंत्र जनता के लिए।
है नरक भी स्वर्गसम स्वाधीन जनता के लिए।।

इस वाक्य में 'स्वर्ग' 'नरक' आदि शब्दों की पूर्ण पुनरुक्ति है--वे ही शब्द और वे ही अर्थ दुहराये गये हैं--परन्तु तात्पर्य में भेद है। अर्थात् अन्वय में अन्तर है, पूर्वार्द्ध में 'स्वर्ग' और 'नरक' का जिस रूप से वाक्य में अन्वय है, उत्तरार्द्ध में उससे भिन्न है। यों ये चार प्रकार के श्रुतानुप्रास हुए।

ङ-- उच्चरितानुप्रास

कण्ठ, तालु, मूर्द्धा आदि किसी एक स्थान में उच्चरित होने वाले वर्गीय अथवा अवर्गीय व्यञ्जनों के सहावस्थान को 'उच्चरितानुप्रास' कहते हैं; क्योंकि इसमें उच्चारण-स्थान के एक होने से ही सादृश्य अभीष्ट है, श्रवण से नहीं। उदाहरण :--

जय गाँधी ! तुव चरित, छत्रसम ताप विनासै।

यहाँ 'ज' 'च' 'य' 'छ' वर्ण एक वाक्य में हैं; जिनका उच्चारण तालु से होता है।

इस अनुप्रासको प्रचीनों ने 'श्रुत्यनुप्रास' के नाम से लिखा है, जो हमें ठीक नहीं मालूम पड़ा; इसलिए हमने इसका 'उच्चरितानुप्रास' नाम दिया है। वस्तुतः पूर्वोक्त छेक आदि चार अनुप्रास तो श्रुत्यनुप्रास कहे भी जा सकते हैं, जैसा कि हमने लिखा है; किन्तु यह अनुप्रास, जिसका श्रुति से नहीं, सिर्फ़ उच्चारण-स्थान से सादृश्य इष्ट है, कैसे श्रुत्यनुप्रास कहा जा सकता है? 'दर्पण' और 'प्रकाश' में लिखा है कि यह अनुप्रास सुनने में सहृदयों को बहुत अच्छा लगता है; इसलिए इसे 'श्रुत्यनुप्रास' कहते हैं। क्या खूब ! क्या और अनुप्रासों को सुनने से सहृदयों को दुःख होता है? जो भी हो, 'श्रुत्यनुप्रास' की अपेक्षा 'उच्चरितानुप्रास' इस अलंकार का नाम अधिक मौजूँ है --अन्वर्थ है, तब कोई कारण नहीं दिखता कि इसे छोड़कर उलटा--बिलकुल विरुध- 'श्रुत्यनुप्रास' नाम रक्खा जाय।

इस प्रकार ये पाँच प्रकार के अनुप्रास हुए।

3. यमक

जब स्वर और व्यञ्जनों की पूर्ण आवृत्ति हो; परन्तु आवृत्त अंश निरर्थक

किंवा भिन्नार्थक हो, तो 'यमक' अलंकार होता है। लाटानुप्रास और यमक में यही अन्तर है कि उसमें अर्थ भी वही रहता है; परन्तु यहाँ एक अथवा दोनों आवृत्तांश या तो निरर्थक होते हैं, या फिर भिन्न-भिन्न अर्थवाले होते हैं। यदि अर्थ भी वही हो जाय, तो 'यमक' न होकर 'लाटानुप्रास' हो जायगा। 'छेक' अनुप्रास और यमक में तो बहुत फ़र्क है। छेक में स्वरों में विषमता होती है और 'यमक' में बिलकुल समता। उदाहरण :--

जो कल हमको कलपाते थे,
वे आज नहीं कल पाते हैं।
रस और अलंकार--
जो अफ़सर बनकर आते थे,
वे अनुचर बनकर आते हैं।

पूर्वार्ध के प्रथम पाद में 'कल' तथा 'कलपाते' के 'कल' में यमक है। स्वर और व्यंजनों की पूर्ण आवृत्ति है। पहला 'कल' सार्थक और दूसरा (कलपाते का) निरर्थक है! दूसरा यमक 'कलपाते-कल पाते' में है-- दोनों अंशों के अर्थ भिन्न-भिन्न हैं। दोनों को निरर्थक भी कहा जा सकता है; क्योंकि 'थे' और 'हैं' से रहित होकर पूर्ण अर्थ का प्रकाश करने में ये असमर्थ हैं।

अथवा :--

लेह बला मति सीस लला ! अब सम्पतिके हित हिन्द न जइए।
जागि परयो जब केहरि तौ गजमोतिनकों न उतै चितु दइए।।
खइए अलोनी सलोनी घरै, सुधि माखनकी अब पूत ! भुलइए।
जो पै न जानकी चाह न मेरी तौ जानकी चाह भलेई जुगइए।।

यहाँ दोनों खण्ड सार्थक हैं; पर अर्थ-भेद है। पहले खण्ड में 'जान की चाह' का अर्थ है 'प्राणों की चाह' और दूसरे का 'जाने की इच्छा'। यदि अर्थ एक ही होता, तो 'लाटानुप्रास' हो जाता।

इसी प्रकार :--

'जो गीताको जानै है, हम जोगी ताको जानें हैं।

इत्यादि में यमक समझना चाहिए। यमक आदि में अनुस्वार अनुनासिक आदिकी विषमता स्वीकृत नहीं है---नगण्य है। इसी प्रकार इस दिशामें 'ड' 'ल' और 'ब' में अभेद माना जाता है :--

'ड' की 'ल' से, या 'ल' की 'ड' से और 'ब' की 'व' से अथवा 'व' की 'ब' से आवृत्ति हो सकती है। यही बात 'ल' और 'र' के विषय में है। कहा भी है :--

'यमकादौ भवेदैक्यं डलोर्बकोर्लरोस्तथा।'

अर्थात् यमक, श्लेष और चित्र अलंकारों में ड ल, ब व, और ल र अभिन्न समझे जाते हैं। कारण, इनका उच्चारण बहुत कुछ मिलता-जुलता है, जिससे चमत्कार में कोई बाधा नहीं पड़ती। इसी तरह अनुस्वार अथवा अनुनासिक का वैषम्य नहीं खटकता; इसलिए यमक के मार्ग में यह कोई बाधा नहीं डाल सकता।

4. वक्रोक्ति

दूसरे आदमी के अन्यार्थक वाक्य का अर्थ, जान-बूझकर भी, यदि दूसरा कोई आदमी कुछ और ही लगावे, तो उसे 'वक्रोक्ति' अलंकार कहते हैं-- वक्र=उलटी, उक्ति=बात। इस प्रकार दूसरा अर्थ दो तरह से लगाया जा सकता है--श्लेष से या काकु से। फलतः 'वक्रोक्ति' अलंकार भी दो तरह का होता है--

1. श्लेष-वक्रोक्ति और
2. काकु-वक्रोक्ति।

अ-- श्लेष-वक्रोक्ति

एक शब्द के अनेक अर्थ निकलें, उसे 'श्लेष' कहते हैं। श्लेष=सरेस, चिपकना। एक शब्द में दो अर्थ चिपटे रहते हैं, इसलिए इस विषय को 'श्लेष' कहते हैं। तो, जहाँ श्लेष के द्वारा किसी के वाक्य का कुछ और ही अर्थ लगाया जाय, वहाँ 'श्लेषवक्रोक्ति' होती है।

उदाहरण--
कलेक्टर (किसानों से)--
कर देना है धर्म्म तुम्हारा सोचो जागो।
रस और अलंकार--
किसान (कलेक्टर से)--
'अन्धे तो हो नहीं, भला फिर क्यों कर माँगो ?

इस उदाहरण में 'कर' शब्द श्लिष्ट है-- इसके दो अर्थ हैं-- 1. टैक्स, भूमि का महसूल और 2. हाथ।

अकाल पड़ गया है। खेतों में कुछ भी पैदा नहीं हुआ। इस दशा में किसान लोग लगान नहीं दे रहे हैं। कलेक्टर उन्हें समझाता है कि भाई, कर (लगान) चुका देना तुम्हारा कर्तव्य है। परन्तु, उसके इस वाक्य का श्रोता (किसान) लोगों ने दूसरा ही अर्थ लगाकर उत्तर दिया है। उन्होंने 'कर' का अर्थ 'हाथ' लिया। अन्धे आदमी, सहारे से चलने के लिए, किसी दूसरे आदमी का हाथ माँगते हैं, जिसे वे पकड़कर चलते हैं। यों 'कर' का 'हाथ' अर्थ लगाकर किसान कहते हैं कि साहब, आप अन्धे तो नहीं हैं; फिर कैसे और क्यों 'कर' माँग रहे हैं ? उत्तर बहुत ठीक है। क्या साहब बहादुर के आँखें नहीं हैं ? वे देख नहीं रहे हैं कि घोर अकाल पड़ गया है ? भला ऐसे समय में 'कर' माँगना क्या उचित है ?

तो, इस प्रकार साहब की बात का दूसरा अर्थ किसानों ने किया; इसलिए 'वक्रोक्ति' हुई और वैसा उन्होंने 'कर' शब्द के 'श्लेष' से किया; अतएव यह 'श्लेष-वक्रोक्ति' है।

आ-- काकु-वक्रोक्ति

गले की ध्वनि-विशेष का नाम 'काकु' है-- "भिन्नकण्ठध्वनिर्धीरैः काकुरित्यभिधीयते।" काकु के कारण एकार्थक वाक्य का भी बिलकुल भिन्न अर्थ हो जाता है। कहीं-कहीं बिलकुल उलटा-- विधि का निषेध और निषेध का विधि--अर्थ हो जाता है। कहीं कुछ का कुछ और ही हो जाता है। इस 'काकु' के बल पर जहाँ दूसरे के वाक्य का अर्थ कुछ और ही लगाया जाय, वहाँ 'काकु-वक्रोक्ति' होती है। उदाहरण-- कलेक्टर (किसान से) :--

क्या हम करें उपाय सभी कुछ अब दिखने को ?
किसान (कलेक्टर से)--
हा ! ऐसी मति हीन हुई क्यों, यों कहने को ?

कलेक्टर कहता है कि "हाँ, तुम लोग ऐसे हो गये हो ? यों जवाब देते हो ? क्या अब हम अपनी दमन-शलाका चलाकर तुम्हारी आँखें खोल दें, जिससे तुम लोगों को सब कुछ दिखने लगे कि हाकिम क्या होता है और रैय्यत क्या ? परन्तु किसान इस वाक्य का अर्थ 'काकु' द्वारा बदलकर उत्तर देते हैं। वे अर्थ लगाते हैं कि साहब कह रहा है :-- "अब हम (अपने को) सब कुछ दिखाई देने के लिए क्या उपाय करें ? ऐसा कौन सा उपाय किया जाय कि भला-बुरा सब कुछ नजर आने लगे ? बड़े कष्ट की बात है !" ऐसा अर्थ करके ही उन्होंने उत्तर दिया है। इस प्रकार 'काकु' के द्वारा अर्थ बदलने के कारण यह 'काकु-वक्रोक्ति' का उदाहरण हुआ।

(शेष पृष्ठ 126 पर)

भारत प्रशस्ति

इन दिनों भारत की सभी भाषाओं के प्रमुख कवि भारत-गौरव के गीतों की रचना कर रहे थे। गुरुदेव का यह गीत हर स्थान पर गूंज रहा था :

अयि ! भुवन मन मोहनी
निर्मल सूर्य करोज्ज्वल धरणी
जनक-जननी-जननी।। अयि।।
अयि ! नील सिन्धु जल धौत चरण तल
अनिल विकम्पित श्यामल अंचल
अम्बा चुम्बित भाल हिमाचल
अयि ! शुभ्र तुषार किरीटिनी ।। अयि ।।
प्रथम प्रभात उदय तव गगने
प्रथाम साम रव तव तपोवने;
प्रथम प्रचारित तव नव भुवने
कत वेद काव्य काहिनी ।। अयि।।
चिर कल्याणमयी तुमि मां धन्य
देश-विदेश वितरिछ अन्न
जाह्नवी यमुना विगलित करुणा
पुन्य पीयूष स्तन्य पायिनी।। अयि।।
अयि ! भुवन मन मोहिनी।

○ गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर (सन् 1930)

मेरा वतन

यह गीत आज़ादी की लड़ाई के दौरान सबकी ज़बान पर मुखरित होता था। इसे गुनगुनाते हुए सभी धर्मों के लोग आपस में गले मिलते थे। 'मेरा वतन' इक़बाल का दूसरा ऐसा गीत था जो क़ौमी एकता का एक सशक्त प्रतीक था। उन दिनों सारे भारत में यह गीत गूंज रहा था :

चिश्ती ने जिस ज़मीं में पैग़ामें हक़ सुनाया,
नानक ने जिस चमन में वहदत का गीत गाया,
तातारियों ने जिसको अपना वतन बनाया,
जिसने हेजाज़ियों से दश्ते अरब छुड़ाया,
मेरा वतन वही है, मेरा वतन वही है।। 1 ।।

सारे जहां को जिसने इल्मो हुनर दिया था,
यूनानियों को जिसने हैरान कर दिया था,
मिट्टी को जिसके हक़ ने ज़र का असर दिया था,
तुर्कों का जिसने दामन हीरों से भर दिया था,
मेरा वतन वही है, मेरा वतन वही है।।2 ।।

टूटे थे जो सितारे फारस के आसमां से,
फिर ताब दे के जिसने चमकाए कहकशां से,
वहदत की लय सुनी थी दुनिया ने जिस मकां से
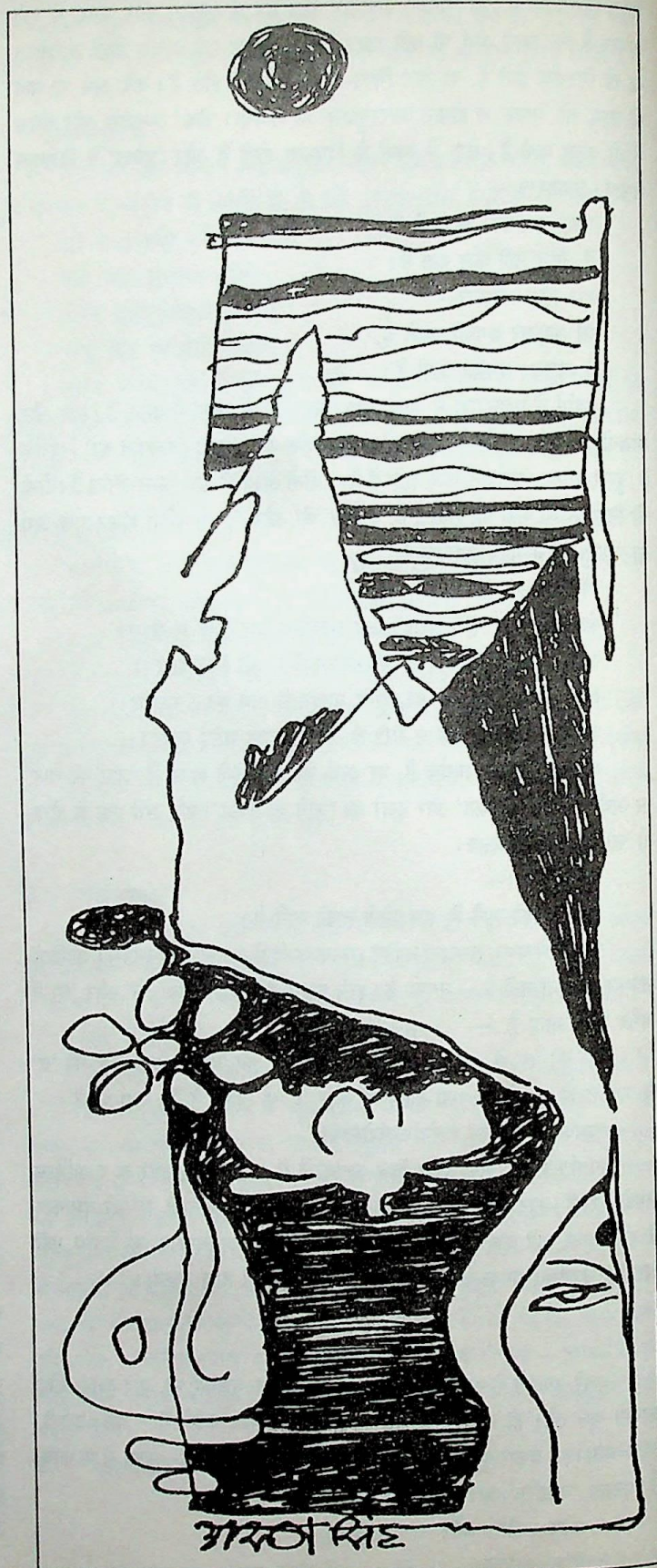
मीरे अरब को आई ठंडी हवा यहां से,
मेरा वतन वही है, मेरा वतन वही है।। 3 ।।

बन्दे किलीम जिसके, परवत जहां के सीना,
नूहे नबी का ठहरा, आकर जहां सफ़ीना,
रफ़अत है जिस ज़मीं को, बामे फ़लक का जीना,
जन्नत की ज़िन्दगी है, जिसकी फ़िज़ा में जीना,
मेरा वतन वही है, मेरा वतन वही है।। 4 ।।

गौतम का जो वतन है, जापान का हरम है,
ईसा के आशिक़ों को मिस्ले यरुशलम है,
मदफ़ून जिस ज़मीं में इस्लाम का हरम है,
हर फूल जिस चमन का, फ़िरदौस है, इरम है,
मेरा वतन वही है, मेरा वतन वही है।। 5 ।।

○ इक़बाल

इक़बाल के इस गीत में भारतीय संस्कृति की झलक दृष्टिगत होती है। भारत की अनेक विशेषताएं इस गीत के माध्यम से पूरे विश्व में मुखरित हो रही थीं। यह गीत सत्य और अहिंसा के नारों को बुलंद कर रहा था।

अहद

साग़र निज़ामी उन दिनों उर्दू ग़ज़ल और शायरी की मशहूर हस्ती थे। वे दुश्मनों के हर ज़ुल्म को सहने के लिए तैयार रहने का संदेश अपनी रचनाओं द्वारा भारतवासियों को देते रहते थे। वे हर हालत में देश की आज़ादी और ख़ुशी के गीत गाने को तैयार रहते थे। उनका यह गीत उन दिनों काफ़ी प्रसिद्ध था :

जब तिलाई रंग सिक्कों को नचाया जायेगा,
जब मिरी ग़ैरत को दौलत से लड़ाया जायेगा,
जब रगे इफ़लास को मेरी दबाया जायेगा,
ऐ वतन ! उस वक़्त भी मैं तेरे नग़्मे गाऊंगा।
और अपने पांव से अंबारे-ज़र ठुकराऊंगा।। 1 ।।

जब मुझे पेड़ों से उरियां करके बांधा जायेगा,
गर्म आहन से मिरे होठों को दाग़ा जायेगा,
जब दहकती आग पर मुझको लिटाया जायेगा,
ऐ वतन ! उस वक़्त भी मैं तेरे नग़्मे गाऊंगा।
तेरे नग़्मे गाऊंगा और आग पर सो जाऊंगा।। 2 ।।

ऐ वतन ! जब तुझपे दुश्मन गोलियां बरसायेंगे,
सुर्ख़ बादल जब फ़जाओं पे तेरी छा जायेंगे,
जब समन्दर आग के बुर्जों से टक्कर खायेंगे,
ऐ वतन ! उस वक़्त भी मैं तेरे नग़्मे गाऊंगा।
तेग़ की झंकार बनकर मिस्ले तूफ़ां आऊंगा।। 3 ।।

गोलियां चारों तरफ़ से घेर लेंगी जब मुझे,
और तनहा छोड़ देगा जब मिरा मरकब मुझे,

चित्र : अरुण सिंह
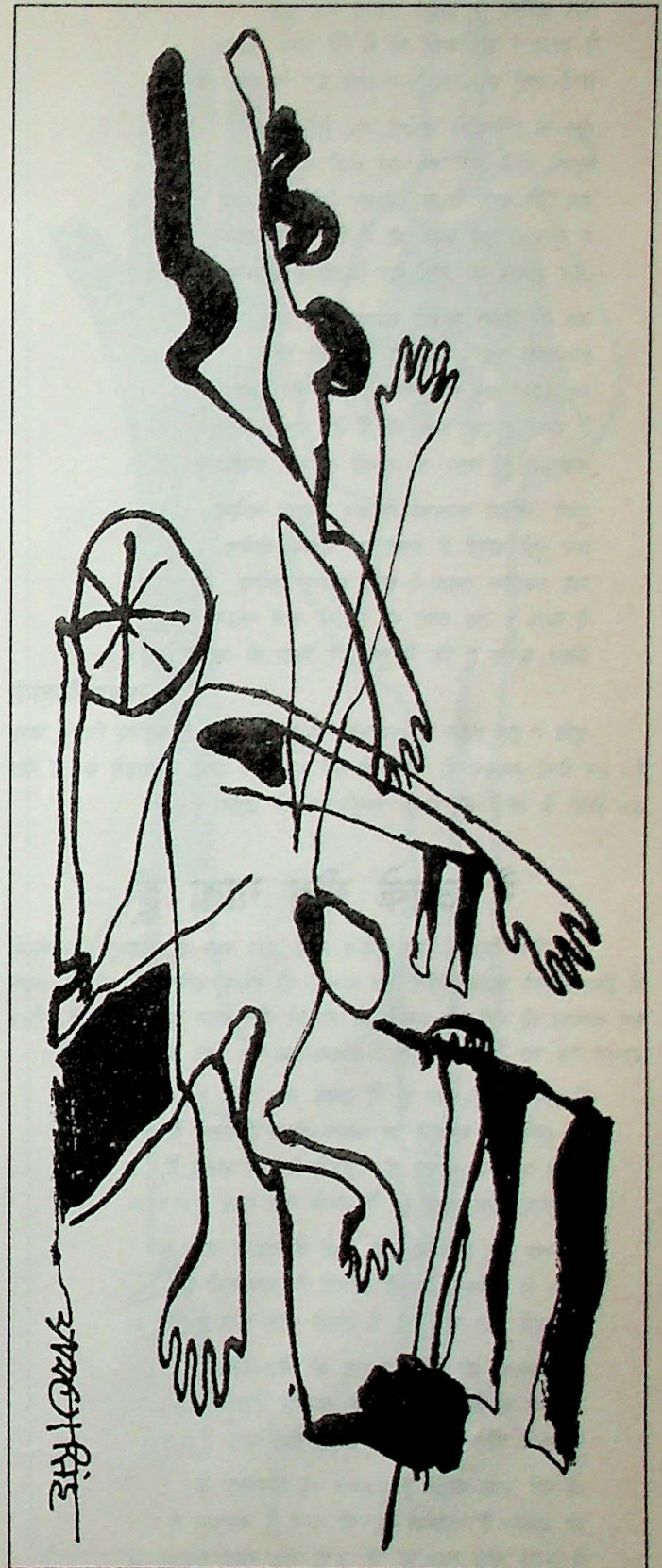
और संगीनों पे चाहेंगे उठाना सब मुझे,
ऐ वतन ! उस वक़्त भी मैं तेरे नग़्मे गाऊंगा।
मरते-मरते इक तमाशा-ए-वफ़ा बन जाऊंगा।।4।।

ख़ून से रंगीन हो जायेगी जब तेरी बहार,
सामने होंगी मिरे जब सर्द लाशें बेशुमार,
जब मिरे बाज़ू पे सर आकर गिरेंगे बार-बार,
ऐ वतन ! उस वक़्त भी मैं तेरे नग़्मे गाऊंगा।
और दुश्मन की सफ़ों पर बिजलियां बरसाऊंगा।।5।।

जब दरे-ज़िन्दां खुलेगा बरमला मेरे लिए,
इन्तक़ामी जब सज़ा होगी रवा मेरे लिए,
हर नफ़स जब होगा पैग़ामे क़ज़ा मेरे लिए,
ऐ वतन ! उस वक़्त भी मैं तेरे नग़्मे गाऊंगा।
बादाकश हूं, जहर की तल्ख़ी से क्या घबराऊंगा।।6।।

हुक्म आख़िर क़त्लगह में जब सुनाया जायेगा,
जब मुझे फांसी के तख़्ते पर चढ़ाया जायेगा,
जब यकायक तख़्ता-ए-ख़ूनी हटाया जायेगा,
ऐ वतन ! उस वक्त भी मैं तेरे नग़्मे गाऊंगा।
अहद करता हूं कि मैं तुझ पर फ़िदा हो जाऊंगा।।7।।

○ साग़र निज़ामी

कवि ने इस रचना में तत्कालीन स्थिति का बहुत ही मार्मिक चित्रण किया है। उन दिनों सचमुच ही फांसी के फंदे पर लोग खुशी से चढ़ते थे। ये गीत उन दिनों के लोगों की सच्ची मानसिकता के प्रतीक हैं।

मैं उनके गीत गाता हूं

उन दिनों देश के लिए कुर्बान होना आम बात थी। बहादुर देशवासियों के लिए कितने सशक्त गीतों एवं ग़ज़लों की रचना कवियों ने की थी, आज हम कल्पना भी नहीं कर सकते। वे जोशीले गीत आज एक प्रकार की धरोहर बनकर रह गए हैं। जां निसार 'अख़्तर' का यह गीत अविस्मरणीय है :

मैं उनके गीत गाता हूं, मैं उनके गीत गाता हूं!
जो शाने पर बग़ावत का अलम लेकर निकलते हैं,
किसी ज़ालिम हुकूमत के धड़कते दिल पे चलते हैं,
मैं उनके गीत गाता हूं, मैं उनके गीत गाता हूं।।1।।

जो रख देते हैं सीना गर्म तोपों के दहानों पर,
नज़र से जिनकी बिजली कौंधती है आसमानों पर,
मैं उनके गीत गाता हूं, मैं उनके गीत गाता हूं।।2।।

जो आज़ादी की देवी को लहू की भेंट देते हैं,
सदाक़त के लिए जो हाथ में तलवार लेते हैं,
मैं उनके गीत गाता हूं मैं उनके गीत गाता हूं।।3।।

जो पर्दे चाक करते हैं हुकूमत की सियासत के,
जो दुश्मन हैं क़दामत के, जो हामी हैं बग़ावत के,
मैं उनके गीत गाता हूं, मैं उनके गीत गाता हूं।।4।।
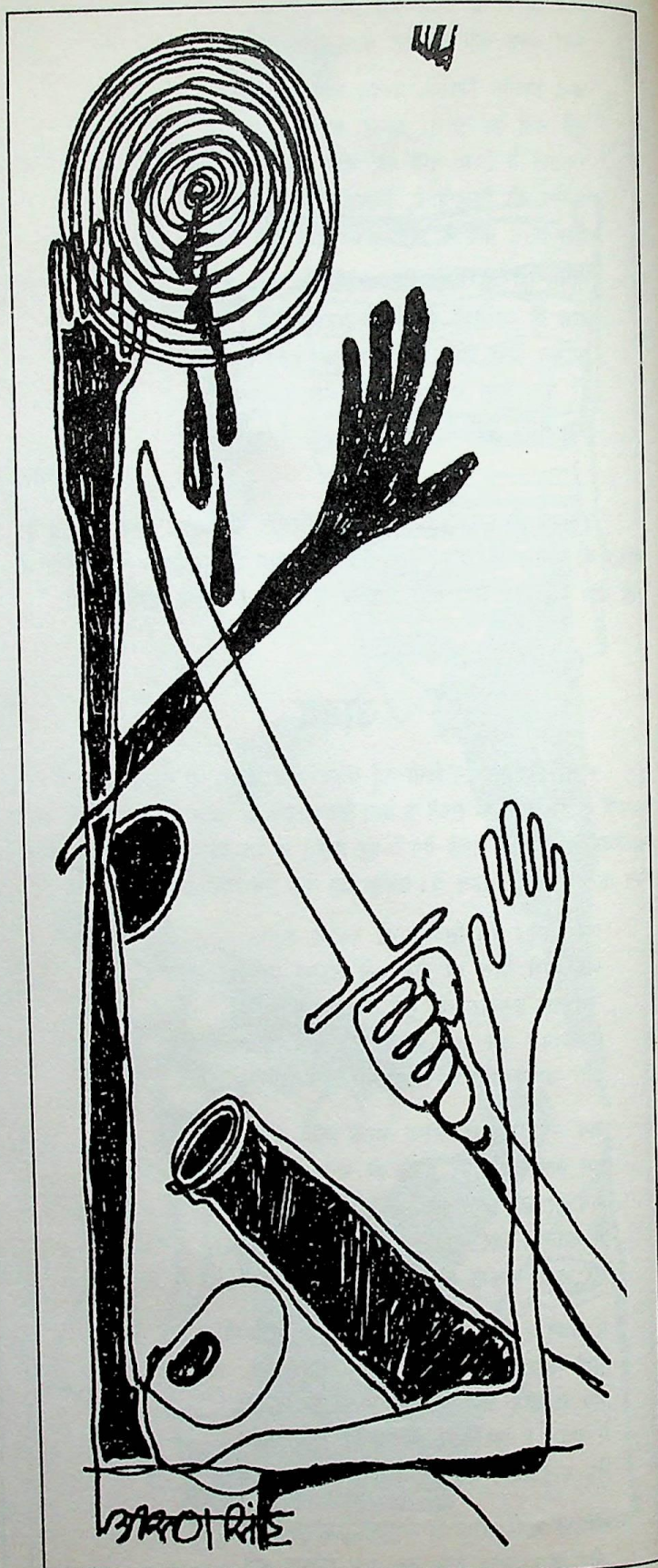
भरे मज्मे में करते हैं जो शोरिशख़ेज़ तक़रीरें,
वो जिनका हाथ उठता है, तो उठ जाती हैं शमशीरें,
मैं उनके गीत गाता हूं ,मैं उनके गीत गाता हूं।। 5 ।।
वो मुफ़लिस जिनकी आंखों में है परतौ क़हरे यज़दां का,
नज़र से जिनकी चेहरा ज़र्द पड़ जाता है सुल्तां का,
मैं उनके गीत गाता हूं, मैं उनके गीत गाता हूं।। 6 ।।
वो दहक़ां जिनके ख़िरमन में हैं पिन्हां बिजलियां अपनी,
लहू से ज़ालिमों के, सींचते हैं खेतियां अपनी,
मैं उनके गीत गाता हूं, मैं उनके गीत गाता हूं।। 7 ।।

वो मिहनतकश जो अपने बाज़ुओं पर नाज़ करते हैं,
वो जिनकी कूवतों से देवे इस्तिबदाद डरते हैं,
मैं उनके गीत गाता हूं, मैं उनके गीत गाता हूं।। 8 ।।

कुचल सकते हैं जो मज़दूर ज़र के आस्तानों को,
जो जलकर आग दे देते हैं जंगी कारख़ानों को,
मैं उनके गीत गाता हूं, मैं उनके गीत गाता हूं।। 9 ।।

झुलस सकते हैं जो शोलों से कुफ़्रो-दीं की बस्ती को,
जो लानत जानते हैं मुल्क में फ़िरका-परस्ती को,
मैं उनके गीत गाता हूं, मैं उनके गीत गाता हूं।। 10 ।।

वतन के नौजवानों में नये जज़्बे जगाऊंगा,
मैं उनके गीत गाऊंगा, मैं उनके गीत गाऊंगा ।। 11 ।।

○ जां निसार 'अख़्तर'

आह्वान

भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन के इतिहास में अशफ़ाक उल्ला का नाम बड़े ही गौरव के साथ लिया जाता है। उन्होंने आज़ादी की लड़ाई में क्रांतिकारियों की ओर से एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। शाहजहांपुर के रहने वाले अशफ़ाक उल्ला ख़ां रईस ख़ानदान के थे। सुन्दर और सुडौल शरीर वाले अशफ़ाक उल्ला खेलों के बड़े शौक़ीन थे। उन्होंने बचपन में ही तैरना, घुड़सवारी करना सीख लिया था। हॉकी और क्रिकेट खेलने में उनकी विशेष दिलचस्पी थी। उनका बंदूक़ का निशाना अचूक होता था। अशफ़ाक उल्ला कवि भी थे। वे बहुत ही ओजपूर्ण कविताएं लिखते थे। उन्होंने कुछ कविताओं में अपना नाम हसरत भी रखा है। आज़ादी की लड़ाई में उनका यह आह्वान-गीत सरकार ने ज़ब्त कर लिया था। किन्तु यह गीत गली-गली में गाया जाता था :

कस ली है कमर अब तो, कुछ करके दिखायेंगे,
आज़ाद ही हो लेंगे, या सर ही कटा देंगे।
हटने के नहीं पीछे, डर कर कभी ज़ुल्मों से,
तुम हाथ उठाओगे, हम पैर बढ़ा देंगे।
बेशस्त्र नहीं हैं हम, बल है हमें चरखे का,
चरखे से ज़मी को हम,ता चर्ख़ गुंजा देंगे।
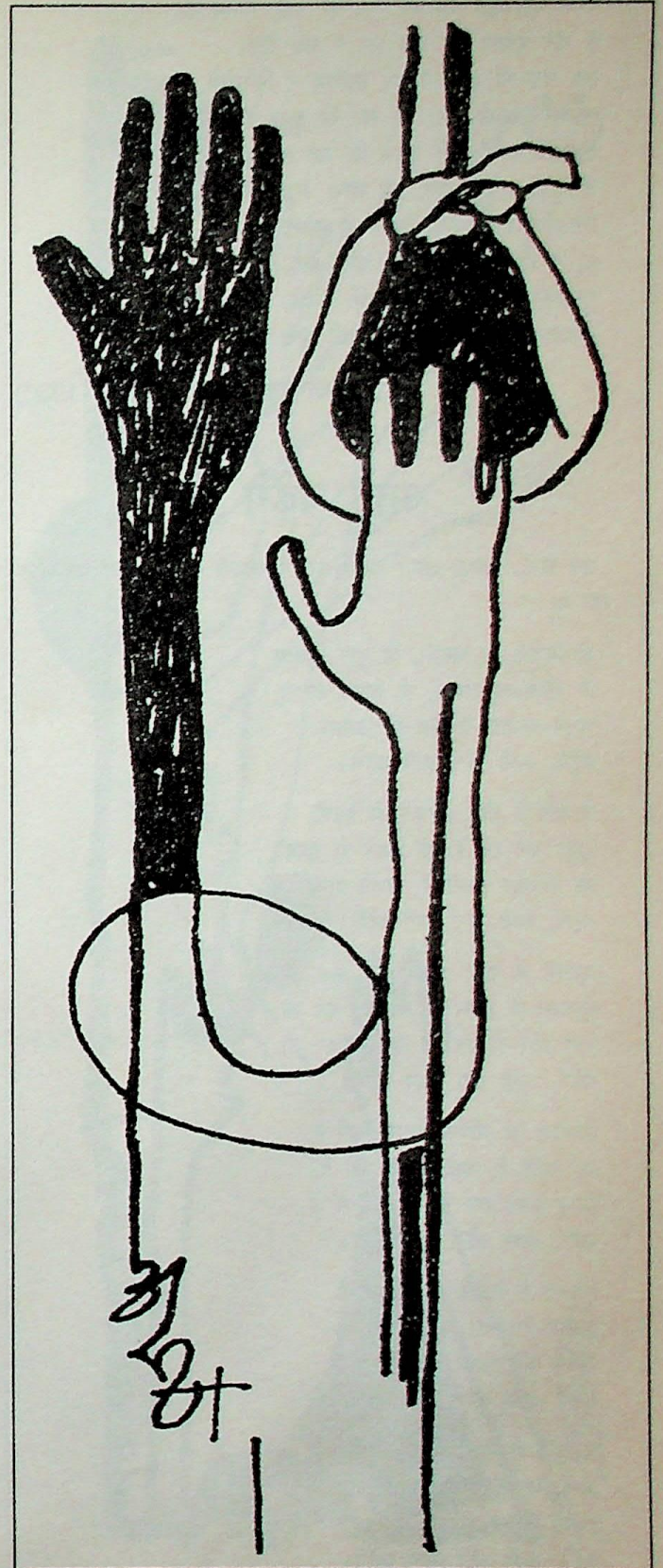
चित्र : अरुण सिंह

परवा नहीं कुछ दम की, ग़म की नहीं, मातम की,
है जान हथेली पर, एक दम में गवां देंगे।
उफ़ तक भी जुबां से हम हरगिज़ न निकालेंगे,
तलवार उठाओ तुम, हम सर को झुका देंगे।
सीखा है नया हमने लड़ने का यह तरीक़ा,
चलवाओं गन मशीनें, हम सीना अड़ा देंगे।
दिलवाओ हमें फांसी, ऐलान से कहते हैं,
ख़ूं से ही हम शहीदों के, फ़ौज बना देंगे।
मुसाफ़िर जो अंडमान के, तूने बनाये, ज़ालिम,
आज़ाद ही होने पर, हम उनको बुला लेंगे।

○ **अशफ़ाक उल्ला ख़ां** (सन् 1930)

आगे बढ़ेंगे

उन दिनों, प्रसिद्ध शायर अली सरदार जाफरी का यह गीत हर जगह गूंज रहा था :

वो बिजली-सी चमकी, वो टूटा सितारा,
वो शोला-सा लपका, वो तड़पा शरारा,
जुनूने-बग़ावत ने दिल को उभारा,
बढ़ेंगे, अभी और आगे बढ़ेंगे।

गरजती हैं तोपें, गरजने दो इनको,
दुहुल बज रहे हैं, तो बजने दो इनको,
जो हथियार सजते हैं, सजने दो इनको,
बढ़ेंगे, अभी और आगे बढ़ेंगे।

कुदालों के फल, दोस्तो, तेज़ कर लो,
मुहब्बत के साग़र को लबरेज़ कर लो,
ज़रा और हिम्मत को महमेज़ कर लो,
बढ़ेंगे, अभी और आगे बढ़ेंगे।

विज़ारत की मंज़िल हमारी नहीं है,
यह आंधी है, बादे-बहारी नहीं है,
जिरह हमने तन से उतारी नहीं है,
बढ़ेंगे, अभी और आगे बढ़ेंगे।

हुकूमत के पिंदार को तोड़ना है,
असीरो-गिरफ़्तार को छोड़ना है,
जमाने की रफ़्तार को मोड़ना है,
बढ़ेंगे, अभी और आगे बढ़ेंगे।

चट्टानों में राहें बनानी पड़ेंगी,
अभी कितनी कड़ियां उठानी पड़ेंगी,
हज़ारों कमानें झुकानी पड़ेंगी,
बढ़ेंगे, अभी और आगे बढ़ेंगे।
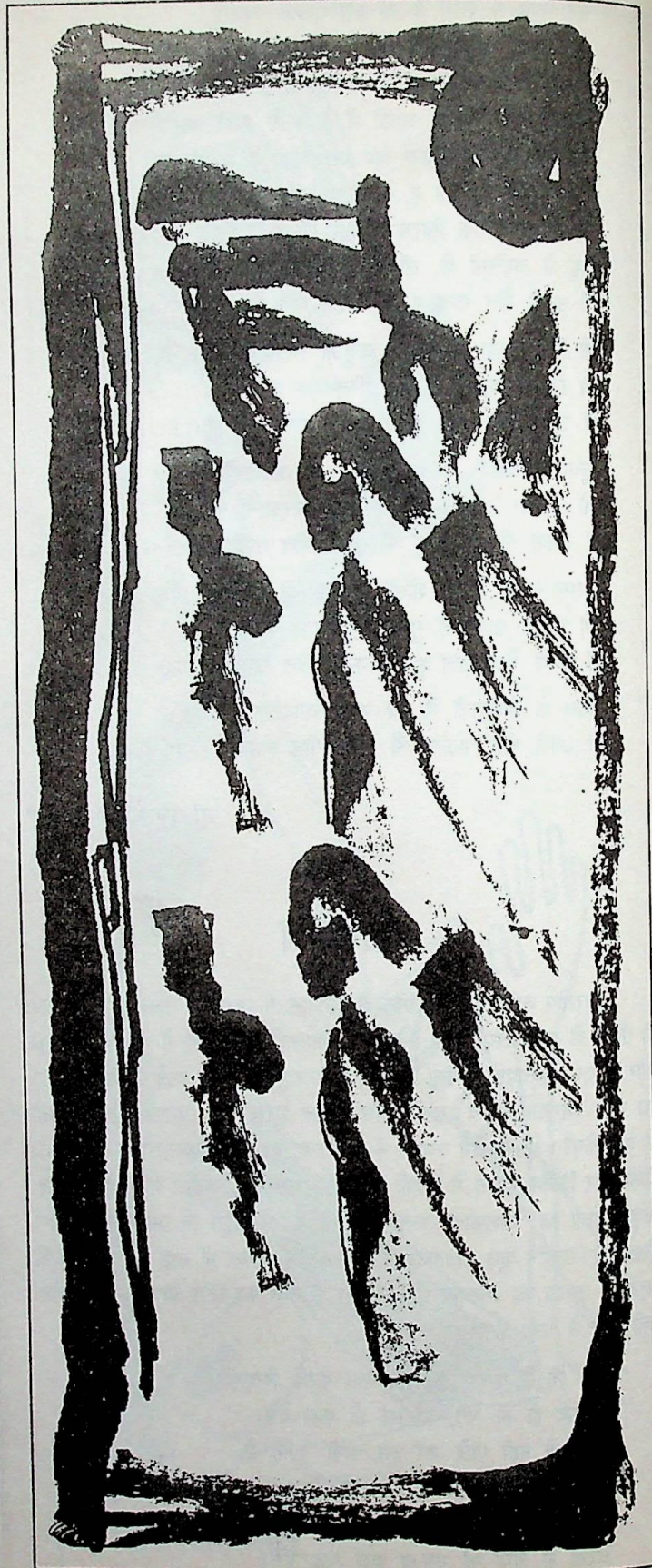
हदें हो चुकीं ख़त्म बीमो-रज़ा की,
मुसाफ़त से अब अज़्मे-सब्रआज़मां की,
ज़माने के माथे पे है ताबनाकी,
बढ़ेंगे, अभी और आगे बढ़ेंगे।

उफ़ुक के किनारे हुए हैं गुलाबी,
सहर की निगाहों में है बर्क़ताबी,
क़दम चूमने आई है कामयाबी,
बढ़ेंगे, अभी और आगे बढ़ेंगे।

मसाइब की दुनिया के पामाल करके,
जवानी के शोलों में तप के, निखर के,
ज़रा नज़्मे-गेती से ऊंचे उभर के,
बढ़ेंगे, अभी और आगे बढ़ेंगे।

महकते हुए मुर्ग़ज़ारों से आगे,
लचकते हुए आबशारों से आगे,
बिहिश्ते-बरीं की बहारों से आगे,
बढ़ेंगे, अभी और आगे बढ़ेंगे।

○ अली सरदार जाफ़री

चित्र : अरुण सिंह

आज़ादी

रामप्रसाद 'बिस्मिल' का यह गीत उन दिनों काफ़ी गाया जाता था। इसके द्वारा बहुत ही कड़े स्वर में आजादी की मांग की गई थी :

इलाही ख़ैर ! वो हरदम नई बेदाद करते हैं,
हमें तोहमत लगाते हैं, जो हम फ़रियाद करते हैं।
कभी आज़ाद करते हैं, कभी बेदाद करते हैं,
मगर इस पर भी हम सौ जी से उनको याद करते हैं।
असीराने-क़फ़स से काश, यह सैयाद कह देता,
रहो आज़ाद होकर, हम तुम्हें आज़ाद करते हैं।
रहा करता है अहले-ग़म को क्या-क्या इंतज़ार इसका,
कि देखें वो दिले-नाशाद को कब शाद करते हैं।
यह कह-कहकर बसर की, उम्र हमने क़ैदे-उल्फ़त में,
वो अब आज़ाद करते हैं, वो अब आज़ाद करते हैं।
सितम ऐसा नहीं देखा, जफ़ा ऐसी नहीं देखी,
वो चुप रहने को कहते हैं, जो हम फ़रियाद करते हैं।
यह बात अच्छी नहीं होती, यह बात अच्छी नहीं करते,
हमें बेकस समझकर आप क्यों बरबाद करते हैं ?
कोई बिस्मिल बनाता है, जो मक़तल में हमें 'बिस्मिल',
तो हम डरकर दबी आवाज़ से फ़रियाद करते हैं।

○ रामप्रसाद बिस्मिल

खादी गीत

श्री सोहनलाल द्विवेदी का 'खादी गीत' जनमानस में गूंज रहा था। इस प्रभावशाली गीत से अंग्रेज़ी हुकूमत हिल उठी :

खादी के धागे-धागे में अपनेपन का अभिमान भरा,
माता का इसमें मान भरा, अन्यायी का अपमान भरा।
खादी के रेशे-रेशे में अपने भाई का प्यार भरा,
मां-बहिनों का सत्कार भरा, बच्चों का मधुर दुलार भरा।
खादी की रजत चंद्रिका जब, आकर तन पर मुसकाती है,
तब नव-जीवन की नई ज्योति अंतस्थल में जग जाती है।
खादी से दीन निहत्थों की उत्तप्त उसांस निकलती है।
जिससे मानव क्या, पत्थर की भी छाती कड़ी पिघलती है।
खादी में कितने ही दलितों के दग्ध हृदय की दाह छिपी,
कितनों की कसक कराह छिपी, कितनों की आहत आह छिपी।
खादी में कितनों ही नंगों-भिखमंगों की है आस छिपी,
कितनों की इसमें भूख छिपी, कितनों की इसमें प्यास छिपी।
खादी तो कोई लड़ने का, है भड़कीला रणगान नहीं,
खादी है तीर-कमान नहीं, खादी है खड्ग-कृपाण नहीं।
खादी को देख-देख तो भी दुश्मन का दिल थहराता है।
खादी का झंडा सत्य, शुभ्र अब सभी ओर फहराता है।
खादी की गंगा जब सिर से पैरों तक बह लहराती है,
जीवन के कोने-कोने की, तब सब कालिख धुल जाती है।
खादी का ताज चांद-सा जब, मस्तक पर चमक दिखाता है,
कितने ही अत्याचार ग्रस्त दीनों के त्रास मिटाता है।
खादी ही भर-भर देश प्रेम का प्याला मधुर पिलायेगी,
खादी ही दे-दे संजीवन, मुर्दों को पुनः जिलायेगी।
खादी ही बढ़, चरणों पर पड़ नुपूर-सी लिपट मना लेगी,
खादी ही भारत से रूठी आज़ादी को घर लायेगी।

○ सोहनलाल द्विवेदी

शहीदों की फाँसी का नजारा

तेईस मार्च, इकतीस सन, सोम दिन छुपे बाद।
जब फाँसी पर ले गए, तीनों को जल्लाद।।
फाँसी को देख भगतसिंहजी, खुश होकर आगे जाने लगे।
चट राजगुरुजी बांह पकड़ उनको सप्रेम समझाने लगे।।
तुम हो सरदार, सिपाही मैं, पहले तुम कैसे जाओगे?
क्या मेरे धर्म पर क्षण-भर को, तुम मिथ्या दोष लगाओगे?
जब वे दोनों लिपटे थे यों, सुखदेव चढ़ गया फाँसी पर।
बलि देने में भारत-मां को, सुखदेव बढ़ गया फाँसी पर।।
"सुखदेव! धन्य" यों कह करके सरदार भगतसिंह हरषाया।
हटवा के लाश उसकी वाँ से, तख्ते पर आप उछल आया।।
गर्जन करके फिर यों बोला-- "ब्रिटिश झंडे का होवे नाश!"
थर्राया फाँसीघर सारा, औ गूंज गया धरती अकाश।।
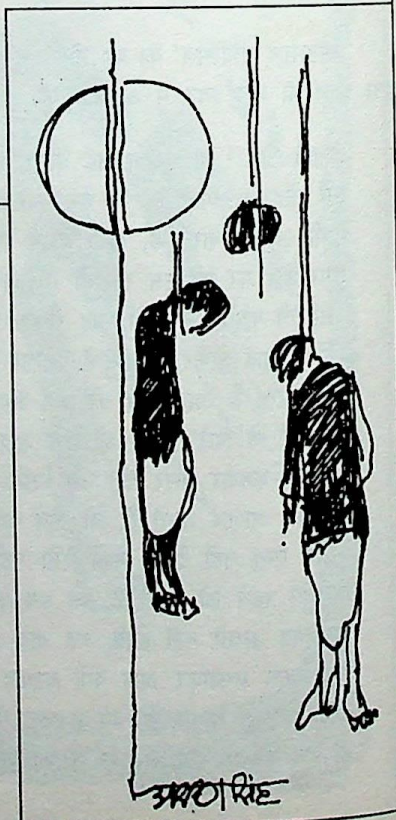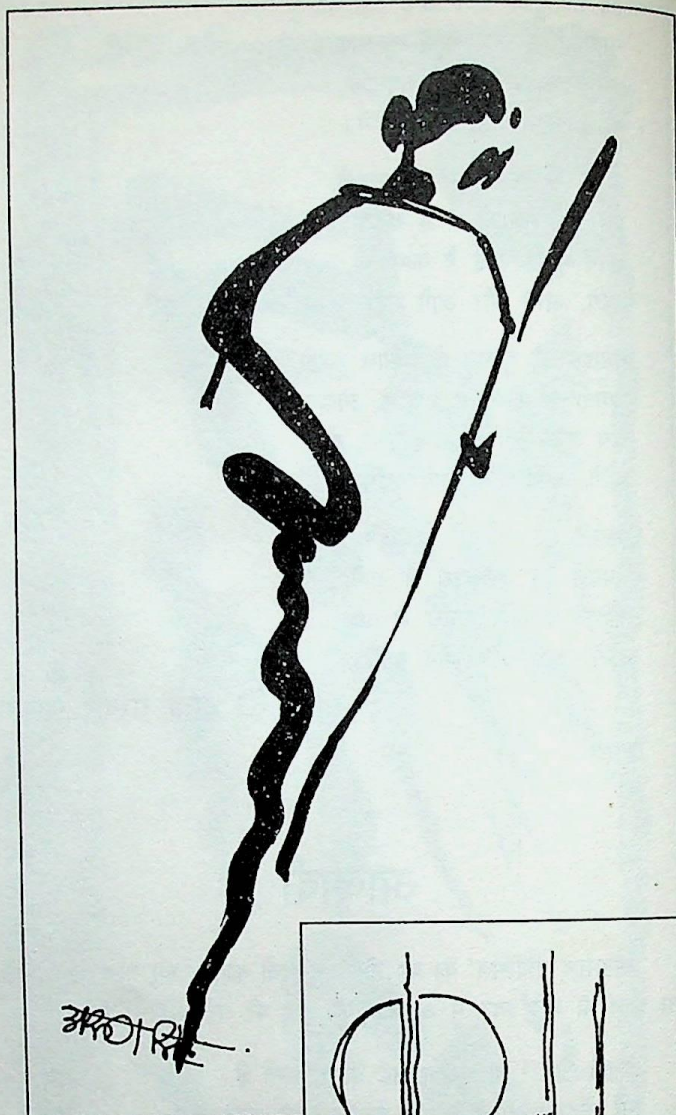
फिर देखा तख्ते को खुश हो, फाँसी की रस्सी को चूमा।
''भारतमाता की जय'' कहकर वह प्यारा फाँसी पर झूमा।।
यह दृश्य देखकर राजगुरु का दिल कुछ दुख से भर आया।
बलिवेदी पर मैं पिछड़ गया, नहिं पहले भेंट चढ़ा पाया।।
बोला-- ''क्या पाप किया मैंने जो पिछड़ गया बलि देने में।।
माता ! कर क्षमा मुझे, चूका मैं अमृतफल के लेने में।।
यों कह अधीर हो गया वीर, व्याकुल होकर कुछ घबराया।
फिर चढ़ा उछलकर तख्ते पर, फांसी का टोप सर पर आया।।
तख्ता खिसका, गर्दन झूली, बिजुली-सी चमकी इक पल में।
धरती कांपी, हँस दिया फलक, औ लहर उठी सागर तल में।।
यों शहीद वे हो गए, माता पर कुर्बान।
लाशें उनकी ले गए, सतलज के दर्म्यान।।

लाशों को शहीदों की जलाने भी न पाए

हम दोश पै लाशों को उठाने भी न पाए।
हम फूल शहीदों पै चढ़ाने भी न पाए।।
हम अश्क चिताओं पे गिराने भी न पाए।
हम आतिशे-सोजां को बुझाने भी न पाए।।
दर्दे-दिल-महजूं को मिटाने भी न पाए।
मां-बाप कलेजे से लगाने भी न पाए।।
जांवाजों ने दम तोड़ दिया कुंजे-कफस में।
वह आखरी पैगाम सुनाने भी न पाए।।
बेताब थे वह सो गए आगोशे-अजल में।
जो उनपै गुजरती थी सुनाने भी न पाए।।
सद हैफ ! रही आरजू यह दिल में हमारे।
लाशों को शहीदों की जलाने भी न पाए।।
सतलज में योंही फेक दिए जिस्म-शहीदां।
जो फूल थे गंगा में बहाने भी न पाए।।
जी रंज से भर आया, छुटा हाथ से ख़ामा।
हम क़िस्सएपुरदर्द सुनाने भी न पाए।।

दोनों चित्र : अरुण सिंह

'राष्ट्रीय गीत'

(वैद्य की लाचारी भाग-2)

72

कवित्त

नीति चेम्बरलेन की सुयोधन के समान चली,
राजा धृतराष्ट्र के समान मौन मारैंगे ।
शकुनी के समान पासा फेके हैं वायस राय,
पाँच पाँच - सात सात - नौ नौ ललकारैंगे ।
भारत की माता बहिन द्रौपदी बनैंगी यहाँ,
पुलिस वाले निर्दयी दुशासन रूप धारैंगे ।
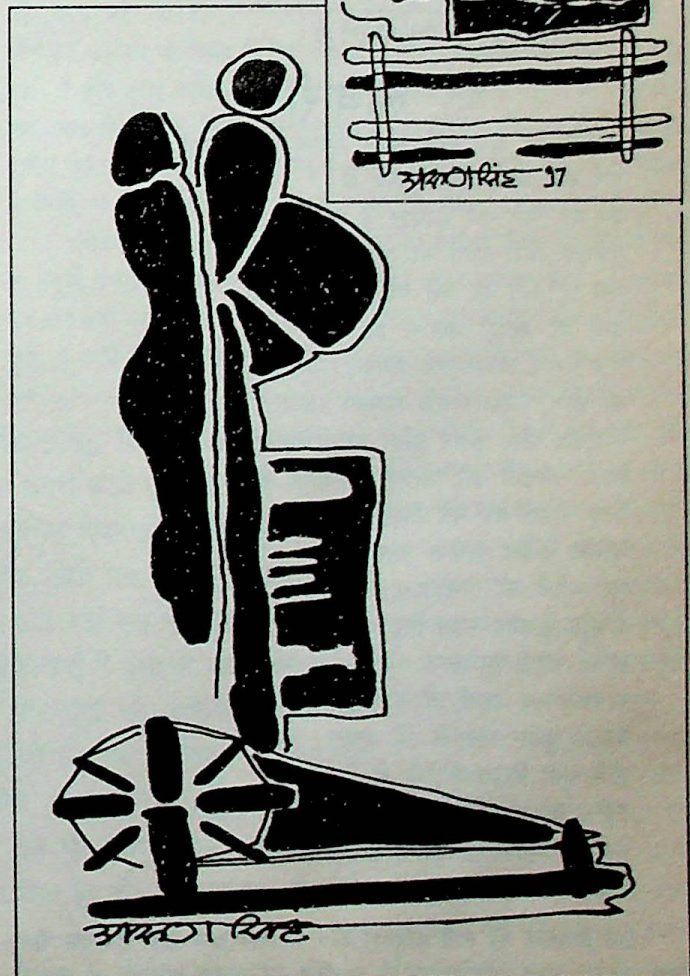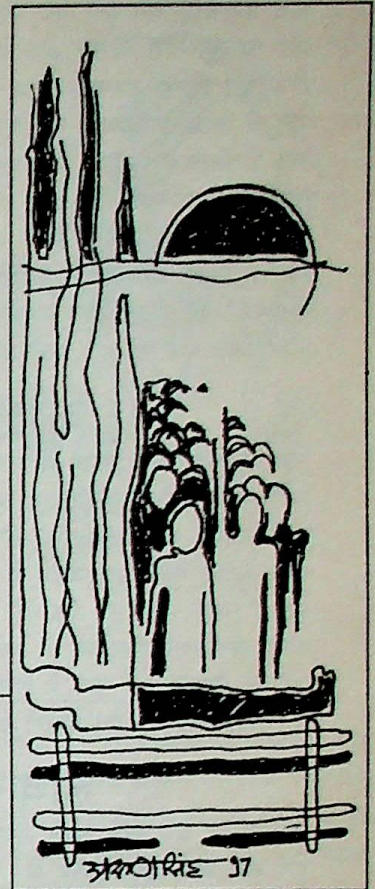
सारा धन धरा, धाम हारि गये भारतवासी,
चार गज की सारी बेइमान अब उतारैंगे ॥1॥
द्रोणी कर्ण विक्रण अलम्बुक उलूक शल्य,
बनि के भगदत्त तालुकदार पांव धारैंगे ।
बनि के शिखण्डी मुसलिम लीग चली आगे आगे,
भीष्म के समान तब महान बीर हारैंगे ॥
पापी कुचाली देशद्रोही औ हरामी सारे,
बनि के सियार मुर्द धाट में निहारैंगे।
वैद्य कहैं आव पतित पावन महाभारत होई,
तोहरे बिना घोड़े की बाग कौन सारैंगे ॥2॥

कवित्त

गेरुई गिरदावर और चरका चरपरासी बने
पाला बड़ा लाला जवन लूट-लूट खाते हैं
माहो महाजन बड़ी लम्बी चौड़ी तोंद वाले
पाथर पुलिस बड़े प्रभुता जमाते हैं
मूस हैं मुहर्रिर मूंस मूंस घूस लेते जांय,
कौवा तहसीलदार हौवा बन के आते हैं
कहूं का किसानन की हाल ये पिसान भये
खेत हेत इनके केते प्रेत मेड़राते हैं।

लाचारी

आजादी बदे होय गइलै लाखो दिवाना हो। आजादी०
दुर्गा दास औरा वीर शिवाजी हो,
बन-बन फिरै मारे उदयपुर के राना। आजादी०
दुर्गावती औरो झांसी की रनियां हो,
जल गई बेटी औ चले गये नाना। आजादी०
चारो बेटे बहादुर शाह के हो,
नन्द कुमार अस्फाकुल्ला मस्ताना। आजादी०
श्री कृष्ण शारदा मलापा धनसेठी भइया
जगरनाथ सेंधी कुर्वान हुसेन मर्दाना। आजादी०
कितना गिनाऊँ वही जलिया की बगिया में,
मदन गोपाल बदे मारै निशाना। आजादी०
बिस्मिल अजाद कन्हैया लाल रोशन,
दास यतेन्द्र मरे बिना दाना। आजादी०
राजगुरू सुखदेव भगत सिंह,
राजेन्द्र लहेड़ी हरकिसन भये कुर्बाना। आजादी०
लाजपति राय हमरी लठिया से मारि गइलैं,
घर कै पुलिस मोर हो गये बेगाना। आजादी०
मोती लाल तिलक नौरोजी हो,
महीन्द्र प्रताप अरिविन्द कै कहां है ठिकाना। आजादी०
वैद्य कहैं देशवा के लजिया बचावै वदे,
शमा है स्वराज्य हम बनैंगे परवाना हो। आजादी०

(इस विशेषांक की सभी कविताएं डॉ० रामजन्म शर्मा कृत 'ज़ब्तशुदा गीत' तथा उ० प्र० राज्य अभिलेखागार से प्रकाशित 'प्रतिबन्धित कविताएं' से साभार)
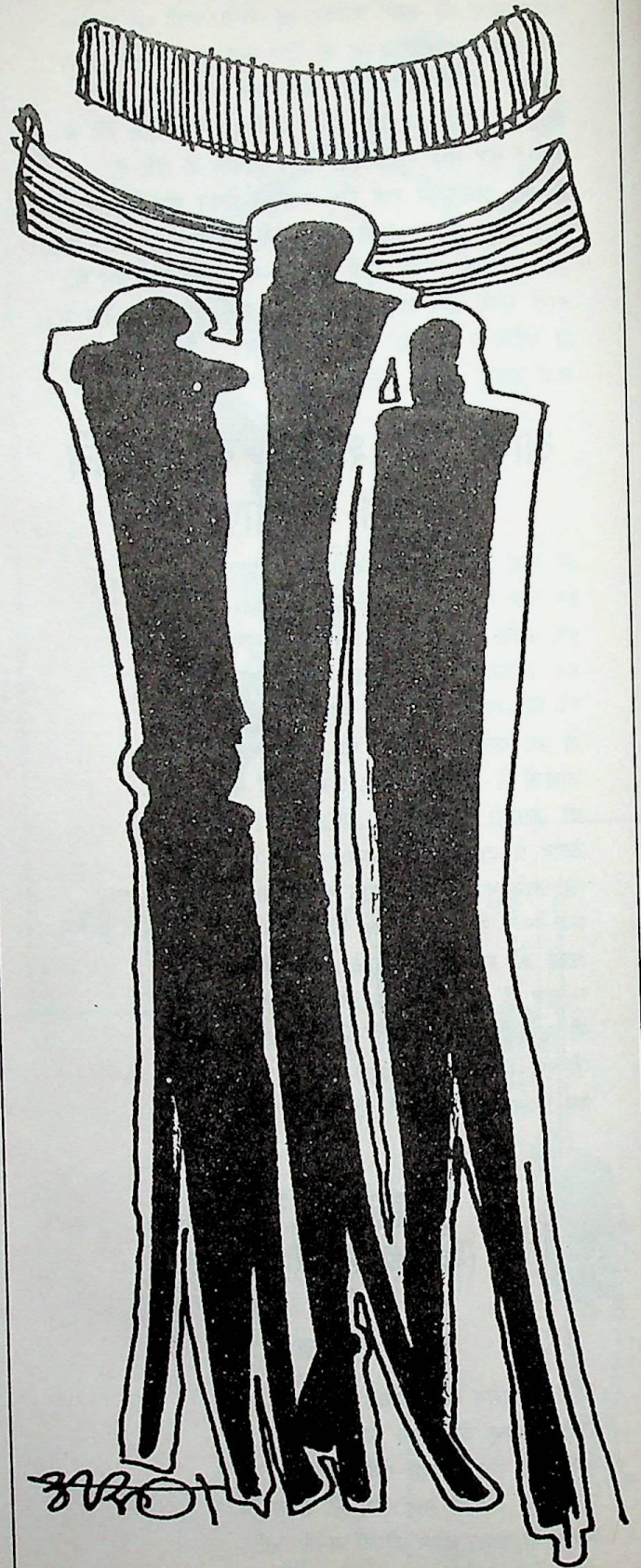
रूस की चिट्ठी

○ रवीन्द्रनाथ टैगोर

मास्को

आखिर रूस में आ ही पहुँचा। जो देखता हूँ, आश्चर्य होता है। अन्य किसी देश से इसकी तुलना नहीं हो सकती। बिल्कुल जड़ से प्रभेद है। आदि से अन्त तक सभी आदमियों को इन लोगों ने समान रूप से जगा दिया है।

हमेशा से देखा गया है कि मनुष्य की सभ्यता में अप्रसिद्ध लोगों का एक ऐसा दल होता है, जिनकी संख्या तो अधिक होती है, फिर भी वे ही वाहन होते हैं; उन्हें मनुष्य बनने का अवकाश नहीं, देश की सम्पत्ति के उच्छिष्ट से वे प्रतिपालित होते हैं। वे सबसे कम खाकर, सबसे कम पहनकर, सबसे कम सीखकर अन्य सबों की परिचर्या या गुलामी करते हैं; सबसे अधिक उन्हीं का परिश्रम होता है। सबसे अधिक उन्हीं का असम्मान होता है। बात-बात पर वे भूखों मरते हैं, ऊपर वालों की लातें खातें हैं--जीवन-यात्रा के लिए जितनी भी सुविधाएँ और मौके हैं, उन सबसे वे वंचित रहते हैं। वे सभ्यता की दीवट हैं, सिर पर दिया लिये खड़े रहते हैं; ऊपर वालों को सबको उजीता मिलता है और उन बेचारों के ऊपर से तेल ढलकता रहता है।

मैनें इनके बारे में बहुत दिनों से बहुत सोचा है, मालूम हुआ कि इसका कोई उपाय नहीं। जब एक समूह नीचे न रहेगा, तो दूसरा समूह ऊपर रह ही नहीं सकता, और ऊपर रहने की आवश्यकता है ही। ऊपर न रहा जाय, तो बिलकुल नजदीक की सीमा के बाहर का कुछ दिखाई नहीं देता--मनुष्यत्व सिर्फ़ जीविका-निर्वाह करने के लिए ही नहीं है। एकान्त जीविका को अतिक्रम करके आगे बढ़े, तभी उसकी सभ्यता है। सभ्यता की उत्कृष्ट फसल तो अवकाश के खेत में पैदा होती है। मनुष्य की सभ्यता में एक जगह अवकाश की रक्षा करने की जरूरत तो है ही। इसीलिए सोचा करता था कि जो मनुष्य सिर्फ अवस्था के कारण ही नहीं, बल्कि शरीर और मन की गति के कारण नीचे रहकर काम करने को मजबूर हैं और उसी काम के योग्य हैं, जहाँ तक सम्भव हो, उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य, सुख और सुविधा के लिए उद्योग करना चाहिए।

मुश्किल तो यह है कि दया के वश कोई स्थायी चीज़ नहीं बनाई जा सकती; बाहर से उपकार करना चाहें तो पद-पद पर उसमें विकार उत्पन्न होते रहते हैं। समान बन सकें, तभी सत्य सहायता हो सकती है। कुछ भी हो, मैं अच्छी तरह कुछ सोच नहीं सका हूँ-- फिर भी इस बात को मान लेने में कि अधिकांश मनुष्यों को नीचे रखकर, उन्हें अमानुष बनाये रखकर ही सभ्यता ऊँची रह सकती है, हमारा मन धिक्कारों से भर जाता है।

ज़रा सोचो तो सही, भूखे भारत के अन्न से इंग्लैंड परिपुष्ट हुआ है। इंग्लैंड के अधिकांश लोगों के मन का भाव यह है कि इग्लैंड का चिरकाल पोषण करने में भारत की सार्थकता है। इंग्लैंड बड़ा होकर मानव-समाज में बड़ा काम कर रहा है, और इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए हमेशा के लिए एक जाति को दासता में बाँध रखने में कोई बुराई नहीं; यह जाति अगर कम खाती है, कम पहनती है, तो उससे क्या बनता-बिगड़ता है; फिर भी कृपा करके उनकी अवस्था की कुछ उन्नति करना चाहिए, यह बात उनके मन में बैठ गई है। परन्तु एक सौ वर्ष हो चुके, न तो शिक्षा ही मिली, न स्वास्थ्य ही मिला और न सम्पदा ही देखी।

प्रत्येक समाज अपने अंदर इसी एक बात का अनुभव करता है। जिस मनुष्य का मनुष्य सम्मान नहीं कर सकता, उस मनुष्य का मनुष्य उपकार करने में असमर्थ है। और कहीं नहीं तो, जब अपने स्वार्थ पर आकर ठेस लगती है, तभी मार-काट शुरू हो जाती है। रूस में एकदम जड़ से लेकर इस समस्या को हल करने की कोशिश की जा रही है। उसका अन्तिम परिणाम क्या होगा, इस बात पर विचार करने का समय अभी नहीं आया, मगर फिलहाल जो कुछ आँखों के सामने से गुज़र रहा है, उसे देखकर आश्चर्य होता है। हमारी सम्पूर्ण समस्याओं का सबसे बड़ा रास्ता है, शिक्षा। अभी तक समाज के अधिकांश लोग शिक्षा की पूर्ण सुविधा से वंचित हैं--और भारतवर्ष तो प्रायः पूर्णतः ही वंचित है।

यहाँ -- रूस में -- वही शिक्षा ऐसे आश्चर्यजनक उद्यम के साथ समाज में सर्वत्र व्याप्त
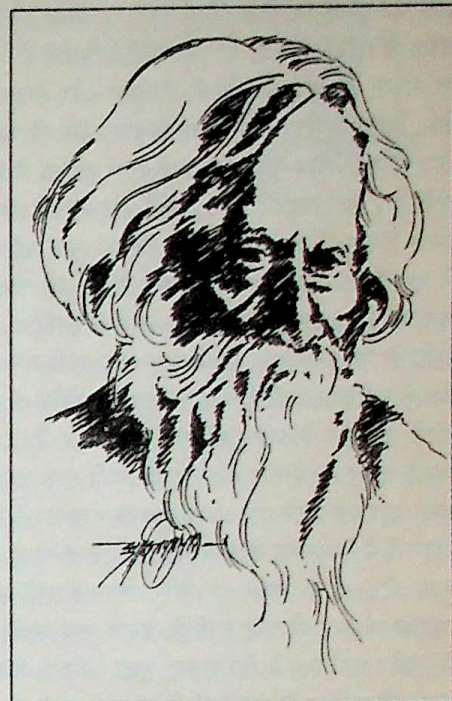
रवीन्द्रनाथ टैगोर की दसवीं विदेश यात्रा, विशेष रूप से महत्वपूर्ण थी, क्योंकि इस बार जब वे कई देशों का भ्रमण करते हुए 1930 में सोवियत संघ पहुँचे तो उनका नये जीवन एवं सामाजिक स्थितियों से साक्षात्कार हुआ। टैगोर वहां की शिक्षा व्यवस्था, सामूहिक खेती एवं व्यक्तिगत प्रतिभा के विकास के अवसरों को देखकर दंग थे। उन्हें वहां एक नई सभ्यता के दर्शन हुए। व्यक्तिगत सम्पत्ति के बारे में उनके विचारों में इसी के बाद आमूल-चूल परिवर्तन हुआ। सोवियत संघ के इन परिवर्तनों की व्याख्या उन्होंने रूस की चिट्ठी श्रृंखला में की, जिसका अंग्रेजी अनुवाद कलकत्ता से प्रकाशित 'माडर्न रिव्यू' में प्रकाशित हुआ। अंग्रेज सरकार ने टैगोर की इस लेख श्रृंखला को साम्यवाद का प्रचार करार देते हुए 'माडर्न रिव्यू' की वे सभी प्रतियां ज़ब्त कर लीं जिनमें ये लेख प्रकाशित हुए थे और 'रूस की चिट्ठी' पुस्तिका पर प्रतिबंध लगा दिया था।

होती जा रही है कि जिसे देखकर दंग रह जाना पड़ता है। शिक्षा की तौल सिर्फ संख्या से नहीं हो सकती, वह तो अपनी सम्पूर्णता से--अपनी प्रबलता से ही तौली जा सकती है। कोई भी आदमी निःसहाय और बेकार न रहने पावे, इसके लिए कैसा विराट आयोजन और कैसा विशाल उद्यम हो रहा है। केवल सफेद रूस के लिए ही नहीं--मध्य-एशिया की अर्ध-सभ्य जातियों में बाढ़ की तरह शिक्षा-विस्तार करते हुए आगे बढ़ रहे हैं-- जिससे साइन्स की अन्तिम फसल तक उन्हें मिले, इसके लिए इतने प्रयत्न हो रहे हैं, जिनका अन्त नहीं। यहाँ थियेटर के अभिनयों में बड़ी जबरदस्त भीड़ होती है, मगर देखने वाले कौन हैं-- किसान और मजूर। कहीं भी इनका अपमान नहीं। इसी अरसे में इनकी दो-एक संस्थाएँ भी देखीं, और सर्वत्र ही मैंने इनके हृदय का जागरण और आत्म-सम्मान-का आनन्द पाया। हमारे देश के सर्वसाधारण की तो बात ही छोड़ दो--इंग्लैंड के मजूर-समाज के साथ तुलना करने से जमीन-आसमान का फर्क नजर आता है। हम श्री निकेतन में जो काम करना चाहते हैं, ये लोग देश-भर में अच्छी तरह उस काम को पूरा कर रहे हैं। हमारे कार्यकर्ता अगर यहाँ आकर कुछ सीख जा सकते, तो बड़ा भारी उपकार होता। रोज़मर्रा में हिन्दुस्तान के साथ यहाँ की तुलना करता हूँ और सोचता हूँ कि क्या हुआ और क्या हो सकता था। मेरे अमेरिकन साथी डाक्टर हैरी टिम्बर्स यहाँ की स्वास्थ्य-व्यवस्था की चर्चा करते हैं, उनकी कार्य पद्धति देखने-से आँखें खुल जाती हैं;--और कहाँ पड़ा है रोग-संतप्त, भूखा, अभागा, निरुपाय भारतवर्ष ! कुछ पहले भारत की अवस्था के साथ यहाँ की साधारण जनता की दशा की बिलकुल समानता थी--इस छोटे से समय में बड़ी तेजी के साथ उसमें कैसा परिवर्तन हुआ है ! और हम अभी तक जड़ता के कीचड़ में ही गले तक डूबे पड़े हैं।

इसमें कोई गलती ही न हो, यह बात मैं नहीं कहता--गहरी गलती है। और वह किसी दिन इन्हें बड़े संकट में डाल देगी। संक्षेप में वह गलती यह है कि शिक्षा-पद्धति को इन्होंने एक साँचा-सा बना डाला है; पर साँचे में ढला मनुष्य कभी स्थायी नहीं हो सकता--सजीव हृदय-तत्व के साथ यदि विद्या-तत्व का मेल न हो, तो या तो किसी दिन साँचा ही टूट जायगा, या मनुष्य का हृदय ही मरकर मुर्दा बन जायगा, या मशीन का पुर्जा बना रहेगा।

यहाँ के विद्यार्थियों में विभाग बनाकर हर विभाग को पृथक-पृथक कार्य सौंपे जाते हैं, छात्रावास की व्यवस्था वे खुद ही करते हैं--किसी विभाग पर स्वास्थ्य-सम्बन्धी भार है, तो किसी पर भोजनादि का। जिम्मेदारी सब उन्हीं के हाथों में है, सिर्फ एक परिदर्शक रहता है। शान्ति-निकेतन में मैंने शुरू से ही इस नियम को चलाने की कोशिश की है, पर वहाँ सिर्फ नियमावली ही बनकर रह गई, कुछ काम नहीं हुआ। उसका मुख्य कारण यही है कि हमने स्वभावतः ही पाठ-विभाग का लक्ष्य बनाया परीक्षा पास करना और सबको उपलक्ष्य मात्र समझा; यानी हो तो अच्छी न हो तो कोई हर्ज नहीं--हमारा आलसी मन जबरदस्त जिम्मेदारी के बाहर काम बढ़ाना नहीं चाहता। इसके सिवा बचपन से ही हम किताबें रटने के आदी हो गये हैं। नियमावली बनाने से कोई लाभ नहीं; नियमों के लिए जो आन्तरिक विषय नहीं, वह उपेक्षित हुए बिना रह ही नहीं सकता। गाँवों की सेवा और शिक्षा-पद्धति के विषय में मैंने जो-जो बातें अब तक सोची हैं, यहाँ उसके अलावा और कुछ नहीं है, है केवल शक्ति, है केवल उद्यम और कार्यकर्ताओं की व्यवस्था-बुद्धि। मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है कि बहुत-कुछ शारीरिक बल पर निर्भर है--मलेरिया से जर्जरित अपरिपुष्ट शरीर को लेकर पूरी तेजी से काम करना असम्भव है--यहाँ इस जाड़े के देश में लोगों की हड्डी मजबूत होने से ही कार्य इतनी आसानी से आगे बढ़ रहा है--सिर गिनकर हमारे देश के कार्यकर्ताओं की संख्या का निर्णय करना ठीक नहीं--उनमें से प्रत्येक को एक-एक आदमी समझना भूल है।

20 सितम्बर, 1930

2

मास्को
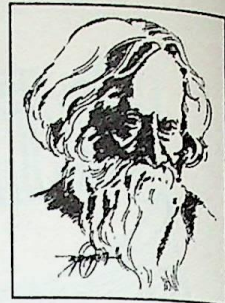
स्थान रूस। दृश्य, मास्को की उपनगरी का एक प्रासाद-भवन। जंगल में से देख रहा हूँ--दिगन्त तक फैली हुई अरण्यभूमि, सब्ज रंग की लहरें उठ रही हैं, कहीं स्याह-सब्ज, कहीं फीका बैंगनी-मिलमा सब्ज, कहीं पीलिया सब्ज--हिलोरें-सी नजर आ रही हैं। वन की सीमा पर बहुत दूर गाँव की झोपड़ियाँ चमक रही हैं। दिन के करीब दस बजे हैं, आकाश में बादल पर बादल धीमी चाल से चले जा रहे हैं, बिना वर्षा का समारोह है, सीधे खड़े पापलर वृक्षों की चोटियाँ हवा से नशे में झूम-सी रही हैं।

मास्को में कई दिन तक जिस होटल में था, उसका नाम है ग्रैंड-होटल। बड़ी भारी इमारत है, पर हालत अत्यन्त दरिद्र; मानो धनाढ्य का लड़का दिवालिया हो गया हो। पुराने जमाने का असबाब है--कुछ बिक चुका है, कुछ फट-उट गया है, जोड़ने और थेगरा लगाने लायक सामर्थ्य नहीं; मैले-कुचैले कपड़े हैं, धोबी से सम्बन्ध नहीं। सारे शहर-भर की यही हालत है--अत्यन्त अपरिछिन्नता के भीतर से भी नवाबी जमाने का चेहरा दिखाई दे रहा है--जैसे फटे कुरते में सोने के बटन लगे हों, जैसे ढाके की धोती में रफू दूर से चमक रहा हो। आहार-व्यवहार में ऐसी सर्वव्यापी निर्धनता यूरोप में और कहीं भी देखने में नहीं आती। इसका मुख्य कारण यह है कि और सब जगह धनी-दरिद्र का भेद होने से धन का पुंजीभूत रूप सबसे ज्यादा बड़ा होकर निगाह के सामने पड़ता है--वहाँ दरिद्र रहता है यवनिका के पीछे नेपथ्य में, जहाँ का सब-कुछ बेसिलसिले का, बिखरा हुआ, गन्दा, अस्वास्थ्यकर है, जहाँ दुर्दशा और बेकारी के घोर अन्धकार के सिवा और कुछ दिखाई ही नहीं देता। परन्तु बाहर से आये हुए हम जहाँ आकर टिकते हैं, वहाँ के जंगले से जो कुछ देखते हैं, हमें सब सुभद्र, सुशोभन और परिपुष्ट ही दिखाई देता है। यह समृद्धि यदि समान रूप से बाँट दी जाती, तो उसी से पता लग जाता कि देश में धन ऐसा कुछ ज्यादा नहीं है, जिससे सबको खाने-पहनने को काफी तौर से जुटता। यहाँ भेद न होने से ही धन का चेहरा बिगड़ गया है; और दीनता में भी कुरूपता नहीं है, है अकिंचनता। देश-भर फैला हुआ ऐसा अधन और कहीं देखा नहीं, इसी से सबसे पहले हमारी दृष्टि उसी पर पड़ती है। अन्य देशों में, जिन्हें हम सर्वसाधारण समझते हैं, यहाँ केवल वे ही रहते हैं।

मास्को की सड़कों पर सब तरह के आदमी चल-फिर रहे हैं। किसी में शान-शौकत नहीं, कोई फीट-फाट नहीं। देखने से मालूम होता है कि मानो अवकाश-भोगी समाज यहाँ से सदा के लिए विदा हो गया है। सभी-कोई अपने हाथ-पैरों से कामधंधा करके ज़िन्दगी बिताते हैं, बाबूगीरी की पालिश कहीं है ही नहीं। डॉ० पेट्रोव नामक एक सज्जन के घर जाने का काम पड़ा। वे यहाँ के एक प्रतिष्ठित आदमी हैं, ऊँचे ओहदेदार। जिस मकान में उनका दफ्तर है, वह पहले एक रईस का मकान था; पर घर में असबाब बहुत ही कम और सजावट की तो बू तक नहीं--बिना कार्पेट के फर्श पर एक कोने में मामूली सी एक टेबिल है। संक्षेप में पितृवियोग में नाई-धोबी-वर्जित अशौच-दशा का-सा रूखा-रूखा भाव है--जैसे बाहर वालों के सामने सामाजिकता की रक्षा करने की उनको कोई गरज़ ही नहीं। मेरे यहाँ जो खाने-पीने की व्यवस्था थी, वह ग्रैंड-होटल नामधारी पान्थावास के लिए

बहुत ही असंगत थी, परन्तु इसके लिए कोई संकोच नहीं, क्योंकि सभी की एक-सी दशा है। मुझे अपने बचपन की बात याद आती है। तब की जीवन-मात्रा और उसका आयोजन अब की तुलना में कितना तुच्छ था, परन्तु उसके लिए हममें से किसी के मन में ज़रा भी संकोच नहीं था; कारण, तब के संसार-यात्रा के आदर्श में बहुत ऊँच-नीच का भाव नहीं था--सभी के घर में एक मामूली-सा चाल-चलन था--फ़र्क पाण्डित्य का, यानी गाने-बजाने और लिखने-पढ़ने आदि का। इसके सिवा लौकिक रीति में पार्थक्य था, अर्थात् भाषा, भाव-भंगी और आचार-विचारगत विशेषत्व था। परन्तु तब जैसा हमारा आचार-विचार था और उपकरण आदि जिस ढंग के थे, उन्हें देखकर तो आजकल के मध्यम श्रेणी के लोग भी अवज्ञा कर सकते थे।

अर्थगत वैषम्य की बड़ाई हमारे यहाँ पाश्चात्य महादेश से आई हैं। किसी समय हमारे देश में जब नई फैशन के आफिस-बिहारी और रोजगारियों के घर में नये रुपयों की आमदनी हुई, तब उन लोगों ने विलायती बाबूगिरी का चलन शुरू कर दिया। तभी से असबाब की तौल से भद्रता की तौल शुरू हुई है, इसीलिए हमारे देश में भी आजकल कुल-शील, रीत-नीति, बुद्धि-विद्या--इन सबके ऊपर आकर दिखाई देती है धन की विशिष्टता। यह विशिष्टता का गौरव ही मनुष्य के लिए सबसे बढ़कर अगौरव है। यही नीचता कहीं हमारी नस में भी न घुस जाय, इसके लिए हमें अत्यन्त सावधान हो जाना चाहिए।

यहाँ आकर जो मुझे सबसे अच्छा लगा है, वह है इस धन गरिमा की नीचता का सर्वथा तिरोभाव। सिर्फ़ इसी वजह से इस देश में जनसाधारण का आत्म-सम्मान क्षण में जाग्रत हो उठा है। किसान-मजदूर सभी कोई असम्मान का बोझ पटककर सिर उठाकर खड़े हो सके हैं। इसे देखकर मैं जितना विस्मित हुआ हूँ, उतना ही आनन्दित भी। मनुष्य-मनुष्य में पारस्परिक व्यवहार कैसा आश्चर्यजनक सहज-स्वाभाविक हो गया है। बहुत सी बातें कहनी हैं, लिखने की कोशिश करूँगा; परन्तु अभी तो मेरे लिए विश्राम करने की ज़रूरत है, इसलिए जंगले के सामने लम्बी आराम कुर्सी पर पैर पसारकर बैठूँगा, पैरों पर कम्बल डाल दूँगा--फिर अगर आँखें मिच ही जावें, तो जबरन उन्हें रोक रखने की कोशिश न करूँगा।

19 सितम्बर, 1930

3

मास्को

बहुत दिन हुए तुम दोनों को पत्र लिखे। तुम दोनों की सम्मिलित चुप्पी से अनुमान होता है कि वे युगल पत्र मुक्ति को प्राप्त हो चुके हैं। ऐसी विनष्टि भारतीय डाकखानों में आजकल हुआ ही करती है, इसीलिए शंका होती है। इसी वजह से आजकल चिट्ठी लिखने को जी नहीं चाहता। कम से कम तुम लोगों की तरफ से उत्तर न मिलने पर मैं चुप रह जाता हूँ। निःशब्द रात्रि के प्रहर लम्बे मालूम होने लगते हैं--उसी तरह 'निःचिट्ठी' का समय भी कल्पना में बहुत लम्बा हो जाता है। इसी से रह-रहकर ऐसा मालूम होने लगता है, मानो लोकान्तर-प्राप्ति हुई हो। मानो समय की गति बदल गई है--घड़ी बजती है लम्बे तालों पर। द्रौपदी के चीर-हरण की तरह मेरा देश जाने का समय जितना ही खिंचता जाता है, उतना ही अनन्त होकर वह बढ़ता ही चला जाता है। जिस दिन लौटूँगा, उस दिन तो निश्चित ही लौटूँगा--आज का दिन जैसे बिलकुल निकट है, वह दिन भी उसी तरह निकट आयेगा, यही सोचकर सान्त्वना पाने की कोशिश कर रहा हूँ।

खैर, कोई बात नहीं, फिलहाल रूस में आया हूँ--न आता तो इस जन्म की तीर्थयात्रा बिलकुल अधूरी ही रह जाती। यहाँ इन लोगों ने जैसा कांड किया है, उस पर भले-बुरे का विचार करने से पहले ही मुँह से निकल पड़ता है--कैसा असम्भव साहस है! 'सनातन' नाम का जो पदार्थ है, वह मनुष्य की नस-नस में मन और प्राणों के साथ हजार-हजार बनकर जकड़ गया है--उसकी कितनी दिशाओं में कितने महल हैं, कितने दरवाजों पर कितने पहरे लग रहे हैं, कितने युगों से कितना टैक्स वसूल करके उसका खजाना पहाड़ बन गया है--इन लोगों ने उसे एकदम जड़ से उखाड़ फेंका है, इनके मन में भय, चिन्ता, संशय कुछ भी नहीं। सनातन की गद्दी झाड़ फेंकी है, नये के लिए एकदम नया आसन बिछा दिया है। पश्चिम महादेश विज्ञान के बूते पर दुःसाध्य को साध कर दिखाता है, देखकर मन तारीफ कर उठता है; मगर यहाँ जो विशाल कार्य चल रहा है, उसे देखकर मैं सबसे ज्यादा विस्मित हुआ हूँ। अगर सिर्फ एक भीषण परिवर्तन या नष्ट-भ्रष्ट का मामला होता, तो उससे कुछ आश्चर्य न होता, क्योंकि नेस्तनाबूद करने की शक्ति इनमें काफी से ज्यादा है; मगर यहाँ देखता हूँ कि ये लोग बहुदूरव्यापी एक खेत बनाकर एक नई ही दुनिया बनाने में कमर कसकर जुट पड़े हैं। देर सही नहीं जाती, क्योंकि दुनिया-भर में इन्हें प्रतिकूलता ही प्रतिकूलता दिखाई दे रही है, सभी इनके विरोधी हैं--जितनी जल्दी हो सके, इन्हें अपने पैरों खड़ा होना ही होगा--हाथों-हाथ प्रमाणित कर देना है कि ये जो कुछ चाहते हैं, वह इनकी भूल नहीं है, 'हजार वर्ष' के विरुद्ध 'दस-पन्द्रह वर्ष' को लड़कर जीतना ही है--प्रतिज्ञा जो की है। अन्य देशों की तुलना में इनका आर्थिक बल बहुत ही थोड़ा है, हाँ, प्रतिज्ञा का जोर दुर्द्धर्ष है।

यह जो क्रान्ति हुई है, उसे रूस में ही होना था--इसके लिए वह बाट जोह रही थी। तैयारियाँ बहुत दिनों से हो रही थीं। प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध सभी तरह के लोगों ने कितने ही दिनों से प्राण दिये हैं, असह्य दुःख सहे हैं। संसार में विप्लव के कारण बहुत दूर तक व्यापक रहते हैं; परन्तु किसी-न-किसी जगह वे घनी-भूत हो उठते हैं, समस्त शरीर का रक्त दूषित होने पर भी कहीं एक कमजोर स्थान पर फोड़ा होकर लाल हो उठता ही है। जिनके पास धन है, जिनके हाथ में शक्ति है, उनके हाथों से निर्धन और अशक्तों ने इसी रूप में ही असह्य अत्याचार सहे हैं। दोनों पक्षों का वही अत्यधिक असाम्य अन्त में प्रलय के बीच में से गुजरकर इस रूस में ही प्रतिकार करने पर उतारू है।

एक दिन फ्रांसीसी-विद्रोह हुआ था इसी असाम्य की ताड़ना से। उस दिन वहाँ के पीड़ित समझ गये थे कि इस असाम्य का अपमान और दुःख विश्वव्यापी है, इसीलिए उस दिन के विप्लव में साम्य, भ्रातृत्व और स्वातंत्र्य की वाणी स्वदेश की लकीर पार करके बाहर भी ध्वनित हो उठी थी; पर वह टिकी नहीं। इनके यहाँ की क्रांति-की वाणी भी विश्ववाणी है। आज संसार में कम से कम इस देश के लोग तो ऐसे हैं, जो स्वजाति के स्वार्थ पर ही समस्त मानव-समाजक-स्वार्थ सोच रहे हैं। यह वाणी स्थायी रूप से टिक सकेगी या नहीं, कोई कह नहीं सकता। परन्तु स्वजाति की समस्या समस्त मानव-जाति की समस्या के अन्तर्गत है, यह बात वर्तमान युग के भीतर की बात है, इसे मानना ही होगा।

इस युग में विश्व-इतिहास की रंगभूमि का पर्दा उठ गया है। अब तक मानो भीतर ही भीतर रिहर्सल हो रहा था--थोड़ा-थोड़ा करके अलग-अलग कमरों में। प्रत्येक देश के चारों तरफ चहार-दीवारी थी। बाहर से आने-जाने का रास्ता बिलकुल था ही नहीं, सो बात नहीं; परन्तु विभागों में बँटे हुए मानव-संसार का जो चेहरा देखा है, आज उसे नहीं देखता। उस दिन दिखाई दे रहा था, एक-एक पेड़, आज

देख रहा हूँ अरण्य। मानव-समाज में यदि भार-सामंजस्य का अभाव हो गया हो, तो वह आज दिखाई दे रहा है संसार के इस पार से लेकर उस पार तक। इस तरह विशाल रूप में दिखाई देना कोई कम बात नहीं है।

टोकिया में जब कोरिया के एक युवक से पूछा था कि तुम्हें कष्ट किस बात का है? तो उसने कहा था--"हमारे कंधों पर महाजनों का राज्य सवार है, हम उनके मुनाफे के वाहन हैं।" मैंने पूछा--"किसी भी कारण से हो, जबकि तुम लोग कमजोर हो, तो यह भार तुम अपने बूते पर कैसे झाड़ फेंक सकते हो?" उसने कहा--"निरुपाय पराधीन जातियाँ" तो आज दुनिया भर में फैली हुई हैं, दुःख उन सबको एक साथ मिला देगा। जो धनी हैं, जो शक्ति सम्पन्न हैं, वे अपने-अपने लोहे के सन्दूकों और सिंहासनों के चारों तरफ अलग खड़े रहेंगे, वे कभी मिल नहीं सकेंगे। कोरिया को बल है--अपने दुःख का बल।"

दुःखी आज समस्त मानव-जाति की रंगभूमि पर अपने को विराट रूप में देख रहा है; यह बड़ी बात है। पहले अपने को अलग देख रहा था, इसी से किसी भी प्रकार अपने शक्तिरूप को नहीं देख सका था--भाग्य के भरोसे सब-कुछ सहता रहता था। आज अत्यन्त निरुपाय भी कम से कम उस स्वर्ग राज्य की कल्पना कर सकता है, जहाँ दुःखी का दुःख दूर होता है, अपमानित का अपमान दूर होता है, यही कारण है कि संसार-भर के दुःखजीवी आज जाग उठे हैं--उन्हें अपनी स्थिति का ज्ञान हो गया है।

जो शक्तिमान हैं, आज जिस शक्ति की प्रेरणा ने, दुखियों में संचालित होकर, उन्हें चंचल बना दिया है, बलशाली उसे बाहर से दबा देना चाहते है--उसके दूतों को घर में घुसने नहीं देते, गला घोंटे दे रहे हैं। परन्तु वास्तव में जिससे उन्हें सबसे अधिक डरना चाहिए था, वह है दुःखी का दुःख। पर उसी की ये हमेशा से अवज्ञा करते आये हैं, और अब यह उनकी आदत पड़ गई है। अपने लाभ के लिए उस दुःख को ये बढ़ाये ही जाते हैं, जरा भी नहीं डरते, अभागे किसान को दुर्भिक्ष के कवल में ठूँसकर फी-सदी दो-तीन सौ का मुनाफा उठाने में इनका हृदय नहीं काँपता; क्योंकि उस मुनाफे को ही ये शक्ति समझते हैं। परन्तु मानव-समाज के लिए सभी तरह की अति में विपत्ति है, उसे बाहर से कभी भी दबाया नहीं जा सकता। अतिशक्ति अति अशक्ति के विरुद्ध हमेशा अपने को बढ़ाये हुए नहीं चल सकती। क्षमताशाली यदि अपनी शक्ति के मद में उन्मत्त न रहता, तो वह सबसे ज्यादा डरता इसी असाम्य की ज्यादती से; क्योंकि असामंजस्य-मात्र ही विश्वविधि के विरुद्ध है।

मास्को से जब निमंत्रण मिला, तब तक बोल्शेविकों के सम्बन्ध में मेरे हृदय में कोई स्पष्ट धारणा नहीं थी। उनके विषय में बराबर उलटी ही बातें सुनता आया था। क्योंकि प्रारम्भ में उनकी जो साधना थी, वह ज़बरदस्ती की थी। मगर अब एक बात देखने में आई, यह कि इनके प्रति यूरोप में जो विरुद्धता थी, वह अब क्षीण होती जा रही है। मैं रूस जा रहा हूँ, सुनकर बहुतों ने मुझे उत्साहित किया है। यहाँ तक कि एक अंगरेज के मुँह से भी इनकी प्रशंसा सुनी है। बहुतों ने कहा है कि ये एक अति आश्चर्यजनक परीक्षा में लगे हुए हैं।

और बहुतों ने मुझे डराया भी था, पर डराने का मुख्य विषय था आराम की कमी-- कहते थे, खाना-पीना सब ऐसा मामूली दर्जे का है कि मुझसे वह सहा नहीं जायेगा। इसके सिवा ऐसी बात भी बहुतों ने कही थी कि मुझे ये लोग जो कुछ दिखायेंगे, उसका अधिकांश बनावटी होगा। यह तो मानना ही पड़ेगा कि मेरी उमर में मुझ जैसे शरीर वाले का रूस में भ्रमण करना दुस्साहस है, परन्तु संसार में जहाँ सबसे बढ़कर ऐतिहासिक यज्ञ का अनुष्ठान हो रहा हो, वहाँ निमंत्रण पाकर भी न जाना मेरे लिए अक्षम्य होता।

इसके सिवा, मेरे कानों में कोरिया के उस युवक की बात गूँज रही थी। मन ही मन सोच रहा था कि धन-शक्ति में दुर्जेय पाश्चात्य सभ्यता के प्रांगण-द्वार पर रूस आज समस्त पाश्चात्य महादेशों के भृकुटि-कुटिल कटाक्ष की उपेक्षा करके निर्धनों के लिए आसन जमाकर शक्ति की साधना करने बैठा है। उसे देखने के लिए मैं न जाऊँगा, तो कौन जायेगा? ये शक्तिशाली की शक्ति को, धनवान के धन को खतरे में डाल देना चाहते हैं, इसमें हमें डर किस बात का? हम क्यों बिगड़ें? हमारी शक्ति ही कितनी है, धन ही कितना है? हम तो संसार के निरन्न--भूखे--निःसहायों मे से हैं।

यदि कोई कहे कि दुर्बलों की शक्ति को जगाने के लिए ही वे कटिबद्ध हुए हैं, तो हम किस मुँह से कहें कि उनकी परछाँही से दूर रहो? सम्भव है, वे भूलते भी हों, पर उनके विपक्षी भूल नहीं करते, यह कौन कह सकता है? किन्तु आज समय आ गया है यह कहने का कि अशक्त की शक्ति अगर आज भी न जागी, तो मनुष्य का निस्तार नहीं, कारण शक्तिमान की 'शक्ति' अत्यन्त प्रबल हो उठी है--अब तक भूलोक उत्तप्त हो उठा था, आज आकाश को अति-पापों ने कलुषित कर दिया है; निरुपाय आज अत्यन्त ही निरुपाय हैं--समस्त सुयोग-सुविधाएँ आज मानव समाज के एक ओर पुंजीभूत हैं, दूसरी ओर सर्वत्र अनन्त निःसहायता ही नज़र आ रही है।

इसके कुछ दिन पहले से ही ढाके के अत्याचार की बात मेरे मन में उधेड़-बुन मचाये हुए थी। कैसी अमानुषिक निष्ठुरता थी वह, पर इंग्लैंड के अखबारों में उस सी कोई खबर नहीं छपी--जबकि यहाँ किसी मोटर-दुर्घटना में दो-एक आदमी मर जाने पर उसकी खबर देश के इस छोर से उस छोर तक फैल जाती है--मगर हमारा धन-प्राण-मान तो बहुत ही सस्ता हो गया है! जो इतने सस्ते हैं, उनके विषय में कभी न्याय या सुविचार हो ही नहीं सकता।

हमारी फरियाद संसार के कानों तक पहुँच ही नहीं सकती, सारी राहें बंद हैं। और मज़ा यह कि हमारे विरुद्ध संसारव्यापी प्रचार करने के उपाय इनके हाथ में पूरे तौर पर हैं। आज कमजोर जातियों के लिए यह भी एक बड़ी भारी ग्लानि की बात है क्योंकि आज ज़माना ऐसा है कि जनश्रुतियाँ-अफवाहें तक सारी दुनिया में फैल जाती हैं; वाक्य-चालना के यंत्र तो सब शक्तिमान जाति के हाथ में हैं, और वे बदनामी और अपयश की ओट में अशक्त जातियों को विलुप्त रखना चाहते हैं। ससार के सामने यह बात काफ़ी तौर से प्रचारित है कि हम हिन्दू-मुसलमान आपस में मार-काट करते ही रहते हैं, इसलिए.... इत्यादि। मगर यूरोप में भी तो किसी दिन साम्प्रदायिक मार-काट होती थी--वह गई किस तरह? केवल एक शिक्षा के प्रचार से ही उसका लोप हुआ है। हमारे देश में भी उसी उपाय से साम्प्रदायिक झगड़ों का लोप हो सकता था; मगर अंग्रेजी शासन को यहां सौ वर्ष से भी अधिक हो गये, पर फी-सदी पाँच आदमियों के भाग्य में ही शिक्षा जुटी, और वह भी शिक्षा नहीं--शिक्षा की विडम्बना-मात्र है!

अवज्ञा के कारणों को दूर करने की कोशिश न करके लोगों के सामने यह साबित करना कि हम अवज्ञा के ही योग्य हैं, यह हमारी अशक्ति का सबसे बड़ा टैक्स है। मनुष्य की समस्त समस्याओं के समाधानों की जड़ है सुशिक्षा। हमारे देश में उसका रास्ता ही बन्द है, कारण, 'कानून और व्यवस्था' ने और किसी उपकार के लिए जगह नहीं रखी, खजाना बिलकुल खाली है। मैंने देश के कामों में शिक्षा के काम को श्रेष्ठ मान लिया था--जनसाधारण को आत्म-शक्ति पर भरोसा रखने
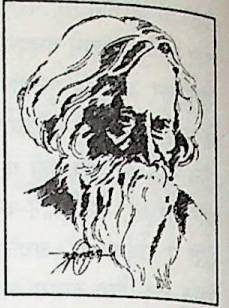
की शिक्षा देने के लिए अब तक मैंने अपनी सारी सामर्थ्य लगा देने की कोशिश की है। इसके लिए सरकार की अनुकूलता को भी मैंने ठुकराया नहीं, और साथ ही कुछ आशा भी रखी है; मगर तुम तो जानते ही हो, कितना फल मिला है। समझ चुका हूँ, यह होने का नहीं। हमारा पाप ज़बरदस्त है, हम अशक्त हैं।

इसीलिए जब सुना कि रूस में सर्वसाधारण की शिक्षा शून्य अंक से एकदम बड़े अंकों में बढ़ गई, तब मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि रुग्ण शरीर भले ही और भी रुग्ण हो जाय, पर रूस तो जाना ही होगा। ये लोग समझ गये हैं कि अशक्त को शक्ति देने का एकमात्र उपाय है शिक्षा--अन्न, स्वास्थ्य, शान्ति--सब कुछ इसी पर निर्भर है। कोरे 'लॉ एण्ड ऑर्डर' से न तो पेट भरता है, न मन। और तुर्रा यह कि उसके दाम चुकाने में सर्वस्व बिक गया।

आधुनिक भारत की आवहवा में पला हूँ, इसी से अब तक मेरी यह दृढ़ धारणा कि लगभग तीस करोड़ मूर्खों को विद्या-दान करना असम्भव ही समझो, इसके लिए शायद सिवा अपने दुर्भाग्य के और किसी को दोष नहीं दिया जा सकता। जब सुना कि यहाँ किसान और मजदूरों में शिक्षा का प्रचार बड़ी तेजी से हो रहा है, मैंने सोचा कि वह शिक्षा मामूली होगी--ज़रा सा पढ़-लिख लेने और जोड़-बाकी कर लेने-भर की--सिर्फ गिनने में ही उसका गौरव है, पर इतना क्या थोड़ा है। हमारे देश में इतना ही हो जाता, तो राजा को आशीर्वाद देकर देश लौटा आता। परन्तु यहाँ देखा कि खूब अच्छी शिक्षा है--आदमी को आदमी बना देने लायक, नोट रटकर एम० ए० पास करने की-सी नहीं।

परन्तु ये सब बातें और ज़रा विस्तार से लिखना चाहता हूँ, आज तो अब समय नहीं रहा। आज ही शाम को बर्लिन की ओर रवाना होना है। उसके बाद तीसरी अक्तूबर को अटलैण्टिक पर यात्रा करूँगा--मियाद कितने दिन की, सो आज भी निश्चित नहीं कह सकता।

मगर शरीर और मन हामी नहीं भरता--फिर भी अबकी इस मौके को छोड़ने की हिम्मत नहीं पड़ती--अगर कुछ बटोरकर ला सका, तो जिन्दगी के जो कुछ दिन बाकी हैं, उनमें आराम कर सकूँगा। नहीं तो, दिन पर दिन मूलधन खाकर अन्त में बत्ती बुझाकर विदा लेना, यह भी बुरा प्लैन नहीं है--थोड़ा सा उच्छिष्ट बखेर जाने से जगह गंदी हो जायगी। पूँजी ज्यों-ज्यों घटती जाती है, त्यों-त्यों मनुष्य की आन्तरिक दुर्बलता प्रकट होती जाती है--उतनी ही शिथिलता, झगड़ा-टंटा, एक-दूसरे के विरुद्ध कानाफूसी बढ़ती जाती है। उदारता अधिकतः भरे-पेट पर निर्भर होती है। जहाँ कहीं यथार्थ सिद्धि का चेहरा दिखाई देता है, वहीं देखते हैं कि वह सिर्फ रुपये देकर बाजार में खरीदने की वस्तु नहीं--दरिद्रता का खेत ही उस सोने की फसल को देता है। यहाँ की शिक्षा व्यवस्था में जैसा अथक उद्यम, जैसा साहस, जैसी बुद्धि-शक्ति और जैसा आत्मोत्सर्ग देखा, उसका थोड़ा अंश भी अगर हममें होता तो कृतार्थ हो जाता। आन्तरिक शक्ति और अकृत्रिम उत्साह जितना कम होता है, रुपये की खोज भी उतनी ही अधिक करनी पड़ती है।

(25 सितम्बर, 1930)

4

मास्को से सोवियत की व्यवस्था के सम्बन्ध में दो बड़ी-बड़ी चिटिठ्याँ लिखी थीं। वे कब मिलेंगी और मिलेंगी भी या नहीं, मालूम नहीं।

बर्लिन आकर एक साथ तुम्हारी दो चिटिठ्याँ मिलीं। घोर वर्षा की चिट्ठी हैं ये, शान्ति-निकेतन के आकाश में शालवन के ऊपर मेघ की छाया और जल की धारा में सावन हिलोरें ले रहा है-- यह चित्र मानसपट पर खिंचते ही मेरा चित्त कैसा उत्सुक हो उठता है, तुमसे तो कहना ही फिजूल है।

परन्तु अबकी जो रूस का चक्कर लगाया, तो वह चित्र मन से धुल-पुछ गया। बार-बार मैं अपने यहाँ के किसानों के कष्टों की बात सोच रहा हूँ। अपने यौवन के आरम्भ काल से ही बंगाल के ग्रामों के साथ मेरा निकट परिचय है। तब किसानों से रोज मेरी भेंट-मुलाकात होती थी--उनकी फरियादें मेरे कानों तक पहुँचती थीं। मैं जानता हूँ कि उनके समान निःसहाय जीव बहुत थोड़े ही होंगे; वे समाज के अँधेरे तहखाने में पड़े हैं, वहाँ ज्ञान का उजेला बहुत ही कम पहुँचता है, और जीवन की हवा तो जाती ही नहीं, समझ लो।

उस ज़माने में जो लोग देश की राजनीति के क्षेत्र में अखाड़ा जमाये हुए थे, उनमें से ऐसा कोई भी न था, जो ग्रामवासियों को भी देश का आदमी समझता हो। मुझे याद है, पबना-कान्फ्रेन्स के समय मैंने उस समय के एक बहुत बड़े-नेता से कहा था कि हमारे देश की राष्ट्रीय उन्नति को यदि हम सत्य या वास्तविक बनाना चाहते हैं, तो सबसे पहले हमें इन नीचे लोगों को आदमी बनाना होगा। उन्होंने उस बात को इतना तुच्छ समझकर उड़ा दिया कि मैं स्पष्ट समझ गया कि हमारे देश-नेताओं ने 'देश' नाम के तत्त्व को विदेशी पाठशाला से समझा है; अपने देश के मनुष्यों की वे हृदय में अनुभूति नहीं करते। ऐसी मनोवृत्ति से लाभ सिर्फ़ इतना ही है कि 'हमारा देश विदेशियों के हाथ में है--' इस बात पर हम पश्चाताप कर सकते हैं, उत्तेजित हो सकते हैं, कविता लिख सकते हैं, अखबार चला सकते हैं; मगर काम तो तभी से शुरू होता है, जब हम अपने देशवासियों को अपना आदमी कहने के साथ ही साथ उसका दायित्व भी स्वीकार कर लें।

तब से बहुत दिन बीत गये। उस पबना-कान्फ्रेन्स में ग्राम-संगठन के विषय में मैंने जो कुछ कहा था, उसकी प्रतिध्वनि बहुत बार सुनी है--सिर्फ शब्द नहीं, ग्राम-हित के लिए अर्थ भी संग्रह हुआ है; परन्तु देश की जिस ऊपरी मंजिल में शब्दों की आवृत्ति हुई है, वहीं वह अर्थ भी घूम-फिरकर विलुप्त हो गया है; समाज के जिस गहरे खंदक में गाँव डूबे हुए हैं, वहाँ तक उसका कुछ अंश भी नहीं पहुँचा।

एक दिन मैंने पद्मा की रेती पर बोट लगाकर साहित्य-चर्चा की थी। मन में ऐसी धारणा थी कि लेखनी से भाव की खान खोदूँगा, यही मेरा एकमात्र कार्य है, और किसी काम के मैं लायक ही नहीं। मगर जब यह बात कह-सुनकर किसी को समझा न सका कि हमारे स्वायत्त शासन या स्वराज्य का क्षेत्र है देहातों में, और उसका आन्दोलन आज से ही शुरू करना चाहिए, तब कुछ देर के लिए मुझे कलम कान में खोंसकर यह बात कहनी ही पड़ी कि 'अच्छा, मैं ही इस काम में जुटूँगा।' इस संकल्प में मेरी सहायता करने के लिए सिर्फ एक आदमी मिला था--वे हैं काली मोहन, शरीर उनका रोग से जीर्ण है, दोनों वक्त उन्हें बुखार आता है, और उस पर भी पुलिस के रजिस्टर में उनका नाम चढ़ चुका है।

उसके बाद, फिर वह इतिहास दुर्गम ऊबड़-खाबड़ मार्ग से थोड़ा सा तोशा लेकर चला है। मेरा अभिप्राय था--किसानों को आत्म-शक्ति में दृढ़ करना ही होगा। इस विषय में दो बातें सदा ही मेरे हृदय में आन्दोलित होती रही हैं--जमीन पर अधिकार न्यायतः जमींदार का नहीं, बल्कि किसान का होना चाहिए; दूसरे समवाय नीति के अनुसार खेती के खेत सब एक साथ बिना मिलाये किसानों की कभी उन्नति हो ही नहीं सकती। मान्धाता के जमाने का हल लेकर मेड़दार छोटे से खेत में फसल पैदा करना और फूटी गागर में पानी लाना--दोनों एक ही बात है।

किन्तु ये दोनों ही मार्ग दुरूह हैं। पहले तो किसानों को जमीन का अधिकार

देने से वह स्वत्व दूसरे ही क्षण महाजन के हाथ में चला जायगा, इससे उनके कष्टों का भार बढ़ने के सिवा घटेगा नहीं। खेतों को एक साथ मिलाकर खेती करने के विषय में मैंने एक दिन किसानों को बुलाकर इसकी चर्चा की थी। सिलाइदह में मैं जिस मकान में रहता था, उसके बरामदे से एक के बाद एक दिगन्त तक खेत ही खेत दिखाई देते थे। खूब सबेरे ही उठकर हल-बैल लिये एक-एक किसान आता और अपना छोटा सा खेत जोतकर घर लौट जाता। इस तरह बँटी हुई शक्ति का कितना अपव्यय होता है, सो मैंने अपनी आँखों से देखा है। किसानों को बुलाकर उन्हें जब सब खेतों को एक साथ मिलाकर मशीन के हल से खेती करने की सहूलियतें मैंने समझाईं, तो उन लोगों ने उसे उसी समय मान लिया। मगर कहा--'हम लोग कम अकल हैं। इतना भारी काम कैसे सम्हालेंगे ?' अगर मैं कह सकता कि उसका भार मैं लेने को तैयार हूँ, तो फिर कोई झंझट ही न रहती; पर मुझमें इतनी सामर्थ्य कहाँ ? ऐसे काम के चलाने का भार लेना मेरे लिये असम्भव है--वह शिक्षा, वह शक्ति मुझमें नहीं है।

परन्तु यह बात बराबर मेरे हृदय में जाग्रत रही है। जब बोलपुर में को-आपरेटिव की व्यवस्था का भार विश्व भारती के हाथ में आया, तब फिर एक दिन आशा हुई थी कि अबकी बार शायद मौका मिल जायगा। जिनके हाथ में आफिस का भार है, उनकी उमर कम है, मुझसे उनकी बुद्धि कहीं किफायती और शिक्षा बहुत ज्यादा है। परन्तु हमारे युवक ठहरे स्कूल-सिखुए, और किताब-रट्टू है उनका हृदय। हमारे देश में जो शिक्षा प्रचलित है, उससे हममें विचार करने की शक्ति, साहस और काम करने की दक्षता नहीं रहती, किताबी बोलियों की पुनरावृत्ति करने पर ही छात्रों का उद्धार अवलम्बित है।

बुद्धि की इस पल्लवग्राहिता के सिवा हमारे अंदर और भी एक विपत्ति का कारण मौजूद है। स्कूल में जिन्होंने पाठ कंठ किये हैं, और स्कूल के बाहर रहकर जिन्होंने पाठ कंठ नहीं किये, इन दोनों में श्रेणी-विभाग हो चुका है--शिक्षित और अशिक्षित का। स्कूल में पढ़े मन का आत्मीयता-ज्ञान पोथी-पढ़ों के पाठ के बाहर नहीं पहुँचा सकता। जिन्हें हम गँवार-किसान कहते हैं, पोथी के पन्नों का पर्दा भेदकर उन तक हमारी दृष्टि नहीं जाती, वे हमारे लिए अस्पष्ट हैं। इसलिए वे हमारे सब प्रयत्नों के बाहर रहकर स्वभावतः ही अलग छूट जाते हैं। यही कारण है कि को-आपरेटिव या सहयोग समितियों के जरिये अन्य देशों में जब समाज की निम्न श्रेणी में एक सृष्टि का कार्य चल रहा है, तब हमारे देश में दबे-हाथों रुपये उधार देने की सिवा आगे और कुछ काम नहीं बढ़ सका। क्योंकि उधार देना, उसका सूद जोड़ना और रुपए वसूल करना अत्यन्त भीरु हृदय के लिए भी सहज काम है, बल्कि यह कहना चाहिए कि भीरू हृदय के लिए ही सहज है, उसमें यदि गिनती की भूल न हो तो कोई आशंका ही नहीं।

बुद्धि का साहस और जनसाधारण के प्रति सहानुभूति--इन दोनों के अभाव से ही दुःखी का दुःख दूर करना हमारे देश में इतना कठिन काम हो गया है; परन्तु इस अभाव के लिए किसी को दोष नहीं दिया जा सकता। क्योंकि क्लार्क-फैक्टरी बनाने के लिए ही एक दिन हमारे देश में वणिक-राज्य द्वारा स्कूल खोले गये थे। टेबिल-लोक में मालिक के साथ सायुज्य (अभेद) प्राप्त करने में ही हमारी सद्गति है। इसीलिए उम्मेदवारी में अकृतार्थ होते ही हमारी विद्या-शिक्षा व्यर्थ हो जाती है। इसीलिए हमारे देश में प्रधानतः देश का काम कांग्रेस के पंडाल और अखबारों की लेखमाला में शिक्षित सम्प्रदाय के वेदना-उदघोषणा में ही चक्कर काट रहा था। हमारे कलम से बँधे हाथ देश को बनाने के काम में आगे बढ़ ही न सके।

मैं भी तो भारत की ही आबहवा में पला हूँ, इसीलिए जोर के साथ इस बात को कयास में लाने की हिम्मत न कर सका कि करोड़ों जनसाधारण की छाती पर से अशिक्षा और असामर्थ्य का पहाड़ उतारना सम्भव है। अब तक यही सोचता रहा हूँ कि थोड़ा बहुत कुछ किया जा सकता है या नहीं। सोचा था, समाज का एक चिरबाधा-ग्रस्त जो नीचे का अंश है, जहाँ कभी भी सूर्य का प्रकाश पूर्ण रूप से नहीं पहुँचाया जा सकता, वहाँ कम से कम तेल की बत्ती जलाने के लिए कमर कसकर जुट जाना चाहिये। परन्तु साधारणतः उतना कर्तव्य-बोध भी लोगों के दिल पर काफी जोर के साथ धक्का नहीं लगाता है; क्योंकि जिन्हें हम अँधेरे में देख ही नहीं सकते, उनके लिए कुछ भी किया जा सकता है--यह बात भी साफ तौर से हमारे मन में नहीं आती।

इस तरह के स्वल्प साहसी हृदय को लेकर ही रूस में आया था; सुना था--यहाँ किसान और मजदूरों में शिक्षा-प्रचार का कार्य बहुत ज्यादा बढ़ गया है और बढ़ता ही जाता है। सोचा था, इसके मानी यह हैं कि यहाँ ग्रामीण पाठशालाओं में 'शिशु-शिक्षा' का पहला भाग या बहुत हो तो दूसरा भाग पढ़ाने का कार्य संख्या में हमारे देश से अधिक हुआ है। सोचा था, उनकी सांख्यिक सूची उलट-फेरकर देख सकूँगा कि वहाँ के कितने किसान दस्तखत कर सकते हैं और कितनों ने 10 तक पहाड़े याद कर लिये हैं।

याद रखना, यहाँ जिस क्रान्ति ने जार का शासन लुप्त किया है, वह हुई है 1917 में ! अर्थात् उस घटना को हुए सिर्फ तेरह वर्ष हुए हैं। इसी बीच में उन्हें क्या घर और क्या बाहर, सर्वत्र प्रचंड विरोध के साथ युद्ध करना पड़ा है। ये अकेले हैं, और इनके ऊपर एक बिलकुल टूटे-फूटे राष्ट्र की व्यवस्था का भार है। मार्ग इनका पूर्व दुःशासन के कूड़े-करकट की गंदगी से भरा पड़ा है--दुर्गम है। जिस आत्म-क्रान्ति के प्रबल तूफान के समय इन लोगों ने नवयुग के घाट के लिए यात्रा की थी, उस क्रान्ति के प्रच्छन्न और प्रकाश्य सहायक थे इंग्लैंड और अमेरिका। आर्थिक अवस्था या पूंजी इनके पास बहुत ही थोड़ी है--विदेश के महाजनों की गद्दियों में इनकी क्रेडिट नहीं है। देश में इनके कल-कारखाने काफी तादाद में न होने से अर्थोपार्जन में ये शक्तिहीन हैं, इसलिये किसी तरह पेट का अन्न बेचकर इनका उद्योग पर्व चल रहा है। इस पर राष्ट्र व्यवस्था में सबसे बढ़कर जो अनुत्पादन विभाग--सेना विभाग है, उसके पूरी तरह से सुदक्ष रखने का अपव्यय भी इनके लिए अनिवार्य है। क्योंकि आधुनिक महाजनी युग की समस्त राष्ट्र-शक्तियाँ इनकी शत्रु हैं, और उन सबों ने अपनी-अपनी अस्त्रशालाएँ छत तक भर रखी हैं।

याद है, इन्हीं लोगों ने लीग-आफ्-नेशन्स में अस्त्र-निषेध का प्रस्ताव भेजकर कपट शान्ति-इच्छुकों के मन को चौंका दिया था। क्योंकि अपना प्रताप बढ़ाना या उसकी रक्षा करना सोवियतों का लक्ष्य नहीं है--इनका उद्देश्य है सर्वसाधारण की शिक्षा, स्वास्थ्य, अन्न और जीवन की अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के उपाय, उपकरणों को प्रकृष्ट प्रणाली से व्यापक बना देना, इन्हीं के लिए निरुपद्रव शक्ति की सबसे अधिक आवश्यकता है। परन्तु तुम तो जानते ही हो, लीग-आफ-नेशन्स के सभी पहलवान गुण्डई के बहु-विस्तृत उद्योग को किसी तरह भी बंद नहीं करना चाहते, महज इसलिए कि शांति की जरूरत है, सब मिलकर पुकार मचाते हैं। यही कारण है कि सभी साम्राज्य वाले देशों में अस्त्र-शस्त्र के कँटीले जंगल की फसल अन्न की फसल से आगे बढ़ती जा रही है। इसी बीच में कुछ समय तक रूस में बड़ा भारी दुर्भिक्ष भी पड़ा था--कितने आदमी मरे, इसका ठीक नहीं। उसकी ठेस
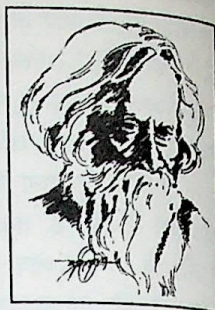
सहकर भी सिर्फ आठ वर्ष से नये युग को गढ़ने का काम कर रहे हैं--बाहर के उपकरणों का अभाव होते हुए भी।

यह मामूली काम नहीं है--यूरोप और एशिया-भर में बड़ा भारी इनका राष्ट्र क्षेत्र है। प्रजा मंडली में इतनी विभिन्न जातियाँ हैं कि भारत में भी उतनी न होंगी। उनकी भूप्रकृति और मानव प्रकृति में परस्पर पार्थक्य बहुत ज्यादा है। वास्तव में इनकी समस्या बहु-विचित्र जातियों से भरी हुई है, मानो यह बहु-विचित्र अवस्थापन्न विश्व-संसार की समस्या का ही संक्षिप्त रूप हो।

तुमसे पहले ही कह चुका हूँ कि बाहर से जब मास्को शहर देखा, तो यह यूरोप के और सब धनी शहरों की तुलना में अत्यन्त मलिन मालूम हुआ। सड़कों पर जो लोग चल-फिर रहे हैं, उनमें एक भी शौकी नहीं, सारा शहर मामूली रोजीना के पहनने के कपड़े पहने हुए है। रोजीना के कपड़ों में श्रेणी भेद नहीं होता, श्रेणी भेद होता है शौकीनी पोशाक में। यहाँ साज-पोशाक में सब एक हैं। सब मज़दूरों के ही मुहल्ले हैं--जहाँ निगाह दौड़ाओ वहाँ-वहाँ ही ये हैं। यहाँ मज़दूरों और किसानों का कैसा परिवर्तन हुआ है, उसे देखने के लिए पुस्तकालय में जाकर किताब खोलने अथवा गाँवों या बस्ती में जाकर नोट करने की जरूरत नहीं पड़ती। जिन्हें हम 'भद्र' या 'शरीफ आदमी' कहते हैं, वे कहाँ हैं, सवाल तो यह है।

यहाँ की साधारण जनता भद्र या शरीफ आदमियों के आवरण की छाया से ढकी नहीं है; जो युग-युग में नेपथ्य में थे, वे आज बिलकुल खुले मैदान में आ गये हैं। ये पहली पोथी पढ़कर सिर्फ छापे के हरूफ ढूंढ़ते फिरते होंगे--मेरी इस भूल का सुधार बहुत जल्दी हो गया। इन्हीं कई सालों में ये मनुष्य हो गये हैं।

अपने देश के किसान-मजूरों की याद उठ आई। 'अलिफलैला' के जादूगर की करामात-सी मालूम होने लगी। दस ही वर्ष पहले की बात है, यह लोग हमारे देश के मजदूरों की तरह ही निरक्षर, निःसहाय और निरन्न थे, हमारे ही समान अन्ध-संस्कार और धर्म-मूढ़ता इनमें मौजूद थी। दु:ख में, आफत-विपत में देवता के द्वार पर इन्होंने सिर पटके हैं। परलोक के भय से पंडा-पुरोहितों के हाथ और इहलोक के भय से राजपुरुष, महाजन और जमींदारों के हाथ अपनी बुद्धि को ये बन्धक रख चुके थे। जो इन्हें जूतों से मारते थे, उन्हीं के वे ही जूते साफ करना इनका काम था। हजारों वर्ष से इनकी प्रथा-पद्धतियों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ; यान और वाहन, चरखा ओर कोल्हू-- सब बाबा आदम के जमाने के चले आते थे; इनसे हाल के हथियार से हाथ लगाने को कहा जाता था; तो ये बिगड़ खड़े होते थे। हमारे देश के तीस करोड़ आदमियों पर जैसे भूतकाल का भूत सवार है, उसने जैसे उनकी आँखें मींच रखी हैं--इन लोगों का भी ठीक वैसा ही हाल था। इन्हीं कई वर्षों में इन्होंने उस मूढ़ता और अक्षमता के पहाड़ को हिला दिया तो किस तरह हिलाया !--इस बात से अभागे भारतवासियों को जितना आश्चर्य हुआ है, उतना और किसको होगा बताओ ? और मजा यह कि जिस समय यह परिवर्तन चल रहा था, उस समय हमारे देश का बहु-प्रशंसिक 'लॉ एण्ड ऑर्डर' (कानून और व्यवस्था) नहीं था।

तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ कि यहाँ के सर्वसाधारण की शिक्षा का चेहरा देखने के लिए मुझे दूर नहीं जाना पड़ा, या स्कूल के इन्सपेक्टर की तरह हिज्जे पूछते समय यह नहीं देखना पड़ा, कि ये "राणा" और "वाणी" में मूर्द्धन्य 'ण' लगाते हैं या दन्ती। एक दिन शाम को मास्को शहर में एक मकान पर गया। वह किसानों के रहने का घर था। गाँव से जब किसी काम से वे शहर में आते हैं, तो सस्ते में उसी मकान में उन्हें रहने दिया जाता है। उन लोगों से मेरी बातचीत हुई थी। उस तरह की बातें जब हमारे देश के किसानों से होंगी, उस दिन हम साइमन-कमीशन का जवाब दे सकेंगे।

और कुछ नहीं, स्पष्ट दिखाई देता है कि सभी कुछ हो सकता था, मगर हुआ नहीं--न सही, हमें मिला है 'लॉ एण्ड ऑर्डर'। हमारे यहाँ साम्प्रदायिक लड़ाइयाँ होती रहती हैं, और इसके लिए हमारी ख़ास तौर से बदनामी की जाती है--यहाँ भी यहूदी सम्प्रदाय के साथ ईसाई सम्प्रदाय की लड़ाई हमारे ही देश के आधुनिक उपसर्ग की तरह अत्यन्त कुत्सित और बड़े ही जंगली ढंग से होती थी--शिक्षा और शासन के द्वारा एकदम जड़ से उसका नाश कर दिया गया है। कितनी ही बार मैंने सोचा है कि साइमन-कमीशन को भारत में जाने से पहले एक बार रूस घूम जाना उचित था।

तुम जैसी भद्र-महिला को साधारण भद्रता-पूर्ण चिट्ठी न लिखकर इस तरह की चिट्ठी क्यों लिख रहा हूँ, इसका कारण सोचोगी तो समझ जाओगी कि देश की दशा ने मेरे मन में आन्दोलन मचा रखा है। जलियांवालाबाग के उपद्रव के बाद और भी एक बार मेरे मन में ऐसी अशान्ति हुई थी। ढाके के उपद्रव के बाद आज फिर उसी तरह दुखित हो रहा हूँ। उस घटना पर सरकारी पलस्तर चढ़ा है, मगर इस तरह के सरकारी पलस्तर की क्या कीमत है, सो राजनीतिज्ञ समझते हैं। ऐसी घटना अगर सोवियत रूस में होती, तो किसी भी पलस्तर से उसका कलंक नहीं ढक सकता था। सुधीन्द्र--हमारे देश के राष्ट्रीय आन्दोलन पर जिसकी कभी भी किसी तरह की श्रद्धा नहीं थी-- उसने भी अबकी बार मुझे ऐसी चिट्ठी लिखी है, जिससे पता चलता है कि सरकारी धर्मनीति के प्रति धिक्कार आज हमारे देश में कहाँ तक बढ़ गया है। खैर, आज तुम्हारी चिट्ठी अधूरी ही रही--कागज और समय खतम हो आया, दूसरी चिट्ठी में इसके अपूर्ण अंश को पूरा करूँगा।

(28 सितम्बर, 1930)

5

बर्लिन, जर्मनी

मास्को से तुम्हें मैं एक बड़ी चिट्ठी में रूस के बारे में अपनी धारणा लिख चुका हूँ। वह चिट्ठी अगर तुम्हें मिल गई होगी, तो रूस के बारे में कुछ बातें तुम्हें मालूम हो गई होंगी।

यहाँ किसानों की सर्वांगीण उन्नति के लिए कितना काम किया जा रहा है, उसी का थोड़ा सा वर्णन लिखा था। हमारे देश में जिस श्रेणी के लोग मूक और मूढ़ हैं, जीवन के सम्पूर्ण सुयोगों से वंचित होकर जिनका मन भीतर और बाहर की दीनता से बैठ गया है, यहाँ उसी श्रेणी के लोगों से जब मेरा परिचय हुआ, तब मैं समझ सका कि समाज के अनादर से मनुष्य की चित्त-सम्पद कहाँ तक लुप्त हो सकती है-- कैसा असीम उसका अपव्यय है, कैसा निष्ठुर उसका अविचार है !

मास्को में एक कृषि-भवन देखने गया था। यह संस्था उनकी क्लब-सी है। रूस के समस्त छोटे-बड़े शहरों और ग्रामों में इस तरह के भवन बने हुए हैं। इन सब स्थानों में कृषि-विद्या, समाज तत्त्व आदि विषयों पर उपदेश दिये जाते हैं; जो निरक्षर हैं, उनके लिए पढ़ने-लिखने का इन्तज़ाम किया जाता है, और खास-खास क्लासों में किसानों को वैज्ञानिक ढंग से खेती करने की शिक्षा दी जाती है--हर तरह से यह विषय उन्हें समझाया जाता है। इसी तरह प्रत्येक भवन प्राकृतिक और सामाजिक--सब तरह के शिक्षणीय विषयों का म्यूजियम है। इसके अलावा इनमें किसानों को और भी सब तरह के उपयोगी परामर्श दिये जाने की व्यवस्था है।

किसान जब किसी काम से गाँव से शहर में आते हैं, तो बहुत ही कम खर्चे

में कम से कम तीन सप्ताह तक इस तरह के मकानों में रह सकते हैं। इस बहु-व्यापक संस्था के द्वारा सोवियत सरकार ने ऐसे किसानों के, जो किसी समय बिलकुल निरक्षर थे--चित्त को उद्‌बोधित करके उनमें समाजव्यापी नया जीवन ला देने की प्रशंसनीय नींव डाल दी है।

भवन में घुसते ही क्या देखता हूँ, कोई भोजनागार में बैठे भोजन कर रहे हैं, तो कोई पाठागार में बैठे अखबार पढ़ने में लगे हुए हैं। ऊपर के एक कमरे में जाकर मैं बैठा--वहाँ सब आकर इकट्ठे हुए। उनमें अनेक स्थानों के आदमी थे, कोई बहुत दूर का है, तो कोई नजदीक का। उनका स्वभाव सरल और स्वाभाविक है, किसी तरह संकोच नहीं।

पहले स्वागत और परिचय के लिए भवन के परिदर्शक ने कुछ कहा--मैंने भी कुछ कहा। उसके बाद उन लोगों ने मुझसे प्रश्न करना शुरू कर दिया।

पहला प्रश्न, उनमें से एक ने किया--"भारत में हिन्दू-मुसलमानों में झगड़ा क्यों होता है ?"

मैंने कहा--"जब मेरी कम उम्र थी, कभी इस तरह की बर्बरता नहीं देखी। उस समय गांव और शहर--सर्वत्र दोनों संप्रदायों में सौहार्द्र की कमी नहीं थी। परस्पर एक-दूसरे के क्रियाकांडों में भाग लिया करते थे, जीवन-यात्रा के सुख-दुखों में दोनों एक थे। अब जो बीच-बीच में कुत्सित घटनाएँ होती दिखाई देती हैं, वे देश के राष्ट्रीय आन्दोलन के बाद से शुरू हुई हैं। परन्तु पड़ोसियों में परस्पर इस प्रकार के अमानुषिक दुर्व्यवहार के ताजे कारण चाहे जो हों, इसका मूल कारण है सर्वसाधारण में अशिक्षा। जितनी शिक्षा के द्वारा इस प्रकार की दुर्बुद्धि दूर हो सकती है, उतनी शिक्षा का प्रचलन आज तक वहाँ नहीं हुआ। तुम्हारे यहाँ जो कुछ देखा, उससे मैं विस्मित हो गया हूँ।"

प्रश्न--"तुम तो लेखक हो, अपने यहाँ के किसानों के बारे में कुछ लिखा है ? भविष्य में उनकी क्या गति होगी ?"

उत्तर--"सिर्फ लिखा ही नहीं, उनके लिए मैंने काम भी छेड़ दिया है। अकेले से जितना सम्भव है, उतने से उनकी शिक्षा का काम चलाता हूँ, गाँवों की उन्नति के लिए उनकी सहायता करता हूँ। परन्तु तुम्हारे यहाँ जो शिक्षा का विराट आयोजन थोड़े ही समय में हुआ है, उसकी तुलना में मेरा वह उद्योग बहुत ही मामूली है।"

प्रश्न--"हमारे यहाँ जो किसानों के संगठन का उद्योग हो रहा है, उस संबन्ध में तुम्हारा क्या मत है ?"

उत्तर--"मत देने योग्य मेरा अनुभव नहीं हुआ है, मैं तुम्हीं लोगों से सुनना चाहता हूँ। मैं यह जानना चाहता हूँ कि इसमें तुम लोगों की इच्छा के विरुद्ध कोई जबरदस्ती की जाती है या नहीं ?"

प्रश्न--"क्या भारत में साधारणतः सब कोई यहाँ के संगठन तथा अन्य सब उद्योगों के विषय में कुछ जानकारी नहीं रखते ?"

उत्तर--"जानने लायक शिक्षा बहुत कम लोगों में है। इसके सिवा तुम्हारे यहाँ के समाचार कितने ही कारणों से दब जाया करते हैं। और जो कुछ उनके कानों तक पहुँचता है, वह सब विश्वास योग्य नहीं।"

प्रश्न--"हमारे यहाँ ये जो किसानों के लिए भवनों की व्यवस्था है, इस सम्बन्ध में क्या पहले आप कुछ नहीं जानते थे ?"

उत्तर--"तुम लोगों के हित के लिए क्या-क्या हो रहा है, यह मैंने मास्को में आकर देखा और जाना। कुछ भी हो, अब मेरे प्रश्नों का उत्तर तुम लोग दो।--किसान प्रजा के लिए इस संगठन के बारे में तुम्हारा क्या मत है, तुम्हारी इच्छा क्या है ?"

एक युवक किसान, जो यूक्रेन प्रदेश से आया है, बोला--"दो वर्ष हुए एक एकत्रित (संगठित) कृषि-क्षेत्र की स्थापना हुई है, मैं उसमें काम करता हूँ। इस खेती में फलों की फसल के लिए बाग हैं, वहाँ से फल और साग-सब्जी सब कारखानों को भेजी जाती है। वहाँ वह टीन के डब्बों में पैक होती है। इसके सिवा बड़े-बड़े खेत हैं, वहाँ गेहूँ की खेती होती है। आठ घंटे हमें काम करना पड़ता है। हर पाँचवें दिन हमारी छुट्टी रहती है। हमारे पड़ोसी जितने भी किसान अपनी खेती आप करते हैं, उनकी अपेक्षा हमारे यहाँ कम से कम दूनी फसल होती है।"

"लगभग प्रारम्भ में ही, हमारी संगठित खेती में डेढ़ सौ किसानों के खेत मिलाये गये थे। 1929 में आधे किसानों ने अपने खेत वापस ले लिये। उसकी वजह यह हुई कि सोवियत कम्यून दल के प्रधानमंत्री स्टैलिन के उपदेशानुसार हमारे कर्मचारियों ने ठीक तरह से काम नहीं किया। उनका मत है कि समष्टिवाद (कम्यूनिज्म) की मूल नीति है समाज का समष्टि रूप से स्वेच्छाकृत संगठन। परन्तु बहुत जगह ऐसा हुआ कि कार्यकर्त्ता इस बात को भूल गये, जिससे शुरूआत में बहुत से किसानों ने संगठित कृषि-समन्वय को छोड़ दिया। उसके बाद क्रमशः उनमें से चौथाई आदमी फिर आकर सम्मिलित हुए। अब हमें पहले से भी अधिक बल मिल गया है। अब हम संगठित किसानों के रहने के लिए नए मकान हैं, नई भोजनशालाएँ हैं और नए स्कूल खुल गये हैं।"

इसके बाद साइबेरिया की एक किसान-स्त्री ने कहा--"संगठित खेती के काम में मैं लगभग दस वर्ष से हूँ। एक बात याद रखें, संगठित कृषि-क्षेत्र (कलेक्टिव फार्म) के साथ नारी-उन्नति के उद्यम का घनिष्ठ संबन्ध है। आज दस वर्ष के अन्दर यहाँ किसान स्त्रियों में काफी परिवर्तन हो गया है। अपने पर उन्हें बहुत कुछ भरोसा हो गया है। जो स्त्रियाँ पिछड़ी हुई हैं और संगठित खेती में जो बाधक हैं, उनमें भी हम संगठित स्त्रियाँ धीरे-धीरे जीवन का संचार कर रही हैं। हमने संगठित स्त्रियों का दल बना लिया है, भिन्न-भिन्न प्रान्तों में वे भ्रमण करती हैं और स्त्रियों में काम करती हैं--मानसिक और आर्थिक उन्नति के लिए संगठन कैसा लाभदायक है, इस बात को वे समझाया करती हैं। संगठित दल की किसान स्त्रियों की जीवन-यात्रा को सहज बनाने के लिए प्रत्येक संगठित खेत में बच्चों के लालन-पालन के लिए एक-एक शिशु-पालनागार, शिशु-विद्यालय और साधारण पाकशालाएँ स्थापित की गई हैं।"

सुखोज प्रान्त में जाइगाण्ट नाम का एक प्रसिद्ध सरकारी कृषि क्षेत्र है। वहाँ के एक किसान ने, रूस में संगठित खेती आदि का कैसा विस्तार हो रहा है, इस विषय में मुझसे कहा--"हमारे इस खेत की जमीन का परिमाण एक लाख हेक्टर है। पिछली साल यहाँ तीन हजार किसान काम करते थे। इस साल संख्या कुछ घट गई है; मगर फसल पहले से कुछ बढ़ेगी ही, घटेगी नहीं। क्योंकि जमीन में विज्ञान के अनुसार खाद देने और मशीन के हल से काम लेने की व्यवस्था हो गई है। इस तरह के हल हमारे यहाँ तीन सौ से ज्यादा होंगे। प्रतिदिन आठ घंटे काम करने की मियाद है। जो उससे ज्यादा काम करते हैं, उन्हें ऊपरी पारिश्रमिक मिलता है। जाड़ों के दिनों में खेती का काम घट जाता है, जब किसान शहरों में जाकर मकान बनाने और सड़क मरम्मत करने आदि का काम करते हैं। उस अनुपस्थिति के समय भी उन्हें वेतन का तिहाई हिस्सा मिला करता है और उनके परिवार के लोगों को उन्ही निर्दिष्ट घरों में रहने दिया जाता है।"
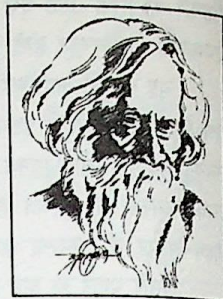
मैंने कहा--''संगठित खेती में अपनी निजी सम्पत्ति मिला देने के बारे में तुम लोगों की कोई आपत्ति या सम्मति हो, तो मुझे साफ-साफ बताओ।''

परिदर्शक ने प्रस्ताव किया कि हाथ उठवाकर मत लिया जाय। देखा गया कि ऐसे भी बहुत से आदमी हैं, जिनकी सम्मति नहीं है। असम्मति का कारण क्या है, पूछने पर वे अच्छी तरह समझा नहीं सके। एक ने कहा--''मैं अच्छी तरह समझ नहीं सका।'' साफ समझ में आ गया कि असम्मति का कारण मानव-चरित्र में ही मौजूद है। अपनी सम्पत्ति अपनी ममता--यह व्रतर्क का विषय नहीं है, यह हमारा संस्कार है। अपने को हम प्रकट करना चाहते हैं; सम्पत्ति उस प्रकाशन का एक उपाय है।

उससे भी बड़ा उपाय जिनके हाथ में है, वे महान् हैं, वे सम्पत्ति की परवाह नहीं करते। सब कुछ खो देने का काम पड़े तो उसमें भी उन्हें कोई बाधा नहीं; परन्तु साधारण मनुष्य के लिए अपनी सम्पत्ति अपने व्यक्ति-रूप की भाषा है--उसके खो जाने पर वह गूँगा-सा बन जाता है। सम्पत्ति यदि सिर्फ़ अपनी जीविका के लिए ही होती, आत्म-प्रकाश के लिए न होती, तो युक्तियों से समझना सहज हो जाता कि उसके त्याग से ही जीविका की उन्नति हो सकती है। आत्म-प्रकाश के उच्चतम उपाय--जैसे बुद्धि, गुण, स्वभाव--कोई किसी से जबरदस्ती छीन नहीं सकता, सम्पत्ति छीनी जा सकती है, धोखे से उड़ाई जा सकती है। इसीलिए सम्पत्ति के बाँट-बँटवारा और भोग के अधिकार के लिए समाज में इतनी निष्ठुरता, इतनी धोखेबाजी और इतना अन्तहीन विरोध है।

मेरी तो धारणा है कि इसका एक ही मध्यम दरजे का समाधान हो सकता है, वह यह कि व्यक्तिगत सम्पत्ति तो रहे, पर उसके भोग की एकान्त या अत्यधिक स्वतंत्रता को सीमित कर दिया जाय। उस सीमा के बाहर का अवशिष्ट अंश सर्वसाधारण के लिए निकल जाना चाहिए। फिर सम्पत्ति का ममत्व लालच, धोखेबाजी या निष्ठुरता तक नहीं पहुँचेगा।

सोवियतों ने इस समस्या का समाधान करते हुए उसे अस्वीकार करना चाहा है। इसके लिए जबरदस्ती की हद नहीं। यह बात तो कही ही नहीं जा सकती कि मनुष्य की स्वतंत्रता नहीं रहेगी, बल्कि यह कहा जा सकता है कि स्वार्थपरता नहीं रहेगी। अर्थात् अपने लिए कुछ तो अपना होना ही चाहिए, परन्तु बाकी दूसरों के लिए होना चाहिए। 'स्व' और 'पर' दोनों को स्वीकार करके ही उसका समाधान हो सकता है। दोनों में से किसी एक को निकाल देने से मानव-चरित्र का सत्य से युद्ध छिड़ जाता है। पाश्चात्य महादेश के मनुष्य 'जोर' पर अत्यधिक विश्वास रखते हैं। जिस क्षेत्र में जोर की दरअसल जरूरत है, वहाँ वह निःसन्देह बड़े काम की चीज है, पर अन्यत्र उससे विपत्ति की ही सम्भावना है। सत्य के बल को शारीरिक बल से जितनी ही प्रबलता से मिलाया जायगा, एक दिन उतनी ही प्रबलता से उसका विच्छेद होगा ही होगा।

मध्य-एशिया के बास्किर रिपब्लिक के एक किसान ने कहा--''इस समय भी मेरा अलग खेत है, मगर फिर भी मैं पास के संगठित कृषि-क्षेत्र में शीघ्र ही शामिल हो जाऊँगा। क्योंकि मैं देख रहा हूँ कि अलग खेती करने की अपेक्षा संगठित खेती में बहुत अच्छी और ज्यादा फसल होती है। जबकि अच्छी तरह खेती करने वालों के लिए मशीन की जरूरत पड़ती ही है--और छोटी खेती करने के लिए उसका खरीदना असम्भव है। इसके सिवा, छोटी-छोटी जमीनों में मशीन के हल से काम लेना असम्भव है।''

मैने कहा--''कल एक उच्चपदस्थ सरकारी कर्मचारी से बातचीत हुई थी। उन्होंने कहा--'स्त्रियों और बच्चों के लिए हर तरह की सुविधाएँ जैसी सोवियत सरकार द्वारा दी गई हैं, उतनी और कहीं भी नहीं दी गईं।' मैंने उनसे कहा--'आप लोग शायद पारिवारिक दायित्व को सरकारी दायित्व में परिणत करके परिवार की सीमा का लोप कर देना चाहते हैं।' उन्होंने कहा--'वही हम लोगों का आसन्न अभिप्राय हो, सो बात नहीं--परन्तु बच्चों के दायित्व को व्यापक बनाकर यदि स्वभावतः ही किसी दिन पारिवारिक लकीर मिट जाय, तो यही प्रमाणित होगा कि समाज में पारिवारिक युग संकीर्णता और असम्पूर्णता के कारण ही नवयुग के विस्तार में अपने-आप ही लुप्त हुआ है।' कुछ भी हो, इस विषय में तुम लोगों की क्या राय है, मैं जानना चाहता हूँ। क्या तुम समझते हो कि एकत्रीकरण की नीति का पालन करते हुए तुम्हारा परिवार ज्यों का त्यों बना रह सकता है ?''

उस यूक्रेनियर युवक ने कहा--''हमारी नई समाज-व्यवस्था ने पारिवारिकता पर कैसा प्रभाव डाला है; हम अपनी तरफ से उसका एक दृष्टान्त देते हैं। जब मेरे पिता जीवित थे, जाड़ों के छः महीने वे शहर में काम करते थे और गरमियों के छः महीने गांव में रहते थे--और मैं उस समय अपने भाई-बहनों के साथ किसी धनिक के यहाँ पशु चराने की नौकरी किया करता था। पिता के साथ मेरी भेंट-मुलाकात अक्सर नहीं होती थी; पर अब ऐसा विच्छेद नहीं होता। शिशु-विद्यालय से मेरे बच्चे रोज घर आ जाते हैं, और रोज ही मैं उनसे मिलता हूँ।''

एक किसान स्त्री ने कहा--''बच्चों की देखरेख और शिक्षा की स्वतंत्र व्यवस्था होने से अब पति-पत्नी में झगड़ा-टंटा बहुत कम होता है। इसके सिवा, लड़कों के प्रति पिता-माता का दायित्व कितना हो, इस बात को वह अच्छी तरह सीख सकते हैं।''

एक ककेशी की युवती ने दुभाषिये से कहा--''कवि से कहो कि हम ककेशी रिपब्लिक के निवासी इस बात का अच्छी तरह अनुभव कर रहे हैं कि अक्तूबर की क्रान्ति के बाद से हम लोग वास्तव में स्वाधीन और सुखी हुए हैं। हम लोग नये युग की सृष्टि कर रहे हैं, उसके कठिन दायित्व को हम अच्छी तरह समझते हैं, उसके लिए हम बड़े से बड़ा त्याग स्वीकार करने को राजी हैं। कवि को समझा दो कि सोवियत-सम्मेलन के विचित्र जाति के लोग उनके जरिये भारतवासियों से अपनी आन्तरिक सहानुभूति प्रकट करना चाहते हैं। मैं कह सकती हूँ कि अगर सम्भव होता तो मैं अपना घर-द्वार, बाल-बच्चे--सब कुछ छोड़कर भारतवासियों की सहायता के लिए चल देती।''

इनमें एक ऐसा युवक था, जिसका चेहरा मंगोलीय ढंग का था। उसके बारे में मैंने पूछा, तो जवाब मिला--''यह खिरगिज-जाति के किसान का लड़का है, मास्को आकर कपड़े बुनने का काम सीख रहा है। तीन वर्ष बाद इंजीनियर होकर अपने रिपब्लिक को लौट जायगा--क्रान्ति के बाद वहाँ एक बड़ा कारखाना खुला है, उसी में यह काम करेगा।''

एक बात का खयाल रखना, यहाँ इन नाना जातियों के लोगों को कल-कारखानों का रहस्य जानने के लिए जो इतना ज्यादा उत्साह और इतना अच्छा मौका मिला है, उसका एकमात्र कारण है व्यक्तिगत स्वतंत्र स्वार्थ साधन के लिए मशीनों का व्यवहार न होना। चाहे जितने आदमी इस काम को सीखें, उसमें सबका ही उपकार है, सिर्फ धनियों का नहीं। हम अपने लोभ के कारण मशीनों को दोष देते हैं, नशेबाजी के लिए दंड देते हैं ताड़वृक्ष को--मास्टर जैसे अपनी असमर्थता के कारण विधार्थी को बेंच पर खड़ा कर देते हैं।

उस दिन मास्को के कृषि-भवन में मैं अपनी आँखों से स्पष्ट देख आया हूँ कि दस वर्ष के अंदर रूस के किसान भारत के किसानों को कितना पीछे छोड़ गये हैं। उन्होंने सिर्फ किताबें पढ़ना ही नहीं सीखा, उनका मन बदल गया है--वे आदमी बन गये हैं। सिर्फ शिक्षा की बात कहने से उसमें सब बातें नहीं आ जातीं, खेती की उन्नति के लिए देश-भर में व्याप्त जो बड़ा भारी उद्यम है, वह भी असाधारण है। भारतवर्ष की तरह यह देश भी कृषि-प्रधान देश है, इसलिए कृषि-विद्या को जहाँ तक सम्भव हो, आगे बिना बढ़ाये देशवासियों की रक्षा नहीं की जा सकती। ये उस बात को भूले नहीं है। ये अत्यन्त दुःसाध्य को साध्य करने में लगे हुए हैं।

सिविल-सर्विस के अफसरों को मोटी-मोटी तनखाहें देकर ये आफिस चलाने का काम नहीं कर रहे हैं; जो योग्य हैं, जो वैज्ञानिक हैं, वे सबके सब काम में जुट गये हैं। इन्हीं दस वर्षों में इनके कृषि चर्चा-विभाग की जैसी उन्नति हुई है, उसकी ख्याति संसार-भर के वैज्ञानिकों में फैल चुकी है। युद्ध के पहले इस देश में बीज छाँटने की कोई कोशिश ही नहीं की जाती थी। आज लगभग तीन करोड़ मन छँटे हुए बीज इनके हाथ में हैं। इसके सिवा, नये अनाजों का प्रचलन सिर्फ इनके कृषि-कालेज के आँगन में ही सीमित नहीं, बल्कि बड़ी तेजी के साथ सारे देश में उनका प्रचार किया जा रहा है। कृषि-सम्बन्धी बड़ी-बड़ी वैज्ञानिक परीक्षा-शालाएँ आजरबाइजन, उजबेकिस्तान, जार्जिया, यूक्रेन आदि रूस के कोने-कोने में स्थापित हो गई हैं।

रूस के समस्त देश-प्रदेशों को, जाति-उपजातियों को समर्थ और शिक्षित बना डालने के लिए इतना बड़ा सर्वव्यापी असाधारण अथक उद्योग भारत की ब्रिटिश प्रजा की सुदूर कल्पना के परे है। इस बात को मैं यहाँ आने से पहले सोच ही न सका था कि इतने आगे बढ़ जाना भी सम्भव है ! क्योंकि बचपन से हम जिस 'लॉ एण्ड ऑर्डर' की आबहवा में पले हैं, वहाँ ऐसे दृष्टान्त देखे ही नहीं, जो इसके पास तक फटक सकते हों।

अबकी बार इंग्लैंड रहते हुए मैंने एक अंग्रेज से पहले-पहल यह सुना था कि सर्वसाधारण के हित के लिए इन लोगों ने कैसा असाधारण आयोजन किया है। सब आँखों से देखा--देखा कि इनके राष्ट्र में जाति-वर्ण का विचार तो ज़रा भी नहीं है। सोवियत शासन के अन्तर्गत लगभग बर्बर प्रजाओं में शिक्षा-प्रचार के लिए इन लोगों ने जिस उत्कृष्ट पद्धति की व्यावस्था की है, भारत के सर्वसाधारण के लिए वह दुर्लभ है। फिर भी, अशिक्षा के अनिवार्य फल-स्वरूप हमारी बुद्धि और हमारे चरित्र में जो दुर्बलता है, हमारे व्यवहार में जो मूढ़ता है, देश-विदेशों में भी उसकी बदनामी हो रही है। अंग्रेजी में एक कहावत है 'जिस कुत्ते को फाँसी देनी हो, उसकी बदनामी करने से काम सहज हो जाता है।' जिससे बदनामी कभी मिट ही न सके, ऐसा उपाय करने से यावज्जीवन कैद और फाँसी, दोनों को मिला लिया जा सकता है।

1 अक्तूबर, 1930

6

बर्लिन, जर्मनी

रूस घूम आया, अब अमेरिका की ओर जा रहा हूँ, इतने में तुम्हारी चिट्ठी मिली। रूस गया था, उनकी शिक्षापद्धति देखने के लिए। देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। आठ ही वर्ष के अंदर शिक्षा के ज़ोर से लोगों के मन का चेहरा बदल दिया है। जो मूक थे, उन्हें भाषा मिल गई है; जो मूढ़ थे, उनके मन पर से पर्दा हट गया है; जो दुर्बल थे, उनमें आत्मशक्ति जागृत हो गयी है, जो अपमान के नीचे दबे हुए थे, आज वे समाज की अन्ध कोठरी में से निकलकर सबके साथ समान आसन के अधिकारी हो गये हैं। इतने ज्यादा आदमियों का इतनी तेजी से ऐसा भावान्तर हो जायगा, इस बात की कल्पना करना कठिन है। जमाने से सूखी पड़ी हुई नदी में शिक्षा की बाढ़ आई है--देखकर हृदय पुलकित हो जाता है। देश में इस छोर से लेकर उस छोर तक सर्वत्र जाग्रति है। इनकी एक नई आशा की वीथिका मानो दिगन्त पार हो गई है--जीवन का वेग सर्वत्र पूरी मात्रा में मौजूद है। ये तीन चीजों को लेकर अत्यन्त व्यस्त है। शिक्षा, कृषि और यंत्र। इन तीन रास्तों से सम्पूर्ण जातियों को एक करके हृदय, अन्न और कर्मशक्ति को सम्पूर्णता देने के लिए ये तपस्या कर रहे हैं। हमारे देश की तरह यहाँ की लोग भी कृषिजीवी हैं। परन्तु हमारे यहाँ कि कृषि एक ओर से मूढ़ है और दूसरी ओर से असमर्थ--शिक्षा और शक्ति दोनों ही से वंचित। उसका एकमात्र क्षीण आश्रय है प्रथा--बाप-दादों के जमाने के नौकर की तरह वह काम करती है कम और कर्तव्य करती है ज्यादा। जो उसे मानकर चलेगा, वह आगे बढ़ ही नहीं सकता। और आगे-आगे बढ़ना ही है, क्योंकि सैकड़ों वर्षों से वह लँगड़ाता हुआ चल रहा है।

शायद हमारे देश में किसी समय गोवर्धनधारी कृष्ण ही थे कृषि के देवता, ग्वालों के घर उनका विहार होता था; उनके भाई थे बलराम, हलधर। वह हल-अस्त्र ही मनुष्य के यन्त्रबल का प्रतिनिधि है। यन्त्र ने कृषि को बल दिया है। आज हमारे कृषि क्षेत्रों में कहीं भी बलराम के दर्शन नहीं होते--वे लज्जित हैं--जिस देश में उनके अस्त्र में तेज है, वे वहीं--सागर-पार--चले गये हैं। रूस की कृषि ने बलराम को बुलाया है, देखते-देखते वहाँ के केदारखंड अखंड होते जा रहे हैं, उनके नवीन हलके स्पर्श से अहल्या-भूमि में प्राणों का संचार हो गया है।

एक बात हमें याद रखनी चाहिए, वह यह कि राम का ही हलयन्त्र-धारी रूप है बलराम।

सन् 1916 में यहाँ जो क्रान्ति हुई थी, उसके पहले इस देश में फी-सदी निन्नानवे किसानों ने आधुनिक हल यन्त्र आँखों से देखा भी नहीं था। वे तब हिन्दुस्तानी किसानों की तरह एकदम कमजोर--दुर्बल राम थे, भूखे थे, निःसहाय थे, मूक थे। आज देखते-देखते इनके खेतों में हजारों की संख्या में हलयन्त्र काम कर रहे हैं। पहले ये लोग थे बेचारे--गरीब, आज ये हैं बलराम।

केवल यंत्रों से ही काम नहीं चल सकता, यंत्री (संचालक) यदि मनुष्य न हुए। इनके खेत की कृषि मन की कृषि के साथ ही साथ बढ़ती जा रही है। यहाँ शिक्षा का काम और उसकी पद्धति सजीव है। मैं बराबर कहता आया हूँ कि शिक्षा को जीवन-यात्रा के साथ ही साथ चलाना चाहिए। उससे अलग कर लेने से वह भंडार की चीज बनी रहती है, खाकर पेट भरने की चीज नहीं बनती।

यहाँ आकर देखा कि इन लोगों ने शिक्षा में प्राण भर दिये हैं। इसका कारण यह है कि इन्होंने घर-गिरस्ती की सीमा से स्कूल की सीमा को अलग नहीं रखा है। ये जो कुछ सिखाते हैं, वह पास करने या पंडित बनाने के लिए नहीं, बल्कि सर्वतोभाव से मनुष्य बनाने के लिए ही सिखाते हैं। हमारे देश में विद्यालय हैं--परन्तु विद्या से बुद्धि बड़ी होती है, संवाद से शक्ति बड़ी होती है--पुस्तकों की पंक्तियों का बोझ हम पर ऐसा लद जाता है कि फिर हममें मन को ठीक रास्ते पर चलाने की शक्ति ही नहीं रह जाती। कितनी ही बार कोशिश की है अपने यहाँ के छात्रों से बातचीत करने की, पर देखा कि उनके मन में किसी तरह का जिज्ञासु-भाव ही

नहीं है। जानने की इच्छा के साथ जानने का जो योग है, वह योग उनका टूट गया है। उन्होंने कभी जानना सीखा ही नहीं--शुरू से ही उन्हें पुराने नियमों के अनुसार शिक्षा दी जाती है, इसके बाद उस सीखी हुई विद्या को दुहराकर दे परीक्षा के मार्क इकट्ठे करने में लग जाते हैं।

मुझे याद है, जब दक्षिण-अफ्रीका से लौटकर महात्माजी के छात्र शान्ति निकेतन आये थे, तब एक दिन उनमें से एक से मैंने पूछा था--"हमारे छात्रों के साथ पारुल-वन देखने जाना चाहते हो ?" उसने कहा--"मालूम नहीं।" इस बारे में उसने अपने दल-पति से पूछना चाहा। मैंने कहा--"पूछना पीछे, पहले यह बताओ कि तुम्हारी जाने की इच्छा है या नहीं ?" उसने कहा--"मैं नहीं जानता।" कहने का मतलब यह कि वह छात्र स्वयं किसी विषय की कुछ इच्छा नहीं रखता--उसे चलाया जाता है, वह चलता है; अपने आप वह कुछ सोचता ही नहीं।

इस तरह के मामूली विषयों में मन की इतनी जड़ता यद्यपि साधारणतः हमारे छात्रों में नहीं पाई जाती; किन्तु यह निश्चित है कि और भी जरा कठिन और विचारणीय विषय अगर छेड़ा जाय, तो उसके लिए इनका मन जरा भी तैयार न होगा। वे सिर्फ इसी बात की बाट देखा करते हैं कि हम उनके ऊपर रहकर क्या कहते हैं, उसी को सुनें। संसार में ऐसे निश्चेष्ट मन के समान निरुपाय मन और क्या हो सकता है।

यहाँ शिक्षा-पद्धति के सम्बन्ध में अनेक तरह की परीक्षाएँ हो रही हैं, उसका विस्तृत विवरण फिर कभी लिखूँगा। शिक्षा विधि के सम्बन्ध में रिपोर्ट और पुस्तकों से बहुत-कुछ जाना जा सकता है; किन्तु शिक्षा का चेहरा (जो मनुष्य के भीतर प्रत्यक्ष) दिखाई देता है, वह सबसे बढ़कर काम की चीज़ है। उस दिन उसे मैंने अपनी आँखों से देखा है। 'पायोनियर्स कम्यून' नाम से इस देश में जो आश्रम स्थापित हुए हैं, उन्हीं में से एक को देखने गया था। हमारे शान्ति निकेतन में जैसे व्रती बालक और व्रती बालिकाएँ हैं, इनकी पायोनियर्स संस्थाएँ लगभग उसी ढंग की हैं।

मकान में प्रवेश करते ही देखा कि मेरे स्वागत के लिए द्वार की सीढ़ियों पर दोनों किनारे बालक-बालिकाएँ पंक्तिवार खड़े हैं। भीतर घुसते ही वे मेरे चारों ओर सटकर बैठ गये, जैसे मैं उनका अपना ही कोई हूँ। एक बात याद रखना, ये सभी बिना माता-पिता के अनाथ हैं। ये जिस श्रेणी से आये हैं, एक दिन ऐसा था जबकि उस श्रेणी के लोग किसी से किसी तरह के सम्मान का दावा नहीं कर सकते थे, दरिद्रों की तरह बहुत नीच वृत्ति से अपनी गुजर किया करते थे। इनके मुँह की ओर निहारकर देखा, तो मालूम हुआ कि ये अनादर और असम्मान के कुहरे से ढके हुए चेहरे ही नहीं हैं। न संकोच है, न जड़ता। इसके सिवा मालूम हुआ, मानों सभी के हृदय में एक प्रकार का प्रण है, सामने एक तरह का कार्यक्षेत्र है, मानो ये हमेशा तैयार से रहते हैं, किसी तरफ से असावधानी या शिथिलता है ही नहीं।

स्वागत के उत्तर में मैंने भी कुछ कहा। उसी के प्रसंग में उनमें से एक लड़के ने कहा-- "पर-श्रमजीवी अपना व्यक्तिगत मुनाफा चाहते हैं; पर हम चाहते हैं देश के ऐश्वर्य में सब आदमियों का समान स्वत्व रहे। इस विद्यालय में हम लोग उसी नीति पर चलते हैं।"

एक लड़की ने कहा--"हम अपने को स्वयं चलाती हैं। हम सब मिलकर सलाह करके काम करती हैं; जो सबके लिए अच्छा है, वही हमारे लिए ठीक है।"

एक दूसरे लड़के ने कहा--"हम गलती कर सकते हैं। यदि चाहें तो, जो हमसे बड़े हैं, उनकी सलाह लिया करते हैं। जरूरत पड़ने पर छोटे लड़के-लड़कियाँ बड़े लड़के-लड़कियों से सलाह लेते हैं, और उन्हें सलाह की जरूरत हो तो वे शिक्षकों के पास जाते हैं। हमारे देश के शासनतंत्र का यही विधान है, हम यहाँ उसी विधान की चर्चा और अनुशीलन किया करते हैं।"

इससे समझ सकते हो कि इनकी शिक्षा सिर्फ किताबों में ही सीमित नहीं है। अपने व्यवहार को, अपने चरित्र को इन्होंने एक बड़ी लोकयात्रा के अनुकूल बना डाला है। वह विषय इनका एक प्रण बन गया है, और उस प्रण की रक्षा करने में ही ये अपना गौरव समझते हैं।

अपने यहाँ के लड़के-लड़कियों और शिक्षकों से मैंने बहुत बार कहा है कि लोकहित और स्वायत्त शासन के जिस दायित्व-बोध की आशा हम सम्पूर्ण देश से रखते हैं, शान्ति निकेतन की छोटी सी सीमा के भीतर हम उसी का एक सम्पूर्ण रूप देखना चाहतें है। वर्तमान व्यवस्था छात्र और शिक्षकों की सम्मिलित स्वायत्त-शासन की व्यवस्था होनी चाहिए--उस व्यवस्था से जब यहाँ के समस्त कार्य सुसम्पूर्ण होने लगेंगे, तब उतनी ही सीमा में हमारे सम्पूर्ण देश की समस्या हल हो सकती है। व्यक्तिगत इच्छा को सर्वसाधारण के हित के अनुकूल बना डालने की चर्चा राष्ट्रीय व्याख्यान-मंच पर खड़े होकर नहीं की जा सकती, उसके लिए खेत बनाये जाने चाहिए--वह खेत ही हमारा आश्रम होगा।

एक छोटा सा दृष्टान्त तुम्हारे सामने रखता हूँ। खाने-पीने की रुचि और अभ्यास के सम्बन्ध में बंगाल में जैसा कदाचार है, वैसा और कहीं भी नहीं। पाकशाला और पाकयंत्र को हमने बहुत ही भारग्रस्त बना डाला है। इस विषय में संस्कार या सुधार करना बड़ा कठिन है। अपने समाज के चिरन्तन हित के प्रति लक्ष्य रखकर हमारे छात्र और शिक्षक यदि पथ्य के विषय में अपनी रुचि को ययोचित रूप से नियंत्रित करनेका प्रण कर सकते तो मैं जिसे शिक्षा कहता हूँ, वह शिक्षा सार्थक हो सकती। सात तिया इक्कीस कंठस्थ करने को हम शिक्षा ही समझते हैं, और इस बात पर लक्ष्य न रखने को कि इस विषय में भूल न करें, हम बड़ा-भारी अपराध समझते हैं; परन्तु वास्तव में देखा जाय तो जिस चीज को पेट में भरते हैं, उस विषय की शिक्षा की कम कीमत समझना मूर्खता के सिवा और कुछ नहीं। अपने दैनिक भोजन के सम्बन्ध में देश के सामने हमारा एक दायित्व है और वह बहुत बड़ा दायित्व है--अन्य समस्त उपलब्धियों के साथ-साथ इसकी याद रखना इम्तिहान के मार्क से कहीं बड़ा है।

मैंने उनसे पूछा--"कोई कुछ अपराध करे, तो उसके लिए क्या विधान है ?"

एक लड़की ने कहा--"हमारे यहाँ किसी तरह का शासन नहीं है, क्योंकि हम अपनी सजा आप ही लिया करते हैं।"

मैंने कहा--"और जरा विस्तार से कहो। अगर कोई अपराध करे, तो क्या तुम लोग उसके लिए कोई खास सभा करते हो। या अपने में से किसी को पंच चुन लेते हो ? और सजा देने के नियम हैं, तो कैसे हैं ?"

एक लड़की ने जवाब दिया--"उसे विचार सभा नहीं कहा जा सकता, हम लोग आपस में बातचीत करते हैं। किसी को अपराधी सिद्ध कर देना ही सजा है, इससे बढ़कर और सजा क्या होगी !"

एक लड़के ने कहा--"वह भी दुःखित होता है, हम भी दुःखित होते हैं, बस झगड़ा तय हुआ।"

मैंने कहा--"मान लो, कोई लड़का अगर सोचे कि उस पर झूठा दोषारोपण हो रहा है, तो तुम लोगों के ऊपर और भी कहीं वह अपील कर सकता है ?"
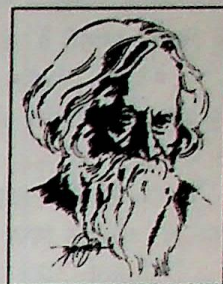
लड़के ने कहा--"तब हम लोग वोट लेते हैं--अधिक मत से अगर निर्णय हो कि वह अपराधी है, तो उस पर फिर अपील नहीं चल सकती।"

मैंने कहा--"अपील न चले, यह दूसरी बात है; पर फिर भी अगर वह समझे कि अधिक मतों ने उसके प्रति अन्याय किया है, तो इसका कोई प्रतिकार हो सकता है या नहीं ?"

एक लड़की ने उठकर कहा--"तब सम्भव है हम लोग अपने शिक्षकों के पास जायँ और इस विषय में उनकी सलाह लें; पर ऐसी घटना कभी हुई नहीं।"

मैंने कहा--"जिस तपस्या में सभी कोई शामिल हैं, वह स्वयं ही अपराधों से तुम्हारी रक्षा करेगी।"

यह पूछने पर कि तुम्हारा कर्तव्य क्या है, उन्होंने कहा--"अन्य देश के लोग अपने काम के लिए धन चाहते हैं, सम्मान चाहते हैं; हम वैसा कुछ भी नहीं चाहते, हम सर्वसाधारण का हित चाहते हैं। हम गाँववालों को शिक्षा देने के लिए देहातों में जाते हैं, और उन्हें समझाते हैं कि किस तरह सफाई से रहा जाता है, सब काम बुद्धिपूर्वक किस तरह सरलता से किये जाते हैं, इत्यादि। अनेक अवसर ऐसे आते हैं, जब हमें स्वयं वहाँ रहना पड़ता है, इसके लिए हम नाटक खेलते हैं और देश की हालत उन्हें समझाते हैं।"

उसके बाद उन लोगों ने मुझे दिखाना चाहा कि वे सजीव समाचार-पत्र किसे कहते हैं। एक लड़की ने कहा--"देश के सम्बन्ध में हमें बहुत से समाचार जानने पड़ते हैं। हमें जो मालूम हो जाते हैं, उन्हें दूसरों को जता देना हमारा कर्तव्य है। क्योंकि तथ्य को ठीक तौर से जानने और उस विषय में विचार करने से ही हमारा कार्य ठोस हो सकता है।"

एक लड़के ने कहा--"पहले हम किताबों से और शिक्षकों से सीखते हैं, फिर उसी विषय पर आपस में आलोचना करते हैं, उसके बाद हमें सर्वसाधारण को समझाने जाने की आज्ञा मिलती है।"

सजीव समाचारपत्र का अभिनय करके मुझे दिखाया गया। विषय था 'रूस का पंचवार्षिक संकल्प'। अर्थात् इन लोगों ने दृढ़ प्रण किया है कि पाँच वर्ष के अंदर ये सारे देश को यन्त्र शक्ति में सुदक्ष कर डालेंगे; बिजली और भाप की शक्ति को ये देश के इस छोर से उस छोर तक सर्वत्र काम में लायेंगे। 'इनका देश' से यह मतलब नहीं कि सिर्फ यूरोप और रूस, बल्कि एशिया के बहुत दूर तक उसका विस्तार है वहां भी ये अपनी शक्ति के वाहन को ले जायँगे। धनी को अधिक धनी बनाने के लिए नहीं बल्कि जन-समाज को शक्तिसम्पन्न करने के लिए--उस जन समाज में एशिया के काले चमड़े के मनुष्य भी शामिल हैं। वे भी शक्ति के अधिकारी होंगे, इसके लिए कोई डर नहीं, चिन्ता नहीं।

इस काम के लिए इन्हें बहुत ज्यादा रुपयों की जरूरत है--यूरोपीय बड़े बाजारों में इनकी हुंडी नहीं चलती--नकद दाम देकर सौदा लेने के सिवा और कोई चारा ही नहीं। इसीलिए मुँह का कौर देकर ये जरूरी चीजें खरीदते हैं, यहाँ का पैदा हुआ अनाज, पशु-मांस, अंडे, मक्खन-सब कुछ विदेश के बाजारों में बिकने जाता है। देश-भर के लोग उपवास के किनारे तक आ पहुँचे हैं,--अब भी डेढ़ वर्ष बाकी है। दूसरे देशों के महाजन इनसे खुश नहीं हैं। विदेशी इंजीनीयरों ने इनके बहुत से कल-कारखाने नष्ट भी कर दिये हैं। यहाँ का काम बहुत बड़ा और जटिल है। समय बहुत थोड़ा है। समय बढ़ाने का साहस नहीं होता, क्योंकि ये समय धनी समाज की प्रतिकूलता के सामने खड़े हैं; जितनी जल्दी हो सके, अपने बूते पर धन कमाना इनके लिए बहुत ही जरूरी है। तीन वर्ष बीत चुके, अब भी दो वर्ष बाकी हैं।

सजीव अखबार अभिनय के समान है--नृत्य-गीत और झंडा उड़ाकर ये जता देना चाहते हैं कि देश की धन-शक्ति को यंत्रवाहिनी करके धीरे-धीरे इन्होंने कितनी सफलता पाई है। देखने की जरूरत बहुत ज्यादा है। जो जीवनयात्रा के लिए अत्यंत आवश्यक सामग्रियों से वंचित रहकर कष्ट से दिन बिता रहे हैं, उन्हें समझाने की जरूरत है कि शीघ्र ही इस कष्ट का अंत होगा और उसके बदले जो कुछ मिलेगा, उसका स्मरण करके उन्हें आनन्द के साथ, गौरव के साथ कष्टों को गले लगाना चाहिए।
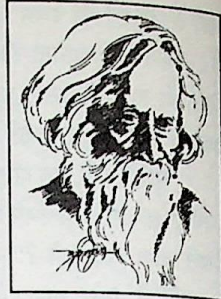
इसमें सन्देह की बात यह है कि इस कार्य में कोई दल-विशेष नहीं, बल्कि सभी लोग एक साथ तपस्या में लगे हुए हैं। ये संजीव संवाद पत्र अन्य देशों के समाचार भी इसी ढंग से देश-भर में फैलाया करते हैं। पतिशर में देहतत्त्व और मुक्तितत्त्व पर एक नाटक देखा था, उसकी याद उठ आई--ढंग एक ही है, लक्ष्य भिन्न है। सोच रहा हूँ, देश लौटकर शान्ति निकेतन और सुरूल (श्रीनिकेतन) में इसी तरह के सजीव संवाद पत्र चलाने की कोशिश करूँगा।

इनका दैनिक कार्यक्रम इस प्रकार है--सवेरे सात बजे उठते हैं, उसके बाद पन्द्रह मिनट व्यायाम करते हैं, फिर नित्यक्रिया और कलेवा। आठ बजे से क्लास बैठती है। एक बजे थोड़ी देर के लिए खाने और विश्राम करने की छुट्टी होती है। तीन बजे तक क्लास होती रहती है। सीखने के विषय हैं--इतिहास, भूगोल, गणित, प्राथमिक प्राकृत-विज्ञान, प्राथमिक रसायन, प्राथमिक जीव-विज्ञान, यन्त्र-विज्ञान, राष्ट्र-विज्ञान, समाज-विज्ञान, साहित्य, हाथ की कारीगरी, बढ़ई का काम, जिल्दसाजी का काम, नये ढंग की खेती की मशीन आदि का व्यवहार, इत्यादि। रविवार नहीं है। हर पाँचवें दिन छुट्टी रहती है। तीन बजे बाद खास दिन की कार्य-सूची के अनुसार पायनियर लोग (अग्रगामियों का दल) कारखाने, अस्पताल, गाँव आदि देखने जाया करते हैं।

देहातों में भ्रमण कराने की व्यवस्था की जाती है। कभी-कभी ये स्वयं अभिनय करते हैं और कभी-कभी थियेटर देखने भी जाते हैं। शाम का कार्यक्रम है--कहानियाँ पढ़ना, कहानियाँ सुनाना, तर्क करना, साहित्यिक और वैज्ञानिक सभाएँ करना। छुट्टी के दिन पायोनियर लोग अपने कपड़े धोते हैं, घर साफ करते हैं, मकान और मकान के चारों तरफ सफाई करते हैं, क्लास के पाठ के अलावा अतिरिक्त पाठ पढ़ते हैं, घूमने जाते हैं। विद्यालय में भरती होने की उमर है सात-आठ साल और विद्यालय छोड़ने की उमर सोलह। इनका अध्ययन-काल हमारे देश की तरह लम्बी-लम्बी छुट्टियों से पोला नहीं किया गया, इसलिए थोड़े ही दिनों में ये बहुत ज्यादा पढ़ सकते हैं।

यहाँ के विद्यालयों का एक बड़ा भारी गुण यह है कि ये जो कुछ पढ़ते हैं, साथ-साथ उसकी तसवीर भी खींचते जाते हैं। इससे पाठ का विषय मन पर चित्रित हो जाता है, चित्रांकन में हाथ सध जाता है और पढ़ने के साथ रूप-चित्रण का आनन्द भी मिल जाता है। यकायक ऐसा मालूम होने लगता है कि इन लोगों का ध्यान सिर्फ काम की ओर ही है, और गँवारों की तरह ये ललितकला की अवज्ञा करते हैं। परन्तु यह बात बिलकुल नहीं है। सम्राटों के जमाने में बने हुए बड़े-बड़े नाट्य-मन्दिरों में उच्च श्रेणी के नाटक और औपेराओं के अभिनय के दिन देर से टिकट मिलना मुश्किल हो जाता है। नाट्याभिनय-कला में इनके समान उस्ताद संसार में बहुत थोड़े ही हैं। प्राचीन काल में अमीर-उमराव ही इनका आनन्द ले सकते थे--उस जमाने में जिनके पैरों में जूते न थे, कपड़े थे फटे-पुराने-मैले, जिन्हें भर-पेट खाने को न मिलता था, अहोरात्र जो मनुष्य और देवता, सभी से डरा करते थे, परित्राण के लिए जो पुरोहित-पंडों को घूस दिया करते थे, और मालिक के पैरों-तले

धूल में सिर रखकर जो अपनी अवज्ञा आप करते थे, आज उन्हीं की भीड़ से थियेटरों में जगह नहीं मिलती।

मैं जिस दिन अभिनय देखने गया था, उस दिन खेल था टाल्सटाय का 'रिसरैक्शन' मेरी समझ से यह नाटक सर्वसाधारण के लिए सहज-उपभोग्य नहीं हो सकता। परन्तु श्रोतागण गम्भीर होकर बड़े ध्यान से चुपचाप सुन रहे थे। ऐंग्लो-सैक्सन किसान-मजूर-श्रेणी के लोगों ने इस नाटक को रात के एक बजे तक ऐसी दिलचस्पी के साथ शान्तभाव से देखा होगा-- यह बात कल्पना में नहीं आती, हमारे देश की बात ही छोड़ दो।

और एक उदाहरण देता हूँ। मास्को शहर में मेरी तसवीरों की प्रदर्शनी हुई थी। यह तो कहना ही न होगा कि मेरी तसवीरें विचित्र और दुनिया से न्यारी ही थीं। सिर्फ़ विदेशी हीं सो नहीं, कहा जा सकता है कि वे किसी भी देश की नहीं है, मगर लोगों का भीड़-भम्भड़ काफी था। इन थोड़े से दिनों में पाँच हजार आदमी तसवीरें देखने आये थे। और कोई चाहे कुछ कहे, कम से कम मैं तो इनकी रुचि की प्रशंसा बिना किये नहीं रह सकता।

रुचि की बात छोड़ दो, मान लो कि वह एक खोखला कौतूहल ही थ, परन्तु यह कौतूहल ही तो जाग्रत चित्त का परिचय है। मुझे याद है, एक दिन अपने कुएं के लिए मैंने अमेरिका से एक वायुचल-चक्रयन्त्र मँगाया था, जिससे कुआं की गहरी नीचाई से पानी उठ आता था; परन्तु जब देखा कि लड़कों के मन की गहराई से जरा भी कौतूहल नहीं उठ रहा, तो मन में बड़ा ही धिक्कार आने लगा। हमारे यहाँ भी तो बिजली के कारखाने हैं, कितने लड़के जाते हैं वहाँ उत्सुकता मिटाने ? कहने को तो वेभद्र श्रेणी क लड़के हैं। बुद्धि की जड़ता जहाँ है, वहीं कौतूहल दुर्बल है।

यहाँ स्कूल के लड़कों की बनाई हुई तसवीरें हमें बहुत सी मिली हैं--देखकर आश्चर्य होता है--बेशक वे चित्र हैं, किसी की नकल नहीं, उनकी अपनी उपज है। यहाँ निर्माण और सृष्टि, दोनों की तरफ लक्ष्य देखकर बहुत सन्तुष्ट और निश्चिन्त हुआ हूँ। जबसे यहाँ आया हूँ, अपने देश की शिक्षा के बारे में मुझे बहुत सोचना पड़ा है। अपनी निःसहाय सामान्य शक्ति से इसमें से कुछ लेने और प्रयोग करने की कोशिश करूँगा। पर अब समय कहाँ है। सम्भव है, मेरे लिए पंचवार्षिक संकल्प भी पूरा न हो। लगभग तीस वर्ष से अकेला ही प्रतिकूलता के विरुद्ध लग्घी से नाव ठेलता रहा हूँ--और भी दो-चार वर्ष उसी तरह ठेलना पड़े, पर बहुत आगे न बढ़ सकूँगा, मैं जानता हूँ--फिर भी किसी से फरियाद न करूँगा। आज अब समय नहीं रहा। आज ही रात की गाड़ी से जहाज के घाट की ओर रवाना होना है, कल समुद्र से पार होऊँगा।

2 अक्टूबर, 1930

7

ब्रेमेन स्टीमर (अतलान्तिक)

रूस से लौटकर आज फिर जा रहा हूँ अमेरिका के घाट पर। किन्तु रूस की स्मृति आज भी मेरे सम्पूर्ण मन पर अधिकार किये हुए है। उसका प्रधान कारण यह है कि और-और जिन देशों में घूमा हूँ, वहाँ के समाज ने समग्र रूप से मेरे मन को हिलाया नहीं है। उनमें अनेक कार्यो का उद्यम है, पर अपनी-अपनी सीमा के भीतर। कहीं पालिटिक्स है तो कहीं अस्पताल, कहीं विश्वविद्यालय है तो कहीं म्यूजियम--विशेषज्ञ अपने-अपने क्षेत्र में ही मशगूल हैं; मगर यहाँ सारा देश एक ही अभिप्राय को लेकर समस्त कार्य-विभागों को एक ही स्नायुजाल में बाँधकर एक विराट् रूप धारण किये हुए है। सब-कुछ एक अखंड तपस्या में आकर मिल गया है।

जिन देशों में अर्थ और शक्ति का अध्यवसाय व्यक्तिगत स्वार्थों में बंटा हुआ है, वहाँ इस तरह की गहरी हार्दिक एकता असम्भव है। जब यहाँ पंच-वर्ष-व्यापी यूरोपीय महायुद्ध चल रहा था, तब झख मारकर देश की अधिकांश भावनाएँ और कार्य एक अभिप्राय से मिलकर एक हृदय के अधिकार में आये थे, पर वह था अस्थायी-किन्तु सोवियत रूस में जो कार्य हो रहा है, उसकी प्रकृति ही वही है-यह तो सर्वसाधारण का काम, सर्वसाधारण का हृदय और सर्वसाधारण का स्वत्व नाम की एक असाधारण सत्ता कायम करन`में लगे हुए हैं।

उपनिषद की एक बात मैंने यहाँ आकर बिल्कुल स्पष्ट समझी है--'मा गृधः'--लोभ न करो। क्यों लोभ न करें ? इसलिए कि सब-कुछ एक सत्य के द्वारा परिव्याप्त है--और व्यक्तिगत लोभ उस एक की उपलब्धि में बाधा पहुँचाता है। 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा;--उस एक से जो आता है, उसी का भोग करो आर्थिक दृष्टिकोण से यह यही बात कहते हैं। समस्त मानव साधारण में ये एक अद्वितीय मानव-सत्य को ही बड़ा मानते हैं--उस एक के योग से उत्पन्न जो कुछ है, ये कहते हैं कि उसका सब कोई मिलकर भोग करो-- 'मा गृधः कस्य स्वद्धन'--किसी के धन पर लोभ मत करो। किन्तु धन का व्यक्तिगत विभाग होने से धन का लोभ स्वभावतः होता ही है। उसका लोप करके ये कहना चाहते हैं--'तेन त्यक्तेन भुंजीथा;'।

यूरोप में अन्य सभी देशों की साधना व्यक्ति के लाभ और व्यक्ति के भोग के लिए है। इसी से मन्थन और आलोड़न इतना प्रचंड है, और पौराणिक समुद्र-मन्थन की तरह उसमें से विष और सुधा, दोनों ही निकल रहे हैं।

पर सुधा का हिस्सा सिर्फ एक ही दल को मिलता है, और अधिकांश को नहीं मिलता--इसी से दुःख और अशान्ति हद से ज्यादा बढ़ रही है। सभी ने मान लिया था कि यही अनिवार्य है--कहा था--मानव-प्रकृति के अंदर ही लोभ है और लोभ का काम है भोग में असमान भाग करना। अतएव प्रतियोगिता चलेगी ही, और लड़ाई के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए। परन्तु सोवियत लोग जो कहना चाहते हैं, उससे समझना चाहिए कि मनुष्य में ऐक्य ही सत्य है, भोग तो माया है; सम्यक् विचार और सम्यक् चेष्टा से जिस क्षण में माया को मानेंगे, उसी क्षण वह स्वप्न की तरह लुप्त हो जायेगी।

रूस की वह न मानने की चेष्टा सारे देश में विराट् रूप में अपना काम कर रही है। सब कुछ इसी एक चेष्टा में आकर मिल गया है। यही कारण है कि रूस में आकर एक विराट् हृदय का स्पर्श मिला। शिक्षा का विराट पर्व और किसी भी देश में ऐसा नहीं देखा। इसका कारण यह है कि अन्य देशों में जो शिक्षा प्राप्त करता है, वही उसका फल पाता है--'पढ़ोगे-लिखोगे होओगे नवाब'। यहाँ प्रत्येक की शिक्षा में सबकी शिक्षा शामिल है। एक आदमी में जो शिक्षा का अभाव होगा, वह सबको अखरेगा क्योंकि ये सम्मिलित शिक्षा के योग से सम्मिलित मन को विश्वसाधारण के काम में लगाना चाहते हैं। ये 'विश्वकर्मा' हैं, इसलिए इन्हें विश्वमना बनना है, अतएव इन्हीं के लिए यथार्थ में विश्वविद्यालय हो सकता है।

शिक्षा को वे नाना प्रणालियों से सर्वत्र सबों में फैला रही हैं। उन प्रणालियों में एक है म्यूज़ियम। नाना प्रकार के म्यूज़ियमों-जालों से इन लोगों ने गाँवों और शहरों को छा दिया है। वे म्यूज़ियम हमारे शान्तिनिकेतन की लाइब्रेरी की तरह निष्क्रिय नहीं, क्रियात्मक हैं।

रूस की रीजन स्टडी अर्थात् स्थानिक तथ्यानुसन्धान का उद्योग सर्वत्र व्याप्त है। इस तरह के शिक्षा-केन्द्र लगभग 2000 होंगे, जिनकी सदस्य-संख्या 70,000

से भी आगे बढ़ गई है। इन सब केन्द्रों में उन-उन स्थानों के अतीत इतिहास और वर्तमान आर्थिक अवस्था की खोज की जाती है। इसके सिवा उन सब स्थानों की उत्पादिका शक्ति किस श्रेणी की और वहाँ कोई खनिज पदार्थ छिपा हुआ है या नहीं--इस विषय की खोज की जाती है। इन सब केन्द्रों के पास जो म्यूज़ियमें हैं, उन्हीं के ज़रिये सर्वसाधारण में शिक्षा-प्रचारक कार्य होता है, और यह बड़ा भारी काम है। सोवियत राष्ट्र में सर्वधारण की ज्ञानोन्नति का जो नवयुग आया है, स्थानिक तथ्यानुसंधान की व्यापक चर्चा और उससे सम्बन्ध रखने वाली म्यूज़ियमें उसकी एक मुख्य प्रणाली हैं।

इस तरह का निकटवर्ती स्थानों का तथ्यानुसंधान शान्ति निकेतन में कालीमोहन ने कुछ-कुछ किया है; पर उस कार्य में हमारे छात्र और शिक्षकों के शामिल न होने से उससे कोई उपकार नहीं हुआ। अनुसन्धान के फल पाने की अपेक्षा अनुसन्धान करने का मन तैयार करना कुछ कम बात नहीं है। मैंने सुना था कि कालेज-विभाग के इकानामिक क्लास के विद्यार्थियों के साथ प्रभात ने इस प्रकार की चर्चा की नींव डाली है; परन्तु यह काम और भी अधिक साधारण रूप में होना चाहिए, पाठ-भवन के लड़कों को भी इस कार्य में दीक्षित करना होगा, और साथ ही समस्त प्रादेशिक सामग्रियों का म्यूज़ियम स्थापित करने की भी आवश्यकता है।

यहाँ तसवीरों की म्यूज़ियम का काम कैसे चलाया जाता है, उसका विवरण सुनने से अवश्य ही तुम्हें सन्तोष होगा। मास्को शहर में ट्रेटियाकोव गैलरी नामक एक प्रसिद्ध चित्र-भंडार है। वहाँ 1928 से 1929 तक एक वर्ष के अन्दर लगभग तीन लाख आदमी चित्र देखने आये हैं। इतने दर्शक आना चाहते हैं कि उनके लिए स्थान देना कठिन हो रहा है, इसलिए दर्शकों को पहले ही से छुट्टी के दिन अपना नाम रजिस्टर में लिखा देना पड़ता है।

सन् 1917 में, सोवियत-शासन चालू होने से पहले जो दर्शक इस तरह की गैलरी में आते थे, वे थे धनी-मानी ज्ञानी दल के लोग--जिनको ये 'बर्गोजी' कहते हैं--अर्थात् पर श्रम-जीवी। और अब आते हैं असंख्य स्वश्रमजीवी--जैसे राज मिस्त्री लुहार, बढ़ई, दर्जी, मोची आदि। इनके सिवा और आते हैं, सोवियत सैनिक, सेनानायक, विद्यार्थी और किसान आदि।

धीरे-धीरे इनके हृदय में आर्ट का ज्ञान जगाते रहना जरूरी है। इन जैसे अनाड़ियों के लिए प्रथम दृष्टि में चित्र-कला का रहस्य ठीक तौर से समझ लेना कठिन है। ये घूम-घूमकर दीवालों पर टँगी हुई तसवीरें देखते फिरते हैं--बुद्धि काम नहीं देती। इसके लिए लगभग सभी म्यूज़ियमों में योग्य परिचायक रखे गये हैं, वे उन्हें समझा दिया करते हैं। म्यूजियमों के शिक्षा-विभाग में अथवा ऐसी ही अन्य राष्ट्रीय कार्यशालाओं में जो वैज्ञानिक कार्यकर्त्ता हैं, उन्हीं में से परिचायक चुने जाते हैं। जो देखने आते हैं, उनके साथ इनका लेन-देन का कोई भी सम्बन्ध नहीं रहता। परिचायकों का कर्तव्य होता है कि तसवीर में जो विषय प्रकट किया है, सिर्फ उसी को देख लेने मात्र से तसवीर देखने का उद्देश पूरा हो गया, दर्शकों द्वारा ऐसी भूल न होने दें।

चित्र-वस्तु का गठन, उसकी वर्ण-कल्पना, उसका अंकन, उसका 'स्पेस' अंकित वस्तुओं का पारस्परिक अंतर, उसकी उज्ज्वलता--चित्रकला के ये जो मुख्य शिल्प-कौशल हैं, जिनसे कि चित्रों की विशेष शैली प्रकट होती है--ये सब विषय अब भी बहुत कम लोगों को मालूम हैं। इसलिए परिचायकों में इन सब विषयों का अच्छा ज्ञान होना चाहिए, तभी वे दर्शकों की उत्सुकता और इच्छा को जगा सकते हैं। यह बात और, म्यूज़ियम में सिर्फ एक ही चित्र नहीं होता, इसलिये एक चित्र को समझ लेना दर्शकों का उद्देश्य नहीं होना चाहिए, म्यूज़ियम में जो विशेष श्रेणी के चित्र रहते हैं, उनकी श्रेणीगत रीति का समझना आवश्यक है। परिचायकों का कर्तव्य है कि किसी विशेष श्रेणी के कुछ चित्र छाँटकर दर्शकों को उनकी प्रकृति समझा दें। आलोच्य चित्रों की संख्या बहुत ज्यादा होने से काम नहीं चल सकता, और समय भी बीस मिनट से ज्यादा लगाना ठीक नहीं। प्रत्येक चित्र की अपनी एक भाषा होती है--अपना एक छन्द होता है, वही समझने का विषय है; चित्र के रूप के साथ उसके विषय और भाव का क्या सम्बन्ध है, इसकी व्याख्या करना आवश्यक है। चित्रों की पारस्परिक विपरीतता के द्वारा उनकी विशेषता समझा देना अक्सर बहुत काम कर जाता है। परन्तु, यदि दर्शक का मन जरा भी कहीं थक जाय, तो वहीं उसे छुट्टी दे देनी चाहिए।

अशिक्षित दर्शकों को ये किस तरह तसवीर देखना सिखाते हैं, उन्हीं की रिपोर्ट से उपयुक्त बातें संग्रह करके तुम्हें लिख रहा हूँ। इनमें से भारतीयों को जिस बात पर विचार करना चाहिए, वह यह है--पहले जो चिट्ठी लिखी है, उसमें मैंने कहा है कि ये लोग कृषिबल और यन्त्रबल से समस्त देश को जल्दी से जल्दी शक्तिमान बनाने के लिए बड़े उद्यम के साथ कमर कसकर जुट पड़े हैं। यह बड़े ही काम की बात है। अन्य समस्त धनी देशों के साथ प्रतियोगिता करते हुए अपने बल पर जीवित रहने के लिए ही इनकी यह कठोर तपस्या है।

हमारे देश में जब इस प्रकार की देशव्यापी राष्ट्रीय तपस्या का जिक्र आता है, तब हम यही कहना शुरू कर देते हैं कि बस सिर्फ एक लाल मशाल जलाकर देश के अन्य समस्त विभागों के सब दीपकों को बुझा देना चाहिए, नहीं तो मनुष्य अन्यमनस्क हो जायँगे। खासकर ललित कला और सब तरह के कठोर संकल्पों की विरोधिनी है। अपनी जाति को पहलवान बनाने के लिये सिर्फ ताल ठुंकवाकर उसे पैंतरेबाजी सिखानी चाहिए, सरस्वती की वीणा से अगर लाठी का काम लिया जा सके, तभी वह चल सकती है, अन्यथा नैव नैव च। इन बातों से कितना नकली पौरुष प्रकट होता है, यहाँ आने से स्पष्ट समझा जा सकता है। यहाँ वाले देश भर में कल-कारखाने चलाने में जिन मजदूरों को पक्का कर देना चाहते हैं, वे ही मजदूर जिससे अपनी शिक्षित बुद्धि से तस्वीरों का रस ग्रहण कर सकें, इसी के लिए इतना विराट आयोजन हो रहा है। ये लोग जानते हैं कि जो रसज्ञ नहीं हैं, वे बर्बर हैं, और जो बर्बर हैं, वे बाहर से रूखे और भीतर से कमजोर होते हैं। रूस की नवीन नाट्यकला ने असाधारण उन्नति की है। 1917 की क्रान्ति के साथ-साथ ये लोग भी घोरतर दुर्दिन और दुर्भिक्ष के समय नाचते रहे हैं, गाते रहे हैं, नाट्याभिनय करते रहे हैं--इनके ऐतिहासिक विराट् नाट्याभिनय के साथ उसका कहीं भी विरोध नहीं हुआ है।

मरुभूमि में शक्ति नहीं होती शक्ति का यथार्थ रूप वहीं देखने में आता है, जहाँ पत्थर की छाती में से जल की धारा कल्लोलित होकर निकलती है, यहाँ वसन्त के रूप-हिल्लोल से हिमालय का गाम्भीर्य मनोहर हो उठता है। विक्रमादित्य ने भारतवर्ष से शक शत्रुओं को भगा दिया था, किन्तु कालिदास को 'मेघदूत' लिखने के लिए मना नहीं किया। यह नहीं कहा जा सकता कि जापानी लोग तलवार नहीं चला सकते, किन्तु साथ ही वे समान निपुणता के साथ तूलिका भी चलाते हैं। रूस में आकर अगर देखता कि ये केवल मजदूर बनकर कारखानों के लिए सामान ही पैदा करते हैं और हल जोतते हैं, तो समझता है कि ये भूखों मरेंगे, जो वृक्ष पत्तों की मर्मर ध्वनि बन्द करके खट-खट आवाज से अहंकार करता हुआ कहता रहे कि मुझे रस की जरूरत नहीं, वह जरूर बढ़ई के घर का नकली वृक्ष है--वह अत्यन्त कठोर
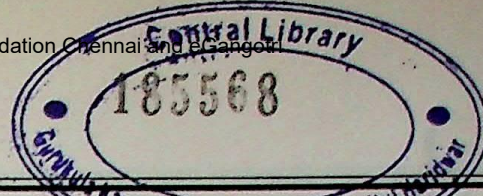
हो सकता है, पर है अत्यन्त निष्फल ही। अतएव मैं वीर पुरुषों से कहे देता हूँ और तपस्वियों को सावधान किये देता हूँ कि जब मैं अपने देश को लौटूँगा, तब पुलिस की लाठियों की मूसलाधार वर्षा में भी अपना नाच-गाना बन्द न करूँगा।

रूस के नाट्यमंच पर कला की तपस्या का जो विकास हुआ है, वह असाधारण है--महान् है। उसमें नवीन सृष्टि का साहस उत्तरोत्तर बढ़ता ही दिखाई देता है, उसकी गति अभी रुकी नहीं है। वहाँ की सामाजिक क्रान्ति में यह नई सृष्टि ही असीम साहस से काम कर रही है। ये लोग समाज में, राष्ट्र में, कला-तत्व में--कहीं भी नवीनता से डरे नहीं हैं।

जिस पुराने धर्मतन्त्र ने और जिस पुराने राज्यतन्त्र ने शताब्दियों से इनकी बुद्धि को प्रभावित कर रखा है और प्रणशक्ति को निःशेषप्राय कर दिया है, इन सोवियत-क्रान्तिकारियों ने उन दोनों ही को निर्मल कर दिया है। इतनी बड़ी बन्धन-जर्जरित पराधीन जाति को इतने थोड़े समय के अंदर इतनी बड़ी मुक्ति दी है कि उसे देखकर हृदय आनन्द से भर जाता है। क्योंकि जो धर्म मानवजाति को मूढ़ता का वाहन बनाकर मनुष्य के चित्त की स्वाधीनता को नष्ट करता है, उससे बढ़कर हमारा शत्रु कोई राजा भी नहीं हो सकता--फिर वह राजा बाहर से प्रजा की स्वाधीनता को कितना ही क्यों न बेड़ियों से बाँधता हो। आज तक यही देखने में आया है कि जिस राजा ने प्रजा को दास बनाये रखना चाहा है, उस राजा का सबसे बड़ा सहायक बना है वही धर्म, जो मनुष्य को अन्धा बनाये रखता है। वह धर्म विष-कन्या के समान है; आलिंगन से वह मुग्ध कर लेता है, और मुग्ध करके मार डालता है। शक्तिशूल की अपेक्षा भक्तिशूल और भी गहरे मर्म में जाकर प्रवेश करता है, क्योंकि उसकी मार आराम की मार होती है।

सोवियतों ने रूस-सम्राट् द्वारा किये गये अपमान और आत्मकृत अपमान के हाथ से इस देश को बचाया है--अन्य देशों के धार्मिक चाहे उनकी कितनी ही निन्दा करें, पर मैं निन्दा नहीं कर सकता। धर्ममोह की अपेक्षा नास्तिकता कहीं अच्छी है। रूस की छाती पर धर्म और अत्याचारी राजा का जो पत्थर धरा था, उसके हटते ही देश को कैसी विराट मुक्ति मिली है--अगर तुम यहाँ होते तो उसे अपनी आँखों से देखते।

8

अतलान्तिक महासागर

रूस से लौट आया, अब जा रहा हूं अमेरिका की ओर। रूस-यात्रा का मेरा एकमात्र उद्देश था--वहाँ जनसाधारण में शिक्षा-प्रचार का काम किस तरह चलाया जा रहा है और उसका फल क्या हो रहा है, थोड़े समय में यह देख लेना।

मेरा मत यह है कि भारतवर्ष की छाती पर जितना दुःख आज अभ्रभेदी होकर खड़ा है, उसकी एकमात्र जड़ है अशिक्षा। जाति-भेद, धर्म-विरोध, कर्म-जड़ता, आर्थिक दुर्बलता--इन सबको जकड़े हुए है शिक्षा का अभाव। साइमन-कमीशन ने भारत के समस्त अपराधों की सूची समाप्त करने के बाद ब्रिटिश शासन का सिर्फ एक ही अपराध कबूल किया है। वह है यथेष्ट शिक्षा-प्रचार की त्रुटि। मगर और कुछ कहने की जरूरत भी न थी। मान लो, यदि कहा जाय कि गृहस्थों ने सावधान होना सीखा, एक घर से दूसरे घर में जाते हुए वे चौखट से ठोकर खाकर मुँह के बल गिर पड़ते हैं, हरदम उनकी चीज-वस्तु खोती ही रहती है, ढूँढ़ने से लाचार हैं; छाया देखते ही उसे हौआ समझकर डरने लगते हैं, अपने भाई को देखकर 'चोर आया' 'चोर आया' कहकर लाठी लेकर मारने दौड़ते हैं और आलसी ऐसे हैं कि सिर्फ बिछौने से चिपटकर पड़े रहते हैं; उठकर घूमने-फिरने का साहस नहीं; भूख लगती है, पर भोजन ढूँढ़ने से लाचार हैं, [illegible] पर अन्ध-विश्वास करने के सिवा और सब रास्ते उनके लिए बंद-से हैं--अतएव अपनी घर-गृहस्थी की देखरेख का भार उन पर नहीं छोड़ा जा सकता--इसके ऊपर सबके अन्त में बहुत ही धीमे स्वर से अगर यह कहा जाय कि 'हमने उनके घर का दिया बुझा रखा है' तो कैसा मालूम पड़े ?
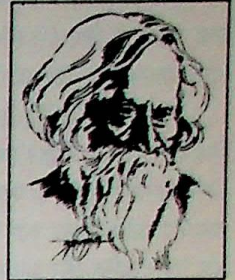
वे लोग एक दिन डाइन कहकर निरपराध स्त्री को जलाते थे, पापी कहकर वैज्ञानिक को मारते थे, धर्ममत की स्वाधीनता को अत्यन्त निष्ठुरता से कुचलते थे, अपने ही धर्म के भिन्न सम्प्रदायों के राष्ट्राधिकार को नष्ट-भ्रष्ट किया था; इसके सिवा कितनी अन्धता थी, कितनी मूढ़ता थी, कितने कदाचार उनमें भरे थे-- मध्य युग के इतिहास से यदि उनकी सूची तैयार की जाय, तो उनका बहुत ऊँचा ढेर लग जाय--ये सब दूर हुई किस तरह ? बाहर के किसी कोर्ट आफ वार्डस् के हाथ उनकी अक्षमता के जीर्णोद्धार का भार नहीं सौंपा गया, एकमात्र शक्ति ने ही उन्हें आगे बढ़ाया है, वह शक्ति है उनकी शिक्षा।

जापान ने इस शिक्षा के द्वारा ही थोड़े समय के अंदर देश की राष्ट्रशक्ति को सर्वसाधारण की इच्छा और उद्यम के साथ मिला दिया है, देश की अर्थोपार्जन की शक्ति को बहुत गुना बढ़ा दिया है। वर्तमान टर्की ने तेजी के साथ इसी शिक्षा को बढ़ाकर धर्मान्धता के भारी बोझ से देश को मुक्त करने का मार्ग दिखाया है। "भारत सिर्फ सोता ही रहता है।" क्योंकि उसने अपने घर में प्रकाश नहीं आने दिया; जिस प्रकाश से आज का संसार जागता है, शिक्षा का वह प्रकाश भारत के बंद दरवाजे के बाहर ही खड़ा है।

जब रूस के लिए रवाना हुआ था, तब बहुत ज्यादा की आशा नहीं की थी। क्योंकि कितना साध्य है और कितना असाध्य, इसका आदर्श मुझे ब्रिटिश भारत से ही मिला है। भारत की उन्नति की दुरूहता कितनी अधिक है, इस बात को स्वयं ईसाई पादरी टमसन ने बहुत ही करुण स्वर में सारे संसार के सामने कहा है। मुझे भी मानना पड़ा है कि दुरूहता है अवश्य, नहीं तो हमारी ऐसी दशा क्यों होती ? यह बात मुझे मालूम थी कि रूस में प्रजा की उन्नति भारत से ज्यादा ही दुरूह थी, कम नहीं। पहली बात तो यह है कि हमारे देश में भद्रेतर श्रेणी के लोगों की जैसी दशा अब है, यहाँ की भद्रेतर श्रेणी की भी--क्या बाहर से और भीतर से--वैसी ही दशा थी। उसी तरह ये लोग भी निरक्षर और निरुपाय थे। पूजा-अर्चना और पुरोहित-पंडों के दिन-रात के तकाजों के मारे इनकी भी बुद्धि बिलकुल दबी हुई थी, ऊपरवालों के पैरों की धूल से इनका भी आत्म-सम्मान मलिन था, आधुनिक वैज्ञानिक युग की सुविधाएँ इन्हें भी कुछ नहीं मिली थीं, इनके भाग्य पर भी पुरखों के जमाने का भूत सवार था। उस भूत ने इन्हें हजारों वर्ष के पुराने अचल खूंटे से बाँध रखा था। बीच-बीच में यहूदी पड़ोसियों के लिए जब उन पर खून सवार हो जाता था, तब इनकी भी पाशविक निष्ठुरता का अन्त नहीं रहता था। ये ऊपरवालों के हाथ से चाबुक खाने में जितने मजबूत थे, अपने समान श्रेणी वालों पर अन्याय-अत्याचार करने में भी उतने ही मुस्तैद रहते थे।

यह तो इनकी दशा थी। आजकल जिनके हाथ में उनका भाग्य है, अंगरेजों की तरह वे ऐश्वर्यशाली नहीं हैं, अभी तो कुल 1917 के बाद से अपने देश में उनका अधिकार आरम्भ हुआ--राष्ट्र-व्यवस्था सब तरफ से पक्की होने योग्य समय और साधन उन्हें मिला ही नहीं--घर और बाहर सर्वत्र विरोध है--उनमें आपसी गृह-कलह का समर्थन करने के लिए अंगरेजों--और यहाँ तक कि अमेरिकनों ने
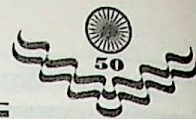
भी--गुप्त और प्रकट रूप में कोशिश की है। जनसाधारण को समर्थ और शिक्षित बना डालने के लिए उन लोगों ने जो प्रतिज्ञा की है, उनकी 'डिफिकल्टी' (कठिनाई) भारी शासकों की डिफिकल्टी से कई गुना बढ़ी है।

इसलिए मेरे लिए ऐसी आशा करना कि रूस जाकर बहुत कुछ देखने को मिलेगा, अनुचित होता। हमने अभी देखा ही क्या है और जानते ही कितना हैं, जिससे हमारी आशा का जोर ज्यादा हो सकता ! अपने दुःखी देश में पली हुई बहुत कमजोर आशा लेकर रूस गया था। वहाँ जाकर जो कुछ देखा, उससे आश्चर्य में डूब गया। शान्ति और व्यवस्था की कहाँ तक रक्षा की जाती है, कहाँ तक नहीं--इस बात की जाँच करने का मुझे समय नहीं मिला; सुना जाता है कि काफी जबरदस्ती होती है, बिना विचार के शीघ्रता से दंड भी दिया जाता है। और सब विषयों में स्वाधीनता है, पर अधिकारियों के विधान के विरुद्ध बिलकुल नहीं। यह तो हुई चन्द्रमा के कलंक की दिशा, परन्तु मेरा तो मुख्य लक्ष्य था प्रकाश की दिशा पर। उस दिशा में जो दीप्ति दिखी, वह आश्चर्यजनक थी--जो एकदम अचल थे, वे सचल हो उठे हैं।

सुना जाता है कि यूरोप के किसी-किसी तीर्थ-स्थान से, दैव की कृपा से, चिरपंगु भी अपनी लाठी छोड़कर पैदल वापस आये हैं--यहाँ भी वही हुआ; देखते-देखते ये पंगु की लाठी को दौड़ने वाला रथ बनाते चले जा रहे हैं--जो प्यादों से भी गये-बीते थे, दस ही वर्ष में वे रथी बन गये हैं। मानव-समाज में वे सिर ऊँचा किये खड़े हैं, उनकी बुद्धि अपने वश में है, उनके हाथ-हथियार सब अपने वश में हैं।

हमारे सम्राट्-वंश के ईसाई पादरियों ने भारतवर्ष में बहुत वर्ष बिता दिये हैं; डिफिकल्टीज़ कैसी अचल हैं, इस बात को वे समझ गये हैं। एक बार उनको मास्को आना चाहिए। पर आने से विशेष लाभ नहीं होगा--क्योंकि खास तौर से कलंक देखना ही उनका व्यवसायगत अभ्यास है, प्रकाश पर उनकी दृष्टि नहीं पड़ती--खासकर उन पर तो और भी नहीं पड़ती, जिनसे उन्हें विरक्ति है। वे भूल जाते हैं कि उनके शासन-चन्द्र में भी कलंक ढूँढ़ने के लिए बड़े चश्मे की जरूरत नहीं पड़ती।

लगभग सत्तर वर्ष की उमर हुई--अब तक मेरा धैर्य नहीं गया। अपने देश की मूढ़ता के बहुत भारी बोझ की ओर देखकर मैंने अपने ही भाग्य को अधिकता से दोष दिया है, बहुत ही कम शक्ति के बूते पर थोड़े बहुत प्रतिकार की भी कोशिश की है; परन्तु जीर्ण आशा का रथ जितने कोस चला है, उससे कहीं अधिक बार उसकी रस्सी टूटी है, पहिये टूटे हैं ! देश के अभागों के दुःख की ओर देखकर सारे अभिमान को तिलांजलि दे चुका हूँ। सरकार से सहायता माँगी है, उसने वाहवाही भी दे दी है, जितनी भीख दी उससे ईमान गया, पर पेट नहीं भरा। सबसे बढ़कर दुःख और शर्म की बात यह है कि उनके प्रसाद से पलने वाले हमारे स्वदेशी जीवों ने ही उसमें सबसे ज्यादा रोड़े अटकाये हैं। जो देश दूसरों के शासन पर चलता है; उस देश में सबसे भयानक व्याधि हैं ये ही लोग--जहाँ पर अपने ही देश के लोगों के मन में ईर्ष्या, क्षुद्रता और स्वदेश-विरुद्धता की कालिमा उत्पन्न हो जाय, उस देश के लिए उससे भयानक विष और क्या हो सकता है ?

बाहर के सब कामों के ऊपर भी एक चीज़ होती है, वह है आत्मा की साधना। राष्ट्रीय और आर्थिक अनेक तरह की गडबड़ियों में जब मन गँदला हो जाता है, तब उसे हम स्पष्ट नहीं देख सकते, इसलिए उसका जोर घट जाता है। मेरे अंदर वह बला मौजूद है, इसीलिए असली चीज को मैं जकड़े रहना चाहता हूँ। इसके लिए कोई मेरा मजाक उड़ाता है तो कोई मुझ पर गुस्सा होता है--वे अपने मार्ग पर मुझे भी खींच ले जाना चाहते हैं। परन्तु मालूम नहीं, कहाँ से आया हूँ मैं इस संसार-तीर्थ में, मेरा मार्ग मेरे तीर्थ देवता की वेदी के पास ही है। मेरे जीवन-देवता ने मुझे यही मंत्र दिया है कि मैं मनुष्य-देवता को स्वीकार करके उसे प्रणाम करता हुआ चलूँ। जब मैं उस देवता का-निर्माल्य ललाट पर लगाकर चलता हूँ, तब सभी जाति के लोग मुझे बुलाकर आसन देते हैं--मेरी बात दिल लगाकर सुनते हैं। जब मैं

भारतीयत्व का जामा पहन खड़ा होता हूँ, तो अनेक बाधाएँ सामने आती हैं। जब ये लोग मुझे मनुष्य रूप में देखते हैं, तब मुझ पर भारतीय रूप में ही श्रद्धा करते हैं; जब मैं खालिस भारतीय रूप में दिखाई देना चाहता हूँ, तब ये लोग मेरा मनुष्य-रूप में आदर कर नहीं पाते। अपना धर्म पालन करते हुए मेरा चलने का मार्ग गलत समझने के द्वारा ऊबड़ खाबड़ हो जाता है। मेरी पृथ्वी की मियाद संकीर्ण होती आ रही है, इसीलिए मुझे सत्य बनने की कोशिश करनी चाहिए, प्रिय बनने की नहीं।

मेरी यहाँ की खबरें झूठ-सच नाना रूप में देशमें पहुँचा करती हैं। उस विषय में हमेशा मुझसे उदासीन नहीं रहा जाता, इसके लिए मैं अपने को धिक्कारता हूँ। बार-बार ऐसा मालूम होता रहता है कि वानप्रस्थ की अवस्था में समाजस्थ की तरह व्यवहार करने से विपत्तियों का सामना करना पड़ता है।

कुछ भी हो, इस देश की 'एनार्मस डिफिकल्टीज' (अन्तर्तम या अत्यन्त भीतर कठिनाइयों) की बातें किताबों में पढ़ी थीं, कानों से सुनी थीं, पर आज उन डिफिकल्टीज को (कठिनाइयों को) पार करने का चेहरा भी आँखों से देख लिया। बस।

4 अक्टूबर, 1930

9

'ब्रेमेन' जहाज

हमारे देश में पालिटिक्स को जो लोग खालिस पहलवानी समझते हैं, उन लोगों ने सब तरह की ललित कलाओं को पौरुष का विरोधी मान रखा है। इस विषय में मैं पहले ही लिख चुका हूँ। रूस का ज़ार किसी दिन दशानन के समान सम्राट् था, उसके साम्राज्य ने पृथ्वी का अधिकांश भाग अजगर सर्प की तरह निगल लिया था, और पूँछ से भी जिसको उसने लपेटा, उसके भी हाड़-गोड़ पीस डाले।

लगभग तेरह वर्ष हुए होंगे, इसी जार के प्रताप के साथ क्रान्तिकारियों की लड़ाई ठन गई थी। सम्राट् जब मय अपने खानदान के लुप्त हो चुका, उसके बाद भी उसके अन्य सम्बन्धी लोग दौड़-धूप करने लगे और अन्य साम्राज्य-भोगियों ने अस्त्र और उत्साह देकर उनकी सहायता की। अब समझ सकते हो कि इन कठिनाइयों का सामना करना कितना कठिन था। पूँजीवादी--जो एक दिन सम्राट् के उपग्रह थे और किसानों पर जिनका असीम प्रभुत्व था--उनका सर्वनाश होने लगा। लूट-खसोट, छीना-झपटी शुरू हो गई, सारी प्रजा अपने पुराने प्रभुओं की बहुमूल्य भोग-सामग्रियों का सत्यानाश करने पर तुल पड़ी। इतने उच्छृंखल उपद्रव के समय भी क्रान्तिकारियों के नेताओं ने कड़ा हुक्म दिया कि आर्ट की वस्तुओं को किसी तरह भी नष्ट न होने दो। धनियों के छोड़े हुए प्रासाद-तुल्य मकानों में भी कुछ रक्षण-योग्य चीज-वस्तु थी, अध्यापक और छात्रों ने मिलकर--भूख और जाड़े से कष्ट पाते हुए भी--सब ला-लाकर युनिवर्सिटी के म्यूज़ियम में सुरक्षित रख दिया।

याद है, हम जब चीन गये थे तो वहाँ क्या देखा था ? यूरोप के साम्राज्य-भोगियों ने पेकिन का वसन्त-प्रसाद धूल में मिला दिया, युगों से संगृहीत अमूल्य शिल्प-सामग्रियों

को लूटकर उन्हें तोड़कर नष्ट कर दिया। वैसी चीजें अब संसार में कभी बन ही नहीं सकेंगी।

सोवियतों ने व्यक्तिगत-रूप से धनिकों को वंचित किया है, परन्तु जिस ऐश्वर्य पर मनुष्य-मात्र का चिर-अधिकार है, जंगलियों की तरह उसे नष्ट नहीं होने दिया। अब तक जो दूसरों के भोग के लिए जमीन जोतते आये हैं, इन लोगों ने उन्हें सिर्फ जमीन का स्वत्व ही नहीं दिया, बल्कि ज्ञान के लिए--आनन्द के लिए--मानव जीवन में जो कुछ मूल्यवान चीज है, सब कुछ दिया है। इस बात को उन्होंने अच्छी तरह समझा है कि सिर्फ पेट-भरने की खुराक पशु के लिए काफी है, मनुष्य के लिए नहीं, और इस बात को भी वे मानते हैं कि वास्तविक मनुष्यत्व के लिए पहलवानी की अपेक्षा आर्ट या कला का अनुशीलन बहुत बड़ी चीज है।

यह सच है कि विप्लव के समय इनकी बहुत सी ऊपर की चीजें नीचे दी गई हैं; परन्तु वे मौजूद हैं, और उनसे म्यूज़ियम, थियेटर, लाइब्रेरियाँ और संगीतशालाएँ भर गई हैं।

एक दिन था, जब भारत की तरह यहाँ के गुणियों के गुण भी मुख्यतः धर्म-मन्दिरों में ही प्रकट होते थे। महन्त लोग अपनी स्थूल रुचि के अनुसार जैसे चाहते थे, हाथ चलाया करते थे। आधुनिक शिक्षित भक्त बाबुओं ने जैसे पुरी के मन्दिर पर पलस्तर कराने में संकोच नहीं किया, उसी तरह यहाँ के मन्दिरों के मालिकों ने अपने संस्कार के अनुसार जीर्ण-संस्कार करके प्राचीन कीर्ति को बेखटके ढक दिया है--इस बात का ख्याल भी नहीं किया कि उसका ऐतिहासिक मूल्य सार्वजनिक और सार्वकालिक है, यहाँ तक कि पूजा के पुराने पात्र तक नये ढलवाये हैं। हमारे देश में भी मठ और मन्दिरों में बहुत सी चीज़ें ऐसी हैं, जो ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्यवान हैं; परन्तु कोई भी उसे काम में नहीं ला सकता--महन्त भी गहरे मोह में डूबे हुए हैं--काम में लाने-योग्य बुद्धि और विद्या से उनका कोई सरोकार ही नहीं। क्षिति बाबू से सुना था कि मठों में अनेक प्राचीन पोथियाँ कैद हुई पड़ी हैं--जैसे दैत्यपुरी में राजकन्या रहती है, उद्धार करने का कोई रास्ता ही नहीं !

क्रान्तिकारियों ने धर्म मन्दिरों की चहारदीवारी को तोड़कर उन्हें सर्वसाधारण की सम्पत्ति बना दिया है। पूजा की सामग्रियों को छोड़कर बाकी सब सामान म्यूज़ियम में इकट्ठे किये जा रहे हैं। इधर जबकि आत्म-विप्लव चल रहा है, चारों ओर टाइफाइड का प्रबल प्रकोप हो रहा है, रेल के मार्ग सब नष्ट कर दिये गये हैं--ऐसे समय में वैज्ञानिक अन्वेषकगण आसपास के क्षेत्र में जा-जाकर प्राचीनकाल की शिल्प-सामग्रियों का उद्धार कर रहे हैं। इतनी पोथियाँ, इतने चित्र, खुदाई के काम के अलभ्य नमूने संग्रह किये हैं कि जिनकी हद नहीं।

यह तो हुआ धनिकों के मकान और धर्म-मन्दिरों में जो कुछ मिला, उसका वर्णन। यहाँ के मामूली किसान कारीगरों की बनाई हुई शिल्प-सामग्रियाँ, प्राचीनकाल में जिनकी अवज्ञा की जाती थी, उनका मूल्य भी ये समझने लगे हैं, और उधर इनकी दृष्टि है। सिर्फ चित्र ही नहीं, बल्कि लोक-साहित्य और लोकसंगीत आदि का काम भी बड़ी तेजी से चल रहा है। यह हुआ इनका संग्रह।

इन संग्रहकों के द्वारा लोक-शिक्षा की व्यवस्था की गई है। इससे पहले ही मैं इस विषय में तुम्हें लिख चुका हूँ। इतनी बातें मैं जो तुमको लिख रहा हूँ, उसका कारण यह है कि अपने देशवासियों को मैं जता देना चाहता हूँ कि आज से केवल दस वर्ष पहले रूस की साधारण जनता हमारे यहाँ की वर्तमान साधारण जनता के समान ही थी; सोवियत-शासन में उसी श्रेणी के लोगों को शिक्षा के द्वारा आदमी बना देने का आदर्श कितना ऊँचा है। इसमें विज्ञान, साहित्य, संगीत, चित्रकला--सभी कुछ है; अर्थात् हमारे देश में भद्र-नामधारियों के लिए शिक्षा का जैसा कुछ आयोजन है, यहाँ की व्यवस्था उससे कहीं अधिक सम्पूर्ण है।

अखबारों में देखा कि फिलहाल हमारे देश में प्राथमिक शिक्षा का प्रचार करने के लिए हुक्म जारी किया गया है कि प्रजा से कान पकड़कर शिक्षा-कर वसूल किया जाय, और वसूल करने का भार दिया गया है जमींदारों पर। अर्थात् जो वैसे ही अधमरे पड़े हैं, शिक्षा के बहाने उन्हीं पर बोझ लाद दिया है।

शिक्षा-कर जरूर चाहिए, नहीं तो खर्चा कहाँ से चलेगा ? परन्तु देश के हित के लिये जो कर है, उसे सब कोई मिलकर क्यों नहीं देंगे ? सिविल-सर्विस है, मिलिटरी सर्विस है। गवर्नर, वायसराय और उनके सदस्यगण हैं। उनकी भरी जेबों में हाथ क्यों नहीं पड़ता ? वे क्या इन किसानों की ही रोज़ी में तनखाह और पेन्शन लेकर अन्त में जाकर उसका भोग नहीं करते ? जूट-मिलों के जो बड़े-बड़े विलायती महाजन सन उपजाने वाले किसानों के खून से मोटा मुनाफा उठाकर देश को रवाना कर दिया करते है, उन पर क्या इन मृतप्राय किसानों की शिक्षा का जरा भी दायित्व नहीं है ? जो मिनिस्टरवर्ग शिक्षा-कानून पास करने में भर-पेट उत्साह प्रकट करते हैं, उन्हें क्या अपने उत्साह की कानी-कौड़ी कीमत भी अपनी जेब से नहीं देना चाहिए ?

क्या इसी का नाम है शिक्षा से सहानुभूति ? मैं भी तो एक जमींदार हूँ, अपनी प्रजा की प्राथमिक शिक्षा के लिए कुछ दिया भी करता हूँ और भी दो-तीन गुना अगर देना पड़े, तो देने को तैयार हूँ; परन्तु यह बात उन्हें प्रतिदिन समझा देना जरूरी है कि मैं उनका अपना आदमी हूँ, उनकी शिक्षा से मेरा ही हित है, और हम ही उन्हें देते हैं। राज्य के शासन में ऊपर से लेकर नीचे तक जिनका हाथ है, उनमें से कोई भी एक पैसा अपने पास से नहीं देता।

सोवियत-रूस के जनसाधारण की उन्नति का भार बहुत ही ज्यादा है, उसके लिए आहार-विहार में लोग कम कष्ट नहीं पा रहे हैं ; परन्तु उस कष्ट का हिस्सा ऊपर से लेकर नीचे तक सबने समान रूप से बाँट लिया है। ऐसे कष्ट को कष्ट नहीं कहूँगा, वह तो तपस्या है। प्राथमिक शिक्षा के नाम से सरसों-भर शिक्षा का प्रचलन कर भारत-सरकार इतने दिनों बाद दो सौ वर्ष का कलंक धोना चाहती है, और मजा यह कि उसके दाम वे ही देंगे, जो दान देने में सबसे ज्यादा असमर्थ हैं; सरकार के लाड़ले अनेकानेक वाहनों पर तो आँच तक न आने पायेगी--वे तो सिर्फ गौरव-करने के लिए हैं !

मैं अपनी आँखों से न देखता तो किसी कदर भी विश्वास न करता कि अशिक्षा और अपमान के खंदक में से निकालकर सिर्फ दस ही वर्ष के अन्दर लाखों आदमियों को इन्होंने सिर्फ क ख ग घ ही नहीं सिखाया, बल्कि उन्हें मनुष्यत्व से सम्मानित किया है। केवल अपनी ही जाति के लिए नहीं, दूसरी जातियों के लिए भी इन्होंने समान उद्योग किया है। फिर भी साम्प्रदायिक धर्म के लोग इन्हें अधार्मिक बताकर इनकी निन्दा किया करते हैं। धर्म क्या सिर्फ पोथियों के मन्त्र में है, देवता क्या केवल मन्दिर की वेदी पर ही रहते हैं ? मनुष्य को जो सिर्फ धोखा ही देते रहते हैं, देवता क्या उनमें कहीं पर मौजूद हैं ?

बहुत सी बातें कहनी हैं। इस तरह तथ्य संग्रह करके लिखने का मुझे अभ्यास नहीं, पर न लिखना अन्याय होगा--इसी से लिखने बैठा हूँ। रूस की शिक्षा-पद्धति के बारे में क्रमशः लिखने का मैंने निश्चय कर लिया है। कितनी ही बार मेरे मन में आया है कि और कहीं नहीं, रूस में आकर तुम लोगों को सब देख जाना चाहिए। भारत से बहुत से गुप्तचर यहाँ आते हैं, क्रान्तिकारियों का भी आना-जाना बना

ही रहता है; मगर मैं समझता हूँ कि और किसी चीज के लिए नहीं, शिक्षा-सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त करने के लिए यहाँ आना हमारे लिए बहुत ही आवश्यक है।

खैर, अपनी बातें लिखने में मुझे उत्साह नहीं मिलता। आशंका होती है कि कहीं अपने को आर्टिस्ट समझकर अभिमान न करने लग जाऊँ। परन्तु अब तक जो बाहर से ख्याति मिली है, वह अन्तर तक नहीं पहुँची। बार-बार यही मन में आता है कि वह ख्याति दैव के गुण से मिली है, अपने गुण से नहीं।

इस समय बीच समुद्र में बह रहा हूँ। आगे चलकर तकदीर में क्या बदा है, मालूम नहीं। शरीर थक गया है, मन में इच्छाओं का उफान नहीं है। रीते भिक्षा पात्र के समान भारी चीज दुनिया में और कुछ भी नहीं, जगन्नाथ को उसका अन्तिम अर्घ देकर न जाने कब छुट्टी मिलेगी ?

5 अक्तूबर,1930

10

डी० "ब्रेमेन"

विज्ञान की शिक्षा में पुस्तक पढ़ने के साथ आँखों से देखने का योग रहना चाहिए, नहीं तो उस शिक्षा का तीन-चौथाई हिस्सा बेकार चला जाता है। सिर्फ विज्ञान ही क्यों, अधिकांश शिक्षाओं पर यही बात घटती है। रूस में विविध विषयों के म्यूज़ियमों द्वारा उस शिक्षा में सहायता दी जाती है। ये म्यूज़ियम सिर्फ बड़े-बड़े शहरों में ही नहीं, बल्कि हर प्रान्त में छोटे-छोटे देहातों तक के लोगों को प्रत्यक्ष ज्ञान कराते हैं।

आँखों से देखकर सीखने की दूसरी प्रणाली भ्रमण भी है। तुम्हें तो मालूम ही है कि मैं बहुत दिनों से भ्रमण विद्यालय के संकल्प को मन में लादे आ रहा हूँ। भारतवर्ष इतना बड़ा देश है, सभी विषयों में उसका इतना अधिक वैचित्र्य है कि हंटर के गज़टियर पढ़कर सम्पूर्णतः उसकी उपलब्धि नहीं की जा सकती। किसी समय हमारे देश में पैदल भ्रमण करने की प्रथा थी--और हमारे तीर्थ भी भारत में सर्वत्र व्याप्त हैं। भारतवर्ष को यथासम्भव समग्र रूप से प्रत्यक्ष जानने और अनुभव में लाने का वही उपाय था। केवल शिक्षा को लक्ष्य बनाकर पाँच वर्ष तक छात्रों को यदि सारा भारतवर्ष घुमाया जाय, तो उनकी शिक्षा पक्की शिक्षा हो सकती है।

मन तब सचल रहता है, जब वह शिक्षा के विषयों को सरलता से ग्रहण कर सकता है और उसका परिपाक भी अच्छा होता है। बँधी हुई खुराक के साथ-साथ जैसी गायों को खेतों में चरकर खाने देना भी जरूरी है, उसी तरह बँधी हुई शिक्षा के साथ ही साथ चरकर शिक्षा ग्रहण करना भी हृदय या मन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। अचल विद्यालयों में कैद रहकर अचल श्रेणी या क्लासों की पुस्तकों की खुराक से मन का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता। पुस्तकों की आवश्यकता को एकदम अस्वीकार नहीं किया जा सकता--मनुष्य के लिए ज्ञान के विषय इतने अधिक हैं कि खेत में चरकर पूरा पेट नहीं भरा जा सकता, भंडार से ही उन्हें अधिकतर लेना पड़ता है। परन्तु पुस्तक के विद्यालय को साथ लेकर यदि प्रकृति के विद्यालय में भी छात्रों को घुमाया जाय, तो फिर किसी तरह की कमी न रहे। इस विषय में बहुत सी बातें मेरे मन में थीं और आशा थी कि यदि पूँजी मिले तो किसी समय शिक्षा परिव्रजन चला सकूँगा। परन्तु अब मेरे पास समय भी नहीं है और पूँजी भी नहीं मिल सकती।

सोवियत रूस में, जैसा कि देख रहा हूँ, सर्वसाधारण के लिए देश-भ्रमण की व्यवस्था का भी काफी प्रसार हो रहा है। विशाल इनका देश है, विचित्र जातियों के मनुष्य उसके अधिवासी हैं। ज़ार के शासनकाल में एक तरह से इनको परस्पर भेंट-मुलाकात, जान-पहचान और मिलने-जुलने की सुविधाएँ प्राप्त नहीं थीं। यह तो कहना ही व्यर्थ है कि उस समय देश-भ्रमण एक शौक की चीज थी, और वह धनाढ्यों के लिए ही सम्भव था। सोवियत के जमाने में सर्वसाधारण के लिए उनकी व्यवस्था है। परिश्रम से थके हुए तथा रुग्ण मजूरों की थकावट और रोग दूर करने के लिए पहले से ही सोवियतों ने दूर और निकटवर्ती अनेक स्थानों में स्वास्थ्य निवासों की स्थापना के लिए उद्योग किया है। पहले जमाने के बड़े-बड़े महल-मकानों को उन लोगों ने इसी काम में लगा दिया है। उन सब स्थानों में जाकर जैसे विश्राम और आरोग्य लाभ करना एक लक्ष्य है, उसी तरह दूसरा लक्ष्य शिक्षा प्राप्त करना भी है।
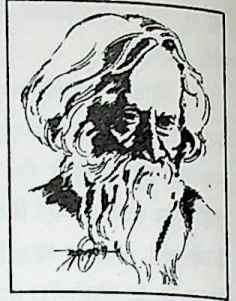
लोक-हित के प्रति जिनका अनुराग है, इस भ्रमण के समय वे नाना स्थानों में जाकर नाना प्रकार के मनुष्यों की अनुकूलता के विषय में भी चिन्ता करते हैं, और यही उसके लिए अच्छा अवसर है। जनसाधारण को देश-भ्रमण के लिए उत्साहित करने और उसके लिए उन्हें सुविधाएँ देने के लिए रास्ते में बीच-बीच में खास-खास विषयों की शिक्षा देने के योग्य संस्थाएँ खोली गई हैं; वहाँ पथिकों के खाने-पीने और रहने-सोने का इन्तजाम है; इसके सिवा सब तरह के जरूरी विषयों में वहाँ से उन्हें अच्छी सलाह मिल सकती है। काकेशिया प्रान्त भूतत्व की आलोचना के लिए एक उपयोगी स्थान है। वहाँ इस तरह के पान्थ-शिक्षालयों में भूतत्व के सम्बन्ध में विशेष व्याख्यान दिये जाते हैं। जो प्रान्त विशेष रूप से मनुष्यतत्त्व की आलोचना के लिए उपयुक्त हैं, उन स्थानों में मनुष्यतत्व के विशेषज्ञ उपदेशक तैयार किये गये हैं।

गरमियों के दिनों में हजारों भ्रमणेच्छु दफ्तरों में जाकर अपने नाम दर्ज कराते हैं। इस तरह की यात्राएँ मई महीने से शुरू होती हैं--प्रतिदिन दल के दल नाना मार्गों से यात्रा करने के लिए निकल पड़ते हैं--एक-एक दल में पचीस-तीस यात्री होते हैं। सन् 1928 में इन यात्री-संघों के सदस्यों की संख्या थी तीन हज़ार के लगभग--29 में उनकी संख्या हुई है बारह हजार से भी ऊपर।

इस विषय में यूरोप के अन्य स्थानों या अमेरिका से तुलना करना ठीक न होगा; हमेशा याद रखना चाहिए कि रूस में आज से दस वर्ष पहले मजदूरों की दशा हमारे ही समान थी। इस बात का किसी को आभास तक न था कि वे शिक्षा प्राप्त करेंगे, विश्राम करेंगे या स्वास्थ्य-सम्पन्न होंगे। आज इन लोगों को जो सुविधाएँ सहज ही में मिल रही हैं, वे हमारे यहाँ के मध्यम श्रेणी के गृहस्थों के लिए तो आशातीत हैं और धनिकों के लिए भी सहज नहीं है। इसके सिवा वहाँ शिक्षा प्राप्त करने की धारा सारे देश-भर में एक साथ इतनी प्रणालियों से बह रही है कि सिविल-सर्विस से संरक्षित हमारे देशवासी उसकी कल्पना ही नहीं कर सकते।

जैसी शिक्षा की व्यवस्था है वैसी ही स्वास्थ्य की। स्वास्थ्य तत्व के विषय में सोवियत-रूस में जैसा वैज्ञानिक अनुशीलन हो रहा है, उसे देखकर यूरोप और अमेरिका के विद्वान भी इनकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं। सिर्फ मोटी तनखाह वाले विशेषज्ञों से पुस्तकें लिखवाना ही इनके कर्त्तव्य की हद हो, सो बात नहीं। ये तो इस कोशिश में हैं कि साधारण जनता में भी स्वास्थ्य-विज्ञान के प्रयोगों को व्याप्त कर दें; यहाँ तक कि देश की चौरंगी से जो बहुत दूर रहते हैं, वे भी अस्वास्थ्यकर अवस्था में बिना सेवा और इलाज के न मरने पावें--वहाँ तक ये अपनी पूरी दृष्टि दौड़ाते हैं।

सारे देश में घर-घर यक्ष्मा या क्षयरोग फैला हुआ है--रूस आने के बाद इस प्रश्न को मन से दूर कर ही न सका कि हमारे यहाँ गरीब मुमूर्षुओं के कितने

आरोग्याश्रम हैं ? इस समय यह प्रश्न मेरे हृदय में इसलिए और भी उठ खड़ा हुआ है कि ईसाई धर्मयाजक लोग भारत-शासन की बड़ी-भारी डिफिकल्टीज़ के बारे में अमेरिका वालों के सामने रोया-झींका करते हैं।

डिफिकल्टीज़ हैं क्यों नहीं, जरूर हैं। एक ओर उन डिफिकल्टीज़ की जड़ में भारतीयों की अशिक्षा और दूसरी ओर है भारत-शासन की बहुव्ययिता--अनापशनाप खर्च। उसके लिए किसे दोष दिया जाय ? रूस में अन्न-वस्त्र का अभाव आज भी दूर नहीं हुआ है; रूस भी बहु-विस्तृत देश है, वहाँ भी बहुत विचित्र जातियों का वास है, वहाँ भी अज्ञान और स्वास्थ्य तत्व के विषय में पर्वत-प्रमाण अनाचार मौजूद था, परन्तु फिर भी, न तो वहाँ शिक्षा-प्रचार में किसी तरह की बाधा है और न स्वास्थ्य प्रचार में कोई अड़चन। इसीलिए बिना प्रश्न किये रहा नहीं जाता कि डिफिकल्टीज़ दर-असल हैं किस जगह ?

जो मेहनत-मजदूरी करके पेट भरते हैं, उन्हें सोवियत स्वास्थ्य-निवासों में बिना खर्च के रहने दिया जाता है, और उन स्वास्थ्य-निवासों के साथ ही साथ आरोग्य-आश्रम भी होते हैं। वहाँ सिर्फ चिकित्सा ही नहीं, बल्कि पथ्य और सुश्रूषा की भी उचित व्यवस्था रहती है। ये सभी व्यवस्थाएँ सर्वसाधारण के लिए हैं; और सर्वसाधारण में ऐसी जातियाँ शामिल हैं, जिन्हें यूरोपीय नहीं कहा जा सकता, और यूरोप के आदर्श के अनुसार जिन्हें असभ्य कहा जाता है।

इस तरह की पिछड़ी हुई जातियों का--जो यूरोपीय रूस के किनारे या बाहर रही हैं, शिक्षा के लिए सन् 1928 के बजट में कितने रुपये स्वीकृत किये गये हैं, उसे देखने से ही पता चल जायगा कि शिक्षा-प्रचार के लिए इनका कैसा उदार प्रयत्न है। यूक्रेनियन रिपब्लिक के लिए 40 करोड़ 30 लाख, अति-काकेशीय रिपब्लिक के लिए 3 करोड़ 40 लाख, उजबेकिस्तान के लिए 9 करोड़ 70 लाख और तुर्कमेनिस्तान के लिए 2 करोड़ 9 लाख रूबल मंजूर किये गये हैं।

अनेक देशों में अरबी लिपि का प्रचलन होने के कारण शिक्षा प्रचार में अड़चन होती थी, वहाँ रोमन लिपि चलाकर वह अड़चन दूर कर दी गई।

जिस बुलेटिन से यह तथ्य संग्रह किया गया है, उसके दो अंश उद्धृत किये जाते हैं :--

"ऐनअदर ऑफ द मोस्ट इम्पॉर्टेण्ट टास्क्स इन द स्फीअर ऑफ कल्चर इज़ अनडाउटेडली द स्टेबिलाइज़ेशन ऑफ लोकल एडमिनिस्ट्रेटिव इंस्टीट्यूशन्स एण्ड द ट्रांस्फर ऑफ ऑल लोकल गवर्नमेण्ट एण्ड एडमिनिस्ट्रेटिव वर्क इन द फेडरेटिव एण्ड ऑटोनॉमस रिपब्लिक्स टु अ लैंग्वेज व्हिच इज़ फैमीलियर टु द ट्वायलिंग मासेज़। दिस इज़ बाई नो मीन्स सिम्पिल, एण्ड ग्रेट एफ़र्ट्स आर स्टिल नीडेड इन दिस रिगार्ड, ओइंग टु द लो कल्चरल लेविल ऑफ दि मॉस आफ दि वर्कर्स एण्ड पीजेन्ट एण्ड लैक आफ सफ़ीशिएण्ट स्किल्ड लेबर।"

इसकी जरा व्याख्या कर देना जरूरी है। सोवियत-संगठन के अन्तर्गत कई रिपब्लिक और स्वतंत्र-शासित देश हैं। वे प्रायः यूरोपीय नहीं हैं, और वहाँ का आचार-व्यवहार भी आधुनिक काल से नहीं मिलता। उद्धृत अंश से समझ सकते हैं कि सोवियतों के मतानुसार देश का शासन-तंत्र देशवासियों की शिक्षा ही का एक प्रधान उपाय और अंग है।

हमारे देश की राष्ट्र-संचालन की भाषा यदि देशवासियों की अपनी भाषा होती, तो शासन-तंत्र की शिक्षा उनके लिए सुगम हो जाती। राष्ट्र की भाषा अंगरेज़ी होने से सर्वसाधारण के लिए शासन नीति के विषय में स्पष्ट धारणा या ज्ञान प्राप्त करना पहुँच के बाहर की बात ही बनी रही। बीच में कोई मध्यस्थ बनकर उनका उससे योग कराता है, परन्तु प्रत्यक्ष सम्बन्ध कुछ नहीं रहा। एक ओर जैसे आत्मरक्षा के लिए अस्त्र चलाने की शिक्षा और अभ्यास से जनता वंचित है, वैसे ही दूसरी ओर वह देश-शासन की नीति के ज्ञान से भी वंचित है। राष्ट्र-शासन की भाषा भी दूसरों की भाषा होने से पराधीनता के नागपाश की गाँठ और भी दृढ़ हो गई है। राजमंत्रणा-सभा में अंगरेजी भाषा में जो आलोचनाएँ हुआ करती हैं, उसकी सफलता कहाँ तक है, हम अनाड़ी उसे नहीं समझते; परन्तु उससे जो प्रजा को शिक्षा मिल सकती थी, वह बिलकुल नहीं मिली।

दूसरा अंश यह है :--

"व्हेनएवर क्वेस्चंस ऑफ़ कल्चर इकोनॉम्ड कन्स्ट्रक्शन इन द नेशनल रिपब्लिक्स एण्ड डिस्ट्रिक्ट्स कम बिफ़ोर द ऑर्गन्स ऑफ द सोवियत गवर्नमेण्ट, दे आर सेटिल्ड नॉट ऑन द लाइन्स ऑफ द मैक्सिमम डेवेलपमेण्ट ऑफ़ इंडिपेन्डेंस अमंग द ब्रॉड मासेज़ ऑफ वर्कर्स एण्ड पीसेण्ट्स एण्ड ऑफ़ द इनीसिएटिव आफ लोकल सोवियत ऑर्गन्स।"

जिनका यहाँ उल्लेख किया गया है, वे पिछड़ी हुई जातियाँ हैं। उनकी शुरू से लेकर अन्त तक समस्त डिफिकल्टीज दूर कर देने के लिए सोवियटों ने दो सौ वर्ष चुपचाप बैठे रहने का बन्दोबस्त नहीं किया। पिछले दस वर्षों में लगातार उनके लिए प्रयत्न होता रहा है। सब देख-भालकर मैं सोच रहा हूँ कि हम क्या उजबेकों और तुर्कमानियों से भी पिछड़े हुए हैं ? हमारी डिफिकल्टीज़ का माप क्या इनसे भी बीस गुना बड़ा है ?

एक बात की याद उठ आई। इनके यहाँ खिलौनों के म्यूज़ियम हैं। इन खिलौनों के संग्रह का संकल्प मेरे मन में जमाने से चक्कर काट रहा है। तुम्हारे यहाँ नन्दनालय और कला-भंडार में आखिर यह काम शुरू हुआ तो सही, यह खुशी की बात है। रूस से कुछ खिलौने मिले हैं। लगभग हमारे ही समान हैं।

पिछड़ी हुई जातियों के सम्बन्ध में और कुछ कहना है। कल लिखूँगा। परसों सवेरे पहुँचूँगा न्यूयार्क। उसके बाद लिखने को काफी समय मिलेगा या नहीं, कौन कह सकता है ?

7 अक्तूबर, 1930

11

पिछड़ी हुई जातियों की शिक्षा के लिए सोवियत-रूस में कैसा उद्योग हो रहा है--यह बात मैं तुम्हें पहले लिख चुका हूँ। आज दो-एक दृष्टान्त देता हूँ।

उराल पर्वत के दक्षिण में बास्किरों का निवास है। ज़ार के जमाने में वहाँ की साधारण प्रजा की दशा हमारे ही देश के समान थी। वे जीवन-भर चिर-उपवास के किनारे से ही चला करते थे। तनखाह उन्हें बहुत कम मिलती थी, किसी कारखाने में ऊँचे पद पर काम करने लायक उनमें शिक्षा या योग्यता नहीं थी, इसलिए परिस्थिति के कारण उन्हें सिर्फ मजदूरी का ही काम करना पड़ता था। क्रान्ति के बाद इस देश की प्रजा को स्वतंत्र शासन के अधिकार देने का प्रयत्न शुरू हुआ।

पहले जिन पर भार पड़ा था, वे थे पहले जमाने के धनी जमींदार-किसान, धर्मयाजक पढ़े-लिखे लोग--वर्तमान में हम जिन्हें शिक्षित कहते हैं। सर्वसाधारण को इससे कुछ सहूलियत नहीं हुई। और उस पर ठीक उसी समय कलचाक की सेना ने उपद्रव शुरू कर दिया। वह थी जार के जमाने की पक्षपातिनी, उसके साथ था शक्तिशाली बाहरी शत्रुओं का उत्साह और सहानुभूति। सोवियतों ने किसी तरह उन्हें

भगाया भी, तो फिर आ गया दुर्भिक्ष। खेती-बारी की व्यवस्था सब नष्ट हो गई !

सन् 1922 से सोवियत सरकार का काम ठीक तरह से चालू हो सका है। तब से देश में शिक्षा-प्रचार और अर्थोत्पत्ति की व्यवस्था तेजी के साथ होने लगी। इससे पहले बास्किरिया में लगभग सर्वव्यापी निरक्षरता थी। इन्हीं कई वर्षों में यहाँ आठ तो नार्मल स्कूल, पाँच कृषि-विद्यालय, एक डाक्टरी शिक्षालय तथा अर्थकरी विद्या सिखाने के लिए दो, कल-कारखाने के काम में हाथ साधने के लिए सत्रह, प्राथमिक शिक्षा के लिए 2495 और मध्य प्राथमिक शिक्षा के लिए 87 स्कूल खुल गये। आज बास्किरिया में दो सरकारी थियेटर हैं, दो म्यूज़ियम हैं, चौदह नगर-पुस्तकालय हैं, 122 ग्राम्य वाचनालय हैं, तीस सिनेमा शहर में और 46 ग्रामों में हैं। किसान किसी काम से शहर में आवें, तो उनके ठहरने के लिए अनेक मकान हैं, 891 खेल-कूद के और विश्राम के स्थान हैं। इसके अलावा हज़ारों की संख्या में--मजदूर और किसानों के लिए रेडियो यंत्र हैं। वीरभूमि जिले के लोग बास्किरों की अपेक्षा निःसंदेह स्वभावतः उन्नत श्रेणी के जीव हैं। बास्किरिया और वीरभूमि की शिक्षा और आराम की व्यवस्था की तुलना कर देखो। साथ ही दोनों की डिफिकल्टीज़ की तुलना भी करनी चाहिए।

सोवियत राष्ट्रसंघ में जितनी भी रिपब्लिक हुई हैं, उन सबमें तुर्कमेनिस्तान और उजबेकिस्तान ही नई हैं। उनकी स्थापना हुई है 1924 के अक्टूबर में अर्थात् उनकी उम्र अभी छः वर्ष से भी कम है। तुर्कमेनिस्तान की जनसंख्या कुल मिलाकर साढ़े दस लाख हैं, जिसमें नौ लाख आदमी खेती करते हैं। परन्तु अनेक कारणों से खेतों की अवस्था सन्तोषजनक नहीं है। पशु-पालन का धन्धा भी ऐसा ही है।

ऐसे देश को बचाने का उपाय है कारखाने का काम खोलना, जिसे इण्डस्ट्रियलाइज़ेशन कहते हैं। विदेशी या देशी महाजनों की जेब भरने के लिए कारखाने की स्कीम नहीं है, यहाँ के कारखानों का स्वत्त्व है सर्वसाधारण का। इसी छोटे से अर्से में एक सूत की मिल और रेशम का कारखाना खोला गया है। आशकाबाद शहर में एक बिजली-घर (पावर-हाउस) स्थापित किया गया है और अन्य शहरों में भी उद्योग चल रहा है। यंत्र चलाने वाले मज़दूरों की जरूरत है, और इसके लिए काफी संख्या में तुर्कमेनी युवकों को मध्य-एशिया के बड़े-बड़े कारखानों में काम सिखाने के लिए भेजा जाता है। हमारे देश में युवकों के लिए विदेशियों से परिचालित कारखानों में काम सीखने का मौका पाना कितना दुःसाध्य है--इस बात को सभी जानते हैं।

बुलेटिन में लिखा है--तुर्कमेनिस्तान में शिक्षा की व्यवस्था करना इतना कठिन है कि उसकी तुलना शायद अन्यत्र कहीं ढूँढ़े नहीं मिलेगी। बस्तियाँ बहुत कम और दूर-दूर हैं, सड़कों की कमी, पानी का अभाव और बस्तियों के बीच-बीच में बड़ी-बड़ी मरुभूमि--इन सब कारणों से लोगों की आर्थिक अवस्था बहुत ही शोचनीय है।

फिलहाल शिक्षा का खर्च आदमी पीछे पाँच रुबल पड़ता है। इस देश की कुल प्रजा-संख्या में एक-चौथाई आदमी यायावर या बंजारे हैं; उनके लिए प्राथमिक पाठशालाओं के साथ-साथ बोर्डिंग-स्कूल भी खोले गये हैं, और वे ऐसे स्थान पर जहाँ कुआँ या बावड़ी आदि के आसपास बहुत से परिवार इकट्ठे होते हैं। विद्यार्थियों के लिए अखबार भी प्रकाशित किये जाते हैं।

मास्को शहर में नदी किनारे पुराने जमाने के एक उद्यान-वेष्टित सुन्दर प्रसाद में तुर्कमेनों के लिए शिक्षक तैयार करने के लिए एक विद्या-भवन तुर्कमेन पीपुल्स होम ऑफ़ एजूकेशन स्थापित हुआ। वहाँ उस समय एक सौ तुर्कमेन छात्र-शिक्षा पा रहे हैं, जिनकी उम्र है बारह या तेरह साल की। इस विद्या-भवन की व्यवस्था स्वायत्त-शासन नीति के अनुसार होती है। इसकी व्यवस्था में कई एक कार्य-विभाग, हैं, जैसे--स्वास्थ्य-विभाग, गार्हस्थ्य विभाग, क्लास कमेटी आदि। स्वास्थ्य-विभाग देखता है कि सब कमरों, क्लासों और आँगन वगैरह में सफाई रहती है या नहीं। कोई लड़का अगर बीमार पड़ जाय--फिर चाहे वह मामूली से मामूली बीमारी क्यों न हो--तो उसके लिए डाक्टर बुलाने और इलाज कराने का भार इसी विभाग पर है। गार्हस्थ्य-विभाग के अन्तर्गत वहुत से उपविभाग हैं। इस विभाग का कर्तव्य है कि वह इस बात की देखभाल रखे कि लड़के साफ-सुथरे रहते हैं या नहीं। क्लास में पढ़ते समय लड़कों के आचरण पर दृष्टि रखना क्लास-कमेटी का काम है। प्रत्येक विभाग से प्रतिनिधि चुनकर अध्यक्ष-सभा बनाई जाती है। इस अध्यक्ष-सभा के प्रतिनिधियों को स्कूल-कौन्सिल में वोट देने का अधिकार प्राप्त है। लड़कों का आपस में या और किसी के साथ झगड़ा-टंटा हो जाय, तो अध्यक्ष सभा उसकी जाँच करती है; और यह सभा जो फैसला देती है, उसे सब छात्र मानने के लिए बाध्य हैं।

इस विद्या-भवन के साथ एक क्लब है। वहाँ अक्सर बहुत से लड़के मिलकर अपनी भाषा में नाटक खेलते और गाते-बजाते हैं। क्लब का अपना एक सिनेमा भी है, जिसमें लड़कों को मध्य एशिया के जीवनयात्रा की चित्रावली दिखाई जाती है। इसके सिवा दीवारों पर टाँगने के अखबार भी निकाले जाते हैं।

तुर्कमेनिस्तान की खेती की उन्नति के लिए वहाँ काफी संख्या में कृषि-विद्या के विशेषज्ञ भेजे जाते हैं। दो सौ से अधिक आदर्श कृषि-क्षेत्र खोले गये हैं। इसके सिवा पानी और जमीन के व्यवहार के सम्बन्ध में ऐसी व्यवस्था की गई है कि बीस हजार गरीब से गरीब किसान-परिवारों को खेती के लिए खेत, पानी और कृषि के वाहन (बैल, घोड़े आदि) आसानी से मिल गये हैं।

इस कम प्रजावाले देश में 130 अस्पताल खोले गये हैं, और डाक्टरों की संख्या है छः सौ। बुलेटिन के लेखक सलज्ज भाषा में लिखते हैं :--

"हाउएवर, देअर इज नो अकेजन टु रिज्वॉयस इन द फ़ैक्ट सिन्स देअर आर 2,640 इनहैबिटैण्ट्स टु ईच हॉस्पिटल बेड, एण्ड एज़ रिगार्ड्स डॉक्टर्स, तुर्कमेनिस्तान मस्ट बी रिलीगेटेड टु द लास्ट प्लेस इन द यूनियन।

वी कैन बोस्ट ऑफ़ सम अटेन्मेंट्स इन द फ़ील्ड ऑफ़ मॉडर्नाइज़ेशन एण्ड द स्ट्रगल अगेन्स्ट ग्रॉस इग्नोरेंस, दो अगेन बीइंग ऑन ए वेरी लो लेविल ऑफ सिविलाइज़ेशन, हैज़ प्रिज़र्व्ड ए गुड मेनी कस्टम्ज़ ऑफ द डिस्टैण्ट पास्ट। हाउएवर, द रीसेण्ट लॉ, पास्ड इन ऑर्डर टु कम्बैट द सेलिंग टु वीमेन इन्टू मैरिज एण्ड चाइल्ड मैरिज, हैड प्रोड्यूस्ड द डिज़ायर्ड इफ़ेक्ट।"

तुर्कमेनिस्तान जैसे मरु-प्रदेश में 6 साल के अंदर 160 अस्पताल खोले गये, इसके लिए ये शर्मिन्दा हो रहे हैं--ऐसी शर्म देखने का अभ्यास हमें नहीं है, इसलिए हमें आश्चर्य हुआ। हमें अपने सामने बहुत सी डिफिकल्टीज दिखाई दीं, और यह लक्षण भी दिखाई दिया कि ये जल्दी टस से मस होने वाली नहीं हैं, किन्तु सवाल तो यह है कि उसके लिए हममें विशेष लज्जा क्यों नहीं दिखाई देती ?

सच बात तो यह है कि मेरे हृदय से भी इसके पहले देश के लिए काफी आशा करने का साहस जाता रहा था। ईसाई पादरियों की तरह मैं भी डिफिकल्टीज का हिसाब देखकर दंग रह गया था--मन ही मन कहता था कि इतने विचित्र जातियों के मनुष्य हैं, इतनी विचित्र जातियों की मूर्खताएँ हैं, इतने परस्पर-विरुद्ध धर्म हैं, ऐसी दशा में न जाने कितने दिन लगेंगे अपने दुःखों का बोझ हटाने में--अपनी कलुष-कालिमा को धोने में।
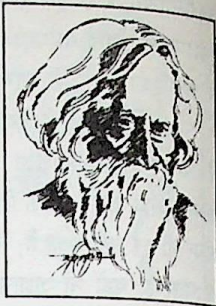
साइमन-कमीशन की फसल जिस आब-हवा में फली है, अपने देश के सम्बन्ध में मेरी प्रत्याशा की भीरुता भी उसी आब-हवा की उपज है सोवियत-रूस में आकर देखा कि यहाँ की उन्नति की घड़ी हमारी ही घड़ी की तरह बंद थी कम से कम सर्वसाधारण के घरों में; किन्तु यहाँ आज सैकड़ों वर्षों से बंद पड़ी घड़ी में आठ-दस वर्ष चाबी भरते ही वह मजे में चलने लगी है। इतने दिनों बाद समझ सका हूँ कि हमारी घड़ी भी चल सकती थी, किन्तु चाबी नहीं भरी गई। डिफिकल्टीज के मंत्र पर से अब मेरा विश्वास उठ गया है।

अब बुलेटिन में से दो-चार अंश उद्धृत करके चिट्ठी समाप्त करूँगा :--

''द इम्पीरियलिस्ट पॉलिसी ऑफ़ द ज़ारिस्ट जेनरल्स, आफ़्टर द कान्क्वेस्ट ऑफ़ अज़रबैजान, कन्सिस्टेड इन कन्वर्टिंग द डिस्ट्रिक्ट्स, इनहैबिटेड बाई मोहम्डेन्स इन्टू कॉलोनीज़ डेस्टिण्ड टु सप्लाई रॉ मैटीरियल टु द सेन्ट्रल रशियन मार्केट्स।

याद है, बहुत दिन हुए स्वर्गीय अक्षय कुमार मैत्रेय तब रेशम की खेती के बारे में बड़े उत्साही थे, उनकी सलाह से मैं भी रेशम की खेती के प्रचार के काम में लगा हुआ था। उन्होंने मुझसे कहा था--''रेशम की खेती में मजिस्ट्रेट से मुझे बहुत-कुछ सहयोग मिला है, परन्तु जितनी बार इन कोओं से सूत और सूत के कपड़े बुनने का काम किसानों में चालू करने की इच्छा प्रकट की, उतनी ही बार मजिस्ट्रेट ने उसमें बाधा पहुँचाई।

''द एजेन्ट्स ऑफ़ द ज़ार्स गवर्नमेण्ट बेअर रूथलेसली कैरीइंग आउट प्रिंसिपिल ऑफ़ 'डिवाइड एण्ड रूल' एण्ड डिड ऑल इन देअर पॉवर टु सो हेट्रेड एण्ड डिस्कॉर्ड बिटवीन द वेरिअस रेसेज़। नेशनल एनीमॉसिटीज़ वेअर फॉस्टर्ड बाइ द गवर्नमेण्ट एण्ड मोहम्मडेन्स एण्ड आरमीनियन्स वेअर सिस्टमेटिकली इन्साइटेड अगेन्स्ट ईच अदर। द एवर रिकरिंग कन्फ्लिक्ट्स बिटवीन दीज़ टू नेशन्स एट टाइम्स एज़्यूम्ड द फॉर्म ऑफ़ मैस्कर्स।

अस्पतालों की अल्पसंख्या के विषय में बुलेटिन-लेखक ने अपनी लज्जा को स्वीकार अवश्य किया है, किन्तु एक विषय में अपना गौरव प्रकट किये बिना उनसे रहा नहीं गया :--

''इट इज़ एन अनडाउटेड फ़ैक्ट, व्हिच ईवि द वर्स्ट एनिमीज़ ऑफ़ द सोवियट्स कैन नॉट डिनाइ; फॉर द लास्ट एट ईयर्स द पीस बिट्वीन द रेसेज़ ऑफ अज़रबैजान हैज़ नेवर बीन डिस्टर्ब्ड।''

भारतवर्ष के राज्य में लज्जा प्रकट करने का चलन नहीं है, गौरव प्रकट करने का भी रास्ता नहीं देखने में आता।

इस लज्जा-स्वीकार के प्रसंग में एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है। वह यह कि बुलेटिन में लिखा है--सारे तुर्कमेनिस्तान में शिक्षा के लिए आदमी-पीछे पाँच रूबल खर्च किये जाते हैं। रुबल का मूल्य हमारे देश के रुपये के हिसाब से ढाई रुपया है। पाँच रूबल का मतलब है साढ़े-बारह रुपया। इसके लिए कर वसूली का कोई जरिया होगा अवश्य, पर वह ऐसा नहीं है जो प्रजा में अपने अंदर आत्म-विरोध पैदा कर दे।

8 अक्तूबर, 1930

12

ब्रेमेन जहाज

तुर्कमेनियों के विषय में पहले ही लिख चुका हूं कि वे मरुभूमि निवासी संख्या में दस लाख हैं। यह चिट्ठी उसी का परिशिष्ट है। सोवियत-सरकार ने वहाँ कौन से विद्या मन्दिर स्थापित करने का संकल्प लिया है, उसकी एक सूची दे रहा हूँ :--

बिगिनिंग विद अक्टूबर 1, 1930, द न्यू बजेट इयर, ए नम्बर ऑफ़ साइन्टिफ़िक इन्स्टीट्यूट्स विल बी ओपेन्ड तुर्क-मेनिआ, नेमली :--

1- तुर्कमेन जिओलॉजिकल कमेटी

2- तुर्कमेन इन्स्टीच्यूट ऑफ अप्लाइड बॉटनी

3- इन्स्टीच्यूट फॉर स्टडी एण्ड रिसर्च ऑफ स्टॉक ब्रीडिंग

4- इंन्टीच्यूट ऑफ़ हाइड्रोलॉजी एण्ड जियोफिज़िक्स

5- इंस्टीच्यूट ऑफ़ इकोनॉमिक रिसर्च

6- केमिको-बैक्टीरिओलॉजिकल इंस्टीच्यूट, एण्ड इंस्टीच्यूट ऑफ़ सोशल हाइजीन

द एक्टीविटी ऑफ़ ऑल द साइन्टिफ़िक इन्स्टीट्यूशन्स ऑफ़ तुर्कमानिआ विल बी रेग्यूलेटेड बाई ए स्पेशल साइन्टिफ़िक मैनेज़मेण्ट अटैच्ड टु द काउन्सिल ऑफ़ पीपुल्स कमीशर्स ऑफ़ तुर्कमानिआ।

इन कनेक्शन विद द रिमूवल ऑफ़ द तुर्कमान गवर्नमेण्ट फ्रॉम अश्काबाद टु चारदाज्नी द कन्स्ट्रक्शन ऑफ़ बिल्डिंग्स फॉर द फॉलोइंग म्यूज़ियम्स हैज़ बीन स्टार्टेड :- हिस्टॉरिकल, एग्रीकल्चरल, इण्डस्ट्रियल एण्ड ट्रेड म्यूज़ियम, आर्ट म्यूजियम्स ऑफ़ द रिवॉल्यूशन। इन एडीशन, द कन्स्ट्रक्शन ऑफ़ एन आब्ज़र्वेटरी, स्टेट लाइब्रेरी, हाउस ऑफ़ पब्लिश्ड बुक्स एण्ड हाउस ऑफ़ साइन्स एण्ड कल्चर इज़ प्लान्ड।

द डिपार्टमेण्ट ऑफ़ लैंगुएज एण्ड लिटरेचर ऑफ द इंस्टीच्यूट आफ द तुर्कमेन कल्चर हैज़ कम्प्लीटेड द रिवीज़न एण्ड ट्रान्सलेशन इन्टू रशियन ऑफ़ तुर्कमेनियन पोएट्री इन्क्लूडिंग फोक-लोर मैटीरियल एण्ड ओल्ड पोएट्री टेक्स्ट्स।

फ़ाइव आइटीनरेण्ट कल्चरल बेसेज़ हैव बीन ऑर्गेनाइज्ड इन तुर्कमानिआ। ड्यूरिंग द ईयर 1930 टू कोर्सेज़ फॉर ट्रेनिंग प्रैक्टिकल नर्सेज़ एण्ड मिडवाइव्ज़ वेअर कम्प्लीटेड ऑलटुगेदर 46 पर्सन्स वेअर ग्रैजुएटेड। ऑल ग्रैजुएट्स आर सेन्ट टु द विलेज।

13

सोवियत-रूस के साधारण जन-समाज को शिक्षा देने के लिए कितने विविध प्रकार के उपाय काम में लाये गये हैं, उसका कुछ-कुछ आभास पहले की चिट्ठियों से मिल गया होगा। आज तुम्हें उन्हीं में से एक उद्योग का संक्षिप्त विवरण लिख रहा हूँ।

कुछ दिन हुए मास्को शहर में सर्वसाधारण के लिए एक आराम बाग कायम किया गया है। बुलेटिन में उसका नाम दिया है-- 'मास्को पार्क ऑफ़ एजुकेशन एण्ड रिक्रिएशन' उसमें एक प्रधान मंडप है, जो प्रदर्शनी के लिए है। यदि कोई चाहे तो वहाँ से मालूम कर सकता है कि समस्त प्रान्तों में कारखानों के हज़ारों मजदूरों के लिए कितने अस्पताल खोले गये, मास्को प्रान्त में स्कूलों की संख्या में कितनी वृद्धि हुई; म्यूनिसिपल विभाग दिखा रहा है कि मजदूरों के रहने के लिए कितने नये मकान तैयार हुए, कितने नये बगीचे बने, शहर में कितने विषयों की कितनी उन्नति हुई, इत्यादि। प्रदर्शनी में अनेक प्रकार के माडेल (नमूने) दिखाये गये हैं, जैसे-- पुराने ज़माने के कई-गांव, आधुनिक ग्राम, फल-फूल और सब्ज़ियाँ पैदा करने के आदर्श खेत, सोवियत जमाने के सोवियत कारखानों मे जो यंत्र (मशीनरी) बनाये जाते हैं,

उनके नमूने, आजकल की को-आपरेटिव व्यवस्था से कैसे रोटी बनती है और पिछली क्रान्ति के समय कैसे बनती थी, इत्यादि। इसके अलावा और भी तरह-तरह के तमाशे हैं, और विभिन्न प्रकार के खेल के स्थान हैं, रोज एक न एक मेला-सा लगा रहता है।

पार्क में छोटे लड़कों के लिए एक अलग स्थान है, वहाँ बड़ी उम्र वाले नहीं जा सकते। प्रवेश-द्वार पर लिखा हुआ है--'लड़कों को तंग न करो।' यहाँ लड़कों के खेलने के हर एक तरह के खिलौने, खेल, बचकानी थियेटर आदि हैं, जिनके लड़के ही संचालक हैं और लड़के ही अभिनेता।

इस लड़कों के विभाग से कुछ दूरी पर है 'क्रेच' हिन्दी में जिसे 'शिशु-रक्षणी' कहा जा सकता हैं, पिता-माता जब पार्क में टहलने लगते हैं, तो छोटे बच्चों को वे यहाँ धायों के पास छोड़ जा सकते हैं। क्लब के लिए एक दुमंजिला मंडप है। ऊपर लाइब्रेरी है। कहीं शतरंज खेलने का सरंजाम है, तो कहीं दीवाल पर मानचित्र और अखबार पढ़ने का इन्तजाम है। इसके सिवा सर्वसाधारण के लिए भोजन की बहुत अच्छी को-आपरेटिव दुकानें हैं, वहाँ शराब बेचना मना है। मास्को पशुशाला विभाग की तरफ से यहाँ एक दुकान खुली है, जिसमें तरह-तरह का पक्षि-मांस और पौधे बिका करते हैं। प्रान्तीय शहरों में भी इस प्रकार के पार्क बनाये जाने का प्रस्ताव हो रहा है।

जो बात विचार करने की है, वह यह है कि ये सर्वसाधारण को भद्र-साधारण के उच्छिष्ट से आदमी नहीं बनाना चाहते, उनके लिए शिक्षा, आराम, जीवन-यात्रा के सुयोग आदि पूरी तौर से दिये जाते हैं। उसका मुख्य कारण यह है कि जनसाधारण के सिवाय यहाँ और कुछ है ही नहीं। समाज-ग्रन्थ के केवल परिशिष्ट अध्याय में ही इनका स्थान हो सो बात नहीं, सब अध्याय में ये ही हैं।

और एक दृष्टान्त देता हूँ। मास्को शहर से कुछ दूरी पर पुराने जमाने का एक प्रासाद है। रूस में अभिजात वंश के काउण्ट अप्राक्सिन लोग उसमें रहते थे। पहाड़ के चारों तरफ का दृश्य बहुत ही सुन्दर है। खेत, नदी, और पहाड़ जंगल है, दो सरोवर और बहुत से झरने हैं। विशाल स्तम्भ, ऊँचे बरामदे, पुराने जमाने के असबाब, चित्र और पत्थर की मूर्तियों से सुसज्जित दरबार, संगीतशाला, खेलने के घर और लाइब्रेरी, नाट्यशाला, बहुत से सुन्दर बैठकखाने-- इन सबने प्रासाद को अर्द्धचन्द्राकार घेर रखा है। अब उस विशाल प्रासाद में 'आलगाभो' नाम से एक को-आपरेटिव स्वास्थ्यगार खोला गया है--ऐसे आदमियों के लिए, जो किसी दिन उस प्रासाद में गुलाम बनकर रहते थे। सोवियत-राष्ट्रसंघ में एक को-आपरेटिव सोसाइटी है, जिसका मुख्य काम है मजदूरों के लिए मकान बनवाना। उस सोसाइटी का नाम है 'विश्रान्ति-निकेतन' 'आलगाभो' स्वास्थ्यागार इसी सोसाइटी की देखरेख में चलता है।

इस तरह के और भी चार सेनिटोरियम इसके हाथ में हैं। काम-काज का मौसम खतम हो जाने पर कम से कम तीस हजार परिश्रम से थके हुए मजदूर-किसान इन पाँचों आरोग्यशालाओं में आकर विश्राम कर सकते हैं। प्रत्येक आदमी पंद्रह दिन तक यहाँ रह सकता है। खाने-पीने का इन्तजाम अच्छा और पर्याप्त है, आराम का बन्दोबस्त काफी है और डाक्टर की व्यवस्था भी ठीक है। को-आपरेटिव पद्धति से चलने वाले इन विश्रान्ति-निकेतनों की स्थापना का उद्योग क्रमशः सर्वसाधारणकी सहानुभूति और सम्मति प्राप्त कर रहा है।

यह ठीक है कि मजदूरों के लिए इस ढंग के विश्राम की आवश्यकता को और कोई देश महसूस नहीं कर सका है, और इस विषय में इतनी चिन्ता भी और किसी ने नहीं की है। हमारे देश के सम्पन्न व्यक्तियों के लिए भी ऐसी सुविधाएँ मिलना दुर्लभ है।

मजदूरों के लिए इनकी कैसी सुन्दर व्यवस्था है, यह तो मालूम ही हो गया। अब बच्चों के सम्बन्ध में कैसी व्यवस्था है, इस पर कुछ लिखता हूँ। बच्चा, चाहे वह ज़ारज हो या विवाहित दम्पति की सन्तान; दोनों में कुछ फर्क नहीं समझा जाता। कानून यह है कि बच्चा जब तक अठारह साल का होकर बालिग न हो जाय, तब तक उसके पालन-पोषण का भार पिता-माता पर होगा। घर पर बच्चों के पालन-पोषण और शिक्षा के लिए माँ-बाप क्या कर रहे हैं, क्या नहीं--इस विषय में राज्य उदासीन नहीं रहता। सोलह साल की उमर के पहले किसी भी बालक को मेहनत-मजूरी के काम पर नहीं लगाया जा सकता। अठारह साल की उमर तक उनके काम करने का समय छः घंटे है, इससे ज्यादा नहीं। बच्चों के प्रति माता-पिता अपने कर्तव्य का पालन कर रहे हैं या नहीं, इसकी जाँच करने का भार अभिभावक विभाग पर है। इस विभाग के कर्मचारी बीच-बीच में देख-भाल के लिए निकलते हैं--देखते हैं कि लड़कों का पालन-पोषण ठीक नहीं हो रहा है, तो माता-पिता के हाथ से बच्चों को अलग कर लिया जाता है। मगर फिर भी बच्चों के भरण-पोषण की जिम्मेदारी मां-बाप पर ही रहती है। इस तरह के लड़के-लड़कियों को पाल-पोसकर योग्य बनाने का भार पड़ता है सरकारी अभिभावकों पर।

बात असल में यह है--सन्तानें केवल माँ-बाप की ही नहीं है, मुख्यतः सारे समाज की हैं। उनकी भलाई-बुराई सारे समाज की भलाई-बुराई है, इसलिए उनको योग्य बनाने की जिम्मेदारी समाज की है, क्योंकि उसका नतीजा समाज को ही भोगना पड़ेगा। विचार कर देखा जाय, तो परिवार की जिम्मेदारी से समाज की जिम्मेदारी ज्यादा है, कम नहीं। सर्वसाधारण का अस्तित्व मुख्यतः विशिष्ट-साधारण के लाभ या सुविधा के लिए नहीं है। सर्वसाधारण समस्त समाज का अंग है, न कि समाज के किसी विशेष अंग का प्रत्यंग। अतएव उनके लिए सारा स्टेट जिम्मेदार है। व्यक्तिगत रूप से अपने भोग या प्रताप के लिए कोई समस्त समाज का उल्लंघन कर जाय, यह नहीं हो सकता।

कुछ भी हो, मैं नहीं समझता कि मनुष्य की व्यक्तिगत और समष्टिगत सीमा का इन लोगों ने ठीक तौर से पता लगा लिया है। इस विषय में ये फैसिस्टों के समान हैं। यही कारण है कि समष्टि के लिए व्यष्टि (व्यक्तित्व) को पीड़ा देने में ये लोग किसी तरह की बाधा नहीं मानना चाहते। वे इस बात को भूल जाते हैं कि व्यष्टि को दुर्बल करके समष्टि को सबल नहीं बनाया जा सकता; व्यष्टि यदि बन्धनबद्ध हो जाय, तो समष्टि स्वाधीन नहीं हो सकती। यहाँ जबरदस्त आदमी का एकनायकत्व चल रहा है। इस तरह एक हाथ में देश की बागडोर रहना कदाचित् कुछ दिन के लिए अच्छा फल दे भी सकता है, किन्तु वह स्थायी कभी नहीं हो सकता। परम्परा-रूप से बराबर सुयोग्य नायक का मिलना कभी सम्भव नहीं हो सकता।

इसके सिवा, अबाध शक्ति का लोभ मनुष्य की बुद्धि में विकार उत्पन्न कर देता है। हाँ, एक इनमें अच्छी बात है, यद्यपि सोवियत मूल नीति के विषय में इन लोगों ने मनुष्य की व्यक्तिगत स्वाधीनता को अत्यन्त निर्दयता के साथ कुचलने में कोई संकोच नहीं किया, फिर भी साधारण रीति से शिक्षा और चर्चा के द्वारा व्यक्ति की आत्मशक्ति को ये बढ़ाते ही जा रहे हैं।--फैसिस्टों की तरह लगातार उसे पीसते ही नहीं रहे शिक्षा को अपने विशेष मत की अनुगामी बनाकर, कुछ शक्ति के बल पर और कुछ मोहमंत्र के जोर से एकमुखी कर डाला है, फिर भी सर्वसाधारण की
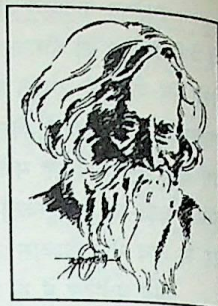
बुद्धि का काम बंद नहीं किया है। यद्यपि सोवियत-नीति के प्रचार के सम्बन्ध में इन लोगों ने युक्ति-बल के ऊपर भी बाहुबल को खड़ा कर रखा है, फिर भी युक्ति को बिलकुल छोड़ा नहीं है, और धर्म-मूढ़ता और समाज-प्रथा की अन्धता से सर्वसाधारण के हृदय मन को मुक्त रखने के लिए प्रबल उद्यम किया है।

मन को एक तरफ से स्वाधीन बनाकर दूसरी ओर के अत्याचारों से उसे वश करना सहज काम नहीं है। भय का प्रभाव कुछ दिन काम कर सकता है, अन्त में उस भीरुता को धिक्कार कर शिक्षित मन किसी न किसी दिन अपने विचार-स्वातंत्र्य के अधिकार का दावा करेगा ही। इन लोगों ने मनुष्य शरीर को पीड़ित किया है, मन को नहीं किया। जो लोग वास्तव में अत्याचार करना चाहते हैं, वे मनुष्य के मन को ही पहले मारते हैं--मगर इन लोगों ने मन की जीवनी-शक्ति बढ़ाई ही है, घटाई नहीं। बस, यहीं मुक्ति का मार्ग खुला रह गया।

आज, कुछ ही घंटों बाद न्यूयार्क पहुँचूँगा। उसके बाद फिर नया अध्याय शुरू होगा। इस तरह सात घाट का पानी पीते फिरना अब अच्छा नहीं लगता। अबकी बार इधर न आने की इच्छा ने हृदय में अनेक तर्क उठाये थे, परन्तु अन्त में लोभ ही ने विजय पाई।

9 अक्टूबर, 1930

14

लैन्सडाउन

इस बीच में दो-एक बार मुझे दक्षिण-द्वार से सटकर जाना पड़ा है; वह द्वार मलय समीर का दक्षिण-द्वार नहीं था; बल्कि जिस द्वार से प्राणवायु अपने निकलने के लिए रास्ता ढूँढ़ती है, वह द्वार था। डाक्टर ने कहा--नाड़ी के साथ हृदय की गतिका जो क्षण भर का विरोध हुआ था, वह थोड़े पर से ही निकल गया, इसे अवैज्ञानिक भाषा में मिराकिल (जादू) कहा जा सकता है--अब से खूब सावधानी से रहना चाहिए। अर्थात् उठकर चलने-फिरने से हृदय में वाण आकर लग सकता है--लेटे रहने से लक्ष्य भ्रष्ट हो सकता है। इसलिए भले आदमी की तरह अधलेटी अवस्था में दिन काट रहा हूँ। डाक्टर कहता है--इस तरह दस वर्ष बिना विघ्न बाधा के कट सकते हैं, उसके बाद दशम दशा को रोक ही कौन सकता है ? विस्तर पर तकिये के सहारे लेटा हुआ हूँ, मेरी चिट्ठी की लाइनें भी मेरी देह-रेखा की नकल कर रही हैं, ठहरो जरा उठकर बैठ जाऊँ।

मालूम होता है, तुमने कुछ दुःसंवाद भेजा है, शरीर उस अवस्था में पड़ने से डरता है, कहीं जोरदार लहरों के धक्के से टूट न जाय। बात क्या है, उसका आभास मुझे पहले ही मिल चुका था--विस्तृत विवरण का धक्का सहना मेरे लिए कठिन है। इसलिए मैंने तुम्हारी चिट्ठी खुद नहीं पढ़ी, अमिय को पढ़ने दी है।

जिस बन्धन ने देश को जकड़ रखा है, झटका दे-देकर उसे तोड़ डालना चाहिए। हर झटके में आँखों की पुतली निकल आयेगी, परन्तु इसके सिवा बन्धन-मुक्ति का अन्य उपाय ही नहीं है। ब्रिटिश राज अपना बन्धन अपने ही हाथ से तोड़ रहा है, उसमें हमारी तरफ से काफी वेदना है, पर उसकी तरफ भी नुकसान कम नहीं है। सबसे बढ़कर नुकसान यह है कि ब्रिटिश राज अपना मान खो चुका है। भीषण अत्याचार से हम डरते हैं, पर उस भय में भी सम्मान, है, किन्तु कापुरुष के अत्याचार से हम घृणा करते हैं। ब्रिटिश साम्राज्य आज हमारी घृणा से धिक्कृत हो रहा है। यह घृणा हमें बल देगी, इस घृणा के बल पर ही हम विजयी होंगे।

अभी मैं रूस से आया हूँ--देश के गौरव का मार्ग कितना दुर्गम है, इस बात को मैं वहाँ स्पष्ट देख आया हूँ। वहाँ के तपस्वियों ने जो असह्य कष्ट सहे हैं, उसकी तुलना में पुलिस की मार को पुष्प वृष्टि समझना चाहिए। देश के युवकों से कहना कि अब भी बहुत-कुछ सहना बाकी है--उसमें कोई कोरकसर नहीं रक्खी जायगी। इसलिए अभी से वे यह कहना शुरू न करें कि 'बहुत लग रही है, अब सहा नहीं जाता'--यह कहना एक तरह से लाठी को अर्घ्य देना है।

देश-विदेशों में आज जो भारत गौरव पा रहा है, उसका एकमात्र कारण है कि उसने मार की परवाह नहीं की। दुःखों की उपेक्षा करने की जो हमारी तपस्या है, उसे हम कभी भी न छोड़ें। पशुबल बार-बार लगातार हमारे पशुबल को जगाने की कोशिश कर रहा है, अगर वह इसमें सफल हो गया, तो हम हार जायँगे। दुःख पा रहे हैं। इसलिए हमें दुःख नहीं करना चाहिए। यही हमारे लिए मौका है कि हम प्रमाणित कर दें कि हम मनुष्य हैं--पशु की नकल करते ही हमारा यह शुभ योग नष्ट हो जायगा। अन्त तक हमें कहना होगा कि 'हम डरते नहीं'। बंगाल का कभी-कभी धैर्य नष्ट हो जाता है, यह हमारी कमजोरी है। जब हम नाखून और दाँतों से काम लेने लगते हैं, तब वह हमला दाँत-नाखून वालों के लिए सलाम ही साबित होता है। उपेक्षा करो, नकल मत करो। अश्रुवर्षण नैव नैव च।

मुझे सबसे बड़ा दुःख इस बात का है कि मेरे पास यौवन की पूँजी नहीं रहीं। मैं गतिहीन होकर पान्थशाला में पड़ा हुआ हूँ--जो लोग रास्ते में चल रहे हैं, उनके साथ चलने का समय हाथ से निकल गया !

29 अक्टूबर, 1930

उपसंहार

सोवियत-शासन के प्रथम परिचय ने मेरे मन को खास तौर से आकर्षित किया है, यह मैं पहले ही कह चुका हूँ। इसके कई विशेष कारण हैं और वे आलोचना के योग्य हैं।

रूस की जिस तसवीर ने मेरे हृदय में मूर्ति धारण की है, उसके पीछे भारत की दुर्गति का काला परदा लटक रहा है, हमारी इस दुर्गति के मूल में जो इतिहास है, उससे हम एक तत्व पर पहुँच सकते हैं, और उस तत्व पर गहरा विचार करने से आलोच्य विषय में मेरे क्या भाव हैं, यह सहज ही समझा जा सकता है।

भारतवर्ष में मुसलमान-शासन के विस्तार के भीतर जो आकांक्षा थी, वह थी, राज-महिमा की प्राप्ति। उस जमाने में हमेशा राज्य को लेकर ही युद्ध हुआ करते थे, और उसकी जड़ में थी राज्य करने की इच्छा। किसी ज़माने में ग्रीस का सिकन्दर शाह धूमकेतु की अग्निशिखा-सी चमकती हुई पूँछ की तरह अपनी सेना को लेकर जो विदेश के आकाश में विचरण करता हुआ अपना मार्ग साफ करता रहा था, वह सिर्फ अपना प्रताप फैलाने के लिए ही। रोम सम्राटों की भी यही प्रवृत्ति थी। फिनिश लोग समुद्रों के किनारे-किनारे वाणिज्य करते रहे, पर राज्य की छीना-झपटी से वे दूर ही रहे।

एक दिन यूरोप से वणिकों के जहाज जब पूर्व महादेश के घाटों पर आ-आकर जमा होने लगे, तबसे संसार के मानव-समाज-के इतिहास में एक नया अध्याय क्रमशः प्रकट होने लगा, क्षात्र युग चला गया, वैश्ययुग ने पदार्पण किया। इस युग में वणिकों का दल विदेशों में पहुँचकर वहाँ के बाजारों के पिछवाड़े में अपना राज्य स्थापन करने लगा। मुख्यतः वे मुनाफे के अंकों को बढ़ाना चाहते थे--वीर बनकर सम्मान प्राप्त करना उनका मुख्य लक्ष्य न था। इस काम के लिए उन्होंने अनेक तरह के

कुटिल हथकंडों से काम लिया और उसके लिए वे ज़रा भी लज्जित नहीं थे; कारण वे चाहते थे सिद्धि--कीर्ति से उन्हें कोई मतलब नहीं था।

उस समय भारतवर्ष अपने विपुल ऐश्वर्य के लिए संसार में प्रसिद्ध था--उस जमाने के विदेशी ऐतिहासिक गण बार-बार इस बात की घोषणा कर गये हैं। यहाँ तक कि स्वयं क्लाइव ने कहा है--'भारतवर्ष की धनशालिता के विषय में जब विचार करता हूँ, तो मैं अपने अपहरण-नैपुण्य के संयम से आप ही विस्मित हो जाता हूँ।' इतना विपुल धन-ऐश्वर्य, यह कभी भी सहज में नहीं हो सकता--भारतवर्ष ने इसे स्वयं ही उत्पन्न किया था। तब विदेश से आकर जो यहाँ के राज्यासन पर बैठे थे, उन्होंने इस धन-ऐश्वर्य का भोग किया, पर उसे नष्ट नहीं किया। अर्थात वे भोगी थे, किन्तु वणिक न थे।

उसके बाद वाणिज्य के मार्ग को सुगम करने के लिए विदेशी वणिकों ने अपने कारोबार की गद्दी पर राज्य का तख्त बिठाया। समय उनके अनुकूल था। तब मुग़ल राज्य में घुन लगना शुरू हो गया था; मरहठे और सिख मुगल-साम्राज्य की मजबूत जंजीर-की कड़ियों को काटने में लगे हुए थे। इतने में अँगरेजों का हाथ लगते ही वह छिन्न-भिन्न होकर ध्वंस रास्ते पर चला गया।

और भी प्राचीनकाल में जब राज-गौरव के लोलुप इस देश में राज्य करते थे, तब यहाँ अत्याचार, अन्याय और अव्यवस्था थी ही नहीं, यह बात नहीं कही जा सकती; मगर फिर भी वे थे इस देश के ही अंग। उनके पैने नाखूनों से देश के शरीर पर जो दाग या घाव-से पड़ गये थे, सिर्फ चमड़े पर ही थे, रक्तपात भी काफी हुआ था; मगर उससे अस्थि-बन्धन ढीले नहीं हुए। धन-उत्पादन के विचित्र कार्य उस समय ज्योंके त्यों चल रहे थे, यहाँ तक कि नवाब-बादशाहों की तरफ से भी उनमें सहारा मिला था। अगर ऐसा न होता, तो यहाँ विदेशी वणिकों की भीड़ इतनी न जमने पाती--मरुभूमि में टिड्डियों का क्या काम ?

उसके बाद भारत में वाणिज्य और साम्राज्य के अशुभ संगम-काल में वणिक राजा देश के धन-कल्पतरु की जड़ को किस तरह खोदने लगे, इसका इतिहास सैकड़ों बार कहा हुआ और अत्यंत कर्णकटु है; परन्तु पुराना होने से उसे विस्मृति के ढकने से ढका नहीं जा सकता। इस देश की वर्तमान असह्य दरिद्रता की भूमिका तो वहीं से है। भारतवर्ष किसी दिन धन-महिमा में सर्वश्रेष्ठ था, परन्तु उसकी वह महिमा न जाने किस वाहन पर बैठकर द्वीपान्तर को चली गई--अगर हम इस बात को भूल जायँ, तो संसार के आधुनिक राजनीतिक की प्रेरणाशक्ति बल-वीर्य का अभिमान नहीं है, वह है धन का लोभ, और इस तत्त्व को हमें याद रखना चाहिए। राजगौरव के साथ प्रजा का एक मानसिक सम्बन्ध रहता है, किन्तु धन-लोभ के साथ वह रह ही नहीं सकता। धन निर्मम है, निर्दय है, नैर्व्यक्तिक है। जो मुरगी सोने के अंडे देती है, लोभ सिर्फ उसके अंडों को ही टोकरी में उठा ले जाता हो, सो बात नहीं; वह मुरगी तक को जिबह कर डालता है।

वणिक-राज के लोभ ने भारत की धन उत्पादकारी विचित्र शक्ति को ही पंगु कर दिया है। बची है सिर्फ कृषि, नहीं तो कच्चे माल का पाना उनके लिए बन्द हो जाता और विदेशी माल के बाजार में हमारी मूल्य देने की शक्ति बिलकुल ही नष्ट हो जाती। भारत की रोजमर्रा की जीविका इस अत्यन्त क्षीण वृन्त पर अवलम्बित है। यह बात मान लेते हैं कि उस जमाने में जिस निपुणता और जिन तरीकों से हाथ का काम चलता था और कारीगर लोग जिससे अपनी गुजर करते थे, यंत्र (मशीनरी) की प्रतियोगिता में वे अब अपने आप ही निष्क्रिय हो गये हैं, इसलिए प्रजा की रक्षा के लिए यह बहुत ही आवश्यक था कि हर तरह से उन्हें यंत्र-कुशल बना दिया जाय। जान बचाने के लिए सभी देशों में आज यह उद्योग प्रबल है। जापान

ने थोड़े समय के अंदर धन के यंत्र-वाहन को अपने काबू में कर लिया है। अगर वह ऐसा न करता तो 'यंत्री यूरोप' के षड्यंत्र से वह धन और प्राण, दोनों से ही हाथ धो बैठता। हमारे भाग्य में वह भी नहीं बदा था, क्योंकि लोभ ईर्ष्यालु होता है। उस जबर्दस्त लोभ के मारे हमारे धन प्राण सूखे जा रहे हैं, उसके बदले राजा हमें सान्त्वना देने के लिए कहते हैं--"अब जो धन-प्राण थोड़ा बहुत बाकी बचा है, उसकी रक्षा के लिए कानून और चौकीदारों की व्यवस्था का भार हम पर रहा। इधर हम अपने अन्न-वस्त्र और विद्या-बुद्धि को गिरवी रखकर मौत के किनारे खड़े हुए चौकीदारों की वर्दी का खर्च जुटा रहे हैं। यह जो घातक उपेक्षा या उदासीनता है, इसकी जड़ में है लोभ। सब तरह की ज्ञानशक्ति और कर्म शक्ति का जहाँ झरना या पीठस्थान है, वहाँ से बहुत नीचे खड़े हुए अब तक हम मुँह बाये ऊपर ही की ओर देखते आ रहे हैं, और उस ऊर्ध्वलोक से बराबर यही आकाशवाणी सुनते आ रहे हैं--"तुम्हारी शक्ति यदि क्षय हो रही है, तो तुम्हें डर किस बात का ? हमारे पास शक्ति है, हम तुम्हारी रक्षा करेंगे।"

जिसके साथ लोभ का सम्बन्ध है, उससे मनुष्य मतलब साधता है, कभी भी उसका सम्मान नहीं करता। और जिसका सम्मान नहीं करता, उसकी माँग को वह जहाँ तक बनता है, छोटा बनाये रखता है। अन्त में वह असम्मानित मनुष्य इतना ज्यादा सस्ता हो जाता है कि उसके बड़े से बड़े अभाव में भी थोड़ा सा खर्च करना उनको खटकने लगता है, जो बराबर उससे अपना मतलब गाँठते रहे हैं। हमारे प्राण और मनुष्यत्व की रक्षा के लिए कितना कम दिया जाता है, इस बात को सभी जानते हैं। खाने के लिए अन्न नहीं, जानने के लिए विद्या नहीं, इलाज के लिए वैद्य नहीं, पीने के लिए पानी निकालना पड़ता है कीच छानकर, अगर फिर भी हमारे चारों तरफ चौकीदारों का जमघट है, और है मोटी तनखा पाने वाले अफसरों की भीड़, जिनका वेतन गल्फ-स्ट्रीम की तरह सब चला जाता है ब्रिटिश द्वीप के शीत-निवारण के लिए और अन्त में उनकी पेन्शन चुकानी पड़ती है हमें अपनी अन्त्येष्टि-क्रिया के खर्च में से। इसका एक मात्र कारण--लोभ अन्धा है, लोभ निष्ठुर है--भारत भारतेश्वरों के लोभ की सामग्री है फिर भी कठिन वेदना की अवस्था में भी, इस बात को मैं कभी अस्वीकार न करूँगा कि अँगरेजों के स्वभाव में उदारता नहीं है, विदेशी शासन-कार्य में अन्य यूरोपियनों का व्यवहार अँगरेजों से भी कृपण और निष्ठुर है। अँगरेज जाति और उसकी शासन-नीति के सम्बन्ध में वचन और आचरण से हम जैसा विरोध प्रकट करते हैं, और किसी जाति के शासनकर्त्ताओं के सम्बन्ध में वैसा करना सम्भव न होता; और यदि होता भी तो उसकी दण्ड-नीति और भी बढ़कर असह्य होती; खास यूरोप में, यहाँ तक कि अमेरिका में भी, इसके प्रमाणों का अभाव नहीं है। प्रकाश्य रूप से विद्रोह की घोषणा करते समय भी, राजपुरुषों के द्वारा पीड़ित किये जाने पर हम सब विस्मय करते हैं, तब प्रमाणित हो जाता है कि अँगरेज जाति के प्रति हमारी मूढ़ श्रद्धा मार खाते-खाते भी मरना नहीं चाहती। अपने देशी राजा या जमींदारों से हमें और भी कम आशा है।

इंग्लैंड में रहते समय एक बात पर मैंने लक्ष्य किया है कि भारत में दिये गये दंडों के विषय में ग्लानिजनक कोई समाचार वहाँ के अखबारों में नहीं पहुँचने पाते। इसका एकमात्र कारण यह नहीं है कि वे डरते हैं कि कहीं यूरोप या अमेरिका में उनकी निन्दा न होने लगे। वास्तव में कड़े अँगरेज शासनकर्त्ता अपनी ही जाति
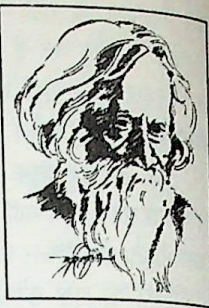
की शुभबुद्धि से डरते हैं; अँगरेजों के लिए छाती ठोंककर यह कहना कि "अच्छा किया है ठीक किया है, जरूरत थी जबर्दस्ती करने की" सहज नहीं है; कारण, अँगरेजों में उदार हृदय मौजूद हैं। भारत के संबंध में सच्ची बातें बहुत कम अँगरेज जानते हैं। वे अपने को धिक्कारें तो किस बात पर, उसके कारण तो उन तक पहुँचते ही नहीं। यह सच है कि जिसने भारत का नमक बहुत दिनों तक खाया है, उसका अँगरेजी यकृत और हृदय कलुषित हो गया है, फिर भी दुर्भाग्य से वे ही हमारे 'अथॉरिटी' हैं।

भारत में वर्तमान आन्दोलन के समय जो दमन चक्र चलाया गया है, उसके विषय में हमारे भाग्य-विधाताओं का कहना है कि वह बहुत ही मामूली था। इस बात को मानने के लिए हम बिलकुल तैयार नहीं हैं; किन्तु अतीत और वर्तमान शासन नीति में तुलना करने से उनकी बात को अत्युक्ति नहीं कहा जा सकता। हमने मार खाई है, अन्यायपूर्ण मार भी काफी खाई है; और सबसे बढ़कर कलंक की बात है गुप्त मार, उसकी भी कमी कभी नहीं रही। यह भी कहना पड़ेगा कि अधिकांश मौकों पर माहात्म्य उनका है, जिन्होंने मार खाई है; जिन्होंने मारा है, उन्होंने अपना सम्मान ही खोया है परन्तु साधारण राज्य-शासन नीति के आदर्श के अनुसार हमारी मार की मात्रा अवश्य ही बहुत कम कही जा सकती है। खासकर जबकि हमसे उनका रक्त का कोई सम्बन्ध नहीं था, और दूसरे, समस्त भारतवर्ष को 'जलियावालांबाग' बना डालना बाहुबल की दृष्टि से उनके लिए कोई असम्भव बात नहीं थी। अमेरिका की समग्र नीग्रो-जाति युक्त राज्य से अपना सम्बन्ध त्यागने के लिए स्पर्द्धापूर्वक आन्दोलन करने में जुट जाती, तो कैसे वीभत्स रूप से खून की नदियाँ बहतीं, इस वर्तमान शान्ति की अवस्था में भी उसका अनुमान करने में ज्यादा कल्पना-शक्ति की जरूरत नहीं पड़ेगी। इसके सिवा इटली आदि में जो हुआ है, उस विषय में आलोचना करना ही व्यर्थ है।

परन्तु इससे सान्त्वना नहीं मिलती। जो मार लाठी के सिरे पर है, वह मार दो दिन बाद थक जाती है, यहाँ तक कि क्रमशः उसका स्वयं लज्जित होना कोई असम्भव बात नहीं। परन्तु जो मार भीतर ही भीतर अपना काम करती रहती है, वह तो ज्यों-की त्यों बनी रहती है, उसका लोप होता ही नहीं। समस्त जाति को उसने भीतर ही भीतर कंगाल कर दिया है, शताब्दियाँ बीत गईं उसकी गति रुकी नहीं। क्रोध की मार रुकती है, पर लोभ की मार का अन्त नहीं।

'टाइम्स' के साहित्यिक क्रोड़ पत्र में देखा था, मैकी के लेखक ने लिखा है--"भारत में दरिद्रता का मूल कारण है वहाँ के लोगों का बिना विचारे विवाह करना और उससे अधिक प्रजा का उत्पन्न होना।" इसका भीतरी भाव यह है कि देश के बाहर से जो शोषण-कार्य चल रहा है, वह इतना दुःसह न होता, यदि थोड़े अनाज से थोड़े से आदमी हँड़िया पोंछ-पोंछकर अपनी गुजर कर लेते। सुनते हैं--इंग्लैंड में सन् 1871 से लेकर 1921 तक फी-सदी 66 आदमियों की वृद्धि हुई है। भारत में पचास वर्ष की प्रजावृद्धि का औसत 33 फी-सदी है। फिर एक ही मुहूर्त की यात्रा में पृथक् फल क्यों हुआ ? इससे मालूम होता है कि रूट कॉज़ प्रजावृद्धि नहीं, बल्कि मूल कारण जीविका का अभाव है। और उसका मूल कहाँ है ?

जो देश पर शासन करते हैं, और जो प्रजा उनके द्वारा शासित होती है, दोनों का भाग्य यदि एक-सा हो, तो कम से कम खाने-पहनने के विषय में शिकायत नहीं हो सकती। अर्थात् सुभिक्ष और दुर्भिक्ष में दोनों ही लगभग समान ही भाग लेते हैं। परन्तु जहाँ कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष के बीच में महालोभ और महासमुद्र का व्यवधान है, वहाँ अमावस्या की और विद्या, स्वास्थ्य, सम्मान और सम्पदा की कंजूसी दूर नहीं हो सकती, और उस पर भी मजा यह कि निशीथ रात्रि के चौकीदारों के हाथ में सर्चलाइट का आयोजन बढ़ता ही जाता है। इस बात पर विचार करने के लिए स्टैटिस्टिक्स की बहुत ज्यादा नुक्ताचीनी की जरूरत नहीं पड़ती कि आज एक-सौ साठ वर्ष से भारत के भाग्य में सब विषयों में दरिद्रता और ब्रिटेन के भाग्य में सब विषयों में ऐश्वर्य ही ऐश्वर्य भोग करना बदा है। इसका यदि एक पूरा चित्र अंकित करना चाहूँ, तो बंगाल में जो किसान सन उत्पन्न करते हैं और सुदूर डंडी (स्काटलैंड) में जो उसका मुनाफा उठाते हैं--दोनों की जीवन-यात्रा का दृश्य पास-पास रखकर देखना पड़ेगा। दोनों में सम्बंध है लोभ का और विच्छेद है भोग का। यह भेद डेढ़ सौ वर्ष से बढ़ता ही रहा, घटा नहीं।

जबसे यान्त्रिक उपायों से अर्थोपार्जन को बहु-गुना बढ़ाने का रास्ता खुल गया, तबसे मध्ययुग का वीर धर्म (शिवलरी) वाणिक धर्म में परिणत हो गया, इस भीषण वैश्ययुग की प्रथम सूचना मिली समुद्रयान के द्वारा विश्व पृथिवी के आविष्कार के साथ-साथ। वैश्ययुग की आदिम भूमिका है दस्युवृत्ति में। दास-हरण और धन-हरण की वीभत्सता से धरित्री उस दिन रो उठी थी। यह निष्ठुर व्यवसाय विशेषतः परदेश में अधिक चलता था। थोड़े ही दिन हुए, स्पेनवालों ने मेक्सिको में जाकर सिर्फ सोने की खानें ही नहीं हड़पी, बल्कि वहाँ की सारी सभ्यता को खून से मिटा डाला। उस रक्त-मेघ की आँधी पश्चिम से भिन्न-भिन्न झोंकों में भारत में आने लगी। उसका इतिहास कहना अनावश्यक है। धन-सम्पदा का स्रोत पूर्व दिशा से पश्चिम की ओर मुड़ा।

उसके बाद से पृथ्वी पर कुबेर का सिंहासन स्थायी बन गया। विज्ञान ने घोषणा कर दी कि यंत्र का नियम ही विश्व का नियम है, बाह्य सिद्धि-लाभ के अतिरिक्त कोई नित्य सत्य नहीं है। प्रतियोगिता की उग्रता सर्वव्यापी होने लगी; दस्युवृत्ति को भद्रवेश में सम्मान मिलने लगा। लोभ के प्रकट और गुप्त रास्तों से कारखानों में, खानों में और बड़ी-बड़ी खेतियों में छद्मनामधारी दासवृत्ति, मिथ्याचार और निर्दयता कैसी हिंसक बन गई है, इस विषय में यूरोपीय साहित्य में रोमांचकारी वर्णन काफी देखने में आते हैं। पाश्चात्य देशों में जो लोग रुपया कमाते हैं और जो लोग उन्हें उस काम में मदद देते हैं-- अर्थात धनी और मजदूरों में बहुत दिनों से विरोध चल रहा है। मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म है समाज। लोभ ही उस धर्म का सबसे बड़ा घातक है। इस युग में एकमात्र लोभ ही मनुष्य के समाज को झकझोर कर उसके सम्बन्ध-बन्धनों को शिथिल और विच्छिन्न करता जा रहा है।

एक देश में एक ही जाति के भीतर यह निर्मम धनार्जन का लोभ जो भेद खड़ा कर देता है, उसमें दुःख चाहे जितना भी हो, परन्तु फिर भी वहाँ सुयोग (चान्स) का दरवाजा सबसे लिए समान रूप से खुला रहता है। शक्ति में पार्थक्य हो सकता है, पर अधिकार में रोक नहीं है। धन की चक्की में आज जो वहाँ पीसा जा रहा है, कल ही वह पीसने वाला बन सकता है। सिर्फ इतना ही नहीं, बल्कि वहाँ जो धनियों के पास धन इकट्ठा होता है, अनेक प्रकारों से देश के सभी लोगों में उसका कुछ न कुछ अंश अपने आप ही बँट जाता है। व्यक्तिगत सम्पत्ति पर जातीय सम्पत्ति का भार कुछ न कुछ रहता ही है। सर्वसाधारण के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन तथा अनेक तरह के हितकर कार्य-- इन सब कामों के लिए काफी रुपयों की जरूरत होती हैं; और देश की इन समस्त विचित्र माँगों को चाहे इच्छा से हो या अनिच्छा से, लक्ष्यता हो चाहे अलक्ष्यता--धनी लोग पूरा करते ही रहते हैं।

परन्तु भारत के जिस धन से विदेशी वणिक या राज-कर्मचारी धनी होते हैं, उसका कम से कम उच्छिष्ट--जो नहीं के बराबर होता है--भारत के हिस्से में पड़ता है। सन पैदा करने वाले किसानों की शिक्षा और स्वास्थ्य का अभाव प्यासे चातक की तरह मुँह बाये पड़ा रहता है, विदेश को जाने वाले मुनाफे में से उसे कुछ भी नहीं मिलता। जो कुछ गया, वह बिलकुल गया--उसमें से कुछ लौट नहीं सकता। सन की खेती और उसमें से मुनाफा उठाने के लिए ही गाँव के तालाब दूषित किये जाते हैं, किन्तु फिर भी असह्य जलकष्ट को दूर करने में विदेशी महाजनों की भरी जेब में से एक पाई भी नहीं निकलती ! यदि पानी की व्यवस्था की भी गई, तो उसका सारा खर्चा टैक्स के रूप में उन्हीं वणिकों द्वारा चूसे जाने वाले गरीब भूखे किसानों को ही देना पड़ता है! सर्वसाधारण को शिक्षा देने के लिए राजकोष में रुपये नहीं हैं। क्यों नहीं हैं ? इसका मुख्य कारण है, काफी रुपया भारत को सम्पूर्णतः त्यागकर बाहर चला जाता है-- यह है लोभ का रुपया, जिससे अपना रुपया भी पूरी तरह से दूसरे का हो जाता है, अर्थात पानी सूखता है इस पार के तालाब का और बादल होकर उसकी वर्षा होती है उस पार के देशों में। उस देश के अस्पतालों और विद्यालयों के लिए यह अभागा, अशिक्षित, अस्वस्थ, मुमुर्षु भारतवर्ष हमेशा अप्रत्यक्ष रूप से रसद जुटाता आ रहा है।

देशवासियों की शारीरिक और मानसिक अवस्था का चरम दुःख-दृश्य बहुत दिनों से अपनी आँखों से देखता आ रहा हूँ। दरिद्रता से मनुष्य सिर्फ मरता ही नहीं; बल्कि अपने को अवज्ञा के योग्य बना लेता है, इसीलिए जान साइमन ने कहा है :--

"इन ऑवर व्यू द मोस्ट फॉर्मिडेबिल ऑफ़ द ईविल्स फ्रॉम व्हिच इण्डिया इज़ सफ़रिंग हैव देअर रूट्स इन सोशल एण्ड इकोनॉमिक कस्टम्स ऑफ़ लॉग स्टैण्डिग व्हिच कैन ओनली बी रेमीडीड बाइ द एक्शन ऑफ़ द इण्डियन पीपुल्स देमसेल्व्स।"

यह अवज्ञा की बात है। भारत की आवश्यकताओं पर वे जिस आदर्श से विचार कर रहे हैं, वह उनका अपना आदर्श नहीं है। अधिक से अधिक धन-सम्पत्ति उपार्जन करने के लिये जैसी शिक्षा, जैसी सुविधाएँ, जैसी स्वाधीनता उन्हें प्राप्त है-- जिन सुविधाओं-से उनकी जीवन-यात्रा का आदर्श ज्ञान-क्रम भोग आदि अनेक दिशाओं से काफी पुष्ट हो चुका है-- जीर्ण वस्त्र, शीर्ण-शरीर, रोग क्लान्त, शिक्षा-वंचित भारत के लिए वैसी शिक्षा, वैसी स्वाधीनता और वैसी सुविधाओं के आदर्श को वे कल्पना में भी नहीं लाते; बल्कि वे तो यह चाहते हैं कि हम किसी तरह अपनी संख्या वृद्धि को रोककर दिन काटें और खर्च घटायें और अपनी आजीविका का गला घोंटकर उनकी जीविका का जो बढ़ा हुआ आदर्श है, उसका भारी बोझ हमेशा ढोते रहें, जिससे वह ज्यों का त्यों बना रहे। इससे ज्यादा कुछ विचारने की जरूरत नहीं, अतएव रेमेडी (इलाज) की पूरी जिम्मेदारी हमारे ही हाथ में है, जिन लोगों ने रेमेडी को दुःसाध्य कर डाला है, उनके लिए विशेष कुछ करना नहीं है।

मनुष्य और विधाता के विरुद्ध इन सब अभियोगों को स्थगित रखकर ही मैं अन्तरंग दृष्टि से अपने निर्जीव गाँवों में प्राण संचार करने के लिए अपनी अत्यन्त क्षुद्र शक्ति का कुछ दिनों से प्रयोग कर रहा हूँ। इस कार्य में सरकार की अनुकूलता की मैंने उपेक्षा नहीं की, बल्कि उसकी मैंने इच्छा ही की है। परन्तु कुछ फल नहीं मिला, कारण वहाँ दर्द नहीं है-- सहानुभूति नहीं है। और दर्द होना सम्भव भी नहीं--कारण, हमारी अक्षमता ने--हमारी हर तरह की दुर्दशा ने हमारी माँग को बहुत कमजोर बना दिया है। देश के किसी यथार्थ करने योग्य कार्य में सरकार के साथ हमारे कार्यकर्ताओं का उचित सहयोग-सम्बन्ध होना मुझे तो असम्भव सा मालूम होता है। इसलिए यही स्थिर रहा कि चौकीदारों की वर्दी का खर्च पूरा करके हमारे पास जितनी भी कौड़ी बचें, उनसे जो काम हो सकता है, उतना ही काम करें।

मैं ऐसे समय में रूस गया था, जबकि भारत के राजकीय लोभ और उससे उत्पन्न असह्य उदासीनता के रूप ने मेरे हृदय में निराशा का अन्धकार फैला रखा था। यूरोप के अन्यान्य देशों में ऐश्वर्य का काफी आडम्बर देखा है; वह इतना अधिक ऊँचा है कि देश की ईर्ष्या भी उसकी ऊँचाई तक नहीं पहुँच सकती। रूस में भोग का वैसा समारोह बिलकुल नहीं, शायद इसीलिए उसका भीतरी रूप देखना सहज था।

भारतवर्ष जिससे बिलकुल ही वंचित है, यहाँ उसी के आयोजन को सर्वव्यापी बनाने का प्रबल प्रयास हो रहा है, और उसे मैंने अपनी आँखों से देखा है। कहना न होगा कि मैंने अपनी उस बहुत दिनों की भूखी दृष्टि से सब देखा है। पश्चिम महादेश के अन्य किसी भी स्वाधिकार सौभाग्यशाली देशवासी की दृष्टि में यह दृश्य कैसा लगेगा, इस बात का ठीक-ठीक विचार करना मेरे लिए सम्भव नहीं। अतीतकाल में भारत का कितना धन ब्रिटिश द्वीप को रवाना हो गया है और वर्तमान में नाना प्रणालियों से प्रतिवर्ष कितना जा रहा है, इस विषय में संख्या-संबन्धी तर्क मैं नहीं करना चाहता। परन्तु मैं तो स्पष्ट देख रहा हूँ--और बहुत से अँगरेज भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि हमारे देश का शरीर रक्तहीन हो गया है और उसका हृदय बिलकुल दब गया है; जीवन में न तो आनन्द है, न सुख; हम भीतर-बाहर सब तरह से मर रहे हैं; और उसका मूल कारण यह है कि भारतवासी स्वयं ही मर्मगत अपराध के साथ संश्लिष्ट हैं, अर्थात कोई भी गवर्नमेण्ट इसका प्रतिकार करने में अत्यन्त असमर्थ है, इस बात को हम कभी भी स्वीकार नहीं करेंगे।

इस बात को मैं हमेशा से ही महसूस करता आया हूँ कि भारत के साथ जिन विदेशी शासनकर्ताओं का केवल स्वार्थ का ही सम्बन्ध प्रबल है और दर्द या सहानुभूति का सम्बन्ध है ही नहीं, वह गवर्नमेण्ट अपनी गरज से ही प्रबल शक्ति द्वारा विधि और व्यवस्था की रक्षा करने में उत्साहित है; परन्तु जिन विषयों में केवल हमारी ही गरज है, उन विषयों में हमें देश की तन-मन-धन, सब तरह से रक्षा करनी होगी; क्योंकि वहाँ यथोचित शक्ति प्रयोग करने में यह गवर्नमेण्ट उदासीन रहेगी। अर्थात इन विषयों में विदेशी शासकगण अपने देश के लिए जितने प्रयत्नशील हैं, वहाँ से जितनी उनकी सहानूभूति और सम्वेदना है, हमारे देश के लिए उसका सौवाँ अंश भी नहीं है। मगर फिर भी हमारे धन और प्राण उन्हीं के हाथ में हैं; और जिन उपायों और उपादानों से हम विनाश से अपनी रक्षा कर सकते हैं, वे हमारे हाथ में नहीं हैं।

यहाँ तक कि यदि यह बात सच हो कि सामाजिक नियमों के विषय में अपनी मूढ़तावश हम मरने बैठे हैं, तो वह मूढ़ता जिस शिक्षा और जिस उत्साह के द्वारा दूर हो सकती है, वह शिक्षा भी उसी विदेशी गवर्नमेण्ट के ही राजकोष और राज-इच्छा पर निर्भर है। देश-व्यापी अशिक्षाजनित विपत्ति दूर करने के उपाय या तरीके केवल कमीशन की सलाह-मात्र से नहीं प्राप्त किये जा सकते--इस विषय में सरकार को उतना ही तत्पर होना चाहिए, जितना कि ब्रिटेन-द्वीप की समस्या होने पर ब्रिटिश गवर्नमेण्ट होती। साइमन-कमीशन से हमारा यह प्रश्न है कि यदि बात सच है कि भारत की अज्ञात-अशिक्षा के अंदर ही इतना बड़ा मृत्युशूल लगा रहकर अब तक रक्तपात कर रहा है, तो आज एक-सौ साठ वर्ष से ब्रिटिश शासन रहते हुए भी वह कुछ अंशों में भी दूर क्यों नहीं हुआ ? कमीशन ने क्या कभी सांख्य-तथ्य के
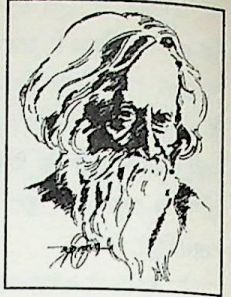
द्वारा इस बात का हिसाब लगाया है कि पुलिस की डंडेबाजी के लिए ब्रिटिश-सरकार जितना खर्च करती है, उसकी तुलना में देश को शिक्षित करने में इस लम्बे समय में कितना खर्च किया गया है ? वास्तव में बात यह है कि दूर देश के रहने वाले धनी शासकों के लिए पुलिस को डंडा सौंपे बिना काम नहीं चल सकता। रही भारतवासियों की बात, सो जिनके सिर की खोपड़ी उस लाठी के वशीभूत है, उनकी शिक्षा के लिए व्यय का विधान शताब्दियों मुलतवी रखने से भी काम चल सकता है।

रूस में पैर धरते ही सबसे पहले मेरी दृष्टि पड़ी किसान और मजदूरों पर, जो आज से सिर्फ आठ वर्ष पहले भारतीय सर्वसाधारण की तरह ही निःसहाय, निरन्न, निरक्षर और अत्याचारों से पीड़ित थे, और अनेक विषयों में जिनका दुःखभार हमसे भी जयादा था, उनमें ही आज शिक्षा का प्रचार इन थोड़े ही वर्षों में इतना अधिक हो गया है कि डेढ़ सौ वर्ष में भी हमारे देश के उच्च श्रेणी के लोगों में उतना नहीं हुआ। हम अपने दरिद्राणां मनोरथः स्वदेश की शिक्षा के सम्बन्ध में जिस दुराशा का चित्र मरीचिका के पट पर भी नहीं खींच सकते, यहाँ उसका प्रत्यक्ष रूप दिगन्त से लेकर दिगन्त तक विस्तृत देखा।

मैं अपने से बार-बार यह प्रश्न करता हूँ कि इतना बड़ा आश्चर्यजनक कार्य हुआ तो हुआ कैसे ? हृदय में इसका उत्तर मुझे यों मिला है कि वहाँ लोभ की बाधा कहीं नहीं है, इसीलिए हुआ। इस बात को विचारने में कहीं भी खटका नहीं होता कि शिक्षा के द्वारा सभी मनुष्य यथोचित शक्तिवान हो जायँगे। दूर एशिया के तुर्कमेनिस्तानवासी प्रजाओं को भी पूरी तौर से शिक्षा देने में इनको जरा भी खटका नहीं, बल्कि प्रबल आग्रह है। वे सिर्फ रिपोर्ट में इस बात का उल्लेख करके उदासीन होकर नहीं बैठे कि तुर्कमेनिस्तानवासियों के दुःख-कष्टों के कारण उन्हीं की सामाजिक रूढ़ियों में मौजूद हैं।

कोचिन-चायना में शिक्षा-विस्तार के सम्बन्ध में सुना है कि किसी फ्रांसीसी पांडित्य व्यवसायी ने कहा है कि भारत में अंगरेजों ने देशी लोगों को (भारतीयों को) शिक्षा देकर जो भूल की है, फ्रान्स वैसी भूल वहाँ न कर बैठे। यह बात माननी ही पड़ेगी कि अँगरेजों के चरित्र में ऐसा एक महत्व है, जिसके लिए विदेशी शासन-नीति में वे कुछ-कुछ गलतियाँ कर ही बैठते हैं, शासन की गफ बुनावट में कहीं-कहीं सूत टूट ही जाता है, नहीं तो प्रतिवाद के लिए हमारी जबान खुलने में शायद और भी एकआध शताब्दी की देर हो जाती।

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि शिक्षा के अभाव से ही अशक्ति या असामर्थ्य अटल बनी रहती है। अतएव अशिक्षा पुलिस के डंडों से कम बलवान नहीं है, मालूम होता है, लार्ड कर्जन ने इस बात को कुछ-कुछ महसूस किया था। शिक्षा देने के सम्बन्ध में उक्त फ्रांसीसी पांडित्य व्यवसायी अपने देश की आवश्यकताओं या स्वार्थ का जिस आदर्श से विचार करते हैं, शासित देश की आवश्यकताओं पर उस आदर्श से विचार नहीं करते। इसका एकमात्र कारण है लोभ, जो लोभ के वाहन हैं, उनके मनुष्यत्व की वास्तविकता लोभी के लिए अस्पष्ट है, उनकी माँग को हम स्वभावतः ही कुछ नहीं समझते। जिनके साथ भारत के शासन का सम्बन्ध है, उनके सामने भारत आज डेढ़ सौ वर्ष से छोटा है--नाचीज है। इसीलिए उसकी मर्मगत आवश्यकताओं पर ऊपर वालों का उपेक्षा भाव दूर नहीं हुआ। हम क्या खाते हैं, किस पानी से हमारी प्यास मिट सकती है, कैसी गहरी अशिक्षा से हमारा चित्त अन्धकारपूर्ण है-- इन बातों पर आज तक अच्छी तरह उनकी दृष्टि नहीं गई। क्योंकि उनके लिए यही मुख्य बात है कि हम ही उनकी आवश्यकीय वस्तु हैं; और हमारे लिए भी जीवन सम्बन्धी आवश्यकताएँ हो सकती हैं; यह बात उनके लिए फालतू है। इसके सिवा हम इतने नाचीज, इतने तुच्छ बने हुए हैं कि हमारी आवश्यकताओं का सम्मान करना उनके लिए असम्भव है। भारत की जैसी कठिन समस्या है, जिससे कि हम अब तक तन-मन धन से मर रहे हैं, ऐसी पाश्चात्य देशों में कहीं भी नहीं है। वह समस्या यह है कि भारत का समस्त स्वत्त्व दो भागों में बाँट दिया गया है और सत्यानासी विभाग के मूल में है लोभ। इसीलिए रूस में आकर जब इस लोभ को तिरस्कृत होते देखा, तो उससे मुझे जितना गहरा आनन्द हुआ, उतना शायद दूसरे को न होता। फिर भी मूल बात को मन से अलग नहीं कर सकता, वह यह कि आज जो केवल भारत में ही नहीं, बल्कि सारे संसार में ही किसी न किसी बड़ी विपत्ति का जाल बिछा दिखाई देता है, उसकी प्रेरणा है लोभ। यदि किसी को कोई भय है तो उस लोभ का ही है, संशय है तो उस लोभ का है; जितनी भी अस्त्र-शस्त्रों की तैयारियाँ हैं, जितना भी मिथ्याचरण और निष्ठुर राजनीति है, सब लोभ के लिए।

और एक तर्क का विषय है डिक्टेटरशिप, यानी राजकीय कार्यों में नायकतंत्र का झगड़ा। किसी भी विषय में नायकपन को मैं स्वयं पसंद नहीं करता। हानि या दंड के भय को आगे रखकर अथवा भाषा तथा हावभाव या व्यवहार में जिद पकड़कर अपने मत के प्रचार के रास्ते को बिलकुल साफ करने की चेष्टा मैं कभी भी अपने कार्यक्षेत्र में नहीं कर सका। इसमें सन्देह नहीं कि एक नायकता में विपत्तियाँ बहुत हैं; उसकी क्रिया की एकतानता और नित्यता अनिश्चित है, चलने वाले और चलने वालों के बीच इच्छा असम्पूर्ण योग (मेल) होने से विद्रोह के कारण हमेशा बने ही रहेंगे, इसके सिवा बलपूर्वक चलाए जाने का अभ्यास चित्त और चरित्र के बल को घटाता है; इसकी सफलता एक ओर जहाँ बाहर से दो-चार फसलों से अंजलि भर देती है, वहाँ दूसरी ओर उसकी भीतरी जड़ को सुखा देती है।

जनता का भाग्य यदि उनकी सम्मिलित इच्छा के द्वारा ही न बने और न पनपे, तो यह उनके लिए निरा पिंजड़ा बन जाता है, दाना-पानी वहाँ अच्छा भी मिल सकता है, पर उसे नीड़ (घोंसला) नहीं कहा जा सकता--वहाँ रहते-रहते उसके पंखों में लकवा मार जाता है। यह नायकता चाहे शास्त्रों में हो, चाहे गुरूओं में और चाहे राष्ट्रनेताओं में, मनुष्यत्व को हानि पहुँचाने वाला ऐसा उपद्रव और कुछ हो ही नहीं सकता।

हमारे समाज में इस नपुंसकत्व की सृष्टि युगों से होती आई है और इसका फल रोजमर्रा देखता आया हूँ। महात्माजी ने जब कहा था कि विदेशी कपड़ा अपवित्र है, तब मैंने इसका प्रतिवाद किया था; कहा था कि विदेशी कपड़ा आर्थिक दृष्टि से हानिकर हो सकता है, पर अपवित्र नहीं हो सकता। परन्तु हमें जो शास्त्र के आधार पर चलने वाले अन्ध-चित्त को समझाना है, नहीं तो काम नहीं हो सकता--मनुष्यत्व का ऐसा चिरस्थायी अपमान और क्या हो सकता है? नायक-चालित देश इसी प्रकार मोहाच्छन्न हुआ करता है-- एक जादूगर जहाँ विदा हुआ वहाँ दूसरा जादूगर आकर नया मंत्र बनाकर लोगों को मोह लेता है।

डिक्टेटरशिप एक आफत है, इस बात को मैं मानता हूँ, और उस आफत से आज रूस में अनेक अत्याचार हो रहे हैं, इस बात पर भी मैं विश्वास करता हूँ। इसकी नंगर्थक दिशा जबरदस्ती की दिशा है, वह पाप है। परन्तु सदर्थक दिशा, जो कि शिक्षा की दिशा है, जबरदस्ती से बिलकुल उलटी है।

देश को सौभाग्यशाली बनाने में साधारण जनता का हृदय सम्मिलित होना चाहिए, तभी उसकी क्रिया सजीव और स्थायी होती है। अपने एकनायकत्व के लोभ

में जो लुब्ध हैं, अपने हृदय को छोड़कर अन्य समस्त हृदयों को अशिक्षा के द्वारा जड़ बनाये रखना ही उनकी अभिप्राय-सिद्धि का एकमात्र उपाय है। जार के राजत्व-काल में शिक्षा के अभाव से जनता मोहाच्छन्न थी, उस पर सर्वव्यापी धर्ममूढ़ता ने अजगर की तरह उसके चित्त को सैकड़ों लपेटों से जकड़ रखा था। उस मूढ़ता को सम्राट् बड़ी आसानी से अपने काम में लगा सकते थे। उस जमाने में यहूदियों के साथ ईसाइयों का और मुसलमानों के साथ आरमीनियों का सब तरह का वीभत्स उपद्रव धर्म के नाम पर अनायास ही हो सकता था। तब ज्ञान और धर्म के मोह से आत्मशक्ति-हीन शिथिल और कई भागों में विभक्त देश बाहर के शत्रुओं के सामने सहज ही प्रभावित हो गया था। एकनायकत्व के चिराधिपत्य के लिए ऐसी अनुकूल अवस्था और कोई भी नहीं हो सकती।

पहले जैसी रूस की अवस्था थी, वैसी अवस्था हमारे देश में बहुत दिनों से मौजूद है। आज हमारा देश महात्माजी के चालकत्व या नायकत्व के वश में हो गया है, कल वे नहीं रहेंगे; तब इस नायकत्व के इच्छुक लोग उसी तरह अकस्मात् दिखाई देते रहेंगे, जिस तरह हमारे देश में धर्म-मोहितों के सामने नये-नये अवतार और गुरू जहाँ-तहाँ उठ खड़े होते हैं। चीन देश में आज नायकत्व को लेकर कुछ क्षमता लोभी जबरदस्तों में निरन्तर प्रबल संघर्ष चल ही रहा है। कारण सर्वसाधारण में वह शिक्षा ही नहीं है, जिससे वे अपनी सम्मिलित इच्छा के द्वारा देश का भाग्य स्वयं गढ़ सकें, इसीलिए आज उनका सारा देश नष्टभ्रष्ट हुआ जा रहा है। हमारे देश में उस नायक-पद को लेकर तनातनी या छीना-झपटी न होगी, ऐसा मैं तो नहीं समझता-- तब घास की तरह दलित-विदलित होकर गरीब ही बेचारे मरेंगे। इसका बुरा परिणाम जो कुछ होगा, उसका फल भुगतना पड़ेगा साधारण जनता को ही।

रूस में भी आजकल नायक का प्रबल शासन देखने में आ रहा है। परन्तु इस शासन ने अपने को चिरस्थायी बनाने का मार्ग नहीं पकड़ा। एक दिन वह मार्ग पकड़ा था जार के शासन ने--अशिक्षा और धर्ममोह से जनसाधारण के मन को प्रभावित करके और चाबुकों से उनके पौरुष को शिथिल करके। फिलहाल रूस का शासन दंड निश्चल है, ऐसा मैं नहीं समझता, किन्तु शिक्षा-प्रचार का उद्यम असाधारण है। इसका कारण यह है कि उसमें व्यक्तिगत या दलगत किसी तरह का लोभ या क्षमता पाने की लालसा नहीं है। एक खास अर्थनैतिक मत के अनुसार सर्वसाधारण को दीक्षित करके--जाति, वर्ण और श्रेणी का किसी प्रकार का भेदभाव न रखते हुए-सबको मनुष्य बना डालने की दुर्निवार इच्छा इनमें अवश्य है। यदि वह न होती, तो फ्रांसीसी विद्वान की बात माननी पड़ती कि शिक्षा देना एक बड़ी-भारी गलती है।

उनको यह अर्थनैतिक मत पूरी तौर से स्वीकार है या नहीं, इस पर विचार करने का समय अभी नहीं आया; क्योंकि यह मत अब तक मुख्यतः केवल पोथियों में ही बंद पड़ा था। ऐसे बड़े क्षेत्र में इतने बड़े साहस के साथ उसे मुक्ति कभी नहीं मिली। जिस प्रबल लोभ के कारण इस मत को शुरू से ही घातक बाधाओं का सामना करना पड़ा है, उस लोभ को ही इन लोगों ने कठोरता के साथ हटा दिया है। परीक्षाओं के भीतर से परिवर्तन होते-होते इस मत का कितना अंश कहाँ जाकर स्थायी होगा, इसका निश्चित् उत्तर अभी कोई नहीं दे सकता। परन्तु यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि रूस की सर्वसाधारण प्रजा को इतने दिनों बाद जो शिक्षा अधिकता से और अनिवार्य रूप से मिल रही है, उससे उनके मनुष्यत्व का उत्कर्ष और सम्मान स्थायी हो गया है।

वर्तमान रूस में निष्ठुर शासन की जनश्रुति हमेशा ही सुनने में आती है--हो सकता है कि वह बात असम्भव न हो। निष्ठुर शासन की धारा वहाँ हमेशा से बहती आई है, सहसा उसका सर्वथा नाश न होना स्वाभाविक है। फिर भी वहाँ चित्रों से, सिनेमाओं से, इतिहास की व्याख्याओं से पुराने जमाने के कठोर शासन और अत्याचारों को सोवियत-सरकार बराबर सबके सामने रख रही है। यह सरकार यदि स्वयं भी इस तरह के निष्ठुर मार्ग पर चलती है, तो लोगों में निष्ठुर व्यवहार के प्रति इतनी अधिक घृणा पैदा कर देना, और कुछ नहीं तो अद्भुत भूल जरूर है। सिराजुद्दौला की काली कोठरी की नृशंसता को यदि सिनेमा आदि द्वारा सर्वत्र लज्जित किया जाता, तो उसके साथ ही साथ जलियांवालाबाग के हत्याकांड को कम से कम मूर्खता कहने में कोई दोष न होता। क्योंकि ऐसी दशा में विमुख अस्त्र अस्त्रधारी को ही लगेगा।

सोवियत रूस में कार्ल मार्क्स की अर्थनीति के कारण प्रजा की विचार बुद्धि को एक साँचे में ढालने का जबरदस्त प्रयत्न हो रहा है; और उस जिद के कारण इस विषय में स्वतंत्र आलोचना का रास्ता जोर के साथ रोक दिया गया है। इस अपवाद को मैं सत्य समझता हूँ। कुछ दिन पहले यूरोप के महायुद्ध के समय इस तरह मुँह बंद करना और गवर्नमेंट की नीति के विरुद्ध बोलने वालों के मत स्वातंत्र्य को जेलखाने या फाँसी के तख्ते पर चढ़ाकर उसका अन्त कर देने की चेष्टा की गई थी।

जहाँ शीघ्र ही फल-प्राप्ति का लोभ अत्यंत प्रबल है, वहाँ राष्ट्रनायक मनुष्य में मत-स्वातंत्र्य के अधिकार को स्वीकार नहीं करना चाहते। वे कहते हैं कि ये सब बातें पीछे होंगी, फिलहाल काम सिद्ध करना चाहिए। रूस की अवस्था युद्धकाल की अवस्था है; भीतर और बाहर सर्वत्र शत्रु मौजूद हैं। वहाँ की समस्त परीक्षाओं को नष्ट कर देने के लिए आज चारों ओर छल-बल से काम लिया जा रहा है। इसी से वे अपने निर्माण-कार्य की नींव को जहाँ तक हो, जल्दी पक्की कर लेना चाहते हैं। और इसीलिए वे बल प्रयोग करने में हिचकिचाते नहीं हैं। परन्तु मतलब चाहे कितना ही जरूरी क्यों न हो, 'बल' हमेशा इकतरफा चीज है। उससे बिगड़ता ही है, बनता नही। सृष्टि या गठन कार्य में दो पक्ष होते हैं; उपादान को अपने दल में लाना ही होगा-- मार-पीटकर नहीं, बल्कि उसके नियम को स्वीकार करके।

रूस जिस काम में लगा हुआ है, वह काम युगान्तर का मार्ग तैयार करना है; उसके लिए पुराने विधि-विश्वासों की जड़ों को पहले की जमीन से उखाड़ फेंकना और चिर-अभ्यस्त आरामों का तिरस्कार करना पड़ता है। ऐसा तोड़-फेंकने का उत्साह जिस भँवर की सृष्टि करता है, उसके चक्कर में आ जाने पर मनुष्य को अपनी मत्ता का अन्त नहीं मिलता--फिर तो उसकी स्पर्द्धा और हिम्मत बढ़ जाती है; मानव-प्रकृति की साधना करके उसे वश करने की आवश्यकता को वह भूल जाता है, समझता है कि उसके आश्रय से जबरदस्ती छीनकर ले जाने से--सीताहरण जैसी घटना कर डालने से--उसको प्राप्त किया जा सकता है। उसके बाद लंका में भले ही आग लग जाय, उसकी चिन्ता नहीं। पर्याप्त समय लेकर स्वभाव के साथ समझौता करने के लिए जिनके पास धैर्य नहीं हैं, वे उपद्रव में विश्वास रखते हैं; और अन्त में वे ठोंक-पीटकर रात ही रात में जिस चीज को गढ़ डालते हैं, उसके भरोसे काम नहीं चलता और न वह अधिक दिनों तक स्थायी ही रहती है।

जहाँ आदमी तैयार नहीं हैं, जहाँ लोकमत तैयार नहीं हुआ है, वहाँ के उग्र दंडनायकों पर मेरा विश्वास नहीं है। पहला कारण यह है कि अपने मत के विषय में शुरू में ही पूरा विश्वास कर लेना सुबुद्धि नहीं है, उसे कार्यरूप में परिणत करते-करते ही उसका परिचय मिलता है। उधर जो नेता धर्मतंत्र के समय शास्त्र वाक्यों को नहीं मानते, इधर उन्हें ही देखता हूँ कि अर्थतंत्र के समय वे शास्त्र मानकर
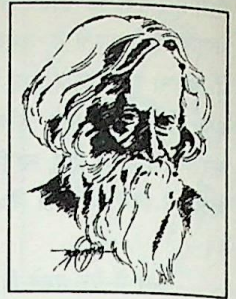
अटल बने बैठे हैं। उस शास्त्र के साथ-जैसे बनता है वैसे टोंटी दबाकर, चोटी पकड़कर-- मनुष्यको मिलाना चाहते हैं; फिर वे इस बात को भी भूल जाते हैं कि 'मारपीट कर महरा पर बैठाओ भी, तो हुर्र नहीं होती' वह कभी सत्य नहीं हो सकता। वास्तव में देखा जाय तो जहाँ जितनी ज्यादा जबरदस्ती होती है, वहाँ उतना ही कम सत्य होता है।

यूरोप में जब ईसाई शास्त्र-वाक्यों पर लोगों का जबरदस्त विश्वास था, तब मनुष्य के हाड़-गोड़ तोड़कर, उसे जलाकर, नोंचकर, झकझोरकर धर्म की सत्यता प्रमाणित करने की कोशिश चलती रहती थी। आज बोलशेविक-मतवाद के विषय में उसके विरोधी और समर्थक दोनों ही पक्ष उसी तरह की जबरदस्त सीनाजोरी की युक्तियों का प्रयोग करते दिखाई देते हैं। दोनों ही पक्ष एक दूसरे की यह शिकायत करते हुए पाये जाते हैं कि मनुष्य के विचार-स्वातंत्र्य के अधिकार को दबाया जा रहा है। बीच में पड़ी पश्चिम-महादेश की मानव-प्रकृति बेचारी आज दोनों ओर से पिसी जा रही है।

सोवियत रूस की लोक-शिक्षा के सम्बन्ध में मेरा जो वक्तव्य है, वह मैं कह चुका। इसके सिवा इस बात की भी आलोचना कर चुका हूँ कि वहाँ की राजनीति मुनाफा-लोलुपों के लोभ से कलुषित नहीं है, और इसलिए उन्होंने रूस राष्ट्र के अंतर्गत अनेक प्रकार की प्रजा को--जाति और वर्ण का किसी प्रकार भेदभाव न रखकर सबको समान अधिकार और उत्कृष्ट शिक्षा की सुविधाएँ देकर सम्मानित किया है। मैं ब्रिटिश भारतकी प्रजा हूँ, और इसीलिए रूस के इस कार्य से मुझे इतना गहरा आनन्द हुआ है।

अब मैं समझता हूँ कि एक अन्तिम प्रश्न का उत्तर मुझे देना पड़ेगा। बोलशेविक अर्थनीति के संबंध में मेरा क्या मत है, यह प्रश्न बहुत से लोग मुझसे किया करते हैं। मुझे डर इस बात का है कि भारतवर्ष हमेशा से शास्त्र-शासित और पंडा-चालित देश रहा है, विदेश से आये हुए वचनों को एकदम से वेदवाक्य मान लेने की ओर ही हमारे मुग्ध हृदय का झुकाव है। गुरूमंत्र के मोह से अपने को संभालकर हमें कहना चाहिए कि प्रयोग के द्वारा ही मत का विचार हो सकता है, अभी तक परीक्षा खतम नहीं हुई है। कोई भी मनुष्य-संबन्धी मतवाद क्यों न हो, उसका मुख्य अंग है मानव-प्रकृति। इस मानव-प्रकृति के साथ मतवाद का कहाँ तक सामंजस्य हो सकता है, इस विषय में पक्का सिद्धान्त होने में समय लगता है। तत्व को संपूर्णतः ग्रहण करने के पहले कुछ ठहरना या समय देना पड़ता है। मगर फिर भी उस विषय में आलोचना की जा सकती है, वह सिर्फ लाजिक या गणित पर ही नहीं, बल्कि मानव-प्रकृति को सामने रखकर।

मनुष्य में दो दिशाएँ हैं--प्रथमतः वह स्वतंत्र है, दूसरे वह सबके साथ संबन्धयुक्त है। इनमें से एक को छोड़ देने पर जो बाकी बचे, वह अवास्तविक है। जब किसी एक धुन में पड़कर मनुष्य एक ही ओर एकान्तरूप से लापता हो जाता है, और अपना वजन नष्ट करके तरह-तरह की विपत्तियाँ लाता रहता है, तब सलाहकार आकर संकट को हलका करना चाहते हैं, कहते हैं कि दूसरी दिशा को एकदम छाँटकर निकाल दो। व्यक्ति स्वातंत्र्य जब उत्कट स्वार्थ का रूप धारण करके समाज में तरह-तरह के उपद्रव मचाता है, तब उपदेशक लोग कहते हैं--'स्वार्थ' से 'स्व' को एक ही बार में गड़ासे से उड़ा दो, तब सब ठीक हो जायगा। इससे उपद्रव घट सकता है, मगर उसका नाश नहीं हो सकता। लगाम टूट जाने पर घोड़ा गाड़ी को खंदक में डाल देता है- इस लिए घोड़े को गोली से उड़ा दिया जाय तो फिर गाड़ी ठीक से चलेगी, ऐसा खयाल न करके लगाम ठीक करने की चिन्ता करना ही बुद्धिमत्ता है।

शरीर से पृथक्-पृथक् अस्तित्व होने से ही मनुष्य छीना-झपटी किया करता है, परन्तु समस्त मनुष्यों को एक रस्सों में बाँधकर सारी पृथिवी में उसे एक ही विपुल कलेवर में लाने का प्रस्ताव करना--यह बात तो किसी बल से गर्वित अर्थतात्त्विक जार के मुख से ही शोभा देती है। विधाता की विधि को बिलकुल जड़से उखाड़ फेंकने की चेष्टा में जितना साहस है, उससे कहीं ज्यादा उसमें मूढ़ता की जरूरत पड़ती है।

एक दिन ऐसा था, जब भारतवर्ष का समाज मुख्यतः ग्रामीण समाज था। इस तरह के घनिष्ठ ग्राम्य समाज में व्यक्तिगत सम्पत्ति के साथ सामाजिक सम्पत्ति का सामंजस्य होता था। लोकमत का ऐसा प्रभाव था कि धनी अपने धन को सम्पूर्णतः अपने भोग में लगाने में अपना अगौरव समझते थे। समाज उसकी सहायता-सहानुभूति ग्रहण करता था, तभी वह कृतार्थ होता था-- अर्थात अंगरेजी में जिसे चैरिटी कहते हैं, उसमें वह बात नहीं थी। धनी के लिए वहीं स्थान होता था, जहाँ निर्धन होते थे। उस समाज में अपने स्थान और सम्मान की रक्षा करने के लिए धनी को अनेक परोक्ष प्रकारों से बड़े-बड़े अंकों में टैक्स देना पड़ता था। गाँव में विशुद्ध जल, वैद्य, पंडित, देवालय, नाटक, गान, कथा, कुआँ, बावड़ी, मार्ग आदि जो कुछ होता था, वह गाँव के व्यक्तिगत अर्थ के समाजमुखी प्रवाह से ही होता था, राज-कर से नहीं। इसमें व्यक्तिगत स्वेच्छा और समाज की इच्छा दोनों ही मिल जाती थीं। इस तरह के आदान-प्रदान राष्ट्रीय यंत्र से नहीं होते थे, किन्तु मनुष्य की इच्छा से हुआ करते थे, इसलिए इनमें धर्मसाधना की क्रिया चलती थी; अर्थात् इसमें केवल कानून के चलने से बाहरी फल नहीं लगते थे, बल्कि अन्तरंग में व्यक्तिगत उत्कर्ष होता रहता था। यह व्यक्तिगत उत्कर्ष ही मानव-समाज का स्थायी कल्याणमय सजीव आश्रय है।

वणिक-सम्प्रदाय--धन को काम में लगाकर लाभ करना ही जिसका मुख्य व्यवसाय है--समाज में पतित समझा जाता था; क्योंकि तब धन का अधिक सम्मान नहीं था, और इसीलिए धन और अधन का इतना बड़ा भेद भी तब नहीं था। धन अपने बड़े संचय के कारण समाज में सम्मान नहीं पाता था, बल्कि अपने महान् दायित्व को पूरा करके ही वह सम्मानित होता था; नहीं तो वह लज्जित ही बना रहता था। अर्थात सम्मान धर्म का था, धन का नहीं। इस सम्मान को समर्पण करते हुए किसी के आत्म-सम्मान की हानि नहीं होती थी। अब वे दिन चले गये हैं, इसीलिए सामाजिक दायित्वहीन धन के प्रति असहिष्णुता के लक्षण अनेक आकारों में दिखाई देते हैं। कारण, धन अब मनुष्य को अर्घ्य नहीं चढ़ाता, बल्कि उसे अपमानित ही करता है।

यूरोपीय सभ्यता पहले से ही नगरों में पैर जमाने का रास्ता ढूँढ़ रही है। नगरों में मनुष्यों को मौके बहुत मिलते हैं, पर सम्बन्ध बहुत संकुचित हो जाता है। नगर बहुत बड़े होते हैं, मनुष्य वहाँ विक्षिप्त हो जाता है; व्यक्ति-स्वातंत्र्य वहाँ अति मात्रा में होता है; प्रतियोगिता का आन्दोलन भी वहाँ प्रबल होता है। ऐश्वर्य वहाँ धनी और निर्धन के भेद को बढ़ा देता है और चैरिटी के द्वारा जो कुछ सम्बन्ध मिलता है, उसमें न तो सान्त्वना ही है और न सम्मान ही। वहाँ जो धन के अधिकारी और धन के वाहन हैं, दोनों में आर्थिक सम्बन्ध होता है, सामाजिक सम्बन्ध विकृत हो जाता है या टूट जाता है।

ऐसी अवस्था में यंत्र युग आया, लाभ के अंक बढ़ने लगे और हद से ज्यादा बढ़ने लगे। यह मुनाफे की महामारी जब दुनियां भर में फैलने लगी, तब जो दूर के रहने वाले अनात्मीय थे, जो निर्धन थे, उनके लिये रास्ता ही बन्द हो गया। चीन

को अफीम खानी पड़ी; भारत के पास अपना कहने को जो कुछ था, उसे उजाड़ कर देना पड़ा; अफ्रिका को हमेशा कष्टों का सामना करना पड़ा और उसके कष्ट दिनोंदिन बढ़ने ही लगे। यह तो हुई बाहर की बात, अब पश्चिम महादेश को लो, वहाँ भी धनी और निर्धन का भेद आज अत्यन्त कठोर हो गया है; जीवनयात्रा का आदर्श बहुमूल्य और उपकरण-बहुल होने से--जीवन की आवश्यकताएँ अत्यन्त बढ़ जाने से--दोनों पक्षों का भेद अत्यन्त तीव्र होकर आँखों के सामने पड़ता है। पुराने जमाने में कम से कम हमारे देश में, ऐश्वर्य का आडम्बर था मुख्यतः सामाजिक दान और कर्म में, और अब है व्यक्तिगत भोग में। यह हमें विस्मित करता है, आनन्दित नहीं करता; इससे ईर्ष्या पैदा होती है, प्रशंसा नहीं होती। सबसे बड़ी बात यह है कि उस समय समाज में धन का व्यवहार केवल दाता की स्वेच्छा पर निर्भर नहीं था, उस पर सामाजिक इच्छा का प्रबल प्रभाव था, इसलिए दाता को नम्र होकर दान करना पड़ता था, 'श्रद्धया देयं'- यह बात कार्यरूप में परिणत होती थी।

मतलब यह कि आजकल व्यक्तिगत धन-संचय धनी को प्रबल शक्ति का जो अधिकार देता है, उससे सर्वसाधारण को सम्मान और आनन्द नहीं मिल सकता। उसमें एक ओर असीम लोभ है और दूसरी ओर गहरी ईर्ष्या, बीच में है दुस्तर पार्थक्य। समाज में सहयोगिता की अपेक्षा प्रतियोगिता हद से ज्यादा बढ़ गई है। यह प्रतियोगिता अपने देश में है एक श्रेणी के साथ अन्य श्रेणी की, और बाहर एक देश के साथ दूसरे देश की। इससे चारों ओर संशय हिंस्र चमक रहे हैं, उनकी तादाद घटाने में कोई भी किसी तरह समर्थ नहीं हो रहा है। और जो परदेशी इस दूरस्थित भोग-राक्षस की क्षुधा मिटाने के काम में लगे हुए हैं, उनकी रक्तहीन कृशता युगों से बढ़ती ही जाती है। जो अपने बल के दर्प में यह बात कहते हैं कि इस बहु-विस्तृत कृशता में संसार की अशान्ति आकर घर नहीं बना सकती, कहना चाहिए कि वे अपनी मूर्खता के अन्धकार में भटक रहे हैं। जो हमेशा दुःख ही दुःख पा रहे हैं, वे अभागे ही दुःख विधाता के भेजे हुए दूतों के प्रधान सहायक हैं, उपवास-लंघनों में प्रलय की आग संचित हो रही है।

वर्तमान सभ्यता की इस अमानविक अवस्था में बोलशेविक नीति का अभ्युदय हुआ है। वायुमंडल के एक अंश में तनुत्व उपस्थित होने पर आँधी जैसे बिजली-रूपी दाँत पीसकर घातक मूर्तिधारण करके झपटकर आती है, यह भी वैसा ही कांड है। मानव-समाज में सामंजस्य जाता रहा है, इसीलिए इस अप्राकृतिक विप्लव का प्रादुर्भाव हुआ है। समष्टि के प्रति व्यष्टि की उपेक्षा क्रमशः बढ़ती ही जा रही थी, इसी से समष्टि की दुहाई देकर आज व्यष्टि की बलि चढ़ाने का आत्मघाती प्रस्ताव उठ खड़ा हुआ है। समुद्र-तट पर अग्निगिरि का उपद्रव शुरू हुआ है, इसलिए समुद्र को ही एकमात्र बन्धु घोषित किया जा रहा है। तटहीन समुद्र का जब सम्पूर्ण परिचय मिलेगा, तब किनारे पहुँचने के लिए फिर निहोरे करने पड़ेंगे। उस व्यष्टि-वर्जित समष्टि की अवास्तवता को मनुष्य कभी सहन नहीं कर सकता। समाज से लोभ के दुर्गों को जीतकर अपने कब्जे में लाना होगा; परन्तु व्यक्ति को वैतरणी पार कर के समाज की रक्षा कौन कर सकता है ? सम्भव है, वर्तमान रुग्ण युग में बोलशेविक नीति ही सुचिकित्सा हो, परन्तु चिकित्सा तो हमेशा नहीं चलाई जा सकती; वास्तव में डाक्टर का शासन जिस दिन दूर होगा, वही दिन रोगी के लिए शुभ दिन है।

हमारे देश में, हमारे गाँव-गाँव में धन-उत्पादन और परिचालन के काम में समवाय नीति की जय हो--यही मेरी कामना है। कारण, इस नीति में जो सहयोगिता है, उसमें सहयोगियों की इच्छा का और उनके विचारों का तिरस्कार नहीं किया जाता, अतएव मानव-प्रकृति का सम्मान किया जाता है। उस प्रकृति को विरुद्ध बनाकर बल से काम लिया जाय, तो वहाँ बल कुछ काम नहीं देगा।

इसके साथ ही एक बात खास तौर पर कहनी है, वह यह कि जब मैं चाहता हूँ कि हमारे देश में गाँव जीवित हो उठें, तब इस बात को हरगिज नहीं चाहता कि हममें फिर से ग्राम्यता या गँवारूपन आ जाय। ग्राम्यता एक ऐसा संस्कार है, जिसकी विद्या, बुद्धि, विश्वास और कार्य का ग्राम-सीमा के बाहर से कुछ सम्बन्ध नहीं, अर्थात वह ग्राम-सीमा में ही आबद्ध रहता है ! वर्तमान युग की जो प्रकृति है, वह सिर्फ उससे पृथक् ही नहीं, बल्कि विरुद्ध है। वर्तमान युग की विद्या और बुद्धि की भूमिका विश्वव्यापी है--यद्यपि उसके हृदय की अनुवेदना सम्पूर्णतः उतनी व्यापक नहीं हुई है। गाँवों में ऐसा जीवन लाना होगा, जिसके उपादान तुच्छ और संकीर्ण न हों और जिसके द्वारा मानव-प्रकृति में कभी किसी भी तरह ओछापन न आने पावे और न उस पर अन्धकार ही छा सके।

इंग्लैण्ड में एक दिन किसी ग्राम में एक किसान के घर गया था। देखा कि लन्दन जाने के लिए उस घर की स्त्रियों का चित्त चंचल हो रहा है। शहर के सब तरह के ऐश्वर्यों की तुलना में गाँवों की पूँजी इतनी दीन-हीन है कि गाँव के चित स्वभावतः ही सर्वदा शहर की ओर खिंचते रहते हैं। देश के भीतर रहते हुए भी गाँव मानो निर्वासित से हो रहे हैं। रूस में दूसरी ही बात देखी--गाँवों के साथ शहरों की जो प्रतिकूलता है, उसे हमेशा के लिए मिटा देने की कोशिश हो रही है। यह उद्योग यदि अच्छी तरह सफल हुआ, तो शहर की अस्वाभाविक अतिवृद्धि दूर हो जायगी। देश की प्राणशक्ति और विचार-शक्ति देश में सर्वत्र व्याप्त होकर अपना काम कर सकेगी।

हमारे देश के गाँव भी शहर की जूठन और बचे-खुचे से पेट भरने वाले होकर मनुष्यत्व के पूर्ण सम्मान और सम्पदा के भोक्ता हों--यही मेरी कामना है। एकमात्र समवाय-पद्धति से ही गाँव अपनी सर्वांगीण शक्ति को डूबते से बचा सकेंगे--ऐसा मेरा विश्वास है। बड़े खेद का विषय है कि आज तक हमारे देश में समवाय पद्धति सिर्फ रूपये उधार देने में ही थककर एक जगह बैठ गई--यह तो महाजनी ग्राम्यता को ही कुछ झाड़ पोंछकर साफ-सुथरा रूप दिया गया है--सम्मिलित उद्योग से जीविका उपार्जन और भोग के काम में वह नहीं लग सकी।

इसका मुख्य कारण यह है कि जिस शासनतंत्र के आधार पर नौकरशाही समवाय-नीति हमारे देश में आविर्भूत हुई है, वह यंत्र अन्धा-बहरा उदासीन है। इसके सिवा, लज्जा से सिर झुकाकर शायद यह बात भी स्वीकार करनी पड़ेगी कि चरित्र में जिस गुण के होने पर संगठित होना सहज होता, हममें वह गुण नहीं है। जो कमजोर हैं, परस्पर में उनका विश्वास भी कमजोर होता है। अपने पर अश्रद्धा ही दूसरों पर अश्रद्धा की नींव है। जो बहुत समय से पराधीन हैं, उनका आत्म-सम्मान जाता रहा है, इसी से यह दुर्गति है। प्रभु-श्रेणी के शासन को वे सिर झुकाये स्वीकार कर सकते हैं, किन्तु स्वश्रेणी का संचालन उनसे सहा नहीं जाता, स्व श्रेणी को धोखा देना और उसके साथ निष्ठुर व्यवहार करना उनके लिए स्वाभाविक ही है।

रूसी कहानियों की पुस्तकें पढ़ने से मालूम हो सकता है कि वहाँ के बहुत काल से सताये हुए किसानों की भी यही दशा है। कितना ही दुःसाध्य क्यों न हो, और कोई रास्ता ही नहीं है, परस्पर की शक्ति और हृदय को सम्मिलित करने का लक्ष्य बनाकर प्रकृति का संशोधन करना ही पड़ेगा। यह काम समवाय पद्धति से कर्ज देकर पूरा नहीं हो सकता, एकत्र संगठित कार्य कराकर ग्रामवासियों के चित्त को एकता की ओर उन्मुख करके तब कहीं हम गाँवों की रक्षा कर सकते हैं। ❑ ❑
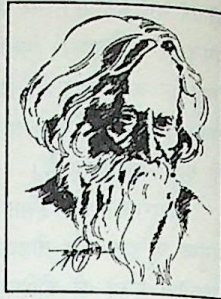
आज़ादी की तलाश में 'बन्दी जीवन'

देश अब स्वतंत्र है। राष्ट्र उत्सुक है स्वतंत्रता के स्वर्ण जयंती वर्ष पर स्वातंत्र्य वीरों को कृतज्ञता अर्पित करने के लिए। भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय भावना के उदय और विकास की विवेचना करने पर स्पष्ट होता है कि तत्कालीन पत्रकारिता और साहित्य का योगदान अतुल्य है। दासता के बोझ से सुषुप्त जनमानस को चेतना प्रदान करने में जो योगदान लेखनी ने दिया, वह उग्रवादी या उदारवादी किसी भी धारा के किसी भी आन्दोलन से कमतर नहीं है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि राष्ट्रीय चेतना की ज्योति प्रज्ज्वलित कर उसे निरन्तरता प्रदान करने में लेखनी ने बत्ती का और स्याही ने तेल का काम किया है।

ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के लिए जनता तक उजाले की किसी किरण का पहुंचना नागवार गुज़रने वाली बात थी। लेखनी को वश में करना उनके बस में न था सो उस पर नियंत्रण की कोशिश की गयी और विफल होने पर चला दौरदौरा दमन का। लेखनी पर नियंत्रण की कोशिशों में भारतीय ब्रिटिश सरकार ने 1799 में पत्रेक्षण अधिनियम (दि सेंसरशिप आफ़ दि प्रेस एक्ट) लागू किया परन्तु उसके प्रभाव को अपर्याप्त समझते हुए 1823 में अनुज्ञप्ति अधिनियम (दि लाइसेंसिंग रेगुलेशन आफ 1823), 1835 में भारतीय प्रेस की स्वतंत्रता (दि लिबरेशन आफ दि इण्डियन प्रेस), 1857 में पुनः अनुज्ञप्ति अधिनियम (लाइसेंसिंग एक्ट आफ 1857), 1867 में पंजीकरण अधिनियम (रजिस्ट्रेशन एक्ट आफ 1867), 1878 में देशी भाषा प्रेस अधिनियम (दि वर्नाकुलर प्रेस एक्ट 1878), 1908 में समाचार पत्र अधिनियम (दि न्यूज पेपर एक्ट) 1910 में भारतीय प्रेस एक्ट (दि इण्डियन प्रेस एक्ट) और 1931 में भारतीय प्रेस (आपातकालीन शक्ति) अधिनियम [दि इण्डियन प्रेस (इमरजेंसी पावर) एक्ट लागू किये। इन अधिनियमों में सबसे कुख्यात देशी भाषा समाचार पत्र अधिनियम था। इन नियंत्रण प्रयासों के अलावा इस चिंगारी को दबाने के लिए कठोर दमन चक्र चलाये गये। जिनमें प्रकाशित सामग्री की ज़ब्ती और लेखकों व प्रचारकों को गिरफ्तार कर उन्हें यातनाएं दी गयीं।

सशस्त्र क्रांति कर ब्रिटिश सरकार की चूलें हिला देने वाले स्वातंत्र्य वीरों का परिचय आज भी वास्तविक रूप में उपलब्ध नहीं है। ब्रिटिश सरकार ने तो इसे एक नियत साजिश के तहत दबाये रखा था। इस धारा के एक अग्रणी नेता श्री शचीन्द्र नाथ सान्याल ने विचारों को स्पष्ट करते हुए कई घटनाओं को लिपिबद्ध किया और 1922 में एक पुस्तक प्रकाशित की, जिसका नाम है 'बंदी जीवन'। यह ग्रन्थ हिन्दी में दो भागों में प्रकाशित हुआ और प्रकाशित होते ही ज़ब्त कर लिया गया। फिर भी इसके अनेक संस्करण प्रकाशित होते रहे और हाथों-हाथ बिकते गये। क्रान्तिकारी संगठनों द्वारा युवकों को अपने मार्ग में दीक्षित करने के लिए इस ग्रन्थ का उपयोग किया जाता रहा।

जिस दौर में क्रांतिकारियों ने ब्रिटिश सरकार की नींद हराम कर रखी थी, उस जमाने में हर क्रान्तिकारी के पास से इस पुस्तक की बरामदगी के कारण ब्रिटिश अधिकारियों ने इस पुस्तक के विरुद्ध अपना रुख और कड़ा कर लिया। फिर एक लम्बे अर्से तक यह पुस्तक अप्राप्य रही। दुर्भाग्य यह रहा कि आजादी के बाद भी यह पुस्तक आम जनमानस को आसानी से उपलब्ध नहीं हो सकी। इस पुस्तक में शचीन्द्र दा ने अन्य महत्वपूर्ण तथ्यों के साथ एक जगह लिखा है कि "यह पुस्तक आज मैं इसलिए लिख रहा हूं जिससे कि भारत के भविष्यत् इतिहास के कुछ अध्याय ठीक-ठीक लिखे जा सकें।" और क्रान्तिकारियों के बीच इस पुस्तक की सफलता पर जयचन्द्र जी लिखते हैं कि "वह केवल इतिहास लेखक ही नहीं, बल्कि जिस इतिहास को वह लिख रहे हैं, उसके बनाने वालों में से भी हैं; उस इतिहास के पात्रों के वह जीवन-मरण के खेल में साथी थे। यदि वह उनके भावों को पहचानते नहीं तो उनके नेता ही कैसे बनते ? सच्चे विप्लवी नेता में भी तो ठीक वे ही गुण चाहिए जो एक सच्चे इतिहास लेखन के लिए आवश्यक हैं।" लेखन में शचीन्द्र दा की इमानदारी का अन्दाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि एक जगह उन्होंने लिखा है "व्यक्तिगत चरित्र की आलोचना होने पर भी वह व्यक्तिगत रूप में न की जाएगी । व्यक्ति से परिचय हुए बिना समष्टि से परिचय नहीं हो सकता, इसलिए तो व्यक्तिगत चरित्र की आलोचना आवश्यक हो जाती है। यह परिचय देने में मेरे और अपने दल के बहुतेरे छिद्र प्रकट हो जाएंगे। तो इसलिए क्या मैं उन दुर्बलताओं और संकीर्णताओं को छिपाने की व्यर्थ चेष्टा करूं जिन्होंने कि हमें भीतर ही भीतर पंगु बना दिया है ? ऐसी चेष्टा व्यर्थ तो होगी ही क्योंकि एक न एक दिन सत्य प्रकट होगा और जरूर होगा, और साथ ही छिपाने का उद्योग करने से न सिर्फ सत्य का अप्रलाप होगा अपितु उससे हमारा पंगुत्व, निकम्मापन भी और बढ़ जाएगा।
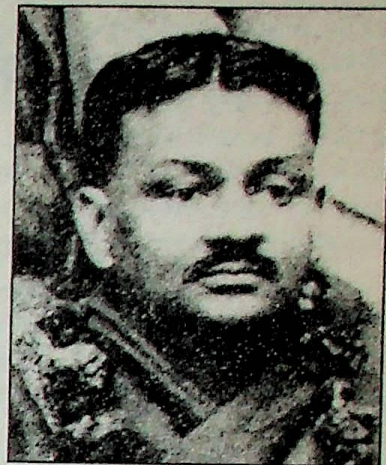
शचीन्द्र नाथ सान्याल

इस पुस्तक की अनुपलब्धता और इस तरह की अन्य पुस्तकों के प्रकाशित न होने से स्वातंत्रोत्तर काल की पीढ़ी की स्वातंत्र्य वीरों की अवधारणा से जीवन्त सम्बन्ध स्थापित न हो सका। 'बंदी जीवन' लिखने के उद्देश्य के बारे में शचीन्द्र दा ने लिखा है कि " मुझे यह कहना है कि सजीव जातियों में छानबीन करने की प्रवृत्ति बहुत प्रबल होती है। इस जांच-पड़ताल करने की प्रवृत्ति के कारण ही सजीव जातियां अपने समाज में रत्ती-रत्ती समाचार के लिए चौकन्नी रहती हैं। शायद एक देहाती के बेदाग वंश-वृक्ष का पेड़ पत्ता जानने में किसी ने अपनी सारी उम्र इस आशा से बिता दी थी कि इस प्रकार तथ्य संग्रह कर देने से कदाचित् किसी दिन किसी को वंशानुक्रम की धारा का पता लगाने में सुभीता हो जाये। भारत में वर्तमान समाज की भीतरी वेदना का परिचय, उसका परिणाम और उसका कारण जानने का समय क्या अभी तक उपस्थित नहीं हुआ ? उस भीतरी वेदना--दर्दे दिल को हटा देने की इच्छा से भारत में जो अभिनव आन्दोलन आरम्भ हुआ है, वह आन्दोलन कितना व्यापक और गम्भीर है, कहां-कहां पर उसमें कोर-कसर और भूल-चूक रह गयी है, वह आन्दोलन किस परिणाम में सार्थक हुआ और कितना अपूर्ण रह गया है तथा उसमें यह अधूरापन क्यों रह गया है--इन सारी बातों का जान लेना क्या प्रत्येक भारतवासी का कर्तव्य नहीं ? इन सारी बातों को जानने के लिए इस ढंग की बहुतेरी पुस्तकों के प्रकाशित होने की आवश्यकता है, जिस ढंग की यह पुस्तक 'बंदी जीवन' है। ऐसी-ऐसी जितनी पुस्तकें प्रकाशित होंगी, मुख्य विषय को समझना उतना ही आसान हो जाएगा।

○ अक्षय कुमार

बंदी जीवन की भूमिका

○ शचीन्द्र नाथ सान्याल

आज से 16 साल पहले 'बन्दी जीवन' का लिखना प्रारम्भ किया था। 'बन्दी जीवन' के प्रथम संस्करण की भूमिका में मैंने लिखा था 'मेरी अभी तक यह धारणा है कि यह पुस्तक तीन खण्डों में समाप्त होगी, लेकिन कर्मक्षेत्र की विषय उलझनों में पड़कर मैं नहीं कह सकता कि इस पुस्तक का कितना अंश लिख पाऊँगा। कारण आज तक जितने काम मैंने अपने हाथ में लिए, किसी को भी मैं निर्विघ्न रूप से पूर्ण नहीं कर पाया।' ये वाक्य कलकत्ता में बैठे हुए 25 अगस्त, सन् '22 के दिन मैंने लिखे थे। अदृष्ट की क्या खूबी है कि इस पुस्तक के दो भाग भी मैं यथार्थ रूप में लिख नहीं पाया था कि फिर जेल में धर घसीटा गया। अब 16 साल के बाद आज फिर इस पुस्तक के सम्पादन कार्य में हाथ लगाया है।

मैं फरवरी, सन्' 20 में अण्डमन से लौटा। लौटकर माताजी एवं भाइयों के अनुरोध से ईंटें बनवाने के काम में फँस गया। किसी कारबार में फँसने से कितनी उलझनों में जान फँस जाती है, उसको भुक्तभोगी ही जान सकता है। इसी उलझन में पड़े हुए मैंने 'बन्दी जीवन' लिखना प्रारम्भ किया। इसके थोड़े ही दिन बाद सन् '21 के शुरू में मैं जमशेदपुर में मजदूर संगठन के कार्य में लग गया। मेरी इच्छा तो यह थी कि मैं 'बन्दी जीवन' को धीरे-धीरे लिखता जाऊँ लेकिन मेरे एक मित्र श्री हेमन्तकुमार सरकार ज़बर्दस्ती मेरी हस्तलिखित पोथी को प्रकाशनार्थ ले गये। उस समय हेमन्तकुमार देशबन्धु सी०आर० दास के विश्वस्त अनुयायियों में थे। सी०आर० दास के सम्पादकत्व में 'नारायण' नाम का एक मासिक-पत्र निकलता था। हेमन्तकुमार इस मासिक-पत्र का संचालन-भार लिये हुए थे। मुझे विश्वास नहीं था कि मेरा लेख प्रकाशित करने के योग्य है। हेमन्तकुमार ने मुझे आश्वासन दिया कि मेरा लेख काफी अच्छा है और इसे वे 'नारायण' में अवश्य प्रकाशित कराएँगे। इस प्रकार से जीवन में सर्वप्रथम मैंने लिखना प्रारम्भ किया।

लेकिन मैं अधिक नहीं लिख पाया था कि इसी बीच में मासिक-पत्र में मुझे प्रतिमास नियमित रूप से लेख देना पड़ा। इधर मजदूर संगठन के काम में तो दिन-रात व्यस्त रहता ही था, इसलिए इस पुस्तक को वांछित रूप से तो नहीं ही लिख पाया।

आज जब पुनः इस पुस्तक का सम्पादन करने बैठा हूँ तो सहस्रों प्रकार की बातें मेरे मन में आ-आकर अपनी अभिव्यक्ति के लिए उमड़ी पड़ रही हैं। बात यह है कि काल के प्रवाह से भारत में आज नई-नई बातें पैदा हो रही हैं, नये आदर्शों के द्वन्द्व के कारण भारत के राष्ट्रक्षेत्र में आज तरह-तरह की उलझनें पैदा हो रही हैं। जिस समय मैंने सर्वप्रथम राजनीति में कार्य करना प्रारम्भ किया था, उस समय भी कम उलझनें न थीं, लेकिन आज उन उलझनों को पार करके अब मुझे दूसरी उलझनों का सामना करना पड़ रहा है। इन दोनों युगों की उलझनों में जो अन्तर है, उसे समझे बिना मेरी वर्तमान परिस्थिति को कोई समझ नहीं सकता एवं आधुनिक युग के आदर्श-गत द्वन्द्वों का स्पष्टीकरण किए बिना आज मैं इस पुस्तक की भूमिका ठीक तरह से नहीं लिख सकता।

यहां पर जीवन की कुछ गूढ़ बातें कहना आवश्यक हो गया है। यद्यपि मैं यहां अपनी आपबीती नहीं लिखना चाहता, तो भी मुझे अपनी मानसिक स्थिति का कुछ अंश यहां पर खोलना ही पड़ेगा।

जब मैं बालक ही था, तभी से नाना कारणों से मैंने संकल्प कर लिया था कि भारतवर्ष को स्वाधीन किया जाना है और इसके लिए मुझे सामरिक जीवन व्यतीत करना है। सर्वप्रथम यह भावना मेरे मन में कैसे आई, इसका भी एक छोटा सा इतिहास है, अन्य स्थान पर इसकी चर्चा मुझे करनी पड़ेगी। जिस समय क्रान्तिकारी भावना को लेकर मैंने सर्वप्रथम बनारस में संगठन प्रारम्भ किया था, संयोगवश उसी समय करीब-करीब मेरी ही उम्र के एक नवीन युवक के साथ मेरी गहरी मित्रता हो गई थी। यह नवीन युवक अभी कलकत्ता से आये हुए थे। ऐसी मित्रता कैसे उत्पन्न होती है, यह एक रहस्य की बात है। नवीन भावनाओं की तरह सहसा किसी एक दिन ऐसे मित्र जीवन-पथ में आकर खड़े हो जाते हैं। पहले ही दर्शन में यह प्रतीत हो जाता है कि यह मेरे बड़े प्रियजन हैं। मोल-भाव करके दुनिया की चीजें खरीदी जाती हैं, लेकिन जीवन की जो श्रेष्ठ सम्पदा है, वह यों ही मिला करती है। इस प्रकार से जीवन के एक महान अवसर पर मैंने इस तरह से यों ही अपने मित्र को पाया था-- लेकिन थोड़े ही दिनों में जीवन के आदर्श को लेकर इनके साथ मेरा मतभेद उत्पन्न हुआ। मैं तो पहले ही संकल्प कर चुका था कि भारत को विदेशियों के हाथ से मुक्त करूँगा और इस महान कार्य को सम्पन्न करने के लिए गोपनीय रूप से जनबल एवं अस्त्रबल संग्रह करना पड़ेगा। उस समय शिवाजी को मैं आदर्श पुरुष समझने लगा था। पिताजी जब पूछते थे कि तुम आगे चलकर क्या करोगे, तो मैं कहता था कि मैं शिवाजी बनूंगा, नेपोलियन की तरह मैं जीवन बिताना चाहता हूँ। लेकिन अब मेरे मित्र ने मेरे मन में एक भीषण उलझन पैदा कर दी। हम लोगों की अवस्था उस समय पन्द्रह-सोलह साल की थी। इसी उम्र में मेरे मित्र ने संन्यास का आदर्श पसन्द कर लिया था, जिसका अर्थ होता है समाज-सेवा के काम से अलग होकर व्यक्तिगत साधना में जीवन व्यतीत करना। मेरे लिए सामाजिक कर्म को छोड़ना एक प्रकार से असम्भव-सा था। लेकिन मेरे मित्र ने मुझे यह समझाना चाहा कि मनुष्य का श्रेष्ठ आदर्श है जीवन में ईश्वर की उपलब्धि करना। ईश्वर का साक्षात्कार हुए बिना हम जो कुछ भी करेंगे, उससे समाज का यथार्थ कल्याण होगा या नहीं यह कहना कठिन है। सत्य की अनुभूति हुए बिना हम कैसे ठीक रास्ते को अख्तियार कर सकते हैं? ईश्वर का साक्षात्कार होने के पश्चात ही हम यथार्थ रूप में समझ सकते हैं कि क्या सत्य है और क्या असत्य, क्या कल्याणकारी है और क्या अमंगलप्रद। ईश्वर का साक्षात् किए बिना समाज का कल्याण करने जाना मानो अन्धे होकर, अन्धे को रास्ता दिखलाना है। ईश्वर का साक्षात्कार करने के पश्चात् ईश्वर की आज्ञा से, ईश्वर की इच्छानुसार जब हम समाज की सेवा में लगेंगे, तभी हमारी समाज-सेवा सार्थक हो सकती है। अपने पक्ष की पुष्टि के लिए मित्र ने स्वामी विवेकानन्द एवं परमहंस रामकृष्ण देव की जीवनी का उल्लेख किया।

इस प्रकार जीवन में सर्वप्रथम आदर्शगत द्वन्द्व उपस्थित हुआ। एक तरफ मैं समाज को छोड़ नहीं सकता था; दूसरी तरफ अपने जीवन के परम मित्र से भी मैं दूर नहीं रह सकता था, लेकिन मेरे मित्र मेरे साथ चलने के लिए तैयार न थे। मैं भी अपने मित्र के रास्ते पर चलने को तैयार न थे। छः महीने तक दिन और रात इस उलझन में फँसे रहे। उस किशोरावस्था की मित्रता में एक अजीब मोहिनी शक्ति थी। हम एक-दूसरे को छोड़ भी नहीं पाते थे, ग्रहण भी नहीं कर पाते थे। आज भी मेरे मित्र संन्यास मार्ग में अवस्थित हैं और मैं गृहस्थ आश्रम में जकड़ा हुआ गोता खा रहा हूँ।

अपने मित्र के बताने पर मैंने स्वामी विवेकानन्द एवं श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव की जीवनी पढ़ी, उनकी तमाम उक्तियों को लेकर एकाग्र मन से एकान्त में गम्भीर रूप से मनन किया। उपनिषद् एवं गीता अनुवाद की सहायता से बार-बार पढ़ी, साधु-संगति भी करने लग गया। इस प्रकार से हिन्दू-समाज की मर्म-कथा को भली प्रकार से समझने की मैंने अपने अन्तरतम से चेष्टा की। साधु-सन्तों की संगति से जीवन में प्रभूत लाभ हुआ इसमें कोई सन्देह नहीं; लेकिन जी को तसल्ली नहीं हुई। मेरी समझ में यह बात नहीं आई कि हमारे समाज के श्रेष्ठ महापुरुष क्यों समाज में नहीं आते, क्यों सामाजिक काम में अग्रणी नहीं होते? साधु-सन्तों के संसर्ग में आकर मैंने यह देखा कि साधन-भजन करना छोड़कर ये लोगं एक कदम

भी इधर-उधर नहीं जाते। यहाँ तक कि साधन-भजन के बारे में भी इनके जो कुछ अनुभव हैं, उन्हें भी ये पुस्तक के आकार में समाज को देना नहीं चाहते। इनमें त्याग है, अध्ययनशीलता है, दत्तचित्त होकर एक काम में लग जाने की शक्ति है, लेकिन ये समाज-सेवा के किसी काम में आना नहीं चाहते। मैंने अपने मन में यह सोचा कि यदि हमारे पूर्वज भी ऐसे ही होते तो आज हमें न पाणिनि जैसा व्याकरण ही मिलता, न वेद-वेदान्त, उपनिषद्, ज्योतिष, गणित या आयुर्वेद शास्त्र ही प्राप्त होते। मेरे मन में यह सन्देह पैदा हुआ कि सम्भव है आजकल के साधु-सन्त चाहे जितने भी भले हों, लेकिन इनमें प्राचीनकाल की तरह वह प्रतिभा नहीं है, वह सम्यक् दृष्टि भी नहीं है, जिसके कारण एक दिन भारतवर्ष सभ्यता के चरम शिखर पर आरूढ़ था। मुझे तसल्ली नहीं हुई। गीता के कर्मयोग के आदर्श ने मुझे बहुत कुछ सहारा दिया; उपनिषद् से भी मुझे इस बात का सहारा मिला। विवेकानन्द की वाणी में कर्मयोग एवं संन्यास, दोनों तरह की ही बातें मिलीं। लेकिन प्रामाणिक रूप से मुझे यह सबूत नहीं मिला कि कर्म का मार्ग ही एकमात्र सत्य रास्ता है। तब मैंने यह निश्चय किया कि सम्भवतः हम अपनी-अपनी के अनुसार योग, कर्मयोग या संन्यास योग को ग्रहण कर सकते हैं, कोई रास्ता किसी दूसरे रास्ते से न छोटा है, न बड़ा। अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार जिस रास्ते को हम ग्रहण करेंगे, वही रास्ता हमारे लिए सही है एवं और सब रास्ते गलत हैं। कम-से-कम दूसरे रास्ते में जाने से हमें अवश्य कुछ-न-कुछ हानि होगी। अब यह निर्णय कैसे होगा कि मेरी प्रकृति कैसी है, एवं कौन सा रास्ता मेरी प्रकृति के अनुकूल है? साधु-संगति करके एवं शास्त्र-वचनों से मुझे यह पता चला कि ऐसा निर्णय करने के लिए तीन साधन मौजूद हैं। एक तो अपनी विचारबुद्धि है, दूसरा सतगुरू की सहायता है और तीसरा शास्त्रवचन है। इन तीनों में यथार्थ मेल होना चाहिए। केवल शास्त्रवचन से काम नहीं चलेगा। कारण, एक तो शास्त्र बहुत हैं, इसलिए उनमें से अवश्य ही चुनाव करना पड़ेगा। यह बात सच है कि शास्त्रवचन भी अभिज्ञता के आधार पर स्थित हैं, तथापि विभिन्न महापुरुषों ने अलग-अलग रास्ते पर चलकर सत्यानुभूति की है। इसलिए कौन-सा मार्ग मेरे लिए प्रशस्त है, इसका निर्णय शास्त्रवचन मात्र से ही नहीं हो सकता इसके लिए शिक्षक की आवश्यकता है। जब संसार के प्रत्येक काम में शिक्षक की आवश्यकता है तो क्या सत्यानुसंधान के काम में ही शिक्षक की आवश्यकता नहीं होगी? किन्तु केवल शिक्षक से ही काम नहीं चल सकता। शिक्षा लेने वाला यदि उपयुक्त न हो, तो शिक्षक क्या करेगा? एवं कौन मेरा शिक्षक होगा, यह निर्णय भी तो मुझे ही करना पड़ेगा? इसलिए अन्त में अपनी विचारबुद्धि पर ही निर्भर करना पड़ता है। लेकिन अपनी प्रकृति को छोड़कर उसका उल्लंघन करके मैं कुछ नहीं कर सकता। इसलिए भारतीय साधन-पद्धति में सर्वप्रथम बात यह है कि सत्य की खोज करने के पहले अपने को निष्पक्षतापूर्ण बनाना पड़ता है। सम्पूर्णतया निष्पक्षपाती हुए बिना सत्य की खोज सम्भव नहीं है। लेकिन यथार्थ रूप में निष्पक्षपाती होना आसान बात नहीं है। इसके लिए हमें स्वार्थशून्य होना आवश्यक है और स्वार्थशून्य हम तभी हो सकते हैं, जब हम अपनी वासना के वशीभूत न हों। वासनातीत होना और वैराग्यवान होना एक ही बात है। इसलिए भारतीय साधना-पद्धति में वैराग्य होना सर्वप्रथम आवश्यक है। वासनातीत होने का अर्थ यह नहीं है कि मुझमें किसी प्रकार की वासना न हो, बल्कि वासनातीत होने का अर्थ यह है कि मैं किसी वासना के अधीन न होऊँ, प्रत्येक वासना मेरे अधीन रहे। इस प्रकार से अपने को यथासम्भव हर एक प्रकार के संस्कारों से मुक्त रखकर तब सत्यानुसंधान में प्रवृत्त होना चाहिए। साधु-संगति के फलतः एवं प्राचीन साहित्य के अनुशीलन के परिणामतः मैं इसी नतीजे पर पहुँचा हूँ। मेरे मित्र और मैंने अलग-अलग रास्ते अख्तियार किये लेकिन छः महीने तक हम दोनों तीव्र द्वंद्व के भीतर से गुजरे। मैंने बाद को यह भी देखा कि हमारे सैकड़ों भाई, भारतीय आदर्श की दुहाई देकर, आध्यात्मिकता के बहाने, अपनी स्वार्थबुद्धि से प्रणोदित होकर, तामसिक वृत्ति के आवेश में आकर भारतीय स्वाधीनता-संग्राम में भाग लेने में पश्चात्पद रहे। ऐसे अध्यात्मवादियों के लिए घर-गृहस्थी के काम करने में कोई बाधा नहीं है, ये मजे से खाते-पीते हैं, बाजार करते हैं, अपने परिवार का प्रतिपालन करने के लिए तरह-तरह के काम-धंधे भी करते हैं, शादी भी करते हैं, सन्तान-उत्पादन एवं सन्तान-पालन भी करते हैं, अर्थात् गृहस्थ आश्रम के सभी काम करते हैं, केवल राजनीति में भाग लेने के अवसर पर धार्मिक जीवन-व्यतीत करने की दुहाई देकर भारतीय अध्यात्मवाद की आड़ में अपनी कायरता को छिपाते हैं। राजनीतिक जीवन में मेरा प्रथम मानसिक द्वंद्व इस प्रकार का रहा। जीवन में चाह तो यह थी कि हमारे भारतवर्ष में फिर ऐसे महापुरुष का जन्म हो, जिसमें गुरु रामदास एवं शिवाजी की सद्गुणावली एक व्यक्तित्व में विकसित होकर दिखलाई दे, अर्थात कर्मजीवन ज्ञान के प्रकाश से उद्भासित हो। मेरे दिल में यह धारणा बद्धमूल हो गई थी कि कर्महीन होने के कारण भारत का अधःपतन हुआ है एवं भारत की उन्नति यथार्थ रूप में तभी हो सकती है जब कर्मजीवन भी प्रकृत ज्ञान के आलोक से विशुद्ध हुआ हो। लेकिन वास्तविक जगत् में मेरा वांछित आदर्श-पुरुष मुझे नहीं मिला। यदि स्वामी विवेकानन्द या स्वामी रामतीर्थ के तुल्य महापुरुष भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन में अग्रणी होते, तभी मुझे प्रकृत सन्तोष होता। श्री अरविन्द घोष में मेरे कल्पित आदर्श पुरुष की छाया मिली। मैं श्री अरविंद घोष से पाण्डिचेरी में सन् 1911 में मिलने के लिए भी गया था, लेकिन दुर्भाग्यवश मिल नहीं पाया। इसके बारे में विशेष रूप से अन्य स्थान पर कहूँगा। आखिर घूमते-घूमते ऐसे क्रान्तिकारी दल में मैं शामिल हो गया, जिस दल के नेतागण अरविंद घोष के दार्शनिक विचारों से अंतरंग रूप से प्रभावित हो रहे थे। इससे बढ़कर सन्तोष अपने जीवन में मुझे बहुत कम मिला है। मेरे मानसिक द्वंद्वों के इस अंश को बिना समझे 'बन्दी जीवन' के बहुत-से स्थानों को पाठक ठीक से नहीं समझ पाएँगे। ऐसी मानसिक परिस्थिति में मैंने क्रान्तिकारी दल में काम किया एवं इसी मनोवृत्ति को साथ लेकर मैं जेल गया, कालेपानी गया और लौट भी आया।

सन् 1920 के बाद जब मैं कालेपानी से लौटकर आया, तब महात्मा गांधी भारत के राष्ट्रीय क्षेत्र में अपनी कार्यप्रणाली को लेकर अवतीर्ण हो चुके थे। महात्मा गांधी की अहिंसा नीति के कारण एवं महात्मा गांधी ऐसे महान् व्यक्ति का भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने के कारण भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन को काफ़ी बाधा पहुँची। महात्मा गांधी यह प्रचार करने लगे कि भारतीय प्राचीन आदर्श के साथ भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का समन्वय नहीं हो सकता। मानो प्राचीन भारतीय आदर्श में श्रीकृष्ण का एवं कुरुक्षेत्र के महायुद्ध का कोई स्थान ही नहीं है। महात्मा गांधी की तरह संस्कृत पाठशालाओं के छात्र एवं अध्यापकगण भी भारतीय प्राचीन आदर्श के नाम पर भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन के विरुद्ध तीव्र प्रचार किया करते थे। इस प्रकार से हिंसा एवं अहिंसा की नीति को लेकर मेरे मन में दूसरा संघर्ष उत्पन्न हुआ था, लेकिन यह इतना तीव्र न था। महात्मा जी ने बेलगाँव कांग्रेस में क्रान्तिकारियों के विरुद्ध जो कुछ दोषारोपण किए थे, उसके प्रत्युत्तर में मैंने फरार हालत में महात्मा जी के पास अपने नाम से एक चिट्ठी भेजी थी, वह चिट्ठी ज्यों की त्यों 12 फरवरी सन् 1925 की 'यंग इंडिया' में प्रकाशित हुई थी। उसी अंक में महात्माजी ने उसका उत्तर भी दिया था।

कालेपानी से लौटने के बाद संभवतः सन् 1923 में ही मैं पहले-पहल कम्युनिस्ट सिद्धान्तों से परिचित हुआ। यह एक नवीन सिद्धान्त था जिसके साथ क्रान्तिकारी दल के किसी व्यक्ति का भी उस समय यथार्थ परिचय न था। तत्पश्चात् सन् 1925 में जेल जाने के पहले मैं कम्युनिस्ट सिद्धान्त के साथ यथेष्ट रूप से परिचित हुआ। बहुत से प्रामाणिक ग्रन्थ पढ़े, कम्युनिस्टों के साथ खूब वाद-विवाद किया, विचार-विनिमय किया। एक तरफ मैं क्रान्तिकारी आन्दोलन में जुटा था, दूसरी तरफ 'बन्दी जीवन' के दूसरे भाग का सम्पादन-कार्य भी कर रहा था, एवं कम्युनिस्ट सिद्धान्त को समझने के लिए जी-जान से प्रयत्न कर रहा था। कम्युनिस्ट सिद्धान्त का कुछ अंश तो मैंने ग्रहण कर लिया, लेकिन कुछ अंश को मैं आज भी ग्रहण नहीं कर पाया। कम्युनिज्म के सिद्धान्त की आर्थिक-योजना की बहुत-सी बातें मैंने स्वीकार कीं, लेकिन आर्थिक

योजना के साथ कम्युनिज्म के सिद्धान्त में भौतिकवाद के बहुत-से ऐसे सिद्धान्त हठपूर्वक जोड़ दिये गए हैं, जिसे दार्शनिक दृष्टि से एवं मानव अभिज्ञता की दृष्टि से मैं सत्य नहीं समझता। मैं अब भी ईश्वर में विश्वास रखता हूं एवं यह समझता हूं कि आधुनिक विज्ञान की अभिव्यक्ति से क्रमशः भारतीय दर्शन-शास्त्र की पुष्टि होती जा रही है। आजकल हमारे देश के कुछ व्यक्ति परानुकरण वृत्ति के वश होकर आत्मवाद को स्वीकार नहीं कर रहे हैं एवं जो लोग आत्मवाद में विश्वास रखते हैं, उनकी वे हंसी उड़ाते हैं।

यथार्थ में बात तो यह है कि अपनी-अपनी अभिरुचि, संस्कार एवं संगी-साथियों के प्रभाव की वजह से ही अधिकांशतः हमारी विचारधारा बनती है; गम्भीर रूप से चिन्तन करने के बाद किसी सिद्धान्त को ग्रहण करने का दृष्टान्त मनुष्य में दुर्लभ है।

यह भी एक बात है कि आज जो लोग राष्ट्रीय क्षेत्र में त्याग एवं वीरत्व के साथ आगे बढ़ रहे हैं, उनकी विचारधारा का प्रभाव स्वभावतः प्रबल होगा। रूसी विप्लवी आन्दोलन की सफलता के मोह में आकर भी आज हमारे देश के बहुतेरे नौजवान उससे अभिभूत हो रहे हैं। भौतिकवादियों के मन में यह भी एक धारणा है कि आधुनिक विज्ञान ने आत्मवाद के सिद्धान्त को जड़ से उखाड़कर फेंक दिया है, लेकिन ये सब बातें बिलकुल निराधार हैं।

निष्पक्षपात रूप से यदि हम आधुनिक विज्ञान की आलोचना करें तो हमें यह अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा कि विज्ञान केवल इन्द्रियग्राह्य विषयों की ही खोज करता है, इस कारण विज्ञान की सहायता से हम यह कैसे कह सकते हैं कि इन्द्रियातीत वस्तुओं का अस्तित्व ही नहीं है? यन्त्रों के आविष्कार से हम अपनी इन्द्रियों की शक्ति को बढ़ाते हैं, और तब हम देख पाते हैं कि जो वस्तु इन्द्रिय-गोचर नहीं थी, वह यन्त्रों की सहायता से इन्द्रियग्राह्य हो गई। आज वैज्ञानिक उन्नति के कारण हमें यह प्रतीत होने लगा है कि हमारे सुपरिचित ज्योति-पुंज के अतिरिक्त हमारी इन्द्रियग्राह्य आलोक-रश्मियों के अलावा भी, ऐसी बहुत-सी किरणें हैं, जिनकी प्रकाश-शक्ति परिचित आलोक-रश्मि से कहीं अधिक एवं आश्चर्यप्रद है। यन्त्रों की और भी उन्नति होने पर हमें पता चलेगा कि हमारे परिचित जगत् से, हमारे इन्द्रियग्राह्य जगत् से इन्द्रियातीत जगत् कहीं अधिक व्यापक एवं चमत्कारपूर्ण है। हम मनुष्यों का स्थान उस अज्ञातलोक एवं ज्ञात लोक के सन्धि-स्थल पर स्थित है। यंत्रों की सहायता के बिना भी मनुष्य ऐसी शक्ति अर्जन कर सकता है, जिसकी सहायता से, इन्द्रियातीत जगत् का उसे परिचय मिल सकता है।

जीवविज्ञान एवं मनोविज्ञान की आधुनिक उन्नति से वैज्ञानिकों को यह प्रतीत होने लगा है कि भौतिक मतवाद एक अंधविश्वास मात्र है। इसका वैज्ञानिक आधार कुछ भी नहीं है। प्रसिद्ध जीव वैज्ञानिक जे० एम० हालडेन साहब ने तो यहां तक कह दिया है कि यदि व्यक्तिगत रूप से उन वैज्ञानिकों के प्रति लोगों को असीम श्रद्धा नहीं होती तो भौतिकवाद के मानने के कारण उन्हें वे घृणा की दृष्टि से देखते। देखिये [Materialism by J.S. Haldane C.H., M.D., F.R.S. Hom. LL.D. (Birmingham and Edinburgh) Hon. D.Sc. (Cambridge, Leeds, and Witwatersrand) Fellow of New College, Oxford, and Honorary Professor Birmingham University— p. 39] नोबेल पुरस्कार प्राप्त किये हुए डाक्टर कैरेल अमेरिका के प्रसिद्ध रॉकफेलर इंस्टिट्यूट में अनुसन्धानकारी, जगत्प्रसिद्ध जीव-विज्ञानवेत्ता हैं। इनकी भी राय में भौतिकवाद एक व्यक्तिगत विश्वासमात्र है। विज्ञान की दृष्टि से इसकी पुष्टि नहीं हो सकती। बल्कि विज्ञान की आधुनिक गति भौतिकवाद के विरोध में जा रही है। (देखिए कैरेल के लिखित Man the Unknown) इस प्रकार से आधुनिक जगत् के विख्यात एवं लब्धप्रतिष्ठ वैज्ञानिकों के वचन उद्धृत करके यह दिखलाया जा सकता है कि भौतिकवाद एक मत मात्र है। भौतिकवाद का सिद्धान्त वैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित नहीं है। बट्रेण्ड रसेल साहब ने भी यह कहा है कि रूस के राजनीतिज्ञों एवं अमेरिका के कुछ थोड़े से वैज्ञानिकों को छोड़कर आधुनिक संसार में अधिकांश दार्शनिक एवं वैज्ञानिकों की भौतिकवाद में कोई श्रद्धा नहीं है। रूस एवं अमेरिका में ईसाई पुरोहितों के अवांछनीय किन्तु प्रबल प्रभाव के कारण उन देशों में उसकी प्रतिक्रिया के रूप में ऐसे भौतिकवाद का उद्‌भव हुआ है। (देखिए History of Materialism by Lang, English translation—Introduction by Bertrand Russell—written in 1925.) अपने इस पक्ष को प्रमाणादि देकर उचित प्रकार से सिद्ध करने के लिए एक सम्पूर्ण ग्रन्थ लिखने की आवश्यकता है। परन्तु इस स्थान पर इतने गहरे रूप से इस विषय में विचार करने के लिए मैं प्रवृत्त होना नहीं चाहता। अन्त में एक बात का और उल्लेख करके अपने वक्तव्य को स्पष्ट कर देना चाहता हूं। एक तरफ आधुनिक पदार्थ-विज्ञान इस नतीजे पर आ पहुंचा है कि विश्व में जितने भी पदार्थ हैं, असल में वे सभी वैद्युतिक शक्ति के ही विभिन्न रूप हैं; दूसरी तरफ यह प्रमाणित हो रहा है कि मस्तिष्क-शक्ति के परिचालन के परिणाम में वैद्युतिक प्रवाह उत्पन्न होता है। अभी इतना प्रमाणित होना बाकी रह गया कि वैद्युतिक प्रवाह के कारण मस्तिष्क में विचारधारा की उत्पत्ति हो। हमें याद रखना चाहिए कि कुछ दिन पहले यह अज्ञात था कि भौतिक शक्तियां एक अवस्था से दूसरी अवस्था में रूपान्तरित की जा सकती हैं परन्तु आज अवश्य यह बात प्रमाणित हो गई है। इस प्रकार से हम उस दिन की प्रतीक्षा में हैं, जिस दिन यह प्रमाणित हो जायेगा कि संसार के समस्त पदार्थ एवं जीवजगत के समस्त जीवों की प्राणशक्ति तथा चैतन्य एवं बुद्धि, ये सबके सब एक ही वस्तु के विभिन्न रूप या प्रकाश हैं। कलकत्ता हाईकोर्ट के प्रसिद्ध जज सर जान वुडराफ साहब ने यह कहने का साहस किया था कि आधुनिक विज्ञान की प्रगति वेदान्त के सिद्धान्त की तरह अनिवार्य रूप से झुक रही है। न कि वेदान्त को अपने सिद्धान्त से हटकर विज्ञान की तरफ झुकना पड़ रहा है।

इस पहलू के अलावा समाजवाद के और भी बहुत-से सिद्धान्त हैं, जिनसे मैं सहमत नहीं हूं, यथा मार्क्सवादियों का यह कहना है कि इतिहास की अभिव्यक्ति आर्थिक कारणों से ही हुआ करती है तथा संसार में अभिव्यक्त हरेक प्रकार की सभ्यता के मूल में आर्थिक कारण ही प्रधान रूप में सक्रिय होते हैं। इस बात को भी मैं स्वीकार नहीं कर पाया।

मार्क्स का यह भी कहना था कि पूंजीवादी व्यवस्था में उद्योग-धन्धों की उन्नति के साथ-साथ संसार के मजदूरों में अशान्ति भी बढ़ेगी एवं उनकी क्रोधाग्नि भी प्रज्ज्वलित होगी और क्रमशः इन दो श्रेणियों के संघर्ष के परिणाम में पूंजीपतियों की हार एवं मजदूरों की विजय अवश्यम्भावी है। लेकिन वास्तविक जगत में हम देखते यह हैं कि संसार में जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैंड, इटली, अमेरिका, जापान इत्यादि देशों में पूंजीपतियों की उन्नति चरम सीमा को प्राप्त किए है। फिर भी इन मजदूरों की क्रांति इन देशों में नहीं हुई हैं। प्रत्युत कम्युनिस्ट चीन एवं रूस जैसे पिछड़े हुए देशों में अपना राज्य कायम करने में बहुत कुछ कृतकार्य हुए हैं। इसके मूल में आर्थिक कारण उतने नहीं हैं जितने अन्य और अनेक प्रकार के कारण हैं।

इन सब बातों की वैज्ञानिक प्रणाली से आलोचना करना आवश्यक है, लेकिन इस भूमिका में यह सम्भव नहीं है। इन सब बातों की सम्यक् आलोचना कहीं अन्यत्र करने की मेरी प्रबल इच्छा है।

आधुनिक विज्ञान एवं ऐतिहासिक खोज की प्रणाली की सहायता से भारतीय विप्लव आन्दोलन का एक प्रामाणिक इतिहास अलग ही लिखने की प्रबल आकांक्षा है, इसलिए प्रस्तुत पुस्तक 'बन्दी जीवन' में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया गया। इस पुस्तक की हिन्दी भी मेरी नहीं है। इस बार जेल से छूटने के बाद से हिन्दी में लिखना आरम्भ किया है। इच्छा है कि अगले संस्करण में अनुवाद की सहायता न लेकर मैं हिन्दी में ही मूल ग्रन्थ को लिखूं। इस ग्रन्थ की त्रुटियों के लिए पाठकवर्ग से क्षमा का भिखारी हूँ।

लखनऊ

13 सितम्बर, 1938

(चतुर्थ संस्करण की भूमिका से)

बन्दी जीवन : कुछ पूरक तथ्य

हार्डिंग्ज बम काण्ड

'बन्दी जीवन' की कहानी 'दिल्ली षड्यन्त्र केस' के पश्चात से प्रारम्भ होती है। वास्तव में इस षड्यन्त्र केस के साथ ही उत्तर भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलन का एक अध्याय समाप्त होता है और अगला अध्याय प्रारम्भ होता है। यह षड्यन्त्र केस उन लोगों पर चलाया गया था, जो 23 दिसम्बर, 1912 को लार्ड हार्डिंग्ज पर बम फेंकने के अपराधी समझे गए थे। लार्ड हार्डिंग्ज पर जिस समय बम फेंका गया, उस समय वह कलकत्ते से दिल्ली राजधानी लाए जाने के उपलक्ष में निकाले गए अपने शाही जुलूस में एक हाथी पर आसीन थे। सन् 1905 में बंगाल के स्वदेशी आन्दोलन के समय कलकत्ता तथा बंगाल में जिस प्रकार विप्लवकारी सक्रिय हो उठे थे, उसी से आतंकित होकर ब्रिटिश सरकार भारत की राजधानी कलकत्ता से हटाकर दिल्ली लाई थी। इससे पूर्व सन् 1911 में, जार्ज पंचम ने दिल्ली दरबार किया था और उसी में बंग-भंग को रद्द करने की घोषणा की गई थी। उसके पश्चात् ही दिल्ली को राजधानी बनाने और इस अवसर पर ऐसी धूमधाम और प्रदर्शन करने का आयोजन किया गया, जिससे भारतीय जनता और विदेशों के लोकमत पर यह प्रभाव डाला जा सके कि भारतीय जनता पूर्णतया अंग्रेजी शासन की भक्त है और कहीं कुछ गड़बड़ नहीं है। किन्तु भारतीय क्रान्तिकारियों ने, जिनमें श्री रासबिहारी बोस भी थे, लार्ड हार्डिंग्ज पर बम फेंककर सरकार की इस योजना पर पानी फेर दिया। बताया जाता है कि श्री रासबिहारी बोस के एक साथी श्री बसन्त कुमार विश्वास स्त्री-वेश में एक ऐसे मकान की छत पर जा बैठे, जो जुलूस के रास्ते में था। जैसे ही वायसराय का हाथी उस मकान के नीचे आया, श्री विश्वास ने बम फेंक दिया। किन्तु वायसराय बच गए, केवल उनका एक अंगरक्षक मारा गया। इसके पश्चात् ही बड़े पैमाने पर गिरफ्तारियां हुईं। कुछ लोग मुखबिर हो गए और श्री बालमुकुन्द, मास्टर अमीचन्द, अवधबिहारी और बसन्त कुमार विश्वास को फांसी हुई। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक व्यक्तियों को लम्बी-लम्बी अवधि की सजा सुनाई गई।

'बन्दी जीवन' के तीन भाग उस समय लिखे गए, जब हमारे देश में ब्रिटिश शासन-तंत्र था। लेखक का मूल उद्देश्य यह था कि भारत की स्वाधीनता के लिए उसने और उसके साथियों ने सशस्त्र क्रान्ति का जो प्रयास किया था, उसका विवरण जनता के सम्मुख उपस्थित कर दे, जिससे प्रेरित होकर अन्य भारतीय युवक भी इन प्रयासों में सहायता दें और इस प्रकार स्वाधीनता आन्दोलन शक्तिशाली बन सके। किन्तु उस समय सभी घटनाओं को सर्वथा स्पष्ट रूप से नहीं लिखा जा सकता था, क्योंकि इससे अनेक व्यक्तियों के आपत्तिग्रस्त हो जाने का भय था : इसीलिए श्री शचीन्द्र बाबू को अनेक घटनाएं छिपानी पड़ी हैं और अनेक व्यक्तियों के कृत्रिम नाम लिखने पड़े हैं। भारत की स्वाधीनता के पश्चात् हमारे देश के अन्य क्रान्तिकारी महानुभावों ने जो-जो संस्मरण, इतिहास आदि लिखे हैं, उनके सन्मुख यह बाधा नहीं थी। उन्होंने सभी कुछ स्पष्ट रूप से लिखा है और इसीलिए आज वे अनेक तथ्य भी प्रकाश में आ गए हैं, जिनको शचीन्द्र बाबू अपने इस ग्रन्थ में प्रकट नहीं कर सकते। यहां हम कुछ ऐसे ही तथ्य संग्रहीत करके दे रहे हैं।

शशांक मोहन हाजरा

लार्ड हार्डिंग्ज पर जो बम फेंका गया था, वह उसी प्रकार का था, जिसके खोल कलकत्ता के राजाबाजार मुहल्ले में श्री शशांक मोहन हाजरा के घर से बरामद हुए थे। इन श्री शशांक मोहन की चर्चा से ही 'बन्दी जीवन' की कहानी शचीन्द्र बाबू ने प्रारम्भ की है। शशांक मोहन का एक अन्य नाम अमृत हाजरा भी था। वह कलकत्ता के एक बरफ के कारखाने में काम करते थे। किसी राजनीतिक डकैती के सिलसिले में पुलिस ने उनके घर की तलाशी ली, तो उसे वहां बम बनाने के नुस्खे और बम के खोल भी हाथ लग गए। श्री शशांक मोहन ने अदालत में इस बात से इन्कार किया कि वे बम बनाते थे। उन्होंने अदालत में अपनी सफाई देते हुए कहा कि पुलिस जिस चीज को बम के खोल बता रही है, वह तो एक नई प्रकार की गैस की लालटेन का हिस्सा है, जो मैं ईजाद करना चाहता हूं। उन्होंने उन खोलों से अदालत में ही एक गैस की लालटेन बनाकर दिखा भी दी। किन्तु दूसरे प्रमाणों के आधार पर उनका क्रान्तिकारी होना सिद्ध हो गया और 15 साल के काले पानी की सजा उन्हें मिली।

ऐसा प्रतीत होता है कि श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल का बंगाल के क्रान्तिकारी दल से सम्पर्क श्री हाजरा के द्वारा ही हुआ था। श्री मन्मथनाथ गुप्त ने अपनी पुस्तक 'भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास' में लिखा है :

"1912 में ढाका अनुशीलन समिति के फरार अमृत या शशांक हाजरा तथा अन्यान्य लोगों के मन में यह विचार आया कि अलग-अलग दल बनाकर कार्य करने से कार्य-सिद्धि नहीं होगी। इसी कारण चन्द्रनगर दल तथा अनुशीलन दल का मिलन हुआ।

"1908 के लगभग काशी के श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल ने एक क्रान्तिकारी दल की स्थापना की। इसका रूप अभी पूरा क्रान्तिकारी नहीं हुआ था, बल्कि अभी वह केवल लाठी, कुश्ती, जिमिनास्टिक आदि सीखने की एक संस्था मात्र थी। शचीन्द्रनाथ सान्याल ने इसका नाम 'अनुशीलन समिति' रक्खा, पर बंगाल की अनुशीलन समिति से इसका कोई सम्बन्ध नहीं था। बाद को जब बंगाल में अनुशीलन समिति गैरकानूनी करार दी गई, तो शचीन्द्रनाथ सान्याल ने अपनी संस्था का नाम 'यंगमैन्स एसोसिएशन' रखा।

"शचीन्द्र अपने दल को पूरा क्रान्तिकारी रूप नहीं दे पा रहे थे, इसलिए उन्होंने बंगाल की यात्रा की। वे ढाका के माखनसेन से मिले, पर उनसे मिलकर उनका मन संतुष्ट नहीं हुआ, क्योंकि वे धर्म के आधार पर राजनीतिक कार्य की बात कह रहे थे, शचीन्द्र को यह बात पसन्द नहीं आई। ये 1913 में ही अनुशीलन समिति के नेताओं से मिले और उनके राजाबाजार वाले अड्डे पर गए।

"वहां शचीन्द्र जिस रूप में गए, वह रविसेन के अनुसार इस प्रकार था-- 'जब शचीन्द्र पहले-पहल राजाबाजार आए, तब मैंने देखा कि सिर पर मोटी चुटिया थी और कोट पहने थे। देखने पर बंगाली नहीं लगते थे।

"राजाबाजार में ही कई और क्रान्तिकारियों से शचीन्द्र का परिचय हुआ।

उनमें से शिरीष बाबू शचीन्द्र को चन्द्रनगर ले गए और वहीं रासबिहारी के साथ उनका परिचय कराया गया। उन्होंने आगन्तुक की गतिविधि देखी। शचीन्द्र मानो बारूद से भरे अनार थे। इसलिए हर समय चंचल रहते थे। शचीन्द्र की यह चंचलता देखकर रासबिहारी ने उनका नाम लटटू रक्खा। शचीन्द्र में असाधारण कर्मशक्ति, सरलता और साधुता थी। उनमें जैसे कर्मशक्ति हर समय उबाल के बिन्दु पर बनी रहती थी। रासबिहारी शचीन्द्र की यह चंचलता देखकर बोले, 'उसके ग्रुप के साथ मिलना खतरनाक तो नहीं रहेगा ? यह तो बड़ा अस्थिर लगता है। मैं सेना में काम कर रहा हूं। पता नहीं क्या गोलमाल कर डाले।

"प्रतुल गांगुली उन दिनों फरार थे, अब वे इस बात के लिए नियुक्त हुए कि वे शचीन्द्र के साथ उत्तर प्रदेश का दौरा करेंगे और फिर उनकी रिपोर्ट पर तय होगा कि रासबिहारी कहां तक उनसे सहयोग करें। प्रतुल बाबू ने दौरा करने के बाद अच्छी रिपोर्ट दी, जिसके फलस्वरूप शचीन्द्र का दल रासबिहारी के साथ काम करने लगा और शचीन्द्र रासबिहारी के दाहिने हाथ बन गए।..."

इस विवरण से प्रमाणित होता है कि बंग-भंग आन्दोलन के समय बंगाल में विप्लववाद की जो लहर उठी थी, उसी से अनुप्राणित होकर श्री शचीन्द्र ने अपने नगर बनारस में पहले युवकों का एक संगठन स्थापित किया। इसके पश्चात् वे किसी प्रकार अमृत (शशांक) हाजरा के पास कलकत्ता जा पहुंचे और फिर उनका श्री रासबिहारी से सम्पर्क हो गया। इसके पश्चात् तो वे श्री शचीन्द्र, रासबिहारी के पूर्ण रूप से ही अनुगत हो गए। बनारस षड़यन्त्र के एक मुखबिर के बयान के अनुसार 1914 के नवम्बर की एक रात को जब श्री शचीन्द्र और श्री रासबिहारी एक बम की टोपी की जाँच कर रहे थे, अकस्मात् वह बम फट गया और रासबिहारी तथा शचीन्द्र, दोनों ही घायल हो गए। इन दिनों वे प्रथम विश्वयुद्ध की स्थिति से लाभ उठाकर देश की सेनाओं में विद्रोह उभारने का कार्य कर रहे थे। पग-पग पर संकट और मृत्यु के दर्शन इसी प्रकार उनको करने पड़ते थे।

श्री अमृत हाजरा ने बर्हा डकैतीकांड में भाग लिया था। बर्हा एक ग्राम का नाम हैं, जहां एक धनी व्यक्ति रहता था। क्रान्तिकारी कार्यों के लिए धन की आवश्यकता होने पर क्रान्तिकारियों ने उसके यहां डकैती डाली और नाव द्वारा भाग निकले। किन्तु ग्रामवासी और पुलिसवालों ने क्रान्तिकारियों का पीछा किया। नदी के दोनों किनारों पंर ग्रामीणों की भीड़ और नदी में नाव द्वारा पुलिस क्रान्तिकारियों पर गोली चलाते हुए उनका पीछा करने लगी। एक-दो क्रान्तिकारी मारे गए। उस अवसर पर अमृत हाजरा अपने मृत-साथी की लाश को सामने रखकर जोर-जोर से वन्देमातरम् का नारा लगाते रहे। इस नारे को सुनकर ही ग्राम वाले समझ सके कि यह लोग साधारण डकैत नहीं, बल्कि क्रान्तिकारी हैं। इस पर अधिकांश ग्रामीण वापस लौट गए और शेष क्रान्तिकारी बचकर आ सके। श्री शशांक ऐसे कर्मठ, साहसी, प्रत्युत्पन्न बुद्धि और मेधावी थे।

राजस्थान का क्रान्तिकारी दल

श्री रासबिहारी बोस से परिचय होने के पश्चात श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल को राजस्थान के क्रान्तिकारी संगठन का भी सहयोग मिलने लगा, जो बंगाल के क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में बहुत पहले से था। श्री शचीन्द्र ने 'बन्दी जीवन' में राजस्थान के सम्बन्ध में बहुत कम लिखा है, यद्यपि ये बहुत-कुछ लिख सकते थे। वास्तविकता तो यह है कि सन् 1914-15 में श्री रासबिहारी के साथ श्री शचीन्द्र जिस विराट विप्लव यज्ञ का आयोजन कर रहे थे, उसमें राजस्थान के क्रान्तिकारी भी महत्वपूर्ण भाग लेने वाले थे। राजस्थान का यह क्रान्तिकारी संगठन बहुत पुराना था और भारतीय विप्लववाद के आदि प्रवर्त्तक श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा ने इसकी नींव डाली थी। कुछ विद्वान इतिहासज्ञों का यह भी मत है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती और स्वामी विवेकानन्द जी ने राजस्थान के अनेक राजाओं के मन में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए सशस्त्र प्रयास करने की भावना उत्पन्न कर दी थी। श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा महर्षि दयानन्द के शिष्य थे। वे भारत की अनेक रियासतों के दीवान रहे और फिर कुछ दिनों तक अजमेर म्युनिरपैलिटी के अध्यक्ष पद पर भी रहे। इसके पश्चात् हम अनेक क्रान्तिकारियों को अकस्मात् राजस्थान की रियासतों के राजकीय पदों पर आसीन होते देखते हैं। दिल्ली षड्यन्त्र में फांसी पाने वाले श्री बालमुकुन्द जी जोधपुर के राजकुमारों के शिक्षक के पद पर थे। लाला हरदयालजी के एक साथी बाबू ब्रजमोहनलाल जी स्कूल ऑफ आर्टस, जयपुर के वाइस प्रिन्सिपल पद पर आसीन थे। खरना रियासत के राजा राव गोपाल सिंह तो क्रान्तिकारी कार्यों में इतने सक्रिय थे कि सरकार को बहुत दिनों तक उनको नजरबन्द रखना पड़ा। प्रसिद्ध जैन विद्वान श्री अर्जुनलाल जी सेठी जयपुर में एक राष्ट्रीय विद्यालय चलाते थे और इस दल के नेता थे। श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल ने 'बन्दी जीवन' के द्वितीय अध्याय में 'प्रताप की कहानी' शीर्षक से जिन प्रताप सिंह की गौरव-गाथा लिखी है, वे और उनके पिता डॉ० केशरी सिंह जी बारहठ, जो एक समृद्ध जागीरदार थे, क्रान्तिकारी कार्यों में अपने को सर्वथा होम चुके थे। ठाकुर केशरी सिंह जी के छोटे भाई श्री जोरावरसिंह जी एवं उनके अनेक रिश्तेदार भी विप्लव-पथ के पथिक बन चुके थे। ठाकुर केशरी सिंह जी के परिवार वालों का तो दावा है कि लार्ड हार्डिंग्ज पर बम बसन्त कुमार विश्वास ने नहीं, ठाकुर जोरावरसिंह ने फेंका था। इस केस में ठाकुर जोरावरसिंह का वारण्ट निकला था, पर वे फरार हो गए और सन् 1938-39 में जब कुछ प्रान्तों में कांग्रेस मिनिस्ट्री बन जाने के कारण उनका वारण्ट रद्द हो जाने की सम्भावना होने लगी थी, फरार अवस्था में ही उनका देहान्त हो गया।

शहीद मोतीचन्द और जयचन्द

श्री शचीन्द्र ने 'बन्दी जीवन' के द्वितीय भाग के छठे परिच्छेद में निमेज के महन्त की हत्या के अपराध में फाँसी पाने वाले दो युवकों-- श्री मोतीचन्द और माणिकचन्द या जयचन्द के फाँसीघर से लिखे जाने वाले एक पत्र का उल्लेख किया है। यह श्री मोतीचन्द और जयचंद भी इसी राजस्थानी क्रान्तिकारी मंडली के थे। इनमें श्री जयचन्द के नाम का उल्लेख शचीन्द्र बाबू स्मृतिभ्रम से कर गए हैं, क्योंकि श्री जयचंद निमेज के महन्त हत्याकांड के अभियुक्त अवश्य थे किन्तु वे अन्त तक पुलिस के हाथ नहीं आ सके। इस फरार अवस्था में जयचन्दजी बहुत दिनों तक हरिद्वार में बाबा काली कमलीवाले की संस्था के मुख्य पद पर रहे और उधर ही क्रान्तिकारी दल का संगठन भी करते रहे। राजस्थान के वर्तमान सर्वोदयी नेता श्री रामनारायण चौधरी भी उस समय इसी मंडली में थे। श्री मोतीचन्द और जयचन्दजी का परिचय देते हुए उन्होंने अपनी पुस्तक 'वर्तमान राजस्थान' में लिखा है--

".... उन्होंने (श्री अर्जुनलाल सेठी ने) महाराष्ट्र और काश्मीर जैसे दूर-दूर के प्रान्तों से चुन-चुनकर नौजवान इकट्ठे किये थे। ये कैसे जीवट के लोग थे, इसके दो दृष्टान्त मुझे याद हैं। श्री मोतीचन्द उस युवक दल के अगुआ थे। एक बार उनका ऑपरेशन हुआ। डॉ० उलजंगसिंह की राय में वह इतना गम्भीर था कि क्लोरोफार्म सुंघाये बिना चीरा लगाने की उनकी हिम्मत न हुई। मोतीचन्द का आग्रह था कि होश में ही चीरफाड़ की जाये। आखिर वैसा ही हुआ और मोतीचन्द ने उफ तक न की। डाक्टर दाँतों तले उँगली दबाकर रह गया। आरा के महन्त की हत्या के अपराध में जब उन्हें फाँसी लगी तो कहते हैं, बलिदान की खुशी में उनका वजन

कई पौंड बढ़ गया था।

"लेकिन असली अपराधी तो थे जयचन्द, जो अन्त तक पुलिस के हाथ न आए। उनके साथ मेरा गहरा सम्बन्ध हो गया था। उनका किस्सा विचित्र था। वे काश्मीर राज्य के पूंछ ठिकाने में किसी छुटभैया के लड़के थे। एक दूसरे युवक के साथ अनन्य मित्रता हो गई। प्लेग आया तो दोनों में कौल-करार हुआ कि जो बच रहे वह घर से निकल पड़े और उम्र भर अपने साथी के लिए तपस्या करे। जयचन्द बच गए। सीधे हरद्वार जाकर जाड़े में गंगाजी में और गर्मी में बालू रेत में तपस्या करने लगे। गाने का शौक था। एक दिन सेठीजी का वहां भाषण था। उसमें संगीत का भी कार्यक्रम था। जयचन्द कोने में बैठे सुन रहे थे। सेठीजी की पारखी दृष्टि ने उन्हें पहचान लिया कि काम का आदमी है। साथ ले आए। वह निर्भय इतने थे कि कई बार वारण्टधारी पुलिस के बीच से निकल गए। चलने में इतने तेज कि एक बार घुड़सवार पुलिस का पीछा बचाते हुए सत्तर मील तय करके शाम को मेरे पास पहुंच गए। दो मंजिल से कूदकर भाग जाने का उन्हें इतना पक्का विश्वास था कि हमारे प्रबल आग्रह पर भी वे धीरे बोलने या दूसरी सावधानी बरतने को तैयार नहीं होते थे।

"इसी मंडली में एक श्री छोटेलाल जैन भी थे, जो हार्डिंग्ज बम के में अभियुक्त बनाये गए किन्तु प्रमाणाभाव से छूट गए और फिर क्रान्तिकारी कार्यों में संलग्न हो गए। इसके पश्चात् गांधीजी के तत्वज्ञान ने उनको खींचा और साबरमती आश्रम में जाकर रहने लगे।

"किन्तु इस मंडली के रत्न तो प्रतापसिंहजी थे, जो शचीन्द्र बाबू के साथ बनारस षड्यन्त्र केस के अभियुक्त थे।" श्री रामनारायण चौधरी ने अपनी इसी पुस्तक में एक स्थान पर लिखा है, "सच तो यह है कि महात्मा गांधी को छोड़कर और किसी पर मेरी इतनी श्रद्धा नहीं हुई जितनी प्रतापजी पर...।"

सर रेज़िनल्ड कैडक की हत्या का प्रयास

श्री शचीन्द्र ने अपनी पुस्तक के द्वितीय भाग में 'काशी अंचल की कहानी' परिच्छेद (2) के अन्तर्गत लिखा है, "राजपूताना के एक युवक के साथ दिल्ली आ पहुँचा। अपने दल के ही एक युवक के डेरे पर अतिथि हुआ।... उस समय के होम मेम्बर सर रेज़िनल्ड कैडक साहब तब दिल्ली में न थे, और एक-दो और कारण थे, जिससे दिल्ली में कुछ किया नहीं गया।"

श्री रामनारायण चौधरी ने भी अपनी पुस्तक में इस घटना का ब्यौरा दिया है। वे लिखते हैं, "1915" का साल शुरू हुआ था कि एक दिन अँधेरे-अँधेरे छोटेलालजी एक ऐनकधारी युवक को लेकर आए। छोटी-छोटी आँखें, साँवला रंग और ठिगना क़द था। उन दिनों हिन्दुस्तानी फ़ौज में गदर की तैयारी की जा रही थी। इसके संयोजक बाबू रासबिहारी बोस थे। उनका केन्द्र बनारस था। एक खास काम के लिए उन्होंने श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल को दिल्ली भेजा था। प्रतापसिंह उनके साथ थे। इसी खास काम में एक सन्देश ले जाने वाले की ज़रूरत थी। छोटेलालजी की सलाह से प्रतापजी ने मुझे पसन्द किया। दूसरे ही दिन प्रतापजी और मैं दिल्ली के लिए रवाना हो गए। बाहर के एक पुराने मकान की पहली पंज़िल पर पहुँचे तो एक गठीले जवान ने हमारा स्वागत किया। वह शचीन्द्र थे। एक कोठरी में अखबार बिछे थे। यही उनका बिस्तर था। शाम तक मुझे योजना का पता लग गया। वह यह थी कि भारत सरकार के होम मेम्बर सर रेज़िनल्ड कैडक को गोली का निशाना बनाया जाय। यह काम करें जयचन्द और मैं उन्हें हरिद्वार से बुला लाऊँ। संकेत यह था कि जैसे ही कैडक साहब वाली घटना के समाचार प्रकाशित हों, मेरठ वग़ैरा की भारतीय सेना विद्रोह कर दे।... अस्तु, मैं रात की गाड़ी से हरिद्वार के लिए चल पड़ा। भारत रक्षा क़ानून का शिकंजा इतना कड़ा था कि हर जगह पुलिस किसी युवक को देखते ही संदेह करती और उसे पूछताछ किया बिना आगे न बढ़ने देती। लेकिन मेरी मारवाड़ी भेष-भाषा ने अच्छा काम दिया। हरिद्वार में उन दिनों कुम्भ का मेला था, परन्तु काली कमली वाले बाबा का स्थान ढूँढ़ने में विशेष अड़चन नहीं हुई। हमारे जयचन्द बाबा के दाहिने हाथ बने बैठे थे। देखते ही लिपट गए। लेकिन मेरे साथ दिल्ली चलने में असमर्थता प्रकट करते हुए बोले, "यहाँ एक अच्छा दल तैयार कर लिया है। अभी कल परसों एक सफल डाका डाला है। हाथ में लिया हुआ काम छोड़कर जाना ठीक नहीं। हाँ, चाहो तो पाँच-दस हज़ार रुपया ले जाओ। डाके का माल भी है और बाबा का भंडार भी भरपूर है।" धन लाने की मुझे आज्ञा न थी। मैं खाली हाथ वापस आ गया। शचीन्द्र और प्रतापजी को निराशा हुई। जो काम जयचन्द के सिपुर्द होने वाला था, वह प्रताप जी को सौंपा गया। मगर संयोगवश कैडक साहब उस तारीख को बीमार हो जाने से बाहर नहीं निकले और बच गये। मैं उसी रात को जयपुर लौट आया।"

श्री प्रतापसिंह

बनारस षड्यन्त्र के सिलसिले में प्रतापसिंहजी के फरार होने और फिर उनकी गिरफ्तारी पर प्रकाश डालते हुए श्री चौधरी ने लिखा है, "....प्रतापजी पर बनारस षड्यन्त्र के सिलसिले में वारंट निकल गए और वे भागकर हैदराबाद (सिन्ध) में जा छिपे। खुफिया पुलिस तलाश करती हुई जयपुर पहुँची और एक ओसवाल गृहस्थ के पीछे पड़ी। कमज़ोरी में आकर उन्होंने हैदराबाद तो बता दिया मगर फिर सँभलकर सिंध के बजाय निज़ाम की राजधानी का पता दे दिया। डिप्टी सुपरिंटेंडेंट आगे यह सुराग पाकर दक्षिण की ओर रवाना हुए। इधर हमारी मंडली को प्रतापजी को बचाने की फिक्र हुई। इस बार भी मुझको चुना गया। मारवाड़ी पोशाक में चल पड़ा। मुझे हिदायत थी कि मारवाड़ के मनिमालिया स्टेशन पर उतरकर चारणों के गाँव पाचेटिया में पहले तलाश कर लूँ। शायद प्रतापजी वहाँ हों। हमारे देहाती समाज में अनजान लोगों से खूब पूछताछ होती है। इससे मेरे काम में बाधा पड़ रही थी। आखिर एक किस्सा गढ़ लिया और जो कोई पूछता उसी को सुनाकर पिण्ड छुड़ाता। गाँव के निकट पहुँचते-पहुँचते मालूम हो गया कि जिस घर में प्रतापजी ठहरा करते थे, उसे पुलिस ने घेर रक्खा है। मैं समझ गया कि पंछी अभी पकड़ में नहीं आया है, मैं व्यर्थ में क्यों फँसूं। मैंने सिन्ध की राह ली। हैदराबाद में पहुँचकर दिन-भर की खोज के बाद प्रतापजी से भेंट हुई। उन्होंने एक खानगी दवाखाने में कम्पाउण्डर की जगह काम शुरू कर दिया था और फुरसत के समय वाचनालयों में जाने वाले नौजवानों में क्रान्तिकारी प्रचार करने लग गए थे। दूसरे ही दिन हम दोनों बीकानेर के लिए चल पड़े। सोचा यह था कि मैं तो राजधानी में नौकरी कर लूँगा, प्रतापजी कहीं देहात में जा बसेंगे और दोनों मिलकर विप्लववादी दल खड़ा करेंगे... लेकिन एक गलती ने इस योजना पर पानी फेर दिया। जोधपुर स्टेशन पास आया तो प्रतापजी की इच्छा आशनाडा स्टेशन पर उतरकर वहाँ के स्टेशन मास्टर से मिल लेने की हुई। वह दल का सदस्य था। मगर कुछ दिन पहले उसके यहाँ बम का पार्सल पकड़ा जा चुका था और वह अपनी खाल बचाने को पुलिस का मुखबिर बन गया था। इसकी किसी को खबर न थी। तय यह हुआ कि मैं जोधपुर उतरकर शहर देख लूँ और दूसरे दिन शाम की गाड़ी से बीकानेर के लिए चल पड़ूं। रास्ते में आशनाडा स्टेशन पर प्रतापजी को 'माधो' के नाम से पुकारूँ। अगर कोई जवाब न मिले तो समझ लूँ कि प्रतापजी देहात में रुक गए हैं और मैं बीकानेर पहुँचकर उनका इन्तजार

करूँ। लेकिन प्रतापजी तो आशनाडा उतरते जी गिरफ्तार कर लिये गए थे। मेरी आवाज का कोई असर न देखकर मैं बीकानेर पहुँच गया।"

"... इधर हरिद्वार की कारगुज़ारी के सिलसिले में प्रतापसिंह ने बोस बाबू की तरफ से जो घड़ी और शाल भेंट की थी, वह चोरी चली गई थी। ये पुरस्कार मुझे बहुत प्रिय थे। प्रतापजी के वियोग की पीड़ा भी कम न थी। वह आदमी ही ऐसा था। जितने विप्लववादी देशभक्तों से मेरा परिचय हुआ, उनमें प्रताप की छाप मुझ पर सबसे अच्छी पड़ी थी। वे बड़े कोमल स्वभाव के निहायत शिष्ट और सदा खुश रहने वाले जीव थे। गीता को उन्होंने जिस रूप में समझा था, उसी के अनुसार उनकी सारी चेष्टाएँ होती थीं। धन और स्त्री की इच्छा को उन्होंने खूब जीता था। शरीर इतना सधा हुआ था कि जयपुर में जब वे मेरे दास रहे थे तो एक बार लगातार बहत्तर घन्टे जागते रहे और बिना खाए-पिए बराबर काम करते रहे और फिर सोए तो तीन दिन तक उठने का नाम ही नहीं लिया। गल्ता के कुंड में घंटों तैरते भी उन्हें देखा।... वे जहाँ रहते, वहीं का वातावरण सरलता, प्रेम और पवित्रता से भर देते थे।"

राजस्थान के इसी क्रान्तिकारी मंडल में श्री विजयसिंह पथिक भी थे, जो बाद को चलकर राजस्थानी किसानों के प्रसिद्ध नेता बने। सन् 1914-15 में पथिकजी राव साहब खरवा के दाहिने हाथ बने हुए थे और इन लोगों से कई हज़ार बंदूकें विद्रोह के लिए एकत्रित कर ली थीं। किन्तु कृपालसिंह द्वारा विद्रोह की योजना को सरकार पर प्रकट कर देने के कारण वह तमाम तैयारी बेकार चली गई। निश्चय ही यदि यह योजना क्रियान्वित हो सकती, तो न केवल भारत का, बल्कि संसार का इतिहास भी शायद बहुत कुछ परिवर्तित हो जाता।

मुखबिर कृपालसिंह

शचीन्द्रबाबू ने 'बन्दी जीवन' में इतना संकेत तो कर दिया है कि कृपालसिंह पर क्रान्तिकारियों को संदेह हो गया था। वे उसको समाप्त भी कर देना चाहते थे, किन्तु कर नहीं सके और वह अपने इस दुष्कृत्य में सफल हो गया। किन्तु कृपालसिंह को रास्ते से क्यों नहीं हटाया जा सका, इसका पूरा ब्यौरा हमें गदर पार्टी के एक कार्यकर्ता बाबा हरनामसिंह के एक लेख से मिलता है। बाबा हरनामसिंह भारत से अमेरिका जाकर खेतों में मज़दूरी करते थे। ग़दर पार्टी का संगठन होने पर उसके सदस्य हो गए। कुछ दिन तक अमेरिका में गदर पार्टी के मंत्री लाला हरदयालजी के अंगरक्षक भी रहे। प्रथम विश्वयुद्ध प्रारम्भ होने पर भारत में विद्रोह करने के लिए अपने अन्य साथियों सहित भारत आ गए। रासबिहारी बोस तथा शचीन्द्रजी के साथ काम किया और फिर गिरफ्तार होकर पहले फाँसी की सज़ा पाई जो अपील में आजीवन कालापानी हो गई। अमेरिका में ही एक दुर्घटनावश उनका बायाँ हाथ कट गया, इसीलिए वे 'टुण्डावाला' के नाम से भी प्रसिद्ध थे। अभी कुछ दिन पूर्व बाबा हरनामसिंह का स्वर्गवास हुआ है।

बाबाजी ने अपने लेख में लिखा है, "....पंजाब और बंगाल में क्रान्ति प्रारम्भ करने के लिए 21 फरवरी सन् 1915 की तारीख निश्चित हुई थी। बाबू रासबिहारी बोस लाहौर में पंजाब पार्टी का नेतृत्व कर रहे थे। सरकारी मुखबिर कृपालसिंह ने इस बात की खबर पुलिस को दे दी थी।"

लाहौर के एक मकान से कृपालसिंह को किसी काम के लिए लाहौर छावनी के एक रिसाले में भेजा गया। कुछ साथियों को कृपालसिंह पर सन्देह हो जाने के कारण उसके पीछे एक लड़का उसकी निगरानी के लिए रवाना किया गया। इस लड़के ने तुरन्त आकर खबर दी कि कृपालसिंह मकान से सीधा लाहौर स्टेशन की खुफिया पुलिस के दफ्तर में गया हैं, वहाँ रिपोर्ट देकर वह छावनी गया और उसी मकान पर लौट आया। उसके वापस आने से पहले मैं भी उस मकान पर पहुँच चुका था और उसकी जासूसी की बात सुन ली थी। जब वह लौटकर आया, हम तीन आदमी वहाँ मौजूद थे, वह आकर बेफिक्री से एक कुर्सी पर बैठ गया। हम तीनों में उसे क़त्ल कर देने के लिए इशारे होने लगे। मकान में कुछ बम और दो-चार रिवाल्वर मौजूद थे, लेकिन उनके चलाने से बाज़ार में धड़ाके का डर था। हमने उसे गले में फनदा डालकर मार डालने का निश्चय किया। इस काम के लिए सिर्फ एक ही हानि होने की वजह से मैं पहल नहीं कर सकता था। दूसरे साथी लाला रामसरनदास शारीरिक रूप से कमज़ोर थे। उनका हाथ डालना ठीक भी न था। हमने तीसरे साथी भाई अमरसिंह राजपूत को पहल करने का इशारा किया और हम दोनों मदद को तैयार थे। अमरसिंह तेईस-चौबीस वर्ष का हट्टा-कट्टा जवान था। लेकिन कृपालसिंह पर हाथ डालने का साहस उसे न हुआ हम अंग्रेजी में बातचीत नहीं कर सकते थे, क्योंकि कृपालसिंह भी थोड़ी-बहुत अंग्रेजी समझता था। हमारे इशारों से वह चौकन्ना हो गया और मेरे हाथ तथा अमरसिंह के भय ने उसकी जान बचा दी...।

"जब अमरसिंह को फाँसी सामने लटकती नज़र आई तो उसने पुलिस की शरण ले सरकारी गवाह बनकर जान बचाने की कोशिश की। उसने अपने बयान में अमेरिका के शुरू के काम से लेकर आखीर तक की सारी कहानी पुलिस को सुना दी। अमरसिंह अमेरिका में पार्टी का सरगर्म मेम्बर था। गदर केस में वह मेरे साथ ही काम करता था। हिन्दुस्तान लौटते समय उसने भी बाकी मेम्बरों की तरह आज़ादी या मौत का प्रण किया था। इसके अतिरिक्त उसका चाल-चलन भी वहाँ बहुत अच्छा था, लेकिन प्राणों के भय से उसने अपने साथियों को मौत के मुँह में धकेलकर अपनी जान बचाने की सोची।"

करतारसिंह आदि की गिरफ्तारी

इस भेद के खुल जाने पर सरगर्म साथियों ने कोई उपाय न देखकर जल्दी से 21 फरवरी के बजाय, क्रान्ति के लिए, 19 फरवरी का दिन निश्चित कर दिया। लेकिन पुलिस ने 18 फरवरी को ही लाहैर के दो-तीन मकानों से कुछ आदमियों को गिरफ्तार कर लिया। बाबू रासबिहारी बोस के मकान का पता मुखबिर को न था, इसलिए वे बच गए। 18 फरवरी को ही तमाम छावनियों में हिन्दुस्तानी सिपाहियों की जगह गोरे सिपाहियों का पहरा हथियारखानों पर लगा दिया गया और हमारी योजना बीच में ही रह गई। 19 फरवरी की रात को ही बनारस का टिकट खरीदकर बाबू रासबिहारी को रेलगाड़ी पर सवार कराया गया। पंजाबी कपड़े पहनकर वे बनारस पहुँचकर बच निकले। दूसरे दिन दो साथियों करतारसिंह सरावाँ और जगतसिंह के साथ मैं लाहौर से चला गया। हम तीनों ज्यों-ज्यों पेशावर पहुँचे, पेशावर से दस मील आगे निकलकर फिर पीछे लौटने का निश्चय किया। फैसला यह किया कि कुछ हथियार इकट्ठे कर अपने साथियों को लाहौर और अमृतसर की हवालातों से छुड़ाया जाए। हथियार लेने के लिए हम लोग सरगोधा के सरकारी फार्म में गए और वहाँ के सिख रिसालदार की मुखबिरी पर गिरफ्तार हो गए।... गिरफ्तारी 28 मार्च सन् 1915 को हुई थी।

कृपालसिंह की हत्या

"मुखबिर कृपालसिंह उस समय तो बच गया किन्तु क्रान्तिकारी उसके पीछे लगे ही रहे। वह इतनी सावधानी से रहता था कि उसको ठिकाने लगाना आसान बात नहीं थी। फिर भी सन् 1931 में, जब एक दिन वह अपने घर पर सो रहा

था, कुछ लोगों ने उसे ठिकाने लगा दिया और आज तक यह पता नहीं लग सका कि उसकी हत्या करने वाले कौन थे।

गदर पार्टी का जन्म और अन्त

शचीन्द्र बाबू ने अपनी पुस्तक में अमेरिका की गदर पार्टी के सम्बन्ध में बहुत-कुछ लिखा है। पंजाब में फ़ौजों को उभरने आदि का सम्पूर्ण कार्य गदर पार्टी के ही सदस्यों ने किया था। इनमें से पचासों फाँसी पर चढ़ गए, सैकड़ों को काला पानी हुआ और कुछ सरकार की आँखों में धूल झोंककर विदेशों को भी चले गए। किन्तु फिर इसके पश्चात् गदर पार्टी का क्या हुआ ? क्या वह समाप्त हो गई ? जैसाकि बहुत-से व्यक्ति समझते हैं। इस सम्बन्ध में वास्तविकता यह है कि गदर पार्टी भारत की स्वाधीनता तक बराबर अमेरिका में और जहाँ भी उसके सदस्य थे, कार्य करती रही। सह ठीक है कि प्रथम विश्वयुद्ध में उसके सैकड़ों-हज़ारों सदस्य भारत में आकर अपनी जन्मभूमि की स्वाधीनता के लिए संघर्षरत हुए, किंतु फिर भी अमेरिका में उसका संगठन ज्यों-का-त्यों चलता रहा। अभी कुछ दिन पूर्व अमेरिका की सरकार द्वारा नियुक्त एक समिति ने इस बात की जाँच की थी कि अमेरिका की गदर पार्टी के कुछ सदस्य चूँकि रूस और साम्यवाद से सहानुभूति और सम्पर्क रखते हैं, अतः क्या वे अमेरिका में भी संकट उत्पन्न तो नहीं कर सकते? इस कमेटी की रिपोर्ट गोपनीय थी, किन्तु वह किसी प्रकार गदर पार्टी के एक सदस्य के हाथ लग गई और स्वयं इन पंक्तियों के लेखक ने भी उसे देखा और पढ़ा है। इस कमेटी ने अपनी रिपार्ट में एक बात तो यह बताई है कि गदर पार्टी की स्थापना सन् 1907 में लाहौर में हुई थी। अभी तक यही समझा जाता रहा है कि लाला हरदयालजी ने नवम्बर, 1913 में अमेरिका के कैलीफोर्निया में इसकी स्थापना की थी। इसके सम्बन्ध में एक प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री खानखोजे, जिन्होंने विदेशों में बहुत काम किया, इस प्रकार बताते हैं, "लगभग 1907 के प्रारम्भ में अमेरिका के कैलीफोर्निया मे जो भारतीय छात्र थे, उनमें खगेन्द्र चन्द्र दास, पाण्डुरंग खानखोजे, तारकनाथ दास, अधरचन्द लसगर आदि ने भारतीय-स्वाधीनता-संघ की स्थापना की।...? 1908 में कैलिफोर्निया के सैक्रामेंटों और आरगिल स्टेटों के पोर्टलैंड नामक स्थान में संघ का केन्द्र स्थापित किया गया।...1913 में लाला हरदयाल और भाई परमानन्द कैलीफोर्निया आए। परमानन्द दल में शामिल नहीं हुए पर हरदयाल शामिल हुए और उन्होंने सलाह दी कि दल का नाम बदलकर 'गदर पार्टी' कर दिया जाय।"

अमेरिका सरकार की समिति की रिपोर्ट में और इस प्रामाणिक बयान में जो अन्तर है, उसका कारण यह प्रतीत होता हे कि समिति को गदरपार्टी के किसी पुराने सदस्य से ही यह ज्ञात हुआ होगा कि सन् 1907 में लाहौर के क्रान्तिकारियों के बीच ही अमेरिका में इस प्रकार का एक संगठन बनाने का निश्चय हुआ होगा। यह समरणीय है कि सन् 1906-07 में पंजाब में क्रान्तिकारी बहुत ही सक्रिय थे। सरदार भगतसिंह के चाचा सरदार अजीतसिंह, ला० पिंडीदास, अम्बाप्रसाद सूफी तथा अन्य अनेक हिन्दू, सिख, मुस्लिम क्रान्तिकारी अपने संगठन को दृढ़ करने में लगे हुए थे। पंजाब की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह थी कि बंगाल की भाँति पंजाब में क्रान्तिकारी आन्दोलन केवल मध्यम वर्ग तक ही सीमित नहीं था और न आतंकवाद तक ही उसकी परिधि समाप्त हो जाती थी। इसके विपरीत सरदार अजीतसिंह इत्यादि वहाँ किसानों का आन्दोलन चला रहे थे और हजारों किसान उनके प्रभाव में आ चुके थे। सन् 1907 की पंजाब के क्रान्तिकारियों में से सरदार अजीतसिंह, अम्बाप्रसाद सूफी, ठाकुरदास इत्यादि गोपनीय रूप से विदेश जाने में सफल हो गए। सम्भव है कि अमेरिका सरकार की समिति ने इसी आधार पर गदर पार्टी की स्थापना का यह विवरण दिया है।

समिति की रिपोर्ट यह भी बताती है कि 1917 तक तो गदर पार्टी का संगठन सर्वथा अनौपचारिक था। रिपोर्ट के अनुसार विधिवत् संगठन 22 जनवरी, 1917 को हुआ। इससे लगभग दस महीने पूर्व अर्थात् 31 मार्च, 1916 को गदर पार्टी ने अपने आफिस आदि के लिए सानफ्रांसिस्को में दो प्लाट खरीदे और वहाँ आफ़िस आदि के लिए इमारत बनवाई। समिति की रिपोर्ट के अनुसार पार्टी का विधान सन् 1928 में बना और फिर वह भारत के स्वतन्त्र होने तक सरगर्मी के साथ काम करती रही और उसके सदस्य बराबर एक देश से दूसरे देश तक दौड़-धूप करते रहे। भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात् गदर पार्टी ने अपनी सम्पूर्ण चल-अचल सम्पत्ति भारत सरकार के अमेरिका स्थित प्रतिनिधि के सुपुर्द कर दी और इस प्रकार भारतीय स्वाधीनता संग्राम के इस अत्यन्त जुझारू संगठन ने अपने लक्ष्य को प्राप्त करके स्वयं को भंग कर लिया।

मुस्लिम क्रान्तिकारी दल का इतिहास

'गदर पार्टी' की ही भाँति उस मुस्लिम क्रान्तिकारी दल पर भी कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है, जिससे दिल्ली में अपने सम्पर्क होने का उल्लेख शचीन्द्र बाबू ने किया है। शचीन्द्र बाबू ने इस दल के उद्‌भव का समय और कारण सन् 1912 में होनेवाली बालकन वार और उसमें डॉ० अंसारी के नेतृत्व में जाने वाले भारतीय मुसलमानों के मैडिकल मिशन को बताया है। श्री शचीन्द्र के लेखानुसार मैडिकल मिशन में जो भारतीय नौजवान गए थे, तुर्की की सरकार और जनता ने उनका भारी सम्मान किया। इस राजकीय सम्मान ने उनका माथा गरम कर किया और उनमें से अनेक भारत आकर ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध सक्रिय हो गए। कुछ अन्य महानुभावों ने भी इन मुस्लिम क्रान्तिकारियों के सम्बन्ध में कुछ इसी प्रकार लिखा है। इसका कारण यह है कि सिडीसन कमेटी की रिपोर्ट में मुस्लिम क्रान्तिकारी दल के उद्‌भव और विकास का इसी प्रकार उल्लेख किया गया है।

इसके विपरीत वास्तविकता यह है कि इस दल का इतिहास बहुत ही पुराना और सम्भवतः उतना ही अद्‌भुत है। सन् 1720 अर्थात गदर से भी लगभग एक सौ सैंतीस वर्ष पहले दिल्ली में एक मुस्लिम सन्त हुए, जिनका नाम शाह वलीउल्ला था। वे अत्यन्त उच्चकोटि के दार्शनिक, विद्वान् और तपस्वी व्यक्ति समझे जाते थे और उनके परिवार की बहुत शानदार परम्परा थी। मुस्लिम दर्शन के अध्यापन में वे निष्णात समझे जाते थे। अरबी और फारसी में उनके लिखे ग्रन्थ आज भी अनेक मुस्लिम राष्ट्रों में पढ़ाए जाते हैं। भारत की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति बड़ी भयावह थी और अंग्रेज धीरे-धीरे भारत की राजनीति पर हावी होते जा रहे थे। दिल्ली की मुस्लिम बादशाहत बहुत कमज़ोर हो चली थी। इस स्थिति ने शाह वलीउल्ला को राजनीति की ओर खींच लिया और वे अपने अनुयायियों को राजनीतिक शिक्षा देने लगे। भारत की हिन्दू-मुस्लिम समस्या और शासन-नीति पर भी शाह वलीउल्ला ने भली प्रकार विचार किया था। जन-साधारण की दिनों-दिन गिरती हुई आर्थिक स्थिति और शासकीय दल द्वारा जनता के शोषण को देखकर वे तत्कालीन शासकों के विरोधी बन गए थे और इसके लिए उन्होंने कष्ट भी उठाए थे। अपनी अरबी भाषा में लिखी एक प्रसिद्ध पुस्तक 'हुज्जत-उल-बालिग़ा' में उन्होंने एक स्थान पर लिखा है, यदि कोई जाति सांस्कृतिक क्षेत्र में निरन्तर उन्नति करती रहे, तो उसका कला-कौशल श्रेष्ठता की चरम सीमा को पहुँच जाता है। इसके पश्चात् यदि शासक वर्ग सुख और विलास का जीवन व्यतीत करने लगता है तो उसका बोझ श्रमजीवी वर्ग पर इतना बढ़ जाता है कि समाज का बहुसंख्यक भाग पशुओं-जैसा जीवन व्यतीत करने के लिए विवश हो जाता है। ऐसी स्थिति में मानवता का सामूहिक संस्कृति

नष्ट हो जाती है और जब शक्ति के आधार पर उनको (श्रमजीवियों को) सामूहिक संकट सहने के लिए विवश कर दिया जाता है, तो वे गधों और बैलों की भाँति केवल पेट भरने के लिए श्रम करते हैं। जब मनुष्यता पर ऐसा संकट आता है, तो ईश्वर मानवता को उससे मुक्ति दिलाने के लिए कोई-न-कोई मार्ग अवश्य खोल देता है, यानी यह आवश्यक है कि ईश्वरीय शक्ति क्रान्ति के साधन उत्पन्न करके कौम के सिर से ऐसे अवांछनीय शासन का बोझ उतार दे।"

"....तात्पर्य यह है कि मानव-समाज के सामूहिक जीवन के लिए आर्थिक समानता अत्यन्त आवश्यक है। प्रत्येक मानव-समूह को एक ऐसी अर्थ-व्यवस्था की आवश्यकता होती है, जो उसको जीवनोपयोगी वस्तुएँ देने के लिए ज़िम्मेदार हो। जब मनुष्यों को अपनी आर्थिक आवश्यकताओं के प्रति सन्तोष होता है, तो फिर वे अपने उस अवकाश के समय को, जो उनके पास जीविकोपार्जन से बच जाता है, जीवन के अन्य भागों की उन्नति और सभ्यता तथा संस्कृति की दिशा में लगाते हैं, जो मानवता के वास्तविक रूप हैं।"

भारत की हिन्दू-मुस्लिम जातियों के प्रति शासन की नीति की ओर संकेत करते हुए शाह वलीउल्ला ने लिखा है, "राज्य की ओर से क़ानून एक प्रकार के हों। उन क़ानूनों की पाबन्दी प्रत्येक जाति अपने-अपने आदर्शों के अनुसार करे।" इसी प्रकार उन्होंने अपनी एक दूसरी पुस्तक में लिखा है कि भारत में छोटी-छोटी प्रादेशिक सरकारें बन सकती हैं किन्तु उनका एक केन्द्र होना चाहिए, जो सम्पूर्ण भारतवर्ष के हानि-लाभ को दृष्टि में रखकर नीति निर्धारित करे।

तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था और राजनीतिक स्थिति में यह विचार बहुत ही मौलिक और क्रान्तिकारी थे, किन्तु कठिनाई यह थी कि उनका प्रचार केवल मुसलमानों तक ही हुआ। उस समय अधिकांश शिक्षित व्यक्ति राजकीय सेवा में संलग्न थे, अथवा शिक्षण कार्य करते थे। शेष व्यक्ति अनपढ़ और खेती के काम में संलग्न थे। शाह वलीउल्ला एक मुस्लिम सन्त थे। अतः मुस्लिम जनता में ही उनके विचारों का प्रचार प्रारम्भ हुआ। उनके शिष्यों में कुछ लोग इन विचारों को कार्य रूप में परिणत करने के लिए अपना संगठन भी बनाने लगे। शाह वलीउल्ला की मृत्यु के पश्चात उनके पुत्र शाह अब्दुल अज़ीज़ के समय इस संगठन को अधिक मूर्त रूप मिला। धीरे-धीरे यह संगठन एक फ़ौजी संगठन बन गया। किन्तु इस फ़ौजी संगठन की पहली मुठभेड़ हुई, पंजाब के राजा रणजीतसिंह से, जो अंग्रेजों के हिमायती थे। शाह अब्दुल अज़ीज़ के एक शिष्य सैय्यद-अहमद बरेलवी अपने कई हज़ार साथियों को साथ लेकर कराची के रास्ते अफगानिस्तान पहुँचे और फिर वहाँ से पेशावर की सरहद पर आकर राजा रणजीतसिंह की सेनाओं से मोर्चा लेने लगे। सरहद पार बसे हुए पठानों से उनको भारी सहायता मिली। किन्तु सय्यद को सफलता नहीं मिली। सन् 1831 में सिख फ़ौजों से लड़ते हुए वे मारे गए। इसके पश्चात् उनके साथी वहीं बस गए और समय-समय पर सदैव, 1947 तक, ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध छुटपुट लड़ाई लड़ते रहे।

भारत में सन् 1857 के विद्रोह के समय इस दल ने अंग्रेजों के विरुद्ध बड़ा सक्रिय भाग लिया था। किन्तु विद्रोह असफल हो गया और इस दल के कुछ नेता अंग्रेजों के दमन से बचने के लिए मक्का चले गए। फिर भी दल का संगठन बना रहा और उन्होंने स्थान-स्थान पर छोटे-छोटे मदरसे क़ायम करके अपना प्रचार प्रारम्भ कर दिया। इसी प्रकार का एक मदरसा सहारनपुर ज़िले के देवबन्द स्थान पर कायम किया गया और उसके प्रधानाचार्य ऐसे महानुभाव बनाए गए, जो गदर में सक्रिय भाग ले चुके थे। उधर पठान इलाकों में बसे हुए इस दल के विद्रोही बार-बार अंग्रेजी सीमा पर आक्रमण करते रहे और भारत-भर से उनके लिए धन-जन की सहायता जाती रही। सन् 1860, 1862, 1865 में इस अपराध में बहुत से मुसलमान पकड़े गए और उनको फाँसी तथा कालापानी का दंड मिला।

इस मुस्लिम क्रान्तिकारी दल में निस्संदेह धार्मिक उन्माद था क्योंकि उसकी प्रेरणा का स्रोत मुस्लिम दर्शन और परम्पराएँ थीं। किन्तु उनमें हिन्दुओं के विरुद्ध द्वेष नहीं था। तत्कालीन राजनीति धर्म पर ही आश्रित थी। बंगाल के क्रान्तिकारी जिस प्रकार गीता से मातृभूमि के लिए बलिदान हो जाने की प्रेरणा पाते थे और महाराष्ट्र के चाफेकर बन्धु गो-भक्षकों से देश को मुक्त करने का नारा लगाते थे, उसी प्रकार यह मुस्लिम क्रान्तिकारी भी 'जिहाद' के प्रचारक थे। यह लोग हिन्दुस्तान को 'दार-उल-हर्ब' मानते थे, जिसके अनुसार प्रत्येक मुसलमान का यह धार्मिक कर्त्तव्य हो जाता है कि या तो वह शासन के विरुद्ध विद्रोह करे या देश का परित्याग कर दें।

प्रथम विश्वयुद्ध और मुस्लिम क्रान्तिकारी

सन् 1884 में मदरसा देवबन्द के प्रधान आचार्य शेख महमूद उल हसन बनाये गए, जो 1857 के विद्रोह में भाग लेने वाले श्री रसीद अहमद गंगोही के शिष्य थे। इस समय देवबन्द का मदरसा इस्लाम के दर्शन की शिक्षा के लिए अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुका था ओर दूसरे मुस्लिम राष्ट्रों के बहुत-से युवक भी देवबन्द शिक्षा प्राप्त करने के लिए आने लगे थे। इन विदेशों से आने वाले विद्यार्थियों में अफ़गानिस्तान के विद्यार्थियों की संख्या अधिक होती थी। सरहद पार बसे हुए पठान क़बीलों के भी अनेक युवक देवबन्द में शिक्षा पाते थे। इन अफ़गान और पठान युवकों के द्वारा शेख महमूदउलहसन ने अपने क्रान्तिकारी दल का प्रसार काबुल और आज़ाद कबीलों में किया। सरहद का एक प्रभावशाली विद्वान् मौलवी तुरंग जई का हाजी इनका सहायक बना। एक दूसरा नव मुस्लिम उबैदुल्ला सिन्धी, जिसने इस मदरसे में ही शिक्षा पाई थी, शेख महमूदउलहसन का इस कार्य में दाहिना हाथ था। उस समय इन मुस्लिम क्रान्तिकारियों को अफ़गानिस्तान और सरहद पार बसे हुए आजाद पठान कबीले ही ऐसी सैनिक शक्ति दिखाई देते थे जिनकी सहायता से वे अंग्रेजों से भारत मुक्त करा सकते थे। मौलाना उबैदुल्ला सिन्धी ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है कि मदरसा देवबन्द का एक गोपनीय नियम यह भी था कि वह अफ़गानिस्तान की सरकार में अपना प्रभाव उत्पन्न करे। इसलिए सिन्धु नदी के उस पार से आने वाले विद्यार्थियों को यह शिक्षा दी जाती थी कि वे अपने कबीलों में जाकर उसके संगठन और व्यवस्था में केई हेर-फेर न करें और यदि वहाँ कोई रूढ़ि तथा परम्परा हो, जो धर्म की दृष्टि से उचित न हो, तो उसके विरुद्ध होने वाले आन्दोलनों में भाग न लें।

अफ़गानिस्तान की स्थिति

मुस्लिम क्रान्तिकारी दल की हलचलों और कार्य-नीति को समझने के लिए अफ़गानिस्तान की तत्कालीन स्थिति को भी संक्षेप में समक्ष लेना आवश्यक है। आधुनिक अफ़गानिस्तान के पिता अमीर अब्दुर्रहमान थे, जिन्होंने सबसे पहले अफ़गानिस्तान में एक दृढ़ केन्द्रीय सरकार की स्थापना की। अमीर अब्दुर्रहमान सन् 1880 में अंग्रेजों की सहायता से काबुल की गद्दी पर बैठे थे किन्तु मन ही मन अंग्रेजों से सशंकित रहते थे। अंग्रेज़ राजदूत को काबुल में रखने से उन्होंने यह कहकर इन्कार कर दिया था कि उसकी रक्षा की ज़िम्मेदारी लेने में वे असमर्थ हैं। अंग्रेजों ने उनसे यह इकरार करा लिया था कि काबुल की वैदेशिक नीति का निर्धारण सदैव ब्रिटिश सरकार करेगी। अमीर अब्दुर्रहमान के एक सहयोगी मुस्तफ़ा

फ़हमी साहब थे, जो उस समय भी अब्दुर्रहमान के साथ थे। जब वे रूस में निर्वासन का जीवन व्यतीत कर रहे थे, अफ़गानिस्तान का सम्पूर्ण राज-काज फ़हमी साहब के परामर्श से ही चलता था। अमीर अब्दुर्रहमान ने अपनी सैनिक शक्ति अत्यन्त दृढ़ कर ली थी।

'जमायते सियासिया'

सन् 1882 में मुस्तफा फ़हमी साहब ने काबुल में 'जमायते सियासिया' नामक एक संगठन बनाया और स्वयं इस संगठन के प्रधानमंत्री बने। साधारण जनता में राजनीतिक जागृति उत्पन्न करना इस संगठन का उद्देश्य था। अमीर अब्दुर्रहमान इस संगठन के सहायक और समर्थक थे और उनके सबसे बड़े पुत्र हबीबुल्ला खाँ भी, जो अपने पिता के समय से ही राज-काज में भाग लेने लगे थे, 'जमायते सियासिया' को बहुत महत्त्व देते थे। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि 'जमायते सियासिया' के अन्य कार्यकर्ता वे लोग रहे थे, जो देवबन्द में तालीम पा चुके थे।

'जमायते सियासिया' ने सबसे पहले यह माँग रक्खी कि काबुल की वैदेशिक नीति से अंग्रेजों का नियन्त्रण उठा लिया जाय। सन् 1898 में अमीर अब्दुर्रहमान खाँ के द्वितीय पुत्र नसरुल्ला खां लन्दन गए और उन्होंने ब्रिटिश सरकार के सम्मुख यह माँग बड़े जोरदार ढंग से पेश की। उनकी यह मांग ब्रिटिश सरकार ने अस्वीकार कर दी। इसके पश्चात 1 अक्टूबर, 1901 को अब्दुर्रहमान का देहान्त हो गया और हबीबुल्ला खां अफ़गानिस्तान के अमीर बने। सन् 1907 तक हबीबुल्ला खां बराबर जमायते सियासिया के सहायक रहे और अंग्रेजों से काबुल की वैदेशिक नीति पर से अपना नियन्त्रण हटा लेने का आग्रह करते रहे, जिस पर अंग्रेजों ने कोई ध्यान नहीं दिया।

सन् 1905 में बंग-भंग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ और इसी के आसपास पंजाब में किसानों का सरगर्म आन्दोलन फूट पड़ा, जिसने गदर पार्टी को जन्म दिया। अब अंग्रेजों को फिक्र हुई कि काबुल के अमीर को सन्तुष्ट किया जाय। परिणामस्वरूप अमीर हबीबुल्ला खां को सन् 1907 में भारत बुलाया गया। तत्कालीन लार्ड मिण्टो से अमीर की लम्बी-लम्बी मुलाकातें हुईं और उन मुलाकातों का परिणाम यह हुआ कि अफ़गानिस्तान वापस पहुँचते ही अमीर ने जमायते सियासिया का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। इस समय तक मुस्तफा फ़हमी की मृत्यु हो चुकी थी और उनके पुत्र अली फ़हमी जमायत के मंत्रि-पद पर थे। अली फ़हमी और उनके दो सहायकों को अमीर ने गिरफ्तार करके निर्वासित कर दिया। बहुत दिनों तक ये लोग अन्य मुस्लिम राष्ट्रों में पड़े रहे। इसके पश्चात् अमीर के छोटे भाई और तत्कालीन प्रधानमंत्री नसरुल्ला खां ने, जो जमायते सियासिया से हमदर्दी रखते थे, बड़ी कठिनाई से इनको काबुल आने की आज्ञा दिलवाई। वापस आते ही इन लोगों ने जमायते सियासिया का गुप्त संगठन प्रारम्भ कर दिया और इस प्रकार जमायते सियासिया एक अंग्रेज विरोधी गोपनीय क्रान्तिकारी संगठन के रूप में परिवर्तित हो गई।

सरहदी कबीले

देवबन्द के क्रान्तिकारी आचार्य महमूद उल हसन का इन सभी घटनाओं से बराबर सम्पर्क रहा। उनके अनेक शिष्य और सहपाठी इस संगठन के कर्ता-धर्ता थे। सरहद के आज़ाद क़बीलों में मदरसा देवबन्द के क्रान्तिकारियों का वह संगठन मौजूद था, जो सन् 1825 में भारत से हिज़रत कर गया था। उन विद्रोहियों की नई पीढ़ी ने भी इसी पथ को अपना लिया था। इसी समय तुरंगजई के हाजी ने धार्मिक मदरसों के रूप में पठान इलाके के अनेक स्थानों में अपने संगठन का जाल बिछाना शुरू किया। खान अब्दुल गफ्फार खां, जो बाद को कांग्रेस के बहुत बड़े नेता हुए और 'सरहदी गांधी' कहलाए, हाजी तुरंगजई के प्रधान शिष्य के रूप में इस काम में हाथ बँटा रहे थे। खान अब्दुल गफ्फार खां ने एक बार मौलाना हुसैन अहमद मदनी को बताया था कि इस जमाने में, अर्थात् 1910-11 में अनेक बार मुझे गोपनीय सन्देशों को लेकर हाजी तुरंगजई देवबन्द भेजते थे। आशय यह कि जिस इटली-तुर्की युद्ध में मेडिकल मिशन गया, उससे बहुत पहले ही मुस्लिम क्रान्तिकारी दल का संगठन भारत से काबुल तक फैल चुका था। यह भी उल्लेखनीय है कि जो मेडिकल मिशन तुर्की गया था, उसका नेतृत्व डॉ० मुख्तार अहमद अंसारी ने किया था, जो बाद में कांग्रेस के प्रमुख नेता बने। डॉ० अंसारी साहब भी शेख महमूद उल हसन के निकट सम्पर्क में थे। और उनको पूजनीय दृष्टि से देखते थे। सन् 1914-15 में शेख महमूदउलहसन जब मक्का गए और उनकी क्रान्तिकारी हलचलों का पता अंग्रेज सरकार को लगा तो डॉ० अंसारी साहब से तत्कालीन अंग्रेज अधिकारियों ने काफी पूछताछ की थी। एक बार तो डाक्टर अंसारी साहब की गिरफ्तारी की सम्भावना भी उत्पन्न हो गई थी। इस प्रकार वास्तविकता यह प्रतीत होती है कि यह मेडिकल मिशन देवबन्द के क्रान्तिकारी दल ने ही तुर्की की सरकार से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए भेजा था। इस मिशन में सरहद के कुछ शिक्षित पठान युवक भी थे, जिनमें से कुछ भारत वापस नहीं लौटे और आजीवन विदेशों में भारतीय स्वाधीनता के लिए कार्य करते रहे। इन युवकों में अब्दुर्रहमान का नाम उल्लेखनीय है, जिनके सम्बन्ध में यह समझा जाता है कि अंग्रेजों के इशारे पर उनकी हत्या कर दी गई। उनके एक भाई बहुत दिनों तक खान अब्दुल गफ्फार खां के प्राइवेट सैक्रेटरी रहे और अब भारत के वैदेशिक विभाग में किसी सम्माननीय पद पर हैं।

मौलाना उबैदुल्ला सिंधी

शचीन्द्र बाबू जब दिल्ली में क्रान्तिकारी कार्यों में संलग्न थे, उन दिनों ही दिल्ली में यह मुस्लिम क्रान्तिकारी दल भी अत्यन्त सक्रिय था। दिल्ली का महत्व समझते हुए सन् 1913 में ही मौलाना महमूद उल हसन ने एक मदरसा दिल्ली में भी कायम कर दिया था, जिसका नाम वजारुतुल मआरिफ था। मौलाना उबैदुल्ला सिन्धी उसके प्रधान आचार्य थे। डॉ० अंसारी और हकीम अजमल खां इसके सहायकों में थे। इससे पहले मौलाना सिन्धी ने देवबन्द में 'जमैयत-उल-अन्सार' नामक संस्था बनाई थी, जिसका उद्‌देश्य क्रान्तिकारी संगठन के प्रचार हेतु एक प्रकट संगठन बनाना था, किन्तु यह संस्था पारस्परिक मतभेदों के कारण शीघ्र ही भंग कर दी गई। इसी बीच अलीगढ़ की मुस्लिम यूनिवर्सिटी से विद्यार्थियों का एक दल देवबन्द में तालीम पाने के लिए भेजा गया। इस दल में अनीस अहमद नामक विद्यार्थी अंग्रेजों का जासूस था। मौलाना महमूद उल हसन और उबैदुल्ला सिन्धी बड़ी सतर्कता से अपना कार्य कर रहे थे, अतः अंग्रेजों को केवल देवबन्द आने-जाने वाले व्यक्तियों का पता ही अनीस अहमद द्वारा लगता रहा। बाद में अनीस अहमद सी०आई०डी० विभाग में बहुत ऊँचे पद पर पहुँचा और विदेशी सरकार की सहायता का उसे पर्याप्त पुरस्कार मिला। कहा जाता है कि अनीस अहमद द्वारा सरकार को भेजी गई रिपोर्टें सिडीसन कमेटी के सम्मुख भी प्रस्तुत की गई थीं और सिडीसन कमेटी की रिपोर्ट का सिल्क लैटर कान्सप्रेसी (रेशमी पत्रों का षड्‌यन्त्र) शीर्षक परिच्छेद में इन रिपोर्टों से बहुत सहायता ली गई है।

काबुल में आजाद हिन्द सरकार

प्रथम विश्व युद्ध की घोषणा होने के पश्चात् गदर पार्टी और बंगाल के

क्रान्तिकारी दलों की ही भांति मुस्लिम क्रान्तिकारी दल ने स्वतंत्रता संग्राम की एक योजना बनाई। इस योजना के अनुसार मौलाना उबैदुल्ला सिन्धी को काबुल भेजा गया। उबैदुल्ला साहब ने लिखा है कि एक दिन उस्ताद (मौलाना महमूद उल हसन) अकस्मात् बोले, 'उबैदुल्ला ! काबुल जाओ ! काबुल जाओ ! मैंने पूछा, 'क्यों ?' इस पर उस्ताद कुछ रंजीदा से होकर चुप हो गए। दूसरे दिन भी ऐसा ही हुआ। उस्ताद ने कहा, 'उबैदुल्ला ! काबुल जाओ।' उन्होंने पूछा, क्यों ? और उस्ताद फिर चुप। तीसरे दिन उस्ताद ने जब फिर काबुल जाने की बात कही, तो उबैदुल्ला साहब ने उत्तर दिया 'बहुत अच्छा' और काबुल जाने की तैयारी शुरू कर दी। उबैदुल्ला साहब के पास कुछ रुपया-पैसा था नहीं, अतः अपने एक शिष्य, शेख अब्दुर्रहीम ने जो आचार्य कृपलानी के सगे बड़े भाई थे और मुसलमान होकर इस क्रान्तिकारी कार्य में उबैदुल्ला के प्रमुख सहायक बन गए थे, अपनी लड़की और बीबी का जेवर बेचकर रुपया जुटाया। 15 अक्टूबर, 1915 को उबैदुल्ला काबुल पहुँचे, तो उनके पास केवल एक पौंड था। भारत से काबुल वे सिन्ध के रास्ते से गए थे और इस यात्रा में लगभग दो मास उनको लगे थे। उबैदुल्ला साहब के दो भतीजे भी उनके साथ थे। मौलाना महमूद उल हसन इतने अच्छे संगठनकर्ता थे कि उबैदुल्ला के लेखानुसार काबुल के अनेक प्रतिष्ठित राज्याधिकारियों को यह मालूम था कि वे किस काम के लिए भारत से भेजे गये हैं। 'जमायते सियासिया' का संगठन, जिसकी चर्चा हम ऊपर कर आए हैं, उनकी मदद के लिए तैयार था। इस योजना में धोखा केवल यह हुआ कि अफगानिस्तान के अमीर हबीबुल्ला खां अन्दर ही अन्दर अंग्रेजों से मिल चुके थे। उबैदुल्ला साहब तो इस आशा से भेजे गए थे कि अमीर उनकी पूरी तरह सहायता करेंगे। इसी आशा से एक 'एंग्लो-जर्मन-टर्किश' मिशन भी इन दिनों ही काबुल पहुंचा। इस मिशन में राजा महेन्द्रप्रताप, मौलवी बर्कतुल्ला आदि कुछ भारतीय, कुछ जर्मन और कुछ तुर्की के लोग थे। यह बात याद रखनी चाहिए थी कि मौलवी बर्कतुल्ला गदर पार्टी के सदस्य थे और इस मिशन को टर्की तथा जर्मन सरकार की ओर से काबुल के साथ मिलकर भारत पर आक्रमण करने की योजना बनाने का अधिकार दिया गया था। मौलाना उबैदुल्ला और उनके साथी या तो पूर्व योजना के अनुसार या वहीं की स्थिति के अनुसार इस मिशन के साथ मिलकर कार्य करने लगे। कहा जाता है कि जर्मन और टर्की सरकार से अमीर हबीबुल्ला खां को इस अवसर पर सहयोग देने के लिए पर्याप्त धन भी दिया गया। परिणामस्वरूप काबुल में अस्थायी आजाद हिन्द सरकार बनी, जिसके अध्यक्ष राजा महेन्द्रप्रताप, प्रधानमंत्री मौलवी बर्कतुल्ला और उबैदुल्ला सिन्धी होम मिनिस्टर बनाये गये। इसी समय लाहौर के कुछ मुसलमान विद्यार्थी इसी उद्देश्य से काबुल पहुँचे। इन विद्यार्थियों को अस्थायी आजाद हिन्द सरकार में विभिन्न पद दिए गए। इन विद्यार्थियों में से ही एक सज्जन जफरुलहसन उस समय (सन् 1919) में जनरल नादिर खां के प्राइवेट सैक्रेट्री थे, जब उन्होंने अफगानिस्तान सरकार की ओर से भारत पर आक्रमण किया था और जिसके फलस्वरूप होने वाली सन्धि में काबुल की वैदेशिक नीति पर से अंग्रेजों का नियंत्रण समाप्त हो गया था।

अमीर हबीबुल्ला खां का विश्वासघात

अमीर हबीबुल्ला खां ने वायदा किया था कि अस्थायी आजाद हिन्द सरकार द्वारा भारत पर आक्रमण करने के साथ ही वे भी भारत सरकार के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देंगे। किन्तु यह सब उनका छल था। उबैदुल्ला साहब के कथनानुसार भारतीय क्रान्तिकारियों के साथ मिलकर वे जितनी योजनाएं बनाते थे, उन सबकी सूचनाएं अंग्रेज सरकार को भेजते रहते थे। अमीर के छोटे भाई नसरुल्ला खां और उनके लड़के अमानुल्ला खां तथा जमायते सियासिया के नेता अवश्य हृदय से इनके साथ थे। काबुल के कमाण्डर इन चीफ जनरल नादिर खां की सहानुभूति इनके साथ थी। इसी का यह नतीजा था कि अमीर हबीबुल्ला इनको गिरफ्तार करने या इनका खुला विरोध करने का साहस नहीं कर सकते थे।

टर्की सरकार से सम्पर्क

उबैदुल्ला काबुल में जब अस्थायी आजाद हिन्द सरकार का काम चला रहे थे, उस समय मौलाना महमूद-उल-हसन मक्का पहुंचकर टर्की सरकार से साजबाज कर रहे थे। इसमें उनको बहुत कुछ सफलता भी मिली थी। उनको हेजाज के तत्कालीन गवर्नर गालिबपाशा से एक पत्र प्राप्त हो गया, जिसका उल्लेख सिडीसन कमेटी की रिपोर्ट में 'गालिबनामा' के नाम से किया गया है। गालिबपाशा का यह पत्र संसार-भर के मुसलमानों के नाम था जिसमें उनको अंग्रेजों के विरुद्ध हथियार उठाने के लिए उभारा गया था और मौलाना महमूद-उल-हसन को अपना विश्वासपात्र बताते हुए उनके कार्य में धन-जन से सहायता करने की अपील की गई थी। इस खत को मौलाना के एक साथी मुहम्मद मियां मन्सूर अंसारी मक्का से हिन्दुस्तान लाए और उसकी नकलें हिन्दुस्तान व सरहदी कबीलों में बांटते हुए काबुल जाकर उबैदुल्ला से जा मिले। इसी बीच मौलाना महमूद-उल-हसन को रुपए की आवश्यकता हुई, तो हिन्दुस्तान से मौलाना मसूद नामक सज्जन कुछ रुपया लेकर मक्का पहुंचे। मौलाना महमूद-उल-हसन उस समय मदीना चले गए थे, अतः रुपया ले जाने वाले निराश वापस लौट आए। सरकार भी इन लोगों पर कड़ी नजर रख रही थी और उसको कुछ सूचनाएं मिल रही थीं, अतः मौलाना मसूद बम्बई में गिरफ्तार कर लिये गए। पुलिस ने उनको इतना सताया कि वे बहुत-सी बातें उगल गए। उधर मक्का का हाकिम शरीफ हुसैन तुर्की सरकार से विद्रोह करके अंग्रेजों से मिल गया। अंग्रेजों ने तुरन्त उसके द्वारा मौलाना महमूद-उल-हसन और उनके साथियों को गिरफ्तार कर लिया। युद्ध की समाप्ति तक यह सभी लोग माल्टा में नजरबन्द रखे गए। इसके पश्चात् मौलाना महमूद-उल-हसन ने अनुभव किया कि गोपनीय कार्यों द्वारा राज्य क्रान्ति असम्भव है, अतः वे कांग्रेस में सम्मिलित हो गए। इसी के अनुसार खान अब्दुल गफ्फार खां भी कांग्रेस में आ गए। मुस्लिम विद्वानों की प्रमुख धार्मिक संस्था जमैयत उल उलेमा जो सदैव मुस्लिम लीग का विरोध करती रही और कांग्रेस के साथ रही, मौलाना महमूद-उल-हसन के अनुयायियों द्वारा स्थापित हुई। प्रसिद्ध राष्ट्रीय मुस्लिम शिक्षण संस्था जामिया मिल्लिया इस्लामिया की नींव भी मौलाना महमूद-उल-हसन ने ही रखी थी। मौलाना महमूद-उल-हसन का देहावसान 30 नवम्बर, 1920 को डॉ० अंसारी की कोठी पर दिल्ली में हुआ।

आजाद हिन्द सरकार के मिशन

काबुल की अस्थायी आजाद हिन्द सरकार उधर अपने काम में लगी रही। उसकी ओर से रूस सरकार के पास एक मिशन भेजा गया, जिससे उसका सहयोग आजाद हिन्द सरकार को मिल सके। रूस के जार के नाम जो पत्र भेजा गया था, वह एक सोने की प्लेट पर था, जिसे गदर पार्टी के एक सदस्य डॉ० मथुरासिंह और खुशीमुहम्मद लेकर गए थे। इस समय रूस के जार की सरकार अंग्रेजों की सहयोगी थी, अतः उसने मिशन को गिरफ्तार कर लिया, किन्तु ताशकन्द के गवर्नर के हस्तक्षेप करने पर इन दोनों सदस्यों को वापस काबुल भेज दिया गया।

कुछ दिन पश्चात् आजाद हिन्द सरकार की ओर से फिर एक मिशन जापान को और दूसरा टर्की भेजा गया। जापान जाने वाले मिशन में शेख अब्दुल कादिर

और डॉ० मथुरा सिंह थे और टर्की जाने वाले मिशन में अब्दुलवारी तथा डॉ० शुजाउल्ला थे। ये दोनों ही मिशन गिरफ्तार करके अंग्रेजों के सुपुर्द कर दिये गए। अंग्रेज इन चारों क्रान्तिकारियों को भारत ले आए। इन क्रान्तिकारियों में एक अब्दुलवारी सर मुहम्मद शफी के रिश्तेदार थे। सरकार ने सर मुहम्मद शफी के द्वारा इन लोगों पर यह जोर डलवाया कि अगर वे तमाम रहस्य लिखित रूप में सरकार को प्रकट कर दें, तो उनको क्षमा प्रदान की जा सकती है। डॉ० मथुरासिंह ने इसे अस्वीकार कर दिया तो वे 27 मार्च, 1917 को लाहौर जेल में फांसी पर चढ़ा दिये गये। शेष व्यक्तियों ने सरकार की शर्त स्वीकार कर ली और सभी विवरण अंग्रेज अधिकारियों को लिखकर दे दिया। सरकार ने इनको न केवल क्षमा प्रदान की बल्कि इस देश-द्रोह के पुरस्कार में उनको उच्च पद पर नौकरियां भी दे दीं।

रेशमी पत्र

मुस्लिम क्रान्तिकारी दल के सम्बन्ध में अब केवल उन 'रेशमी पत्रों' की बात कहनी शेष रह जाती है, जिनके नाम से सिडीसन कमेटी ने इस संगठन की अपनी रिपोर्ट में चर्चा की है। रिपोर्ट में कहा गया है कि अगस्त सन् 1916 में यह षड्यन्त्र उद्घाटित हुआ, जो सरकारी कागजात में 'सिल्क लैटर्स' कहा गया है। यह पत्र पीले रेशमी कपड़ों पर बहुत साफ और सुन्दर अक्षरों में लिखे गए थे। इनके साथ मौलाना महमूद-उल-हसन के नाम मुहम्मद मियां अंसारी का भी एक पत्र था, जिसमें उन्होंने अपनी कारगुजारियों का पूरा विवरण दिया था। आजाद हिन्द सरकार के खतों में सरकार के संगठन की संपूर्ण स्थिति और उसके पदाधिकारियों के नाम थे। इसके अतिरिक्त एक 'ईश्वरीय सेना' बनाने की योजना थी, जिसमें भारतीय मुस्लिम नौजवान भरती किये जाते थे। मौलाना महमूद-उल-हसन इसके प्रधान सेनापति नियुक्त किये गए थे।

मौलवी उबैदुल्ला साहब ने यह 'रेशमी पत्र' अब्दुलहक नामक व्यक्ति को दिये थे कि वह इनको शेख अब्दुर्रहीम (आचार्य कृपलानी के बड़े भाई) तक पहुंचा दे। यह अब्दुलहक साहब एक नव मुस्लिम थे और जिहाद के जोश में लाहौर से भागकर काबुल पहुंचे थे। उन्होंने भारत आकर यह पत्र अपने पिता खानबहादुर अल्लानवाज खां के सुपुर्द कर दिया। राजभक्ति के जोश में अल्लानवाज खां इन खतों को पंजाब के गवर्नर सर माइकेल ओ डायर के पास ले गए और इस प्रकार सरकार को यह सम्पूर्ण योजना ज्ञात हो गई। इसके पश्चात् शेख अब्दुर्रहीम भागकर टर्की पहुंच गए और बहुत दिनों तक भारतीय स्वाधीनता के लिए कार्य करते हुए वहीं उनका देहान्त हो गया।

आजाद हिन्द सरकार द्वारा भारत पर आक्रमण

काबुल की आजाद हिन्द सरकार ने इसके बाद भारत पर आक्रमण करने की योजना बनाई और सरहद के आजाद कबीलों में से इसके लिए लगभग छः हजार सैनिक एकत्रित किए। जर्मनी और टर्की की सरकार को भी इस आक्रमण-योजना की सूचना दी गई और बताया तो यह जाता है कि जर्मन सैनिकों की एक टुकड़ी भी इनकी सहायता को क़ाबुल भेजी गई। किन्तु जब आज़ाद हिन्द सरकार के छः हज़ार सैनिक सरहद पर अंग्रेज सरकार से मोर्चा जमाये हुए थे, तभी फ्रांस के रणक्षेत्र में जर्मनी का पतन हो गया और उसे सन्धि के लिए विवश होना पड़ा। अंग्रेजों के हाथ इससे बहुत मज़बूत हो गए और आज़ाद हिन्द सरकार के सैनिकों की स्थिति बहुत कमज़ोर हो गई। इन सैनिकों में से बहुत-से व्यक्ति गोलियों से मारे गए। कुछ पकड़कर फाँसी पर चढ़ा दिये गए और कुछ विदेशों में ही भटक-भटककर मर गए। इसके बाद आज़ाद हिन्द सरकार और फ़ौज तोड़ दी गई और यह विराट प्रयास देशभक्तों की आहुतियों की कहानी मात्र बनकर समाप्त हो गया।

हबीबुल्ला खाँ की हत्या

क़ाबुल में भारतीय क्रान्तिकारियों की इस असफलता का मुख्य कारण मौलाना उबैदुल्ला सिन्धी ने तत्कालीन अमीर हबीबुल्ला खाँ को बताया है। डॉ० भूपेन्द्रनाथ दत्त आदि क्रान्तिकारियों ने, जो उस समय बर्लिन में काम कर रहे थे, इसका कारण यह बताया कि जर्मनों ने अमीर को जितनी सहायता करने का आश्वासन दिया था, वह पूरा नहीं हुआ। किन्तु हमें मौलाना उबैदुल्ला की बात अधिक प्रामाणिक जान पड़ती है। इन सब घटनाओं के कुछ ही दिन पश्चात् 'जमायते सियासिया' के एक सदस्य द्वारा अमीर हबीबुल्ला की राजनीतिक हत्या भी इस बात को प्रमाणित करती है कि अमीर अंग्रेजों से मिले हुए थे।

अफ़गानिस्तान का भारत पर आक्रमण

काबुल के अंग्रेज-अमीर विरोधी राजनीतिक संगठन में भारत से गये हुए मुस्लिम क्रान्तिकारियों का भारी प्रभाव था, यह तो स्पष्ट ही है। अमीर हबीबुल्ला के छोटे भाई नसरुल्ला खाँ और पुत्र अमानुल्ला खाँ भी अमीर के विरोधी थे। यह इसी से प्रकट है कि काबुल की आज़ाद हिन्द सरकार के भंग होने के पश्चात् उसके जो सदस्य काबुल सरकार द्वारा गिरफ्तार कर लिये गए या निर्वासित कर दिये गए, अमीर की हत्या के पश्चात् वे सभी न केवल मुक्त हो गए, बल्कि उनमें से अनेक को उच्च सरकारी पद भी दिये गए। सम्भवतः अमीर की हत्या की योजना में भारतीय क्रान्तिकारियों का भी हाथ था।

अमीर हबीबुल्ला खाँ की हत्या के संदेह में जनरल नादिर खाँ भी गिरफ्तार किये गए थे, जो उस समय अफ़गानिस्तान की सेना के उप-सेनापति थे। मौलाना उबैदुल्ला सिन्धी के जनरल नादिर खाँ से बहुत अच्छे सम्बन्ध थे किन्तु वे प्रकट रूप से जनरल नादिर खाँ से बहुत कम मिलते थे। अमीर हबीबुल्ला खाँ के पश्चात् जब उनके पुत्र अमानुल्ला खाँ गद्दी पर बैठे, तो जनरल नादिर खाँ को रिहा कर दिया गया और उनके एक भाई हाशम खान को एक उच्च सरकारी पद पर प्रतिष्ठित कर दिया गया।

भारत की आजाद हिन्द सरकार के प्रधान राजा महेन्द्र प्रताप अमानुल्ला खाँ के प्रगाढ़ मित्र थे। मौलवी उबैदुल्ला सिन्धी को भी अमानुल्ला खाँ बहुत मानते थे। उधर जनरल नादिर खाँ के प्राइवेट सैक्रेटरी मौलाना जफर हुसैन थे, जो आज़ाद हिन्द सरकार के एक महत्वपूर्ण पद पर थे। इस पृष्ठभूमि में जब हम गद्दी पर बैठते ही अमानुल्ला खाँ को भारत पर चढ़ाई करते देखते हैं और साथ ही सरहद पर बसे आज़ाद कबीलों और तुरंगजई के हाजी साहब को इस युद्ध में अफ़गानिस्तान की मदद करते हुए पाते हैं, तो हम समझ सकते हैं कि काबुल स्थित भारत के क्रान्तिकारी अभी तक अपने कार्य में लगे हुए थे और इस आक्रमण की योजना में उनका महत्वपूर्ण हाथ था।

सन्धि

इस अवसर पर अंग्रेजों ने भारी कूटनीतिज्ञता दिखाई और अफ़गानिस्तान सरकार की महत्वपूर्ण शर्तें स्वीकार करके समझौता कर लिया। इस आक्रमण के समय अफ़गान फौजों की कमान स्वयं जनरल नादिर खाँ कर रहे थे। यह आक्रमण 29 मई सन् 1919 को हुआ और 8 अगस्त, 1919 को अंग्रेजों की अफ़गानिस्तान से सन्धि हो गई। इस सन्धि के सम्बन्ध में ब्रिटेन के राजनीतिज्ञ आर्नल्ड टायवनी

ने कहा था, "अमीर ने अपनी पराजय के पुरस्कार में, जो कुछ वह चाहता था, पा लिया और भारत सरकार को अफ़गानिस्तान की परराष्ट्र नीति पर से, जिस पर उसका चालीस वर्ष से अधिकार था, अपना हाथ हटाना पड़ा।" अंग्रेजों ने अपनी ओर से इस सन्धि के समय एक यह शर्त भी अफ़गानिस्तान से स्वीकार करा ली थी कि मौलवी उबैदुल्ला आदि को काबुल में राजनीतिक कार्य नहीं करने दिया जायेगा। इस प्रतिबन्ध से विवश मौलवी उबैदुल्ला काबुल में सभी प्रकार की सुविधाएँ होते हुए भी 22 अक्टूबर, 1922 को रूस चले गए। इस आक्रमण और सन्धि ने उनके सम्मुख यह तथ्य प्रकट कर दिया था कि अफ़गानिस्तान जैसा छोटा देश अंग्रेज सरकार के सम्मुख अधिक दिनों तक नहीं ठहर सकता।

बलूच और क्रान्तिकारी

श्री शचीन्द्र ने अपनी पुस्तक के द्वितीय भाग में 'बर्मा की कहानी' शीर्षक अध्याय के अन्तर्गत बलूच सेना के विद्रोह की झाँकी दी है, जिसमें सैकड़ों बलूच सैनिकों और उनके अफ़सरों को भारी दण्ड सहना पड़ा। इस संदर्भ में कई बातें ध्यान में रखने योग्य हैं। प्रथम तो यह कि बलूचिस्तान की सीमाएँ सरहदी पठानों के प्रदेश की सीमाओं में लगी हुई हैं, जिनकी अंग्रेज विरोधी परम्पराओं और भावनाओं पर हम ऊपर प्रकाश डाल चुके हैं। इसके अतिरिक्त मदरसा देवबन्द के क्रान्तिकारियों का संगठन सिन्ध में भी था और वहाँ अनेक छोटे-छोटे मदरसे इन लोगों ने स्थापित कर रक्खे थे, जिनके द्वारा निरन्तर अंग्रेज विरोधी प्रचार होता रहता था। यह भी अब प्रकट हो गया है कि बर्मा में बलूच सेना ने जिस गदर पार्टी के कार्यकर्ताओं के प्रोत्साहन पर विद्रोह किया था, उसी गदर पार्टी के अनेक कार्यकर्ता ईरान के रास्ते बलूच प्रदेश की सीमा पर जा पहुँचे थे और उन्होंने एक बड़े बलूच सरदार जिहान खां को अपनी ओर मिला लिया था। इन लोगों ने इस बलूच प्रदेश में आजाद हिन्द सरकार बनाई थी और बलूचियों की एक सेना भी संगठित कर ली थी, जिससे अंग्रेज सेनाओं की अनेक झड़पें हुई थीं। इसके बाद अंग्रेजों ने बिलोचों के अमीर को अपनी ओर मिला लिया और फिर उसी ने क्रान्तिकारी बलूच सेना पर आक्रमण किया। परिणामस्वरूप बलूच सेना भंग हो गई और क्रान्तिकारियों को वहाँ से बड़ी कठिन स्थिति में भागना पड़ा। कुछ क्रान्तिकारी अंग्रेजों के हाथों में भी पड़ गए, जो वहीं गोलियों से उड़ा दिये गए। इतिहासज्ञों के लिए यह अन्वेषण का विषय है कि ईरान-बलूचिस्तान की सीमा पर होने वाली इन हलचलों का बर्मा के बलूच-विद्रोह से कुछ सम्बन्ध था या नहीं।

अली अहमद सिद्दीक़ी

'बर्मा की कहानी' शीर्षक अध्याय में ही श्री शचीन्द्र ने अली अहमद सिद्दीक़ी के सम्बन्ध में कुछ पंक्तियाँ लिखी हैं। इन श्री अली अहमद सिद्दीक़ी से सन् 1950-51 में इन पंक्तियों का लेखक भी मिला था। श्री सिद्दीक़ी उस समय इलाहाबाद म्यूनिसिपैलिटी के वाटरवर्क्स विभाग में थे। उनसे बात करने पर मालूम हुआ कि वे मैडिकल मिशन के साथ टर्की पहुँचते ही क्रान्तिकारी दल में दीक्षित हो गए थे। श्री शुएल कुरैशी, जो भोपाल के और बाद में बड़े प्रतिष्ठित राष्ट्रीय मुस्लिम नेता बने, उसके सहयोगी थे। एक मज़ेदार बात उन्होंने यह बताई कि जब वे कुछ ज़रूरी और गोपनीय कागज़ात लेकर मिस्र से भारत को चले, तो जर्मन सरकार के एक गुप्तचर ने उनको चेतावनी दी कि भारत पहुँचते ही आप गिरफ्तार कर लिए जाएँगे। श्री सिद्दीक़ी इससे बड़े परेशान हुए, क्योंकि जो कागज़ात उनको भारत पहुँचाने थे, उनको वे किसी भी प्रकार नष्ट नहीं करना चाहते थे और न अंग्रेजों के हाथों में पड़ने देना चाहते थे। तभी जहाज़ में उनको एक मुस्लिम मिला, जो प्रतिवर्ष भीख माँगने के लिए मलाया आदि देशों में घूमा करता था। श्री सिद्दीक़ी ने उस फ़कीर को समझाया कि यदि वह भारत में घूमे तो उसे अधिक धन मिल सकता है। श्री सिद्दीक़ी ने उस फ़कीर को यह भी बताया कि वे एक ज़रूरी काम से तुरन्त मलाया पहुँचना चाहते हैं। अतः फ़कीर यदि उनसे टिकट परिवर्तन कर ले और उनका सामान भारत में उनके घर पहुँचा देने का वायदा करे, तो वह उसके टिकट से मलाया चले जाएँ और फ़कीर शायद सामान के लालच से तैयार हो गया और उसने टिकट बदल लिया। सिद्दीक़ी साहब ने कागजात तो अपने पास रख लिए और अपना तमाम सामान फ़कीर के सुपुर्द कर दिया। इसके बाद वह मलाया जा पहुँचे। फकीर बम्बई पहुँचते ही गिरफ़्तार हो गया और वर्षों पश्चात् जब सिद्दीक़ी साहब भारत के किसी जेल में थे, वह फ़कीर एक राजनीतिक क़ैदी के रूप में ही सिद्दीक़ी साहब से मिला। क्रान्तिकारी आन्दोलन के इतिहास में ऐसी मनोंरंजक घटनाएँ भी अनेकों हुई हैं।

श्री सिद्दीक़ी साहब ने बताया कि उनके दल में हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न का कोई स्थान नहीं था। सभी देश की स्वाधीनता के दीवाने थे और टर्की सरकार की राज्य-शक्ति का सहारा पाकर भारतीय फ़ौजों के विद्रोह द्वारा अंग्रेजों से मुक्ति का स्वप्न देखते थे। मलाया और बर्मा में उनके संगठन का पर्याप्त विस्तार हो गया था किंतु कुछ भारतीयों ने गद्दारी करके सम्पूर्ण भेद अंग्रेजों को बता दिया और भारतीय क्रान्तिकारी समय से पूर्व ही गिरफ्तार कर लिये गए। सेनाओं पर भी भारी दमन किया गया, जो सर्वथा गोपनीय रक्खा गया। सैकड़ों सिपाही और अफ़सर चुपचाप मौत के घाट उतार दिये गए, जिससे उनकी छूत दूसरी फ़ौजों को भी न लग जाये।

मुखबिर कुमुदनाथ मुखर्जी

श्री शचीन्द्र ने इन गद्दारों में बैंकाक के एक बंगाली वकील साहब का उल्लेख किया है किन्तु उनका नाम नहीं दिया है। पता लगता है कि इन बंगाली वकील साहब का नाम कुमुदनाथ मुखर्जी था। यह वकील साहब, जो किसी समय गदर पार्टी के कार्यकर्ताओं से बड़ी देशभक्ति की डींगें हांकते थे, उस रुपये को हजम कर जाने की खातिर जो बैंकांक के जर्मन कौंसिल ने इनके द्वारा बंगाल के क्रान्तिकारियों को भेजा था, अंग्रेजों से जा मिले। उनके द्वारा शंघाई, स्याम और बर्मा में होने वाली क्रान्तिकारी योजनाओं का आभास भारत सरकार को मिल गया और इसीलिए वह सब कुछ नहीं हो सका, जिसे श्री सिद्दीक़ी इत्यादि करना चाहते थे। पंजाब के कृपालसिंह की भांति इन मुखर्जी ने सब गुड़-गोबर कर दिया।

बंगाल में विद्रोह की तैयारी

रहस्योद्घाटन के भय से श्री शचीन्द्र यह बात भी बचा गए हैं कि जब उत्तर भारत में श्री रास बिहारी और गदर पार्टी के सदस्य इतने विराट् विद्रोह की तैयारी में जुटे हुए थे, तब बंगाल के क्रान्तिकारी क्या कर रहे थे ? श्री मन्मथनाथ गुप्त ने अपनी पुस्तक 'भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास' में एक अन्य क्रान्तिकारी श्री पाकड़ासी की एक पुस्तक का निम्न उद्धरण दिया है, जो इस सम्बन्ध में प्रकाश डालता है और यह प्रकट करता है कि बंगाल में उन दिनों किस प्रकार की तैयारी चल रही थी। श्री पाकड़ासी लिखते हैं, "नेतागण ढाका से लेकर लाहौर तक विद्रोह की तैयारी में लगे हुए थे। ढाका में उन दिनों सिख सेना थी। लाहौर के षड्यन्त्रकारी सिख सैनिकों ने ढाका के सिखों के साथ सम्पर्क स्थापित करने के लिए परिचय-पत्र भेज दिए। ढाका के क्रान्तिकारी नेता अनुकूल चक्रवर्ती उन पत्रों को लेकर ढाका के सिख सैनिकों से मिले।.... सिख सैनिक विद्रोह की बात

सुनकर शिरकत करने के लिए उत्सुक हो गए।"

"मैमनसिंह और राजशाही के सुरूल नामक जंगल में क्रान्तिकारी संध्या के बाद क़वायद करते थे। आक्रमण और रणकौशल सीखने के लिए सब लोग प्रयास करने लगे। जिलों में बंदूकें चुराने की होड़ मच गई। चारों तरफ़ अफ़वाह फैला दी गई कि अब की बार मैट्रिक्यूलेशन और विश्वविद्यालय की दूसरी परीक्षाएँ नहीं होंगी।" श्री गुप्त ने अपने ग्रन्थ में एक अन्य स्थान पर लिखा है, "बंगाल के क्रान्तिकारी समझते थे कि संख्या की दृष्टि से उनके साथ इतने काफ़ी आदमी हैं, जो बंगाल की फ़ौजों को समझ ले सकते हैं, किंतु वे बाहर से आने वाली फ़ौजों से डरते थे। इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखकर क्रान्तिकारियों ने यह निश्चय किया कि बंगाल में आने वाली तीन मुख्य रेलों को, उनके पुलों को उड़ाकर बेकार कर दिया जाय। यतीन्द्रनाथ के ऊपर मद्रास से आने वाली रेल का भार दिया गया, वे बालासोर से इस काम को अंजाम देने वाले थे। भोलानाथ चटर्जी बी० एन० आर० का भार लेकर चक्रधरपुर चले गए। सतीश चक्रवर्ती ई० आई० आर० का पुल उड़ाने के लिए गए। नरेन चौधरी और फणीन्द्र चक्रवर्ती को यह काम सौंपा गया कि वे हटिया जाएँ। वहाँ एक जत्था इकट्ठा होने वाला था। हटिया से वे इस जत्थे की सहायता से पूर्व बंगाल के ज़िलों पर क़ब्ज़ा करने वाले थे, और वहाँ से वे कलकत्ता पर चढ़ आने वाले थे। नरेन भट्टाचार्य और विपिन गांगुली के नेतृत्व में कलकत्ता दल पहले तो कलकत्ता के आस-पास अस्त्र-शस्त्र तथा अस्त्रागारों पर क़ब्ज़ा करने वाला था, फिर फोर्ट विलियम पर धावा बोलने वाला था तथा कलकत्ता पर अधिकार जमाने वाला था। 'मावेरिक' जहाज पर आने वाले जर्मन अफ़सरों पर यह भार था कि वे पूर्व बंगाल में रहें, वहाँ फ़ौजें इकट्ठी करें, फिर बाक़ायदा उन्हें सैनिक शिक्षा दें।"

रासबिहारी का भारत-त्याग

देश-विदेशों में होने वाली यह विराट् तैयारियाँ असफल हो गईं और श्री रासबिहारी बोस को भारत छोड़कर बाहर जाना पड़ा। श्री शचीन्द्र ने लिखा है कि अप्रैल, 1915 में श्री रासबिहारी ने भारत से प्रस्थान किया। यहाँ कुछ स्मृतिभ्रम मालूम होता है क्योंकि श्री रासबिहारी ने अपने एक लेख में भारत छोड़ने की तिथि 12 मई, 1915 बताई है। श्री रासबिहारी ने एक जापानी जहाज पर पी०एन० टैगोर के नाम से यह यात्रा की। उन दिनों श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर के जापान जाने की सूचनाएँ अखबार में निकली थीं, अतः श्री रासबिहारी ने कुछ ऐसा प्रदर्शित किया कि वे श्री रवीन्द्रनाथ के ही परिवार के हैं और उनकी यात्रा का प्रबन्ध करने के लिए जापान जा रहे हैं। उस समय श्री रासबिहारी के सिर पर एक लाख का इनाम था। वे पकड़े जाते तो अवश्य ही अंग्रेज उनको फाँसी पर चढ़ा देते। पर वे सकुशल जापान जा पहुँचे। उनके जापान पहुँच जाने पर अंग्रेजों को जब यह सब ज्ञात हुआ तो उसने जापान सरकार पर यह दबाव डाला कि वह श्री रासबिहारी को गिरफ्तार करके अंगरेजों के हवाले कर दे। जापान सरकार इसके लिए तैयार भी हो गई किन्तु रासबिहारी के जापानी मित्रों ने ऐसा नहीं होने दिया। अनेक दिनों तक जापान में श्री रासबिहारी को भारत से भी अधिक छिपकर रहना पड़ा। कुछ दिनों पश्चात् यह बाधाएँ दूर हो गईं और श्री रासबिहारी जापान के नागरिक बन गए।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय श्री रासबिहारी पुनः कार्यक्षेत्र में उतरे। जैसे ही जापान ने अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध घोषणा की, श्री रासबिहारी ने जापान स्थित भारतीयों का एक संगठन बनाकर भारत की स्वाधीनता के लिए प्रयास प्रारम्भ किया। गदर पार्टी के कुछ कार्यकर्ता और बंगाल क्रान्तिकारी दल के सदस्यों ने इस कार्य में श्री रासबिहारी की सहायता की। आजाद हिन्द फ़ौज के प्रारम्भिक संगठन में उन्होंने महत्वपूर्ण भाग लिया था। इसके पश्चात जब श्री सुभाष चन्द्र बोस जापान जा पहुँचे, तो रासबिहारी ने नेतृत्व उनके हाथों में सौंप दिया। जनवरी सन् 1945 में श्री रासबिहारी का टोकियो में देहान्त हो गया।

विदेशों में भारतीय विप्लववादी

श्री शचीन्द्र ने विदेशों में भारतीय विप्लववादियों के कार्यों का वर्णन भी अपनी पुस्तक के द्वितीय भाग के अन्तर्गत किया है। इस अध्याय में उनके कार्य की एक अति संक्षिप्त झाँकी ही आ सकती थी और फिर ऐसी बातें न लिखने की विवशता भी थी, जो उस समय तक प्रकट नहीं हुई थी और जिनकी सूचना से अंग्रेज शासकों को लाभ पहुँच सकता था। वास्तव में, जो भारतीय देशभक्त विदेशों में कार्य करते रहे, उनका लेखा-जोखा तैयार करना अति दुस्तर कार्य है। उनका सम्पूर्ण कार्य अत्यन्त गोपनीय होता था। किसी भी सरकार की प्रामाणिकता उनके पास थी नहीं। अपने परिवार और साथियों से दूर रहकर नितान्त अभाव-ग्रस्त अवस्था में इनको कार्य करना पड़ता था। अनेक भारतीय और विदेशी गुप्तचर इनको घेरे रहते थे और सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि एक दिन जिस राष्ट्र को वह अंग्रेजों का शत्रु समझकर वहाँ आश्रय ग्रहण करते थे तथा अपना केन्द्र बनाते थे, वही किसी दिन भी आन्तरिक अथवा विदेशी राजनीतिक उलट से विवश होकर अंग्रेजों का मित्र और इनका शत्रु बन जाता था। ये लोग हजारों की संख्या में थे, जिनमें से अधिकतर वहीं, अपनी मातृभूमि से दूर, काल कवलित हो गए। अनेकों को विदेशों के कारावास में भी भयानक यंत्रणाएँ सहन करनी पड़ीं। फिर भी इनमें से अधिकांश ब्रिटिश सरकार द्वारा उत्पन्न की गई बाधाओं और उसके द्वारा दिए गए प्रलोभनों को जीतकर अपने मार्ग पर आरूढ़ रहे। न जाने कब वह समय आएगा, जब इन लोगों के कार्यों का ब्यौरा उनके सन्मुख आ सकेगा, जिनकी स्वतन्त्रता के लिए उन्होंने ऐसे कष्ट सहन किए थे। अभी कुछ दिन पहले हमारी सरकार इस कार्य में प्रवृत्त होती दिखाई दी थी। केन्द्र और राज्यों में इसके लिए कमेटियाँ भी बनीं। बजट भी मंजूर हुए। कुछ कार्य आगे बढ़ा भी किन्तु फिर पता नहीं लगा कि क्या हुआ ? इलाहाबाद की हिन्दुस्तानी कल्चर सोसाइटी ने भी एक बार इस काम को हाथ में लिया था, जिसका एक कार्यकर्ता इन पंक्तियों का लेखक भी था। यह तो काम में हाथ डालने के बाद मालूम हुआ कि सरकार के अतिरिक्त करोड़ों रुपया व्यय किए बिना कोई दूसरा संगठन यह कार्य प्रामाणिक रूप से नहीं कर सकता।

यह बात ध्यान में रखने की है कि विदेशों में कार्य करने वाले भारतीय विप्लववादियों में अनेक असाधारण बौद्धिक क्षमता के व्यक्ति थे। इनमें से कुछ तो अन्य राष्ट्रों में उच्च सरकारी पदों पर पहुँच गए। ये लोग यदि चाहते और इस क्रान्ति मार्ग पर आरूढ़ न होते तो अपने देश में भी पर्याप्त यश, मान और धन अर्जित कर सकते थे। फिर भी मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए उन्होंने कष्टों और यातनाओं से भरे हुए मार्ग को ही चुना और अपने लक्ष्य के लिए शहीद हो गए। हमारे देश के लिए यह कितनी वेदनात्मक स्थिति है कि आज उनमें से अधिकांश का नाम भी हम नहीं जानते। यही नहीं, बल्कि जिन लोगों ने विदेशों में रहते समय साहित्य रचना की, उनका प्रकाशित साहित्य भी हमारे पास उपलब्ध नहीं है। अब पता लगा है कि श्री रासबिहारी बोस ने जापानी भाषा में सात ग्रन्थ लिखे हैं। मौलवी बर्कतुल्ला, श्री वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय, मैडम कामा, श्यामजी कृष्ण वर्मा, ला० हरदयाल इत्यादि अनेकों ने भी समय-समय पर ग्रन्थ, पुस्तिकाएँ, लेख इत्यादि लिखे, इन लोगों ने अनेक पत्र भी निकाले, आज भारतीयों के लिए उसमें से एक भी तो उपलब्ध

नहीं है। भारत सरकार चाहे तो अपने दूतावासों के द्वारा यह कार्य करा सकती है। अनेक विदेशी राजनीतिक महानुभावों ने अपनी पुस्तकों में इन भारतीय क्रान्तिकारियों का प्रसंगवश जो विवरण दिया है, हमारे दूतावास उनका संग्रह भी कर सकते हैं, पर यह सब नहीं हो रहा और न इसकी माँग ही की जा रही है। शायद किसी देश के लिए अपने देशभक्तों के प्रति कृतघ्नता की यह चरम सीमा है। इतिहास की क्षति तो है ही।

विदेशों में भारतीय जासूस

अंग्रेज सरकार इन लोगों पर कितनी कड़ी नजर रखती थी, इसका एक उदाहरण उर्दू के प्रसिद्ध लेखक काजी अब्दुल गफ्फार खां ने मुझे सुनाया था। उन्होंने बताया कि एक बार वे डॉ० अंसारी और हकीम अजमल खाँ के साथ पेरिस में थे। वहाँ किसी के द्वारा इन लोगों को सन्देश मिला कि श्री एम० एन० राय की पत्नी एलेन राय इनसे भेंट करना चाहती हैं। भेंट सर्वथा गुप्त होनी थी, अतः पेरिस के एक भारतीय मुस्लिम व्यापारी का घर इसके लिए निश्चित किया गया। उस व्यापारी की क्राकरी की एक बड़ी दूकान थी। भारत की स्वाधीनता और राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति उसकी निष्ठा देखकर ही उसका स्थान विश्वासपात्र समझा गया। फिर भी सावधानी के लिए न तो उसे एलेन राय का नाम बताया गया और न उसे वार्ता में सम्मिलित ही किया गया। इतना ही नहीं बल्कि वार्ता के समय उसके परिवार का कोई भी व्यक्ति मकान में नहीं था। निश्चित समय पर एलेन राय आईं और वार्ता करके चली गईं। इसके पश्चात् ये लोग, (डॉ० अंसारी, हकीम अजमल खां, काजी अब्दुल गफ्फार) टर्की गए। टर्की देखने की इच्छा जताकर वह मुस्लिम व्यापारी भी इनके साथ हो गया। वहाँ ये लोग राजकीय अतिथि माने गए। टर्की सरकार का एक बड़ा अधिकारी इनकी सेवा में नियुक्त हुआ। उस अधिकारी ने एक दिन काजी अब्दुल गफ्फार को बताया कि उनके साथ आया हुआ पेरिस का भारतीय व्यापारी अंग्रेजों का जासूस है और इसीलिए सुरक्षा की दृष्टि से मुस्तफा कमालपाशा से उनकी भेंट नहीं कराई गई। इतना ही नहीं, बल्कि जब काजी साहब भारत लौटे तो भारत सरकार के एक उच्च गुप्तचर अधिकारी, शायद खानबहादुर असगर हुसैन ने उस वार्ता को अक्षरशः सुना दिया जो एलेन राय और इन लोगों के बीच हुई थी। इस घटना से कई बातें सामने आती हैं। एक तो यह कि ब्रिटिश सरकार ने अपने जासूसों को विदेशों में भारतीय व्यापारियों के रूप में भी बसा रक्खा था और उन पर अनगिनत रुपया खर्च करती थी। फिर दूसरे देशों की सरकारें भी अपने जासूसों द्वारा इन भारतीय जासूसों की गतिविधियों पर नजर रखती थीं। तीसरी बात यह कि जो वार्ता इतनी सावधानी और गोपनीयता के साथ हुई, वह भी या तो कमरे में छिपे किसी यंत्र के द्वारा अथवा अन्य किसी प्रकार सरकार को ज्यों-की-त्यों ज्ञात हो गई। इससे हम विदेश-स्थित भारतीय क्रान्तिकारियों की कठिनाइयों का किंचित् अनुमान लगा सकते हैं।

श्री जवाहरलाल नेहरू ने विदेशी सरकारों के जासूसों के सम्बन्ध में एक दिलचस्प घटना का अपनी आत्मकथा में उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है, "मेरे एक अमेरिकन दोस्त उन दिनों पेरिस में रहते थे। उनसे एक दिन फ्रांस की खुफिया पुलिस के एक अधिकारी मिलने आए। वह महज दोस्ताना तरीके पर कुछ मामलों की बाबत पूछने आए थे। जब वह साहब अपनी बातें पूछ चुके तो उन अमेरिकन से बोले, 'आपने मुझे पहचाना या नहीं, मैं तो आपसे पहले भी मिल चुका हूँ। अमेरिकन ने उन्हें बड़े गौर से देखा, लेकिन उन्हें मंजूर करना पड़ा कि मुझे याद नहीं आता कि मैंने आपको कब और कहाँ देखा है। तब खुफिया पुलिस के साहब ने बताया कि मैं आपसे ब्रूसेल्स कान्फ्रेंस में नीग्रो प्रतिनिधि की हैसियत से मिला था। उस समय अपने हाथ-मुँह वगैरह मैंने बिलकुल काले रंग लिये थे।"

इसी ब्रूसेल्स कान्फ्रेंस में मौलाना बर्कतुल्ला आदि भारतीय क्रान्तिकारी भी सम्मिलित थे। इस तरह भारतीय देशभक्तों को प्रत्येक कदम पर धोखे और छल से सावधान रहना पड़ता था। बहुत बार तो अपने नजदीकी साथी भी धोखा दे जाते थे।

भारतीय क्रान्तिकारियों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय संकट

विदेशों में स्थित भारतीय क्रान्तिकारी सर्वथा असफल ही नहीं हुए, उन्होंने अनेक बार ब्रिटिश सरकार को भारी संकट में डाल दिया था। प्रथम विश्वयुद्ध के समय काबुल की आजाद हिन्द सरकार ने जो मिशन रूस भेजा था, जिसे ताशकन्द के गवर्नर ने गिरफ्तार करके वापस अफगानिस्तान पहुँचा दिया, उस मिशन के सम्बन्ध में मौलाना उबैदुल्ला ने अपनी पुस्तक में लिखा है, "यह मिशन बेकार साबित नहीं हुआ, इससे रूस और अंग्रेज सरकार की एकता में किसी सीमा तक कठिनाई उत्पन्न हो गई, जिसे हल करने के लिए लार्ड किचनर को यात्रा करनी पड़ी है।"

अफगानिस्तान में भारतीय क्रान्तिकारियों के कारण राजनीतिक उलटफेर और भारत पर अफगान आक्रमण की चर्चा हम ऊपर कर आए हैं। यहाँ पर इस सम्बन्ध में इतना उल्लेख कर देना आवश्यक है कि सन् 1919 की पराजय के प्रतिशोधस्वरूप जब 1929 में अंग्रेजों ने अमानुल्ला के खिलाफ बगावत करा दी और अपने एक गोइन्दे बच्चा सक्का को गद्दी पर बैठा दिया, तो जनरल नादिर खां को बच्चा सक्का के विरुद्ध भारतीय क्रान्तिकारियों से बड़ी भारी मदद मिली थी। इन क्रान्तिकारियों का ही यह प्रभाव था कि जब बच्चा सक्का का एजेण्ट अमामदीन चाराधारी पेशावर पहुँचा, तो उसके विरुद्ध इतने जुलूस और सभाएं तथा अन्य प्रदर्शन पेशावार के पठानों ने किए कि अमानुल्ला खाँ की सरकार के ट्रेड एजेण्ट सरदार अब्दुल हकीम खाँ ने, इन प्रदर्शनों से साहस पाकर, बच्चा सक्का सरकार के एजेण्ट को चार्ज देने से इन्कार कर दिया और अंग्रेज सरकार उन पर दबाव डालने का साहस नहीं कर सकी। इसके बाद पेशावर के पठानों ने ब्रिगेडियर जान मुहम्मद के घर पर हमला कर दिया, जहाँ बच्चा सक्का सरकार का एजेण्ट ठहरा हुआ था। बड़ी कठिनाई से वहाँ उस एजेण्ट की जान बच सकी। अपने विरुद्ध ऐसा प्रबल लोकमत देखकर बच्चा सक्का का यह एजेण्ट वापस लौट गया और जब नया एजेण्ट आया, तो उस पर भी भीड़ ने हमला किया और जिस मकान में वह था, उसको पर्याप्त हानि पहुँचाई।

आजाद पठान कबीलों की शक्ति को नादिर खां की सहायता के लिए एकत्रित कर देना भी भारतीय क्रान्तिकारियों का ही कार्य था, जिसके बिना नादिर खां की विजय असम्भव थी। उस समय तक नादिर खां भी यही प्रकट कर रहे थे कि वह अमानुल्ला खां को गद्दी वापस दिलाने के लिए बच्चा-सक्का के विरुद्ध युद्ध में उतरे हैं। भारतीय क्रान्तिकारियों का यह भी अनुभव था कि नादिर खां अंग्रेज विरोधी हैं। यह क्रान्तिकारी अंग्रेजों द्वारा अमानुल्ला खां के विरुद्ध रचे गए षड्यन्त्र से पूरी तरह परिचित थे और उन्होंने अफगानिस्तान में विद्रोह होने से बहुत पहले ही इसकी सूचना गांधीजी और कांग्रेस के अन्य नेताओं को दे दी थी। इसका प्रमाण यह है कि सन् 1928 में कलकत्ता कांग्रेस का अधिवेशन समाप्त करके जब गांधीजी तथा महादेव देसाई लौट रहे थे, तो उन्होंने सीमाप्रांत के राष्ट्रीय मुस्लिम नेता आगा लाला बादशाह, अलीगुल खान और अब्दुल करीम भी उसी गाड़ी से सफर कर रहे थे। इस अवसर पर गांधी जी ने इन नेताओं से कहा था, "अफगानिस्तान में शीघ्र ही अंग्रेज अमानुल्ला खां के शासन के विरुद्ध विद्रोह आरम्भ कराने वाले हैं। अंग्रेजों का षड्यन्त्र यह है कि अमानुल्ला को हटाकर अपने किसी पिट्ठू को गद्दी पर बैठा

दिया जाए। आप लोगों को इस पर दृष्टि रखनी चाहिए और अमानुल्ला की सहायता करनी चाहिए। भारत का हित भी इसी बात में है।" भारतीय क्रान्तिकारियों ने इस प्रकार अमानुल्ला खां के पक्ष में लोकमत तैयार किया और यद्यपि वे अमानुल्ला खां को नहीं बचा सके, किन्तु बच्चा सक्का भी क़ाबुल की गद्दी पर नहीं रह सका और इस प्रकार अंग्रेज अपने षड्यन्त्र में पूरी तरह सफल हो सके। इससे ईरान आदि देशों के स्वतन्त्रता आन्दोलन को जो लाभ पहुँचा, वह भी सर्वविदित है। भारत को तो लाभ हुआ ही।

भारत छोड़ने से पूर्व श्री सुभाष की सेनाओं से सम्पर्क

द्वितीय विश्वयुद्ध में विदेश प्रवासी भारतीय क्रान्तिकारियों ने जो कार्य किया, उससे भारत को स्वाधीनता प्राप्त करने में बहुत महत्त्वपूर्ण सहयोग मिला। आज़ाद हिन्द सरकार और आज़ाद हिन्द फ़ौज के निर्माण में सर्वप्रथम प्रयास रासबिहारी बोस, स्वामी सत्यानन्दपुरी (जैसे बंगाली क्रान्तिकारी दल के पुराने सदस्य थे) और प्रीतमसिंह (गदर पार्टी के पुराने कार्यकर्ता) ने किया था। प्रायः ऐसा समझा जाता है कि श्री सुभाष बोस ब्रिटिश सरकार के दमन पाश से बचने के लिए भारत से चले गए और फिर विदेशों में जाकर उन्हें यह सूझा कि भारतीय फ़ौजों के बन्दी सिपाहियों का संगठन करके अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ा जाये। किन्तु यह धारणा सही नहीं है। श्री सुभाष जब कांग्रेस से पृथक् हुए थे और फारवर्ड ब्लाक स्थापित करके देश-भर में दौरा करके प्रचार कार्य कर रहे थे, उस समय भी उनके मस्तिष्क में यही योजना थी। इस दौरे में उनके साथ श्री त्रैलोक्यनाथ चक्रवर्ती भी किसी दूसरे नाम से थे, जो बंगाल के क्रान्तिकारी दल के प्रभावशाली नेता थे और जिनका उल्लेख श्री शचीन्द्र ने भी प्रशंसात्मक शब्दों में एक-दो स्थान पर अपनी पुस्तक में किया है। श्री चक्रवर्ती ने लिखा है कि सन् 1940 में जब श्री सुभाष बोस के सभापतित्व में दिल्ली में छात्र सम्मेलन हुआ था, तभी लाला शंकरलाल के घर पर फ़ारवर्ड ब्लाक की कार्यकारिणी बैठक भी हुई थी। इस बैठक में मैं भी सम्मिलित हुआ था। उक्त बैठक में जो नेता सम्मिलित हुए थे, उनमें सीमाप्रान्त के नेता अकबरशाह भी थे।... उपस्थित नेताओं में जिन लोगों को सुभाषबाबू विप्लव मनोवृत्ति का समझते थे, उनसे घनिष्ठता से मिलाने और विचार-विमर्श करने के उद्देश्य से मेरा परिचय करा देते थे। अकबरशाह के बारे में सुभाष बाबू की ऊँची धारणा थी। वे सुभाष बाबू के विशेष भक्त और सरल, सीधे, स्वदेश प्रेमी और निर्भीक थे। उन्हें विशेष रूप से विप्लव के मार्ग पर लाने को सुभाष बाबू ने मुझसे कहा। मैं भी खूब घनिष्ठता से उनसे मिला और भावी विप्लव के बारे में उनसे चर्चा की। मेरे साथ चर्चा करने के बाद उनकी हिचकिचाहट दूर हो गई और वे सशस्त्र क्रान्ति के पथ पर पूर्ण विश्वासी बन गए।

"...सेना वाहनियों में प्रभाव के बारे में मैंने अकबरशाह से बात की। उन्होंने पठान सेना-वाहनियों की मुख्य छावनियों की जानकारी पाने की सलाह दी और कहा-- 'मैं उन लोगों में प्रभाव डालने का प्रयत्न करूँगा। पठान सैनिक भारत की स्वतन्त्रता के संग्राम का विरोध नहीं करेंगे।' अफ़गानिस्तान की राह से विदेश जाने के लिए भारत का सीमान्त पार करवा देने का कोई प्रबन्ध करने की बात पूछने पर उन्होंने कहा कि दुभाषिये के सहारे से प्रबन्ध करना सम्भव होगा। घोड़े पर जाना आसान होगा, लेकिन खर्च बहुत पड़ेगा।"

उपरोक्त उद्धरण से नेताजी सुभाष के भारत से बाहर जाने की योजना पर एक नया प्रकाश पड़ता है। श्री चक्रवर्ती ने यह भी लिखा है कि दिल्ली के लाला शंकरलाल को सुभाष बाबू ने जापान इसीलिए भेजा था कि वे ब्रिटिश शत्रु देशों से इस सम्बन्ध में बात कर आएँ। इधर सेनाओं में भी विद्रोह का प्रचार हो रहा था। 'कलकत्ते में सिक्ख नेता सरदार निरंजन सिंह 'गालिब' की मार्फत एक सिक्ख वाहिनी हमारे सम्पर्क में आ गई थी। उनके कई प्रतिनिधि सुभाष बाबू से मिले थे। सुभाष बाबू ने कर्मपद्धति के बारे में उनसे बातें करके उनको निकट भविष्य में तैयार रहने को कहा था।' इस प्रकार विदेशों में स्थित भारतीय क्रान्तिकारी सभी द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ होते ही सक्रिय हो गए थे। यह श्री सुभाष की अन्तिम गिरफ्तारी से पहले की बात है। इस गिरफ्तारी से पूर्व ही श्री सुभाष ने सीमाप्रान्त के रास्ते भारत से बाहर जाने की योजना बना ली और भारत तथा विदेशों में स्थित भारतीय सिपाहियों से सम्पर्क स्थापित करना प्रारम्भ कर दिया था। वे विदेशों से आने वाले किसी सन्देश की प्रतीक्षा में थे, अन्यथा उसी समय बाहर चले गये होते। सरकार ने इसी बीच उनको गिरफ्तार कर लिया किन्तु अनशन करके श्री सुभाष ने अपने को मुक्त करा लिया और फिर विदेश में सूचना मिलते ही भारत से चले गए। निस्सन्देह यह सब इसीलिए सम्भव हो सका कि विदेशों में भारतीय क्रान्तिकारी बड़ी सावधानी से उसकी पृष्ठभूमि बना चुके थे।

जो भारतीय विप्लववादी विदेशों में थे, उनमें अनेक अन्य देशों के क्रान्तिकारियों से बड़े अच्छे सम्बन्ध बनाये हुए थे। काबुल के क्रान्तिकारी संगठन 'जमायते सियासिया' पर भारतीय क्रान्तिकारियों के प्रभाव पर हम पर्याप्त प्रकाश डाल चुके हैं। एशिया के अन्य ऐसे देशों में, जो अंग्रेजों के दास या अर्धदास थे, भारतीय क्रान्तिकारियों ने उल्लेखनीय कार्य किया। उदाहरण के लिए ईरान में श्री अम्बाप्रसाद सूफ़ी आदि ने स्वयं अंग्रेजों के विरुद्ध हो रहे युद्ध में सक्रिय भाग लिया। डॉ० खानखोजे भी लगभग तीन वर्ष तक ईरान सेना में सम्मिलित होकर अंग्रेजों से लड़े। श्री प्रमथनाथ दत्त भी ईरान की क्रान्तिकारी सेना में सम्मिलित होकर अंग्रेजों से लड़ते रहे और ईरानी सेना के हार जाने पर लगभग तीन वर्ष तक एक ईरानी कबीले में छिपे रहे। रूस की सोवियत सरकार की सहायता से उस समय बड़ी कठिनाई से उनका उद्धार हो सका। श्री एम० एन० राय तो चीन में साम्यवादी क्रान्ति का संचालन करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी संगठन की ओर से भेजे गए थे। बर्मा के क्रान्तिकारियों में से जनरल-आंगसान आदि श्री रासबिहारी आदि के सम्पर्क में थे। गदर पार्टी के कुछ नेताओं का सम्पर्क नए चीन के पिता डॉ० सनयातसेन से था। लेनिन और ट्राटस्की, स्टालिन के सम्पर्क में तो अनेकों भारतीय क्रान्तिकारी रहे। मुस्तफ़ा कमालपाशा का भी अनेक भारतीय क्रान्तिकारियों से सम्पर्क रहा। इस प्रकार भारतीय क्रान्तिकारियों ने महत्त्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित कर रखे थे। यह दूसरी बात है कि भारत को स्वाधीनता कुछ इस प्रकार और ऐसे रूप में मिली, जिसके कारण इन सम्बन्धों से विशेष लाभ नहीं उठाया जा सका।

भारत के राष्ट्रीय नेता और क्रान्तिकारी

भारतीय क्रान्तिकारियों की अपने देश के राष्ट्रीय आन्दोलन में क्या स्थिति रही और राष्ट्रीय नेताओं से उनके सम्बन्धों पर भी श्री शचीन्द्र ने यहाँ-वहाँ थोड़ी-सी चर्चा अपनी इस पुस्तक में की है। अन्य क्रान्तिकारियों ने भी अपनी पुस्तकों और संस्मरणों में इस प्रश्न पर विचार किया है। इसमें सन्देह नहीं कि मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए सर्वस्व त्याग का जैसा आदर्श विप्लवियों ने जनता के सम्मुख रक्खा, वैसे आदर्श कांग्रेस आन्दोलन के कार्यकर्ता नहीं रख सके। किन्तु ऐसा होना स्वाभाविक था। विप्लवी आन्दोलन में जो व्यक्ति सम्मिलित होते थे, वे समाज के सबसे अधिक साहसी और निर्भय युवक थे, जो पहले से ही फाँसी, कालापानी की सम्भावनाओं को हृदयंगम करके इस रास्ते पर पैर बढ़ाते थे। इनमें से जिनका मनोबल टूट जाता था, वे एप्रूवर (इकबाली गवाह) इत्यादि बन जाते थे। कांग्रेस आन्दोलन

में फाँसी, कालापानी की सम्भावनाएँ नहीं थीं। शायद इसीलिए कांग्रेस का आन्दोलन जन-आन्दोलन भी बन सका। फिर भी कांग्रेस आन्दोलन से सहानुभूति रखने वाली जनता और साधारण कार्यकर्ता विप्लवियों के प्रति अधिक श्रद्धावान थे, इसमें सन्देह नहीं है। आज भी अनेक भूतपूर्व विप्लवी अपने क्रान्ति जीवन की याद दिलाकर चुनाव जीतते देखे जाते हैं, जो प्रमाणित करता है कि जनता उनके कष्ट-सहन के प्रति आज भी श्रद्धावान है। स्वयं डाक्टर पट्टाभि ने अपने ग्रन्थ 'कांग्रेस का इतिहास' में स्वीकार किया है कि एक समय सरदार भगतसिंह भारतीय जनता में महात्मा गांधी की ही भाँति लोकप्रिय थे। श्री चन्द्रशेखर आज़ाद के इलाहाबाद में पुलिस की गोलियों से मारे जाने के बाद जनता ने जिस प्रकार उस वृक्ष की पूजा की, जिसके नीचे श्री आज़ाद शहीद हुए थे तथा इसके पहले कन्हाईलाल दत्त के जुलूस में विशाल जनसमूह का सम्मिलित होना इस बात का प्रतीक है कि विप्लवियों के प्रति राष्ट्रीय विचारों की जनता में सदैव प्रबल आकर्षण रहा और वह उनको भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का 'सच्चा वीर' समझती रही।

जहाँ तक कांग्रेस के नेताओं का सम्बन्ध है, अधिकांश से विप्लवी नेताओं की कभी अच्छी तरह पट नहीं सकी। वास्तव में कांग्रेस के अधिकांश नेता विप्लवियों के आतंकवादी मार्ग को राष्ट्रीय आन्दोलन की बाधा समझते थे। वे उस बारे में बहुत सचेत रहते थे कि कहीं सरकार उनका सम्बन्ध आतंकवादी आन्दोलन से सिद्ध न कर दे। कांग्रेस, जो बड़ी कठिनाई से आवेदन-पत्रों ओर प्रार्थना-प्रस्तावों की परिधि से निकलकर सविनय अवज्ञा के मार्ग पर आई थी, सरकार को भीषण आत्म दमन को कोई भी अवसर नहीं देना चाहती थी। फिर भी शनैः-शनैः कांग्रेस के कुछ नेताओं के मत में हम परिवर्तन होता हुआ देखते हैं। श्री शचीन्द्र को शिकायत है कि वे जब कालापानी से लौटे तो मोतीलालजी, देशबन्धु दास, मालवीयजी, जवाहरलाल नेहरू ने उनकी बातों पर, यहाँ तक कि राजनीतिक बन्दियों की रिहाई के लिए आन्दोलन करने की प्रार्थना पर भी उचित ध्यान नहीं दिया। इनमें से श्री मोतीलालजी के सम्बन्ध में हम एक अन्य क्रान्तिकारी मनमोहन गुप्त के संस्मरणों में पढ़ते हैं कि वे एक हस्तलिखित क्रान्तिकारी बुलेटिन के मूल्य-स्वरूप मोतीलालजी से पाँच सौ रुपये लाए थे और वे प्रायः उनको कुछ न कुछ देते रहते थे। श्री चन्द्रशेखर आज़ाद, यशपाल आदि को भारत से बाहर जाने के लिए जवाहरलालजी द्वारा धन प्राप्त हुआ था, यह स्वयं यशपालजी ने अपनी पुस्तक में लिखा है। देशबन्धु चित्तरंजनदास के सम्बन्ध में श्री त्रैलोक्यनाथ चक्रवर्ती ने लिखा है कि जब वे क्रान्तिकारी कार्यों के अपराध में जेल की सज़ा काट रहे थे, उन दिनों ही देशबन्धु भी असहयोग आन्दोलन में जेल आए। इस जेल प्रवास के समय एक कांग्रेसी ने देशबन्धु से यह शिकायत की कि विप्लवी क़ैदी असहयोगी बन्दियों को कांग्रेस के विरुद्ध भड़काते हैं, तो देशबन्धु ने उत्तर दिया था, "इनकी बातें अब मुझे याद आती हैं, तो मेरा सारा घमंड चूर हो जाता है।" इससे प्रकट होता है कि दास बाबू भी इनको पर्याप्त आदर की दृष्टि से देखते थे।

विप्लवी आन्दोलन ने कांग्रेस आन्दोलन के मार्ग में बाधा खड़ी नहीं की, शक्ति ही दी, ऐसा प्रायः सभी राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं का अनुभव है। 'जब यह लोग फाँसी पर चढ़ सकते हैं, कालापानी जा सकते हैं, तो क्या हम वर्ष-छह महीने की सज़ा भी नहीं काट सकते,' यह भावना बहुत-से युवकों को कांग्रेस आन्दोलन में खींच लाई, इसमें सन्देह नहीं है। भारत की अंग्रेज़ सरकार ने विप्लवियों पर जो अत्याचार किए, उसके कारण भी जनमत अंग्रेज़ सरकार का विरोधी बनता गया, इसमें भी सन्देह नहीं है। कभी-कभी किसी विशेष जोशीले सरकार-भक्त अधिकारी ने जब कांग्रेसी आन्दोलनकारियों पर भीषण अत्याचार करके कांग्रेस वालों को बहुत आतंकित कर दिया, तब किसी क्रान्तिकारी की एक धमकी-भरी चिट्ठी से ही उक्त अधिकारी सही रास्ते पर आ गया, इसके उदाहरण भी मौजूद हैं। अन्त में सन् 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन का अहिंसा की परिधि से निकलकर हिंसात्मक रूप ग्रहण कर लेना यह सिद्ध करता है कि विप्लवियों का न तो 'आतंकवाद' व्यर्थ हुआ और न हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन ने 'हिंसा-अहिंसा' के तत्त्वचिन्तन की ही चिन्ता की। अंग्रेज़ों को भारत से हटाने का मुख्य श्रेय यदि आज़ाद हिन्द फ़ौज़ के संगठन को नहीं, तो आज़ाद हिंन्द फ़ौज के बन्दियों की रिहाई के आन्दोलन को तो है ही, जिसने फ़ौजों को भी ब्रिटिश विरोधी बना दिया था। गांधीजी की अहिंसात्मक रणनीति के कारण भारत का ब्रिटिश विरोधी जन-आन्दोलन प्रत्यक्ष और संगठित रूप से चलता रहा और उसी के बल पर आज़ाद-हिन्द की रिहाई का आन्दोलन इस रूप में किया जा सका, यह तथ्य भी हमारी आँखों से ओझल नहीं होना चाहिए। भारत की स्वाधीनता का श्रेय इन दोनों ही प्रकार के आन्दोलनों को है, किन्तु त्याग, कष्ट-सहन का पलड़ा विप्लवियों का ही भारी है, यह निर्विवाद सत्य है।'

श्री शचीन्द्र की शेष कहानी

श्री शचीन्द्र ने 'बन्दी जीवन' की कहानी सन् 1920 में कालेपानी से मुक्ति के बाद घर पर आने, विवाह करके क्रान्तिकारी कार्यों के लिए पत्नी-पुत्री सहित चटगाँव जाने और फिर लौटकर उत्तर प्रदेश में आ जाने की चर्चा के साथ ही समाप्त कर दी है। इसी बीच उन्होंने शेष क्रान्तिकारी राजबन्दियों की रिहाई के लिए जो उद्योग किया, उसकी चर्चा तो पूर्ण रूप से की है, किन्तु क्रान्तिकारी दल को पुनर्गठित करने के लिए क्या कुछ किया, इसका केवल आभास मात्र ही दिया है। 'बन्दी जीवन' के तृतीय भाग में यह सब ब्यौरा है, जो श्री शचीन्द्र ने सन् 1937-38 में कांग्रेस मंत्रिमण्डलों द्वारा रिहा किए जाने के पश्चात कानपुर के 'प्रताप' पत्र में धारावाहिक रूप से लिखा था। उस समय भी देश में अंग्रेज़ सरकार थी, इसलिए श्री शचीन्द्र यथातथ्य विवरण दे भी नहीं सकते थे। इसीलिए उन्होंने 'काकोरी षड्यन्त्र' का विवरण भी नहीं दिया, जिसमें उनके चार साथियों को फाँसी हुई और श्री शचीन्द्र को आजीवन कालेपानी का दंड मिला था।

श्री शचीन्द्र ने सन् 1920 में कालेपानी से लौटकर जिस दिन भारत भूमि पर पैर रक्खा, ठीक उसी दिन से वे क्रान्तिकारी दल के पुनर्गठन में प्रवृत्त हो गए थे। इस समय तक उत्तर प्रदेश का क्रान्तिकारी संगठन विच्छिन्न हो चुका था। बंगाल का प्रमुख क्रान्तिकारी दल 'ढाका अनुशीलन समिति' उसके बहुत से सदस्यों के जेल जाने से निर्बल था। श्री वारीन्द्र का 'युगान्तर दल', जो प्रथम महायुद्ध के पूर्व ही 'चन्द्रनगर दल' के रूप में परिवर्तित हो गया था, और जिसके एक नेता रासबिहारी बोस थे, लगभग किंकर्तव्यविमूढ़ था। पंजाब में 'ग़दर पार्टी' के नेता या तो जेल में थे या विदेशों में खिसक गए थे। कांग्रेस गांधीजी के प्रभाव में आ चुकी थी और जलियांवालाबाग हत्याकांड से उत्पन्न रोष को गांधीजी असहयोग आन्दोलन में उपयोग करने की तैयारी कर चुके थे। मुस्लिम क्रान्तिकारी दल गोपनीय आतंकवाद की व्यर्थता अनुभव करके प्रकट जन-आन्दोलन के मार्ग पर चल चुका था और 'खिलाफ़त' की रक्षा के नाम पर देश की मुस्लिम जनता को अंग्रेजों से संघर्ष कराने की भूमिका तैयार कर रहा था। भारत की जनता को नया राजनीतिक दर्शन, नये नेता और नई रणनीति प्राप्त हो रही थी।

बंगाल के क्रान्तिकारी असहयोग आन्दोलन का विरोधी कर रहे थे किन्तु श्री शचीन्द्र ने इसमें योग नहीं दिया। गांधीजी के इस आन्दोलन से उनको स्वतन्त्रता प्राप्ति की आशा तो नहीं थी किन्तु इस आन्दोलन के माध्यम से जन-जागरण के महत्त्व को वे हृदयंगम कर सके थे। सम्भवतः वे समझ गए थे कि आन्दोलन असफल

होगा। इसीलिए असहयोग आन्दोलन से वे तटस्थ रहे। 'न निन्दा, न प्रशंसा' की नीति ग्रहण कर वे यहाँ-यहाँ घूमकर क्रान्तिकारी दल का संगठन करने लगे। बंगाल के सभी क्रान्तिकारी दलों का पारस्परिक सहयोग हो या एक संगठन बन जाये, इसके लिए उन्होंने विशेष उद्योग किया। क्रान्तिकारी संगठन के प्रति देश के युवकों का ध्यान आकर्षित करने के लिए उन्होंने इस समय बंगाली भाषा की एक पत्रिका में लेखमाला प्रारम्भ की, जिसमें सन् 1914-15 के कार्यों का विवरण था। यही लेखमाला बाद में 'बन्दी जीवन' के प्रथम-द्वितीय भाग के रूप में पुस्तकाकार प्रकाशित हुई और क्रान्तिकारी संगठन के नये रंगरूटों की पाठ्य-पुस्तक बन गई। न जाने कितने युवक अकेली इस पुस्तक के पारायण से ही अनुप्राणित होकर क्रान्तिकारी दल में प्रविष्ट हुए। इस प्रकार श्री शचीन्द्र असहयोग काल में अपने शरीर और बुद्धि का सम्पूर्ण उपयोग क्रान्तिकारी संगठन के लिए करते रहे।

कुछ दिनों बाद असहयोग आन्दोलन असफल होकर समाप्त हो गया। इसकी प्रतिक्रियास्वरूप देश में साम्प्रदायिक विद्वेष और बलवों की हवा बह चली। बड़े-बड़े तथाकथित राष्ट्रीय नेता इस हवा में बहकर हिन्दू-मुस्लिम द्वेष के प्रचारक बन गए। स्वदेश की स्वाधीनता की बात पीछे पड़ गई। कुछ लोग चरखा और सूत में उलझ गए, कुछ को धारासभाओं की कुर्सियाँ पुकारने लगीं। राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए यह बड़े संकट का समय था।

श्री शचीन्द्र इस समय पंजाब से बंगाल तक राष्ट्रीय विचारों के युवकों को खोज-खोजकर उनको एक संगठन में पिरोने लगे। इसी समय क्रान्तिकारी दल का ध्यान मज़दूर संगठन की ओर गया। जमशेदपुर में मज़दूर यूनियन बनी और उसके सभापति बनाये गए श्री देशबन्धुदास की पत्नी के भाई और कलकत्ता के प्रसिद्ध बैरिस्टर श्री एस० एन० हलदार। श्री शचीन्द्र भी वहाँ जाकर काम करने लगे। किन्तु कुछ ही दिन बाद श्री शचीन्द्र ने जमशेदपुर का कार्य छोड़ दिया और फिर सन् 1924 में कलकत्ते में, प्रतुलचन्द्र गांगुली और त्रैलोक्यनाथ चक्रवर्ती के साथ मिलकर 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन पार्टी' की स्थापना की। इस संस्था की स्थापना का मुख्य उद्देश्य यह था कि उत्तर भारत में केवल एक क्रान्तिकारी संगठन कार्य करे, जिसके नेता श्री शचीन्द्र बनाये गए। इससे पहले ढाका अनुशीलन समिति के श्री योगेश चटर्जी भी उत्तर भारत में संगठन कार्य कर रहे थे और उन्होंने श्री रामप्रसाद बिस्मिल आदि को पुनः क्रान्तिकारी कार्यों में प्रवृत कर दिया था। श्री राजेन्द्र लाहिड़ी, जिनको काकोरी केस में फाँसी हुई, श्री शचीन्द्र के सहयोगी थे। इन दिनों ही 'रिवोल्यूशनरी' नामक एक पर्चा रंगून से पेशावर तक बाँटा गया, जिसमें भारतीय जनता के सम्मुख सशस्त्र क्रान्ति की आवश्यकता और उपयोगिता प्रकट की गई थी। एक ही दिन सम्पूर्ण देश में पर्चा वितरित करके क्रान्तिकारी देशवासियों को यह विश्वास दिलाना चाहते थे कि उनका एक वृहत् संगठन स्थापित हो चुका है। भारत सरकार भी पर्चे बाँटने की इस संगठन-व्यवस्था से बहुत आतंकित हुई थी और इस पर्चे की सबसे बड़ी उपयोगिता यह थी कि साम्प्रदायिकता के उठते हुए तूफान में इस प्रकार के कार्य जनसाधारण को राष्ट्रीयता की ओर उन्मुख करते थे। काकोरी षड्यन्त्र के मुकदमे में सरकारी वकील ने श्री शचीन्द्र को ही 'रिवोल्यूशनरी' पर्चे का लेखक बताया था। बाद में इस पर्चे को डाक द्वारा भेजने के अपराध में फरवरी, 1925 में शचीन्द्र पकड़े गए और दो वर्ष की क़ैद का दंड मिला। बंगला एसेम्बली में क्रान्तिकारी आन्दोलन का दमन करने के लिए सरकार ने इन दिनों ही एक 'आर्डीनेन्स एक्ट' प्रस्तुत किया। बंगाल के तत्कालीन गृह सदस्य श्री स्टीफेन्सन ने इस एक्ट की आवश्यकता बताते हुए, अपने भाषण में श्री शचीन्द्र और 'रिवोल्यूशनरी' पर्चे की विशेष रूप से चर्चा की थी।

श्री शचीन्द्र जेल जाने से पूर्व ही उत्तर प्रदेश में एक दृढ़ क्रान्तिकारी दल का संगठन कर चुके थे। श्री भगतसिंह, चन्द्रशेखर आज़ाद आदि इसी समय क्रान्तिकारी दल में प्रविष्ट हुए। इन दिनों दल की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दुर्बल थी। काकोरी काण्ड के शहीद श्री रामप्रसाद 'बिस्मिल' ने फाँसी की कोठरी में जो अपनी आत्मकथा लिखी है, उसमें दिये गए विवरण के अनुसार, "इस समय समिति के सदस्यों की बड़ी दुर्दशा थी, चने मिलना भी कठिन था। सब पर कुछ न कुछ कर्ज़ हो गया। किसी के पास साबुत कपड़े तक न थे। कुछ विद्यार्थी बनकर धर्म क्षेत्रों तक में भोजन कर आते थे।" ऐसी स्थिति से विवश होकर दल ने डकैती डालने का निश्चय किया। इन दिनों ही विदेशों से अस्त्र-शस्त्र प्राप्त करने का भी कोई अच्छा सूत्र प्राप्त हो गया था। उसके लिए भी धन की आवश्यकता थी। इन सब कारणों से लखनऊ के पास काकोरी स्टेशन पर रेल का ख़ज़ाना लूटा गया। कुछ लोग डकैती डालना गर्हित कार्य समझ सकते हैं। क्रान्तिकारी भी इसे अच्छा नहीं समझते थे, लेकिन देश के कार्य के लिए भी धन की आवश्यकता तो होती ही है। इससे पूर्व दान, चन्दा आदि से धन संग्रह करने का प्रयोग किया जा चुका था, जो सर्वथा असफल रहा था। अर्थ-समस्या सुलझाने के लिए सन् 1924 में ही, अर्थात श्री शचीन्द्र की गिरफ्तारी से कुछ पहले ही जाली नोट बनाने का भी प्रयास क्रान्तिकारी कर चुके थे। श्री शचीन्द्र ने 'बन्दी जीवन' के तृतीय भाग में एक स्थान पर जाली नोट बनाने के सम्बन्ध में थोड़ा अभास दिया है किन्तु यह नोट कहाँ, कौन बनाता था, यह विवरण रहस्योद्घाटन के भय से नहीं दिया। जाली नोट बनाने का काम ढाका अनुशीलन समिति की ओर से पहले ढाका और मैमनसिंह शहर में प्रारम्भ किया गया। दस रुपये और सौ रुपये के नोट के ब्लाक किसी प्रकार क्रान्तिकारियों ने बनवा लिए थे। श्री दिनेशचन्द्र लाहिड़ी, त्रैलोक्यनाथ चक्रवर्ती आदि यह कार्य करते थे। इसके बाद बंगाल के सोनारंग गाँव में प्रबोधदास गुप्त और शचीन्द्र चक्रवर्ती यह कार्य करते रहे। इन दोनों को इस अपराध में पाँच-पाँच वर्ष का कारावास का दंड मिला। यह जाली नोट इतने त्रुटिपूर्ण बनते थे कि तुरन्त पकड़ाई में आ जाते थे। इसीलिए अन्ततः डकैती द्वारा धन संचित करने के लिए विवश होना पड़ा। काकोरी में ट्रेन लूटने से धन तो मिला, किन्तु सरकार तुरन्त समझ गई कि यह डकैती राजनीतिक उद्देश्य से डाली गई है। पहले दो-एक संदेहास्पद व्यक्ति गिरफ्तार किये गए। वे दुर्भाग्य से इतने कमज़ोर निकले कि जो कुछ मालूम था, सब पुलिस के सामने उगल दिया। फिर तो देश भर में गिरफ्तारियाँ हुईं। श्री शचीन्द्र, जो पर्चा बाँटने के जुर्म में सज़ा भुगत रहे थे, वह भी इस केस में घसीट लिए गए। श्री शचीन्द्र फिर एक बार कालापानी जा पहुँचे।

सन् 1938-39 में शचीन्द्रबाबू काकोरी के अन्य राजबन्दियों के साथ कांग्रेस मंत्रिमंडल द्वारा रिहा किये गये। उन्होंने फिर पूर्वानुसार इलाहाबाद के एक पत्र में अपने क्रान्तिकारी कार्यों का विवरण लिखना प्रारम्भ किया। इसके अतिरिक्त भी कुछ लेखादि लिखे जो पुस्तकाकार प्रकाशित हुए। इसके पश्चात् द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हो गया, तो सरकार ने उनको नज़रबन्द कर दिया। इन दिनों उनका स्वास्थ्य बहुत जर्जर हो गया था। इसी अस्वस्थता के आधार पर नज़रबन्दी से उनकी मुक्ति हुई। घर पर रहकर शचीन्द्र चिकित्सा कराने लगे। इसी समय श्री त्रैलोक्यनाथ चक्रवर्ती उनसे बनारस जाकर मिले और परिवार की व्यवस्था करने के लिए थोड़ा समय माँगा। वे यह व्यवस्था कर ही रहे थे कि क्षय रोग का आक्रमण उन पर हो गया और सन् 1942 में भारत का यह महान् क्रान्तिकारी, अपनी आँखों में स्वदेश की स्वाधीनता के सपने बसाए सदैव के लिए चिरनिद्रा में निमग्न हो गया। अब उनके शौर्यपूर्ण जीवन की केवल स्मृति-भर शेष रह गई है।

○ प्रस्तुति : रतनलाल बंसल

(बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा संपादित 'बंदी जीवन' से साभार)

शेख़ मख़मूर

○ प्रेमचंद

मुल्के जन्नतनिशां के इतिहास में बहुत अंधेरा वक्त था जब शाह किशवर की फतहों की बाढ़ बड़े जोर-शोर के साथ उस पर आयी। सारा देश तबाह हो गया। आजादी की इमारतें ढह गयीं और जानोमाल के लाले पड़ गये। शाह बामुराद खूब जी तोड़कर लड़ा, खूब बहादुरी का सबूत दिया और अपने खानदान के तीन लाख सूरमाओं को अपने देश पर चढ़ा दिया मगर विजेता की पत्थर काट देने वाली तलवार के मुकाबले में उसकी यह मर्दाना जांबाजियां बेअसर साबित हुईं। मुल्क पर शाह किशवरकुशा की हुकूमत का सिक्का जम गया और शाह बामुराद अकेला और तनहा बेयारों मददगार अपना सब कुछ आजादी के नाम पर कुर्बान करके एक झोंपड़े में जिन्दगी बसर करने लगा।

यह झोंपड़ा पहाड़ी इलाके में था। आस-पास जंगली कौमें आबाद थीं और दूर-दूर तक पहाड़ों के सिलसिले नजर आते थे। इस सुनसान जगह में शाह बामुराद मुसीबत के दिन काटने लगा। दुनिया में अब उसका कोई दोस्त न था। वह दिन भर आबादी से दूर एक चट्टान पर अपने खयाल में मस्त बैठा रहता था। लोग समझते थे कि यह कोई ब्रह्मज्ञान के नशे में चूर सूफी है। शाह बामुराद को यों बसर करते एक जमाना बीत गया और जवानी की विदाई और बुढ़ापे के स्वागत की तैयारियां होने लगीं।

तब एक रोज शाह बामुराद बस्ती के सरदार के पास गया और उससे कहा-- मैं अपनी शादी करना चाहता हूं। उसकी तरफ से पैगाम सुनकर वह अचम्भे में आ गया मगर चूंकि दिल में शाह साहब के कमाल और फकीरी में गहरा विश्वास रखता था, पलटकर जवाब न दे सका और अपनी कुंवारी बेटी उनको भेंट की। तीसरे साल इस युवती की वाटिका में एक नौरस पौधा उगा। शाह साहब खुशी के मारे जामे में फूले न समाये। बच्चे को गोद में उठा लिया और हैरत में डूबी हुई मां के सामने जोश-भरे लहजे में बोले-- 'खुदा का शुक्र है कि मुल्के जन्नतनिशां का वारिस पैदा हुआ।'

बच्चा बढ़ने लगा। अक्ल और जहानत में, हिम्मत और ताकत में वह अपनी दुगनी उमर के बच्चों से बढ़कर था। सुबह होते ही गरीब रिन्दा बच्चे का बनाव-सिंगार करके और उसे नाश्ता खिलाकर अपने काम-धन्धे में लग जाती थी और शाह साहब बच्चे की उंगली पकड़कर उसे आबादी से दूर चट्टान पर ले जाते। वहां कभी उसे पढ़ाते, कभी हथियार चलाने की मश्क कराते और कभी उसे शाही कायदे समझाते। बच्चा था तो कमसिन, मगर इन बातों में ऐसा जी लगाता और ऐसे चाव से लगा रहता गोया उसे अपने वंश का हाल मालूम है। मिजाज भी बादशाहों जैसा था। गांव का एक-एक लड़का उसके हुक्म का फरमाबरदार था। मां उस पर गर्व करती, बाप फूला न समाता और सारे गांव के लोग समझते कि यह शाह साहब के जप-तप का असर है।

बच्चा मसऊद देखते-देखते एक सात साल का नौजवान शहजादा हो गया। देखकर देखने वाले के दिल को एक नशा-सा होता था। एक रोज शाम का वक्त था, शाह साहब अकेले सैर करने गये और जब लौटे तो उनके सर पर एक जड़ाऊ ताज शोभा दे रहा था। रिन्दा उनकी यह हुलिया देखकर सहम गयी और मुंह से कुछ बोल न सकी। तब उन्होंने नौजवान मसऊद को गले से लगाया, उसी वक्त उसे नहलाया-धुलाया और एक चट्टान के तख्त पर बैठाकर दर्द-भरे लहजे में बोले-- मसऊद, मैं आज तुमसे रुखसत होता हूं और तुम्हारी अमानत तुम्हें सौंपता हूं। यह उसी मुल्के जन्नतनिशां का ताज है। कोई वह जमाना था कि यह ताज तुम्हारे बदनसीब बाप के सर पर जेब देता था, अब वह तुम्हें मुबारक हो। रिन्दा! प्यारी बीवी! तेरा बदकिस्मत शौहर किसी जमाने में इस मुल्क का बादशाह था और अब तू उसकी मलिका है। मैंने यह राज तुमसे अब तक छिपाया था मगर हमारे अलग होने का वक्त बहुत पास है। अब छिपाकर क्या करूं। मसऊद, तुम अभी बच्चे हो, मगर दिलेर और समझदार हो। मुझे यकीन है कि तुम अपने बूढ़े बाप की आखिरी वसीयत पर ध्यान दोगे और उस पर अमल करने की कोशिश करोगे। यह मुल्क तुम्हारा है, यह ताज तुम्हारा है और यह रिआया तुम्हारी है। तुम इन्हें अपने कब्जे में लाने की मरते दम तक कोशिश करते रहना और अगर तुम्हारी तमाम कोशिशें नाकाम हो जायें और तुम्हें भी यही बेसरोसामानी की मौत नसीब हो तो यही वसीयत तुम अपने बेटे से कर देना और यह ताज, जो उसकी अमानत होगी, उसके सुपुर्द करना। मुझे तुमसे और कुछ नहीं कहना है, खुदा तुम दोनों को खुशोखुर्रम रक्खे और तुम्हें मुराद को पहुंचाये।

यह कहते-कहते शाह साहब की आंखें बन्द हो गयीं। रिन्दा दौड़कर उनके पैरों से लिपट गयी और मसऊद रोने लगा। दूसरे दिन सुबह को गांव के लोग जमा हुए और एक पहाड़ी गुफा की गोद में लाश रख दी।

शाह किशवरकुशा ने आधी सदी तक खूब इन्साफ के साथ राज किया मगर किशवरकुशा दोयम ने सिंहासन पर आते ही अपने अक्लमंद बाप के मंत्रियों को एक सिरे से बर्खास्त कर दिया और अपनी मर्जी के मुआफिक नये-नये वजीर और सलाहकार नियुक्त किये। सल्तनत का काम रोज-ब-रोज बिगड़ने लगा। सरदारों ने बेइन्साफी पर कमर बांधी और हुक्काम रिआया पर जोर-जबर्दस्ती करने लगे। यहां तक कि खानदाने मुरादिया के एक पुराने नमकखोर ने मौका अच्छा देखकर बगावत

चित्र : अरुण सिंह

का झंडा बुलन्द कर दिया। आस-पास से लोग उसके झंडे के नीचे जमा होने लगे और कुछ ही हफ्तों में एक बड़ी फौज कायम हो गयी और मसऊद भी नमकखोर सरदार की फौज में आकर मामूली सिपाहियों का काम करने लगा।

मसऊद का अभी यौवन का आरम्भ था। दिल में मर्दाना जोश और बाजुओं में शेरों की कूबत मौजूद थी। ऐसा लम्बा-तड़ंगा सुन्दर नौजवान बहुत कम किसी ने देखा होगा। शेरों के शिकार का उसे इश्क था। दूर-दूर तक के जंगल दरिन्दों से खाली हो गये। सवेरे से शाम तक उसे सैरो-शिकार के सिवा और कोई धंधा न था। लबोलहजा ऐसा दिलकश पाया कि जिस वक्त मस्ती में आकर कोई कौमी गीत छेड़ देता तो राह चलते मुसाफिरों और पहाड़ी औरतों का ठट लग जाता था। कितने ही भोले-भाले दिलों पर उसकी मोहिनी सूरत नक्श थी, कितनी ही आंखें उसे देखने को तरसतीं और कितनी ही जानें उसकी मुहब्वत की आग में घुलती थीं। मगर मसऊद पर अभी तक किसी का जादू न चला था। हां अगर उसे मुहब्वत थी तो अपनी आबदार शमशीर से जो उसने बाप से विरसे में पायी थी। इस तेग को वह जान से ज्यादा प्यार करता। बेचारा खुद नंगे बदन रहता मगर उसके लिए तरह-तरह के मियान बनवाये थे। उसे एकदम के लिए अपने पहलू से अलग न करता। सच है कि दिलेर सिपाही की तलवार उसकी निगाहों में दुनिया की तमाम चीजों से ज्यादा प्यारी होती है। खासकर वह आबदार खंजर, जिसका जौहर बहुत-से मौकों पर परखा जा चुका हो। इसी तेग से मसऊद ने कितने ही जंगली दरिन्दों को मारा था, कितने ही लुटेरों और डाकुओं को मौत का मजा चखाया था और उसे पूरा यकीन था कि यही तलवार किसी दिन किशवरकुशा दोयम के सर पर चमकेगी और उसकी शहरग के खून से अपनी जबान तर करेगी।

एक रोज वह एक शेर का पीछा करते-करते बहुत दूर निकल गया। धूप सख्त थी, भूख और प्यास से जी बेताब हुआ, मगर वहां न कोई मेवे का दरख्त नजर आया न कोई बहता हुआ पानी का सोता, जिससे भूख और प्यास की आग बुझाता। हैरान और परेशान खड़ा था कि सामने से एक चांद जैसी युवती हाथ में बर्छी लिये और बिजली की तरह तेज घोड़े पर सवार आती हुई दिखाई दी। पसीने की मोती जैसी बूंदे उसके माथे पर झलक रही थीं और अम्बर की सुगन्ध में बसे हुए बाल दोनों कंधों पर एक सुहानी बेतकल्लुफी से बिखरे हुए थे। दोनों की निगाहें चार हुईं और मसऊद का दिल हाथ से जाता रहा। उस गरीब ने आज तक दुनिया को जला डालने वाला ऐसा हुस्न न देखा था, उसके ऊपर एक सकता-सा छा गया। यह जवान औरत उस जंगल में मलिका शेर अफ़गन के नाम से मशहूर थी।

मलिका ने मसऊद को देखकर घोड़े की बाग खींच ली और गर्म लहजे में बोली-- क्या तू वही नौजवान है, जो मेरे इलाके के शेरों का शिकार किया करता है? बतला तेरी इस गुस्ताखी की क्या सजा दूं ?

यह सुनते ही मसऊद की आंखें लाल हो गयीं और बरबस हाथ तलवार की मूठ पर जा पहुंचा, मगर ज़ब्त करके बोला-- इस सवाल का जवाब मैं खूब देता, अगर आपके बजाय यह किसी दिलेर मर्द की जबान से निकलता !

इन शब्दों ने मलिका के गुस्से की आग को और भड़का दिया। उसने घोड़े को चमकाया और बर्छी उछालती सर पर आ पहुंची और वार पर वार करने शुरू किये। मसऊद के हाथ-पांव बेहद थकान से चूर हो रहे थे और मलिका शेर अफगन बर्छी चलाने की कला में बेजोड़ थी। उसने चरके पर चरके लगाये, यहां तक कि मसऊद घायल होकर घोड़े से गिर पड़ा। उसने अब तक मलिका के वारों को काटने के सिवाय खुद एक भी हाथ भी न चलाया था।

तब मलिका घोड़े से कूदी और अपना रूमाल फाड़कर मसऊद के जख्म बांधने लगी। ऐसा दिलेर और गैरतमंद जवांमर्द उसकी नज़र से आज तक न गुजरा था। वह उसे बहुत आराम से उठवाकर अपने खेमे में लायी और पूरे दो हफ्ते तक उसकी परिचर्या में लगी रही यहां तक कि घाव भर गया और मसऊद का चेहरा फिर पूरनमासी के चांद की तरह चमकने लगा। मगर हसरत यह थी कि अब मलिका ने उसके पास आना-जाना छोड़ दिया।

एक रोज मलिका शेर अफगन ने मसऊद को दरबार में बुलाया और बोली-- ऐ घमण्डी नौजवान! खुदा का शुक्र है कि तू मेरी बर्छी की चोट से अच्छा हो गया, अब मेरे इलाके से जा, तेरी गुस्ताखी माफ करती हूं। मगर आइन्दा मेरे इलाके में शिकार के लिए आने की हिम्मत न करना। फिलहाल ताकीद के तौर पर तेरी तलवार छीन ली जायगी, ताकि तू घमंड के नशे से चूर होकर फिर इधर कदम बढ़ाने की हिम्मत न करे।

मसऊद ने नंगी तलवार मियान से खींच ली और कड़ककर बोला--जब तक मेरे दम में दम है, कोई यह तलवार मुझसे नहीं ले सकता। यह सुनते ही एक देव जैसा लम्बा-तगड़ा हैकल पहलवान ललकारकर बढ़ा और मसऊद की कलाई पर तेग़े का तुआ हुआ हाथ चलाया। मसऊद ने वार खाली दिया और सम्हलकर तेग़े का वार किया तो पहलवान की गर्दन की पट्टी तक बाक़ी न रही। यह कैफ़ियत देखते ही मलिका की आँखों से चिन्गारियाँ उड़ने लगीं। भयानक गुस्से के स्वर में बोली--ख़बरदार, यह शख़्स यहाँ से ज़िन्दा न जाने पावे। चारों तरफ़ से आज़माये हुए मज़बूत सिपाही पिल पड़े और मसऊद पर तलवारों और बर्छियों की बौछार पड़ने लगी।

मसऊद का जिस्म जख्मों से छलनी हो गया। खून के फ़व्वारे जारी थे और खून की प्यासी तलवारें ज़बान खोले बार-बार उसकी तरफ़ लपकती थीं और उसका खून चाटकर अपनी प्यास बुझा लेती थीं। कितनी ही तलवारें उसकी ढाल से टकराकर टूट गयीं, कितने ही बहादुर सिपाही ज़ख्मी होकर तड़पने लगे और कितने ही उस दुनिया को सिधारे। मगर मसऊद के हाथ में वह आबदार शमशीर ज्यों-की-त्यों बिजली

चित्र : अरुण सिंह

की तरह कौंधती और सुथराव करती रही। यहाँ तक कि इस फ़न के कमाल को समझने वाली मलिका ने खुद उसकी तारीफ़ का नारा बुलन्द किया और उसके तेग़े को चूमकर बोली--मसऊद तू बहादुरी के समुन्दर का मगर है। शेरों के शिकार में वक़्त बर्बाद मत कर। दुनिया में शिकार के अलावा और भी ऐसे मौके हैं, जहाँ तू अपने मुल्कोक़ौम की ख़िदमत कर। सैरो शिकार हम जैसी औरतों के लिए छोड़ दे।

मसऊद के दिल ने गुदगुदाया, प्यार की बानी ज़बान तक आयी मगर बाहर निकल न सकी और उसी वक्त वह अपने दिल में किसी की पलकों की टीस लिये हुए तीन हफ़्तों के बाद अपनी बेक़रार माँ के क़दमों पर जा गिरा।

नमकख़ोर सरदार की फ़ौज रोज़-ब-रोज़ बढ़ने लगी। पहले तो वह अँधेरे के पर्दे में शाही खज़ानों पर हाथ बढ़ाता रहा, धीरे-धीरे एक बाक़ायदा फ़ौज तैयार हो गयी। यहाँ तक कि सरदार को शाही फ़ौजों के मुक़ाबले में अपनी तलवार आजमाने का हौसला हुआ, और पहली ही लड़ाई में चौबीस क़िले इस नयी फ़ौज के हाथ आ गये। शाही फ़ौज ने लड़ने में जरा भी कसर न की, मगर वह ताक़त, वह जोश, वह जज़्बा जो सरदार नमकख़ोर और उसके दोस्तों के दिलों को हिम्मत के मैदान में आगे बढ़ाता रहता था, किशवरकुशा दोयम के सिपाहियों में ग़ायब था। लड़ाई के कला-कौशल, हथियारों की खूबी और ऊपर दिखायी पड़ने वाली शान-शौकत के लिहाज़ से दोनों फ़ौजों का कोई मुक़ाबला न था। बादशाह के सिपाही लहीम-शहीम, लम्बे-तड़ंगे और आजमाये हुए थे। उनके साज-समान और तौर-तरीक़े से देखनेवालों के दिलों पर एक डर-सा छा जाता था और वहम भी यह गुमान न कर सकता था कि इस ज़बर्दस्त जमात के मुक़ाबले में निहत्थी-सी, अधनंगी और बेक़ायदा सरदारी फ़ौज एक पल के लिए भी पैर जमा सकेगी। मगर जिस वक़्त 'मारो' की दिल बढ़ाने वाली पुकार हवा में गूँजी, एक अजीबोग़रीब नज्ज़ारा सामने आया। सरदार के सिपाही तो नारे मारकर आगे धावा करते थे और बादशाह की फ़ौज भागने की राह पर दबी हुई निगाहें डालती थी। दम की दम में मोर्चे गुबार की तरह फट गये और जब मस्क़ात के मज़बूत क़िले में सरदार नमकख़ोर शाही क़िलेदार की मसनद पर अमीराना ठाट-बाट में बैठा और अपनी, फौज की कारगुज़ारी और जाँबाज़ियों का इनाम देने के लिए एक तश्त में सोने के तमग़े मँगवाकर रक्खे तो सबसे पहले जिस सिपाही का नाम पुकारा गया, वह नौजवान मसऊद था।

मसऊद पर इस वक़्त उसकी फ़ौज घमंड करती थी। लड़ाई के मैदान में सबसे पहले उसी की तलवार चमकती थी और धावे के वक़्त सबसे पहले उसी के क़दम उठते थे। दुश्मन के मोर्चों में ऐसा बेधड़क घुसता था, जैसे आसमान में चमकता हुए लाल तारा। उसकी तलवार के वार क़यामत थे और उसके तीर का निशाना मौत का सन्देश।

मगर टेढ़ी चाल की तक़दीर से उसका यह प्रताप, यह प्रतिष्ठा न देखी गयी। कुछ थोड़े से आज़माये हुए अफ़सर, जिनके तेग़ों की चमक मसऊद के तेग़ के सामने मन्द पड़ गयी थी, उससे खार खाने लगे और उसे मिटा देने की तदबीरें सोचने लगे। संयोग से उन्हें मौक़ा भी जल्द हाथ आ गया।

किशवरकुशा दोयम ने बाग़ियों को कुचलने के लिए अब की एक ज़बर्दस्त फ़ौज रवाना की और मीरशुजा को उसका सिपहसालार बनाया जो लड़ाई के मैदान में अपने वक़्त का इसफंदियार था। सरदार नमकख़ोर ने यह ख़बर पायी तो हाथ-पाँव फूल गये। मीरशुजा के मुक़ाबले में आना अपनी हार को बुलाना था। आखिरकार यह राय तय पाई कि इस जगह से आबादी का निशान मिटाकर हम लोग क़िलेबन्द हो जायें। उस वक़्त नौजवान मसऊद ने उठकर बड़े पुरजोर लहजे में कहा--

'नहीं, हम क़िलेबन्द न होंगे, हम मैदान में रहेंगे और हाथोंहाथ दुश्मन का मुक़ाबला करेंगे। हमारे सीनों की हड्डियाँ ऐसी कमज़ोर नहीं हैं कि तीर-तुपुक के निशाने बर्दाश्त न कर सकें। क़िलेबन्द होना इस बात का ऐलान है कि हम आमने-सामने नहीं लड़ सकते। क्या आप लोग, जो शाह बामुराद के नामलेवा हैं, भूल गये कि इसी मुल्क पर उसने अपने खानदान के तीन लाख सपूतों को फूल की तरह चढ़ा दिया ? नहीं, हम हरगिज़ क़िलेबन्द न होंगे। हम दुश्मन के मुक़ाबिले में ताल ठोंककर आएँगे और अगर खुदा इंसाफ़ करनेवाला है तो जरूर हमारी तलवारें दुश्मनों से गले मिलेंगी और हमारी बर्छियाँ उनके पहलू में जगह पाएँगी।'

सैकड़ों निगाहें मसऊद के पुरजोश चेहरे की तरफ़ उठ गयीं। सरदारों की त्योरियों पर बल पड़ गये और सिपाहियों के सीने जोश से धड़कने लगे। सरदार नमकखोर ने उसे गले से लगा लिया और बोले--मसऊद, तेरी हिम्मत और हौसले की दाद देता हूँ। तू हमारी फ़ौज की शान है। तेरी सलाह मर्दाना सलाह है। बेशक हम क़िलेबन्द न होंगे। हम दुश्मन के मुक़ाबिले में ताल ठोंककर आएँगे और अपने प्यारे जन्नतनिशाँ के लिए अपना खून पानी की तरह बहायेंगे। तू हमारे लिए आगे-आगे चलने वाली मशाल है और हम सब आज इसी रोशनी में क़दम आगे बढ़ायेंगे।

मसऊद ने चुने हुए सिपाहियों का एक दस्ता तैयार किया और कुछ इस दम-खम और इस जोशोखरोश से मीरशुजा पर टूटा कि उसकी सारी फौज में खलबली पड़ गयी। सरदार नमकखोर ने जब देखा कि शाही फ़ौज के क़दम डगमगा रहे हैं, तो अपनी पूरी ताक़त से बादल और बिजली की तरह लपका और तेगों से तेग़े और बर्छियों से बर्छियाँ खड़कने लगीं। तीन घंटे तक बला का शोर मचा रहा। यहाँ तक कि शाही फ़ौज के क़दम उखड़ गये और वह सिपाही, जिसकी तलवार मीरशुजा से गले मिली, मसऊद था।

तब सरदारी फ़ौज और अफ़सर सब के सब लूट के माल पर टूटे और मसऊद ज़ख्मों से चूर और खून में रंगा हुआ अपने कुछ जान पर खेलने वाले दोस्तों के साथ मस्क़ात के क़िले की तरफ़ लौटा मगर जब होश ने आँख खोलीं और हवास ठिकाने हुए तो क्या देखता है कि मैं एक सजे हुए कमरे में मखमली गद्दे पर लेटा हुआ हूँ। फूलों की सुहानी महक और लम्बी छरहरी सुन्दरियों के जमघट से कमरा चमक बना हुआ था। ताज्जुब से इधर-उधर ताकने लगा कि इतने में एक अप्सरा-जैसी सुन्दर युवती तश्त में फूलों का हार लिये धीरे-धीरे आती हुई दिखायी दी कि जैसे बहार फूलों की डाली पेश करने आ रही है। उसे देखते ही उन लंबी छरहरी सुन्दरियों ने आँखें बिछायीं और उसकी हिनाई हथेली को चूमा। मसऊद देखते ही पहचान गया। यह मलिका शेर अफ़गान थीं।

मलिका ने फूलों का हार मसऊद के गले में डाला। हीरे-जवाहरात उस पर चढ़ाये और सोने के तारों से टकी हुई मसनद पर बड़ी आन-बान से बैठ गयी। साज़िन्दों ने बीन ले-लेकर विजयी अतिथि के स्वागत में सुहाने राग अलापने शुरू किये। यहाँ तो नाच-गाने की महफ़िल थी उधर आपसी डाह ने नये-नये शिगूफ़े खिलाये। सरदार से शिकायत की कि मसऊद जरूर दुश्मन से जा मिला है और आज जान-बूझकर फ़ौज का एक दस्ता लेकर लड़ने को गया था ताकि उसे खाक और खून में सुलाकर सरदारी फ़ौज को बेचिराग़ कर दे। इसके सबूत में कुछ जाली खत भी दिखाये और इस कमीनी कोशिश में ज़बान की ऐसी चालाकी से काम लिया कि आखिर सरदार को इन बातों पर यक़ीन आ गया। पौ फटे जब मसऊद मलिका शेर अफ़गान के दरबार से विजय का हार गले में डाले सरदार को बधाई देने गया तो बजाय इसके कि क़द्रदानी का सिरोपाव और बहादुरी का तमग़ा पाये, उसको खरी-खोटी बातों के तीर का निशाना बनाया गया और उसे हुक्म मिला कि तलवार कमर से खोलकर रख दे।

मसऊद स्तम्भित रह गया। यह तेग़ा मैंने अपने बाप से विरसे में पाया है

और यह मेरे पिछले बड़प्पन की आख़िरी यादगार है। यह मेरी बाँहों की ताक़त और मेरा सहयोगी और मददगार है। इसके साथ कैसी-कैसी स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं, क्या मैं जीते जी इसे अपने पहलू से अलग कर दूँ ? अगर मुझ पर कोई आदमी लड़ाई के मैदान से क़दम हटाने का इलज़ाम लगा सकता, अगर कोई शख़्स इस तेग़े का इस्तेमाल मेरे मुक़ाबिले में ज्यादा कारगुज़ारी के साथ कर सकता, अगर मेरी बाँहों में तेग़ा पकड़ने की ताक़त न होती तो खुदा का शुक्र है कि मैं इन इलज़ामों से बरी हूँ। फिर क्यों मैं इसे हाथ से जाने दूँ ? क्या इसलिए कि मेरी बुराई चाहने वाले कुछ थोड़े से डाहियों ने सरदार नमकख़ोर का मन मेरी तरफ से फेर दिया है, ऐसा नहीं हो सकता।

मगर फिर उसे ख्याल आया, मेरी सरकशी पर सरदार और भी गुस्सा हो जायँगे और यक़ीनन मुझसे तलवार शमशीर के जोर से छीन ली जायगी। ऐसी हालत में मेरे हुआ जान छिड़कने वाले सिपाही कब अपने को काबू में रख सकेंगे। जरूर आपस में ख़ून की नदियाँ बहेंगी और भाई-भाई का सिर कटेगा। खुदा न करे कि मेरे सबब से यह दर्दनाक मार-काट हो, यह सोचकर उसने चुपके से शमशीर सरदार नमकख़ोर के बग़ल में रख दी और खुद सर नीचा किये ज़ब्त की इन्तहाई कूवत से गुस्से को दबाता हुआ खेमे से बाहर निकल आया।

मसऊद पर सारी फ़ौज गर्व करती थी और उस पर जानें वारने के लिए हथेली में सर लिये रहती थी। जिस वक्त उसने तलवार खोली है, दो हज़ार सूरमा सिपाही मियान पर हाथ रक्खे और शोले बरसाती हुई आँखों से ताकते, कनौतियाँ बदल रहे थे। मसऊद के एक ज़रा से इशारे की देर थी और दम के दम में लाशों के ढेर लग जाते। मगर मसऊद बहादुरी ही में बेजोड़ न था, ज़ब्त और धीरज में भी उसका जवाब न था। उसने यह जिल्लत और बदनामी सब गवारा की, तलवार देना गवारा किया, बग़ावत का इलज़ाम लेना गवारा किया और अपने साथियों के सामने सर झुकाना गवारा किया मगर यह गवारा न किया कि उसके कारण फौज में बग़ावत और हुक्म न मानने का ख्याल पैदा हो। और ऐसे नाजुक वक्त में जब कि कितने ही दिलेर जिन्होंने लड़ाई की आज़माइश में अपनी बहादुरी का सबूत दिया था, ज़ब्त हाथ से खो बैठते और गुस्से की हालत में एक-दूसरे के गले काटते, मसऊद खामोश रहा और उसके पैर नहीं डगमगाये। उसकी पेशानी पर ज़रा भी बल न आया, उसके तेवर ज़रा भी न बदले। उसने खून बरसाती आँखों से दोस्तों को अलविदा कहा और हसरत भरा दिल लिये उठा और एक गुफ़ा में छिप बैठा और जब सूरज डूबने पर वहाँ से उठा तो उसके दिल ने फ़ैसला कर लिया था कि यह बदनामी का दाग़ माथे से मिटाऊँगा और डाहियों को शर्मिन्दगी के गड्ढे में गिराऊँगा।

मसऊद ने फकीरों का भेस अख़्तियार किया, सर पर लोहे की टोपी के बजाय लम्बी जटाएँ बनायीं, जिस्म पर ज़िरहबख़्तर के बजाय गेरुए रंग का बाना सजा, हाथ में तलवार के बजाय फ़क़ीरों का प्याला लिया। जंग के नारे के बजाय फ़क़ीरों की सदा बुलन्द की और अपना नाम शेख़ मख़मूर रख दिया। मगर यह जोगी दूसरे जोगियों की तरह धूनी रमाकर न बैठा और न उस तरह का प्रचार शुरू किया। वह दुश्मन की फ़ौज में जाता और सिपाहियों की बातें सुनता। कभी उनकी मोर्चेबन्दियों पर निगाह दौड़ाता, कभी उनके दमदमों और क़िले की दीवारों का मुआइना करता। तीन बार सरदार नमकखोर दुश्मन के पंजे से ऐसे वक्त निकले जबकि उन्हें जान बचाने की कोई आस न रही थी। और यह सब शेख मखमूर की करामत थी। मिनक़ाद का क़िला जीतना कोई आसान बात न थी। पाँच हजार बहादुर सिपाही उसकी हिफ़ाजत के लिए कुर्बान होने को तैयार बैठे थे। तीस तोपें आग के गोले उगलने के लिए मुँह खोले हुए थीं और दो हज़ार सधे हुए तीरन्दाज हाथों में मौत का पैग़ाम लिये हुक्म का इन्तज़ार कर रहे थे मगर जिस वक्त सरदार नमकखोर अपने दो हजार बहादुरों के साथ इस क़िले पर चढ़ा तो पाँचों हजार दुश्मन सिपाही काठ के पुतले बन गये। तोपों के मुँह बन्द हो गये और तीरन्दाजों के तीर हवा में उड़ने लगे। और यह सब शेख़ मखमूर की करामात थी। शाह साहब वहीं मौजूद थे। सरदार दौड़कर उनके क़दमों पर गिर पड़ा और उनके पैरों की धूल माथे पर लगायी।

किशवरकुशा दोयम का दरबार सजा हुआ है। अंगूरी शराब का दौर चल रहा है और सरदार के बड़े-बड़े अमीर और रईस अपने-अपने दर्जे के हिसाब से अदब के साथ घुटना मोड़े बैठे हैं। यकायक भेदियों ने ख़बर दी कि मीरशुजा की हार हुई और जान से मारे गये। यह सुनकर किशवरकुशा के चेहरे पर चिन्ता के लक्षण दिखायी पड़े। सरदारों को सम्बोधित करके बोले--आप लोगों में ऐसा दिलेर कौन है जो इस बदमाश सरदार का सर क़लम करके हमारे सामने पेश करे। इसकी गुस्ताखियाँ अब हद से आगे बढ़ी जाती हैं। आप ही लोगों के बड़े-बूढ़ों ने यह मुल्क तलवार के जोर से मुरादिया ख़ानदान से छीना था। क्या आप उन्हीं पुरखों की औलाद नहीं हैं ? यह सुनते ही सरदारों में एक सन्नाटा छा गया, सबके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं और किसी की हिम्मत न पड़ी कि बादशाह की दावत कबूल करें। आखिरकार शाह किशवरकुशा के बुढ्ढे चचा खुद उठे और बोले--ऐ शाहे जवांबख़्त ! मैं तेरी दावत कबूल करता हूँ, अगरचे मैं बुड्ढा हो गया हूँ और बाजुओं में तलवार पकड़ने की ताक़त बाक़ी नहीं रही, मगर मेरे खून में वही गर्मी और दिल में वही जोश है जिनकी बदौलत हमने यह मुल्क शाह बामुराद से लिया था। या तो मैं इस नापाक कुत्ते की हस्ती खाक में मिला दूँगा या इस कोशिश में अपनी जान निसार कर दूँगा, ताकि अपनी आँखों से सल्तनत की बर्बादी न देखूँ। यह कहकर अमीर पुरतदबीर वहाँ से उठा और मुस्तैदी से जंगी तैयारियों में लग गया। उसे मालूम था कि यह आख़िरी मुक़ाबिला है और अगर इसमें नाकाम रहे तो मर जाने के सिवाय और कोई चारा नहीं है। उधर सरदार नमकख़ोर धीरे-धीरे राजधानी की तरफ़ बढ़ता आता था, यकायक उसे खबर मिली कि अमीर पुरतदबीर बीस हजार पैदल और सवारों के साथ मुक़ाबिले के लिए आ रहा है।

यह सुनते ही सरदार नमकख़ोर की हिम्मतें छूट गयीं। अमीर पुरतदबीर बुढ़ापे के बावजूद अपने वक्त का एक ही सिपहसालार था। उसका नाम सुनकर बड़े-बड़े बहादुर कानों पर हाथ रख लेते थे। सरदार नमकख़ोर का खयाल था कि अमीर कहीं एक कोने में बैठे खुदा की इबादत करते होंगे। मगर उनको अपने मुक़ाबिले में देखकर उसके होश उड़ गये कि कहीं ऐसा न हो कि इस हार से हम अपनी सारी जीतें खो बैठें और बरसों की मेहनत पर पानी फिर जाय। सब की यही सलाह हुई कि वापस चलना ही ठीक है। उस वक़्त शेख़ मख़मूर ने कहा-- ऐ सरदार नमकखोर ! तूने मुल्के जन्नतनिशाँ को छुटकारा दिलाने का बीड़ा उठाया है। क्या इन्हीं हिम्मतों से तेरी आरजूएँ पूरी होंगी ? तेरे सरदार और सिपाहियों ने कभी मैदान से क़दम पीछे नहीं हटाया, कभी पीठ नहीं दिखायी, तीरों की बौछार को तुमने पानी की फुहार समझो और बन्दूकों की बाढ़ को फूलों की बहार। क्या इन चीज़ों से इतनी जल्दी तुम्हारा जी भर गया ? तुमने यह लड़ाई सल्तनत को बढ़ाने के कमीने इरादे से नहीं छेड़ी है। तुम सच्चाई और इंसाफ़ की लड़ाई लड़ रहे हो। क्या तुम्हारा जोश इतने जल्द ठंडा हो गया ? क्या तुम्हारी इंसाफ की तलवार की प्यास इतनी जल्दी बुझ गयी ? तुम खूब जानते हो कि इंसाफ और सच्चाई की जीत जरूर होगी, तुम्हारी इन बहादुरियों का इनाम खुदा के दरबार से जरूर मिलेगा। फिर अभी से क्यों हौसले छोड़े देते हो ? क्या बात है, अगर अमीर पुरतदबीर बड़ा दिलेर और इरादे का पक्का सिपाही है। अगर वह शेर है तो तुम्हारा तेग़ा फौलाद का है; अगर उसके सिपाही जान पर खेलने

वाले हैं तो तुम्हारे सिपाही भी सर कटाने के लिए तैयार हैं। हाथों में तेग़ा मजबूत पकड़ों और खुदा का नाम लेकर दुश्मन पर टूट पड़ो, तुम्हारे तेवर कहे देते हैं कि मैदान तुम्हारा है।

इस पुरजोश तक़रीर ने सरदारों के हौसले उभार दिये, उनकी आँखें लाल हो गयीं, तलवारें पहलू बदलने लगीं और क़दम बरबस लड़ाई के मैदान की तरफ़ बढ़े। शेख़ मख़मूर ने तब फ़क़ीरी बाना उतार फेंका, फकीरी प्याले को सलाम किया और हाथों में वही तलवार और ढाल लेकर, जो किसी वक़्त मसऊद से छीने गये थे, सरदार नमकख़ोर के साथ-साथ सिपाहियों और अफ़सरों का दिल बढ़ाते शेरों की तरह बिफरता हुआ चला। आधी रात का वक़्त था, अमीर के सिपाही अभी मंजिलें मारे चले आते थे। बेचारे दम भी न लेने पाये थे कि एकाएक सरदार नमकखोर के आ पहुँचने की ख़बर पायी। होश उड़ गये और हिम्मतें टूट गयीं। मगर अमीर शेर की तरह गरजकर खेमे से बाहर आया और दम के दम में अपनी सारी फ़ौज दुश्मन के मुकाबले में क़तार बाँधकर खड़ी कर दी कि जैसे एक माली था कि आया और इधर-इधर बिखरे हुए फूलों को एक गुलदस्ते में सजा गया।

दोनों फ़ौजें काले-काले पहाड़ों की तरह आमने-सामने खड़ी हैं और तोपों का आग बरसाना ज्वालामुखी का दृश्य प्रस्तुत कर रहा था। उनकी घनगरज आवाज़ से बला का शोर मच रहा था। यह पहाड़ धीरे-धीरे आगे बढ़ते गये। यकायक वह टकराये और कुछ इस जोर से टकराये कि ज़मीन कांप उठी और घमासान की लड़ाई शुरू हो गयी। मसऊद का तेग़ा इस वक़्त एक बला हो रहा था, जिधर पहुँचता लाशों के ढेर लग जाते और सैकड़ों सर उस पर भेंट चढ़ जाते।

पौ फटे तक तेग़े यों ही खड़का किये और यों ही खून का दरिया बहता रहा। जब दिन निकला तो लड़ाई का मैदान मौत का बाज़ार हो रहा था। जिधर निगाह उठती थी, मरे हुओं का सर और हाथ-पैर लहू में तैरते दिखायी देते थे। यकायक शेख़ मख़मूर की कमान से एक तीर बिजली बनकर निकला और अमीर पुरतदबीर की जान के घोंसले पर गिरा और उसके गिरते ही शाही फ़ौज भाग निकली और सरदारी फ़ौज फ़तेह का झण्डा उठाये राजधानी की तरफ़ बढ़ी।

जब यह जीत की लहर-जैसी फ़ौज शहर की दीवार के अन्दर दाख़िल हुई तो शहर के मर्द और औरत, जो बड़ी मुद्दत से गुलामी की सख्तियाँ झेल रहे थे, उसकी अगवानी के लिए निकल पड़े। सारा शहर उमड़ आया। लोग सिपाहियों को गले लगाते थे कि जैसे बुलबुलें थीं जो जो बहेलिये के पंजे से रिहाई पाने पर बाग़ में फूलों को चूम रही थीं। लोग शेख़ मख़मूर के पैरों की धूल माथे से लगाते थे और सरदार नमकख़ोर के पैरों पर खुशी के आँसू बहाते थे।

अब मौक़ा था कि मसऊद अपना जोगिया भेस उतार फेंके और ताजोतख़्त का दावा पेश करे। मगर जब उसने देखा कि मलिका शेर अफ़गान का नाम हर आदमी की ज़बान पर है तो ख़ामोश हो रहा। वह खूब जानता था कि अगर मैं अपने दावे को साबित कर दूँ तो मलिका का दावा खत्म हो जायगा। मगर तब भी यह नामुमकिन था कि सख़्त मारकाट के बिना यह फ़ैसला हो सके। एक पुरजोश और आरज़ूमन्द दिल के लिए इस हद तक ज़ब्त करना मामूली बात न थी। जबसे उसने होश सँभाला, यह ख़याल कि मैं इस मुल्क का बादशाह हूँ, उसके रगरेशे में घुल गया था। शाह बामुराद की वसीयत उसे एकदम को भी न भूलती थी। दिन को वह बादशाहत के मनसूबे बाँधता और रात को बादशाहत के सपने देखता । यह यक़ीन कि मैं बादशाह हूँ, उसे बादशाह बनाये हुए था। अफ़सोस आज वह मंसूबे टूट गये और वह सपना तितर-बितर हो गया। मगर मसऊद के चरित्र में मर्दाना ज़ब्त अपनी हद पर पहुँच गया था। उसने उफ़ तक न की, एक ठण्डी आह भी न भरी, बल्कि पहला आदमी जिसने मलिका के हाथों को चूमा और उसके सामने सर झुकाया, वह फ़क़ीर मख़मूर था। हाँ, ठीक उस वक़्त जबकि वह मलिका के हाथ को चूम रहा था, उसकी ज़िन्दगी भर की लालसाएँ आँसू की एक बूँद बनकर मलिका की मेंहदी-रची हथेली पर गिर पड़ीं कि जैसे मसऊद ने अपनी लालसा का मोती मलिका को सौंप दिया। मलिका ने हाथ खींच लिया और फ़क़ीर मख़मूर के चेहरे पर मुहब्बत से भरी हुई निगाह डाली। जब सल्तनत के सब दरबारी भेंट दे चुके, तोपों की सलामियाँ दगने लगीं, शहर में धूमधाम का बाज़ार गर्म हो गया और खुशियों के जलसे चारों तरफ़ नजर आने लगे।

राजगद्दी के तीसरे दिन मसऊद खुदा की इबादत में बैठा हुआ था कि मलिका शेर अफ़गन अकेले उसके पास आयी और बोली--मसऊद, मैं एक नाचीज़ तोहफ़ा तुम्हारे लिए लायी हूँ और वह मेरा दिल है। क्या तुम उसे मेरे हाथ से क़बूल करोगे? मसऊद अचम्भे से ताकता रह गया, मगर जब मलिका की आँखें मुहब्बत के नशे में डूबी हुई पायीं तो चाव के मारे उठा और उसे सीने से लगाकर बोला--मैं तो मुद्दत से तुम्हारी बर्छी की नोक का घायल हूँ, मेरी किस्मत है कि आज तुम मरहम रखने आयी हो।

मुल्के जन्नतनिशाँ अब आज़ादी और खुशहाली का घर है। मलिका शेर अफ़गन को अभी गद्दी पर बैठे साल भर से ज्यादा नहीं गुजरा, मगर सल्तनत का कारबार बहुत अच्छी तरह और बड़ी खूबी से चल रहा है और इस बड़े काम में उसका प्यारा शौहर मसऊद, जो अभी तक फ़क़ीरा मख़मूर के नाम से मशहूर है, उसका सलाहकार और मद्दगार है।

रात का वक़्त था, शाही दरबार सजा हुआ था, बड़े-बड़े वजीर अपने पद के अनुसार बैठे हुए थे और नौकर ज़र्क-बर्क वर्दियाँ पहने हाथ बाँधे खड़े थे कि एक ख़िदमतगार ने आकर अर्ज की--दोनों जहान की मलिका, एक गरीब औरत बाहर खड़ी है और आपके क़दमों का बोसा लेने की गुजारिश करती है। दरबारी चौंके और मलिका ने ताज्जुब भरे लहजे में कहा--अन्दर हाज़िर करो। ख़िदमतगार बाहर चला गया और ज़रा देर में एक बुढ़िया लाठी टेकती हुई आयी और अपनी पिटारी से एक जड़ाऊ ताज निकालकर बोली-- तुम लोग इसे ले लो, अब यह मेरे किसी काम का नहीं रहा। मिया ने मरते वक्त इसे मसऊद को देकर कहा था कि तुम इसके मालिक हो, मगर अपने जिगर के टुकड़े मसऊद को कहाँ ढूंढूं। रोते-रोते अंधी हो गयी, सारी दुनिया की ख़ाक छानी, मगर उसका कहीं पता न लगा। अब ज़िन्दगी से तंग आ गयी हूँ, जीकर क्या करूँगी। यह अमानत मेरे पास है, जिसका जी चाहे, ले ले।

दरबार में सन्नाटा छा गया। लोग हैरत के मारे मूरत-से बन गये थे कि जैसे एक जादूगर था जो उँगली के इशारे से सबका दम बन्द किये हुए था। यकायक मसऊद अपनी जगह से उठा और रोता हुआ जाकर रिन्दा के पैरों पर गिर पड़ा। रिन्दा अपने जिगर के टुकड़े को देखते ही पहचान गयी, उसे छाती से लगा लिया और वह जड़ाऊ ताज उसके सर पर रखकर बोली--साहबो, यही मेरा प्यारा मसऊद और शाहे बामुराद का बेटा है, तुम लोग इसकी रिआया हो, यह ताज इसका है, यह मुल्क इसका है और सारी खिलक़त इसकी है। आज से वह अपने मुल्क का बादशाह है, अपनी क़ौम का ख़ादिम।

दरबार में क़यामत का शोर मचने लगा, दरबारी उठे और मसऊद को हाथों हाथ ले जाकर तख़्त पर मलिका शेर अफ़गान के बग़ल में बिठा दिया। भेंटें दी जाने लगीं, सलामियाँ दगने लगीं, नफ़ीरियों ने खुशी का गीत गाया और बाजों ने जीत का शोर मचाया। मगर जब ज़ोश की यहाँ खुशी ज़रा कम हुई और लोगों ने रिन्दा को देखा तो वह मर गयी थीं। गोया आरज़ूएँ रूह बनकर उसके मिट्टी के तन को जिन्दा रखे हुए थीं। ❑ ❑

('सोज़े वतन' से साभार)

फाँसी

○ विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'

बाबू रेवतीशंकर तथा पंडित कामताप्रसाद में बड़ी घनिष्ठ मित्रता थी। दोनों एक ही स्कूल तथा एक ही क्लास में वर्षों तक साथ-साथ पढ़े थे। बाबू रेवतीशंकर एक धनसम्पन्न व्यक्ति थे। उनके पिता रियासतदार तथा ज़मींदार आदमी थे। पंडित कामताप्रसाद मध्यम श्रेणी के व्यक्ति थे। उनके केवल दो मकान थे। एक में वह स्वयम् रहते थे, दूसरा तीस रुपए मासिक पर किराए पर उठा हुआ था। पंडित कामताप्रसाद के परिवार में केवल चार प्राणी थे। एक तो वह स्वयम, उनकी पत्नी, माता तथा पिता। उनके पिता एक बैंक में हेड-क्लर्क थे। पंडित कामताप्रसाद लखनऊ मेडिकल कालेज से एल० एम० एस० की परीक्षा पास करके आए थे और उन्होंने डॉक्टरी करना आरम्भ ही किया था।

पंडित कामताप्रसाद अपने छोटे से औषधालय में बैठे हुए थे। उनके सामने मेज पर सर्जरी (जर्राही) के औज़ारों का एक बक्स खुला हुआ रक्खा था। कामताप्रसाद उसमें की एक-एक वस्तु उठा-उठा कर बड़े ध्यानपूर्वक देख रहे थे। इसी समय उनके मित्र रेवतीशंकर आ गए। रेवतीशंकर ने कुर्सी पर बैठते हुए पूछा--क्या हो रहा है ?

कामताप्रसाद मुस्कराकर बोले-- कुछ नहीं, कुछ सर्जरी का सामान मँगाया था। वह आज आया है, वही देख रहा था।

रेवतीशंकर भी उन वस्तुओं को देखने लगे। तीन चार बड़े-बड़े चाकुओं को देखकर रेवतीशंकर बोले--यह चाकू तो यार बड़े सुन्दर हैं। जी चाहता है, इनमें से एक मैं ले लूँ।

कामताप्रसाद हँसकर बोले--तुम क्या करोगे ?

''करूँगा क्या, रक्खे रहूँगा।''

"यह तो चीर-फाड़ के काम के हैं।"

''हाँ-हाँ और नहीं क्या, इनसे साग-भाजी थोड़े ही कतरी जायगी।''

''मैंने सोचा कदाचित् तुम इसीलिए चाहते हो। '' कामताप्रसाद ने हँसकर कहा।

''अरे नहीं, ऐसा बेवकूफ़ मत समझो। मुझे अच्छे मालूम हो रहे हैं, इससे जी ललचा रहा है।''

''तो एक ले लो।''

''तुम्हारा सेट तो ख़राब न होगा ?''

''नहीं, सेट ख़राब नहीं होगा। मैंने एक चाकू अधिक मँगा लिया था।''

''तब ठीक है !'' कहकर रेवतीशंकर ने एक चाकू ले लिया।

''बड़े तेज़ चाकू हैं !'' रेवतीशंकर ने उक्त चाकू की धार पर उँगली फेरकर कहा।

''सर्जरी में तेज़ ही की आवश्यकता होती है। जितना ही तेज़ औज़ार होगा, ऑपरेशन उतना ही शीघ्र तथा अच्छा होगा।'' रेवतीशंकर चाकू को एक काग़ज़ में लपेटकर जेब में रखते हुए बोले--यदि मुड़ने वाला होता तो बड़ा ही सुन्दर होता।

''सर्जरी के चाकू मुड़ने वाले बहुत कम होते हैं, इतना बड़ा चाकू तो कभी भी मुड़ने वाला नहीं होता।''

''ख़ैर ! कुछ रोगी-ओगी आने लगे या नहीं ?''

''अभी बैठते हुए दिन ही कितने हुए ?''

''एक महीने से अधिक तो हो गया होगा।''

''तो फिर ? क्या बहुत दिन हो गए ?''

''साल-छः महीने में कुछ प्रैक्टिस चमकेगी, अभी तो केवल हाज़िरी है।''

''कुछ हर्ज न हो तो आओ चलें घूम आवें !''

''मुझे काम ही कौन है, चलो चलें। किधर चलोगे।''

''चलो इधर बाज़ार की ओर चलें।''

''बाज़ार की तरफ़ चल के क्या लोगे ? चलना है तो इधर बाहर की ओर चलो। संध्या समय है, खुली वायु का आनन्द लें।''

''बस, तुम तो वही डॉक्टरी की बातें करने लगे। कौन हम रोगी या दुर्बल हैं। यह शिक्षा आप रोगियों के लिए सुरक्षित रखिए।''

''खुली वायु तो सबके लिए लाभदायक है, इसमें रोगी-निरोगी की कौन सी बात है ?''

''ख़ैर, इस समय तो बाज़ार की ओर चलो, फिर देखा जायेगा।''

''अच्छी बात है, जैसी तुम्हारी इच्छा।''

कामताप्रसाद ने औज़ारों को बक्स में बन्द करके अलमारी में रख दिया और नौकर से बोले--''रामधन, हम घूमने जाते हैं। तुम साढ़े सात बजे बन्द करके चाबी घर पहुँचा देना।'' यह कहकर कामताप्रसाद ने अपनी टोपी उठाई और रेवतीशंकर से बोले--चलो।

दोनों व्यक्ति चले और घूमते-फिरते चौक पहुँचे। चौक में प्रविष्ट होते ही रेवतीशंकर ने कहा--देखिए कितनी रौनक़ है। जंगल में यह आनन्द कहाँ ?

कामताप्रसाद मुस्कराकर बोले--निस्सन्देह, जंगल में तो यह भीड़भाड़ नहीं मिलेगी।
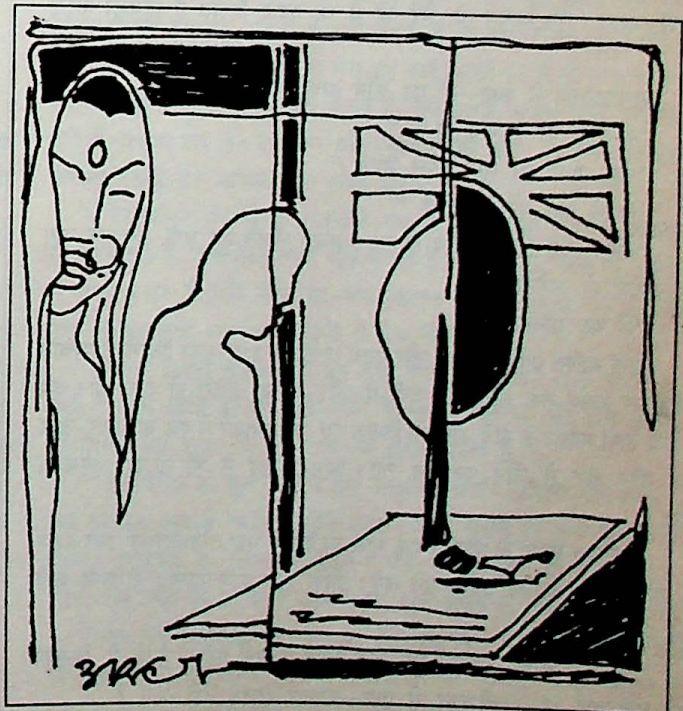
चित्र : अरुण सिंह

"आदमियों ही की तो रौनक़ होती है ; जहाँ आदमी नहीं, वहाँ क्या रौनक़ हो सकती है।"

"अपनी-अपनी रुचि की बात है। किसी को यह पसन्द है, किसी को वह।"

इसी प्रकार की बातें करते हुए ये दोनों व्यक्ति मन्द गति से जा रहे थे। हठात् रेवतीशंकर ने कामताप्रसाद का हाथ दबाकर कहा--ज़रा ऊपर तो देखो !

कामताप्रसाद ने ऊपर दृष्टि उठाई। एक छज्जे पर एक वेश्या बैठी हुई थी। वेश्या युवती तथा अत्यन्त सुन्दर थी।

कामताप्रसाद बोले--यह कौन है ? पहले तो इसे कभी नहीं देखा।

"जान पड़ता है कहीं बाहर से आयी है।"

"अच्छा सौन्दर्य है।"

"क्या बात है ! हजारों में एक है !"

"परन्तु किस काम का ?"

"क्यों ?"

"वेश्या का सौन्दर्य तो उस पुष्प के समान है, जो देखने में तो बड़ा सुन्दर है, परन्तु नीरस तथा निर्गन्ध है।"

"अब लगे फ़िलॉसफ़ी बघारने, इन्हीं बातों से मुझे नफ़रत है।"

"झूठ थोड़े ही कहता हूँ।"

"रहने दीजिए, बड़े तत्ववक्ता की दुम बने हैं।"

"अच्छा न सही।"

"बोलो चलते हो ! पाँच मिनट बैठकर चले आवेंगे, परिचय हो जायेगा।"

"अजी बस रहने भी दो।"

"तुम्हें हमारी क़सम, केवल पाँच मिनट के लिए। "

"इस समय जाने दो, फिर किसी दिन सही।"

रेवतीशंकर समझ गए कि कामताप्रसाद की इच्छा तो है, पर ऊपर से साधुता दिखाने के लिए अस्वीकार कर रहे हैं। अतएव उन्होंने कहा--फिर-फिर का झगड़ा मैं नहीं पालता। तुम जानते हो, मेरे जी में जो आता है वह मैं तत्काल करता हूँ।

कामताप्रसाद ने कहा--तो यह कौन अच्छी बात है ?

"न सही, पर स्वभाव तो है।"

"कहा मानो इस समय टाल जाओ।"

"टालने वाले पर लानत है !"

"ओफ़ ओह ! इतने मुग्ध हो गए। अच्छा लौटते हुए सही, तब तक ज़रा और अंधेरा हो जायेगा।"

"हाँ यह मानी।"

दोनों व्यक्ति आगे बढ़ गए और आध घण्टे तक इधर-उधर फिरने के पश्चात लौटे। इस समय तक सात बज चुके थे और यथेष्ट अंधेरा हो चुका था। जब ये दोनों उक्त मकान के नीचे आए तो ठिठक गए। रेवतीशंकर ने एक बार इधर-उधर देखा और खट से ज़ीने पर चढ़ गए। कामताप्रसाद ने भी उनका अनुकरण किया !

उपरोक्त घटना के पश्चात एक मास व्यतीत हो गया। रेवतीशंकर उक्त वेश्या के यहाँ स्वच्छन्दतापूर्वक आने-जाने लगे। उनके साथ कामताप्रसाद भी कभी-कभी चले जाते थे।

एक दिन सन्ध्या-समय रेवतीशंकर वेश्या के यहाँ पहुँचे। वेश्या ने, जिसका नाम सुन्दरबाई था, रेवतीशंकर से पूछा--डॉक्टर साहब नहीं आए ?

"हाँ, नहीं आए।"

"वह बहुत कम आते हैं, इसका क्या कारण है ?"

"वह मेरे साथ के कारण चले आते हैं। वैसे वह वेश्याओं के यहाँ बहुत कम आते-जाते हैं।"

सुन्दरबाई म्लान मुख होकर मौन हो गई। रेवती-शंकर ने पूछा--क्यों, डॉक्टर साहब की याद क्यों आई ?

"डॉक्टर साहब बड़े भले आदमी हैं, मुझे वह बड़े अच्छे लगते हैं।"

रेवतीशंकर के हृदय में ईर्ष्या का एक बवण्डर उठा। उन्होनें पूछा-- उनके आने से तुम्हें कुछ प्रसन्न्ता होती है ?

"हाँ, अवश्य होती है।"

"और मेरे आने से ?"

रेवतीशंकर ने सुन्दरबाई के मुख का भाव देखकर समझ लिया कि वह मिथ्या बोल रही है। उन्होंने कहा--नहीं, मेरे आने से नहीं होती।

"क्यों, आप मेरा कुछ छीन लेते हैं क्या ?" सुन्दरबाई ने किंचित् मुस्कराकर कहा।

रेवतीशंकर सुन्दरबाई से एक प्रेमपूर्ण उत्तर सुनना चाहते थे, परन्तु जब उसने केवल उपरोक्त बात कहकर मौन धारण कर लिया तो उन्हें बड़ी निराशा हुई। उनके मन में यह शंका उत्पन्न हुई कि कदाचित् सुन्दरबाई डॉक्टर साहब से प्रेम करती है। इस शंका के उत्पन्न होते ही कामताप्रसाद के प्रति उनके हृदय में द्वेष उत्पन्न हुआ। रेवतीशंकर ने उसी समय निश्चय किया कि इस बात की जाँच करनी चाहिए।

उस दिन वह थोड़ी ही देर बैठकर चले आए।

चित्र : सुशील पाण्डेय
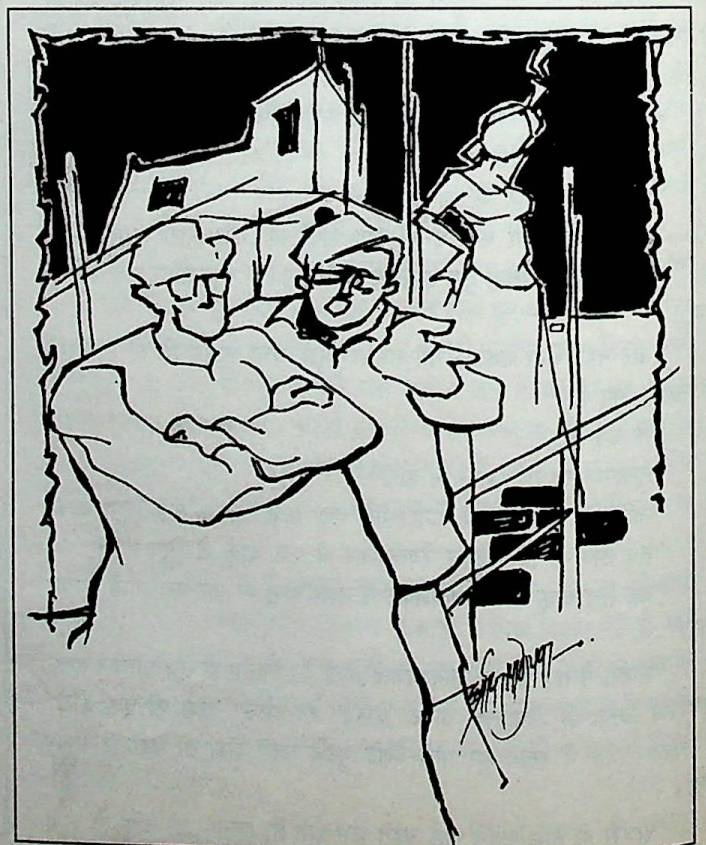
दूसरे दिन वह कामताप्रसाद के पास पहुँचे।

उनसे उन्होंने कहा--कल सुन्दरबाई तुम्हें याद कर रही थी।

कामताप्रसाद नेत्र विस्फारित करके मुस्कराते हुए बोले--मुझे याद कर रही थी।

"जी हाँ।"

"भला मुझे वह क्यों याद करने लगी ? तुम्हारे होते हुए उसका मुझे याद करना आश्चर्य की बात है।"

रेवतीशंकर शुष्क हँसी के साथ बोले--क्यों ? मुझमें कौन लाल टँके हैं ?

"लाल क्यों नहीं टँके हैं ? तुमसे उसे चार पैसे की आमदनी है, मेरे पास क्या धरा है ? तुमने अभी तक उसे सौ दो सौ दे ही दिए होंगे, मैंने क्या दिया?"

"फिर भी वह तुम्हें याद करती थी।"

"इसीलिए याद करती होगी कि उनसे कुछ नहीं मिला, कुछ वसूल करना चाहिए। सो यहाँ वह गुड़ ही नहीं जिसे चींटियाँ खायँ।"

"ख़ैर जो कुछ हो, आज तुम मेरे साथ चलो।"

"क्षमा करो।"

"नहीं, आज तो चलना पड़ेगा ।"

"भाई साहब, मेरी इतनी हैसियत नहीं जो वेश्याओं के यहाँ जाऊँ, मैं ग़रीब आदमी हूँ। यह काम तो आप जैसे धनी लोगों का है।"

"तो वह कौन तुमसे रोकड़ माँगती है।"

"माँगे कैसे, जब कुछ गुंजायश पावे तब तो माँगे। आपकी तरह मैं भी रोज़ आने-जाने लगूँ तो मुझसे भी सवाल करे।"

"अजी नहीं, यह बात नहीं। अच्छा ख़ैर, आज तो चले चलो।"

"माफ़ करो।"

"अरे तो कुछ आज के जाने से वह तुम्हारी कुर्की न करा लेगी।"

"नहीं, यह बात नहीं।"

"तो फिर ?"

"वैसे ही, जहाँ तक बचूँ अच्छा ही है।"

"आज तो चलना ही पड़ेगा।"

"ख़ैर, तुम ज़िद करते हो तो चला चलूँगा।"

दोनों सुन्दरबाई के मकान पर पहुँचे। डॉक्टर साहब को देखते ही सुन्दरबाई का मुख खिल उठा। उसने बड़े प्रेमपूर्वक उनका स्वागत किया। रेवतीशंकर सुन्दरबाई के व्यवहार को बड़े ध्यानपूर्वक देख रहे थे।

सुन्दरबाई ने पूछा--डॉक्टर साहब, आप हमसे कुछ नाराज़ हैं क्या ?

डॉक्टर साहब ने मुस्कराकर कहा--नहीं, नाराज़ होने की कौन सी बात है ?

"तो फिर आते क्यों नहीं।"

"एक तो फ़ुर्सत नहीं मिलती, दूसरे हम ग़रीबों की पूछ आपके यहाँ कहाँ ?"

सुन्दरबाई कुछ लज्जित होकर बोली--नहीं, आपका यह भ्रम है। हम भी आदमी पहचानते हैं। हर एक आदमी से रण्डीपन का व्यवहार काम नहीं देता।

"आपमें यह विशेषता हो तो मैं कह नहीं सकता, अन्यथा साधारणतया वेश्याओं की यही दशा है कि उनके यहाँ धनी आदमी ही पूछे जाते हैं।"

"नहीं, मेरे सम्बन्ध में आप ऐसा कभी न सोचिएगा।"

"ख़ैर मुझे यह सुनकर प्रसन्नता हुई कि आपमें यह दोष नहीं है।"

जब तक कामताप्रसाद बैठे रहे, तब तक सुन्दरबाई उन्हीं से बातचीत करती रही। रेवतीशंकर को उसका यह व्यवहार बहुत ही बुरा लगा । एक घण्टे पश्चात् कामताप्रसाद बोले--अब मुझे आज्ञा दीजिए।

सुन्दरबाई ने कहा-- आया कीजिए।

"हाँ, आया करूँगा।" यह कहकर रेवतीशंकर से बोले--चलते हो ?

"तुम जाओ, मैं तो ज़रा देर बैठूँगा।"

"अच्छी बात है।" कहकर कामताप्रसाद चल दिए। उनके जाने के पश्चात् सुन्दरबाई रेवतीशंकर से बोली--बड़े शरीफ़ आदमी हैं।

रेवतीशंकर रुखाई से बोले--हाँ, क्यों नहीं ?

इसके पश्चात् दोनों कुछ देर तक मौन बैठे रहे। तदुपरान्त रेवतीशंकर सुन्दरबाई के कुछ निकट खिसककर बोले--सुन्दरबाई, मैं तुमसे कितना प्रेम करता हूँ, यह शायद अभी तुम्हें मालूम नहीं हुआ।

सुन्दरबाई ने कहा--यह आपकी कृपा है।

रेवतीशंकर ने मुँह बनाकर कहा--केवल इसके कहने से मुझे सन्तोष नहीं हो सकता; प्रेम सदैव प्रेम का प्रतिदान चाहता है।

"चाहता होगा, मुझे तो अभी तक इसका अनुभव नहीं हुआ।"

"अब होना चाहिए !"

"अपने बस की बात थोड़े ही है।"

"मैं तुम्हारी प्रत्येक अभिलाषा, प्रत्येक इच्छा पूर्ण करने को तत्पर रहता हूँ, फिर भी तुम्हें मेरे प्रेम पर सन्देह है ?"

"न मुझे सन्देह है और न विश्वास है। आप मेरी ख़ातिर करते हैं तो मैं भी आपकी ख़ातिर करती हूँ।"

"केवल ख़ातिर से मुझे सन्तोष नहीं हो सकता। मैं चाहता हूँ कि जैसे मैं तुमसे प्रेम करता हूँ, वैसे ही तुम भी मुझसे प्रेम करो।"

"यह तो मेरे बस की बात नहीं है।"

"होना चाहिए !"

"चाहिए तो सब कुछ, पर जब हो तब न। वैसे यदि हमारे पेशे की बात पूछिए तो हम हर एक आदमी से यही कहती हैं कि हम जितना तुमसे प्रेम करती हैं उतना किसी से भी नहीं; परन्तु मेरा यह दस्तूर नहीं है। मैं तो साफ़ बात कहती हूँ। आप हमारे ऊपर रुपए ख़र्च करते हैं, हम उसका बदला दूसरे रूप में चुका देती हैं। झगड़ा तय है। रही प्रेम और मुहब्बत की बात, सो यह बात हृदय से सम्बन्ध रखती है। आपका ज़ोर हमारे शरीर पर है, हृदय पर नहीं।"

रेवतीशंकर चुप हो गए। उन्होंने मन में सोचा--यह निश्चय कामताप्रसाद से प्रेम करती है, तभी ऐसी स्पष्ट बातें करती है। यह विचार आते ही उनके हृदय में कामताप्रसाद के प्रति हिंसा का भाव उत्पन्न हुआ। उन्होंने कुछ देर पश्चात् कहा--शायद तुम्हें आज तक किसी से प्रेम नहीं हुआ।

सुन्दर हँसकर बोली--यदि प्रेम हुआ होता तो हम इस तरह बाज़ार में बैठी होतीं ? आप बच्चों की सी बातें करते हैं। हमारे पेशे से और प्रेम से बैर है। जो जिससे प्रेम करता है, वह उसी का होकर रहता है।

रेवतीशंकर को सुन्दरबाई के इस उत्तर पर यद्यपि विश्वास नहीं हुआ, परन्तु कुछ सान्त्वना अवश्य मिली। उन्होंने कहा-- ख़ैर, मुझसे तो तुम्हें प्रेम करना ही पड़ेगा। सुन्दरबाई ने मुस्कराकर कहा-- यदि करना पड़ेगा तो करूँगी; पर जब करूँगी तब हृदय की प्रेरणा से, ज़बरदस्ती कोई किसी से प्रेम नहीं करा सकता।

एक दिन सुन्दरबाई की माता को हैज़ा हो गया। सुन्दरबाई ने कामताप्रसाद को बुलवाया। कामताप्रसाद ने बड़े परिश्रम से उसे अच्छा किया। चलते समय

सुन्दरबाई ने उन्हें फ़ीस देनी चाही। कामताप्रसाद ने फ़ीस लेना अस्वीकार करते हुए कहा--मैं इतनी बार तुम्हारे यहाँ आया, पान-इलायची खाता रहा, गाना सुनता रहा; मैने तुम्हें क्या दिया ? इसलिए मैं तुमसे फ़ीस नहीं ले सकता।

उस दिन से कामताप्रसाद का आदर और भी अधिक होने लगा। इधर ज्यों-ज्यों कामताप्रसाद का आदर-सम्मान बढ़ता जाता था, त्यों-त्यों रेवतीशंकर जल-भुनकर राख होते जा रहे थे। वह सोचते थे, मै इतना रुपया-पैसा ख़र्च करता हूँ, पर मेरा इतना आदर नहीं होता, जितना कामताप्रसाद का होता है। मेरे जाने पर भी यद्यपि वह मुस्कराकर मेरा स्वागत करती है, पर वह बात नहीं रहती। मुझसे वह कुछ खिंची सी रहती है।

यह बात वास्तव में सत्य थी। सुन्दरबाई रेवतीशंकर से खिंची रहती थी। इसके दो कारण थे--एक तो रेवतीशंकर उसे पसन्द नहीं था इस कारण स्वाभाविक खिंचाव था; दूसरे व्यवसाय-नीति के कारण भी कुछ खिंचाव था। सुन्दरबाई को अपने रूप-यौवन पर इतना गर्व तथा विश्वास था कि वह उन लोगों से, जो उस पर मुग्ध होते थे, कुछ खिंचे रहने में ही अधिक लाभ समझती थी। रेवतीशंकर के सम्बन्ध में उसकी यह नीति सर्वथा लाभप्रद निकली। रेवतीशंकर उसे प्रसन्न करने तथा उसको अपने ऊपर कृपालु बनाने के लिए--केवल कृपालु बनाने के लिए ही नहीं, वरन् अपने प्रति उसके हृदय में प्रेम उत्पन्न करने के लिए उसकी प्रत्येक आज्ञा शिरोधार्य करने के लिए प्रस्तुत रहते थे। इसके परिणाम-स्वरूप सुन्दरबाई को उनसे यथेष्ट आय थी।

कामताप्रसाद के प्रति सुन्दरबाई का व्यवहार इसके सर्वथा प्रतिकूल था। सुन्दरबाई तो पहले ही से कामताप्रसाद के सरल स्वभाव, भलमनसाहत, व्यवहार-कुशलता, स्पष्टवादिता आदि गुणों पर मुग्ध थी। कामताप्रसाद सुन्दर भी यथेष्ट थे, उनका पुरुष-सौन्दर्य रेवतीशंकर से सैकड़ों गुना अच्छा था। परन्तु सबसे अधिक जिस बात ने सुन्दरबाई पर प्रभाव डाला, वह उसके रूप-यौवन के प्रति कामताप्रसाद की निस्पृहता थी। कामता प्रसाद के किसी हावभाव से यह कभी प्रकट न हुआ कि वह सुन्दरबाई पर मुग्ध हैं। सुन्दरबाई के लिए यह एक नवीन और अद्‌भुत बात थी। आज तक जितने पुरुष उसके पास आए, वे सब उसकी रूप जयोति पर पतंग की भाँति गिरे; परन्तु कामताप्रसाद पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अन्य पुरुषों के समक्ष वह अपनी श्रेष्ठता अनुभव करती थी, परन्तु कामताप्रसाद के समक्ष उसे अपनी श्रेष्ठता का अनुभव न होकर, उन्हीं की श्रेष्ठता का अनुभव होता था। श्रेष्ठता सदैव प्रशंसा तथा आदर प्राप्त करती है। यही कारण था कि सुन्दरबाई का व्यवहार कामताप्रसाद के साथ निष्कपट तथा स्नेहपूर्ण था।

इधर रेवतीशंकर सुन्दरबाई के प्रेम में प्रेमोन्मत्त से हो रहे थे। वह यह चाहते थे कि उनके होते हुए सुन्दरबाई किसी भी पुरुष की ओर न देखे। इधर सुन्दरबाई की यह दशा थी कि जब कभी कामताप्रसाद कई दिनों तक उसके यहाँ न पहुँचते, तो वह अस्वस्थ होने का बहाना करके उन्हें बुलवाती थी। उस समय कामताप्रसाद को केवल अपने व्यवसाय की दृष्टि से उसके यहाँ जाना ही पड़ता था।

एक दिन रेवतीशंकर सन्ध्या के पश्चात् जब सुन्दरबाई के यहां पहुँचे तो उन्होंने देखा कि सुन्दरबाई कामताप्रसाद के घुटनों पर सिर रक्खे लेटी है और कामताप्रसाद उसके सिर पर हाथ फेर रहे हैं। यह देखते ही रेवतीशंकर की आँखों के नीचे कुछ क्षणों की लिए अंधेरा छा गया।

इधर उन्हें देखते ही कामताप्रसाद ने शीघ्रतापूर्वक उसका सिर अपने घुटने पर से हटा दिया और रेवतीशंकर की ओर देखकर कुछ झेंपते हुए बोले--इनके सिर में बड़े ज़ोर का दर्द था, अतएव इन्होंने मुझे बुलवाया। मैंने दवा लगाई है, अब कुछ कम है।

रेवतीशंकर कामताप्रसाद को सिटपिटाते देख ही चुके थे, अतएव उन्होंने समझा कि कामताप्रसाद केवल बात बना रहे हैं। उन्होंने एक शुष्क मुस्कान के साथ कहा--आपके हाथ लगें और दर्द कम न हो। यह तो एक अनहोनी बात है।

यह कहकर रेवतीशंकर ने सुन्दरबाई पर एक तीव्र दृष्टि डाली। सुन्दरबाई उस दृष्टि को सहन न कर सकी, उसने अपनी आँखें नीची कर लीं।

कामताप्रसाद खड़े होकर सुन्दरबाई से बोले--तो अब मैं जाता हूँ, तुम थोड़ी देर बाद दवा एक बार और लगा लेना।

"बैठिए-बैठिए, आपकी उपस्थिति दर्द को दूर करने में बहुत बड़ी सहायता देगी।" रेवतीशंकर ने स्पष्ट-व्यंग्य के साथ यह बात कही।

कामताप्रसाद रेवतीशंकर के इस व्यंग्य से कुछ व्यथित होकर बोले--निस्संदेह ! डॉक्टर से लोग ऐसी ही आशा रखते हैं, यह कोई नई बात नहीं है। इतना कहकर कामताप्रसाद चल दिए।

उनके चले जाने के पश्चात रेवतीशंकर ने सुन्दरबाई से कहा--अव तो साधारण सी बातों में भी डॉक्टर बुलाये जाने लगे।

सुन्दरबाई ने कहा--तो फिर ! क्या आप यह चाहते हैं जब कोई मृत्युशय्या पर पड़ा हो तभी डॉक्टर बुलाया जाये।

"नहीं-नहीं, आप जब चाहिए बुलाइए। मना कौन करता है।"

"मना कर ही कौन सकता है। मेरा जो जी चाहेगा, करूँगी। मैं किसी की लौंडी-बाँदी तो हूँ नहीं।"

रेवतीशंकर ओंठ चबाते हुए बोले--ठीक है, कौन मना कर सकता है।

इस वाक्य को रेवतीशंकर ने दो-तीन बार कहा।

सहसा रेवतीशंकर का मुख रक्तावर्ण हो गया, आँखें उबल आईं। उन्होंने हाथ बढ़ाकर सुन्दरबाई की कलाई पकड़ ली और दाँत पीसते हुए बोले--कौन मना कर सकता है ? मैं मना कर सकता हूँ, जिसने अपना तन-मन-धन तुम्हारे चरणों पर डाल दिया है।

सुन्दरबाई अपनी कलाई छुड़ाने की चेष्टा करते हुए बोली--अजी बस जाइए, ऐसे यहाँ दिन भर में न जाने कितने आते हैं।

"आते होंगे, परन्तु मैं तुम्हें बता दूंगा कि मैं उन लोगों में नहीं हूँ।"

"सुन्दरबाई ने एक झटका देकर अपनी कलाई छुड़ा ली और कर्कश स्वर में बोली--तुम बेचारे क्या दिखा दोगे। ऐसी धमकी में मैं नहीं आ सकती। चले वहाँ से बड़े वारिस खाँ बनकर। तुम होते कौन हो ? वही कहावत है--"मुँह लगाई डोमनी, गावे ताल-बेताल।"

रेवतीशंकर ने कुछ नम्र होकर कहा--देखो सुन्दरबाई यह बातें छोड़ दो, इसका परिणाम बुरा होगा।

"क्या बुरा होगा ? तुम कर क्या लोगे ? ख़ैरियत इसी में है कि चुपचाप यहाँ से चले जाइए, और आज से यहाँ पैर न धरिएगा, नहीं तो पछताइएगा।"

रेवतीशंकर अप्रतिभ होकर बोले--अच्छा ! यह बात है ?

"जी हाँ, यही बात है। मैं आपकी विवाहिता नहीं हूँ। ये बातें वही सहेगी, मैं नहीं सह सकती। हुँह ! अच्छे आए ! हम लोग ऐसे एक की होकर रहें तो बस हो चुका।"

रेवतीशंकर कुछ क्षणों तक चुपचाप बैठे ओंठ चबाते रहे, तत्पश्चात् एकदम से उठकर खड़े हो गए और बोले--अच्छी बात है, देखा जायगा !

इतना कहकर रेवतीशंकर चल दिए !

उपर्युक्त घटना के एक सप्ताह पश्चात् एक दिन प्रातःकाल शौचादि से निवृत्त होकर कामताप्रसाद चाय पी रहे थे। उसी समय सहसा पुलिस ने उनका घर घेर लिया। एक सब-इन्सपेक्टर उनके कमरे में घुस आया। उसने आते ही कामताप्रसाद से पूछा--डॉ० कामताप्रसाद आप ही हैं ?

कामताप्रसाद ने विस्मित होकर कहा--हाँ, मैं ही हूँ, कहिए ?

सब-इन्सपेक्टर ने कहा--मैं आपको सुन्दरबाई के खून करने के जुर्म में गिरप्तार करता हूँ।

कामताप्रसाद हतबुद्धि होकर बोले--सुन्दरबाई का खून ! कामताप्रसाद केवल इतना ही कह पाए, आगे उनके मुँह से एक शब्द भी न निकला।

सब-इन्सपेक्टर ने एक काँस्टेबिल से कहा--लगाओ हथकड़ी !

इसके पश्चात् इन्सपेक्टर ने उस कमरे की तलाशी ली और एक कोट तथा कमीज़ बरामद की। कमीज़ के दाहिने कफ़ में खून का दाग लगा हुआ था। इन्सपेक्टर ने उसे देखकर सिर हिलाया। इसके पश्चात उसने कोट को देखा। कोट के दो बटन गायब थे। इन्सपेक्टर ने अपनी जेब से एक डिबिया निकाली। डिबिया खोलकर दो बटन निकाले, उन बटनों को कोट के अन्य बटनों से मिलाकर देखा, दोनों बटन अन्य बटनों से आकार-प्रकार में पूर्णतया मिल गए। इन्सपेक्टर ने कहा, ठीक है !

उसने क़मीज़ तथा कोट अपने अधिकार में किया। इसी समय कामताप्रसाद के पिता भी आ गए। उन्होंने जो पुत्र के हाथों में हथकड़ी लगी देखी तो घबराकर पूछा--क्यों, क्यों क्या बात है ?

इन्सपेक्टर ने कहा--कल रात में सुन्दरबाई नामी तवायफ का क़त्ल हो गया है। वहाँ कुछ ऐसी चीजें पाई गई हैं, जिनसे यह साबित होता है कि सुन्दरबाई का खून कामताप्रसाद ने किया है। इसलिए इनकी गिरफ्तारी की गई है।

कामताप्रसाद के पिता कम्पित स्वर से बोले--नहीं-नहीं, यह असम्भव है। ऐसा कभी नहीं हो सकता। आप गलती कर रहे हैं।

सब इन्सपेक्टर--हमारी गलती साबित करने के लिए आपको काफी मौका मिलेगा, घबराइए नहीं !

कामताप्रसाद बोले--निस्संदेह पिताजी ! आप घबराइए नहीं, इसमें कोई विकट रहस्य है। हमें अदालत के सामने काफी मौका मिलेगा।

सब-इन्सपेक्टर ने अधिक बात करने का अवसर न दिया। कामताप्रसाद को साथ लेकर सीधा उनके दवाखाने पहुँचा।

कामताप्रसाद ने देखा कि उनके दवाखाने पर भी पुलिस का पहरा है।

दवाखाने की चाबी सब-इन्सपेक्टर कामताप्रसाद के घर से ले आया था। अतएव दवाखाना खोला गया। उसकी तलाशी लेकर वह बक्स निकाला गया, जिसमें सर्जरी के औज़ार थे। वह बक्स भी इन्सपेक्टर ने अपने अधिकार में कर लिया।

नियत समय पर कामताप्रसाद का मुकदमा आरम्भ हुआ। पुलिस की ओर से चार वस्तुएँ पेश की गईं। एक तो वह चाकू जिससे खून किया गया था, कामताप्रसाद का कोट, क़मीज़ तथा एक रूमाल खून से रंगा हुआ था। सरकारी वकील ने अदालत को वे दोनों बटन दिखाए। ये बटन, जिस कमरे में खून हुआ था, उसमें पाये गए थे और दोनों कामताप्रसाद के कोट के बटनों से पूर्णतया मिलते-जुलते थे। रूमाल पर उनका नाम ही कढ़ा हुआ था। क़मीज़ के कफ़ पर खून का दाग था। वह चाकू जिससे हत्या की गई थी, कामताप्रसाद के सर्जरी के औज़ारों में के अन्य दो चाकुओं से पूर्णतया मेल खाता था।

इसके अतिरिक्त पुलिस की ओर से चार गवाह पेश हुए थे, दो मुसलमान दूकानदार, जिनकी दूकानें सुन्दरबाई के मकान के नीचे ही थीं, सुन्दरबाई की माता, उनकी एक दासी !

नौकरानी ने बयान दिया--जिस दिन यह वारदात हुई, उस दिन शाम को साढ़े छे बजे के लगभग सुन्दरबाई की माँ नौकर के साथ कहीं गईं थीं। मकान पर केवल सुन्दरबाई और मैं रह गईं थी। साढ़े आठ बजे के लगभग डॉक्टर साहब आए। सुन्दरबाई और वह दोनों भीतरी कमरे में बैठे। मैं उस समय भोजन बना रही थी। आध घण्टे बाद मैंने ऐसा शब्द सुना जैसे दो आदमी आपस में लपटा-झपटी कर रहे हों। बीच में एक आध दफे मैंने डॉक्टर साहब की आवाज सुनी। ऐसा जान पड़ता था कि डॉक्टर साहब सुन्दरबाई को डाँट रहे हैं। इसके थोड़ी देर बाद डॉक्टर साहब बड़ी तेजी के साथ कमरे से निकले और जीने से नीचे उतरकर चले गए। मैं खाना बनाती रही। इसके एक घण्टे बाद सुन्दरबाई की माता लौटीं। वह पहले तो अन्दर आईं और मुझसे पूछा--"खाना तैयार है ?" मेरे हाँ कहने पर वह सुन्दरबाई के कमरे की ओर चली गईं। वहाँ जाते ही उन्होंने हल्ला मचाया, तब मैं दौड़कर गई। नौकर भी दौड़ा। वहाँ जाकर देखा कि सुन्दरबाई का कोई खून कर गया है। मैंने उसी समय सुन्दरबाई की माँ से वह सब कहा, जो मैंने देखा-सुना था।

कामताप्रसाद के वकील के जिरह करने पर उसने कहा--मैं जहाँ खाना बना रही थी, वह जगह सुन्दरबाई के कमरे से थोड़ी दूर है। मैं जहाँ बैठी थी, वहाँ से जीने से कमरे में जाता हुआ आदमी दिखाई नहीं पड़ता था। मैंने केवल आवाज से समझा था कि अब डॉक्टर साहब जा रहे हैं। उनकी तेजी का अनुमान भी मैंने उनके पैरों के शब्द से तथा जीने में उतरने के शब्द से किया था। जिस समय डॉक्टर साहब आए थे, उस समय मैंने उन्हें देखा था। मैं उस समय उधर गयी थी। सुन्दरबाई ने एक गिलास पानी माँगा था, वही देने गई थी। डॉक्टर साहब से झगड़ा होने का शब्द सुनकर मैं उधर नहीं गई। हम लोगों को बिना बुलाए जाने की इजाजत नहीं है। डॉक्टर से लपटा-झपटी और झगड़ा होने का शब्द कोई ऐसी बात नहीं थी, जिससे मैं यह आवश्यक समझती कि मैं जाकर देखूँ कि क्या हो रहा है। वेश्याओं के यहाँ ऐसी बातें बहुधा हुआ करती हैं, मेरे लिए वह एक साधारण बात थी। डॉक्टर साहब के जाने के पश्चात् सुन्दरबाई की माँ के आने के समय तक मैं खाना बनाने में इतनी मग्न रही कि मुझे और किसी बात का ध्यान न रहा।

दोनों मुसलमान दुकानदारों ने अपने बयान में कहा--हम लोग दूकान बन्द कर रहे थे। उसी वक्त जीने में ऐसी आवाज आई जैसी कोई बड़ी तेजी से उतरता चला आ रहा हो। इसके बाद हमने डॉक्टर को निकलते देखा। यह बड़ी तेजी से एक तरफ चले गये। इनके कपड़े भी तितर-बितर थे। इसके बाद हम लोग दूकान बन्द करके अपने-अपने घर चले गए।

जिरह में दोनों दूकानदारों ने कहा--हम डॉक्टर को अच्छी तरह पहचानते हैं। यह अक्सर सुन्दरबाई के घर आया-जाया करते थे। बाजार की रोशनी इनके ऊपर काफी पड़ रही थी। उसमें हमने इन्हें अच्छी तरह देखा था। इसमें किसी शक व शुबह की गुंजायश नहीं है।

सुन्दरबाई की माता ने अपने बयान में कहा--मैं जिस समय लौटकर आयी, उस समय दस बज चुके थे। मैं एक दूसरी वेश्या को, जिससे मेरी मित्रता है, देखने गई थी। वह कई दिन से बीमार थी। मैंने कमरे में जाकर देखा कि सुन्दर चित्त पड़ी है और उसकी छाती में चाकू घुसा हुआ है। इतना ही देखकर मैं एकदम चिल्ला उठी। घर के नौकर तथा नौकरानी दौड़ पड़े। उन्होंने भी देखकर हल्ला

मचाया। बाजार में सन्नाटा हो गया था। दो-चार दूकानें खुली थीं। वह भी उस समय बन्द हो रही थीं। हल्ला मचाने के आध घण्टे बाद एक कान्सटेबिल आया। वह सब देखकर चला गया। उस एक घण्टे बाद कोई बारह बजे के लगभग दारोग़ा साहब आए थे।

जिरह में उसने कहा--डॉक्टर साहब पहले-पहल हमारे यहाँ अपने एक दोस्त के साथ आए थे। उनका नाम रेवतीशंकर है। वह बड़े आदमी हैं। वह बहुत दिनों हमारे यहाँ आते-जाते रहे। इसके बाद उन्होंने आना-जाना बन्द कर दिया। उन्होंने आना-जाना डॉक्टर के कारण बन्द किया था। हमारे यहाँ उनमें और डॉक्टर में कभी कोई झगड़ा नहीं हुआ। सुन्दरबाई ने एक दिन उनसे ग़ुस्से में कह दिया था कि हमारे घर मत आया करो। इसका कारण यह था कि सुन्दरबाई डॉक्टर को कुछ चाहती थी। मेरा विचार है कि डॉक्टर ने ही उससे कहा होगा कि रेवतीशंकर को मत आने दो। एक दफे डॉक्टर साहब ने मुझे हैजे से बचाया था तबसे हम लोग उन्हीं को बुलाया करते थे। एक बार सुन्दरबाई ने मुझसे कहा था कि डॉक्टर साहब का हृदय बड़ा कठोर है। इनके जी में जरा भी रहम नहीं है। मैंने उससे पूछा कि तुझे कैसे मालूम हुआ, तो इसका उत्तर उसने कुछ नहीं दिया था।

कामताप्रसाद ने अपने बयान में कहा--मैं बहुधा सुन्दरबाई के यहाँ जाया करता था। पहले मैं केवल मनोरंजन के लिए जाया करता था, परन्तु बाद को सुन्दरबाई की माँ को हैज़े से आराम करने पर मैं उनका फैमिली डॉक्टर हो गया, तबसे मैं बहुधा जाता था। कुछ दिनों बाद मुझे सुन्दरबाई के व्यवहार से यह सन्देह उत्पन्न हुआ कि वह मुझसे प्रेम करती है। तब मैंने आना-जाना कुछ कम कर दिया था। जब मैं उनका फैमिली डॉक्टर था तब बहुधा बुलाया जाता था। उस दशा में मैं जाने के लिए विवश था। बहुधा सुन्दरबाई झूठ-मूठ अस्वस्थ बन जाती थी और मुझे बुला भेजती थी। इससे मेरा यह सन्देह पक्का हो गया कि सुन्दरबाई मुझसे प्रेम करती है।

जिस दिन की यह घटना है, उस दिन मैं आठ बजे के बाद दवाखाना बन्द करके घर जाने लगा तो मेरी इच्छा हुई कि सुन्दरबाई के यहाँ होता चलूँ। मैं उसके यहाँ गया। हम दोनों भीतरी कमरे में बैठे। पहले तो थोड़ी देर इधर-उधर की बातें होती रहीं। इसके पश्चात् सुन्दरबाई ने मुझसे प्रेम की बातें करनी आरम्भ कीं। मैंने उससे कहा, मुझसे ऐसी बातें मत करो, परन्तु वह न मानी। मैंने उसे फिर समझाया। मैंने उससे कहा--मैं अपनी पत्नी से प्रेम करता हूँ। इसके अतिरिक्त मैं किसी अन्य स्त्री से प्रेम नहीं कर सकता। यह कहकर मैं उठकर चलने लगा। सुन्दरबाई मुझसे लिपट गई। मैंने उससे डाँटकर छोड़ देने के लिए कहा, पर वह न मानी। उसने उसी समय मेरी पत्नी के सम्बन्ध में कुछ अनुचित शब्द कहे। उन्हें सुनकर मुझे क्रोध आ गया। मैंने उसे अपने से अलग करके जोर से ढकेल दिया। वह पलँग पर गिरी। उसका सिर पलँग के काठ के तकिए से टकरा गया, जिससे उसके सिर से खून बहने लगा। यह देखकर मेरा डॉक्टरी स्वभाव जाग्रत हो उठा। मैंने झट जेब से रूमाल निकालकर खून पोंछा और घाव को देखा। देखने पर मालूम हुआ कि वह बहुत ही साधारण था, केवल चमड़ा फट गया था। जिस समय मैं घाव पोंछ रहा था, उसी समय सुन्दरबाई पुनः मुझसे लिपट गई। तब मैंने वहाँ ठहरना उचित न समझा और अपने को उससे छुड़ाकर मैं तेजी के साथ नीचे सड़क पर आ गया और अपने घर की ओर चला गया।

चाकू की बाबत प्रश्न किए जाने पर कामताप्रसाद ने कहा--चाकू मेरे चाकुओं जैसा अवश्य है। परन्तु वह मेरा नहीं। मैं उसकी बाबत कुछ नहीं जानता। जितने चाकू मेरे बक्स में इस समय मौजूद हैं, उतने ही मेरे पास थे, उससे एक भी अधिक नहीं था।

कामताप्रसाद के इतना कहने पर सरकारी वकील ने अदालत के सामने एक कागज पेश करते हुए कहा--यह उस कम्पनी का इनवायस (बीजक) है, जहाँ से अभियुक्त ने सर्जरी का बक्स मँगाया था। इनवायस में तीन चाकू लिखे हुए हैं। अभियुक्त केवल दो का होना स्वीकार करता है। यह तीसरा चाकू कहाँ गया? बक्स में इस समय दो ही चाकू मौजूद हैं।

अदालत ने इनवायस, बक्स तथा जिस चाकू से हत्या की गई थी, उसे देखकर कामताप्रसाद से पूछा--इनवायस में लिखा हुआ तीसरा चाकू कहाँ है?

कामताप्रसाद का मुँह बन्द हो गया। उन्हें स्वप्न में भी यह ध्यान नहीं आया कि पुलिस ने दूकान की तलाशी लेते समय इनवायस भी हथिया लिया होगा।

कामताप्रसाद के मुख से केवल इतना निकला--मैं निरपराध हूँ, मैंने हत्या नहीं की।

कामताप्रसाद सेशन सुपुर्द कर दिए गए। कामताप्रसाद के पिता ने उन्हें छुड़ाने की बहुत कुछ चेष्टा की। एकलौता बेटा फाँसी पर चढ़ा जाता है, यह विचार उन्हें अपना सर्वस्व तक दे देने के लिए बाध्य किए हुए था। अच्छे से अच्छे वकील जुटाए, परन्तु कोई फल न हुआ। कामताप्रसाद के विरुद्ध ऐसे दृढ़ प्रमाण थे कि वकीलों की बहस और खींचातानी ने कोई लाभ नहीं पहुँचाया। सेशन से कामताप्रसाद को फाँसी का हुक्म हो गया।

हाईकोर्ट में अपील की गई; परन्तु वहाँ से भी फाँसी का हुक्म बहाल रहा। इस समय कामताप्रसाद के माता-पिता की दशा का क्या वर्णन किया जाये! जिसके ऊपर असंख्य आशाएँ निर्भर थीं, जो उनके बुढ़ापे का स्तम्भ था--वह आज उनसे छिना जा रहा है--और सदैव के लिए! उनका घर इस समय श्मशान-तुल्य हो रहा था! कामताप्रसाद की युवती पत्नी, जिसने यौवन में पदार्पण ही किया था, रोते-रोते विक्षिप्त हो गई थी। और क्यों न होती? ऐसे योग्य, सुन्दर, कमाऊ और प्राणों से अधिक प्यारे पति को आँखों के सामने, असमय और ज़बरदस्ती मौत के मुख में ढकेला जाता हुआ देखकर कौन पत्नी अपने हृदय को वश में रख सकती है?

फाँसी होने के दो दिवस पहले कामताप्रसाद के माता-पिता तथा उनकी पत्नी उनसे मिलने गई थीं। उस समय का वर्णन करना असम्भव है। चारों में से प्रत्येक यह चाहता था कि एक-दूसरे की मूर्ति सदैव के लिए हृदय में धारण कर ले, परन्तु आँसुओं की झड़ी ने आँखों पर ऐसा निष्ठुर पर्दा डाल रक्खा था कि परस्पर एक दूसरे को भली-भाँति देख भी न सके। हृदय की प्यास हृदय में हिमशला की भाँति जमकर रह गई। माता पुत्र को छाती से लगाकर इतना रोई कि बेहोश सी हो गई। उसके बैन सुनकर पाषाण की छाती भी फटती थी। "हाय मेरे लाल, मैंने कैसे-कैसे दुख उठाकर तुझे पाला था।! हाय, क्या इसी दिन के लिए पाला था। अरे चाहे मुझे फाँसी दे दो, पर मेरे लाल को छोड़ दो। हाय, मेरा एकलौता बच्चा है, यह मेरी आँखों का तारा, बुढ़ापे का सहारा है। क्या सरकार के घर में दया नहीं है, क्या लाट साहब के कोई बाल-बच्चा नहीं है? अरे कोई मुझे उनके सामने पहुँचा दो!" मैं अपने आसुँओं से उनका कलेजा पसीज डालूँगी। अरे मेरा हाथी-सा बच्चा कसाई लिए जाते हैं। अरे कोई ईश्वर के लिए इसे छुड़ाओ। हाय, मेरा बच्चा जवानी का कोई सुख न देख पाया! हाय, जैसा आया था वैसा ही जाता है। हाय, इस अभागी बच्ची (पुत्रवधू) की उमर कैसे टेर होगी? अरे राम! तुम इतने क्यों रूठ गए! मैंने पाप किए थे तो मुझे नरक में भेज देते, मेरा बच्चा क्यों छीने लेते हो? अरे कलेजे में आग लगी है, इसे कोई बुझाओ!"

कहाँ तक लिखा जाय, वह इसी प्रकार की बातों से सुनने वालों का हृदय विदीर्ण कर रही थी। जेलर भी रूमाल से आँखें पोंछ रहा था। पिता सिर झुकाए हुए चुपचाप खड़े थे, परन्तु जिस स्थान पर खड़े थे, वह स्थान आँसुओं से तर हो गया था और कामताप्रसाद की पत्नी, वह बेचारी लज्जा के मारे कुछ बोल नहीं सकती थी। उसके हृदय की आग ऊपर फूट निकलने का मार्ग न पाकर, भीतर ही भीतर कलेजे में फैलकर तन-मन भस्म किए डाल रही थी। अन्त में जब न रहा गया, जब भीतरी आग की गर्मी सहनशक्ति की सीमा पार कर गई, तो लज्जा को तिलांजलि देकर वह एकदम दौड़ पड़ी और पति की छाती से चिपक गई। ''हाय मेरे प्राण, मुझे छोड़ कहाँ जाते हो।'' केवल यह वाक्य उसके मुख से निकला, उसके पश्चात वह बेहोश हो गई। उसी बेहोशी की दशा में उसे वहाँ से हटा दिया गया। कामता-प्रसाद की आँखों से भी आँसुओं की धारा बह रही थी, परन्तु मुँह बन्द था। मुँह से कोई शब्द न निकले, इसके लिए उन्होंने अपने नीचे के ओंठ इतने जोर से दाबे कि खून बहने लगा।

समय अधिक हो जाने के कारण जेलर ने भेंट की समाप्ति चाही। परन्तु कामताप्रसाद के पिता ने कहा--कृपा कर पाँच मिनट तो और दीजिए, अब तो सदैव के लिए अलग होते हैं।

जेलर ने कहा--मेरा वश चले तो मैं आप लोगों को कभी भी अलग न करूँ; पर क्या करूँ, नियम से विवश हूँ! ख़ैर, पाँच मिनट और सही।

कामताप्रसाद की माता और पत्नी दोनों बेहोश हो आने के कारण हटा दी गई थीं, केवल उनके पिता रह गए थे। कामताप्रसाद ने उनसे कहा--पिता जी, यह तो आपको विश्वास ही है कि मैं निर्दोष हूँ।

पिता ने कहा--क्या कहूँ बेटा, मेरे लिए तू सदैव निर्दोष था।

कामताप्रसाद--मैं केवल कुसंगत का शिकार हो गया। कुसंगत में पड़कर न मैं वेश्या के घर जाता, न वह नौबत पहुँचती, खैर भाग्य में यही वदा था। परन्तु इतना मुझे विश्वास हो गया कि समाज न्याय की ओट में अन्याय भी करता रहता है। न्याय के नियमों को इतना अधिक महत्व दिया जाता है कि वह अन्याय की सीमा तक पहुँच जाता है। उन नियमों के लिए एक मनुष्य की सज्जनता, सचरित्रता, उसकी नेकनीयती का कोई मूल्य नहीं। बड़े से बड़े आदमी, अच्छे मनुष्य के साथ वह उसकी क्षणिक कमज़ोरी के लिए भी वैसा ही व्यवहार करते हैं, जैसा कि एक अभ्यस्त अपराधी के साथ। यह न्याय है। यह वह न्याय है, जिसके आँखें और कान हैं, पर मस्तिष्क नहीं है। केवल दो-चार आदमियों के कह देने से और मेरी कुछ वस्तुओं को हत्या-स्थल पर देखकर ही न्याय के ठेकेदार मुझे फाँसी पर लटकाए दे रहे हैं। ईश्वर ऐसे न्याय से समाज की रक्षा करे। ख़ैर! अब एक प्रार्थना यह है कि ज़रा रेवतीशंकर को मेरे पास भेज देना, उससे भी मिल लूँ। यदि उससे भेंट न होगी तो मेरी आत्मा को शान्ति न मिलेगी।

दूसरे दिन रेवतीशंकर भी पहुँचा। रेवतीशंकर से बात करते समय कामताप्रसाद ने सबको हटा दिया। जब एकान्त हुआ तो कामताप्रसाद ने रेवतीशंकर की आँखों से आँखें मिलाकर कहा--रेवतीशंकर, जानते हो मैं किसलिए फाँसी पर चढ़ रहा हूँ?

इतना सुनते ही रेवतीशंकर का शरीर काँपने लगा। वह आँखें नीची करके बोला ही नहीं।

कामताप्रसाद ने उसका मुँह ऊपर करके कहा--मेरी ओर देखो, घबराओ नहीं। मैं केवल इसलिए फाँसी पर चढ़ रहा हूँ कि मैंने तुम्हें बचाने की चेष्टा की थी। मैंने अदालत में यह नहीं कहा कि वह तीसरा चाकू कहाँ गया। यद्यपि मुझे याद था कि वह चाकू तुम ले गए थे। मैंने यह भी नहीं कहा कि सुन्दरबाई से मेरे कारण तुम्हारा कई बार झगड़ा हुआ। तुमने उसे धमकी भी दी थी। रेवतीशंकर, मैंने तुम्हें फँसाकर या तुम्हारे ऊपर सन्देह उत्पन्न कराके अपने प्राण बचाना कायरता और मित्रता के प्रति विश्वासघात समझा। यदि मैं पहले ही कह देता कि तीसरा चाकू तुम ले गए थे, तो वह इनवायस की शहादत, जो मेरे लिए मौत का फन्दा हो गई, कभी उत्पन्न न होती। यह मैं मानता हूँ कि मेरे केवल इतना कह देने से कि चाकू तुम ले गए थे, मैं मुक्त न हो जाता। मेरे विरुद्ध अन्य बातें भी थीं; परन्तु फिर भी मैं ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर सकता था, जिससे कि यह सम्भव था कि मैं छूट जाता। परन्तु मेरे छूटने का अर्थ था तुम्हारा फँसना। न्याय तो एक बलिदान लेता ही, मेरा न लेता तुम्हारा लेता। हम दो के अतिरिक्त तीसरे की कोई गुन्जाइश नहीं थी। इसलिए मैं तुम्हारे सम्बन्ध में मौन ही रहा। ख़ैर जो हुआ सो हुआ, पर अब इतना तो बता दो कि मेरा विचार ठीक है या नहीं ? रेवतीशंकर कुछ क्षणों तक कामताप्रसाद की ओर देखता रहा, तत्पश्चात उसने आँखें नीची कर लीं और गर्दन झुकाए हुए, काँपते हुए पैरों से, पिटे हुए कुत्ते की भाँति कामताप्रसाद के सामने से हट आया। कामताप्रसाद ने किंचित् मुस्कराते हुए उस पर जो दृष्टि डाली, वह दृष्टि थी जो एक महात्मा दया के योग्य एक पापी पर डालता है।

* * *

कामताप्रसाद को फाँसी दे दी गई। फाँसी के एक सप्ताह पश्चात् रेवतीशंकर ने विष खाकर आत्म-हत्या कर ली। उसके कमरे में एक बन्द लिफ़ाफ़ा पाया गया।

उस लिफ़ाफ़े में से एक पत्र निकला। यह पत्र किसी के नाम नहीं था, केवल साधारण रूप से लिखा गया था। इस पत्र में लिखा था :--

''सुन्दरबाई की हत्या कामताप्रसाद ने नहीं, मैंने की थी। सुन्दरबाई ने मेरे प्रेम को ठुकराया था, मेरा हृदय छीनकर मुझे दुतकारा था। इसके लिए मैं उसे कभी क्षमा नहीं कर सकता था। मैं उसके प्रेम में पागल था। उसके बिना संसार मेरे लिए शून्य था। जिस दिन उसने मुझे अपने घर आने से रोक दिया, उस दिन से मैं विक्षिप्त-सा हो गया। मैं इस चिन्ता में रहने लगा कि या तो उसे अपना बनाकर छोड़ूँ या फिर उसे दूसरे के लिए इस संसार में न रहने दूँ। मैं उसके मकान का चक्कर काटता रहता था; पर उस दशा में भी मुझमें इतना आत्म-गौरव था कि मैं उसके मकान पर नहीं गया। जिस दिन मैंने उसकी हत्या की, उस दिन रात को नौ बजे के लगभग मैं टहलता हुआ उसके मकान के नीचे से निकला। इस अभिप्राय से कि कदाचित् उसकी एक झलक देखने को मिल जाय, मैं उसके मकान के सामने ज़रा हटकर खड़ा हो गया। मुझे खड़े कुछ ही क्षण हुए थे कि कामताप्रसाद उसके मकान से उतरे। उनका वेष देखकर मेरी आँखों में ख़ून उतर आया। उनके अस्त-व्यस्त कपड़ों से मैंने कुछ और ही समझा। उस विचार के आते ही मेरे शरीर में आग लग गई। मुझे कामताप्रसाद पर ज़रा भी क्रोध नहीं आया; क्योंकि मैं जानता था कि उन्हें सुन्दरबाई की ज़रा भी परवाह नहीं। मुझे क्रोध सुन्दरबाई पर आया, वही उनसे प्रेम करती थी। मैं अपने को सँभाल न सका और बिना परिणाम सोचे मैं चुपचाप चोर की तरह से दबे पैरों सुन्दरबाई के कोठे पर चढ़ गया। ऊपर जाकर मैं बहुत ही दबे पैरों सुन्दरबाई के कमरे में पहुँचा। सुन्दरबाई उस समय अपने पलँग पर लेटी हुई थी। उसके शरीर के वस्त्र अस्त-व्यस्त थे। यह देखकर मैं क्रोधोन्मत्त हो गया। मैंने जाते ही एकदम से उसका मुँह दाब लिया, जिससे वह हल्ला न मचा सके। मेरे पास एक चाकू था, यह मैंने कामताप्रसाद

(शेष पृष्ठ 136 पर)

जल्लाद

○ पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

प्रातः आठ-साढ़े आठ बजे का समय था। रात को किसी पारसी कम्पनी का कोई रद्दी तमाशा अपने पैसे वसूल करने के लिए दो बजे तक झख मार-मारकर देखते रहने के कारण सुबह नींद कुछ विलम्ब से टूटी। इसी से उस दिन हवाखोरी के लिए निकलने में कुछ देर हो गई थी और लौटने में भी।

मैं वायु-सेवन के लिए अपने घर से कोई चार मील की दूरी तक रोज ही जाया-आया करता था। मेरे घर और उस रास्ते के बीच मे हमारे शहर का जिला जेल भी पड़ता था, जिसकी मटमैली, लम्बी-चौड़ी और उदास चहारदीवारियाँ रोज आगे ही मेरी आँखों के आगे पड़ती और मेरे मन में एक प्रकार की अप्रिय और भयावनी सिहर पैदा किया करती थीं।

मगर उस दिन उसी जेल के दक्षिणी कोने पर अनेक घने और विस्तृत वृक्षों की अनुज्ज्वल छाया में मैंने जो कुछ देखा, उसे मैं बहुत दिनों तक चेष्टा करने पर भी शायद न भूल सकूँगा। मैंने देखा कि मुश्किल से तेरह-चौदह वर्ष का कोई रूखा पर सुन्दर लड़का, एक पेड़ की जड़ के पास अर्द्धनग्नावस्था में पड़ा तड़प रहा है और हिचक-हिचककर बिलख रहा है। उसी लड़के के सामने एक कोई परम भयानक पुरुष असुन्दर भाव से खड़ा हुआ, रूखे शब्दों में उससे कुछ पूछ-ताछ कर रहा था। यह सब मैंने उस छोटी सड़क पर से देखा, जो उस स्थान से कोई पचीस-तीस गज की दूरी पर थी। यद्यपि दिन की बाढ़ के साथ-साथ तपन की गरमी भी बढ़ रही थी और यद्यपि मैं थका और अनमना सा भी था, पर मेरे मन की उत्सुकता उस दयनीय दृश्य का भेद जानने को मचल उठी। मैं धीरे-धीरे उन दोनों की नजर बचाता हुआ उनकी तरफ बढ़ा।

अब मुझे ज्ञात हुआ कि वह लड़का क्यों बिलख रहा था। मैंने देखा, उसके शरीर के मध्य-भाग पर, जो खुला हुआ था, प्रहार के अनेक काले और भयावने चिह्न थे। उसको बेंत लगाए गए थे। बेंत लगाए गए थे उस कोमल-मति गरीब बालक को अदालत की आज्ञा से, मेरा कलेजा धक् से होकर रह गया। न्याय ऐसा अहृदय, ऐसा क्रूर होता है?

अब मैं आड़ में लुककर उस तमाशे को न देख सका। झट मैं उन दोनों के सामने आ खड़ा हुआ और उस भयानक प्राणी से प्रश्न करने लगा--क्या इसको बेंत लगाए गए हैं?

हाँ! उत्तर देने से अधिक गुर्राकर उस व्यक्ति ने कहा- देखते नहीं हैं आप? ससुरे ने जमींदार के बाग से दो कटहल चुराए थे।

लड़का फिर पीड़ा और अपमान से बिलबिला उठा। इस समय वह छाती के बल पड़ा हुआ था; क्योंकि उसके घाव उसे आराम से बेहोश भी नहीं होने देना चाहते थे। वह एक बार तड़पा और दाहिनी करवट होकर मेरी ओर देखने की कोशिश करने लगा। पर अभागा वैसा न कर सका! लाचार फिर पहले ही सा लेटकर अवरुद्ध कण्ठ से कहने लगा- नहीं बाबू, चुरा कहाँ सका! भूख से व्याकुल होकर लोभ में पड़कर मैं उन्हें चुरा जरूर रहा था, पर जमींदार के रखवालों ने मुझे तुरन्त ही गिरफ्तार कर लिया।

"गिरफ्तार कर लिया तो तेरे घर वाले उस वक्त कहाँ थे?" नीरस और शासन के स्वर में उस भयानक पुरुष ने उससे पूछा--"क्या वे मर गए थे? तुझे बचाने-- जमींदार से, पुलीस से, बेंत से-- क्यों नहीं आए?"

"तुम विश्वास ही नहीं करते?" लड़के ने रोते-रोते उत्तर दिया--"मैंने कहा नहीं, मैं विक्रमपुर गाँव का एक अनाथ भिखमंगा बालक हूँ। मेरे माता-पिता मुझे छोड़कर कब और कहाँ चले गए, मुझे मालूम नहीं। वे थे भी या नहीं, मैं नहीं जानता। छुटपन से अब तक दूसरों के जूठन और फटकारों में पला हूँ। मेरे अगर कोई होता तो मैं उस गाँव के जमींदार का चोर क्यों बनता? मेरी यह दुर्गति क्यों होती? xxx आह! बाप रे xxx बाप xxx!"

वह गरीब फिर अपनी पुकारों से मेरे कलेजे को बेधने लगा। मैं मन ही मन सोचने लगा कि किस रूप से मैं इस बेचारे की कोई सहायता करूँ। मगर उसी समय मेरी दृष्टि उस भयानक पुरुष पर पड़ी, जो जरा तेजी से उस लड़के की ओर बढ़ रहा था। उसने हाथ पकड़कर अपना बल देकर उसको खड़ा किया।

"तू मेरी पीठ पर सवार हो जा?" उसी रूखे स्वर में उसने कहा-- "मैं तुझे अपने घर ले चलूँगा।"

"अपने घर?" मैंने विवश भाव से उस रूखे राक्षस से पूछा-"तुम कौन हो? कहाँ है तुम्हारा घर? और इसको अब वहाँ क्यों लिए जा रहे हो?"

"मैं जल्लाद हूँ बाबू!" लड़के को पीठ पर लादते हुए खूनी आँखों से मेरी ओर देखकर लड़खड़ाती आवाज में उसने कहा-"मैं कुछ रुपयों का सरकारी गुलाम हूँ। मैं सरकार की इच्छानुसार लोगों को बेंत लगाता हूँ तो प्रति प्रहार कुछ पैसे पाता हूँ, और प्राण ले लेता हूँ तो प्रति प्राण कुछ रुपए।"

"फाँसी की सजा पाने वालों से तो नहीं, पर बेंत खाने वालों से सुविधानुसार मैं रिश्वत भी खाता हूँ। सरकार की तलब से मैंने तो बाबू यही देखा है-- बहुत कम सरकारी नौकरों की गुजर हो सकती है। इसी से सभी अपने-अपने इलाकों में ऊपरी कमाई के 'कर' फैलाए रहते हैं। मैं गरीब छोटा-सा गुलाम हूँ मेरी रिश्वत
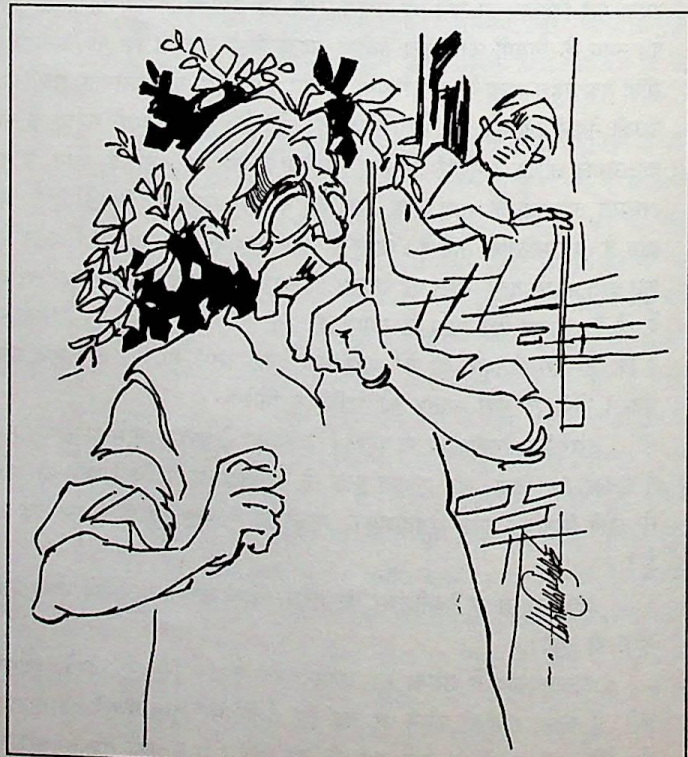
चित्र : दुर्गेश पाण्डेय

की चर्चा तो वैसी चमकीली है भी नहीं कि किसी के आगे कहने में मुझे कोई भय हो। मैं तो सबसे कहता हूँ कि मुझे कोई पूजे तो मैं उसके सगे-सम्बन्धियों को 'सुच्चे' बेत न लगाकर 'हलके' लगाऊँ। और नहीं-- और नहीं तो सड़ासड़ ! सड़ासड़ !!"

उसने ऐसी मुद्रा बना ली, मानो वह किसी को बेंत लगा रहा हो। वह भूल गया कि उसकी पीठ पर उसकी 'सड़ासड़' का एक गरीब शिकार काँप रहा है।

"मगर इस अनाथ को धोखे से 'सुच्चे' बेत लगाकर मैंने ठीक काम नहीं किया। इसने जेल ही में बताया था कि मेरे कोई नहीं है ! मगर मैंने विश्वास नहीं किया। मैं अपने जिस शिकार का विश्वास नहीं करता, उसके प्रति भयानक हो उठता हूँ, और मेरा भयानक होना कैसा वीभत्स होता है, इसे आप इस लड़के की पीठ पर देखें। मगर इसे 'काट' कर मैंने गलती की है। यही न जाने क्यों मेरा मन कह रहा है।

"इसी से बाबू मैं इसे अपने घर ले जा रहा हूँ, वहाँ इसके घाव पर केले का रस लगाऊँगा और इसको थोड़ा आराम देने के लिए 'दारू' पिलाऊँगा, बिना इसको चंगा किए मेरा मन सन्तुष्ट न होगा, यह मैं खूब जानता हूँ !"

भैंसे की तरह अपनी कठोर और रूखी पीठ पर उस अनाथ अपराधी को लादकर वह एक ओर बढ़ चला। मगर मैंने उसे बाधा दी--

"सुनो तो मुझसे भी यह एक रुपया लेते जाओ। मुझको भी इस बालक की दुर्दशा पर दया आती है।"

"क्या होगा रुपया बाबू ?" भयानकता से मुस्कराकर उसने रुपए की ओर देखा और उसको मेरी उँगलियों से छीनकर अपनी उँगलियों में ले लिया।

"इसको 'दारू' पिलाना, पीड़ा कम हो जायगी। अभी एक ही रुपया जेब में था, मैं शाम को इसके लिए कुछ और देना चाहता हूँ। तुम्हारा घर कहाँ है ? नाम क्या है ?"

"मैं शहर के पूरब उस कबरिस्तान के पास के डोमाने में रहता हूँ, डोमों का चौधरी हूँ। मेरा नाम रामरूप है। पूछ लीजिएगा।"

उस अनाथ लड़के का नाम 'अलियार' था, यह मुझे उक्त घटना के सातवें या आठवें दिन मालूम हुआ। ग्रामीणों में 'अलियार' शब्द 'कूड़ा-कर्कट' के पर्याय-रूप में प्रचलित है। उस लड़के ने मुझे बताया। उसके गाँव वालों का कहना है कि उसे पहले-पहल गाँव के एक 'भर' ने 'अलियार' पर पड़ा पाया था। उसी ने कई बरसों तक उसको पाला भी और उसका उक्त नाम-करण भी किया।

अलियार के अंग पर के बेतों के घाव, बधिक रामरूप के सफल उपायों से तीन-चार दिनों के भीतर ही सूख चले; मगर वह बालक बड़ा दुर्बल-तन और दुर्बल-हृदय था। सम्भव है, उसको बारह बेतों की सजा सुनाने वाले मैजिस्ट्रेट ने, पुलिस की मायामयी डायरियों पर विश्वास कर, उसकी उम्र अठारह या बीस वर्ष की मान ली हो, मगर मेरी नजरों में तो वह बेचारा चौदह-पन्द्रह वर्षों से अधिक वयस का नहीं मालूम पड़ा। तिस पर उसकी यह रूखी-सूखी काया ! आश्चर्य !! किसी डाक्टर ने किस तरह उसको बेंत खाने योग्य घोषित किया होगा। जेल के किसी जिम्मेदार और शरीफ अधिकारी ने किस तरह अपने सामने उस बेचारे को बेतों से कटवाया होगा !!!

जब तक अलियार खाट पर पड़ा-पड़ा कराहता रहा, अपने उस बेत खाने के भयानक अनुभव का स्वप्न देख-देखकर अपनी रक्षा के लिए करुण दुहाइयाँ देता रहा, तब तक मैं बराबर, एक बार रोज, रामरूप की गन्दी झोपड़ी में जाता था और अपनी शक्ति के अनुसार प्रभु के उस असहाय प्राणी की मन और धन से सेवा करता था, मगर मेरे इस अनुराग में एक आकर्षण था और वह था जल्लाद रामरूप।

न जाने क्यों उसका वह 'अलकतरा' रंग, उसकी वह भयानक नैपालियों-सी नाटी काया, उसका वह मोटा, वीभत्स अधर और पतला ओठ, जिस पर घनी, काली, भयावनी तथा अव्यवस्थित मूँछों का भार अशोभायमान था, मुझे कुछ अपूर्ण-सा मालूम पड़ता था। न जाने क्यों उसकी बड़ी-बड़ी, डोरीली, नीरस और रक्तवर्ण आँखें मेरे मन में एक तरह की सिहर-सी पैदा कर देती थीं। पर आश्चर्य ! इतने पर भी मैं उसे अधिक से अधिक देखना और समझना चाहता था।

उसकी मिट्टी की झोपड़ी में उसके अलावा उसकी प्रौढ़ा स्त्री भी थी। एक दिन जब मैंने रामरूप से उसकी जीवनी पूछी और यह पूछा कि उसके परिवार का कोई और भी कहीं है या नहीं, तो उसने अपनी विचित्र कहानी मुझे सुनाई।

"बाबू" उसने बताया-- "पुश्त दो पुश्त से ही नहीं, मेरे खानदान में तेरह पुश्त से ही यही जल्लादी का काम होता है। हाँ, उसके पहले, मुसलमानी राज में मेरे पुरखे डाके डाला करते थे। मेरे दादा के दादा ऐसे प्रतापी थे कि सन् 57 के गदर में उन्होंने इसी शहर के उस दक्षिणी मैदान में सरकार बहादुर के हुकुम से पाँच सौ और तीन पचीस और दो दस आदमियों को चन्द दिनों के भीतर ही फाँसी पर लटका दिया था। उन दिनों वह आठों पहर शराब छाने रहा करते थे। और कैसी शराब ? मामूली नहीं बाबू, गोरों के पीने वाली--अंगरेजी !"

मैंने उसे टोका--रामरूप ! क्या अब भी फाँसी देने के पूर्व तुम लोगों को शराब मिलती है ?

"हाँ, हाँ, मिलती क्यों नहीं बाबू, मगर 'देसी' की एक बोतल का दाम मिलता है, विलायती का नहीं, जिसको छान-छानकर मेरे दादा के दादा गाहियों के गाही लोगों को काल के पालने पर झुला देते थे। वही मेरे खानदान में सबसे अधिक

चित्र : दुर्गादत्त पाण्डेय

धनी और जबरदस्त भी थे। लम्बे-चौंड़े तो वह ऐसे थे कि बड़े-बड़े पलटनिए साहब उनका मुँह बकर-बकर ताका करते थे। मगर उनमें एक दोष भी बहुत बड़ा था। वह शराब बहुत पीते थे। इसी में वह तबाह हो गए और मरते-मरते गदर की सारी कमाई फूँक-ताप गए। हाँ, मैं भूल कर गया बाबू ! वह मरे नहीं, बल्कि शराब के नशे में एक दिन बढ़ी नदी में कूद पड़े और तब से लापता हो गए। नदी के उस ऊँचे घाट पर हमारे दादा ने उनका 'चौरा' भी बनवाया है, जिसकी सैकड़ों डोम पूजा किया करते हैं और हमारे वंश के तो वह 'वीर' ही हैं।"

अपने 'वीर' परदादा के प्रति श्रद्धा प्रकट करने के लिए, उनकी कहानी समाप्त करते-करते रामरूप ने धीरे से अपने दोनों कान उमेठे।

"रामरूप !" मैंने कहा-- "जाने दो अपने पुरखों की कहानी। वह बड़ी ही भयानक है। अब तुम यह बताओ कि तुम्हारे कोई बच्ची-बच्चा भी है ?

"नहीं बाबू !" किन्चित गम्भीर होकर उसने कहा--"मेरी औरतिया को कोई सात बरस हुए-- एक लड़का हुआ जरूर था, मगर वह दो साल का होकर जाता रहा। बच्चे तो वैसे भी मेरे खानदान में बहुत कम जीते हैं। न जाने क्यों, जहाँ तक मुझे मालूम है, मेरे किसी भी पुरखे का एक से ज्यादा बच्चा नहीं बचा ! मुझको तो वह भी नसीब नहीं। मेरी लुगैया तो अध-बूढ़ी हो जाने पर भी अभी बच्चा-बच्चा रिरियाया करती है। मगर यह मेरे बस की बात तो है नहीं। मैं तो आप ही चाहता हूँ कि मेरे एक 'वीर' बच्चा हो, जो हमारे इस पुश्तैनी रोजगार को मेरे बाद सँभाले, पर जब दाता देता ही नहीं, तब कोई क्या करे ?

"जब तक तुम्हारे और कोई नहीं है," मैंने उस जल्लाद के हृदय की थाह ली--"तब तक तुम इसी भिखमंगे को क्यों नहीं पालते-पोसते ? तुमने कुछ अन्दाज लगाया है ? कैसा है उसका मिजाज ? यह तुम्हारे यहाँ खप जाने लायक है ?"

"है तो, और मेरी लुगैया उसको चाहती भी है।" रामरूप ने जरा मुस्कराकर कहा--"पर मेरे अन्दाज से वह अलियार कुछ दब्बू और डरू है। और मेरे लड़के को तो ऐसा निडर होना चाहिए कि जरूरत पड़े तो बिना डरे काल की भी खाल खींच ले और जान निकाल ले। यह मंगन छोकरा भला मेरे रोजगार को क्या सँभालेगा ?

"कोई दूसरा रोजगार देखो रामरूप," मैंने कहा--"छोड़ो इस हत्यारे व्यापार को, इसमें भला तुम्हें क्या आनन्द मिलता होगा। ग़ज़ब की है तुम्हारी छाती, जो तुम लोगों को प्रसन्न भाव से बेंत लगाते हो और फाँसी के तख्ते पर चढ़ाकर अपने परदादा के शब्दों में काल के पालने पर झुला देते हो ! मगर यह सुन्दर नहीं।

"हा हा हा हा !" रामरूप ठठाया--"आप कहते हैं यह सुन्दर नहीं ! नहीं बाबू, हमारे लिए तो यह परम सुन्दर है। आप जानते ही हैं कि मैं आप लोगों की 'नीच जाति' का एक तुच्छ प्राणी हूँ। आप तो नए ख्याल के आदमी हैं, इसलिए न जाने क्या समझकर इस लड़के के प्रेम में मेरी झोपड़ी तक आए भी हैं, नहीं तो मैं और मेरी जाति इस इज्जत के योग्य कहाँ ? मेरे घर वाले जल्लादी न करते, तो आप लोगों के मैले साफ करते और कुत्तों को मारते। मगर--हा हा हा हा--कुत्तों को मारने से तो आदमी को मारना कहीं अच्छा है, इसे आप भी मानेंगें, यद्यपि मेरी समझ से कुत्ता मारना और आदमी मारना, जल्लाद के लिए एक ही बात है। हमारे लिए वे भी अपरिचित और निरपराध और ये भी। दूसरों के कहने से हम कुत्तों को भी मारते हैं, और कुत्तों से ज्यादा समझदारों--आदमियों-को भी !"

इसके बाद मुझे एक काम के सिलसिले में बम्बई चला जाना पड़ा और वहाँ पूरे दो महीने रुकना पड़ा। लौटने पर भूल गया उस जल्लाद को और परिचित उस अलियार को। प्रायः दो बरस तक उनकी कोई खबर न ली। फुर्सत भी अपनी मानविक हाय-हायों से, इतनी न थी कि उनकी ओर ध्यान देता।

मगर उस दिन अचानक अलियार दिखाई पड़ा, और मैंने नहीं, उसी ने मुझको पहचाना भी ! मुझे इस बार वह कुछ अधिक स्वस्थ, प्रसन्न और सुन्दर मालूम पड़ा।

"कहाँ रहते हो आजकल अलियार ?" मैंने दरियाप्त किया, और तुम्हारे वह अद्भुत मित्र कैसे हैं, जिनको तुम शायद सपने में भी न भूल सकते होगे ?"

"वह मजे में है," उसने उत्तर दिया--"और मैं तभी से उसी के साथ रहता हूँ। तभी से उसकी वह स्त्री मुझको अपने बेटे की तरह मानती और पालती है।"

"तो क्या अब तुम भी वही व्यापार सीख रहे हो और रामरूप की गद्दी के हकदार बनने के यत्न में हो ?"

"मुझे स्वयं तो पसन्द नहीं है उसका वह हत्या-व्यापार, मगर उसकी रोटी खाता हूँ तो बातें भी माननी ही पड़ती हैं। वह अब अक्सर मुझे फाँसी या बेंत लगाने के वक्त अपने साथ जेल में ले जाता है और अपने निर्दय व्यापार को बार-बार मुझे दिखाकर अपना ही सा बनाना चाहता है।"

"तुम जेल में जाने कैसे पाते हो ?" मैंने पूछा--"वहाँ तो बिना अफसरों की आज्ञा के कोई भी नहीं जाने पाता। फिर खासकर बेंत मारने और फाँसी के वक्त तो और भी बाहरी लोगों को मनाही रहती है।"

"मगर" उसने उत्तर दिया--"अब तो मैं उसे 'मामा' कहकर पुकारता हूँ और वह मुझे अपनी बहिन का लड़का और अपना 'गोद लिया हुआ बेटा' कहकर अफसरों के आगे पेश करता है। कहता है, हमारे खानदान के सभी लड़कों ने इसी तरह देख-देखकर इस विद्या का अभ्यास किया था।"

"तो तुम भी अब," मैंने एक उदास साँस ली "जल्लाद बनने की धुन में हो ? वही जल्लाद, जिसके अस्तित्व के कारण उस दिन जेल के उस कोने में पड़े तुम तड़प रहे थे और अपने भावी मामा की ओर देख-देखकर उसकी क्रूरता को कोस रहे थे। बाप रे ! तुम उस भयानक रामरूप को प्यार करते हो--कर सकते हो ?

मेरे इस प्रश्न पर कुछ देर तक अलियार चुप और गम्भीर रहा। फिर बोला--"नहीं बाबू जी मैं उस पशु को तो कदापि नहीं प्यार करता, बल्कि आपसे सच कहता हूँ, उससे घृणा करता हूँ। जब-जब मेरी नजर उस पर पड़ती है, तब-तब मैं उसे उसी रूप में देखता हूँ, जिस रूप में उस दिन देखा था, जिसकी आप अभी चर्चा कर रहे थे। पर मैं उसकी स्त्री का आदर करता हूँ, जो हत्यारे की औरत होने पर भी हत्यारिणी नहीं, माँ है। बस उसी के कारण मैं वहाँ रुका हूँ, नहीं तो मेरा बस चले तो मैं उस रामरूप को एक ही दिन में इस पृथ्वी पर से उठा दूँ, जो लोगों की हत्या कर अपनी जीविका चलाता है। और आपसे छिपाता नहीं, मैं शीघ्र ही किसी न किसी तरह उसको इस व्यापार से अलग करूँगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।"

"वह ऐसा कपड़ा नहीं है अलियार" मैंने कहा--"जिस पर कोई दूसरा रंग भी चढ़ सके। रामरूप को, जहाँ तक मैंने समझा है, स्वयं भगवान भी उसके व्याापार से अलग नहीं कर सकते। दूसरे जल्लाद चाहे कुछ कच्चे अधिक हों, मगर तुम्हारा यह माामा तो जरूर ही सभी जल्लादों का दादा गुरू है। बचना तुम

उससे--और उसको उसके पथ से बिरत करना नहीं तो सावधान ! वह ऐसा निर्दय है कि कुछ उलटी-सीधी समझते ही तुम्हारे प्राणों तक को मसल डालेगा।''

''पर बाबू'' अलियार ने सच-सच कहा--''अब तो वह भी मुझको प्यार करने लग गया है। मुझे तो कभी-कभी ऐसा ही मालूम पड़ता है। आश्चर्य से चकित होकर कभी-कभी मेरी वह नई 'माँ' भी ऐसा ही कहा और सोचा करती है। वह क्रुद्ध होने पर अब भी अक्सर मेरी माँ को बुरी तरह मारने लगता है, पर मेरी ओर--बड़ा से बड़ा अपराध होने पर भी--न जाने क्यों, तर्जनी उँगली तक नहीं उठाता। मुझे अपने ही साथ खिलाता भी है, और यहाँ-वहाँ--जेल में और छोटे-मोटे अफसरों के पास--ले भी जाता है। मगर इतने पर भी मैं उससे घृणा करता हूँ। उसका अमंगल और सर्वनाश चाहता हूँ।

''क्यों ? न जाने क्यों ! मैंने साश्चर्य से पूछा'' उसने उत्तर दिया--''मैं उस पशु को कभी प्यार नहीं कर सकता। अच्छा बाबू, आपको भी देर हो रही है, मुझे भी। यहाँ रहा तो फिर कभी सलाम करने आऊँगा। इस वक्त जाने दीजिए--सलाम !''

मुझको यह विश्वास नहीं था कि वह दुबला-पतला भिखमंगा बालक अपने निश्चय का ऐसा पक्का निकलेगा कि एक दिन सारे शहर में तहलका मचाकर छोड़ेगा पर वह विचित्र निकला। एक दिन प्रातःकाल होते ही शहर में जोरों की सनसनी फैली कि आज स्थानीय जिला-जेल से कोई बड़ा मशहूर फाँसी का क़ैदी भाग निकला है। यद्यपि उसके भागने के वक्त पहरेदार वार्डरों को कुछ आहट मिल गई थी, पर उससे कोई फ़ायदा नही हो सका। भागने वाला तो भाग ही गया। हाँ, भगाने वालों मे से एक नवयुवक पकड़ा गया है।

समाचार तो आकर्षक था, ख़ासकर इसलिए, कि फाँसी का कोई क़ैदी भागा था। मेरे जी में आया कि जरा जेल की ओर टहलता हुआ चलूँ। देखूँ, वहाँ शायद रामरूप या अलियार मिले। उन दोनों में से किसी के भी मिलने से बहुत सी भीतरी बातों का पता चल सकेगा।

कपड़े पहन और टहलने की छड़ी हाथ में लेकर जब मैं जेल के पास पहुँचा तो वहाँ का हंगामा देखकर एक बार आश्चर्य में आ गया। फाटक के बाहर अपने क्वार्टरों के सामने मैदान में डयूटी से बचे हुए अनेक वार्डर हताश और उदास खड़े गत रात्रि की घटना पर मनोरंजक ढंग से वाद-विवाद कर रहे थे।

''भीतर बड़े साहब और कलेक्टर'' एक ने दरियाफ्त किया--''उसका बयान ले रहे हैं, ग़जब कर दिया उस लौंडे ने। ऐसे ज़ालिम आदमी को भगा दिया, जिसे कि, अब सरकार पा ही नहीं सकती। मैंने पहले इस छोकरे को ऐसा नहीं समझा था।''

''अरे उसको छोकरा कहते हो ?'' दूसरे मुसलमान वार्डर ने कहा--''साला चाहे तो बड़े-बड़ों को चरा के छोड़ दे। मगर उस पाजी की वजह से बेचारा रामरूप पिस जायगा, क्योंकि अपना-अपना बोझ हल्का करने के लिए सभी गरीब रामरूप पर टूटेंगे। उसी की वजह से वह जेल में आने-जाने और उसके भेद पाने लायक हुआ था। अब देखना है, रामरूप की डोंगी किस घाट लगती है।''

''वह भी अफ़सरों के सामने जेलर साहब द्वारा बुलाया गया है। शायद उसको भी बयान देना होगा।''

''नहीं ! किसी गम्भीर वार्डर ने कहा--''जेल के कर्मचारियों से जब कोई ग़लती हो जाती है, तब अपनी सारी ताकत लगाकर वह उसे छिपाने की केशिश करते हैं। मुझे ठीक मालुम है कि उस लड़के के सिलसिले में रामरूप का नाम लिया ही न जाय और यह साबित ही न होने दिया जाय कि वह पहले से यहाँ आता-जाता था। यह बात रामरूप को और उस लौंडे को भी समझा दी गई है।''

''मगर वह पाजी छोकरा, जिसने उस मशहूर डाकू को भगाकर हमारे सर पर आफ़त का पहाड़ ढा दिया है, जेलर की सलाह मानेगा ही क्यों ? अगर अपने बयान में वही कुछ कह दे ?''

''अजी कहेगा ज़रूर ही !'' किसी बूढ़े वार्डर ने राय दी--''आखिर इस भगाई में एक खून भी तो हुआ है। माना कि खून लड़के ने नहीं, उस डाकू के किसी साथी ने किया होगा, पर अगर दूसरे न पकड़े गए तो उस वार्डर का खून तो इसी छोकरे के माथे मढ़ा जायगा। उफ़ ! बड़े जीवट की यह घटना हुई है। मैं तो तीस साल से इस नौकरी में हूँ। इस बीच में पचासों क़ैदियों को भागने की बातें मैंने सुनीं, मगर उनमें ऐसी घटना एक भी नहीं। फाँसी के क़ैदी का भाग जाना और भाग जाने पाना--कमाल है ! अरे इस मामले में जेल का सारा 'स्टाफ' बदल दिया जायगा--बड़े साहब से लेकर छोटे जमादार तक। लोग तनज़्जुल होंगे, सो अलग।''

इसी समय रामरूप जेल के फाटक के बाहर आता हुआ दिखाई पड़ा। सबकी नज़र उस पर पड़ी।

''वह देखो !'' एक ने कहा--''वह बाहर आया, ओह ! कैसी लाल हैं आज उसकी आँखें ! कैसे उसके होठ फड़क रहे हैं ! जरा बुलाओ तो इधर। पूछा जाय कि भीतर क्या हो रहा है।''

''क्या हो रहा है रामरूप ?'' अपनी ओर बुलाकर वार्डरों ने उससे दरियाफ़्त किया--''क्या कलेक्टर के आगे तुम्हारा नाम भी लिया जा रहा है ?''

''नहीं बाबू,'' उसने दाँत किटकिटाकर कहा--''आप लोगों की दया से मेरा तो नहीं लिया जा रहा है। वह छोकरा भी इस बारे में चुप है। कुछ बोलता ही नहीं, सिवा इसके कि--'हाँ, मैंने ही उस डाकू को भगा दिया है। मैंने ही मारा भी है उस वार्डर को। मेरी सहायता में और लोग भी थे, मगर मैं उन्हें इस बारे में नहीं फँसाना चाहता। मेरी सज़ा हो, मुझको फाँसी दी जाय, मैं तैयार हूँ। ''

''फिर क्या होगा रामरूप ?'' एक ने पूछा--''लच्छन कैसे दिखाई पड़ते हैं ?''

''क्या होगा, इसे आज ही कौन बता सकता है जमादार साहब ?'' उसने नीरस उत्तर दिया--''अभी तो सरकार उस डाकू और उसके साथियों को पकड़ने की कोशिश करेगी। इसके बाद उस साले भिखमंगे को फाँसी दी जायेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं, वह पाजी जरूर फाँसी पर लटकाया जायगा। मैं फाँसी पाने वालों की आँखें पहचान जाता हूँ और सच कहता हूँ कि भैरव बाबा की दया से मैं उस शैतान के बच्चे को मृत्यु के झूले पर टाँगूँगा।''

न जाने क्या विचार कर रामरूप एकाएक उत्तेजित हो उठा--''इन्हीं हाथों से मैंने अच्छे-अच्छे और बड़े-बड़ों को फाँसी पर टाँग दिया है। सच मानना जमादार साहब !'' आज तक चार-बीस और सात आदमियों को लटका चुका हूँ। अब यह साला आठवाँ होगा; हाँ, हाँ, आठवाँ होगा ! आठवाँ होगा !!''

उत्तेजित रामरूप उस भीड़ से दूर एक ओर तेजी से बड़बड़ाता हुआ बढ़ गया। उस समय उससे कुछ पूछने की हिम्मत न हुई।

मगर आश्चर्य की बात तो यह है कि धीरे-धीरे वह क्रूर हृदय जल्लाद उस अलियार को प्यार करने लग गया था। अलियार ने उस दिन बिलकुल सच कहा था। क्योंकि जब सेशन अदालत से, और किसी प्रामाणिक मुजरिम के अभाव में

और प्रमाणों के आधिक्य से, अलियार को फाँसी की आज्ञा सुनाई गई, तब वही रामरूप कुछ ऐसा उत्तेजित हो उठा कि पागल-सा हो गया।

"हा हा हा हा ?" वह अदालत के बाहर ही निस्संकोच बड़बड़ाने लगा--"अब लूँगा--अब बच्चू से लूँगा" बदला ! क्यों न लूँ बदला उससे ? मैंने सरकारी हुक्म से उसको, उस दिन बेंत मारे थे, जिसका उसने मुझसे ऐसा भयानक बदला लिया है। मेरी रोज़ी मारते-मारते बचा। वह तो बचा ही, उस पापी ने मेरी औरत को अपने प्रेम में खाट पकड़वा दी है। अब भोगो बेटे; अब झूलो पालना बच्चू ! हा हा हा हा !!"

यद्यपि अलियार की फाँसी की आज्ञा सुनकर जल्लाद रामरूप अट्टहास कर उठा, पर मेरा तो कलेजा धक् से होकर रह गया। मुझको ऐसी आशा नहीं थी कि जिस कहानी का आरम्भ, उस दिन जेल के कोने में, अलियार और जल्लाद से मेरे परिचित होने से हुआ था, उसका अन्त ऐसा वीभत्स होगा। मैंने बड़े दुख के साथ, उस दिन यह निश्चय किया कि अब मैं कभी उस रामरूप के सामने न जाऊँगा।

मगर संयोग को कौन टाल सकता है ? जिस दिन अलियार को दुनिया के उस पार फेंक देने का निश्चय हो गया था, उससे एक दिन पूर्व मैंने उसको अन्तिम बार पुनः देखा। हाथ में एक हाँडी लिए परम उत्तेजित भाव से वह शहर की एक चौमुहानी पर खड़ा था और उसको घेरे हुए लड़कों, युवकों और बेकारों की एक भीड़ खड़ी थी। अजीब-अजीब प्रश्न लोग उस पर बरसा रहे थे और वह उनके रोमांचकारी उत्तर दे रहा था। किसी ने पूछा--"तुम कौन हो भाई ?"

"मैं ?" वह मुस्कराया--"मैं महापुरुष हूँ। आह ! पर अफ़सोस ! तुम नहीं जानते कि मैं महापुरुष क्योंकर हो सकता हूँ, क्योंकि मैं तो खानदानी जल्लाद रामरूप हूँ। पर अफसोस ! तुम नहीं जानते कि प्रत्येक जल्लाद महापुरुष होता है।"

"अच्छा यार" एक ने कहा--"हमने मान लिया कि तुम महापुरुष हो। पर यह तो बताओ कि आज यहाँ इस तरह क्यों खड़े हो ? यह तुम्हारे हाथ में जो हाँडी है, इसमें क्या है ?"

"यह हाँडी," उसने हाँडी का मुँह भीड़ के सामने किया--इसमें फाँसी की रस्सी है जरूर, यह असली नहीं है। असली रस्सी तो दुरुस्त करके आज ही जेल में ऐसे ही एक बरतन में रख आया हूँ। वह रस्सी इससे कहीं सुन्दर, कहीं मज़बूत है। इसको तो केवल अभ्यास के लिए अपने साथ लेता आया हूँ। आज रात भर इन उस्ताद हाथों को फाँसी देने का अभ्यास जोर-शोर से कराऊँगा ! क्योंकि इस बार मामूली आदमी को नहीं लटकाना है। इस बार उसको लटकाना है, जिसके झूलते ही कोई आश्चर्य नहीं, जो मेरी औरतिया भी इस दुनिया से कूच कर जाय; क्योंकि वह उस पापी को प्यार करती है।"

किसी ने कहा--ज़रा अपने गले में इस रस्सी को लगाकर बताओ तो रामरूप कि फाँसी की गाँठ कैसे दी जाती है ?

"हाँ, हाँ" उसने रस्सी को अपने गले के चारों ओर लपेटकर, गाँठ देना शुरू किया। यह देखो, यह गले का कन्ठ है और यह है मेरी मृत्यु-गांठ। बस, अब केवल चबूतरे पर खड़ाकर झुला देने की कसर है। जहाँ एक झटका दिया कि बच्चू गए जम-धाम। यह देखो ! यह देखो !

अपने गले में उस रस्सी को उसी तरह लपेटे वह उन्मत्त रामरूप हाँडी फेंककर, भीड़ को चीरता हुआ एक ओर बेतहाशा भाग गया !

दूसरे दिन अलियार को फाँसी देने के लिए जब सशस्त्र पुलिस, मैजिस्ट्रेट, जेल-सुपरिन्टेंडेंट और अन्य अधिकारी, एकत्र हुए तो मालूम हुआ कि जल्लाद रामरूप हाज़िर नहीं है !

पुलिस दौड़ी, जेल के वार्डर दौड़े, उसको ढूँढ़ने के लिए। मगर वह मिल न सका। न जाने कहाँ गायब हो गया। अलियार को उस दिन फाँसी नहीं हो सकी।

मगर उसी दिन दोपहर को कुछ लोगों ने रामरूप को शहर के बाहर एक बरगद की डाल में, फाँसी पर टँगे देखा। उसकी गर्दन में वही रस्सी थी, जिसको कुछ घण्टे पूर्व शहर के अनेक लोगों ने उसके हाथ में देखा था। उस समय भी उसकी आँखें खुलीं, भयानक और नीरस थीं। जीभ मुँह से कोई बारह अंगुल बाहर निकल आई थी कि बड़े-बड़े हिम्मती तक उसकी ओर देखकर दहल उठते थे ! ❑ ❑

('चाँद' के फाँसी अंक से साभार)

(पृष्ठ 51 का शेष)

5. श्लेष

जहाँ अनेक अर्थ निकलें, वहाँ 'श्लेष' अलंकार होता है। यह दो प्रकार का होता है--1. शब्द-श्लेष और 2. अर्थ-श्लेष। जहाँ शब्द-परिवर्तन कर देने से दूसरा अर्थ न निकले, वह 'शब्द-श्लेष' और जहाँ वैसा कर देने पर भी दूसरा अर्थ निर्बाध बना रहे, वहाँ शब्द-श्लेष दिया जाता है।

शब्द से, पद या पदांश से, जब अनेक अर्थ निकलें और उनका परिवर्तन कर देने पर अनेक अर्थ न रहें, तो 'शब्द-श्लेष' अलंकार होता है। उदाहरण--

रस और अलंकार--

सौरभ द्विज-प्रिय तिलककी, फैल्यो चहुँ दिसि लोक।
ताप समन किय जननकी, भी प्यारो सुर-लोक।

यहाँ 'तिलक' शब्द में श्लेष है :-- इसके दो अर्थ हैं-- 1. भगवान् बाल गंगाधर तिलक और 2. चन्दन का तिलक। दोहे का अर्थ दोनों ओर घटता है। यह शब्द-श्लेष है; क्योंकि शब्द के ही आधारपर स्थित है। यदि 'तिलक' के स्थान पर तिलक महाराज का नाम 'बाल' कर दिया जाय, तो दूसरा अर्थ नहीं निकलेगा। इसी प्रकार वहीं 'टीका' आदि शब्द रख देने पर भी श्लेष नहीं रह सकता। इसलिए यह शब्द-श्लेष है।

इस तरह ये पाँच शब्दालंकार हुए। छठा इस श्रेणी का अलंकार प्रहेलिका (पहेली) है, ऐसा किसी-किसी का मत है; परन्तु वस्तुतः वह कोई अलंकार नहीं है। कारण, काव्य में रस, भाव आदि मनोभावों की प्रधानता है। इन मनोभावों के जो उत्कर्ष-साधक होंगे, वे ही अलंकार कहलायेंगे। प्रहेलिका का ऐसा बीहड़ और व्यर्थ गोरखधन्धा है कि वह रसानुभव में एक उलझन पैदा कर देती है-- उसी की उधेड़बुन में पहले मन लग जाता है। बाद में जब उससे छुटकारा मिले, तो शायद रस तक मन पहुँचे। यों मनोभावों की चर्वणा में बाधक होने के कारण इसकी गिनती अलंकारों में नहीं की गई है। सिर्फ थोड़ा सा मनोविनोद इससे हो जाता है; सो भी कवि या सहृदय की प्रारम्भिक दशा में। बस, और कोई वैसा चमत्कार भी नहीं है। कहा भी है :--

रसस्य परिपन्थित्वान्नालंकारः प्रहेलिका।
उक्तिवैचि यमात्रं सा च्युतदत्ताक्षरादिका। ❑ ❑

नींद नहीं आती

○ सज्जाद ज़हीर

घड़-घड़-घड़-घड़, टिख-टिख, चट, टिख-टिख-टिख, चट-चट-चट। गुजर गया है ज़माना गले लगाए ए... ए... ऐ खामोशी और अंधेरा। अंधेरा-अंधेरा। आंख एक पल के बाद खुली। तकिया के गिलाफ़ की सफ़ेदी। अंधेरा मगर बिल्कुल अंधेरा नहीं। फिर आंख बंद हो गई। मगर पूरा अंधेरा नहीं। आंख दबाकर बंद की, फिर भी रोशनी आ ही जाती है। अंधेरा, पूरा अंधेरा क्यों नहीं होता ? क्यों नहीं ? क्यों नहीं ?

बड़ा मेरा दोस्त बनता है, जब मुलाकात हुई, आइए अकबर भाई, आपको तो देखने को आंखें तरस गई। हें... हें... हें। कुछ ताज़ा कलाम सुनाइए। लीजिए सिगरेट का शौक़ फ़रमाइए। मगर समझता है, शेर खूब समझता है। वह दूसरा उल्लू का पट्ठा तो बिल्कुल मूढ़ है। आख्खाह--आज तो आप बिल्कुल नई अचकन पहने हैं। नई अचकन पहने हैं... तेरे बाप का क्या बिगड़ता है जो मैं नई अचकन पहने हूं। तू चाहता है कि बस तेरे पास ही नई अचकन हो और शेर समझना तो दूर की बात, सही पढ़ भी नहीं सकता। नाक में दम कर देता है। बेहूदा-बदतमीज़ कहीं का। मगर बड़ा भारी दोस्त बनता है। ऐसों की दोस्ती क्या। मेरी बातों से उसका दिल बहल जाता है। बस यही दोस्ती है, मुफ्त का मुसाहिब मिला, चलो मज़े हैं... खुदा सब कुछ करे ग़रीब न करे। दूसरों की खुशामद करते-करते जबान घिस जाती और वह है कि चार पैसे जो जेब में हमसे ज्यादा हैं तो मिज़ाज ही नहीं मिलते। मैंने आखिर एक दिन कह दिया कि मैं नौकर हूं, कोई आपका गुलाम नहीं हूं। तो क्या आंखें निकालकर लगा मुझे देखने। बस जी में आया कि कान पकड़ के एक चांटा रसीद करूं, साले का दिमाग सही हो जाए।

टप-टप-खट, टप-टप-खट, टप-टप-खट, टप-टप-टप... ट...

इस बक्त रात को आखिर यह कौन जा रहा है ? मरन है उसकी और कहीं पानी बरसने लगे तो मज़ा है। लखनऊ में जब मैं था। एक सभा में मूसलाधार बारिश। अमीनाबाद का पार्क तालाब मालूम होता था। मगर लोग है कि अपनी जगह से टस से मस नहीं होते। और क्या है--जो यों सब जान पर खेलने को तैयार हैं। महात्मा गांधी के आने का इन्तज़ार है। अब आए-तब आए। वह आए-आए-आए। वह मचान पर महात्मा जी पहुंचे... जै... जै... जै... खामोशी।

"मैं आप लोगों से ये केना चाता हूं कि आप लोग विदेसी कपड़ा पहनना बिल्कुल छोड़ दें। ये सेतानी गौरमेंट... "

यहां पानी सर से होकर पैरों से परनालों की तरह बहने लगा। कुदरत मूत रही थी। सेतानी गौवरमेंट, सेतानी गौवरमेंट की नानी। इस गाँधी से शैतानी गौवरमेंट की नानी मरती है। हा-हा शैतानी और नानी। अकबर साहब आप तो माशा अल्लाह शायर हैं। कोई राष्ट्रीय गीत रच डालिए। ये गुल ओर बुलबुल की कहानियां कब तक। कौम की ऐसी की तैसी, कौम ने मेरे साथ कौन-सा अच्छा सुलूक किया है जो मैं गुल और बुलबुल को छोड़कर कौम के आगे दुम हिलाऊं थिरकूं।

मगर मैं यह कहता हूँ कि मैंने आखिर किसी के साथ कौन-सा बुरा सलूक किया कि सारा जमाना हाथ धोकर पीछे पड़ा है। मेरे कपड़े मैले है...। उनसे बू आती है... बदबू सही। मेरी टोपी देखकर कहने लगा कि तेल का धब्बा पड़ गया, नई टोपी क्यों नहीं खरीदते ? क्यों खरीदूं नई टोपी... नई टोपी, नई टोपी, नई टोपी में क्या मोर के पंख लगे हैं ? बहुत इतरा के साथ चलते थे जो, वह जूतियां चटखारते फिरते हैं आज, हम औजे ताला-ए-लाल-ओ-गुहर को...

वाह...वाह क्या बेतुकापन है। जार्ज पंजुम के ताज में हमारा हिंदुस्तानी हीरा है। ले गए चुरा के अंग्रेज, रह गए न मुंह देखते। उड़ गई सोने की चिड़िया, रह गई दुम हाथ में अब चाहते है दुम भी हाथ से निकल जाए। न दुम छूटने पाए। शाबाश है मेरे पहलवान, लगाए जा ज़ोर। दुम छूटी तो इज्जत गई। क्या कहा ? इज्जत ? इज्जत लेके चाटना है। सूखी रोटी और नमक खाकर क्या बांका जिस्म निकल आया है। फ़ाका हो तो फिर क्या कहना, और अच्छा है फिर तो बस इज्ज़त है और इज्ज़त, के ऊपर पाक खुदा...खुदा बन्दे पाक, अल्लाह बोरीताला, रब्बुल इज्ज़त परमेश्वर परमात्मा लाख नाम लिए जाए। जल्दी-जल्दी और जल्दी क्या हुआ ? रूहानी सुकून ? बस तुम्हारे लिए यही काफ़ी है। मगर मेरे पेट में दोज़ख है। दुआ करने से पेट नहीं भरता, पेट से हवा निकल जाती है। भूख और ज्यादा मालूम होने लगती है, भौं-भौं-भौं...

अब इनका भौंकना शुरू हुआ तो रात भर जारी रहेगा। मच्छर अलग सता रहे हैं। तौबा है तौबा ! एक जाली का पर्दा गर्मियों में बहुत आराम देता है। मच्छरों से निजात मिलती है। मगर क्या, निजात क्या ? दिन भर की मेहनत, चीख पुकार, कड़ी धूप में घंटों एक जगह से दूसरी जगह घूमते-घूमते जान निकल जाती है। अम्मां कहा करती थी, अकबर धूप में मत दौड़, आ मेरे पास आके लेट बच्चे। लू लग जाएगी तुझे बच्चे। एक मुद्दत हो गई उसे भी। अब तो ये बातें सपना मालूम होती हैं और मौलवी साहब हमेशा तारीफ़ करते थे। देखो, नालयकों, अकबर की देखो, उसे शौक है पढ़ने का। सपना, वो सारी बातें सपना मालूम होती हैं। मैं बस्ता-तख्ती लिए दौड़ता हुआ वापस आता था। अम्मां गोद से चिपटा लेती थीं। मगर क्या आराम था। उस वक्त भी क्या आराम था। ये सब चीजें मेरी किस्मत में ही नहीं। मगर जो मुसीबत मैं बर्दाश्त कर चुका, शायद ही किसी को उठानी पड़ी हो। उसे याद करने से फायदा ? खैराती अस्पताल, नर्सें, डाक्टर, सब नाक-भौं चढ़ाए और अम्मां का यह हाल कि करवट लेना मुहाल और उनके उगालदान में खून के डले के डले। मालूम होता था कि गोश्त के लोथड़े हैं...और मैं सबको खत पे खत लिखता था। सही सब जो रिश्तेदार बनते हैं। आइए अकबर भाई, आइए, आपसे बरसों से मुलाकात नहीं हुई। यही उन्हीं के मां-बाप। क्या हो जाता अगर
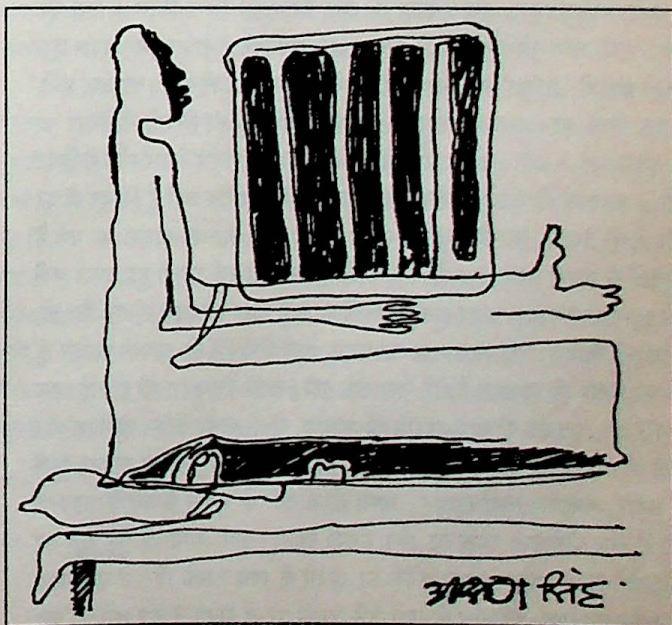
चित्र : अरुण सिंह

जरा और मदद कर देते। दुनिया भर के पाखंड पर पानी की तरह दौलत बहाते हैं। किसी रिश्तेदार की मदद करते वक्त मल-मल कर पैसा देते हैं और फिर अहसान जताना इतना कि खुदा की पनाह। उस दिन मैं कहीं बाहर गया हुआ था, उन्हीं महाशय की अम्मीजान, अम्मां को देखने आईं। मैं जब पहुंचा तो उन्हें आए चंद मिनट हुए थे। चेहरे से टपक रहा था कि उन्हें डर है कि जीवाणु उनके सीने में न घुस जाएं। मगर बीमार को देखने का फर्ज है। सबाब का काम है। यह सब तो अपनी जगह। उल्टे मुझे डांटना शुरू कर दिया। कहां गये थे तुम अपनी अम्मां को छोड़कर। इनकी हालत ऐसी नहीं कि इन्हें इस तरह छोड़ा जाए।

मरीज के मुँह पर इस तरह की बातें-- मैं गुस्से से खौलने लगा। मगर मरता क्या न करता। अस्पताल का खर्च इन्हीं लोगों से लेना था। मेरी बीवी-बच्चे का ठिकाना इन्हीं लोगों के यहां था... मेरी शादी का जिसने सुना विरोध किया। मगर अम्मां बेचारी का सबसे बड़ा अरमान मेरी शादी थी। अकबर की दुल्हन ब्याह के लाऊं, बस मेरी यह आखिरी तमन्ना है। लोग कहते थे घर में खाने को नहीं, शादी किस बूते पर करोगी ? अम्मां कहती थीं, खुदा रोजी देने वाला है। जब मेरा रिश्ता तय हो गया, शादी की तारीख निश्चित हो गई, शादी का दिन आ गया, तो वही लोग जो विरोध करते थे, सब बारात में जाने को तैयार होकर आ गए। अम्मां की सारी बची-बचाई पूंजी मेहमानदारी और शादी की रस्मों में खर्च हो गई। गैस की रोशनी, रेशमी अचकनें, पुलाव, बाजा, मसनद, हंसी-मजाक, भीड़। खाने में कमी पड़ गई। बावर्ची ने चोरी की। बादशाह अली साहब का जूता चोरी गया। जमीन-आसमान एक कर दिया। अबे उल्लू के पठ्ठे तूने जूता संभालकर क्यों नहीं रखा ? जी हुजूर, कुसूर मेरा नहीं--मेहर का झगड़ा शुरू हुआ। मोज्जिल (मेहर, निकाह टूटने पर अदा की जाने वाली रक्म) और मोअज्जल (निकाह के समय अदा की जाने वाली रकम) की बहस। मुँह दिखाई की रस्म। सलाम कराई की रस्म। मज़ाक, फूल, गाली-गलौज, शादी हो गई। अम्मां का अरमान पूरा हो गया... मोहर्रम अली बेचारा चालीस साल का हो गया, उसकी शादी नहीं हुई। अकबर मियां शादी करवा दीजिए शैतान रात को बहुत सताता है। शादी खुशी। कोई हमदर्द बात करने वाला जिसे अपने दिल की सारी बातें अकेले सुना दें। कोई औरत जिससे मोहब्बत कर सकें। दो घड़ी हंसें, बोलें, छाती से लगायें, प्यार करें--अरे मान भी जाव मेरी जान। मेरी प्यारी, मेरी सब कुछ। जुबान बेकार है। हाथ, पैर, सारा जिस्म, जिस्म का एक-एक रोंगटा...क्यों आज मुझसे नाराज हो, बोलो। अरे, तुमने तो रोना शुरू कर दिया। खुदा के वास्ते बताओ, आखिर क्या बात है। देखो, मेरी तरफ देखो तो सही। वह आई हंसी, वह आई होठों पर। बस अब हंस तो दो। क्या दो दिन की ज़िंदगी में बेकार का रोना-धोना। ओ... ओ... हो... यों नहीं यों--और... और ज़ोर से मेरे सीने से लिपट जाओ... लखनऊ के कोठों की सैर मैंने भी की है। ऐसा गरीब नहीं हूँ कि दूर ही दूर से रंडियों को देखकर सिसकियां लिया करूं। आइए हुजूर अकबर साहब, यह क्या है जो मुद्दतों से हमारी तरफ रुख ही नहीं करते। इधर कोई नई चलती हुई ग़ज़ल कहीं हो तो इनायत फ़रमाइए। गाकर सुनाऊं ? लीजिए पान नौश फ़रमाइए ऐ, लो और लो, जरा दम तो लीजिए। नहीं आज माफ फ़रमाइए, फिर कभी। मैं तो आपकी खादिम हूं, रुपये की गुलाम हूं। समझती है मेरे पास टके नहीं। रुपये देखकर राज़ी हो गई। क्या सुनाऊं हुजूर... तबला की थाप, सारंगी की आवाज, गाना-बजाना। फिर तो मैं था और वह थी और सारी रात थी। नींद जिसे आई हो वह काफ़िर। यह रातों का जागना, दूसरे दिन सरदर्द, थकावट, चिड़चिड़ापन। अम्मां की बीमारी के जमाने में उनकी पलंग की पट्टी से लगा घंटों बैठा रहता था और उनकी खांसी। कभी-कभी-तो मुझे खुद डर मालूम होने लगता, मालूम होता था कि हर खांसी के साथ उसके सीने में एक गहरा जख्म और पड़ गया। हर सांस के साथ जैसे ज़ख्मों पर से किसी ने तेज छुरी की बाढ़ चला दी। और वह घड़घड़ाहट, जैसे किसी पुराने खंडहर में लू चलने की आवाज होती है। डरावनी। मुझे अपनी मां से डर मालूम होने लगता। इस हड्डी-चमड़े के ढांचे में मेरी मां कहां। मैं उनके हाथ पर हाथ रखता, धीरे से दबाता, उनकी आधी खुली, आधी बंद आंखें मेरी तरफ मुड़तीं, उनकी नज़र मुझ पर होती। उस वक़्त इस जर्जर, हारे हुए मुर्दा जिस्म भर में सिर्फ आंखें जिन्दा होतीं। उनके होंठ हिलते। अम्मा-अम्मा आप क्या कहना चाहती हैं। जी... मैं अपना कान उनके होंठों के पास ले जाता। वह अपना हाथ उठाकर मेरे सिर पर रखतीं। मेरे बालों में उनकी उंगलियां मालूम होता था फंसी जाती हैं और वह छुड़ाना नहीं चाहतीं। बहुत देर कर दी, जाओ तुम सो रहो... अम्मां यों ही पलंग पर लेटी हैं। एक महीना, दो महीना, तीन महीना, एक साल, दो साल, सौ साल, हजार साल। मौत का फ़रिश्ता आया। बदतमीज, बेहूदा कहीं का। चल निकल यहां से भाग। अभी भाग, वरना तेरी दुम काट लूंगा। डांट पड़ेगी फिर बड़े मियां की। हंसता है। क्यों खड़ा है सामने दांत निकाले। तेरे फ़रिश्ते की ऐसी-तैसी। तेरे फ़रिश्ते की...।

सारी दुनिया की ऐसी-तैसी, मियां अकबर तुम्हारी ऐसी-तैसी। ज़रा अपनी काया पर ग़ौर फरमाइए। फूंक दूं तो उड़ जाएं, मुशायरों में पढ़ेंगे तो चिल्लाकर, बड़े बने हैं गुर्राने वाले। मुशायरों में तारीफ क्या हो जाती है कि समझते हैं... क्या समझते हैं बेचारे, समझेंगें क्या, बीवी जान कुछ समझने भी दें। सुबह से शाम तक शिकायत, रोना-धोना। कपड़ा फटा है। बच्चे की टोपी खो गई, नई खरीद के ले आओ, जैसे मेरी अपनी नई टोपी है। कहां खो गई टोपी। मैं क्या जानूं कहां खो गई। उसके साथ कोने-कोने में थोड़ी भागती फिरती हूं। मुझे काम करना होता है, बर्तन धोना, कपड़े सीना। सारे घर का काम मेरे जिम्मे है। मुझे किसी की तरह शेर कहने की फुर्सत नहीं। सुन लो खूब अच्छी तरह से मुझे काम करना होता है।

चित्र : अरुण सिंह

मगर छत्ता छेड़ दिया, अब जान बचानी मुश्किल हुई, क्या कैंची की तरह जुबान चलाती है। माशा अल्लाह, खुदा बुरी नज़र से बचाए। अच्छी तरह जानते हो मेरे पास पहनने को एक ठिकाने का कपड़ा नहीं है। लड़का तुम्हारा अलग नंगा घूमता है। हाय अल्लाह, मेरी किस्मत फूट गई। अब रोना शुरू होने वाला है। मियां बेहतर यही है कि तुम चुपके से खिसक जाओ। इसमें शर्माने की क्या बात है, तुम्हारी मर्दानगी में कोई फ़र्क नहीं आता, खैरियत बस इसी में है कि खामोशी के साथ खिसक जाओ। हिजरत करने से एक रसूल की जान बची। मालूम नहीं ऐसे मौकों पर रसूल बेचारे क्या करते थे, औरतों
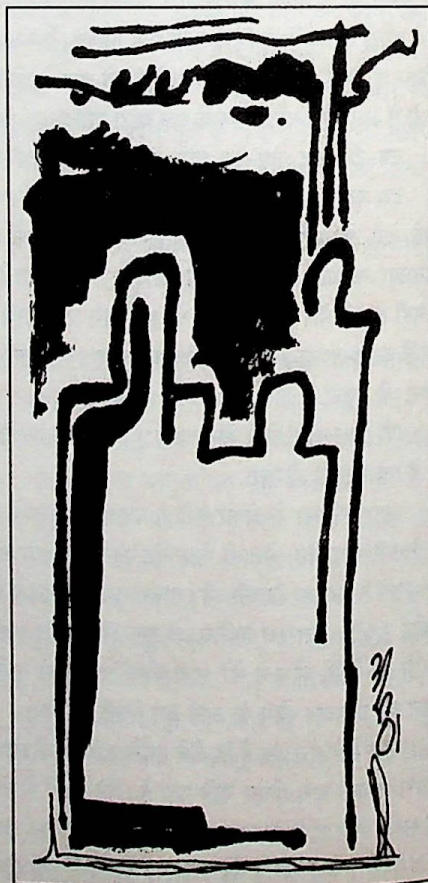
ने उनकी नाक में भी दम कर रखा था। ऐ खुदा, आखिर तूने औरत क्यों पैदा की। मुझ जैसा गरीब कमज़ोर आदमी तेरी इस अमानत का भार अपने कंधों पर नहीं उठा सकता और कयामत के दिन मैं जानता हूँ क्या होगा। यही औरतें वहाँ भी ऐसी चीख-पुकार मचांएगी, ऐसी-ऐसी अदाएं दिखाएंगी, वह आंखें मारेंगी कि अल्लाह मियां बेचारे खुद अपनी दाढ़ी खुजाने लगें। क़यामत का दिन आखिर कैसा होगा। सूरज आसमान के बीचोबीच आग उगलता हुआ, मई, जून की गर्मी उसके सामने क्या होगी, गर्मी की तकलीफ़ तौबा-तौबा अरे तौबा। यह मच्छरों के मारे नाक में दम, नींद हराम हो गई। पिन-पिन, चट। वह मारा। आखिर यह कम्बख्त न हों, मगर क्या ठीक। कुछ ठीक नहीं। आखिर मच्छर और खटमल इस दुनिया में खुदा ने ही किसी वजह से पैदा किए ? पता नहीं पैगम्बरों को मच्छर-खटमल काटते हैं या नहीं। कुछ ठीक नहीं, कुछ ठीक नहीं। आपका नाम क्या है ? मेरा क्या नाम है। कुछ ठीक वाह-वाह-वाह, खुदा की इच्छा। इच्छा और रंडी और भिंडी। गलत, भिंडी है। मियां अकबर इतना भी अपनी हद से बाहर न निकलिए। और क्या है ? नदी में बल चले। अंगूर खट्टे, आपको खटास पसन्द है ? पसंद से क्या होता है ? चीज़ हाथ भी तो लगे। मुझे घोड़ा-गाड़ी पसन्द है। मगर करीब पहुँचा नहीं कि वह दुलत्ती पड़ती है कि सर पर पांव रखकर भागना पड़ता है। और मुझे क्या पसंद है ? मेरी जान। मगर तुम तो मेरी जान से प्यारी हो, चलो हटो, बस रहने भी दो, तुम्हारी मीठी-मीठी बातों का मजा मैं खूब चख चुकी हूं। क्यों क्या हुआ, हुआ क्या मुझसे यह बेग़ैरती नहीं सही जाती। तुम जानते हो कि दिन भर लौंडी की तरह काम करती हूं, किसी खिदमतगारिन को एक महीने से ज़्यादा टिकते नहीं देखा। मुझे साल भर से ज्यादा हो गए, मगर कभी जो ज़रा दम मारने की फुर्सत मिली हो। अकबर की दुल्हन यह करो, अकबर की दुल्हन वह करो... अरे-अरे क्या, हुआ क्या, तुमने तो फिर रोना शुरू किया। मैं तुम्हारे सामने हाथ जोड़ती हूं... मुझे यहां से कहीं और ले जा के रखो। मैं शरीफ़ज़ादी हूं। सब कुछ तो सह लिया, अब मुझसे गाली बर्दाश्त न होगी। गली-गली, मालूम नहीं क्या गाली दी। मेरी बीवी पर गालियां पड़ने लगीं, या अल्लाह, या अल्लाह, । इस बेग़म कमबख्त का गला और मेरा हाथ। उसकी आंखें निकल पड़ी, जुबान बाहर लटकने लगी। हो जा अब इस दुनिया से रुख्सत। खुदा के लिए मुझे छोड़ दो। कुसूर हुआ माफ़ करो, अकबर मैंने तुम्हारे साथ एहसान भी किए हैं।... अहसान तो जरूर किए हैं। अहसानों का शुक्रिया अदा करता हूं, मगर अब तुम्हारा वक्त आ गया। क्या समझकर मेरी बीवी को गालियां दी थीं। बस खत्म, आखिरी दुआ मांग लो। गला घोंटने से सर काटना बेहतर है। बालों को पकड़कर सर को उठाया, जबान एक तरफ निकली पड़ रही है, खून टपक रहा है। आंखें घूर रही हैं... या अल्लाह आख़िर मुझे क्या हो गया। खून का समन्दर। मैं खून के समंदर में डूबा जा रहा हूं। चारों तरफ से लाल-लाल गोले मेरी तरफ बढ़ते चले आ रहे हैं। वह आया, वह आया। एक, दो, तीन सब मेरे सर पर आकर फटेंगे। कहीं यह दोज़ख (नर्क) तो नहीं। मगर ये तो गोले हैं, आग के शोले नहीं। मेरे तन-बदन में आग लग गई। मेरे रोंगटे जल रहे हैं। दौड़ो, अरे दौड़ो, खुदा के लिए दौड़ो। मेरी मदद करो, मैं जला जा रहा हूं। मेरे सर के बाल जलने लगे। पानी, पानी कोई सुनता क्यों नहीं ? खुदा के वास्ते मेरे सर पर पानी डालो। क्या इन जलते हुए अंगारों पर से मुझे नंगे पैर चलना पड़ेगा ? क्या मेरी आंखों में दहकते हुए लोहे की सलाखें डाली जाएंगी ? क्या मुझे खौलता हुआ पानी पीने को मिलेगा ? क्या मुझे पीब खानी पड़ेगी ? ये शोले मेरी तरफ़ क्यों बढ़ते चले आ रहे हैं ? ये शोले हैं या भाले ? आग के त्रिशूल। ज़ख्म की भी तकलीफ़ और जलने की भी...

यह किसके चीखने की आवाज़ आई ? मैं तो सुन चुका हूं इस आवाज को। अं, अ, अ... ओ, ओ, ओ... आवाज़ दूर होती जाती है। मेरे लड़के ने आखिर क्या कसूर किया है ? मेरे लड़के को किस जुर्म की सज़ा मिल रही है ? मेरा लड़का तो अभी चार बरस का है। उसे तो माफ़ कर देना चाहिए। मैं गुनहगार हूं, मैं खतावार हूं, यह कौन आ रहा है मेरे सामने से ? अरे मआज़अल्लाह सांप चिमटे हुए हैं उसकी गर्दन से। उसके पिस्तान (उरोज) को काट रहे हैं... ऐ हुज़ूर। आदाब अर्ज है। ऐ हुज़ूर भूल गए हम ग़रीबों को। मै हूं, मुन्नी जान। कोई ठुमरी, कोई दादरा, कोई ग़ज़ल ऐ हैं आज तो जैसे डर जाते हैं हुज़ूर, ये सांप अपसे कुछ नहीं बोलेंगे। उनका भी अजब लतीफ़ा है। मैं जब यहां दाखिल हुई तो दरोगा साहब ने कहा, बी मुन्नी जान, सरकार का हुक्म है कि पांच बिच्छू तुम्हारी खिदमत के लिए हाजिर किए जाएं। मैं हुज़ूर सहम गई। बचपन से मुझे बिच्छुओं से नफ़रत थी। मैंने हुज़ूर बहुत हाथ-पैर जोड़े, मगर दरोगा साहब ने कहा कि सरकार के हुक्म पर अमल करना उनका फ़र्ज है। तब मैंने कहा, अच्छा आज मुझे सरकार के दरबार में पहुंचा दें। मैं खुद उनसे निवेदन करूंगी। दरोगा साहब बेचारे भले आदमी थे, मुझे अपने पास बुला के बिठाया। मेरे गालों पर हाथ फेरा, आखिरकार राजी हो गए। पहले तो मुझे कई घंटे इंतजार करना पड़ा। दरोगा साहब ने कहा इस वक्त सरकार दूतों की कौंसिल कर रहे हैं। जब उससे फ़ुर्सत होगी, तब मेरी पेशी होगी। मैंने जो यह सुना तो कोशिश की कि झांककर अपने दूत महोदय का जलवा देख लूं। मगर दरवाजे के दरबान मुए मुस्टंडे देव ने मुझे धक्का देकर अलग कर दिया। खैर हुज़ूर आखिरकार मेरी बारी आई, मेरा दिल धड़-धड़ कर रहा था कि देखूं क्या होता है। सरकार के दरबार में दाखिल होते ही मैं घुटनों के बल गिर पड़ी। मेरी अपनी जबान से तो कुछ बोला न जाता था। दरोगा साहब ने मेरा मुद्दा बयान किया। इतने में हुक्म हुआ, खड़ी हो। मैं हुज़ूर खड़ी हो गई। तो सरकार खुद उठकर मेरे पास तशरीफ लाए। बड़ी-सी सफ़ेद दाढ़ी, गोरा चिट्टा रंग और मेरी तरफ मुस्करा के देखा...फिर मेरा हाथ पकड़कर बगल के कमरे मे ले गए। मेरी हुज़ूर समझ में नहीं आता था कि आखिर माजरा क्या है...मगर हुज़ूर देखने ही में बुड्ढे मालूम होते हैं, ऐसे मर्द मैंने दुनिया में तो देखे नहीं। और आपकी दुआ से हुज़ूर मेरे यहां बड़े-बड़े रईस आते थे...

खैर, तो हुज़ूर बाद में सरकार ने फ़रमाया कि सज़ा तो मुझे ज़रूर मिलेगी क्योंकि उनका इंसाफ़ तो सबके साथ बराबर है। मगर बजाय बिच्छू के मुझे तो सांप मिले जो बस मेरे पिस्तान चाटा करते हैं। सच पूछिए हुज़ूर तो इसमें तकलीफ़ कुछ नहीं और मज़ा ही है... मगर आज तो मुझसे डरे जाते हैं। अकबर साहब, ऐ, हुज़ूर अकबर साहब... कोई ठुमरी, कोई दादरा, कोई ग़ज़ल...

या अल्लाह मुझे जहन्नुम की आग से बचा। तू रहम करने वाला है। मैं तेरा एक नाचीज, गुनहगार बंदा, तेरे हुज़ूर में हाथ बांधे खड़ा हूं... मगर कुछ भी हो जिल्लत मुझसे बर्दाश्त न होगी। मेरे बीवी पर गालियां पड़ने लगीं। मगर मैं क्या करूं। भूखा मरूं ? हड्डियों का एक ढांचा, उस पर एक खोपड़ी, खट-खट करती सड़क पर चली जा रही है। अकबर साहब, आपके जिस्म का गोश्त क्या हुआ ? आपका चमड़ा किधर गया ? जी मैं भूखा मर रहा हूं, गोश्त अपना मैंने गिद्धों को खिला दिया, चमड़े के तबलें बनवाकर बी मुन्नी जान को तोहफे में दे दिए। कहिए क्या खूब सूझी। आपको ईर्ष्या होती हो तो अल्लाह का नाम लेकर मेरी पैरवी कीजिए। मैं किसी की पैरवी नहीं करता। मैं आज़ाद हूं, हवा की तरह से। आज़ादी की आजकल अच्छी हवा चली है। पेट में आंतें कुलहोअल्लाह पढ़ रही हैं और आप हैं कि आज़ादी के चक्कर में हैं। मौत या आज़ादी। न मुझे मौत पसंद है न आज़ादी। कोई मेरा पेट-भर दे।

पिन, पिन, पिन, चट, हट तेरे मच्छर की... टन, टन, टन... टुन, टुन, टुन... ❑ ❑

अनुवादक : शकील सिद्दीकी

('अंगारे' से साभार)

फन्दा

○ आचार्य चतुरसेन शास्त्री

सन् 1917 का दिसम्बर था। भयानक सर्दी थी। दिल्ली के दरीबे-मुहल्ले की एक तंग गली में--एक अँधेरे और गन्दे मकान में तीन प्राणी थे। कोठरी के एक कोने में एक स्त्री बैठी हुई अपने गोद के बच्चे को दूध पिला रही थी; परन्तु यह बात सत्य नहीं है, उसके स्तनों का प्रायः सभी दूध सूख गया था और उन बे-दूध के स्तनों को बच्चा आँख बन्द किए चूस रहा था। स्त्री का मुँह परम सुन्दर होने पर भी इस वक्त ज़र्द और सूखा हुआ दिखाई दे रहा था। यह स्पष्ट ही मालूम होता था कि उसके पहले शरीर का अब सिर्फ अस्थि-पंजर ही रह गया है। गाल पिचक गए थे, आँखें धँस गई थीं और उनके चारों और नीली रेखा पड़ गई थी तथा ओठ मुर्दे की तरह विवर्ण हो गए थे। मानो वेदना और दरिद्रता मूर्तिमती होकर उस स्त्री के आकार में प्रकट हुई थीं। ऐसी उस माता की गोद में वह कंकालावशिष्ट बच्चा अध-मुर्दा पड़ा था। उसकी अवस्था आठ महीने की होगी, पर वह आठ सप्ताह का भी तो नहीं मालूम होता था। स्त्री के निकट ही एक आठ वर्ष का बालक बैठा हुआ था, जिसकी देह बिल्कुल सूख गई थी, और इस भयानक सर्दी से बचाने के योग्य उसके शरीर पर एक चिथड़ा मात्र वस्त्र था। वह चुपचाप भूखा और बदहवास माँ की बग़ल में बैठा टुकुर-टुकुर उसका मुँह देख रहा था।

इनसे दो हाथ के फासले पर तीन साल की बालिका पेट की आग से रो रही थी। जब वह रोते-रोते थक जाती, तब सो जाती अथवा चुपचाप आँख बन्द करके पड़ जाती थी, पर थोड़ी देर बाद वह फिर तड़पने लगती थी। बेचारी असहाय अबला विमूढ़ बनी अतिशय विचलित होकर अपने प्राणों से प्यारे बच्चों की यह वेदना देख रही थी। कभी-कभी वह अत्यन्त अधीर होकर गोद के बच्चे को घूर-घूर कर देखने लगती, दो-एक बूँद आँसू ढरक जाते, और कुछ अस्फुट शब्द मुख से निकल पड़ते थे, जिन्हें सुन और कुछ-कुछ समझकर पास बैठे बालक को कुछ कहने का साहस नहीं होता था। इस छोटे से असहाय परिवार को इस मकान में आए और इस जीवन में रहते पाँच मास बीत रहे थे। पाँच मास प्रथम यह परिवार सुखी और सम्पन्न था। बच्चे प्रातःकाल कलेवा कर गीत गाते, स्कूल जाते थे। इसी मुहल्ले में इनका सुन्दर मकान था, और है, पर एक ही घटना से यहाँ तक नौबत आ गई थी। इस परिवार के कर्णधार, एकमात्र स्वामी, बच्चों के पिता और दुखिया स्त्री के जीवन-धन मास्टर साहब, जिन्हें सैकड़ों अमीरों और ग़रीबों के बच्चे अभिवादन कर चुके थे, जो मुहल्ले भर के सुजन, हँसमुख और नगर भर के प्यारे नागरिक और सार्वजनिक नेता थे, आज जेल की दीवारों में बन्द थे, उन पर जर्मनी से षडयन्त्र का अभियोग प्रमाणित हो चुका था और उन्हें फाँसी की आज्ञा हो चुकी थी, अब अपील के परिणाम की प्रतीक्षा थी।

प्रातःकाल की धूप धीरे-धीरे बढ़ रही थी। स्त्री ने धीमे, किन्तु लड़खड़ाते स्वर में कहा--बेटा विनोद ! तुम क्या बहुत ही भूखे हो ?

"नहीं तो माँ ! रात ही तो मैंने रोटी खाई थी ?"

"सुनो-सुनो, एक-दो-तीन (इस तरह आठ तक गिनकर) आठ बज रहे हैं, किराए वाला आता ही होगा।"

"मैं उसके पैरों पड़कर और दो-तीन दिन को टाल दूँगा माँ ! इस बार वह तुम्हें ज़रा भी कड़ी बात न कहने पावेगा।"

स्त्री ने परम करुणा-सागर की ओर क्षण-भर आँख उठाकर देखा, और उसकी आँखों से दो बूँदें ढरक गईं।

यह देखकर छोटी बच्ची रोना भूलकर माता के गले में आकर लिपट गई और बोली--अम्माँ ! अब मैं कभी रोटी नहीं माँगूँगी।

हाय रे माता का हृदय ! माता ने दोनों बच्चों को गोद में छिपाकर एक बार अच्छी तरह आँसू निकाल डाले।

इतने ही में किसी ने कर्कश शब्द से पुकारा--"कोई है न ?"

बच्चे को छाती में छिपाकर काँपते-काँपते स्त्री ने कहा--सर्वनाश ! वह आ गया।

एक पछैयाँ जवान लट्ठ लेकर दर्वाज़ा ठेलकर भीतर घुस आया।

उसे देखकर ही स्त्री ने अत्यन्त कातर होकर कहा--मैं तुम्हारे आने का मतलब समझ गई हूँ।

"समझ गई हो तो लाओ किराया दो।"

"थोड़ा और सब्र करो।"

बालक ने कहा--दो-तीन दिन में हम किराया दे देंगे ?

बालक को ढकेलते हुए उद्धतपन से उसने कहा--सब्र गया भाड़ में, अभी मकान से निकलो। मकान क्या दिया, जान को बवाल मोल ले लिया, पुलिस ने घर को बदनाम कर दिया है। लोग नाम धरते हैं, सरकार के दुश्मन को घर में छिपा रक्खा है। निकलो, अभी निकलो।

स्त्री खड़ी हो गई। धक्का खाकर बच्चा गिर गया था। उसे उठाकर उसने कहा--भाई, मुसीबत वालों पर दया करो, तुम भी तो बाल-बच्चेदार हो।

"मैं दया-मया कुछा नहीं जानता; मैं तुमसे कहे जाता हूँ कि आज दिन छिपने से पहले-पहले यदि भाड़ा न चुका दिया गया तो आज रात को ही निकाल दूँगा।

चित्र : अरुण सिंह
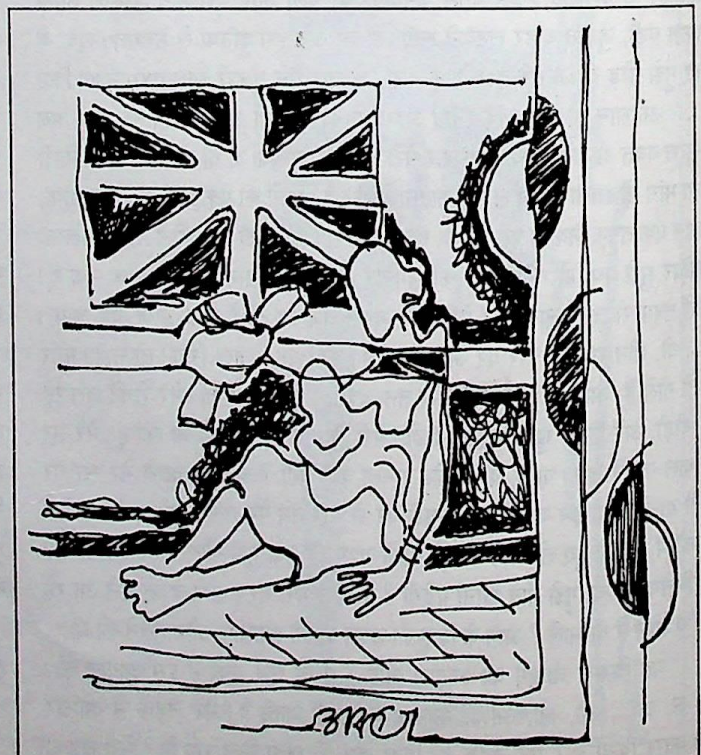
इतना कहकर वह व्यक्ति एक बार कड़ी दृष्टि से तीनों अभागे प्राणियों को घूरता हुआ ज़ोर से दरवाजा बन्द करके चला गया।

दुखिया स्त्री इसके बाद ही धरती में धड़ाम से गिरकर मूर्च्छित हो गई !

उपरोक्त घटना के कुछ ही मिनट बाद एक अधेड़ अवस्था के सभ्य पुरुष धीरे-धीरे मकान में घुसे। इनके आधे बाल पककर खिचड़ी हो गए थे--दाँत सोने की कमानी से बँधे थे, साफ ऊनी वस्त्रों पर एक दुशाला पड़ा था। हाथ में चाँदी के मूँठ की पतली सी एक बेंत थी। रंग गोरा, कद ठिगना और चाल गम्भीर थी।

उन्होंने पान कचरते-कचरते बड़ा घरौआ जताकर बालक का नाम लेकर पुकारा--बेटा विनोद !

विनोद ने गर्दन उठाकर देखा, बच्चे की माता ने सावधानी से उठकर अपने वस्त्र ठीक कर लिए।

आगन्तुक ने बिना प्रश्न किए ही कहा--देखो, अपील का क्या नतीजा निकलता है, हम विलायत तक लड़ेंगे, आगे भगवान् की मर्जी।

स्त्री चुपचाप बैठी रही, सब सुनकर न बोली, न हिली-डुली। इस पर आगन्तुक ने अनावश्यक प्रसन्नता मुख पर लाकर कहा--क्यों रे विनोद, तेरा मुँह क्यों उतर रहा है ? क्यों बहू, यह क्या बात है--बच्चों का यह हाल बना रक्खा है, अपना तो जो कुछ किया सो किया। इस तरह जान खोने से क्या होगा ? तुमसे इतना कहा, मगर तुमने घर छोड़ दिया। मानों हम लोग कुछ हैं ही नहीं। भाई सुनेंगे तो क्या कहेंगे ? मैं परसों जेल में मिला था, बहुत खुश थे। अपील की उन्हें बड़ी आशा है। तुम्हें भी खुश रहना उचित है। दिन तो अच्छे-बुरे आते हैं और जाते हैं, इस तरह सोने की काया को मिट्टी तो नहीं किया जाता।

इतनी लम्बी वक्तृता सुनकर भी गृहिणी न बोली, न हिली-डुली। वह वैसी ही अचल बैठी रही !

आगन्तुक व्यक्ति ने कुछ रुककर दो रुपए निकालकर बच्चे के हाथ पर धर दिए और कहा--लो बेटा, जलेबियाँ खाना। बच्चे ने क्षण-भर माता के मुख की ओर देखा और तत्काल हाथ खींच लिया। रुपए धरती पर गिरकर खन्न से बज उठे। बच्चा पीछे हटकर माँ का आँचल पकड़कर खड़ा हो गया।

आगन्तुक रुपए उठाकर उन्हें फिर देने को आगे बढ़ा। गृहिणी ने बाधा देकर कहा--रहने दीजिए, वह जलेबी नहीं खाता। हम ग़रीब विपत्ति के मारे लोग हैं, एक टुकड़ा रोटी ही बहुत है। पर आप कृपा करें तो या तो उनके बैंक के हिसाब में से, मकान के हिस्से को आड़ करके कुछ रुपए मुझे उधार दे दीजिए।

"उनके बैंक के हिसाब में तो बिना उनके दस्तख़त कुछ मिलेगा नहीं, फिर मुझे मालूम हुआ है कि वहाँ ऐसी कुछ रकम है भी नहीं। रहा मकान, सो उसका तुम्हारा वाला हिस्सा रहन रखकर ही तो मुकदमा लड़ाया है, मुकदमें में क्या कम रकम खर्च हुआ है ?"

गृहिणी चुप बैठी रही।

आगन्तुक ने कहा--मैं अपने पास से जो कहो दे दूँ। तुम्हें कितने रुपए चाहिए ?

गृहिणी ने धीमे स्वर से कहा--आपको मैं कष्ट नहीं देना चाहती।

"मैं क्या गैर हो गया ?"

स्त्री बोली--नहीं !

अब आगन्तुक ज़रा और पास खिसककर बोला--मेरी बात मानो, घर चलो, सुख से रहो। जो होना था हुआ, होना होगा हो जायगा। किसी के साथ मरा तो जाता ही नहीं है। मेरा जगत् में और कौन है, तुम क्या सब बातें समझती नहीं हो ?

"खूब समझती हूँ, अब आप कृपा कर चले जायँ।"

चित्र : दुर्गादत्त पाण्डेय

"पर मैं जो बात बारम्बार कहता हूँ वह समझती क्यों नहीं ?"

"कब की समझ चुकी हूँ। तुम मुझ दुखिया को सताकर क्या पाओगे ? मेरा रास्ता छोड़ दो, मैं यहाँ अपने दिन काटने आई हूँ, आपका कुछ लेती नहीं हूँ। उनका मकान-जायदाद सभी आपके हाथ है, आपका रहे, मैं केवल यही चाहती हूँ कि आप चले जाइए !"

आगन्तुक ने कड़े होकर कहा--क्या मैं साँप हूँ या घिनौना कुत्ता हूँ ?

"आप जो कुछ हों, मुझे इस पर विचार नहीं करना है।"

"और तुम्हारी यह हिम्मत और हेकड़ी अब भी ?"

गृहिणी चुप रही।

"यहाँ भी मेरे एक इशारे से निकाली जाओगी, फिर क्या भीख माँगोगी ?"

गृहिणी ने कोई उत्तर नहीं दिया।

आगन्तुक ने उबाल में आकर कहा--लो साफ़-साफ़ कहता हूँ, तुम्हें मेरी बात मंजूर है या नहीं ?

गृहिणी चुपचाप बच्चे को छाती से छिपाए बैठी रही। आगन्तुक ने उसका हाथ पकड़कर कहा--आज मैं इधर-उधर करके जाऊँगा !

स्त्री ने हाथ झटककर कहा--पैरों पड़ती हूँ, चले जाओ।

"तेरा हिमायती कौन है ?"

"मैं गरीब गाय हूँ।"

"फिर लातें क्यों चलाती है ? बोल, चलेगी ?"

"नहीं।"

चित्र : अरुण सिंह

"मेरी बात मानेगी ?"

"नहीं।"

"तुझे घमण्ड किसका है ?"

"मुझे कुछ घमण्ड नहीं है !"

"तुझे आज रात को ही सड़क पर खड़ा होना पड़ेगा।"

"भाग्य में जो लिखा है, होगा"

"लोहे के टके की आशा न रखना !"

गृहिणी खड़ी हो गई। उसने अस्वाभाविक तेज-स्वर में कहा--दूर हो, ओ पापी ! भगवान् से डर, मौत जिनके घर मिहमान बनी बैठी है, उन्हें न सता, भय उन्हें क्या डरावेगा ? विश्वासघाती भाई ! भाई को फँसाकर फाँसी पहुँचाने वाले अधर्मी ! उन्हें फँसाया, जमीन-जायदाद ली, अब उसकी अनाथ गरीब दुखिया स्त्री की आबरू भी लेने की इच्छा करता है ? अरे पापी हट जा--हट जा !

आवेश में आने से स्त्री का वस्त्र खिसककर नीचे गिर गया। वह दशा देख दोनों बच्चे रो उठे।

बड़े बच्चे के मुँह पर जोर से तमाचा मारकर आगन्तुक ने कहा--'तेरी पारसाई आज ही देख ली जायगी। मुसलमान गुण्डे XXX' वह और कुछ न बोल सका--वह दोनों हाथ मींचकर क्रोध से काँपने लगा।

स्त्री ने कहा--'जा ! जा ! पापी--जा !' और वह बदहवास चक्कर खाकर गिर गई।

दोनों बच्चे जोर-जोर से रो उठे। आगन्तुक तेजी से चल दिया।

वही दिन और वही प्रातःकाल था, परन्तु उस भाग्यहीन घर से लगभग पौन मील दूर दिल्ली की जेल में एक और ही दृश्य सामने था। जेल के अस्पताल में बिल्कुल एक ओर एक छोटी सी कोठरी थी। जिन कैदी रोगियों को बिलकुल एकान्त ही में रहने की आवश्यकता होती थी, वे ही इसमें रक्खे जाते थे। इस वक्त भी इसमें एक कैदी था। उसकी आकृति कितनी घिनौनी, वेश कैसा मलिन और चेष्टा कैसी भयंकर थी ? कि ओफ ! कई दिन से यह कैदी भयानक आत्मिक ज्वर से तप रहा था, और कोठरी में रक्खा गया था।

कोठरी बड़ी काली, मनहूस और कोरी अनगढ़े पत्थरों की बनी हुई थी, और उसमें अनगिनत मकड़ियों के जाले, छिपकलियाँ तथा कीड़े-मकोड़े रेंग रहे थे। उसमें न सफाई थी, न प्रकाश। ऊपर एक छोटा-सा छेद था। उसी में से सूरज की रोशनी कमरे में पड़ते ही उसकी नींद टूट गई। प्यास से उसका कण्ठ सूख रहा था। वह बड़े कष्ट से चारपाई के इर्द-गिर्द हाथ बढ़ाकर कोई पीने की चीज़ ढूँढ़ने लगा। पर उसे कुछ भी न मिला। तंग प्यास की तकलीफ से छटपटाकर वह बड़बड़ाने लगा--"कौन देखता है ? कौन सुनता है ? हाय ! इतनी लापरवाही से तो लोग पशुओं को भी नहीं रखते। डॉक्टर मेरे सामने ही उस वार्डर से थोड़ा दूध दो-तीन बार देने और रात दो-तीन बार देखने को कह गया था। पर कोई क्यों परवाह करता ? मेरी नींद तो रात भर टूटती रही है। मैंने प्रत्येक घन्टा सुना है। यह पहाड़ सी रात किस तकलीफ से काटी है ! यह कष्ट तो फाँसी से कहीं अधिक है।"

रोगी अब चुपचाप कुछ सोचने लगा। धीरे-धीरे प्रकाश ने फैलकर कमरे को बिल्कुल स्पष्ट प्रकाशमान कर दिया। धीरे-धीरे उसकी प्यास असह्य हो चली, पर वह बेचारा कर ही क्या सकता था। वार्डर की खूँखार फटकार से भयभीत होने पर भी वह एक बूँद पानी के लिए गला फाड़कर चिल्लाने लगा। पर न कोई आया और न किसी ने जवाब ही दिया। वह प्यास से बेदम हो रहा था--उसका प्राण निकल जाता था। वह बारमबार 'पानी-पानी' चिल्लाने लगा। कभी अनुनय-विनय भी करता, कभी गालियाँ बकने लगता।

ईश्वर के लिए थोड़ा पानी दे जाओ, हाय ! एक बूँद पानी, अरे मैं तुम लोगों को बड़ा कष्ट देता हूँ ! पर क्या करूँ, प्यास के मारे मेरे प्राण निकल रहे हैं। अरे मैं भी तुम्हारे जैसा मनुष्य हूँ। मुझे इस तरह क्यों तड़पा रहे हो--इतनी उपेक्षा तो कोई बाजारू कुत्तों की भी नहीं करता। अरे आओ--नहीं तो मैं बिछौने से उठकर, सब दरवाजे तोड़ डालूँगा और इतनी जोर से चिल्लाऊँगा कि सुपरिन्टेन्डेन्ट के बंगले तक आवाज़ पहुँचेगी।"

इस पर एक घिनौने मोटे-ताजे अधेड़ व्यक्ति ने छेद में से सिर निकालकर कहा-- अरे अभागे ! क्यों इतना चिल्लाता है, क्यों दुनिया की नींद खराब करता है ?

"मैं प्यास के मारे मर रहा हूँ।"

"फिर मर क्यों नहीं जाता ? तू क्या समझता है कि मैं तेरा नौकर हूँ, क्या रात-भर तेरी सेवा में हाजिर रहना ही मुझे चाहिए ?"

इसके बाद वह एक नौकर को पुकारकर बोला--अरे देख तो ! थोड़ा पानी लाकर इस बदमाश के मुँह में डाल दे। इतना हुक्म देकर वह निष्ठुर फिर चल दिया। पानी पीकर रोगी थकान के मारे बेसुध होकर सो गया। यही कैदी उस दुखिया का सौभाग्य-बिन्दु 'मास्टर साहब' थे।

अचानक उसी वार्डर की कर्कश आवाज सुनकर वह चौंक पड़ा। उसने चाबियों से कोठरी का द्वार खोला। रोगी एकटक देखने लगा। पादरी और जेलर ने कोठरी में गम्भीर भाव से प्रवेश किया। कुछ जरूरी कागजात पर लिखा-पढ़ी की गई और क़ैदी को सुना दिया गया कि उसकी अपील नामंजूर हो गई है और आरोग्य-लाभ होते ही उसे फाँसी दे दी जायेगी।

क़ैदी ने आँख बन्द करके सुना-समझा और फिर उसकी आँखें एकटक छत पर अटक गई।

धीरे-धीरे दोनों कमरे से बारह निकल आए। इसके कुछ क्षण बाद ही डॉक्टर ने कमरे में प्रवेश करके सावधानी से रोग-परीक्षा की। फिर एक-दो मीठी बातों के बाद कहा--तुम्हारे बच्चे और स्त्री तुमसे मिलने आए हैं। रोगी एक बार तड़पा और नेत्र उठाकर द्वार की ओर देखने लगा।

डॉक्टर ने कहा--इस समय ज्वर नहीं है। मैं आशा करता हूँ, इसी सप्ताह में तुम अच्छे हो जाओगे !

"इसी सप्ताह में ?--रोगी ने विकल होकर पूछा।"

डाक्टर ने अपनी बात का समर्थन किया और धीरे-धीरे चला गया।

10 बज रहे थे। धूप खूब फैल रही थी। जेल के सदर फाटक पर वह अभागिनी रमणी दोनों बच्चों को साथ लिए बैठी थी। उसे लगभग डेढ घंटा हो गया था। वह अपने पति के दर्शन करने आई थी। इतनी देर बाद एक वार्डर उन्हें जेल के भयानक फाटक में लेकर चला।

फाटक को पार करने पर एक अन्धकारपूर्ण दालान में वे लोग चले। वहाँ से एक अँधेरी गली में कुछ देर चलकर एक लोहे का छोटा सा फाटक वार्डर ने पास के भारी चाबियों के गुच्छे से खोला। इसके बाद वे कुछ सीढ़ियाँ चढ़कर एक बड़े से गन्दे दालान में पहुँचे। उसके सामने ही बड़े से मकान का पिछवाड़ा था, जिसकी ऊँची और छोटी-छोटी खिड़कियों से कुछ शोर-गुल और बकझक की आवाज आ रही थी। सामने कुछ कैदी अपनी बेड़ियाँ झनझनाते इधर से उधर जा रहे थे। थोड़ी दूर चलने पर उन्हें अस्पताल की काली इमारत दीख पड़ी, जहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के रोगी बिछौने पर पड़े थे। कमरे की हवा गर्म और बदबूदार थी। बिस्तरे फटे-कटे,

मैले-कुचैले और घृणित थे। यह सब देखते-देखते रमणी का सिर चक्कर खा गया। वह घबराकर वहीं बैठ गई, यह देख छोटी बच्ची रो उठी। थोड़ी देर बाद वह उठी और इस बार स्वामी की कोठरी के पास पहुँच गई। पर भीतर ऑफिसर लोग थे। उसे कुछ ठहरना पड़ा। उनके निकलने पर ही डॉक्टर ने भीतर-प्रवेश किया और डॉक्टर ने बाहर आकर उन लोगों को भीतर जाने की इजाजत दी। दरवाजे के निकट जाकर उसके पैर धरती पर जम गए। पहले तो वह पति को देख ही न पाई। पीछे उसने साहस कर एक बार देखा। हाय ! यही क्या वे उसके पतिदेव हैं ? जीवन के ग्यारह वर्ष सर्द-गर्म जिनके साथ व्यतीत किए, वह उठता हुआ यौवन, वे जीवन की उद्दीप्त अभिलाषाएँ, वे रस-रहस्य की अमिट रूप रेखाएँ हठपूर्वक एक के बाद एक नेत्रों के सामने आने लगीं। उसकी आँखों में अँधेरा छा गया, वह वहीं बैठ गई।

रोगी ने देखा। उसने चारपाई से उठकर दोनों हाथ फैलाकर उन्मत की तरह कहा--आओ बेटा ! अरे, तुम इतने ही दिन में बिना बाप के ऐसे हो गए ! यह कहकर रोगी-कैदी ने अपनी भुजाओं में बच्चे को लपेट लिया और वह फूट-फूट कर रोने लगा।

सती बैठी ही बैठी आगे बढ़ी। वह पति के दोनों पैर पकड़, उन पर सिर धर कर मूर्च्छित हो गई। वह रो नहीं रही थी। वह संज्ञा-हीन थी। यह सब देख कर छोटी बालिका भी जोर से रो उठी।

उसे गोद में लेकर पिता रोना भूल गया। उसकी आँखों में क्षण भर आँख मिलाकर वह हँसी थी। अन्त मे उसने भर्राई आवाज में कहा--लीला, मेरी बेटी, मेरी बिटिया !

इसके बाद उसे छाती से लगाकर कैदी चुपचाप रोने लगा। बड़ी देर तक सन्नाटा रहा। फिर बच्चों को अलग करके वह स्वस्थ होकर पत्नी की ओर देखने लगा। बलपूर्वक उसने शोक के उमड़ते वेग को रोका। उसने क्षण भर आकाश मे दृष्टि करके एक बार सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से बल-याचना की। फिर उसने मधुर स्वर में कहा--इतना अधीर मत हो। ध्यान से मेरी बातें सुनो।

रमणी ने सिर नहीं उठाया। पति ने धीरे-धीरे उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा--नादानी न करना, वरना इन बच्चों का कहीं ठिकाना नहीं है। ईश्वर पर विश्वास रखो--मेरा विनोद बड़ा होकर तुम्हारे सभी संकट काटेगा। "सब दिन होत न एक समान !"

साध्वी सिसक-सिसककर रो रही थी। उसे ढाढ़स देना कठिन था, परन्तु अभी कुछ मिनिट प्रथम मृत्यु का सन्देश पाकर भी कैदी वह कठिन काम कर रहा था !

वह पूछना चाहती थी--"क्या अब कुछ भी आशा नहीं है ?" परन्तु उसमें बोलने और पति को देखने तक का साहस न था। समस्त साहस बटोरकर उसने एक बार पति की और आँख भरकर देखा। वे आँखें आँसू और प्रश्नों से परिपूर्ण, मूक वेदना से अन्धी और मृत अभिलाषाओं की श्मशान-भूमि ! प्रति क्षण क्या-क्या कह रहीं थी ?

परन्तु मानव-हृदय जितना सुख में दुर्बल बन जाता है उतना ही दुख में सबल हो जाता है। मास्टर साहब ने उसका हाथ पकड़कर कहा--अब इस तरह मुझे देखकर, इस दशा में कायर न बनाओ ! तुम बच्चों की माता हो। जैसे पति की पत्नी रहीं वैसे ही बच्चों की माँ बनना ! प्रतिज्ञा करो, तुमने मुझे कभी नहीं ठगा, अब भी न ठगना !

सती की वाणी फटी, उसने कहा--स्वामी जी ! मुझे सहारा दो। मैं चलूँगी, नहीं, मैं चलूँगी।

एक अति मधुर उन्माद उसके होठों में फड़क रहा था। मास्टर साहब विचलित हुए, उन्होंने संकोच त्याग, धीरे से उस उन्मुख उन्माद का एक सरल चुम्बन लिया। वह वासनाहीन, इन्द्रिय-विषय और शरीर-भावना से रहित चुम्बन क्या था, दो अमर तत्व प्रतिबिम्बित हो रहे थे।

मास्टर साहब ने कुछ कहने की इच्छा से होंठ खोले थे, पर वार्डर ने कर्कश आवाज़ में कहा--चलो, वक्त हो गया।

रोगी क़ैदी ने मानो धाक खाकर एक बार उसे देखा, और कहा--ज़रा और ठहर जाओ भाई !

"हुक्म नहीं है" कहकर वह भीतर घुस आया। उसने एकदम रमणी के सिर पर खड़े होकर कहा--बाहर जाओ।

लज्जा और संकोच त्यागकर वह कुछ कहा चाहती थी, मास्टर जी ने संकेत से कहा--"उससे कुछ मत कहना ! अच्छा अब विदा प्रिये ! बेटे ! अम्माँ को दुखी न करना, मेरी बिटिया !" यह कहकर और एक बार बेसब्री से उन्होंने उसे पकड़कर अनगिनत चुम्बन ले डाले।

रमणी की गम्भीरता अब रह न सकी, वह गाय की तरह डकराती वहीं गिर गई और निष्ठुर वार्डर ने उसे घसीटकर बाहर किया और ताला बन्द कर दिया, दोनों बच्चे भी चीत्कार कर रो उठे। यह देखकर मास्टर साहब असह्य-वेदना से मूर्च्छित होकर धड़ाम से चारपाई पर गिर पड़े !

रविवार ही की सन्ध्या को इसकी सूचना अभागिनी को दे दी गई थी। वह रात-भर धरती में पड़ी रही, क्षण भर को भी उसकी आँखों में नींद नहीं आई थी। चार दिन से उसने जल की एक बूँद भी मुँह में नहीं डाली थी !

सोमवार के प्रातःकाल बड़ी सर्दी थी। घना कोहरा छाया हुआ था। ठण्डी-ठण्डी हवा चल रही थी। ठीक साढ़े छः बजे का वह समय नियत किया गया था। ठीक समय पर फाँसी का जुलूस अन्ध-कोठरी से चला। मास्टर साहब धीर-गम्भीर गति से आगे बढ़ रहे थे। इस समय उन्होंने हजामत बनवाई थी। वे अपने निजी वस्त्र पहने थे। दूर से देखने में दुर्बल होने के सिवा और कुछ अन्तर न दीखता था। वे मानो किसी गहन विषय को सोचते हुए व्याख्यान देने रंग-मंच पर आ रहे थे। उनके आगे खुली पुस्तक हाथ में लिए पादरी कुछ वाक्य उच्चारण कर रहा था। उनके पीछे जेलर अपनी पूरी पोशाक में थे। उनकी बगल में मैजिस्ट्रेट और डॉक्टर भी चल रहे थे। क्षण भर तख़्ते पर खड़े रहने के बाद जल्लाद ने उनके गले में रस्सी डाल दी। पादरी ने कहा--मैं प्रार्थना करता हूँ कि ईश्वर तुम्हारी आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

मास्टर साहब ने कहा--चुप रहो, मैं प्रार्थना करता हूँ कि ईश्वर मेरी आत्मा को ज्वलन्त अशान्ति दे, जो तब तक न मिटे, जब तक मेरा देश स्वाधीन न हो जाय, और मेरे देश का प्रत्येक व्यक्ति शान्ति न प्राप्त कर ले।

इसके बाद उन्होंने गीता की पुस्तक को हाथ में लेकर आँखों और मस्तक से लगाया और दोनों हाथों में लेकर पीछे हाथ कर लिए। जल्लाद ने उसी दशा में हाथ पीछे बाँध दिए। मास्टर साहब नेत्र बन्द करके कुछ अस्फुट उच्चारण करने लगे। जल्लाद ने तभी एक काली टोपी से उनका मुँह ढक दिया, और वह चबूतरे से नीचे कूद पड़ा। पादरी कुछ उच्चारण करने लगे। मैजिस्ट्रेट और जेलर ने टोपियाँ उतार लीं। हठात् तख्ती खींच ली गई, और उनका विवश शरीर शून्य में झूलने और छटपटाने लगा। पर थोड़ी ही देर में आवेग शान्त हो गया !!

X X X

इस घटना के आधा घण्टा बाद वही पूर्व परिचित भद्र पुरुष (?) लपके हुए, सती की कुटिया पर गए। द्वार खुले थे। भीतर दोनों बच्चे बेतहाशा रो रहे थे, और उनकी माता रसोई के कमरे में एक रस्सी के सहारे निर्जीव लटक रही थी !!! ☐☐

('चाँद' के फाँसी अंक से साभार)

महावटों की एक रात

○ अहमद अली

गड़-गड़-गड़-ड़... इलाही खैर। मालूम होता है आसमान टूट पड़ेगा। कहीं छत तो नहीं गिर रही है ? गड़-ड़-ड़...

इसके साथ ही टूटे हुए किवाड़ों की झिर्रियां एक तड़पती हुई रौशनी से चमक उठीं। हवा के एक तेज झोंके ने सारी इमारत को हिला डाला। सू-सू-सू... ऊं... क्या सर्दी है। यख जमी जाती है, बर्फ़ जमी जाती है। कंपकंपी है कि सारे जिस्म को तोड़े डालती है। एक छोटा-सा मकान चौबीस से चौबीस फिट और उसमें भी आधे से ज़्यादा में संकरा दालान, पीछे एक पतला-से कमरा, नीचे और ज़्यादा अंधेरा। कोई फर्श तक नहीं। कुछ फटे-पुराने बोरिए और टाट जमीन पर बिछे हैं, जो गर्द और सील से चिप-चिप कर रहे हैं। कोनों में छोटे बक्सों-बक्सियों और गूदड़ का ढेर है। एक अकेला लकड़ी का टूटा हुआ संदूक, उस पर भी मिट्टी के बर्तन, जो सालों-साल के इस्तेमाल से काले हो गए हैं और टूटते-टूटते आधे-पौने रह गए हैं। इनमें एक तांबे की पतीली भी है, किनारे झड़ चुके हैं, सालों से कलई तक नहीं हुई, घिसते-घिसते पेंदा जवाब देने के करीब है। छत है कि कड़ियां रह गई हैं और उस पर बारिश अल्लाह--क्या महावटें (जाड़ों में वर्षा) अबके ऐसी बरसेंगी कि गोया उनको फिर बरसना ही नहीं ? अब तो रोक दो। कहां जाऊं ? क्या करूं ? इससे तो अच्छा मौत ही आ जाए। तूने ग़रीब ही क्यों बनाया ? या अच्छे दिन ही न दिखाए होते । या यह हालत है लेटने को जगह नहीं। छत छलनी की तरह टपकी जाती है। बिल्ली के बच्चों की तरह सब कोने झांक लिए। लेकिन चैन कहां ? मेरा तो खैर कुछ नहीं, बच्चों निगोड़े मारों की मुसीबत है। न मालूम सो भी कैसे गए हैं। सर्दी है कि उफ़, बोटी-बोटी कांपी जाती है और उस पर एक लिहाफ़ और चार जानें। ऐ मेरे अल्लाह, जरा तो रहम कर।

या वो ज़माना था कि महल थे, नौकर थे, फ़र्श और पलंग थे। आह वह मेरा कमरा, एक छपरखट सुनहरी, पर्दों से सजी-संवरी, मखमल की चादरें और सेंबल के तकिए। क्या नर्म-नर्म तोशक थी कि लेटे से नींद आ जाए। और लेहाफ, आह, रेशमी छींट का और उस पर सच्चे ठप्पे की गोट। अन्नाएं, मामाएं खड़ी हैं, बीबी सर दबाऊं, बीबी पैर दबाऊं ? कोई तेल डाल रही है, कोई हाथ मल रही है। गुदगुदा-गुदगुदा बिस्तर, ऊपर से ये सब चोंचले। नींद है कि सितारों का लिबास पहने सामने खड़ी है। सब्ज़ (हरे) शीशों पर नीले और सुर्ख और नारंगी अक्स, बड़े-बड़े हिश्त पहल जवाहरात के साबूत डले जगमग-जगमग कर रहे हैं... दस्तरख्वान पर चांदी की तश्तरियां, एक झिलमिलाहट। कोरमा, पुलाव, बिरयानी, मुतंजन, बाक़रखानियां, मीठे टुकड़े... एक बाग़ दरख्तों से घिरा हुआ जिनकी पत्तियों पर तारों की चमक शबनम में और रौशनी भर रही है। वाह-वाह क्या-क्या खुशनुमा फल हैं। आम, मुंह लाल कलेजा बाल मां का बग़द बच्चा, सेब कैसे खूबसूरत हैं, अंधेरे-अंधेरे दरख्तों पर सुर्ख और गुलाबी और पिस्ते लटके हुए हैं, डालियों समेत झुके हुए हैं। अरे, बेर तो देखो तो देखो कैसे मोटे-मोटे और लाल हैं। शेखूपुरे के से। एक नहर, अंधेरी रात में चांदी की चादर बिछी हुई है। शायद दूध है। कहीं जन्नत तो नहीं ? एक कश्ती बड़ी आहिस्तगी से, बत्तखों की सी नज़ाकत से बहती हुई। जल्दी आओ, जल्दी बैठ जाओ, जन्नत की सैर कराएं। क्या बीबियां हैं, पाक साफ, बिल्लौर (एक सफ़ेद पत्थर) जैसी गोरी ? उजले बुर्राक कपड़े, नज़ाकत ऐसी जैसी हवा की। कश्ती, बहते हुए चिराग़ की तरह पानी पर चल रही है। दोनों तरह खुले-खुले मैदान जो हरी-हरी दूब से ढके हुए हैं। बीच-बीच में फूलों के रंगीन तख्ते और फलों के दरख्त दिखाई देते हैं। जानवर चहचहा रहे हैं, शोर मचा रहे हैं। तो क्या यह जन्नत है ? क्या हम जन्नत में हैं ? हां, 'बहिश्त', खुदा के नेक और प्यारे बन्दों की जगह। कश्ती कुछ छोटे सीप की मानिंद चमकदार और गुंबदों की तरह गोल मकानों के सामने से गुजरी। क्या खूबसूरती और क्या चमक। निगाह तक नहीं ठहरती। टपकते तो न होंगे ? क्या इनमें मुझको भी जगह मिलेगी ? खुदा के नेक और सच्चे बन्दों के लिए हैं, पाक बन्दों के लिए।

पेट में एक खुर्चन, कलेजे में एक खिंचाव, अंतड़ियां बल खा रही हैं। ऐसा मालूम हुआ कि गोद में किसी ने कुछ रख दिया। यह एक मोती की तरह सफेद और सेब की तरह बड़ा फल था। डंडी में दो हरे-हरे पत्ते भी लगे हुए थे। ऐसा मालूम होता था कि डाल से अभी-अभी तोड़ा गया हो। आहा ! क्या मज़ा है। काश कि और होते। गोद भरी हुई थी। कश्ती दो पहाड़ों के बीच से गुजर रही थी। एक मोड़ था। थोड़ी देर में जब मोड़ खत्म हुआ तो यकायक दूर के एक ऊंचे पहाड़ से बिजली से ज्यादा तेज रौशनी की लपटें आग की तरह उठती हुई दिखाई देने लगीं। आंखें चकाचौंध होकर बन्द को गई। अंधेरा घुप था। एक शोर की आवाज़ गरज से भी ज़्यादा तेज़ आने लगी। सूर (क़यामत की घोषणा का साइरन) फुंक रहा था। कान पड़ी आवाज़ सुनाई न देती थी। कश्ती वाली बीवियां इधर-उधर दौड़ रही थीं। इतने में फिर एक तेज़ रौशनी हुई। सूरज गिर रहा था। यकायक क़रीब से ही एक ऐसी आवाज़ आई, जैसे कोई ज्वालामुखी फट रहा हो। एक ज़लज़ला (भूकम्प) आ गया। कश्ती लौट गई और सब दरिया के अन्दर डूब रहे थे...

गड़-गड़, टप-टप की आवाज़ चारों तरफ से आ रही थी। अम्मां ! अभी कानों में सनसनाहट बाकी थी। दिल गजों उछल रहा था। क्या है बेटा ? क्या ?

चित्र : अरुण सिंह

डर लग रहा है। यह आवाज काहे की थी ? कुछ नहीं बेटा गरज है। तीनों बच्चे चिमटे हुए एक कोने में पड़े हुए थे। टपका उनके लेहाफ तक पहुंच चुका था। मरियम की तरफ का कोना खूब भीग गया था। बेचारी ने उठकर बच्चों को और परे सरकाया। अब वह बिल्कुल दीवार के बराबर पहुंच गए थे। या अल्लाह, अगर टपका यों ही बढ़ता रहा तो अबके भीगना ही पड़ेगा। अम्मा, सर्दी लग रही है। सिद्दीका उसके बराबर लेटी हुई थी। उसने चिपटा के लिटा लिया। रूई नहीं तो दुई ही सही। उधर दोनों लड़के चिमटे पड़े थे, लिपटे हुए, जैसे सांप दरख़्त से लिपट जाता है।

या अल्लाह, रहम कर, खुदा ग़रीबों के साथ होता है, उनकी मदद करता है, उनकी आह सुन लेता है। क्या मैं ग़रीब नहीं ? खुदा सुनता क्यों नहीं ? है भी या नहीं ? आखिर है क्या ? जो कुछ भी है बड़ा जल्लाद है और फिर बड़ा बेइंसाफ़ है। कोई अमीर क्यों ? कोई ग़रीब क्यों ? उसकी हिकमत है, अच्छी हिकमत है, कोई जाड़े में ऐंठे, लेटने को पलंग तक न हो, ओढ़ने को कपड़े तक न हों। सर्दी खायें, बारिशें सहें, फाके करें और मौत भी न आए। कोई है कि लाखों वाले हैं, हर किस्म का सामान है, किसी बात की तकलीफ नहीं। अगर वो थोड़ा-सा हमीं को दे दें तो उनका क्या जाएगा ? ग़रीबों की जानें पल जाएंगी। लेकिन उनको क्या पड़ी। किसकी बकरी और कौन डाले घास। हमको बनाया किसने ? अल्लाह ने ? तो फिर हमारी परवाह क्यों नहीं करता हैं ? किसलिए बनाया ? रंज सहने और मुसीबत उठाने के लिए ? अरे, क्या इन्साफ है ? वह क्यों अमीर है ? हम क्यों नहीं ? मरने के बाद इसका बदला मिलेगा, मौलवी तो यही कहते हैं। आखिरत किसकी ? भाड़ में जाए यमलोक। तकलीफ तो अब है, ज़रूरत तो अभी है, बुखार तो इस वक्त चढ़ा हुआ है, और दवा दस बरस बाद मिलेगी ? खुदा बचाए ऐसे आखिरत से। जब की जब भुगत लेते, अब तो कुछ हो, खुदा महज़ एक धोखा है। गुर्बत में ग़रीब रहने की तसल्ली, मायूसी में मायूस उम्मीद, मुसीबत में तकलीफ़ से संतुष्ट रहने का ज़रिया, खुदा सिर्फ़ धोखे की एक टट्टी। और मज़हब कि वह भी यही दिखाता है, यही पढ़ाता है। फिर कहते हैं कि इल्म का ख़ज़ाना है और फिर इफ़लास का बहाना है। बेवकूफ़ों की अक़ल है। आगे बढ़ते हुओं, ऊपर चढ़ते हुओं को पीछे खींचता है। तरक्की के रास्ते में एक रुकावट है। गरीब रहो, गुर्बत ही में खुदा मिलता है। हमने तो पाया नहीं। अमीरों से क्यों नहीं रुपया दिलवा देता ? दौलत का क्या होगा ? सिर्फ़ उतना चाहिए कि वक़्त बसर हो जाए। आखिर अमीर ही दौलत का क्या करते हैं ? तहखानों में पड़ी जंग खाती रहती है। किसी खर्च का भी ठीक नहीं। जो है, बेतुकेपन से उठता है, लुटता है। सरकार ही कुछ क्यों नहीं करती ? और नहीं तो सबको बराबर रुपया दिलवा दे और अगर इतना नहीं ता हमको सिर्फ आधा ही मिल जाए। लेकिन सरकार की जूती को क्या ग़रज पड़ी है कि अपनी जान को हलकान करे। उसके तो खज़ाने पूरे हैं। बैठे-बिठाए रुपया मिल जाता है। उसको क्या ? मौत तो हमारी है। जब पड़े तो जाने, ऊंट जब पहाड़ के नीचे आता है तो बिलबिलाता है। अभी तो....

अम्मां ! हां बेटा क्या है ? अम्मां, भूख लगी है, भूख ? मरियम के जिस्म में सनसनी दौड़ गई। या इलाही, क्या करूं ? ओह, बेचारे बच्चे। मियां यह भी कोई भूख का वक्त है ? भूख न हो गयी, दीवानी हो गई। सो जा, सुबह हो तो खाना। नहीं अम्मा, मैं अभी खाऊंगा, बड़े जोर से भूख लगी है। नहीं बेटा, यह कोई वक्त नहीं, लेट जाओ। वह देखो कड़क हुई। बच्चा बेचारा कड़क की आवाज़ सुनते की सहमकर लेट गया। कहां से लाऊं ? क्या करूं ? बारिश ने तो दिन भर निकलने भी न दिया कि किसी के यहां जाती और थोड़ा-बहुत जो भी कुछ मिलता लाकर सीती। बेचारी फय्याज़ बेगम के यहां भी जाना नहीं हुआ, वही बेचारी बचा-खुचा जो कुछ होता है, बराबर दे देती हैं। अब जो अगर कल भी कहीं से काम न मिला तो क्या होगा ? आखिर कहां तक मांग-मांगकर लाऊं ? देते-देते भी लोग उकता जाते होंगे।

अम्मां भूख लगी है, देखो तो पेट खाली पड़ा है। कल दिन से कुछ नहीं खाया। नींद बिल्कुल नहीं आती। कलेजा मुंह को आ रहा था। बेचारी आखिर को उठी और दिए की मद्धिम रौशनी में टटोलती हुई सन्दूक की तरफ गई कि अगर कुछ मिल जाए तो बच्चे को दे। आखिर तो सिर्फ पांच बरस की जान है। काश, मैंने इन बच्चों को जना ही न होता। मैं तो मर-गिर काट ही लेती। लेकिन उनकी तकलीफ तो देखी नहीं जाती। एक सूखी रोटी एक हंडिया में पड़ी पा गई, उसको तोड़कर पानी में भिगोया और बच्चे के सामने ला रखी। पेट बड़ी बुरी बला है। बेचारा कुत्ते की तरह चिमट गया। थोड़ी खाने के बाद बोला, अम्मां जरा गुड़ हो तो दे दो। मरियम भी खड़ी हो गयी कि शायद गुड़ की डली भी मिल जाए। इत्तफाक से एक छोटी-सी डली पा गई। बच्चे ने जो हो सका खाया। दो-चार निवाले जो बचे थे, मरियम अपने को रोक न सकी, और थोड़ा-थोड़ा करके खा गई....

कड़क और चमक रुक चुकी थी। बारिश भी कम हो गई थी, फिर सिद्दीका से चिमटकर लेट गई और अकेली थी। आह ! काश कि वह होते, आह वह होते। वह, वह, वह ! रात को आते। कुछ न कुछ लिए चले आते हैं, क्या लाए हो ? हलवा सोहन है। वही निगोड़ा पपड़ी का होगा। तुम जानते हो कि मुझे हब्शी पसंद है। लो फिर चीखने लगी, देखा तो होता। आह, वह झगड़े और वह मिलाप। सावन और भादों के मिलाप। क्या दिन थे ? अब तो एक ख्वाब है। फिर चांदनी रातों में फूल वालों की सैर। आह, वह सेजें। क्या महक थी, दिमाग फटा जाता था। और अब तो वो बासी फूल भी नहीं। ऐ काश, वह होते। वो टांगें, हरा-भरा दरख़्त, गोश्त, हड्डी और गूदे का। उसका रस खून से ज़्यादा गर्म और उसकी खाल गोश्त से ज्यादा नर्म। एक तना हल्का और मजबूत और दो डालें। दो डालें और एक तना। एक-दूसरे में पैबन्द, एक दूसरे में चिमटी हुई, एक-दूसरे में एक दूसरे की

चित्र : अरुण सिंह

रूह, जुड़ी हुई, बल खाई हुई। एक दूसरे की जान और एक दूसरे में, एक तीसरी रूह की उम्मीद, एक पूरी ज़िंदगी का खज़ाना, एक लम्हे का सरमाया (सम्पत्ति) परनेस्ती (विनाश) में हस्ती की ताकत। आह वो टांगें। दो नाग बल खाए हुए, ओस से भीगी घास में मस्त पड़े हैं। एक सुई के छेद में तागा और उंगलियां, तेज़-तेज़ चलती हुई, सपाटे भरती हुई, नर्म-नर्म रोएंदार मखमल पर गुलकारियां करती हुई। एक मकड़ी अपनी जगह स्थिर जाला बुन रही है, ऊपर-नीचे हिल रही है, कुछ खबर नहीं कि मक्खी जाल में फंस चुकी है और लाआब है कि तार बना जाता है। जाल बना जाता है। एक डोल कुएं की गहराई में लटका हुआ उसकी मुलायम रेत की गर्मी महसूस कर रहा है। पानी की सतह पर छोटे-छोटे दायरे, बढ़ते-बढ़ते सारे में फैल गए, दीवारों से टकराने लगे, बाहर जाने लगे, एक सनसेनी और हरारत सारे में फैला रहे हैं। दो जुड़वां दरख्त, एक पीपल और एक आम, एक ही जड़ में उगे हुए, एक ही तने से पैदा, एक ही जिंदगी के हमराज़ थे कि उग रहे थे एक दूसरे का सहारा, एक दूसरे की तसल्ली, एक ही हवा में सांस लेते, एक ही सूत के पानी में जीते थे। आह, वह जिस्म, और अब तो पीपल को बिजली ने जला डाला। जड़ से मसल डाला। मगर आम है कि किस्मत का मारा अभी तक खड़ा है। काश उस पर बिजली गिरी होती--लुंजा अकेला मुर्झाया हुआ। चिचड़ी की जान अभी तक ठोकरें खाने को जिन्दा है। अगर वह होते....

लेहाफ में एक हरकत, सिद्दीक़ा ने करवट ली। आह ! जमाना किसके बहलावे में नहीं आता, किसके फुसलावे में नहीं आता और मैं एक अकेली हूं, आह मैं अकेली हूं। इससे तो ज़िंदगी का लुफ्त देखा ही न होता तो आज यह तन्हाई महसूस नहीं होती। मेरे दिल में कोई जगह खाली न होती, मोहब्बत की जगह। उम्मीद भी क्या झोंटे झुलाती है। कभी पास आती है, कभी दूर जाती है। लेकिन उम्मीद काहे की। अब तो एक मायूसी है, सारे में फैली हुई है। बादलों की तरह उमड़ी हुई है। वह सूत की रस्सी का झूला, चार हमजोलियां, पटरे एक-एक किनारे पर दो-दो, और पैगें हैं कि दरख्त को हिलाए डालते हैं, घनघोर घटाओं में घुस जाते हैं। झूला किन ने डालू रे आमोरियां ! वाह अनवर और किश्वर, बस इतने ही पेंग ले सकती हो ? देखो मैं और कुबरा कितनी बढ़ाते हैं। चक्कर न आ जाए जभी कहना.... फिर एक हंसी का शोर और कहकहों की आवाज़.... अब तो ज़िंदगी एक हव्वा है। बागेइरम (जन्नत) और सूरों की अटखेलियां, फूलों के हार और ओस की झूमर ने वह बेर डाली, कहां मेरा आशियाना ? फिर एक तपती हुई चट्टान, बंजर और उसके पहलू से ज़िंदगी, लेकिन फिर एक नई हस्ती, फिर एक नई आन, मन व सलवा के मज़े। दूध की मीठी नहरों में नहाना और उनमें खेलना। फिर दिन ईद, रात शबेरात। लेकिन आह, जमाने की एक करवट--इब्लीस, गेहूं और नेस्ती। तन्हाई-तन्हाई, एक पहाड़ टूट पड़ा। काश कि वह होते। अरे-आदम--न फिर तकलीफ़, मुसीबत, मलामत, बलाएं। फिर वही खुशी और खुर्मी। एक कयामत बर्पा है। नफ़्सी-नफ़्सी का आलम, इसराफ़ील (क़यामत के उद्घोषक) का शोर, दज्जाल (इस्लामी मान्यता के अनुसार क़यामत से पहले अपने को खुदा घोषित करके लोगों को बहकाने वाला) है कि सबको फुसला रहा है। मैं तो उसी के पास जाऊंगी। उम्मीद तो है। आह, यह तन्हाई कोई सर पर हाथ रखने वाला भी नहीं। न तसल्ली, न तशफ्फ़ी, न दिलासा। तन्हाई-तन्हाई। रात अंधेरी और भयानक रात। अरे, ला दो कोई जंगल मुझे... जंगल मुझे... बाज... बा... बाजार भोऊ... ओझ... रात। ❑ ❑

अनुवादक : शकील सिद्दीकी
('अंगारे' से साभार)

(पृष्ठ 121 का शेष)

से उस समय माँग लिया था, जबकि उनका सर्जरी का सेट आया था। उस सेट का एक चाकू मुझे बहुत पसन्द आया था, वह मैंने उनसे माँग लिया। वह चाकू मुझे इतना पसन्द था कि मैं उसे हर समय अपने पास रखता था। वह चाकू निकालकर मैंने उसकी छाती में घुसेड़ दिया, मैं उसका मुँह दाबे था, इससे वह चिल्ला न सकी। जब वह ठंडी हो गई तो मैं उसी प्रकार चुपचाप उतरकर अपने घर चला आया। मुझे किसी ने नहीं देखा था। बाज़ार की अधिकांश दूकानें उस समय बन्द हो चुकी थीं। मैंने घर आकर अपने ख़ून से भरे कपड़े तुरन्त जला दिए और निश्चिन्त हो गया।

"जब मुझे यह ज्ञात हुआ कि कामताप्रसाद फँस गए तो मुझे बड़ा दुख हुआ। मैंने उस समय यह नहीं सोचा था कि हत्या का सन्देह किस पर पड़ेगा। मित्र के फँसने पर मुझे कितना पश्चात्तप और कितना दुख हुआ, उसे मैं ही जानता हूँ। परन्तु मृत्यु का भय, फाँसी पर लटकने के भयानक विचार ने मुझे इतना कायर बना दिया कि मैं अपना अपराध स्वीकार करके कामताप्रसाद को न बचा सका। मैंने कई बार चेष्टा की कि अदालत में जाकर सब बातें कह दूँ; पर फाँसी के अतिरिक्त आजन्म कारावास अथवा कालेपानी की सज़ा भोगने के लिए मैं सहर्ष प्रस्तुत था, परन्तु मृत्यु ! ओफ़ ! उसके लिए उस समय मैं प्रस्तुत नहीं था। कामताप्रसाद को फाँसी हो गई। मैंने एक हत्या नहीं, दो हत्याएँ कीं।"

"कामताप्रसाद को यह रहस्य मालूम था। जेल में अन्तिम भेंट होने पर मुझे यह बात मालूम हुई। उस समय भी मैं इसी फाँसी के भय से अपने मित्र से अपने इस गुरुतर पाप के लिए क्षमा न माँग सका। भय ने उस समय भी मेरा मुख बन्द कर दिया था।"

"अब मेरे लिए संसार शून्य है। मेरी सबसे प्यारी चीज़ सुन्दरबाई भी नहीं रही, दो-दो हत्याओं का मेरे सिर पर भार है। पश्चात्ताप की ज्वाला से तन-मन भस्म हुआ जा रहा है। इस घोर यन्त्रणापूर्ण जीवन से अब मुझे मृत्यु ही भली प्रतीत हो रही है, इसलिए मैं आत्म-हत्या करता हूँ। ईश्वर मेरे अपराधों को क्षमा करके मेरी आत्मा को शान्ति देगा या नहीं, इसमें मुझे सन्देह है; परन्तु फिर भी जीवन से मृत्यु अधिक प्रिय मालूम होती है।

--रेवतीशंकर

* * *

जिस समय कामताप्रसाद के पिता को यह बात मालूम हुई कि कामताप्रसाद निरपराध फाँसी पर चढ़ा, उस समय उन्होंने कहा--उसके भाग्य में यही लिखा था; परन्तु इसके साथ ही यह बात भी है कि न्याय का यह दण्ड-विधान हत्या-विधान है। यदि मेरे लड़के को फाँसी न देकर, आजन्म जेल हुई होती तो वह आज छूट आता। न्यायी को ऐसा कार्य करने का क्या अधिकार है, जिसमें यदि भूल हो तो उसका सुधार उसके वश की बात न रहे। अब यदि न्याय उसे जिला नहीं सकता तो उसे फाँसी देने का क्या अधिकार था ? यह न्याय नहीं, बर्बरता है, जंगलीपन है, हत्याकाण्ड है। ऐसे न्याय का जितना शीघ्र नाश हो जाय, अच्छा है।

दुखी वृद्ध अपने शोकोन्माद में बैठा बक रहा था; परन्तु वहाँ ईश्वर के अतिरिक्त उसकी बात सुनने वाला और कौन था ! ❑ ❑

('चाँद' के फाँसी अंक से साभार)

क़ानूनीमल की बहस

जी० पी० श्रीवास्तव

अंक--1

दृश्य--1 यमपुरी

(क़ानूनीमल वकील को यमदूत गठरी में बाँधे हुए अपनी पीठ पर लादकर लाता है।)

यमदूत-- उफ़ ! ओ ! इस क़ानूनीमल वकील ने तो मेरा नाक में कर दिया। कमबख़्त ने मरने में भी घण्टों लगा दिए । जब देखा कि यह किसी तरह अपनी खुशी से संसार छोड़ने को राज़ी नहीं होता, बल्कि उल्टे मुझ यमदूत को भी, जिसका काम ही प्राणियों को यमपुरी पहुँचाना रहता है, रास्ता बता रहा हैं, तब तो मुझसे नहीं रहा गया। चट हज़रत की मुश्कें बाँधीं और मृत्युलोक से ज़बरदस्ती उठाकर यमपुरी में ले ही आया। थोड़ी देर में बाबू साहब अपने पापों का फल भोगेंगे और नरक को सिधारेंगे ही, मगर तब तक ज़रा इन्हें होश में लाकर मिज़ाजपुरसी तो कर लूँ। बहुत अकड़ते थे।

(यमदूत कानूनीमल की मुश्कें खोलकर इन्हें होश में लाता है।)

क़ानूनीमल-- (आँख मलकर अँगड़ाई लेता हुअ) बहुत सोया। (यमदूत को देखकर) अबे तू कौन है ? धत् तेरी की ! इस वक्त तुझे अपनी मनहूस सूरत मुझी को दिखानी थी ? चल हट यहाँ से । कमबख़्त ने हमारा आज का दिन ही चौपट कर दिया। अब आज वकालत क्या ख़ाक चलेगी ?

यमदूत-- (अलग) अरे ! इसमें तो अब भी वही ऐंठ हैं, (प्रकट) क्यों जी, क्या तुम अब भी मृत्युलोक का स्वप्न देख रहे हो ?

क़ानूनीमल--पढ़ें फ़ारसी बेचें तेल ! सूरत यह और बघारने को संस्कृत ? सपना को स्वप्न कहने चला है। अबे ज़रा अपनी हैसियत देखकर बातें कर। जानता नहीं, मैं कानूनीमल वकील हूँ। तेरे ऐसों को मैं रोज़ ही जहन्नुम की हवा खिलाया करता हूँ।

यमदूत-- मगर अब तो तुम मेरे असामी हो।

क़ानूनीमल-- मैं और तेरा असामी ? बकता क्या है ?

यमदूत-- सच कहता हूँ। तुम ज़िन्दा नहीं हो, तुम मर गए हो।

क़ानूनीमल-- मर जाए तेरा बाप, मैं क्यों मरने लगा ?

यमदूत-- क्योंकि तुम्हारी ज़िन्दगी पूरी हो गई थी। मगर ख़बरदार ! अब बहुत बढ़-बढ़ के मत बोलो ।

क़ानूनीमल-- (अलग) यह मामला क्या है ? क्या मैं सचमुच मर गया ? मैं सात रोज़ से बीमार ज़रूर था । फिर भी मैं कचहरी किसी न किसी तरह जाता ही था। सातवें दिन घर आते ही मेरी हालत बहुत ख़राब हो गई । आँखों के सामने एकदम अँधेरा छा गया। उस अँधियारी में बस इसी कमबख़्त की सूरत दिखाई दी। उसके बाद कुछ ख़बर नहीं। अब जो आँख खुली है तो यही पाजी फिर मुझे दिखाई दे रहा है, जो मुझे मरा हुआ बताता है।

यमदूत-- क्यों, क्या बुदबुदा रहे हो ? क्या अपने पापों को सोच रहे हो?

क़ानूनीमल-- पाप ? कैसा पाप ?

यमदूत-- ख़ैर ! नरक में ढकेले जाओगे तब खुद ही मालूम हो जायगा।

क़ानूनीमल-- मैं क्यों नरक में जाने लगा ? नरक तुझ ऐसे ख़ब्बीसों के लिए है, या मेरे लिए ? देखूँ तो सही, मुझे नरक में कौन ढकेलता है ?

यमदूत-- मैं।

क़ानूनीमल-- तू ?

यमदूत-- हाँ मैं ?

क़ानूनीमल-- क्यों ?

यमदूत-- ईश्वर की अदालत में तुम अव्वल नम्बर के पापी ठहराए गए हो।

क़ानूनीमल-- बिना मुझसे कुछ पूछताछ किए हुए ?

यमदूत-- पूछताछ करने की क्या जरूरत ? यहाँ तुम्हारी हर बात रत्ती-रत्ती मालूम है ?

क़ानूनीमल-- हुआ करे। मैं कानूनीमल हूँ। मैं ऐसी एकतरफा कार्रवाई करने वाली अदालतों का फैसला कभी मान सकता हूँ।

यमदूत-- तुम्हारे मानने या न मानने से क्या होता है ?

क़ानूनीमल-- अच्छा देखा जायगा।

यमदूत-- तो फिर जनाब चलिए इधर !

क़ानूनीमल-- इधर क्या हैं ?

यमदूत-- नरक ।

क़ानूनीमल-- और उधर ?

यमदूत-- बैकुण्ठ।

क़ानूनीमल-- (बैकुण्ठ की तरफ जाता है) अच्छा तो मैं उधर ही जाता हूँ।

यमदूत-- अरे ! उधर क्यों ?

क़ानूनीमल-- हमारी खुशी।

चित्र : दुर्गादत्त पाण्डेय

यमदूत-- वाह री आपकी खुशी ! यह दुनिया नहीं है। यहाँ ऐसी धाँधली नहीं चल सकती।

क़ानूनीमल-- तो जनाब मैं भी कोई अनाड़ी नहीं हूँ, जिसके साथ आपकी औंधी अदालत की ऐसी धाँधली चल जाए।

यमदूत-- धाँधली ?

क़ानूनीमल-- बेशक ! बिलकुल धाँधली। एकदम धाँधली। ऐसी तो हमारे यहाँ के 'अनाड़ी मजरैट' लोग भी नहीं करते।

यमदूत-- तो क्या तुम अपने को पापी नहीं समझते ?

क़ानूनीमल-- पापी होंगे तेरे सात पुरखे। ज़रा ज़बान सँभाल के बातें करो, नहीं अभी हतकइज़्ज़ती का दावा कर दूँगा तो बस सारी हेकड़ी निकल जायेगी।

यमदूत-- अरे ! गालियाँ भी देते हो और ऊपर से टर्राते भी हो ?

क़ानूनीमल-- तो क्या बुरा करता हूँ ? तुम हो ही इस काबिल।

यमदूत-- मैं इस काबिल हूँ ? क्यों ?

क़ानूनीमल-- एक तो तुम्हारी सूरत ऐसी है कि बस यही जी चाहता है कि तड़ाक से मुँह पर तमाचा मार दूँ। दूसरे तुम्हें भलेमानुसों से बात तक करने की तमीज़ नहीं। तीसरे तुम उचक्कों की तरह मुझे अपने बाप का माल समझ कर दुनिया से उठा लाए, जब मैं मनसूबों में भरा हुआ दुनिया में सैकड़ों काम करने को सोचे हुए था। चौथे यहाँ लाकर तुम बताते हो कि मैं मर गया। पाँचवें मेरे कामों को अपनी उल्टी समझ से खुद ही पाप समझ मुझे नरक में जाने के लिए कहते हो।

यमदूत-- मैं क्या करूँ ? मैं तो हुक्मी बन्दा हूँ। ईश्वर के यहाँ से जैसा हुक्म आया वैसा किया।

क़ानूनीमल-- ईश्वर के यहाँ कोई कायदा-कानून भी है कि उनके यहाँ अन्धेरा है। ज़रा ले तो चलो मुझे उनके पास । देखूँ किस कानून की रू से मुझे उन्होंने पापी ठहराया है।

यमदूत-- तुम वहाँ नहीं जा सकते।

क़ानूनीमल-- क्यों, क्या वे पर्देनशीन हैं ?

यमदूत-- नहीं । मगर वह केवल अपने भक्तों ही को दर्शन देते हैं--और किसी को नहीं।

क़ानूनीमल-- भक्त क्या बला है ?

यमदूत-- ईश्वर के भक्त वह कहलाते हैं, जो दिन-रात उनका भजन करते हैं और भजन में उन्हीं का गुण गाते हैं। सोते, उठते, बैठते उन्हीं का नाम जपते, हैं।

क़ानूनीमल-- रहने भी दे। साफ-साफ क्यों नहीं कहता कि भक्त के मानी खुशामदी। धत् तेरे की ! यहाँ भी खुशामदियों ही का बोल-बाला है। तब तो मेरी गुजर यहाँ हो चुकी। चल बाबा, मुझे घर ही पहुँचा दे।

यमदूत-- घर ?

क़ानूनीमल-- और नहीं तो क्या ? न तू मुझे बैकुण्ठ में जाने देता है और न ईश्चर के पास। तब फिर घर न वापस जाऊँ तो जाऊँ कहाँ ?

यमदूत-- वाह ! वाह ! फिर नरक में कौन जायगा ?

क़ानूनीमल-- तू और तेरे बाप-दादे।

यमदूत-- अरे ! तुम्हारी इतनी हिम्मत कि तुम मेरे बाप-दादों के भी नाम लो ?

क़ानूनीमल-- और तुम्हारी इतनी मजाल कि तुम मुझे नरक में जाने को कहो ? मैं तुझसे किस बात में दबूँ ? जो कुछ करना था वह तू कर ही चुका। अब तू मेरा क्या कर सकता है ?

यमदूत-- हाय ! हाय ! तुमने तो मेरा नाक में दम कर दिया । मरने के बाद जितने यहाँ आते हैं , वह बेचारे सभी अपने पापों को याद करके पछताते हैं, सर धुनते है, छाती पीटते हैं, माफी पाने के लिए छटपटाते हैं और नाक रगड़ते हैं।

क़ानूनीमल-- बस-बस अपना लेक्चर अपने पापियों को डराने के लिए रख छोड़। मैं तेरी गीदड़भभकियों में आने वाला नहीं हूँ।

यमदूत-- अरे भाई, मै तुम्हारी भलाई के लिए कहता हूँ।

क़ानूनीमल-- जब मैंने कोई पाप ही नहीं किया है, तो इन बातों को सुनने से फायदा ?

यमदूत-- मगर ईश्वर की अदालत में तो तुम पापी साबित हो चुके हो।

क़ानूनीमल-- पीठ पीछे तो लोग लाट साहब को भी गाली देते हैं । इससे क्या ? मेरे समाने अगर कोई मुझे पापी कह दे तब जानूँ ? इसीलिए तो कहता हूँ कि ईश्वर के पास ले चलो।

यमदूत-- पहले मुझसे तो निबट लो, तब ईश्वर के पास जाने के मनसूबे करना।

क़ानूनीमल-- तुझसे क्या निपटूँ, तेरे तो अक्ल ही नहीं है।

यमदूत-- मेरे अक्ल नहीं हैं ?

क़ानूनीमल-- बेशक । अगर है तो बता पाप किसे कहते हैं ?

यमदूत-- क्या तुम्हारे धर्म ने नहीं बताया ?

क़ानूनीमल-- बस मालूम हो गया। किस धर्म को कहते हो ? दुनिया में तो हजारों धर्म हैं। अगर किसी काम को कोई मज़हब अच्छा कहता है तो दूसरा बुरा। ऐसी हालत में तुम उनकी मदद से भला किस तरह नेकी और बदी की जाँच कर सकते हो ?

यमदूत-- क्या तुम अपने धर्म पर एतबार नहीं करते ?

क़ानूनीमल-- मैं एतबार करता हूँ या नहीं, तुम्हारी बला से। तुम अपनी कहो।

यमदूत-- मैं तो उन्हें ईश्वर-वाक्य समझता हूँ।

क़ानूनीमल-- अरे ! बेवकूफ !! ईश्वर को क्यों पाखण्डी बनाता है ? अगर सभी मज़हब ईश्वर के वाक्य हैं तो वह किस तरह हर मज़हब में यह कह सकता था कि यह तो मेरा वाक्य है और बाक़ी सब कुछ पाखण्ड है। भला उन्हें इस तरह मज़हबी झगड़ों की बुनियाद डालने की क्या गरज़ थी, जिसमें पड़कर करोड़ों जानें चली गईं और अभी करोड़ों और जायेंगी ?

यमदूत-- बात तो कुछ-कुछ तुक की मालूम होती है, मगर फिर ये मज़हब दुनिया में आए कहाँ से ?

क़ानूनीमल-- जो लोग जमाने में सबसे ज्यादा अक्लमन्द हुए, जिन्होंने ईश्वर को पहचाना और उसकी कुछ-कुछ बातें समझीं, उन्होंने अच्छाई के साथ ज़िन्दगी गुजारने की तरकीबें निकालीं, बस वही मजहब हो गया। मगर फिर भी वह आदमी ही की अक्ल ठहरी। लाख बढ़ जाने पर भी गुरूर की बू उसमें आ गई। इसीलिए हर मजहब अपने को सच्चा और दूसरे को झूठा कहता है।

यमदूत-- अब तो इस गड़बड़झाले में मेरी भी नीयत डगमगाने लगी।

क़ानूनीमल-- ईश्वर एक है। सभी को पैदा करने वाला वही है। हिन्दू, बौद्ध, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, पारसी, ग़रज़ सारी दुनिया के लोग उसके लिए एक समान हैं, इसलिए अगर वह सचमुच कोई धर्म दुनिया में चलाता तो बस एक ही धर्म,

जिसके कायदे सबके लिए एक ही होते। जब ऐसा धर्म दुनिया में कोई है ही नहीं, तब तुम मज़हब के भरोसे पाप-पुण्य की क्या खाक तमीज़ कर सकते हो ? हम लोग अपनी-अपनी सफाई में अपने-अपने धर्म की शरण अलबत्ता ले सकते हैं। क्योंकि हमारी अक्ल छोटी है। और जिन बातों को, चाहे वह बुरी ही क्यों न हों, हमारे बड़ों ने अच्छा कह दिया है, उन्हें अच्छा समझने के लिए हम मजबूर हैं। मगर ईश्वर उनकी अक्ल से हमें बुरा समझने के लिए काम नहीं ले सकते, इसके लिए उन्हें अपनी अक्ल खर्च करनी चाहिए।

यमदूत-- मगर दुनिया में लाखों ही तरह के आदमी होते हैं, सबके लिए एक ही तरह के कानून किस तरह बन सकते हैं ?

क़ानूनीमल-- बन सकता है कि ईश्वर ने बनाकर दिखला दिया है। आँखें हों तो खोलकर देख। उन्होंने तो ऐसे कानून बना दिए हैं, जो पेड़-पत्तों से लेकर दुनिया के तमाम जीव-जन्तु तक के लिए एक समान हैं। वह ऐसा निकम्मा कभी नहीं हो सकता, जैसा तू अपनी बेवकूफी की बातों से दिखला रहा है। बस मैं समझ गया। तुम्हीं लोगों ने यहाँ भी धाँधली कर रक्खी है।

यमदूत-- आहाहा ! भला ऐसे क़ानून किस ग्रन्थ में हैं, यह तो बताओ।

क़ानूनीमल-- अरे अन्धे ! इनको किताब में नहीं, कुदरत के कारखाने में देख।

यमदूत-- हाँ क़ानून-कुदरत तो वास्तव में अटल और सबके लिए एक समान है।

क़ानूनीमल-- ईश्वर की अक्ल की कुछ थाह लेनी है तो वहीं तू उसे पा सकता है। तू उसको मज़हब के शिकन्जे में कसकर उसकी बेइज्ज़ती क्यों करता है ? ईश्वर ने दुनिया के लोगों को राह बताने ही के लिए इस क़ानून को बनाया। जिसने इसको समझा, उसने ईश्वर को पहचाना। जिस मज़हब ने इसकी जितनी ही नकल की है, वह उतना ही ज्यादा दुनिया के लिए सच्चा और अच्छा हुआ। जिस समाज ने इसको जितना ही अपनाया है, उतनी ही उसकी भलाई हुई है। मगर अफसोस ! दुनिया इसे नहीं समझती।

यमदूत-- ईश्वर करे दुनिया इसे हर्गिज न समझे, वरना मेरा नरकधाम बिल्कुल उजड़ ही जायेगा। क्योंकि अभी से तुम्हारी बातें मेरी अक्ल को बौखला रही हैं। कहीं इस बौखलाहट में मैं तुम्हें धर्मात्मा न समझने लगूँ। इसी तरह मुझे औरों को भी समझना पड़ेगा, अब भी मेरी समझ कुछ-कुछ सही-सलामत है। हाँ, यह तो जरा बताओ कि मज़हबों में अगर ईश्वर का दखल नहीं है, तब उन सबमें बहुत सी बातें क्यों मिलती-जुलती हैं।

क़ानूनीमल-- वाह ! वाह ! सारा रामायण पढ़ गए फिर भी यह नहीं मालूम हुआ कि राम ने रावण को मारा या रावण ने राम को। अरे अक्ल के दुश्मन ! सभी मज़हबों ने ईश्वर को उसकी कुदरत का कारख़ाना देखकर पहचाना है। इसलिए उसके क़ानून का बहुत-कुछ सहारा लेकर अपने कायदे बनाए हैं। ऐसे कायदे हर मज़हब में जरूर ही कुछ न कुछ मिलते-जुलते होंगे।

यमदूत-- अब मार लिया ! अब तुम कहाँ मेरे चंगुल से निक के जा सकते हो ? आखिर आ गए तुम उसी रास्ते पर, जहाँ से तुम भागना चाहते थे। जिन बातों को सभी धर्मों ने पाप कहा है, उनसे तुम कैसे बच सकते हो ? तुम खुद ही कह चुके हो कि सब धर्मों की मिलती-जुलती बातों का दारमदार क़ानून-कुदरत है, यानी ख़ास ईश्वर का बनाया हुआ क़ानून। तुम उसके ख़िलाफ़ चले हो।

क़ानूनीमल-- हर्गिज नहीं।

यमदूत-- अगर मैं बता दूँ ?

कानूनीमल-- तेरी समझ की भूल साबित कर दूँगा। बता तो सही।

यमदूत-- सभी धर्म एक जबान से ईश्वर की पूजा करने को कहते हैं। मगर तूने कभी नहीं की।

कानूनीमल-- बेशक नहीं की।

यमदूत-- क्यों ?

कानूनीमल-- क्योंकि न तो मैं कामचोर था न खुशामदी, और न मुझे ईश्वर के मिज़ाज पर कलंक लगाना मंजूर था।

यमदूत-- इसका क्या मतलब ?

क़ानूनीमल-- तुम्हारी अक़्ल बहुत मोटी है। इसलिए तुम इसे इस तरह समझो। फर्ज़ करो तुमने एक नाटक-मण्डली खोली और तमाशा करने के लिए तुमने दस एक्टर तैनाती किए। तुम इन एक्टरों से क्या आशा करोगे और तुम किस तरह खुश होगे ?

यमदूत-- मैं उनसे यही आशा करूँगा कि वह लोग स्टेज पर निहायत खूबी के साथ अपने-अपने पार्ट करें, और इसी में मैं उनसे खुश हूँगा।

कानूनीमल-- अगर कोई एक्टर बजाय अपना पार्ट करने के स्टेज के एक कोने में बैठकर तुम्हारा ही नाम इस नीयत से जपता रहे कि मैनेजर साहब अपनी तारीफ सुनकर मुझसे खुश हो जायँ, ताकि वह मुझे बहुत सा इनाम दें तो उसे तुम क्या समझोगे ?

यमदूत-- अव्वल नम्बर का कामचोर, खुशामदी और मुझे दर्शकों की निगाहों में खुशामदपसन्द साबित करके मुझे बदनाम करने वाला समझूँगा। उससे खुश होने के बदले उस निकम्मे की गर्दन में हाथ डाल के निकाल दूँगा।

क़ानूनीमल-- तो बस इसी मिसाल के क़ानून से ईश्वर की पूजा करने वालों

चित्र : दुर्गादत्त पाण्डेय

को, दुनिया से भागकर जंगलों में जाकर ईश्वर के नाम को जपने वालों को एकदम नरक में ढकेलो। क्योंकि यह सब लोग दुनिया के स्टेज पर अपना दुनियावी पार्ट करने के लिए भेजे गए थे। मगर इन सबों ने उससे मुँह चुराया और अपना वक़्त इस तरह बरबाद किया।

यमदूत-- मालूम होता है, तुम बिल्कुल सही कह रहे हो, फिर भी इसमें कहीं न कहीं है ग़लती जरूर। मगर इस वक्त मेरी अकल ऐसी चकरा गई है कि पता नहीं मिलता कि वह ग़लती कहाँ पर है।

क़ानूनीमल-- सही तो है ही। इसीलिए तो मैं इस पाप से सदा दूर ही रहा।

यमदूम-- खैर ! आगे चलो। सभी धर्म ब्रह्मचर्य की तारीफ करते हैं। मगर तुमने इसका पालन नहीं किया।

क़ानूनीमल-- मैं पहले ही कह चुका हूँ कि तुम मेरे सामने संस्कृत न बघारा करो। साफ-साफ कहो कि ब्रह्मचर्य किसे कहते है ?

यमदूत-- ब्रह्मचर्य से मतलब यह है कि मन को इस तरह सदा क़ाबू में रखना कि खूबसूरत से भी खूबसूरत औरत के सामने भी वह ज़रा न डगमगाए।

क़ानूनीमल-- बस-बस, समझ गया। यह हिजड़ेपन की बातें अपने ही पास रख। धत् तेरी की ! अरे ! कोई अक्ल की बात पूछ तो उसका जवाब दूँ।

यमदूत-- अच्छा, तो लो मैं साफ़ ही साफ़ पूछता हूँ। देखूँ अब तुम किस तरह जवाब देने से भागते हो। तुम वेश्यागामी रहे हो।

क़ानूनीमल-- रहे होंगे।

यमदूत-- अरे ! तो क्या यह पाप नहीं है, जो ऐसी लापरवाही दिखा रहे हो ?

क़ानूनीमल-- पाप ? भला तू यह भी जानता है कि पाप है क्या ?

यमदूत-- जितने भी बुरे काम हैं, जिससे परलोक बिगड़े, वह सभी पाप है।

क़ानूनीमल-- परलोक और ढचरलोक की बात तो अलग रक्खो। इसीलिए मैंने धर्म को पहले ही दूर कर दिया है। कोई बात अगर बुरी है तो बताओ क्यों बुरी है ? तब तो मैं मान सकता हूँ, वरना धर्म-वर्म के ख्याल से मैं किसी भी बात को अन्धे की तरह मानने को तैयार नहीं हूँ।

यमदूत-- उफ ! ईश्वर न करे तुझ-ऐसे कानूनी से किसी का पाला पड़े। तुम बात नहीं बात की खाल खींचते हो। तुम कहते हो कि धर्म जिन्दगी को अच्छाई और सच्चाई से बिताने का ढंग बताते हैं, इसलिए यह उन्हीं कामों को बुरा कहते होंगे जिनसे दुनिया को किसी न किसी तरह से नुकसान पहुँचा हो और जो ज़िन्दगी के लिए खराब हों।

क़ानूनीमल-- इतनी देर में अगर तुमने कोई अक़्ल की बात कही है तो बस यही। वह भी सिर्फ मेरी संगत की वजह से, देखा इसका असर ? तुम्हारी औंधी खोपड़ी कुछ-कुछ सीधी होने लगी कि नहीं ? अब तुम मानते हो कि पाप वह चीज़ है जो दुनिया के लिए, जिन्दगी के लिए या किसी के लिए भी नुकसान पहुँचाने वाला हो, अगर न हो तो वह पाप नहीं है।

यमदूत-- हाँ, जब परलोक की बात अलग कर दी गई, तब तो यही मानना पड़ेगा।

क़ानूनीमल-- अच्छी बात है। अब तुम बताओ कि तन्दुरुस्ती के लिए कुदरती जरूरियात को जबरन् रोकना अच्छा है या उन्हें पूरा करना ?

यमदूत-- पूरा करना।

क़ानूनीमल-- जो काम तन्दुरुस्ती के लिए अच्छा हो, उसे तुम पाप कहोगे या नहीं ?

यमदूत-- हर्गिज नहीं।

क़ानूनीमल-- तब अगर किसी दिन रास्ते में किसी वजह से पेट जरा ज़ोरों से गड़बड़ा उठा तो बजाय अपने घर के पाख़ाने में जाने के बम्पुलुस में चला गया तो तेरे बाप का क्या बिगड़ा ? बस इसी तरह वेश्या के यहाँ जाने की भी बात समझ लो।

यमदूत-- क्या तुम सचमुच ठीक कह रहे हो या मेरी अक्ल ही कुछ खराब हो गयी है जो इसे ठीक समझ रही है ? खैर वेश्या ही तक यह बात होती, तो मैं उसे बाजारू सौदा जानकर चुप रह जाता; क्योंकि उसे तुम खरीदने की वजह से उस वक्त अपना माल समझ सकते थे। मगर तुमने तो पराई स्त्रियों को भी ताका है।

क़ानूनीमल-- तो क्या बुरा किया ? यह तो मैंने ईश्वर की क़दरदानी की।

यमदूत-- क़दरदानी ?

क़ानूनीमल-- हाँ क़दरदानी। और इसके लिए तू मुझे पापी समझता है ? वाह ! वाह ! अरे ! अपनी अक़्ल पर उल्टी झाड़ू मार। फ़र्ज करो कि तुमने बड़ी मेहनत से एक फुलवाड़ी बनाई। उसमें तुमने एक से एक बढ़िया फूल लगाए और खूबसूरत-खूबसूरत मूर्तियाँ तैयार करके रक्खीं। अब उसमें घूमने के लिए दो आदमी तुमने भेजे, जिनमें से एक तो अपना सर नीचा किए इस पार से उस पार निकल गया। मगर दूसरा हर मूर्ति निहारता हुआ घूमा, तो तुम किससे खुश होगे ?

यमदूत-- उसी से, जिसने मेरी चीज़ों की क़दर करके मेरी मेहनत सफल की।

क़ानूनीमल-- अब लाओ हाथ। मुझे इनाम दिलवाओ। और उन लोगों को, जिन्होंने दुनिया में जाकर ईश्वर की बनाई हुई ख़ूबसूरती से अपनी आँखें फेरी हैं, सीधे जहन्नुम में भेजो।

यमदूत-- अरे ! अब तो मेरी भी अक्ल यही कहने लगी। मगर नहीं, तुमने तो उनमें से किसी-किसी से प्रेम भी किया है।

क़ानूनीमल-- बड़ा अच्छा किया।

यमदूत-- अच्छा किया या बुरा किया ? पराई स्त्री से प्रेम करना कौन सा क़ायदा और कौन सा क़ानून भला अच्छा कहेगा ?

क़ानूनीमल--मगर वह पराई स्त्री कब थीं ?

यमदूत-- क्या उनकी शादी दूसरों के साथ नहीं हुई थी ?

क़ानूनीमल-- हुई होगी। तो इससे क्या वे पराई हो गईं। समाज की नज़र में वह मेरे लिए पराई हों तो हों, मगर ईश्वर की दृष्टि में नहीं ।

यमदूत-- क्यों ?

क़ानूनीमल-- क्योंकि शादी-ब्याह का रिवाज समाज का निकाला हुआ है, ईश्वर का नहीं। ईश्वर ने तो दुनिया बसाने के लिए सिर्फ़ एक प्रेम का सम्बन्ध पैदा किया है और यह रिश्ता बस उन्हीं दो औरत-मर्दों में पैदा हो सकता है, जिनको उन्होंने एक दूसरे के लिए असल में पैदा किया है, औरों के बीच में नहीं। इसीलिए उन्होंने हर मिज़ाज के मर्द के लिए उसी मिजाज की औरत भी बनाई है, ताकि सारी दुनिया एक ही के पीछे न पड़ जाय और दूसरों से बात न पूछे। अब अगर समाज बीच में कूदकर 'इधर की ईट उधर का रोड़ा भानमती ने कुनबा जोड़ा' की कहावत करे तो क्या ईश्वर का बनाया हुआ रिश्ता कहीं अपना असर डालने से चूक सकता है, या यह लगकर कहीं टूट सकता है ?

यमदूत-- उफ ! ओ ! तुमने मेरी अक़्ल चक्कर में डाल दी। ज़रा और साफ़-साफ़ कहो।

क़ानूनीमल-- यह तुम्हारी अक़्ल की कमी की ख़राबी है। इसलिए इन बातों को मैं तुम्हें किस तरह समझाऊँ। ख़ैर यों सही। अच्छा बताओ, हिन्दुस्तान असल में किसका मुल्क है ?

यमदूत-- हिन्दुस्तानियों का।

क़ानूनीमल-- मगर इस पर तो अंग्रेज़ों की हुकूमत है। उन्हीं लोगों ने इसे अपनी ताक़त से जीतकर अपना बना लिया है।

यमदूत-- फिर भी यह उनका मुल्क क़ुदरतन नहीं हो सकता और न इसे वे हिन्दुस्तानियों के बराबर सच्चे दिल से प्यार कर सकते हैं; क्योंकि हर मुल्क के प्यार करने वाले उसी के निवासी होते हैं, जिनके मिज़ाज पसन्द और ख़ासियत वहाँ पैदा होने की वजह से वहीं के मुआफिक होती है। इसलिए यद्यपि हिन्दुस्तान हिन्दुस्तानियों के लिए पराया है, फिर भी असल में वह उन्हीं का अपना मुल्क है। उस पर वह अपने तन-मन-धन न्योछावर करने के लिए पूरा अख़्तियार रखते हैं।

क़ानूनीमल-- तो बस इसी तरह से मैंने भी जिस स्त्री से प्रेम किया होगा, उसे ईश्वर ने असल में मेरे ही लिए बनाई होगी। वरना प्रेम पैदा ही न होता। क्योंकि खुद तुम्हारे कहने का मतलब यही है कि आदमी उसी चीज़ को सच्चे दिल से प्यार कर सकता है, जिसको क़ुदरत ने उसके लिए तजवीज़ करके उसके शौक़ के मुताबिक़ बना रक्खा है। अब अगर समाज ने अपनी बेवक़ूफ़ी से उस पर किसी दूसरे का अख़्तियार दे दिया हो तो क्या मैं भी उसकी बेवक़ूफ़ी में आकर अपनी चीज़ को छोड़ देता ? मैं भूलकर भी समाज को ईश्वर से बड़ा समझकर उनकी बेइज़्ज़ती नहीं कर सकता था। इसलिए सच पूछो तो तुम्हें उन लोगों को नरक में भेजना चाहिए, जिन्होंने पराई औरतों को अपने शौक़ और पसन्द की पाकर उनसे मुहब्बत नहीं की और उन्हें अपनी नहीं समझा। तुम्हीं देखो, इन लोगों ने समाज के बहकाने में आक़र ईश्वर की देन और उनके लगाए हुए रिश्ते की कैसी सख़्त बेकदरी की है।

यमदूत-- तुमने मुझ पर कुछ जादू तो नहीं कर दिया है। क्योंकि तुम्हारी यह बात भी मुझे ग़लत नहीं मालूम होती है। मगर हाँ, जब ईश्वर ने दुनिया बसाने के लिए मर्द-औरतों में मुहब्बत् का रिश्ता पैदा ही किया था तो फिर शादी-ब्याह की क्या ज़रूरत थी ?

क़ानूनीमल-- यह तो महज़ बच्चों को समाज की नज़र में हरामी कहे जाने से बचाने के लिए। क्योंकि आदमियों का समाज तुम्हारी ही तरह बिलकुल उल्लू है। वह इस क़ुदरत के रिश्ते को समझ ही नहीं सकता। इसीलिए उसने शादी-ब्याह का अपना रिवाज निकाल दिया। तभी तो वह क़दम-क़दम पर ठोकरें खाता है।

यमदूत-- हाय ! अब क्या करूँ ? तुम्हारे इस मद के सभी पाप मुझे अब धर्म ही धर्म मालूम हो रहे हैं। अच्छा बच्चा, किसी मद में तो फँसोगे। हाँ, तुम अव्वल नम्बर के झूठे भी हो; क्योंकि तुम जब वेश्या के यहाँ से अपने घर आते थे तो अपनी स्त्री से हमेशा झूठ बोलते थे और कहते थे कि मैं ज़रा रामायण सुनने गया था !

क़ानूनीमल-- तो क्या कहता कि "कोकशास्त्र" पढ़ने गया था ? बिलकुल ही गावदी हो क्या ? ईश्वर ने आदमियों को अक़्ल आख़िर किसलिए दी है ? इसीलिए कि मौक़ा-महल समझकर कभी-कभी अपनी अक़्ल से भी काम लें। वरना फिर आदमी को आदमी क्यों बनाया, एकदम जानवर ही न बना देते ? यह मैं मानता हूँ कि झूठ बोलना पाप है, क्योंकि इससे बहुत सी मुसीबतें पैदा होती हैं, मगर किसी मौक़े पर सच बोलना पाप होगा, झूठ नहीं। इसलिए अगर मैं उन वक़्तों पर अपनी घरवाली से सच बोलता तो उसके दिल को तकलीफ़ होती। वह डाह में पड़कर आफ़त मचा देती, घर का सारा कारबार ही बिगड़ जाता। अब तुम्हीं बताओं कि मैं इन मुसीबतों को समझते हुए ऐसे मौक़ों पर सच बोलने का पाप किस तरह कर सकता था ?

यमदूत-- बेशक ! यह भी कहना तुम्हारा सच जान पड़ता है। अब मैं बाज़ आया तुझसे कुछ पूछ-ताछ करने से। इसी तरह दुनियादारी के मद में तुम अपने सभी पापों की सफ़ाई दे दोगे। ख़ैर, इन बातों में तुम अपने को बेक़सूर साबित भी कर ले जाओ तो कोई हर्ज नहीं। किन्तु तुम साल भर तक सरकारी वकील रह चुके हो और उस बीच में तुमने कई बेगुनाहों को फाँसी दिलवा दी है। इसलिए इस पाप से तुम किसी तरह भी नहीं छुटकारा पा सकते।

क़ानूनीमल-- अच्छा उधर न दाल गली तो अब तुम इस तरफ़ झुके। मगर उसमें मेरा क्या क़ुसूर ? जैसा तुम कहते हो कि मैं तो हुक्मी बन्दा हूँ, जैसा ईश्वर ने हुक्म दिया वैसा किया, बस वही हाल मेरा है। क्योंकि जैसा हमारे यहाँ का क़ानून और उसके बर्तने का ढंग था, वैसा ही मैंने भी किया। अगर ऐसा करने में कोई बेगुनाह लटक गया तो उसका ज़िम्मेदार क़ानून हो सकता है, मैं नहीं । मैं तो, सच पूछो फाँसी की सज़ा को सख़्त नफ़रत की निगाह से देखता हूँ। यहाँ तक कि अगर मेरा बस चलता तो इसको एकदम उठा ही देता।

यमदूत-- अच्छा, अगर इसमें तुम्हारा नहीं, बल्कि क़ानून का क़ुसूर है तो तुम फाँसी में अपने यहाँ का क़ानून समझाओ।

क़ानूनीमल-- मगर मुश्किल तो यह है कि क़ानूनी बारीकियाँ ऐसी होती हैं जो बिना फ़ीस मिले किसी वकील को सूझतीं ही नहीं। यह हमारे यहाँ के क़ानूनदारों की पहली रस्म है, जिसे मैं क़ानून जानने वाला होकर किसी तरह तोड़ नहीं सकता। इसलिए तुम पहले इसके लिए मुझे फ़ीस दो तो शौक़ से सुनो।

यमदूत-- फ़ीस ? भला तुम्हें फ़ीस मैं क्या दे सकता हूँ ?

क़ानूनीमल-- नहीं कुछ दे सकते तो मुझे ईश्वर के दरबार में जाने का ख़ाली रास्ता ही बता दो। बस, इतने ही से हमारी इस रस्म की किसी तरह कुछ पाबन्दी हो जायगी।
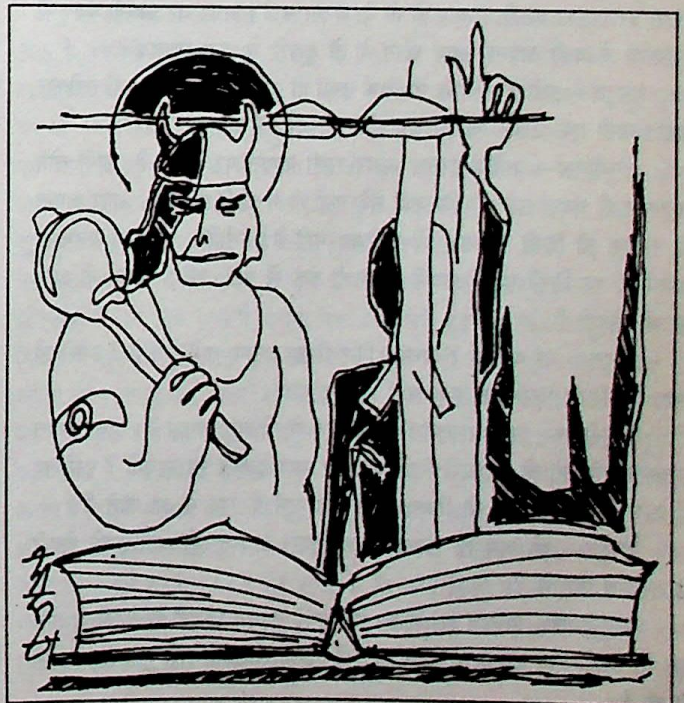
चित्र : अरुण सिंह

यमदूत-- अच्छा बता दूँगा।

क़ानूनीमल-- यह उधार की बातचीत ठीक नहीं। ख़ैर, कसम खाओ।

यमदूत-- किसकी ?

क़ानूनीमल-- यह भी ठीक कहते हो। तुम्हारे तो कोई बाप ही नहीं, फिर क़सम किसकी दिलाऊँ ? अच्छा भई, तुम्हारे ईमान पर छोड़ता हूँ, वह भी अगर हो तो। हाँ, क्या पूछते हो ? हमारे यहाँ के फाँसी के क़ानून ? अच्छा तो सुनो। मैं बहुत ही थोड़े में सब समझाए देता हूँ। क्योंकि जैसी छोटी फ़ीस होती है, उतनी ही छोटी वकीलों की बहस भी होती है।

यमदूत-- बेहतर है, मेरे पास अब वक्त भी बहुत कम है। ख़ैर कहो।

क़ानूनीमल-- हर आदमी का यह कुदरती हक़ है कि वह अपने जान-माल और इज़्ज़त की सलामती के साथ अमन से रहे। जो हक़ सभी के लिए एक-सा हो वही समाज का हक़ माना जाता है। क्योंकि समाज आदमियों के जमात को कहते हैं। आदमियों की कुदरत ऐसी है कि समाज से बाहर रह नहीं सकता और न इस तरह फुट्टैल रहकर उसका कोई काम ही चल सकता है। इसलिए समाज ने भी आदमियों के क़ुदरती हक़ूक़ को अपने ही हक़ मानकर उनकी हिफ़ाज़त करने के लिए क़ायदे बनाए, ताकि सब लोग अमन से रह सकें। इसी तरह सल्तनत ने भी अपनी धाक जमाए रखने के लिए क़ानून बना रक्खे हैं, जिसमें हुकूमत पर आँच न आने पावे। बस, इन्हीं क़ायदे-क़ानूनों के तोड़ने को जुर्म कहते हैं।

यमदूत-- मसलन ?

क़ानूनीमल-- चोरी करना, डाका डालना, सिक्का बनाना वग़ैरह-वग़ैरह।

यमदूत-- और क़र्जा लेना और फिर न अदा करना क्या जुर्म नहीं है ?

क़ानूनीमल-- नहीं। यह लेन-देन का मामला सिर्फ़ लेने वाले और देने वाले से सरोकार रखता है, सारी जमात या सल्तनत से नहीं। और न यह आदमी का क़ुदरती हक़ है, जो उसे किसी को क़र्ज़ा देने या किसी से लेने के लिए मजबूर करता है। यह उसकी मर्ज़ी पर मुनहसिर है। अगर उसे किसी को क़र्ज़ा देने को जी चाहे या उस पर उसका काफ़ी एतबार हो तो दे; वरना न दे। अगर वह अपनी बेवकूफ़ी या लालच में कहीं अपना रुपया फँसा दे तो दूसरों से क्या मतलब ?

यमदूत-- इसी तरह चोरी भी सिर्फ़ उन्हीं दो आदमियों से क्यों नहीं सरोकार रखती। यानी एक उससे जिसके घर चोरी हो और दूसरा चोर से ?

क़ानूनीमल-- क्योंकि इसका असर सारी जमात पर पड़ता है। सभी लोग इस ख़्याल से घबड़ा उठते हैं कि कहीं मेरे यहाँ भी न चोरी हो जाय। अगर जमात इसे न रोके तो किसी के माल की ख़ैरियत नहीं है। इसीलिए यह जुर्म कहलाती है। क्योंकि यह किसी ख़ास आदमी के निजी हक़ से नहीं, बल्कि जमात के आम हक़ को तोड़ती है।

यमदूत-- यह बात है ? अच्छा। फिर सिक्का बनाना क्यों जुर्म है ? इससे तो जमात का किसी क़िस्म का हक़ नहीं बरबाद होगा।

क़ानूनीमल-- मगर सल्तनत की हुकूमत में तो बट्टा लगता है। अगर रय्यत सिक्का बनाने लगे तो सरकारी सिक्के की फिर क्या इज़्ज़त रह जायगी ? इसीलिए जो काम सरकारी कानून के ख़िलाफ़ हों, वह जुर्म के मद में आ जाते हैं।

यमदूत-- हाँ, जुर्म तो समझ में आ गया। अब तुम्हारे यहाँ इनके रोकने की तरकीब क्या है ?

क़ानूनीमल-- सज़ा ! इस क़िस्म के क़ायदे-क़ानून जितनी ही बेदर्दी से तोड़े जाते हैं, उसके लिए उतनी ही सख़्त सज़ा है। इन्हीं सज़ाओं में से एक सज़ा फाँसी की भी है।

यमदूत-- जुर्म रोकने के लिए सज़ा तो ठीक ही है। मगर तुम्हारे यहाँ के कानून में किन-किन ख़्यालों से सज़ा रक्खी गई है ?

क़ानूनीमल-- एक तो बदला लेने के ख़्याल से, क्योंकि इसकी ख़्वाहिश सिर्फ़ आदमियों ही में नहीं, बल्कि जानवरों तक में भी होती है। अगर किसी को कोई एक तमाचा मारे तो उसका भी यही जी चाहेगा कि इसका मैं किसी तरह से बदला लूँ। जब जमात ने आदमियों के क़ुदरती हक़ूक़ को अपना ही हक़ मान लिया तो इसने इन हक़ों के टूटने पर, जो आदमियों की बदला देले की क़ुदरती ख़्वाहिश होती है, उसको भी अपने दिल में जगह दी। इसलिए यह जुर्म करने वालों को सज़ा देकर अपनी इस जलन को ठण्डा करती है। दूसरे सज़ा देने में मुजरिमों पर इस नीयत से तकलीफ़ पहुँचाने का ख़्याल होता है ताकि वह इसका ख़्याल करके फिर यह जुर्म न करे और इस तरह वह बाद को सुधर जाए, और तीसरा ख़्याल इसमें यह रहता है कि सज़ा को देखकर दूसरे लोग डरें और इस जुर्म को करने की हिम्मत न करें।

यमदूत-- तो यह कहो कि सज़ा का ख़ास मक़सद यह है कि जमात में जुर्म न हो और जुर्म करने वाले भी सुधर कर भलेमानुस बन जायें ?

क़ानूनीमल-- बेशक। इसीलिए मैं फाँसी की सज़ा को बहुत ही बुरा और बिल्कुल बेकार समझता हूँ। और इसी वजह से बहुत से तालीमयाफ़्ता मुल्कों ने इस सज़ा को उठा दिया है।

यमदूत-- क्यों ?

क़ानूनीमल-- क्योंकि इससे क़ानून का कोई भी मक़सद पूरा नहीं होता। मुलज़िम की जान चली जाने से उसे सुधरने का मौक़ा नहीं मिलता, और दूसरे इतने दिनों से इस सख़्त सज़ा के जारी रहने पर भी वह जुर्म न मिटे, बल्कि बढ़ते ही जाते हैं, जिनके लिए यह सज़ा है।

यमदूत-- वह कौन-कौन से जुर्म हैं, जिनमें यह सज़ा दी जाती है ?

क़ानूनीमल-- इसका हवाला ताज़ीरात हिन्द के दफ़ात 121, 132, 194, 302, 303, 305, 307 और 386 में है। बमूजिब दफ़ात 121 और 132 उन लोगों के लिए यह सज़ा है, जो सल्तनत के ख़िलाफ़ हथियार उठाएँ या कोशिश करें या सरकारी फ़ौज के हाकिम, सिपाही या मल्लाह को बग़ावत करने को बरग़लाएँ और उनके बरग़लाने से बग़ावत हो जायं।

यमदूत-- यानी यह दोनों दफ़ाएँ सल्तनत की धाक जमाने के लिए हैं ?

क़ानूनीमल-- बेशक ! मगर इसके लिए यह सज़ा बिल्कुल ही ना-मुनासिब है। क्योंकि रय्यत सल्तनत के ख़िलाफ़ तभी अवाज़ उठाएगी जब हुकूमत की किसी न किसी बात से तंग हो उठेगी। इसलिए जब कभी रय्यत की यह हालत हो तो सल्तनत को फ़ौरन अपने उन ऐबों को ढूँढ़कर सुधारना चाहिए, जिनसे यह बात पैदा हुई है। इस तरह से इन जुर्मों में कमी हो सकती है। दर्द से चिल्लाने वालों को दुनिया से हटाने में कोई फ़ायदा नहीं, क्योंकि दर्द पैदा करने वाला ऐब तो वैसा ही बना रहा। इसके अलावा सल्तनत को यह भी ख़्याल करना चाहिए कि मुल्क की मुहब्बत एक कुदरती मुहब्बत है, जो सभी तालीमयाफ़्ता मुल्कों में बड़ी ही इज़्ज़त की निगाह से देखी जाती है। अगर बेचारे नासमझ हिन्दुस्तानी इस मुहब्बत मे अन्धे होकर कोई बेजा काम कर भी बैठे तो उसके लिए इतनी सख़्त सज़ा देना कहाँ तक वाजिब है ?

यमदूत-- दुरुस्त है। तुम तो यार कुछ काबिल भी मालूम होते हो। जो कहते हो सभी ठीक ही निकलता है। ख़ैर, इसके आगे और क़ानून बताओ।

क़ानूनीमल-- दफ़ा 194 उन लोगों के लिए यह सज़ा तजवीज़ करती है जो

झूठी गवाही देकर या झूठी शहादत जुटाकर किसी बेगुनाह को फाँसी दिलवा दें। मगर यह दफ़ा बेकार सी है। क्योंकि जहाँ किसी को फाँसी हो गई तहाँ फिर किसे ग़रज पड़ी है कि गड़ा मुर्दा उखाड़े और उन बेचारे को बेगुनाह साबित करके ग़लत चालान कराने वालों को फाँसी दिलवाए। जो अपने जीते जी अपने दुश्मनों की ताक़त को नीचा दिखाकर अपने को बेगुनाह नहीं साबित कर पाता, वह मरने के बाद भला क्या कर सकता है ? दूसरे पुलिस कब यह गवारा कर सकती है कि अपने चालान को झूठा साबित होने का मौक़ा देकर अपने नाम पर कलंक लगाए। क्योंकि ख़ाली चालान कर देना ही उसका काम नहीं है; बल्कि मामले की सच्चाई निकालने की भी उस पर ज़िम्मेदारी रहती है। इसलिए इस पर कुछ कहना सुनना बेकार है।

यमदूत-- हाँ, अपने काम का छोटे से लेकर बड़े सभी पक्ष करेंगे, चाहे वह ग़लत ही क्यों न हो।

क़ानूनीमल-- दफ़ा 302 उनके लिए है, जो किसी का जान-बूझ कर ख़ून करें और दफ़ा 303 यह सज़ा ख़ास तौर से बिना किसी रिआयत के उसे देती है, जो कालापानी का सज़ायाफ़्ता हो और वह ख़ून करे। यह दोनों दफ़ाएँ जमात के बदला लेने की जलन को ज़रूर ठण्डा करती हुई मालूम होती हैं। मगर इस सज़ा को देते वक़्त यह जलन आपसे-आप ठण्ढी होकर उल्टे हमदर्दी में बदल जाती है। अगर ऐसा न भी हो तो भी यह बदला मुनासिब से ज़्यादा ही होता है; क्योंकि जिसका ख़ून हुआ है, वह हमेशा अचानक मारा जाता है। उसे यह पहले से ख़बर नहीं होती कि मैं अमुक दिन और अमुक समय इस तरह मारा जाऊँगा। मरने की तकलीफ़ चाहे जिस तरह की भी हो, इतनी सख़्त होती है जिसे कोई भी ज़िन्दा आदमी ठीक-ठीक नहीं बता सकता। उस पर अगर मरने वाले को यह बात भी मालूम हो जाय कि मुझे यह तकलीफ़ अमुक दिन भुगतनी पड़ेगी तो उसकी यह मुसीबत हज़ार गुना बढ़कर उसको बुरी तरह तड़पाती है। इसलिए ख़ून किए जाने वाले की मौत से ख़ूनी की फाँसी कई दर्जा ज़्यादा तकलीफ़ देने वाली होकर मुनासिब बदले की हद से बढ़ जाती है।

यमदूत-- हाँ, यह बात तो तुमने बड़े पते की कही। यह ख़्याल तुम्हारे क़ानून बनाने वालों को भी न सूझा होगा। ख़ैर, बदले के ख़्याल से यह मुनासिब न सही, फिर भी यह इस ख़्याल से तो ठीक है कि इसकी सख़्ती जानकर जमात थर्रा उठे और कोई उन जुर्मों को न करे, जिसमें फाँसी की सज़ा है।

क़ानूनीमल-- मगर अफ़सोस तो यह है कि यह ख़्याल भी ग़लत साबित हो गया। वह इसी से ज़ाहिर है कि ख़ून अब भी वैसे ही धड़ाके से होते चले जाते हैं।

यमदूत-- इसका सुबूत ?

क़ानूनीमल-- इसका अन्दाज़ा ख़ाली एक मदरास के सूबे में दस बरसों में कितने ख़ून हुए हैं, यह देखकर लगाया जा सकता है। देखो वहाँ 1905 में 472, 1906 में 572, 1907 में 566, 1908 में 575, 1909 में 620, 1910 में 605, 1911 में 599, 1912 में 647, 1913 में 689, 1918 में 704, 1915 में 702 ख़ून हुए हैं।

यमदूत-- अरे ! इससे तो यही साबित होता है कि इस सज़ा का डर जमात पर कुछ भी नहीं पड़ा। क़ानून का मक़सद ही बेकार हो गया। आख़िर तुम इसकी कुछ वजह बता सकते हो ?

क़ानूनीमल-- इसकी वजह यही है कि आदमी अपने सही-सलामत दिमाग़ की हालत में कभी भी यह जुर्म नहीं कर सकता। जब वह इसे करता है, चाहे किसी भी नीयत से, तब वह अपने ख़्यालात में बिल्कुल अन्धा होकर करता है। वैसी हालत में वह अपने काम का नतीजा सोच नहीं सकता। इसलिए इस जुर्म को सज़ा से डराकर रोकने की उम्मीद करना बेकार है। क्योंकि जब वह ख़ून कर चुकता है, तब इसका डर उस पर अपना असर डालता है, पहले नहीं। इस तरह इस ग़रज़ से भी इस सज़ा को रखना मुनासिब नहीं मालूम होता।

यमदूत-- जब न यह बदला लेने के लिए ठीक है और न यह डराकर जुर्म ही रोक सकती है, तब तुम इसकी जगह पर कौन सी सज़ा मुनासिब समझते हो ?

क़ानूनीमल-- अब सिर्फ़ सज़ा के मक़सदों में दो ही ख़्याल करके इसकी जगह पर सज़ा तजवीज़ करनी चाहिए। यानी एक यह कि मुलज़िम को अपने जुर्म के लिए काफ़ी तकलीफ़ देकर उसकी हिम्मत को बहुत-कुछ तोड़ देना, ताकि 'दूध का जला मट्ठा फूँक-फूँक कर पिए।' यहाँ तक कि वह एक मामूली आदमी से भी ज़्यादा इस जुर्म को करने से पिछड़े। दूसरा यह कि उसे सुधारना; क्योंकि बुरे को हटाकर बुराई दूर करना कोई अक़्लमन्दी नहीं है। तारीफ़ तो जमात की तभी है, जब उसे भी वह सुधार दे। एक तो बेवक़ूफ़ी मुलज़िम ने की जो उसने ख़ून किया और अब दूसरी बेवक़ूफ़ी उसे फाँसी देकर जमात करे और इस तरह ख़ुद भी ख़ूनी बने, यह तालीमयाफ़्ता क़ौमों के लिए अच्छा नहीं मालूम होता। इसलिए मेरी समझ में कालेपानी की सज़ा फाँसी की जगह पर बहुत काफ़ी है; क्योंकि ख़ूनी के दिल पर उसके घर-बार, बाल-बच्चे, अपने-पराये से बिछुड़ने का रंज बुरी तरह तकलीफ़ दे सकता है। उस पर अपने किए का पछतावा उसे मरते दम तक सताने के लिए बहुत है।

यमदूत-- अगर वह फिर ख़ून कर बैठे ?

क़ानूनीमल-- तो उसकी पेशानी पर 'ख़ूनी' का छाप दाग़ कर गुलाम की तरह दूसरे मुल्कों में सख़्त और नीच काम करने के लिए भेज दे। यह छाप उसे मरते दम तक फिर आँख उठाने न देगी और वह एक लद्दू जानवर से भी बदतर हो जायगा। यह सज़ा उसके लिए मौत से भी बढ़कर होगी, फिर भी न उसकी जान जायगी और न जमात पर ख़ूनी होने का इलज़ाम लगेगा।

यमदूत-- तरकीब तो अच्छी है। ख़ैर, और दफ़ाओं पर तुम्हारी क्या राय है ?

क़ानूनीमल-- अब इस सज़ा से सिर्फ़ दो ही दफ़ाएँ सरोकार रखती हैं। एक 305 है, जिसके बमूजिब उस आदमी के लिए यह सज़ा है, जिसकी मदद से कोई नाबालिग़, या पागल, या बेवक़ूफ़ या कोई सरसाम या नशे की हालत में ख़ुदकुशी कर ले। मगर इसमें बहुत से बेगुनाहों को नाहक़ सज़ा पा जाने का डर है। क्योंकि फ़र्ज करो कि तुम्हारे साथ भी रहता हो जो एक बड़ी जायदाद का मालिक हो और उसके बे-औलाद मरने से वह जायदाद तुम्हें मिल सकती हो। अगर किसी दिन ख़ुदकुशी की बातचीत छिड़ गई और तुम्हारी तबीयत किसी वजह से, दुनिया से उस वक़्त खट्टी होने के सबब से तुम उसके सामने इसकी तारीफ़ कर बैठे और इत्तिफ़ाक से उस दिन तुम्हारी बन्दूक़ मकान में भरी हुई रह गई। ख़ब्तुलहवास के दिमाग़ में ख़ुदकुशी की बात गूँज उठी और उसने भरी हुई बन्दूक़ पाकर चुपके से अपना काम तमाम कर डाला। अब चाहे तुम कितना ही बेगुनाह क्यों न हो, मगर यह कुल बातें तुम्हें इस दफ़ा के चंगुल में लाने के लिए काफ़ी हैं। इसी तरह दूसरी दफ़ा 396 है, जो डकैती के साथ ख़ून हो जाने पर डाकू के लिए यह सज़ा तजवीज़ करती है। इसमें ख़राबी यह है कि इस जुर्म के गवाहान अक्सर अपनी झुठाई-सच्चाई को ख़ुद ही नहीं समझ पाते। क्योंकि डाका के वक़्त इतना भम्भड़ होता है और लोगों की हालत इतनी घबड़ाई हुई रहती है कि कोई किसी को ठीक तरह पहचान नहीं सकता। देखने वालों के बयान अक्सर असल में क़यासी होते हैं, जिसे वह ख़ुद सच समझकर उसे आँखों की देखी हुई बात कह देने में कुछ बुराई नहीं जानते,

(शेष पृष्ठ 150 पर)

शरत्‌चंद्र के बाङ्ला उपन्यास 'पथेर-दाबी' की ज़ब्ती

○ विष्णु प्रभाकर

देशबन्धु की मृत्यु के बाद शरत् बाबू का मन राजनीति में उतना नहीं रह गया था। काम वे बराबर करते रहे, पर मन उनका बार-बार साहित्य के क्षेत्र में लौटने को आतुर हो उठता था। यद्यपि वहां भी लिखने की गति पहले जैसी नहीं रही थी। वे अपने रचनाकाल के तीसरे युग में प्रवेश कर चुके थे। उद्दाम भावुकता पीछे छूट रही थी। वे अब वैज्ञानिक विवेचन और जीवन के व्यापक कैनवास को चित्रित करने का प्रयत्न कर रहे थे। इस समय बहुत थोड़ी रचनाएं प्रकाशित हुईं। दो-चार कहानियां और कुछ लेख। लेखों में 'वर्तमान हिन्दू-मुस्लिम समस्या' महत्त्वपूर्ण हैं, और कहानियों में 'हरिलक्ष्मी'। 'नवविधान' और 'पथेर दाबी' अभी भी धारावाहिक रूप में प्रकाशित हो रहे थे।

'पथेर दाबी' के लिखे जाने का इतिहास बहुत रोमांचकारी है। लगभग तीन वर्ष पूर्व सर आशुतोष मुकर्जी के लड़के उनके पास आए थे। वे 'बंगवाणी' का प्रकाशन करते थे। उनकी बड़ी इच्छा थी कि शरत्‌चन्द्र की रचनाएं उनकी पत्रिका में प्रकाशित हों। इसके लिए श्यामाप्रसाद मुकर्जी, रमाप्रसाद मुकर्जी और व्यवस्थापक कुमुदचन्द्र राय चौधरी छः महीने तक शिवपुर के चक्कर काटते रहे। परन्तु उन्हें एक कोई रचना नहीं मिल सकी। पर एक दिन सहसा क्या हुआ कि बाहर के कमरे में बैठे रमा बाबू मेज़ पर रखे कागज़ों को उलट-पुलट रहे थे कि उन्होंने 'पथेर दाबी' का अंश देखा। कुल सात-आठ पृष्ठ होंगे, परन्तु उनके उत्साह की कोई सीमा नहीं थी। बोले, ''यह रही रचना।''

शरत् बाबू ने उधर देखा और कहा, ''इसे तुम नहीं छाप सकोगे। तुम आशुतोष के बेटे हो।''

रमा बाबू ने पूछा, ''क्यों नहीं छाप सकूंगा ?''

शरत् बाबू बोले, ''क्योंकि यह भीषण रचना है।''

रमा बाबू ने कहा, ''मैं इसे छापूंगा। आपने इसे समाप्त कर लिया है ?''

शरत् बाबू ने उत्तर दिया, ''मैंने समझा था कि इसे छापने वाले नहीं मिलेंगे। इसीलिए आगे नहीं लिखा। तुम छापोगे तो लिखूंगा।''

उस दिन जो पन्ने मिले थे वे ही पहले अंक में छपे। उनकी यह रचना इतनी विद्रोहात्मक थी कि सरकार की दृष्टि से नहीं बच सकी। जैसे-जैसे यह 'बंगवाणी' में प्रकाशित होती रही वैसे-वैसे सरकार इसका अनुवाद कराती रही। लेकिन उस समय पब्लिक प्रॉसिक्यूटर के पद पर थे, श्री तारकनाथ साधु। वे स्वयं साहित्यिक थे। शरत्‌चन्द्र के प्रति उनके मन में बड़ी श्रद्धा थी। वे रमाप्रसाद मुकर्जी के भी मित्र थे। इसलिए उनको बराबर सूचना देते रहते थे।

यह उपन्यास वैसे तो कुछ 24 किस्तों में छपा, लेकिन शरत् बाबू तो इतने मनमौजी और इतने अनियमित थे कि बार-बार आग्रह करने पर भी इसके छपने में तीन वर्ष और तीन महीने लग गए। एक-एक अंक की सामग्री के लिए कुमुद बाबू को ही नहीं स्वयं श्यामाप्रसाद मुकर्जी और रमाप्रसाद मुकर्जी को भी दस-दस, बीस-बीस बार चक्कर लगाने पड़ते थे। उमाप्रसाद से शरत् बाबू का परिचय बाद में हुआ, पर स्नेह सबसे अधिक उन्हीं से था। जब जाते तो बातों का अन्त ही नहीं आता था। इनको भी बहुत बार खाली हाथ लौटना पड़ता था।

प्रकाशक जानते थे कि सरकार 'पथेर दाबी' को पुस्तक के रूप में नहीं छपने देगी। इसलिए उन्होंने एक खेल खेला। इसकी अन्तिम किस्त पर भी उन्होंने 'क्रमशः' लिख दिया। पुलिस ने समझा उपन्यास अभी समाप्त नहीं हुआ है। और इसी बीच में पुस्तक प्रकाशित हो गई।

पहले इस पुस्तक का प्रकाशन एम० सी० सरकार एण्ड सन्स के मालिक सुधीरचन्द्र सरकार करना चाहते थे। उन्होंने शरत् बाबू को इसलिए एक हजार रुपये पेशगी दिए थे। लेकिन जब सुधीरचन्द्र ने पूरा उपन्यास पढ़ा तो डर गए। उन्होंने वकील से परामर्श किया। जांच करने के बाद वकील ने कहा, ''ऐसे का ऐसा छापने पर राजद्रोह का मुकदमा निश्चय ही चल सकता है।''

सुधीरचन्द्र शरत् बाबू के पास गए और बोले, ''मेरा वकील कहता है कि इस उपन्यास को हूबहू छापने से हम विपत्ति में पड़ सकते हैं। उन्होंने पाण्डुलिपि में कई जगह निशान लगा दिए हैं। उन्हें यदि आप बदल दें तो अच्छा हो।''

सुनते ही शरत् बाबू बोल उठे, ''मैं एक शब्द भी नहीं बदलूंगा। कॉमा तक नहीं बदलूंगा। इच्छा हो तो छापो, नहीं तो मत छापो।''

''तब मेरे लिए छापना सम्भव नहीं होगा।''

''अच्छी बात है। मत छापो। तुम्हारा रुपया मैं लौटा दूंगा।''

उनके जाने के बाद रमा बाबू ने शरत् बाबू से कहा, ''यदि कोई और नहीं छापना चाहता तो मैं इसे छापूंगा।''

शरत् बाबू बोले, ''ठीक है, तुम ही छापो।''

प्रकाशन की समस्या सुलझी तो प्रेस वालों ने उसे छापने से इनकार कर दिया। अन्त में बहुत प्रयत्न करने पर काटन प्रेस में छपाई का प्रबन्ध हुआ। सब काम इस प्रकार करने थे कि किसीको पता न लगे। उधर तत्कालीन एडवोकेट जनरल श्री बी० एल० मित्र सरकार को राजद्रोह का मुकदमा चलाने की सलाह दे चुके थे। अब यह प्रश्न उठा कि प्रकाशक के स्थान पर किसका नाम दिया जाए। प्रेस में कापी जाने तक किशोरमोहन भट्टाचार्य का नाम जाने की बात थी। उस समय उमा प्रसाद मुकर्जी ने कहा, ''यदि राजद्रोह का मुकदमा चला, तो बेचारा गरीब आदमी मारा जाएगा। इसलिए मुकदमे का व्यय हम ही वहन करेंगे, नाम भी हमारा ही जाएगा।''

सरकार मुकदमा चलाने को उत्सुक थी, लेकिन पब्लिक प्रॉसीक्यूटर तारकनाथ साधु ने कहा, ''मुकदमा चलाने से पहले एक बार सोच लीजिए। इस पुस्तक के लेखक हैं बंगाल के लोकप्रिय कथाशिल्पी शरत्‌चन्द्र और प्रकाशक हैं स्वनामधन्य आशुतोष मुकर्जी के छोटे बेटे उमाप्रसाद मुकर्जी।''

सरकार सहसा कुछ निर्णय नहीं कर सकी। जानती थी कि शरत् बाबू इतने लोकप्रिय हैं और आशुतोष मुकर्जी का इतना मान है कि उनपर मुकदमा चलाने से विद्रोह की सम्भावना हो सकती है। तब पुस्तक और भी लोकप्रिय होगी।

इसी सोच-विचार में कई महीने बीत गए और तभी अचानक पता लगा कि पुस्तक प्रकाशित हो गई है। पहला संस्करण तीन हज़ार प्रतियों का छापा गया। जिसमें से एक हज़ार प्रतियां पहले ही दिन बिक गईं। शेष दो हज़ार को बिकते भी देर नहीं लगी। बीस दिन बाद जब सरकार ने यह निर्णय किया कि मुकदमा चलाने के स्थान

पर पुस्तक को ज़ब्त करना उचित होगा, तब तक उसकी एक भी प्रति शेष नहीं रही थी। तलाशी का वारण्ट लेकर जब पुलिस अधिकारी 'बंगवाणी' के कार्यालय में पहुंचे तो उन्हें कुछ भी नहीं मिला। अधिकारी ने पूछा, ''क्या यह संभव हो सकता है कि एक भी पुस्तक प्रेस में न हो।''

रमा बाबू ने उत्तर दिया, ''तलाशी ले लीजिए''

अधिकारी ने कहा, ''नहीं, हम तलाशी नहीं लेंगे। आप पर हमें विश्वास है। लेकिन एक कापी तो हमें दे ही दीजिए। आप जानते हैं कि हर नई छपनेवाली पुस्तक की तीन प्रतियां रजिस्ट्री करने के लिए भेजी जाती हैं।''

''जी हां, जानते हैं। तीस दिन के अन्दर ये प्रतियां भेजी जाती हैं, लेकिन आप तो बीस दिन के अन्दर ही आ गए ?''

पुलिस अधिकारी ने कहा, ''फिर भी एक प्रति तो हमें चाहिए ही।''

रमा बाबू ने इधर-उधर कई व्यक्ति भेजे। बड़ी कठिनता से छोटी बहन के घर एक प्रति मिल सकी। वही लेकर पुलिस वाले चले गए।

कई पुस्तक-विक्रेता ऐसे थे जिन्होंने कुछ पुस्तकें रोक ली थीं। बाद में उनकी एक-एक प्रति पचास रुपये तक में बिकी। मांग इतनी अधिक थी कि लोग एक प्रति के लिए 100 रुपये तक देने को तैयार थे। परन्तु दूसरा संस्करण निकालने का कोई प्रश्न नहीं था।

यह पुस्तक क्रांतिकारियों में भी बहुत लोकप्रिय हुई। वे इसे बाईबिल की तरह मानते थे। इस स्थिति का लाभ उठाकर एक व्यक्ति ने चोरी से एक बड़े ही रद्दी कागज़ पर इसे छापा। वह अशुद्धियों से भरी हुई थी। बाज़ार में वह कभी नहीं आई। केवल क्रांतिकारियों में ही बांटी गई। शरत्‌चन्द्र 'पथेर दाबी' का दूसरा भाग भी लिखना चाहते थे। वे दिखाना चाहते थे कि भारती भारत में आकर काम करती है। लेकिन यह सम्भव नहीं हो सका। 'बंगवाणी' में जब यह पुस्तक छप रही थी तो उसके सब अंकों को मिलाकर एक फाइल तैयार की गई थी। उसी फाइल को उमा बाबू ने एक दिन उनको देते हुए कहा, ''अपने हाथ से इसपर कुछ लिख दीजिए।''

व्यथा-भरे कण्ठ से शरत् बाबू ने उत्तर दिया, ''और क्या लिखूं ? मैं लिखूंगा और सरकार ज़ब्त कर लेगी। पराधीन देश में सच्चे मन से साहित्य-साधना करने में व्यथा ही मिलती है।''

लेकिन फिर भी मोटा फाउंटेन पेन अपने हाथ में लेकर वे सोचने लगे। दो क्षण बाद बोले, ''नहीं, कुछ नहीं लिख सकता।''

फिर धीरे-धीरे उनकी कलम चलने लगी। उसके पहले पन्ने पर उन्होंने बीच में उमाप्रसाद का नाम लिखा। उसके पास अपना नाम लिखा। नीचे अपनी जन्म-कुण्डली अंकित की। जन्मतिथि और जन्म का समय भी लिखा। फिर 'मृत्यु' शब्द लिखकर उसके आगे का स्थान खाली छोड़ दिया। और पन्ने के ऊपर तिरछी पंक्ति में लिखा--कुछ नहीं लिख सका। शरत्। 19 ज्येष्ठ, 1333। 'पथेर दाबी' का दूसरा भाग यदि मैं पूरा नहीं कर सका तो मेरे देश में कोई और करेगा। यही कामना करता हूं--शरत्

खाते के अन्तिम पन्ने पर लिखा--

जे फूल ना फूटिते, झरिल धरणीते

जो नदी मरुपथे हाराल धारा, जानि हे जानि ताओ हयनि हारा।

अस्फुट स्वर में यह गाना-गाते वह खाता उन्होंने उमा बाबू को दे दिया। वे कुछ नहीं लिख सके, लेकिन जो थोड़े-से शब्द उन्होंने लिखे वे कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। उस समय की उनकी मन:स्थिति को और उनके चिन्तन को वे स्पष्ट करते हैं। दासता की व्यथा उनके साहित्यकार को कितना साल रही थी।

इसके रचनाकाल में उमाप्रसाद से उनकी अनेक बार गम्भीर बातें होती थीं। प्रकाशक के जेल जाने की बहुत सम्भावना थी। शरत् बाबू ने एक दिन उनसे पूछा, ''यदि जेल हुई तो क्या करोगे ?''

उमा बाबू ने उत्तर दिया, ''जेल होगी तो अकेले प्रकाशक को नहीं होगी, लेखक को भी होगी। दोनों एक साथ ही जेल में रहेंगे। आपके साथ जेल में रहना मेरा सौभग्य होगा।''

शरत्‌चन्द्र ने सहसा गम्भीर होकर कहा, ''ऐसा करना जिससे मैं अपने हुक्के को साथ ले जा सकूं।''

दोनों बड़े ज़ोर से अट्टहास कर उठे, लेकिन जेल किसी को भी नहीं हुई। केवल पुस्तक ही ज़ब्त होकर रह गई। इस पुस्तक के लिखने में शरत् बाबू ने जिस कागज़ का प्रयोग किया था, वह अत्यन्त सुन्दर और लाइनदार था और उसपर शरत् बाबू का मोनोग्राम अंकित था--कच्चे नारियल की आकृति के मध्य में लिखा--शरत्। उतना ही मूल्यवान था वह पेन, जिससे उन्होंने उस उपन्यास को लिखा। 'बंगवाणी' के मालिकों ने विशेष रूप से उनके लिए ये दोनों वस्तुएं मंगाकर दी थीं। शरत् बाबू सदा ही सुन्दर कागज़ पर, सुन्दर और दामी कलम से, छोटे-छोटे मोती जैसे सुन्दर अक्षर लिखा करते थे। एक व्यक्ति ने उनसे पूछा, ''शरत् बाबू, आप इतने कीमती कलम और कागज़ का प्रयोग क्यों करते हैं ?''

शरत् बाबू ने तुरन्त जवाब दिया, ''मां सरस्वती ने मुझे प्रतिभा का जो इतना बड़ा वरदान दिया है, उसको क्या रद्दी कागज़ पर लिखकर नष्ट कर दूं ?''

जिस दिन वह पुस्तक प्रकाशित हुई उससे पहली रात शरत्‌चन्द्र, मुकर्जी लोगों के घर पर ही रहे। सारी रात जागकर उमाप्रसाद से वे नाना प्रकार की बातें करते रहे। सवेरा हुआ। इससे पूर्व कि मुद्रित पुस्तक प्रेस से आए, उमा बाबू उनके हाथ की लिखी हुई पूरी पाण्डुलिपि ले आए। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। बोले, ''इसे तुमने सहेजकर रखा हुआ है ! तुमने इतना किया ! मुझे दो, मैं तुम्हारे लिए इसपर कुछ लिखे देता हूं।''

और पाण्डुलिपि लेकर उसके पहले पन्ने पर उन्होंने सुन्दर अक्षरों में लिखा--बीजू, मेरे हाथ की लिखी हुई पुस्तक इसको छोड़कर और नहीं है। यह तुम्हारे पास ही रहेगी, ऐसा होने पर मैं निश्चिन्त रहूंगा।--दादा

भाद्र, 1333

(अगस्त, 1926 ई०)

इस पाण्डुलिपि के शीर्ष स्थान पर 'पथेर दाबी' लिखा है और अन्त में लिखा है--श्री शरत्‌चन्द्र चट्टोपाध्याय, सामताबेड़, 10 चैत्र, 1333 (24 मार्च, 1926ई०)

जिस समय 'पथेर दाबी' को सरकार ने ज़ब्त किया, उसी समय रेवरेण्ड जे० टी० सेण्डरलैण्ड रचित 'इण्डिया इन बांडेज' पुस्तक भी ज़ब्त की गई थी। इसके प्रकाशक थे, 'मार्डर्न रिव्यू' के संचालक स्वनामधन्य रामानन्द चट्टोपाध्याय। उन्होंने पुस्तक की ज़ब्ती के विरुद्ध दावा दायर कर दिया था। शरत् बाबू ने सोचा कि क्या वे भी ऐसा नहीं कर सकते, लेकिन उनके प्रिय मित्र श्री निर्मलचन्द्र 'चन्द्र' ने उनसे कहा, ''मैं आपको ऐसा करने की सलाह नहीं दूंगा।''

निर्मलचन्द्र जानते थे कि अदालत पर सरकार का प्रभाव है। वह कभी भी सरकार को हारने नहीं देगी। उनकी बात सही प्रमाणित हुई। रामानन्द बाबू मुकदमा हार गए। शरत् बाबू भी हार जाते। हारना स्वाभाविक ही था, क्योंकि इस पुस्तक के कारण सरकार को बहुत परेशानी उठानी पड़ी थी। उस वर्ष की सरकारी पुस्तक में 'पथेर दाबी' के संबंध में लिखा है, ''इस पुस्तक के लगभग हर पृष्ठ पर राजद्रोह का प्रबल प्रचार किया गया है।''

पुलिस कमिश्नर ने शरत् बाबू से कहा था, "शरत् बाबू, जानते हैं, 'पथेर दाबी' लिखकर आपने हमारी कितनी हानि की है ? जहां भी हम क्रांतिकारियों को पकड़ते हैं, वहीं देखते हैं कि हरेक के पास दो पुस्तकें हैं, एक गीता और दूसरी 'पथेर दाबी'। आपकी 'पथेर दाबी' ने क्रांतिकारियों को पागल बना दिया है।"

'पथेर दाबी' ने क्रांतिकारियों को ही नहीं तमाम बंगाल को पागल बना दिया था। उसकी लोकप्रियता की कल्पना नहीं की जा सकती। शरत् बाबू के उत्साह का भी कोई अन्त नहीं था। यदि सरकार पर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता तो इसके विरुद्ध जन-आन्दोलन तो किया ही जा सकता है, लेकिन यह आन्दोलन रवीन्द्रनाथ ठाकुर की सहायता के बिना सम्भव नहीं हो सकता। उन्होंने गुरुदेव को पत्र लिखा। तुरन्त उत्तर आया, "पुस्तक की एक प्रति भेज दो। पढ़कर ही कुछ कह सकूंगा।"

शरच्चन्द्र ने तुरन्त पुस्तक भेज दी। उसको पढ़कर रवीन्द्रनाथ ने अपना मत व्यक्त करते हुए एक लम्बा पत्र लिखा--

कल्याणयेषु

तुम्हारा 'पथेर दाबी' पढ़ लिया। पुस्तक उत्तेजक है, अर्थात् अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध पाठकों के मन को अप्रसन्न करती है। लेखक के कर्तव्य के हिसाब से वह दोष नहीं हो सकता। क्योंकि लेखक अंग्रेजी राज को खराब समझता है। वह चुप नहीं बैठ सकता। लेकिन चुप न बैठने पर जो विपद पैदा हो सकती है वह भी उसको स्वीकार करनी चाहिए। अंग्रेज़ी राज क्षमा कर देगा, इस अधिकार को लेकर हम उसकी निन्दा करें, यह भी कोई पौरुष की बात नहीं है। मैं नाना देशों में घूम आया हूं और जो कुछ जान सका हूं, उससे यही देखा है कि एकमात्र अंग्रेज़ी राज को छोड़कर स्वदेशी या विदेशी प्रजा के मौखिक या व्यावहारिक विरोध को और कोई भी राज्य उतने धैर्य के साथ सहन नहीं करता।

यदि हम अपनी ताकत पर नहीं, बल्कि दूसरे की सहिष्णुता की बदौलत विदेशी राज्य के संबंध में यथेच्छ व्यवहार दिखाने का साहस दिखाते हैं तो, वह पौरुष की विडम्बना-मात्र है। उसमें अंग्रेज़ी शासन के प्रति ही श्रद्धा झलकती है न कि अपने प्रति। राजशक्ति में पशुबल है, यदि कर्तव्य के आधार पर उसके विरुद्ध खड़ा भी होना पड़े तो दूसरे पक्ष में चारित्रिक ज़ोर का होना यानी आघात सहने का ज़ोर होना आवश्यक है। पर हम अंग्रेजी शासन से ही उस चारित्रिक ज़ोर की मांग करते हैं, अपने से नहीं। उससे प्रमाणित होता है कि हम मुंह से चाहे जो भी कहें पर अपने अनजान में हम अंग्रेज़ों की पूजा करते हैं और इस पूजा का अनुष्ठान हम इस तरह करते हैं कि अंग्रेज़ों को गालियां देकर हम उनसे सज़ा की आशंका नहीं करते। शक्तिमान की दृष्टि से देखा जाए तो तुम्हें कुछ न कहकर सिर्फ तुम्हारी पुस्तक को ज़ब्त कर लेना लगभग क्षमा करना है। कोई भी प्राच्य या पाश्चात्य विदेशी शासन ऐसा न करता। हम भारतीयों के हाथों में राजशक्ति होती तो हम क्या करते, इसका अनुमान हम अपने ज़मींदारों और भारतीय रजवाड़ों के व्यवहार से लगा सकते हैं।

पर इसीलिए लेखनी बन्द थोड़े ही करनी है। मैं भी यह नहीं कहता। मैं कह रहा हूं कि सज़ा स्वीकार करके ही लेखनी चलानी पड़ेगी। जिस किसी देश में राजशक्ति के साथ विरोध हुआ है, वहां ऐसा ही हुआ है। राजशक्ति का विरोध करते हुए आराम से नहीं रहा जा सकता। इस बात को असंदिग्ध रूप से जानकर ही ऐसा करना है। क्योंकि यदि तुम पत्रों में उनके राज्य के विरुद्ध लिखते तो उसका प्रभाव बहुत थोड़ा और बहुत कम समय के लिए होता। किन्तु तुम्हारे समान लेखक गल्प के रूप में ऐसी कथा लिखें तो उसका प्रभाव सदा ही होता रहेगा। देश और काल दोनों ही की दृष्टि से उसके प्रचार की कोई सीमा नहीं हो सकती। कच्ची उम्र के बालक-बालिकाओं से लेकर बूढ़ों तक पर उसका प्रभाव होगा। ऐसी अवस्था में अंग्रेज़ी राज्य यदि तुम्हारी पुस्तक का प्रचार बन्द न करे तो उससे यही समझा जा सकता है कि साहित्य में तुम्हारी शक्ति और देश में तुम्हारी प्रतिष्ठा के संबंध में उसे कोई ज्ञान नहीं है। शक्ति पर जब आघात किया है, तो प्रतिघात सहने के लिए तैयार रहना ही होगा। इसी कारण से उस आघात का मूल्य है। आघात की गुरुता को लेकर विलाप करने से उस आघात के मूल्य को एक बार ही मिट्टी कर देना होगा। इति।

27 माघ, 1333 (10 फरवरी, 1927 ई०)

तुम्हारा
रवीन्द्रनाथ ठाकुर

पत्र की भाषा, यद्यपि बहुत युक्तियुक्त है और परोक्ष में उन्होंने शरत्चन्द्र की प्रशंसा ही की है, परन्तु फिर भी उन दोनों के सोचने के दृष्टिकोण के अन्तर को यह पत्र स्पष्ट करता है। इसे पढ़कर शरत् बाबू की व्यथा का पार नहीं था। प्रतिवाद के अधिकार को वह किसी भी तरह छोड़ने का तैयार नहीं थे। बार-बार सोचते थे कि रवीन्द्रनाथ ने 'पथेर दाबी' पढ़कर अंग्रेज़ों की सहिष्णुता की प्रशंसा की है। मेरी पुस्तक पढ़कर यह मत किया है कि इसमें अंग्रेज़ों के प्रति विद्रोह की सम्भावना है। हमारे देश के कवि के समीप यदि वे इतने बड़े हैं तो फिर स्वाधीनता का यह आन्दोलन क्यों ? तब तो सबको मिलकर अंग्रेज़ों को कन्धे पर चढ़ाकर नाचते हुए घूमना चाहिए। हाय कवि, यदि तुम जानते कि तुम हमारी कितनी बड़ी आशा, कितना बड़ा गर्व हो तब निश्चय ही यह बात नहीं कह सकते थे। कवि की दृष्टि में मेरा 'पथेर दाबी' कितनी बड़ी लांछना का पत्र हुआ, यह मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। क्या मन लेकर मैंने यह किताब लिखी थी, यह मैं किसी को नहीं समझा सकूंगा।

इसी उत्तेजना में इस पत्र के उत्तर में उन्होंने कवि को जो पत्र लिखा उसके शब्द-शब्द से आक्रोश टपका पड़ता है। संयम जैसे हाथ से छूट गया है। अच्छा यही था कि यह पत्र उन्होंने तुरन्त ही नहीं भेज दिया शायद मन ही मन उन्हें ऐसा लगा जैसे उन्होंने यह पत्र लिखकर गलती की है। उन्होंने लिखा था--

श्रीचरणेषु,

आपका पत्र पाया। बहुत अच्छा, वही हो। यह पुस्तक मेरी लिखी हुई है, इसलिए दुख तो मुझे है, पर कोई खास बात नहीं है। आपने जो कर्तव्य और उचित समझा उसके विरुद्ध न तो मेरा कोई अभिमत है और न कोई अभियोग, पर आपकी चिट्ठी में जो दूसरी बातें आ गई हैं, उस अभिमत में मेरे मन में दो-एक प्रश्न हैं और कुछ वक्तव्य भी हैं। यदि तुकी ब तुर्की लगे तो वह भी आपकी ही शराफत के कारण समझिए। आपने लिखा है, 'अंग्रेज़ी राज्य के प्रति पाठकों का मन अप्रसन्न हो उठा है।' होने की बात थी, किन्तु यदि मैंने ऐसा किसी असत्य प्रचार के द्वारा करने की चेष्टा की होती तो लेखक के रूप में उससे मुझे लज्जा और अपराध दोनों ही महसूस होते। किन्तु जान-बूझकर मैंने ऐसा नहीं किया। यदि ऐसा करता तो वह राजनीतिज्ञों का धन्धा होता। कृति न होती। नाना कारणों से बंगला में इस तरह की पुस्तक किसी ने नहीं लिखी। मैंने जब लिखी है और उसे छपवाया है तो सब परिणाम जानकर ही किया है।

जब बहुत मामूली कारणों से भारत में सर्वत्र लोगों को बिना मुकदमे के अन्यायपूर्वक या न्याय का दिखावा करके कैद और निर्वासित किया जा रहा है तो मुझे छुट्टी मिलेगी यानी राजपुरुष मुझे क्षमा करेंगे यह दुराशा मेरे मन में नहीं थी, आज भी नहीं है। किन्तु बंगाल देश के लेखक के हिसाब से पुस्तक में यदि मिथ्या का आश्रय नहीं लिया है एवं उसके कारण ही यदि राजरोष भोग करना होगा तो करना ही होगा। चाहे वह मुंह लटकाकर किया जाए या रोकर किया जाए। किन्तु क्या इससे प्रतिवाद करने का प्रयोजन खत्म हो जाता है ?

राजबन्दी जेल में दूध-मक्खन नहीं पाते। चिट्ठी लिखकर पत्रों में शोर करने में मुझे लज्ज़ा आती है, किन्तु मोटे चावल के बदले में जेल के अधिकारी यदि घास का प्रबन्ध करते हैं तब हो सकता है लाठी की चोट से उसे चबा सकूं, किन्तु जब तक घास के कारण गला बन्द नहीं हो जाता तब तक उसे अन्याय कहकर प्रतिवाद करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूं।

किन्तु पुस्तक मेरे अकेले की ही लिखी हुई है, इसलिए मेरा अकेले का ही दायित्व है, जो कुछ कहना मैंने उचित समझा वह कहा या नहीं, असली बात तो यही है। अंग्रेज़ी राज्य की क्षमाशीलता के प्रति मेरी कोई निर्भरता नहीं है। मेरी सारी साहित्य-सेवा इसी प्रकार की है। जो मैं ठीक समझता हूं, वही लिखता हूं।

मेरा प्रश्न यह है कि अंग्रेज़ी राज्यशक्ति द्वारा उस पुस्तक को ज़ब्त करने का औचित्य यदि है तो पराधीन भारतवासियों द्वारा प्रतिवाद करने का भी वैसा ही औचित्य है। मेरे प्रति आपने यही अविचार किया है कि मैं दण्ड के भय से प्रतिवाद करना चाहता हूं और उस प्रतिवाद के पीछे ही अपने को बचाना चाहता हूं। किन्तु वह वास्तविकता नहीं है। देशवासी यदि प्रतिवाद नहीं करते तो मुझे करना होगा, लेकिन वह सब शोर मचाकर नहीं करूंगा, एक और पुस्तक लिखकर करूंगा।

आप यदि केवल मुझे यह आदेश देते कि इस पुस्तक का प्रचार करने से देश का सचमुच अमंगल होगा तो मुझे सांत्वना मिलती। मनुष्य से भूल होती है। सोच लेता कि मुझसे भी भूल हुई है। मैने किसी रूप में विरुद्ध भाव लेकर आपको यह पत्र नहीं लिखा। जो मन में आया आपको स्पष्ट रूप से लिख दिया। मैं सचमुच रास्ता खोजता हुआ घूम रहा हूं, इसलिए सब कुछ छोड़-छाड़कर निर्वासित हो गया हूं। इसमें कितना पैसा, कितनी शक्ति, कितना समय वर्वाद हुआ वह किसीको बताने से क्या ? ...आपके अनेक भक्तों में मैं भी एक हूं, इसलिए बातचीत से या आचरण से आपको तनिक भी कष्ट पहुंचाने की बात मैं सोच भी नहीं सकता। इति।

2 फाल्गुन, 1333

सेवक
श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

यह पत्र लिखने से पूर्व शरत् बाबू ने उमाप्रसाद मुकर्जी को भी एक पत्र लिखा था। उसमें उन्होंने अपनी वेदना को छिपाया नहीं था। उसे पढ़कर उमा बाबू सामताबेड़ आए। उन्होंने यह पत्र पढ़ा और निर्णय किया कि इसे गुरुदेव के पास नहीं भेजा जा सकता। उस पत्र को उन्होंने अपने पास रख लिया। दो दिन बाद शान्त होने पर स्वयं शरत्चन्द्र ने भी कहा, "यह वाद-विवाद ठीक नहीं। मेरी चिट्ठी भेजने की आवश्यकता नहीं।" उन्होंने उमा बाबू से यह भी कहा कि वे इन पत्रों की चर्चा किसी से न करें। लेकिन वे स्वयं ही चुप न रह सके। अनेक सभाओं और अनेक पत्रों में इसकी चर्चा उन्होंने की है। श्रीमती राधारानी देवी को उन्होंने लिखा--

"...एक बात तुमको बताता हूं। किसी से कहना मत। 'पथेर दाबी' जब ज़ब्त हो गया था तब रवि बाबू के पास जाकर कहा कि यदि आप प्रतिवाद करेंगे तो काम होगा। पृथ्वी के लोग जान सकेंगे कि सरकार किस तरह साहित्यिकों के साथ विचार करती है। अवश्य ही मेरी किताब संजीवित नहीं होगी। अंग्रेज़ ऐसे पात्र नहीं हैं। तब भी संसार के लोग जान तो लेंगे। उनको किताब दे आया। उन्होंने जवाब में लिखा, 'पृथ्वी में घूमकर देखा है। अंग्रेजों की राजशक्ति के समान सहिष्णु और क्षमाशील राजशक्ति और नहीं है। तुम्हारी पुस्तक पढ़कर पाठकों का मन अंग्रेज़ी सरकार के प्रति अप्रसन्न हो उठेगा। तुम्हारी पुस्तक को ज़ब्त करके तुमको कुछ नहीं कहा। प्रायः क्षमा ही कर दिया। इसी क्षमा के ऊपर निर्भर करके गवर्नमेंट की निन्दा करना साहस की विडम्बना है।'

"सोच सकती हो, बिना अपराध कोई किसी के प्रति इतना कटु हो सकता है ? यह चिट्ठी उन्होंने छपने के लिए दी थी। किन्तु मैंने छपने नहीं दिया। इसलिए कि कवि का इतना बड़ा सर्टिफिकेट सभी, 'स्टेट्समैन' आदि अंग्रेज़ी के पत्र प्रकाशित कर देंगे और यह जो हमारे देश के लड़के बिना विचारे जेल में बंद कर दिए गए हैं इनको लेकर जो आन्दोलन हो रहा है वह निष्फल हो जाएगा।"

उस समय बंगाल लाइब्रेरी एसोसिएशन का पहला अधिवेशन होने वाला था। अविनाशचन्द्र घोषाल व्यवस्थापकों में से एक थे और वह थे शरत्चन्द्र के परम भक्त। इसी नाते वे शरत्चन्द्र को निमंत्रण देने के लिए आए। पर उनके मन और मस्तिष्क पर तो 'पथेर दाबी' छाया हुआ था। बातचीत करते-करते सहसा अनमने हो उठे और बोले, "अच्छा, तुम्हारा यह तो सारे बंगाल के पुस्तकालयों का काम है। तुम एक काम करो न, और वह तुम्हारा ही तो काम है। 'पथेर दाबी' को मुक्त कराने के लिए सभा में एक प्रस्ताव पास करा सकते हो ? प्रकाश रूप में सभा से प्रतिवाद होने पर बहुत काम होगा। सरकार भी कुछ झुकेगी। वह अगर मेरी पांच और किताबें ज़ब्त कर लेती तो मुझे इतना दुख न होता।"

उनकी इच्छानुसार ऐसा ही किया गया। यही नहीं प्रान्त के अनेक विशिष्ट व्यक्तियों ने भी इस निषेध आज्ञा को लेकर तीव्र भाषा में सरकार की निन्दा की। लेकिन उसका कोई परिणाम नहीं निकला। हां, एक दिन एक अधिकारी ने उन्हें बुलाकर कहा, "तुम सरकार की ओर से 'पथेर दाबी' के समान एक पुस्तक लिख दो। खूब पैसा मिलेगा।"

शरत् बाबू ने उत्तर दिया, "साहब ! बचपन मैंने पतंग उड़ाकर और लट्टू घुमाकर काट दिया और जवानी काट दी गांजा आदि पीकर। उसके बाद रंगून जाकर नौकरी की। अब 'चार अध्याय' लिखने की उम्र नहीं है। क्षमा करें।"

इस घटना के न जाने कितने रूप प्रचलित हो गए थे। शायद उन्होंने कहा था, "साहब, मेरे जीवन के तीन अध्याय बीत गए हैं। बचपन में देवदास था, यौवन में जीवानन्द, प्रौढ़ावस्था में आशु बाबू, अब चौथा अध्याय जोड़ने की इच्छा नहीं है।"

शायद यह घटना बिलकुल ही सही नहीं है। उनके जीवन में किवदंतियां जैसे पेवस्त हो गई थीं वैसी ही एक किवदंती यह भी हो सकती है। क्योंकि वे कविगुरु से चाहे कितने भी अप्रसन्न हों, उनकी निन्दा इस सीमा तक कभी नहीं कर सकते थे कि उनकी रचनाओं का मखौल उड़ाएं और वह भी एक विदेशी अधिकारी के सामने। 'चार अध्याय' रवि बाबू का सुप्रसिद्ध उपन्यास है।

'पथेर दाबी' के साथ और भी अनेक कहानियां जुड़ी हैं। उसके कारण जेल जाने की सम्भावना बहुत दिन तक बनी रही। एक समय तो स्थिति बहुत गम्भीर हो गयी थी। किसी भी क्षण पकड़े जा सकते थे। वे जानते थे कि जेल जाने पर अफ़ीम खाने की सुविधा नहीं मिल सकती। इसलिए एक दिन उन्होंने निश्चय किया कि अब अफ़ीम नहीं खाऊंगा।

लेकिन शीघ्र ही उन्हें ज्वर रहने लगा। धीरे-धीरे तीन सप्ताह बीत गए, ज्वर था कि उतरता ही नहीं था। डाक्टर बहुत चिन्तित हुए लेकिन तभी कारण की खोज करते-करते उन्हें पता लगा कि शरत् बाबू ने अफीम खाना छोड़ दिया है। जो व्यक्ति दिन में कई बार चने (?) के बराबर गोली बनाकर अफीम खाता हो, वही अचानक उसे छोड़ दे तो आश्चर्य ही कहा जा सकता है। डाक्टर ने पूछा, "अफीम खाना आप ने कब से छोड़ा है ?"

उत्तर दिया बड़ी बहू ने। बोली, "लगभग एक महीना बीत गया।"

डाक्टर ने कहा, "हमारे शास्त्र में इसे 'ओपियम फीवर' कहते हैं। दवा के साथ-साथ धीरे-धीरे जब अफीम की मात्रा बढ़ाई जायेगी तभी बुखार उतरेगा। अफीम

छोड़ने की भी एक विधि होती है। आप यदि सचमुच छोड़ना चाहते हैं तो उस विधि का पालन कीजिए।"

लेकिन उसका पालन करना शरत् बाबू के लिए सम्भव नही था। बुखार उतर गया, परन्तु अफीम नहीं छूटी। एक बार बर्मा में भी ऐसा करके देख चुके थे। लगता है कि देशबन्धु के साहचर्य तथा प्रसिद्धि बढ़ने के साथ-साथ उन्हें अपने पुराने जीवन से ग्लानि हो चली थी। क्योंकि बड़े दुखी मन से एक दिन उन्होंने अपने मामा से कहा था, "देख, यह नशा करके मैंने कैसी भूल की है। जब अफीम नहीं खाता था, तब पृथ्वी का सब कुछ खूब स्वच्छ और सुन्दर दिखाई देता था। यदि मैं नशा न करता तो इससे कहीं बड़ा लेखक हो सकता था।"

इसके विपरीत बातें भी वे कई बार कर चुके थे। एक बार किसीने उनसे पूछा भी था, "दादा, उस दिन आपने यह बात इस प्रकार कही थी, आज उसके बिलकुल विपरीत कह रहे हैं ?"

किंचित् कठोर स्वर में उत्तर दिया, "बात मेरी है। किस प्रकार कहना चाहिए, यह मेरा अधिकार है।"

ऐसे अवसरों पर उनकी परिहास-वृत्ति कुछ अधिक गम्भीर हो उठती थी। लेकिन साहित्यकार सदा ही विनोद करने की स्थिति में नहीं रहता। पाठकों में लोकप्रियता पा लेने पर उसे सचमुच गम्भीर प्रश्नों का सामना करना पड़ता है। 'पथेर दाबी' की रचना-प्रक्रिया और प्रेरणा के संबंध में न जाने कितने प्रश्न उनसे पूछे जाते थे--"दादा, आपको इस उपन्यास की प्रेरणा कहां से मिली ? दादा, इस उपन्यास का नायक कौन है ? भारती कौन है ? इत्यादि, इत्यादि।"

ये सभी प्रश्न अर्थहीन हैं। लेखक की अभिज्ञता का अर्थ यह नहीं है कि वह सदा ही किसी जीवित व्यक्ति को लक्ष्य में रखकर अपने पात्रों की सृष्टि करता है। उन दिनों उनका संबंध राजबन्दियों और क्रान्तिकारियों से बहुत घनिष्ठ हो उठा था। बहुत पहले पीनांग में भी वे किसी क्रान्तिकारी से मिले थे। सम्भवतः उनके सामूहिक गुणों को देखकर ही उन्होंने 'सव्यसाची' की सृष्टि की थी। किसी एक व्यक्ति को उसमें ढूंढ़ना व्यर्थ है।

लेकिन 'पथेर दाबी' में रंगून के विभिन्न स्थानों और उसके निवासियों का जो चित्रण हुआ है, यह सचमुच यथार्थ है। चन्दन नगर की आलोचना सभा में उन्होंने स्वीकार किया था--"समस्त द्वीपों में सुमात्रा, जावा तथा बोर्नियो आदि में घूमता फिरता था।" वहां के अधिकांश लोग अच्छे नहीं हैं। तस्कर हैं। उन्होंने बर्मा में भी कोकीन का गुप्त व्यापार करनेवाले एक दल की बात सुनी थी। उसकी संचालिका एक नारी थी। वही उनकी सुमित्रा की सृष्टि का कारण बनी। इसी प्रकार इस सारी अभिज्ञता का फल है 'पथेर दाबी'। घर में बैठकर और आरामकुर्सी पर पड़े रहकर साहित्य की सृष्टि नहीं होती। हां, नकल की जा सकती है। किसी ने बंकिमचन्द्र के 'आनन्द मठ' से 'पथेर दाबी' की तुलना करते हुए कहा है कि बंकिमचन्द्र के 'आनन्द मठ' में न आदर्श विद्रोह है, न विप्लव न अराजकता। वह स्वदेश पूजा का शास्त्र है, परन्तु उसमें परजाति का विद्वेष है। 'पथेर दाबी' में पथ का संकेत नहीं है। वह मार्ग में ही समाप्त हो जाता है। शरत् 'जो है' के कलाकार हैं। कल्पना के सहारे आदर्श का निर्माण नहीं करते। यथार्थ को स्वर देते हैं।

परन्तु क्या यह भी सच नहीं है कि 'आनन्द मठ' में जो परजाति विद्वेष दिखाई देता है यह जानबूझकर नहीं है। यह विद्वेष शासक के प्रति है और यह मात्र संयोग ही है कि शासन परजाति का है। इसके अतिरिक्त 'पथेर दाबी' में क्रान्तिकारी का जो चित्र उपस्थित किया जाता है, बहुतों के समीप वह सजीव होकर भी पूर्ण नहीं है। कला की दृष्टि से भी 'पथेर दाबी' का स्थान उनके अपने अनेक उपन्यासों से नीचे है। मनोवेगों का वह घात-प्रतिघात जो शरत्-साहित्य की विशेषता है, इसमें कहां है ? और कहां है वह संयम जो 'चरित्रहीन' की सावित्री में है। मात्र डाक्टर या कुछ और गौण पात्र ही इस दृष्टि से उभर सके हैं।

वस्तुतः 'पथेर दाबी' का महत्त्व कला या चरित्र-सृष्टि के संयम में उतना नहीं हैं, जितना राजनीतिक जीवन के एक अछूते पहलू को सजीव रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा में है। चेष्टा प्रायः ही सायास होती है। यह सायासता ही इसकी दुर्बलता है। किन्तु फिर भी अपनी समस्त दुर्बलताओं के बीच में 'पथेर दाबी' के सव्यसाची का निर्मल चरित्र भारत के जन-मन को सदा आकर्षित और प्रभावित करता रहेगा। ❑ ❑

('आवारा मसीहा' से साभार)

(पृष्ठ 29 का शेष)

युद्ध चलता रहेगा। इसमें छोटी-छोटी बातों पर ध्यान नहीं दिया जाएगा। बहुत संभव है कि यह युद्ध भयंकर स्वरूप धारण कर ले। यह उस समय तक समाप्त नहीं होगा, जब तक कि समाज का वर्तमान ढांचा समाप्त नहीं हो जाता। प्रत्येक व्यवस्था में परिवर्तन या क्रान्ति नहीं हो जाती और सृष्टि में एक नवीन युग का सूत्रपात नहीं हो जाता।

निकट भविष्य में यह युद्ध अंतिम रूप में लड़ा जाएगा और तब यह निर्णायक युद्ध होगा। साम्राज्यवाद एवं पूंजीवाद कुछ समय के मेहमान हैं। यही वह युद्ध है, जिसमें हमने प्रत्यक्ष रूप में भाग लिया है। हम इसके लिए अपने पर गर्व करते हैं कि इस युद्ध को न तो हमने प्रारम्भ ही किया है और न यह हमारे जीवन के साथ समाप्त ही होगा। हमारी सेवाएं इतिहास के उस अध्याय के लिए मानी जाएंगी, जिसे यतीन्द्रनाथ दास और भगवतीचरण के बलिदानों ने विशेष रूप में प्रकाशमान कर दिया है। इनके बलिदान महान हैं।

जहां तक हमारे भाग्य का सम्बन्ध है, हम बलपूर्वक आपसे यह कहना चाहते हैं कि आपने हमें फांसी पर लटकाने का निर्णय कर लिया है, आप ऐसा करेंगे ही। आपके हाथों में शक्ति है और आपको अधिकार भी प्राप्त है, परन्तु इस प्रकार आप 'जिसकी लाठी उसी की भैंस' वाला सिद्धांत ही अपना रहे हैं और उस पर कटिबद्ध हैं। हमारे अभियोग की सुनवाई इस वक्तव्य को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि हमने कभी कोई प्रार्थना नहीं की, और अब भी हम आपसे किसी प्रकार की दया की प्रार्थना नहीं करते। हम आपसे केवल यह प्रार्थना करना चाहते हैं कि आपकी सरकार के ही एक न्यायालय के निर्णय के अनुसार हमारे विरुद्ध युद्ध जारी रखने का अभियोग है।

इस स्थिति में हम युद्धबन्दी हैं और इसी आधार पर हम आपसे मांग करते हैं कि हमारे प्रति युद्धबन्दियों जैसा ही व्यवहार किया जाए--हमें फांसी देने के बदले गोली से उड़ा दिया जाए।

अब यह सिद्ध करना आपका काम है कि आपको उस निर्णय में विश्वास है, जो आपकी सरकार के एक न्यायालय ने दिया है। आप अपने कार्य द्वारा इस बात का प्रमाण दीजिए। हम विनयपूर्वक आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप अपने सेना-विभाग को आदेश दें कि हमें गोली से उड़ाने के लिए एक सैनिक टोली भेज दी जाये।

भवदीय

भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव ❑ ❑

(वीरेन्द्र सिन्धु द्वारा सम्पादित 'भगतसिंह : पत्र और दस्तावेज' से साभार)

फाँसी की कोठरी से अमर शहीद बिस्मिल के स्मरणीय उद्‌गार

[अमर शहीद पं. रामप्रसाद 'बिस्मिल' ने जो आत्मकथा फाँसी की कोठरी में लिखी थी, उसमें उन्होंने अपने साथी अमर शहीद अशफ़ाक़ उल्ला खाँ के सम्बन्ध, में बहुत ही प्रेरणाप्रद वर्णन किया है, जो यहाँ उद्धृत है।]

मुझे भलीभाँति याद है, जब मैं बादशाही ऐलान के बाद शाहजहाँपुर आया था, तो तुमसे स्कूल में भेंट हुई थी। तुम्हारी मुझसे मिलने की बड़ी हार्दिक इच्छा थी। तुमने मुझसे मैनपुरी षड्यन्त्र के सम्बन्ध में कुछ बातचीत करनी चाही थी। मैंने यह समझकर कि स्कूल का एक मुसलमान विद्यार्थी मुझसे इस प्रकार की बातचीत क्यों करता है, तुम्हारी बातों का उत्तर उपेक्षा की दृष्टि से दे दिया था। तुम्हें उस समय बड़ा खेद हुआ था। तुम्हारे मुख से हार्दिक भावों का प्रकाश हो रहा था। तुमने अपने इरादे को यों ही नहीं छोड़ दिया, अपने निश्चय पर डटे रहे। जिस प्रकार हो सका, कांग्रेस में बातचीत की। अपने इष्टमित्रों द्वारा इस बात का विश्वास दिलाने की कोशिश की कि तुम बनावटी आदमी नहीं, तुम्हारी कोशिशों ने मेरे दिल में जगह पैदा कर ली। तुम्हारे बड़े भाई उर्दू मिडिल के सहपाठी तथा मित्र थे, यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

थोड़े दिनों में ही तुम मेरे छोटे भाई के समान हो गये थे, किन्तु छोटे भाई बनकर तुम्हें सन्तोष न हुआ। तुम समानता के अधिकार चाहते थे, तुम मित्र की श्रेणी में अपनी गणना चाहते थे। वही हुआ। तुम सच्चे मित्र बन गये।

सबको आश्चर्य था कि एक कट्टर आर्य समाजी और मुसलमान का मेल कैसा ? मैं मुसलमानों की शुद्धि करता था। आर्यसमाज मन्दिर में मेरा निवास था, किन्तु तुम इन बातों की किंचित्‌मात्र चिन्ता न करते थे। मेरे कुछ साथी तुम्हारे मुसलमान होने के कारण कुछ घृणा की दृष्टि से देखते थे, किन्तु तुम अपने निश्चय में दृढ़ थे। मेरे पास आर्यसमाज मन्दिर में आते-जाते थे। हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा होने पर, तुम्हारे मुहल्ले के सब कोई तुम्हें खुल्लमखुला गालियाँ देते थे, काफ़िर के नाम से पुकारते थे, पर तुम कभी भी उनके विचारों से सहमत न हुए। सदैव हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के पक्षपाती रहे।

तुम एक सच्चे मुसलमान तथा सच्चे स्वदेशभक्त थे। तुम्हें यदि जीवन में कोई विचार था तो यही कि मुसलमानों को खुदा अक्ल देता कि वे हिन्दुओं के साथ मिलकर हिन्दोस्तान की भलाई करते। जब मैं हिन्दी में कोई लेख या पुस्तक लिखता तो तुम सदैव यही अनुरोध करते कि उर्दू में क्यों नहीं लिखते, जो मुसलमान भी पढ़ सकें। तुमने स्वदेशभक्ति के भावों को भली-भाँति समझने के लिए ही हिन्दी का अच्छा अध्ययन किया। अपने घर पर जब माताजी तथा भ्राताजी से बातचीत करते थे, तो तुम्हारे मुँह से हिन्दी शब्द निकल जाते थे, जिससे सबको बड़ा आश्चर्य होता था।

तुम्हारी इस प्रकार की प्रवृत्ति देखकर बहुतों को सन्देह होता था कि कहीं इस्लाम धर्म त्यागकर शुद्धि न करा लो। पर तुम्हारा हृदय तो किसी प्रकार अशुद्ध न था, फिर तुम शुद्धि किस वस्तु की कराते ? तुम्हारी इस प्रकार की प्रगति ने मेरे हृदय पर पूर्ण विजय पा ली। बहुधा मित्रमण्डली में बात छिड़ती कि कहीं मुसलमान पर विश्वास करके धोखा न खाना। तुम्हारी जीत हुई, मुझमें तुममें कोई भेद न था। बहुधा मैंने तुमने एक थाली में भोजन किये। मेरे हृदय से यह विचार ही जाता रहा कि हिन्दू-मुसलमान में कोई भेद है। तुम मुझ पर अटल विश्वास तथा अगाध प्रीति रखते थे। हाँ, तुम मेरा नाम लेकर नहीं पुकार सकते थे। तुम तो मुझे सदैव 'राम' कहा करते थे। एक समय जब तुम्हें हृदय-कम्प (palpitation of heart) का दौरा हुआ, तुम अचेत थे, तुम्हारे मुँह से बारम्बार 'राम हाय राम' शब्द निकल रहे थे। पास खड़े हुए भाई-बान्धवों को आश्चर्य था कि 'राम-राम' कहता है। कहते कि 'अल्लाह अल्लाह' कहो, पर तुम्हारी 'राम राम' की रट थी। उसी समय किसी मित्र का आगमन हुआ, जो 'राम' के भेद को जानते थे। तुरन्त मैं बुलाया गया। मुझसे मिलने पर तुम्हें शान्ति हुई। तब सब लोग 'राम राम' के भेद को समझे।

रामप्रसाद बिस्मिल

चित्र : दुर्गादत्त पाण्डेय

अन्त में इस प्रेम, प्रीति तथा मित्रता का परिणाम क्या हुआ ? मेरे विचारों के रंग में तुम भी रंग गये। तुम भी एक कट्टर क्रान्तिकारी बन गये। अब तो तुम्हारा दिन-रात प्रयत्न यही था कि जिस प्रकार हो, मुसलमान नवयुवकों में भी क्रान्तिकारी भावों का प्रवेश हो, वे भी क्रान्तिकारी आन्दोलन में योग दें। जितने तुम्हारे-बन्धु तथा मित्र थे, सब पर तुमने अपने विचारों का प्रभाव डालने का प्रयत्न किया। बहुधा क्रान्तिकारी सदस्यों को भी बड़ा आश्चर्य होता कि मैंने कैसे एक मुसलमान को क्रान्तिकारी दल का प्रतिष्ठित सदस्य बना लिया। मेरे साथ तुमने जो कार्य किये, वे सराहनीय हैं। तुमने कभी भी मेरी आज्ञा की अवहेलना न की। एक आज्ञाकारी भक्त के समान मेरी आज्ञापालन में तत्पर रहते थे। तुम्हारा हृदय बड़ा विशाल था। तुम्हारे भाव बड़े उच्च थे।

मुझे यदि शान्ति है तो यही कि तुमने संसार में मेरा मुख उज्ज्वल कर दिया। भारत के इतिहास में यह घटना भी उल्लेखनीय हो गयी कि अशफ़ाक़ उल्ला ने क्रान्तिकारी आन्दोलन में योग दिया। अपने भाई-बन्धु तथा सम्बन्धियों के समझाने पर कुछ भी ध्यान न दिया। गिरफ्तार हो जाने पर भी अपने विचारों में दृढ़ रहे। जैसे तुम शारीरिक बलशाली थे, वैसे ही मानसिक वीर तथा आत्मा से उच्च सिद्ध हुए। इन सबके परिणास्वरूप अदालत में तुमको मेरा सहकारी (लेफ्टिनेण्ट) ठहराया गया, और जज ने मुकदमें का फैसला लिखते समय तुम्हारे गले में जयमाल (फाँसी की रस्सी) पहना दी। प्यारे भाई, तुम्हें यह समझकर सन्तोष होगा कि जिसने अपने माता-पिता की धनसम्पत्ति को देशसेवा की भेंट कर दिया, जिसने अपना तन-मन-सर्वस्व मातृसेवा में अर्पण करके अपना अन्तिम बलिदान भी दे दिया, उसने अपने प्रिय सखा अशफ़ाक़ को भी उसी मातृभूमि की भेंट चढ़ा दिया :--

'असगर' हरीमें इश्क में हस्ती ही जुर्म है।
रखना कभी न पाँव यहाँ सर लिये हुए।।

अन्तिम इच्छा : हिन्दू-मुस्लिम एकता

परमात्मा ने मेरी पुकार सुन ली और मेरी इच्छा पूरी होती दिखायी देती है। मैं तो अपना कार्य कर चुका। मैंने मुसलमानों में से एक नवयुवक निकालकर भारतवासियों को दिखला दिया, जो सब परीक्षाओं में पूर्णतया उत्तीर्ण हुआ। अब किसी को यह कहने का साहस न होना चाहिये कि मुसलमानों पर विश्वास न करना चाहिये। पहला तजर्बा था, जो पूरी तौर से कामयाब हुआ। अब देशवासियों से यही प्रार्थना है कि यदि वे हम लोगों को फाँसी पर चढ़ने से ज़रा भी दुखित हुए हों, तो उन्हें यही शिक्षा लेनी चाहिये कि हिन्दू-मुसलमान तथा सब-राजनीतिक दल एक होकर कांग्रेस को अपना प्रतिनिधि मानें। जो कांग्रेस तय करे, उसे सब पूरी तौर से मानें और उस पर अमल करें। ऐसा करने के बाद वह दिन बहुत दूर न होगा जबकि अंग्रेजी सरकार को भारतवासियों की माँग के सामने सिर झुकाना पड़े और यदि ऐसा करेंगे तब तो स्वराज्य कुछ दूर नहीं, क्योंकि फिर तो भारतवासियों को काम करने का पूरा मौका मिल जायेगा। हिन्दू-मुस्लिम एकता ही हम लोगों की यादगार तथा अन्तिम इच्छा है, चाहे वह कितनी कठिनता से क्यों न प्राप्त हो। जो मैं कह रहा हूँ, वही श्री अशफ़ाक उल्ला खाँ वारसी का भी मत है, क्योंकि अपील के समय हम दोनों लखनऊ जेल में फाँसी की कोठरियों में आमने-सामने कई दिन तक रहे थे। आपस में हर तरह की बातें हुई थीं। गिरफ्तारी के बाद से हम लोगों की सज़ा पढ़ने तक श्री अशफ़ाक़ उल्ला खाँ की बड़ी उत्कट इच्छा यही थी कि वह एक बार मुझसे मिल लेते, जो परमात्मा ने पूरी कर दी।

श्री अशफ़ाक़ उल्ला खाँ तो अंग्रेजी सरकार से दया-प्रार्थना करने पर राज़ी ही न थे। उनका तो अटल विश्वास यही था कि खुदाबंद करीम के अलावा किसी दूसरे से दया की प्रार्थना न करनी चाहिये, परन्तु मेरे विशेष आग्रह से ही उन्होंने सरकार से दया-प्रार्थना की थी। इसका दोषी मैं ही हूँ, जो मैंने अपने प्रेम के पवित्र अधिकारों का उपयोग करके श्री अशफ़ाक उल्ला खाँ को उनके दृढ़ निश्चय से विचलित किया। मैंने एक पत्र द्वारा अपनी भूल स्वीकार करते हुए भ्रातृद्वितीया के अवसर पर गोरखपुर जेल से श्री अशफ़ाक को पत्र लिखकर क्षमा-प्रार्थना की थी। परमात्मा जाने कि वह पत्र उनके हाथों तक पहुँचा भी या नहीं। खैर, परमात्मा की ऐसी ही इच्छा थी कि हम लोगों को फाँसी दी जाये, भारतवासियों के जले हुए दिलों पर नमक पड़े, वे बिलबिला उठें और हमारी आत्माएँ उनके कार्य को देखकर सुखी हों, जब हम-नवीन शरीर धारण करके देशसेवा में योग देने को उद्धत हों, उस समय भारतवर्ष की राजनीतिक स्थिति पूर्णतया सुधरी हुई हो। जनसाधारण का अधिक भाग सुशिक्षित हो जाये। ग्रामीण लोग भी अपने कर्तव्य समझने लग जायें।

देशवासियों से यही अन्तिम विनय है कि जो कुछ करें, सब मिलकर करें, और सब देश की भलाई के लिए करें। इसी से सबका भला होगा,

मरते 'बिस्मिल' 'रोशन' 'लहरी' 'अशफ़ाक' अत्याचार से।
होंगे पैदा सैकड़ों इनके रुधिर की धार से।। ❑❑

(पृष्ठ 143 का शेष)

क्योंकि जब तक वह इस तरह बयान न करेंगे, तब तक क़ानून में उनकी बात 'कुछ नहीं' के बराबर है। अक्सर गवाहान ऐसे मौक़ों पर अपने दुश्मनों से दुश्मनी भी निकालने की कोशिश करते हैं। इस तरह से इस जुर्म में ज़्यादातर कुछ बेगुनाह भी लपेट में आ जाते हैं। अगर बेगुनाह न भी हों तो भी एक की ग़लती से डाके में ख़ून हो जाय और डाकुओं की इसकी नीयत ज़रा भी न रही हो तो सभी इस सज़ा को पा सकते हैं, इसलिए जिन जुर्मों में बेगुनाहों के फँसने का अन्देशा हो, उनमें इस सज़ा का रखना मुनासिब नहीं है। मेरी सरकारी वकालत के ज़माने में ऐसी ही कोई न कोई बात हो गई होगी जिसकी वजह से कोई बेगुनाह फाँसी पा गया हो तो उसका ज़िम्मेदार भला मै कैसे हो सकता हूँ ?

यमदूत-- सही है, अब तो मुझे तुम्हारे यहाँ का क़ानून ही कुछ गड़बड़ मालूम होता है। क्या तुम कोई उपाय इस गड़बड़ी को दूर करने का बता सकते हो, जिसमें बेगुनाह न फँसा करें ?

क़ानूनीमल-- बेगुनाहों का एकदम न फँसना तो ज़रा मुश्किल-सी बात है। मगर हाँ, इसमें बहुत-कुछ कमी हो सकती है।

यमदूत-- खैर ! यही सही। मगर किस तरह ?

क़ानूनीमल-- सबसे पहले फाँसी की सज़ा उठा देनी चाहिए, ताकि बेगुनाहों का ख़ून क़ानून की गर्दन पर न चढ़ने पावे। दूसरे अगर किसी वक़्त में किसी सज़ा पाए हुए मुलज़िम की बेगुनाही का सबूत मिलने की उम्मीद हो तो उसकी जाँच फिर से की जाया करे। तीसरे संगीन जुर्मों का फ़ैसला करने वाली अदालत मौक़े पर बैठा करे, क्योंकि जुर्म की असलियत जितनी मौक़े पर मालूम हो सकती है, उतनी कचहरी के कमरे में नहीं। चौथे "असेसरों" के बजाय आज़ाद ख़्याल वाली 'जूरी' की राय से फ़ैसला किया जाया करे। पाँचवें पुलिस की कारवाइयों पर नज़र रखने और इस तरह उसे अपनी ज़िम्मेदारियों को क़दम-क़दम पर याद दिलाते रहने के लिए एक ऐसे महकमें की ज़रूरत है, जिसमें बड़े-बड़े दिमाग़ वाले हाकिम हों। क्योंकि जिसके अख़्तियारात जितने ही ज़्यादा होते हैं, उसकी ही उतनी जिम्मेदारी। मगर आदमी अपनी ज़िम्मेदारी तभी ठीक-ठीक समझता है, जब उसके कामों पर दूसरे नज़र रक्खें। छठे हर संगीन जुर्म की तहक़ीक़ात पुलिस अपने तरीके पर तो करे, मगर उस पर नज़र रखने वाले महकमे के बड़े-बड़े दिमाग़ रखने वाले अफ़सरान भी अलग से इस जुर्म का पता लगाकर अपनी रिपोर्ट दिया करें। क्योंकि संगीन जुर्म अक्सर क्या, बल्कि ज़्यादातर ऐसे होते हैं जिनका ठीक-ठीक पता लगाने में पुलिस की क्या, बड़े-बड़े दिमाग़ वाले जासूसों की भी अक़्ल चक्कर में पड़ जाती है।

यमदूत-- बेशक ! अगर इन तरीक़ों पर काम हो तो अलबत्ता इन्साफ़ पर आँच आने का डर बहुत ही कम हो जायगा। मैं तुम्हारी बातों की 'रिपोर्ट' दुनिया को ज़रूर भेजूँगा। इससे उसका बहुत कुछ भला होगा।

क़ानूनीमल-- अरे ! दुनिया गई भाड़ में। अब उससे मुझे क्या मतलब ? तुम मेरी फ़ीस तो दिलवाओ।

यमदूत-- हाँ-हाँ, अभी लो। तुमने तो मुझे हर तरह से क़ायल कर दिया। न जाने ईश्वर ने तुम्हें किस तरह पापी ठहराया है। अब तो मुझे भी उनके फ़ैसले में शक मालूम होता है।

क़ानूनीमल-- अजी यह टालमटूल रहने दो। इसीलिए हम लोग पहले फ़ीस ले लेते हैं। इसलिए तुम्हारी भलमनसाहत इसी में है कि तुम अब अपना वादा पूरा करो और मुझे ईश्वर के दरबार का रास्ता बता दो।

यमदूत-- रास्ता बताने की क्या ज़रूरत ? मैं तुम्हें खुद वहाँ लिए चलता हूँ, क्योंकि अब मैं भी देखना चाहता हूँ कि तुम उनसे किस तरह निपटते हो।

कानूनीमल-- अच्छा तो ले चलो।

(दोनों का प्रस्थान)

पटाक्षेप ❑❑

('चाँद' के फाँसी अंक से साभार)

मेरा जेल जीवन

○ गणेश शंकर विद्यार्थी

जेल जाने के पहले जेल के सम्बन्ध में हृदय में नाना प्रकार के विचार काम करते थे। जेल में क्या बीतती है--यह जानने के लिए बड़ी उत्सुकता थी। कई मित्रों से, जो इस यात्रा को कर चुके थे, बातें हुईं। किसी ने कुछ कहा और किसी ने कुछ। इस विषय में कुछ साहित्य भी पढ़ा। महात्मा गांधी के 'जेल के अनुभव' बहुत पहले पढ़ चुका था। भाई परमानन्द के 'जेल-जीवनी' को भी पढ़ा। जो कुछ सुना और जो कुछ पढ़ा, उस सबसे उसी नतीजे पर पहुंचा था कि जेल-जीवन है कठिन जीवन और वहां जो कुछ बीतती है उसे भूलना कठिन हो जाता है।

22 मई, 1922 का दिन था। दिन ढल चला था। कोई चार बजे का समय था। लखनऊ की धूप और लू मशहूर है। गरमी के कारण चोटी से एड़ी तक पसीना आ रहा था, परन्तु तो भी मन को आनन्द मालूम होता था। कदम जल्दी-जल्दी उठते थे। खुली धूप और खुली हवा के थपेड़े किसी चमनस्तान के झोंके के सदृश मालूम होते थे। यह दिन था जेल के बाहर निकलने का। यह समय था लखनऊ स्टेशन पर पहुंचकर कानपुर के लिए चलने का। कानपुर जाने वाली गाड़ी की ओर बढ़ रहे थे कि इतने में 'वन्दे मातरम्', 'महात्मा गांधी की जय' की ध्वनि कानों में पड़ी। नजर घुमाकर देखने पर, स्टेशन को पार करने वाले पुल के जीने पर पुलिस के गार्ड के बीच में अनेक युवक चलते हुए दिखाई पड़े, जिनके पैरों में बेड़ियां थीं। एक प्रकार से उनके हाथपैर बंधे हुए थे। परन्तु तो भी ज़बान और ज़बानों से बढ़कर हृदय खुले हुए थे। उन्होंने 'जय' बोली। माता की वंदना की। समय था दो ही तीन मास पहले कि इस प्रकार की गयी एक भी ध्वनि, उपस्थित लोगों के कंठों से उसी प्रकार की ध्वनि को गुंजा देती। परन्तु इस समय ऐसा नहीं हुआ। युवकों के कंठ से निकली हुई आवाज स्टेशन की दीवारों से टकराकर रह गयी। लोग उनकी ओर देखते थे, परन्तु उस देखने में न कोई विशेषता थी और न कोई चाह। ऐसे अवसरों पर निकली हुई ऐसी आवाजें मानो हजार जिह्वाओं से यह बातें कहा करती हैं कि अन्याय हो रहा है, परन्तु हम उसके प्रहारों के नीचे भी अटल हैं। और जब ऐसे अवसरों या इन आवाजों का उत्तर आसपास के आदमी उसी प्रकार से देते हैं, तब मानो वे कहते हैं कि इस अन्याय को हम भी घृणा की दृष्टि से देखते हैं। हमारा हाथ और हमारा हृदय तुम्हारी ओर है। वीरों ! दृढ़ रहना। परन्तु इस अवसर पर इन युवकों की आवाज का कोई उत्तर नहीं दिया। लोग चुपचाप उन्हें देखते रहे। मानो वे एक तमाशा देखते थे, मानो वे एक जुलूस देखते थे। अच्छे काम के लिए किसी की वाह-वाह की आवश्यकता नहीं, परन्तु साधारण हृदय अच्छे काम में भी उत्साहित किये जाने और सहानुभूति पाने के सदा भूखे रहते हैं। यदि निर्बलता है, तो यह क्रूरता है कि लोग अपने कामों के करने वाले और उनके लिए मरने वालों का दिल वक्त पड़े पर न केवल बढ़ ही सके, किन्तु अपनी सर्द मोहरी का इस तरह परिचय दें। स्टेशन आते समय सड़क पर, एक कुएं के पास ये युवक पेड़ के नीचे बैठे पानी पीते हुए दिखायी पड़े थे। पुलिस उन्हें घेरे हुए थी। उस समय ख्याल हुआ था कि साधारण अपराधों में पकड़े हुए लोग मलिहाबाद के हैं, गांधीजी के काम में पकड़े गये हैं और उसी में उन्हें सजा हुई, अब पुल पार कराकर सेंट्रल जेल लखनऊ लिवाये लिये जा रहे हैं, तब पहले का विचार हृदय से दूर हो गया और जेलजीवन पर मन में अनेक भावनाएं उठने लगीं।

लोग समझते हैं कि जेलों में अधिक कष्ट नहीं है, राजनीतिक कैदी मजे में हैं और उन्हें कोई विशेष असुविधा नहीं है। लेखक के भी इस विषय में समय-समय पर अनेक प्रकार के विचार रहे हैं। कभी कुछ और कभी कुछ। जब तक जेल की चहारदीवारी के भीतर कदम नहीं रखा था, तब तक जेल हौआ सा मालूम पड़ता था। उसका बड़ा भयानक चित्र आंखों के सामने घूमता था। जेल में पहुंचने के बाद भी कुछ दिनों तक उसकी भयंकरता की दशा आंखों के सामने नाचा करती थी। उठते-बैठते यही ख्याल रहता था कि यहां किस बात की आजादी है और किस बात की नहीं। यह प्रश्न सदा उपस्थित रहता था कि जेलर की आज्ञा बिना कितने कदम चलना वाजिब है और कितने कदम वाजिब नहीं। परन्तु रहते-रहते, देखते-सुनते और नियमों के उल्लंघन की घटनाएं लगातार सामने आती रहने के कारण यह ख्याल धीरे-धीरे नष्ट होने लगा कि जेल वालों ने हवा में भी जाल बिछा रखा है और उनकी आज्ञा के बिना कुछ काम नहीं किया जा सकता। इस विचार के नाश के साथ-साथ जेल की भयंकरता का ख्याल भी धीरे-धीरे कम होने लगा। कुछ दिनों के जेल-जीवन के अभ्यास ने भी मन पर ऐसा ही प्रभाव छोड़ा। साधारण कैदियों के संसर्ग में आने से, जेल के सम्बन्ध में विचारों में कुछ परिवर्तन और भी हुआ। दिखायी तो यह देता था कि इन लोगों को बड़ा कष्ट है और बड़ी यातना के साथ अपने दिन काट रहे हैं, परन्तु उनसे मिलने पर यह मालूम पड़ता था कि कष्ट तो उन्हें है ही, परन्तु इतना नहीं और असह्य नहीं जैसा कि बहुधा समझ लिया जाता है। सारे कष्ट बाहर से, दूर से असह्य या मुश्किल से सहन करने के योग्य मालूम पड़ते हैं, परन्तु जब वे सिर पर पड़ जाते हैं, तब कोमल से कोमल स्वभाव वाले भी इन्हें किसी न किसी प्रकार झेल ले जाते हैं। उस घबराहट का पता भी नहीं होता जो पहले होती है और कष्ट सहन करने की हिम्मत आप से आप आ जाती है। जब विशेष व्यवहार पाने वाले कैदी लखनऊ जिला जेल में जमा किये गये और सैकड़ों युवक राजनीतिक मामलों में ही पकड़े जाकर साधारण कैदियों के बीच में रखे गये, उन्हें कष्ट मिला और कठिन से कठिन से परिश्रम करना पड़ा, तब लेखक का ख्याल है कि शायद उन्हें उन कष्टों की इतनी पीड़ा न हुई होगी जितनी पीड़ा,जितनी चिन्ता उनके कुछ भाइयों को हुई जो विशेष व्यवहार पा रहे थे और जिन्हें कैदियों की कठिनाइयाँ अधिक विषम रूप से नहीं सहनी पड़ती थी। इन लोगों ने अपने विशेष व्यवहार को क्यों नहीं छोड़ दिया था, इस पर फिर कहूंगा। इस समय तो यही बात सामने है कि जेल-जीवन का रूप किस अवसर पर आंखों के और मन के सामने कैसा था।
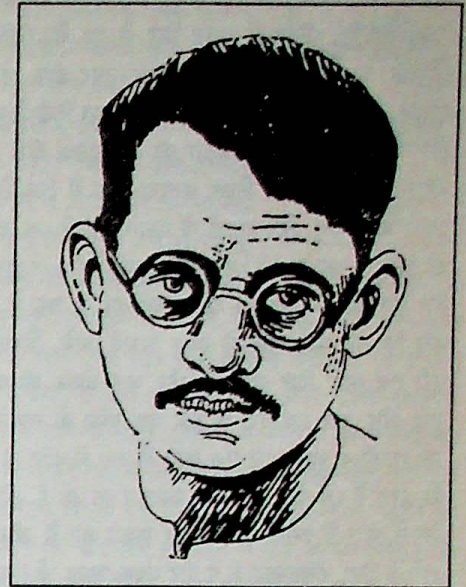
जेल से निकलने के कुछ घंटे पश्चात कुछ घंटों के लिए जेल-जीवन की

विषमता का विचार हृदय से बिल्कुल निकल गया। नया वायुमण्डल था। बिछड़े हुए मित्र मिले थे। दुनिया के दर्शन फिर से हुए थे। चिड़िया चारों ओर से चहचहा रही थी। हवा के झोंके धीरे-धीरे इधर-उधर डोल रहे थे। सड़कें मंदिर मस्जिद, बाजार, दुकानें, भीड़, इक्के, गाड़ी आदि बहुत दिनों से नहीं दिखाई दिये थे। एकदम दृष्टि के सामने दुनिया के भंडार की अनेकानेक चीजें आ गयीं। चहारदीवारियों के भीतर बंद शरीर और केवल कल्पना भूमि में विचरने वाले मन के सामने नाना प्रकार की वस्तुएं और शक्तों के एमदम सामने आ जाने के कारण कैद की बातों की बिल्कुल याद न रही। हर बात अच्छी लगी। हर वस्तु में कुछ नवीनता सी थी। तेज धूप तक में आकर्षण था। चलती हुई लू तक में ठंडक थी। ध्यान कुछ ऐसा बंटा कि जब मलिहाबाद के युवक सामने आये, 'महात्मा गांधी की जय' कानों में पड़ी तब मानो होश आ गया और जेल-जीवन की बातें याद आ गयी। जेल के सुख और दुख सब एक के बाद एक दृष्टि के सामने आ चले। वे सुविधाएं भी उस मानसिक जुलूस की एक कड़ी के रूप में दृष्टि के सामने आयीं जो उन लोगों को प्राप्त हैं जो जेल के विशेष व्यवहार पा रहे हैं और वे कठोर कठिनाईयां भी, जिनके पाश में हमारे सैकड़ों वीर जकड़े हुए हैं और जिनकी अकड़न मे जकड़े जाने के लिए मलिहाबाद के ये वीर युवक 'माता और महात्मा गांधी की जय' पुकारते हैं। हाथों और पैरों में आभूषण पहने और चारों ओर कड़े पहरे से घिरे हुए जा रहे थे। इन सब विचारों के बीच में मैं भी निश्चयात्मक रूप से वह न कह सका---कम से कम थोड़े शब्दों में कि जेल का जीवन अच्छा है या बुरा।

कानपुर के जेल में जब तक रहा तब तक यही कहना चाहिए कि बुरी नहीं कटी। अक्तूबर मास था। जाड़े के दिन थे। चिन्ता थी कि जेल में पहुँचते ही कपड़े काफी मिलेंगे या नहीं। परन्तु जब जेल के फाटक ने 'दुनिया' और अपने बीच में एक गहरी गाँठ लगा दी, उधर के लोग उधर और इधर के लोग इधर की सीमा बाँध दी, तब जेल के दफ्तर में पहुँचते ही जेलर ने कहा कि आप अपने कपड़े इस्तेमाल कर सकते हैं। आपके साथ विशेष व्यवहार रखने की आज्ञा हमें मिली है। 'सिविल वार्ड' में रखा गया। कोई दस-बारह गज़ लम्बी चौड़ी जगह थी। बीच में एक बैरक बनी हुई थी। उसके भीतर 9-10 चबूतरे बने हुए थे, इस बैरक में वे लोग रखे जाते थे जो दीवानी के मामलों में सजा पाते थे। जितने चबूतरे थे, उतने ही कैदियों के रखने की जगह समझी जाती थी। बैरक के बीच में चारपाई बिछाने लायक जगह खाली पड़ी थी। वहीं एक अस्पताली चारपाई बिछी मिली। मित्रों ने कपड़े भिजवा दिये। चारपाई पर बिस्तर भी पड़ गया। शाम हो गयी थी। 6 बजे के पहले जेल वाले आये, उन्होंने बैरक में लालटेन रख दी। मैं बैरक के भीतर बंद कर दिया गया। जेल वालों ने पूछा था, आप क्या खायेंगे। उत्तर दिया गया, खाने की इच्छा नहीं। साथ ही एक कैदी और भी बंद किया गया। परन्तु वह आदमी इसलिए रखा गया था कि वह मेरा काम करे। अंधेरा हो चला था। मैं चारपाई पर लेट गया था। खूब थका था। कुछ मिनटों तक किसी तरह की कोई सुध नहीं रही।

किसी खटके से नींद खुली। देखता क्या हूँ दरवाजे की सीखचों पर कुछ मित्र खड़े हैं। डा० जवाहरलाल जी उनमें आगे थे। वे कुछ भोजन लाये थे। दरवाजा बंद था, वह खुल न सकता था। भोजन की इच्छा न थी। तो भी अनुरोध था। अंत में, कुछ चीजें लेनी ही पड़ीं। सीखचों के भीतर से चीजें दे दी गयीं। जेलर इन लोगों के साथ थे। साथ आये, और शीघ्र ही साथ ही लिवा ले गये।

कानपुर जेल में कोई दस दिन तक रहा। काम करने को था ही नहीं। दिन भर बैठे-बैठे कटता। किताबें मिल गयी थीं। गीता-रहस्य, तुलसीकृत रामायण और शेक्सपियर पढ़ा करता। एक से जी ऊब उठता तब दूसरी किताब उठा लेता। जब और भी जी उकताता, तो उस थोड़ी-सी जगह में चक्कर लगाता। बाहर बहुत घूमा करता था। मीलों पैदल चलने की आदत पड़ी हुई थी। कुछ तो कामों के कारण पैदल चला करता और कुछ टहलने के लिए। परन्तु इस प्रकार का टहलना, जिस प्रकार के टहलने के लिए यहाँ विवश था अर्थात घड़ी के पेंडुलम की भांति इधर से उधर हिलना-डुलना मुझे बहुत बुरा लगता था। कैद के अंत तक इस प्रकार का टहलना कभी अच्छा न लगा। बहुत कोशिश की कि व्यायाम का एक सहारा बना रहे, परन्तु इसका निर्वाह न हुआ।

जेलर ने दूसरे ही दिन सवेरे बुलाकर कहा कि आप किसी दूसरे कैदी से बातें न करें क्योंकि आपको ऐसा न करने देने की हमें आज्ञा है। और आपको टहलने के लिए बस इतना ही स्थान मिलेगा।

तीन-चार दिन बाद सुपरिन्टेंडेंट मेजर बकले जेल के भीतर आये। सप्ताह में केवल एक बार ही सुपरिन्टेंडेट अपना यह दौरा करते हैं। वे इधर भी आये। उन्होंने जेलर से कहा कि टहलने की हद और बढ़ा दो। हद बहुत बढ़ा दी गयी थी, परन्तु इसका लाभ उठाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। मैंने सुपरिन्टेंडेंट से कलम-दवात रखने के लिए पूछा? उन्होंने कहा, क्या करोगे। मैंने कहा, समय नहीं कटता, कुछ लिखूँगा। वे बोले, लिखकर क्या करोगे, लिखा हुआ बाहर उसी समय जा सकेगा जब गवर्नमेंट उसे पास कर देगी। मैंने कहा कि कोई हर्ज नहीं, मैं राजनीतिक समस्याओं पर कुछ नहीं लिखूँगा। अंत में सुपरिन्टेंडेंट ने कापी-इंक-पेंसिल रखने की आज्ञा दे दी। परन्तु कानपुर में जब तक रहा तब तक वह मुझे मिली ही नहीं। मेजर बकले से सबसे पहले दूसरे ही दिन साक्षात्कार हुआ था। कायदा है कि प्रत्येक नया कैदी सुपरिन्टेंडेंट के सामने पेश किया जाये। दूसरे दिन सवेरे ही, जेलर ने दफ्तर में बुला भेजा। मेजर बकले कुर्सी पर बैठे थे और जेलर खड़े हुए थे। कुछ रजिस्टर पेश कर रहे थे, एक कागज के बाद दूसरा कागज पेश किया जा रहा था और धड़ाधड़ उस पर दस्तखत होते जाते थे और वे हटाये जा रहे थे। मैंने उन्हें जब काम में व्यस्त देखा तब पुरानी आदत के अनुसार एक बड़ी कुर्सी पर जा बैठा। जेलर ने मेरी ओर देखा। वे बेचारे कुछ घबरा से उठे। साहब के सामने कैदी कुर्सी पर बैठा था और उस पर दिल्लगी यह थी कि न तो उसे कुर्सी पर बैठे रहने दे सकते थे और न उससे यही कह सकते थे कि उस पर से उठ जाओ। परन्तु बुद्धि ने उनका साथ दिया। उन्होंने नम्बरदार से कुछ कहा, वह मेरे पास आया और बोला, आप अपनी बैरक में चलिये, जब जरूरत होगी तो आपको बुला लें। मैं चला गया। थोड़ी देर बाद फिर, आदमी पहुँचा कि चलिए। इस बार मेजर बकले सिर उठाये बैठे थे। पहुंचते ही राम-राम हुई। उन्होंने नाम पूछा, बतला देने पर वजन लिया गया और रजिस्टर में कुछ बातें लिखी गयीं। इसके बाद मैं अपने स्थान में भेज दिया गया।

भोजन मित्रों के यहाँ से आ जाता था। कुछ फल भी पहुंच जाते थे और डा० जवाहरलाल का पुत्र राजेन्द्र नियमित रूप से पिकनिक कुकर में भोजन पहुंचा दिया करता। दूध जेल वाले दिया करते थे। दस दिन तक जब तक कानपुर में रहा, ऐसा ही होता रहा। जेल वाले बहुत भलमनसाहत से पेश आते और जेलर दिन में एक-दो बार आकर हाल पूछ जाते। दूसरे कैदियों को पास आने की आज्ञा नहीं थी, परन्तु वे लोग बैरक की सफाई के लिए रोज आते। जो भोजन बच जाता उन्हें दे देता। वे बड़ी खुशी से उसे ले लेते और जेल भर का हाल बतलाते रहते।

महात्मा गाँधी का नाम और काम उन्होंने भी खूब सुन रखा था। न मालूम कहाँ-कहाँ की बातें उन तक पहुँच जातीं, परन्तु उन बातों को आपस में बढ़ा-चढ़ाकर एक-एक की सौ-सौ कर देते, और उन पर बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँधते चले जाते। एक आदमी पर डाके का मुकदमा चल रहा था। यह मेरे स्थान के पास ही बन्द था। वह भी सफाई के लिए आया करता। गाँधीजी पर अपनी असीम भक्ति प्रकट करता। कहता--महात्मा जी के लिए सिर हाजिर है, उनकी दया होगी, तो साफ छूट जाऊँगा। मैंने कहा--महात्मा जी डाकू के साथ नहीं हैं, डाके को बुरा समझते हैं, वे उसे अच्छा नहीं समझेंगे कि तुम डाका मारो और सजा से बच जाओ। इस बात से वह विचार में पड़ गया। पीछे, वह अपने कामों पर पश्चाताप करने लगा था। मालूम नहीं है, अंत में उसका क्या हुआ। एक दिन जेल में एक धोबी कैदी भी किसी तरह आया। गाँधी जी की जय-जयकार वह भी मानता था। उसके साथ एक युवक कैदी था। वह कानपुर का था। किसी मिल में काम करता था। उस पर पुलिस ने दफा-110 लगा दी। जब उसके साथी ज़मानत को तैयार हुए तब उन्हें जमानत देने से पुलिस ने रोक दिया। अंत में इस युवक को जेल में आना पड़ा। लखनऊ के दोनों जेलों में भी दफा-110 में आये हुए अनेक आदमी मिले। पुलिस ने कह दिया कि अमुक आदमी की कमाई का कोई जरिया नहीं है उसकी नेक चलनी की जमानत होनी चाहिए। बस, पुलिस के इस इशारे पर मजिस्ट्रेट उन आदमियों से जमानत मांगता। गाँवों में जमानत देने वाले पहले तो मिलते ही नहीं और मिलते भी हैं, तो उन्हें पुलिस धमका देती है। इसलिए वे फौरन पीछे हट जाते हैं। दफा-109 भी ऐसी ही है।

मुझसे जेल के लोगों ने कहा, जेल की लगभग आधी आबादी उन्हीं दो दफाओं में आये हुए कैदियों की होती है। गाँवों में जो आदमी तनिक भी मनचला और बढ़े हुए हौसले का हुआ, बस उस पर पुलिस की वक्र दृष्टि पड़ी और दफा-109 या दफा-110 में जेल भेजा गया। जब वह जेल से बाहर निकला, तब फिर उस पर पुलिस की निगाह रहने लगी। मुझे बहुत से ऐसे कैदी मिले, जो अपने मन में यह समझते हैं कि अब हमारे लिए जेल के सिवा दुनिया में, कोई और दूसरा ठिकाना नहीं। यहाँ से छूटे तो फिर शीघ्र ही पुलिस की कृपा से यहाँ आ जायेंगे। जो नम्बरदार मेरे साथ रखा गया था वह नौजवान था। वह सदा यही रोना रोया करता था। केवल इन्हीं दफाओं में एक से अधिक बार आये हुए कई आदमी मुझे जेलों में मिले। बाजे-बाजे आदमियों को तो इन दफाओं में सजा भी बहुत दी जाती है। लखनऊ जिला जेल में भोजन बनाने के लिये हमें एक ब्राह्मण मिला था। वह अब भी वहाँ है। उसकी सजा तीन वर्ष की है। वह शीघ्र ही छूटने वाला है। परन्तु पता नहीं, उसे फिर कब जेल में आना पड़े। यह मानना पड़ेगा कि कुछ लोग दोषी होंगे, परन्तु जो ढंग है उसे देखते हुए यह मानना पड़ेगा कि अधिकांश आदमी बेकसूर हैं। उनका कसूर केवल इतना है कि उनमें जोश है, आगे बढ़कर काम करने की उमंग है। पुलिस इन बातों को अपने कामों में बाधा समझती है। बेचारी पुलिस ही क्या, देश की गवर्नमेंट तक देश के निवासियों में उत्साह और उमंगों का उदय बहुत अच्छा नहीं समझती। अभी कल तक गवर्नमेंट के आदमी इन भावनाओं को खुल्लम-खुल्ला पैरों तले रौंदते थे। अब खुल्लमखुल्ला तो वैसा नहीं करते, परन्तु मखमली पंजे द्वारा गर्दन घोटने के लिये सदा तैयार रहते हैं। पुलिस भी अपने मालिकों के पदचिन्हों पर चलती है। उसका अपना कोई कसूर नहीं।

कानपुर जेल में कोई खास घटना नहीं घटी। फल आते थे, उन्हें काटा कैसे जाये ? चाकू नहीं मिल सकता था, क्योंकि जेल वालों को डर था कि कैदी अपना गला न काट लें। मेरा गला मुफ्त का न था, परन्तु जेल वालों को इस बात का विश्वास न था। अंत में उन्होंने कहा कि आप चांदी के चाकू से काम ले सकते हैं। एक मित्र उसे जेल वालों को दे गये और तब से फलों को स्वाभाविक ढंग से खाने के स्थान पर चाकू द्वारा अस्वाभाविक ढंग से खाने लगे। छह बजे शाम को बंद कर दिया जाता। रोशनी के लिए लालटेन रहती। रात को पाखाने-पेशाब के लिए मिट्टी के पात्र रख दिये जाते थे। सवेरे छह बजे खोला जाता। दिन को पढ़ना,

दोपहर शाम को पढ़ना, शाम को पढ़ना और रात को भी पढ़ना। अग्निमांद्य की शिकायत बढ़ चली थी। परन्तु व्यायाम के नाम पर पेंडलुम की भांति दस-बारह गज़ के भीतर हिलना-डुलना पसन्द नहीं था। बहुत तबियत उकताती, तो दरवाजे पर ताला लगाये खड़े हुए जमादार से बातें करता या फिर अपने साथी नम्बरदार से। इन दोनों से बातें करने में कठिनाई होती। विचारों में कोई सामंजस्य नहीं था। जो बात उनके लिए रोचक थी उसे वे नहीं समझते थे। इसलिये खेती-पाती, घर-द्वार इसी प्रकार के बहुत ही सामान्य विषयों पर साधारण बात कर समय काटने की बहुत कोशिश करता। रामायण को जोर-जोर से पढ़ने में मुझे आनंद आता। रात को पढ़ता। नम्बरदार कलुआ बड़ी भक्ति से बैठ जाता। खूब ध्यान से सुनता। समझता बहुत कम, परन्तु उसकी श्रद्धा में कोई असर नहीं था।

एक दिन शायद 26 अक्तूबर के सवेरे, असिस्टेंट जेलर मेरे पास आये और बोले,आप अपना सामान संभाल लीजिये, आप लखनऊ जेल भेजे जा रहे हैं। मुझे अपने नम्बरदार के बिछुड़ने का अफसोस था परन्तु अकेले होने के कारण समय नहीं कटता था। यहाँ तक कि दिन में घंटे और घंटे-मिनट तक गिन डाले गये थे। बैठा-बैठा बहुधा दीवार के पास से सन-सन और फड़-फड़ करके जाने वाली ट्रामगाड़ी के आने-जाने की संख्या गिना करता था। कुछ मिनटों की आमदरफ्त के आधार पर हिसाब लगाया करता था कि सवेरे से लेकर 11 बजे रात तक ट्राम इस पटरी पर से कितनी बार आयी और गयी होगी। एक दिन उकता कर बैरक भर में कितनी ईटें लगी हैं, कितनी ईटें काम में आईं, उन सबकी गिनती गिनता रहा। पढ़ते-पढ़ते सिर भारी हो जाता, तब यह काम करता। जब समय इतनी कठिनता से कटता था तब इस जेल का छोड़ना बुरा कैसा लगता।

चारों ओर से, लोहे की बनी जालियों से आच्छादित, कैदियों को ढोने वाली मोटर तेजी के साथ शहर के बाहर ही बाहर चली। किसी जानी-पहचानी सूरत को देखने के लिए जाली के भीतर से नजर दौड़ाता रहा, परन्तु स्टेशन तक कोई ऐसा आदमी नजर न आया। इमारतों, वृक्षों, संड़कों और फूलबाग को पीछे छोड़ते हुए और उन्हें इस विचार के साथ कभी-कभी देखते हुए पता नहीं वे कब फिर आंखों के सामने आयें, ओ० आर० स्टेशन के निकट पहुंचे। स्टेशन के दरवाजे के लगभग 100 गज आगे ही मोटर खड़ी हो गई। उसका दरवाजा खुला। सड़क पर पुलिस कांस्टेबिल और दो-इंसेक्टर खड़े थे। वही एक पगडंडी द्वारा वे स्टेशन के भीतर ले गये। शहर के लोगों को पता लग गया था। इसलिए कुछ आदमी स्टेशन पर पहुंच गये थे। पगडंडी द्वारा स्टेशन की पुलिस चौकी पर ले जाया जा रहा था, उस समय कुछ लोग आगे बढ़े। पुलिस वालों ने उन्हें रोक दिया। नमस्कार हुए और यह बात भी कह दी कि लखनऊ जेल के लिए यह कूच है। इससे अधिक उस समय कुछ नहीं हुआ। मालूम पड़ता था पुलिस वाले कुछ घबड़ा गए थे या बहुत ज्यादा एहतियात से काम लेना जरूरी समझते थे। पुलिस चौकी के भीतर पहुंचते ही हुक्म हुआ कि कठघरे के भीतर चल कर बैठिये। एक कुर्सी डलवा दी गयी। यह कृपा थी। उसी कुर्सी के ऊपर कठघरे के भीतर जा बैठा। इस कटघरे

में चोर-बदमाश बंद किये जाते होंगे। चौकी के एक ऐसे कोने में यह कठघरा बना था कि वहां से न तो बाहर वाले दिखाई पड़ते थे और न भीतर बंद व्यक्ति ही कोई बाहर से देख सकता था। गाड़ी प्लेटफार्म पर खड़ी थी परन्तु पुलिस ने कठघरे का इस्तेमाल इसीलिए जरूरी समझा कि कहीं उनके कैदी को लोग घेर न लें। और उससे कुछ बातें न कर लें। जब गाड़ी चलने को दो या तीन मिनट रह गये, तब कठघरे से निकाला गया। चौकी से बाहर निकलते ही, शहर के लोग चौकी के बाहर जमा थे और जिन्हें चले जाने या हट जाने के लिए बारम्बार कहा जा चुका था, फिर निकट आ गये। गाड़ी प्लेटफार्म के दूसरी ओर थी। उस ओर पुल पार कर जाना पड़ता था। पुलिस ने पुल पार करना आवश्यक न समझा। रेल की लाइनों को पार कर दूसरी ओर पहुंच गये और ठीक इंजन के पास तीसरे दर्जे की गाड़ी पर पीछे से बैठा दिया गया। खिड़कियों पर सब-इंस्पैक्टर साहबान खड़े हो गये। शायद उन्हें डर था कि कहीं किसी सुराख से कैदी न निकल जाये। इधर-उधर खिड़की के सिरे पर पुलिस वाले बैठ गये। बाहर लोग विदाई के अन्तिम शब्द कहने और सुनने के लिए फड़फड़ा रहे थे। परन्तु पुलिस वालों को उन बातों से क्या मतलब ? सब इंस्पैक्टर साहबान में से एक तो ऐसे थे जिन्हें 12 वर्ष पहले, उनके कैदी ने उस समय जबकि वह एक स्कूल में अध्यापक था और उसने स्कूल के इस छात्र को पढ़ाया तक था। परन्तु इस समय उन बातों का कहीं दूर-दूर तक पता नहीं था। इस अवस्था ने मन में कुछ अधीरता उत्पन्न कर दी। खिड़की के पास थोड़ी सी जगह खाली पड़ी थी। मैं उसकी ओर बढ़ा, पुलिस वालों ने रोका, परन्तु यह कहते हुए कि, इतनी आजादी तो मत छीनो, मैं उस पर जा बैठा। बाहर के लोग पास आ गये। इधर गाड़ी ने सीटी दी। बस, इतना ही हो सका कि सबने हाथ बढ़ाये। हाथ छूते और नमस्कार करते-करते गाड़ी चल दी। शिवनारायण जी गाड़ी के दूसरे हिस्से में जा बैठे थे। लखनऊ तक साथ गये। पास नहीं आने पाये, परन्तु उनसे बातें हुईं। वे लखनऊ के जेल के फाटक तक गये। वहां से उन्हें लौट आना पड़ा था।

गाड़ी के चलने के कुछ मिनट पश्चात पेशाब करने की जरूरत मालूम पड़ी उठा और पेशाबखाने की तरफ बढ़ा। साथ के तीन पुलिस वालों मे से दो उठे और वे भी आगे बढ़े। मैं पेशाबखाने में घूमा। उन्होंने गाड़ी की खिड़की से इधर-उधर सिर निकालकर, न केवल सिर, किन्तु आधा धड़ गाड़ी से बाहर निकालकर, मेरी खबरदारी रखने का काम पूरा किया। मैंने बाहर आकर उनसे कहा, मैं खिड़की से कूदकर न भाग जाता, क्योंकि मुझे अपनी जान प्यारी है। वे बोले, क्या करें, कायदा ही ऐसा है। बस यहीं से उनसे बातें छिड़ गयीं। बहुत सी बातें हुईं और अन्त में बेचारे इतना कायल हुए कि पेट दिखलाने और उसे कोसने लगे। तीन बजे लखनऊ स्टेशन पहुंचे। ख्याल था वहां भी उसी प्रकार की मोटर पर सवार होने का अवसर प्राप्त होगा। परन्तु ऐसा न हुआ। पुलिस वाले किराये पर एक गाड़ी पकड़ लाये। 'पकड़ लाये' इसलिए कहता हूं कि उसने बहुत नाहीं-नूहीं की। बोला, बड़े साहब के यहां जाना है और छोटे साहब के यहां का भी वादा है, परन्तु पुलिस के दूतों ने एक न मानी। मैंने भी उसे समझाया कि पुलिस की वर्दी के कारण यह क्यों समझ बैठे हो कि पूरा किराया न मिलेगा, चार बजे के पहले ही लखनऊ सेंट्रल जेल के फाटक पर जा पहुंचे। फाटक खुला और उसी प्रकार जिस प्रकार वह चोर, डाकू और हत्यारों के लिए स्वागतार्थ सहस्रों बार खुल चुका था और हम लोग भीतर-भीतर दफ्तर में पहुंचे। लावारिस माल की भांति कई मिनट तक इधर-उधर भटकते रहने के पश्चात एक बूढ़े मुंशीजी के पास गये। धीरे-धीरे मुंशी जी ने कागज-पत्र खोले और धीरे-धीरे पूरे आराम के साथ उन्होंने रजिस्टरों में लिखना प्रारम्भ किया। पुलिस वालों ने कुछ जल्दी करनी चाही क्योंकि उन्हें तुरंत कानपुर लौट जाना था, परन्तु मुंशीजी ने उन्हें ऐसी फटकार लगायी कि बेचारे सिकुड़कर रह गये। मेरी जन्मपत्री अभी बन ही रही थी और उसे मुंशी जी बना रहे थे कि इतने में कमरे के एक कोने से 'वन्दे मातरम्' की ध्वनि सुनाई पड़ी। देखता हूं कि एक महाशय कैदी की पोशाक में मुझसे 'वन्दे मातरम्' कर रहे हैं। मैंने पूछा, और उन्होंने बतलाया कि मेरा नाम श्रीगोपाल है और लखनऊ में भाषण देने के अपराध में दो वर्ष की सजा हुई है । इस समय लखनऊ के डिस्ट्रिक्ट जेल में भेजे जा रहे थे। अभी तक उनके साथ साधारण कैदियों का-सा व्यवहार होता था, परन्तु अब उनके साथ विशेष व्यवहार किये जाने की आज्ञा आ गयी थी। विशेष व्यवहार वाले राजनीतिक कैदी जिला जेल में थे, इसलिए लाला श्रीगोपाल जी वहाँ भेजे जा रहे थे। मैं विशेष व्यवहार की श्रेणी में था, परन्तु मुझे भेजा गया था सेंट्रल जेल में। श्रीगोपाल जी बोले, आप भी जिला जेल शीघ्र ही भेजे जायेंगे। मैंने उत्तर दिया, देखा जायेगा। श्रीगोपाल जी के पैर में कड़ा पड़ा हुआ था। वे मुंशी जी से बिगड़कर बोले, शीघ्र ही इस कड़े को कटवाइये। कड़ा काटा जाने लगा।

श्रीगोपाल जी के पास अधिक सामान नहीं था। एक धोती थी, उसी के भीतर कुछ और कपड़ा भी लिपटा हुआ था, श्रीगोपाल जी ने कड़ककर मुंशी जी से कहा कि इस सामान को जिला जेल तक ले जाने के लिए आदमी दीजिये। मुंशी जी ने कहा कि इसे उठाकर ले जाने में तुमको कोई तकलीफ न होगी। इस 'तुम' शब्द के व्यवहार पर श्री गोपाल जी बहुत नाराज हुए। मुंशी जी को दब जाना पड़ा। उनकी तेजी श्रीगोपाल जी की तेजी के सामने हवा हो गयी। अन्त में लाचार होकर मुंशी जी को श्रीगोपाल जी की धोती जिला जेल तक लादकर ले जाने के लिए आदमी भी देना पड़ा। श्रीगोपाल जी की यह निर्भीकता थोड़े ही समय से बढ़ गयी थी। पहले तो बेचारे ने बहुत कष्ट सहे थे। यहाँ तक कि जेल में आते ही उन्हें कुएं से पानी खींचने का काम दे दिया गया था। आदमी मजबूत थे, शायद इसीलिए उन पर यह भारी बोझ रखा गया। चक्की भी पीसनी पड़ी थी। अब दिन बहुरे थे। राजनीतिक कैदियों से काम लेना बन्द कर दिया गया था। श्रीगोपाल जी की तकलीफों का खात्मा हो चुका था और अब एक प्रकार से कुछ आराम के दिन आ गये थे। विशेष व्यवहार में अनेक सुविधाएं थीं। सबसे बड़ी सुविधा यह थी कि उस समय जिन राजनीतिक कैदियों के साथ विशेष व्यवहार किया गया था उनसे जेल वाले डरते थे। जेल वाले कैदियों को पशु के समान व्यवहार पाने वाले नये प्रकार के कैदियों को देखा, तो उनकी समझ में ही नहीं आया कि ये लोग भी कैदी हैं। इसलिए पहले-पहल वह इस श्रेणी के कैदियों से बहुत डरते थे। उनका बहुत आदर करते थे और उनके आराम का पूरा ख्याल रखते थे। बातें तो यहाँ तक हुई थीं कि डिस्ट्रिक्ट जेल, लखनऊ के जेलर और उसके मातहत लोग विशेष व्यवहार पाने वाले राजनीतिक कैदी को झुक-झुककर सलाम करते थे और बहुधा उसे 'हुजूर' शब्द तक से सम्बोधित करते थे। परन्तु अब वे दिन गये। अब जेल वाले समझ गये हैं या समझा दिये गये हैं कि विशेष व्यवहार की हद कहां तक है। इसे समझ लेने या समझा देने का नतीजा अब यह निकल रहा है कि जेल वाले अपने पहले के व्यवहार का बदला सूद-ब्याज सहित आजकल वसूल कर रहे हैं और राजनीतिक कैदियों को पग-पग पर जलील कर रहे हैं। 'छोटे' हृदय वाले सदा ऐसा ही करते हैं। जब उनके सामने भय होता है तो वे चरणों के नीचे की धूल चाटते हैं और जब उन्हें किसी बात का डर नहीं रहता, तो घमण्ड में चूर हो जाते हैं और आकाश
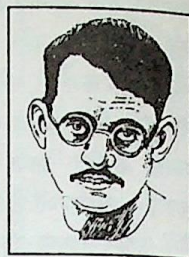
तक सिर पर उठाकर चलने का प्रयत्न करते हैं।

हां, तो बात श्रीगोपाल जी की हो रही थी। विशेष व्यवहार की प्राप्ति ने श्री गोपाल जी की मनोवृत्तियों पर भी जोरदार काम किया था। उन्हें अपनी हैसियत का पता लग गया और इसलिए, उन्होंने जेल वालों से दबना या भय खाना छोड़ दिया और जहां उन्होंने देखा कि जेल वाले कोई अनुचित व्यवहार करते हैं तो उन्हें निःसंकोच फटकार देते।

जब मैं जेल के भीतर पहुंचा और वहां उन राजनीतिक कैदियों के साथ रखा गया जो उस समय सेंट्रल जेल में थे, तो पता लगा कि एक दिन जब साधारण रीति के अनुसार जेल में लालाश्रीगोपाल जी को एक मूली दी जाने लगी तब उन्होंने उसको लेने से इन्कार कर दिया और उन्होंने साफ-साफ तथा बेझिझक होकर कह दिया कि अब हमारे साथ विशेष व्यवहार हो गया है, हम दो मूली लेंगे।

इस घटना से यह समझ लेने की आवश्यकता नहीं कि श्रीगोपाल जी ने विशेष व्यवहार का मूल्य केवल दो मूली रखा था, इसका अर्थ केवल इतना ही है कि वे विशेष के तत्व को समझ गये थे और इस बात को नहीं सहन कर सकते थे कि कोई भी उनके अधिकार से उन्हें एक क्षण भी वंचित रख सकने की हिम्मत कर सके। उस दिन तो श्री गोपाल जी से कुछ बातें भी न हो सकीं। वे डिस्ट्रिक्ट जेल चले गये थे। परन्तु बाद में कोई दो मास के बाद में उनसे डिस्ट्रिक्ट जेल में फिर भेंट हुई। उनका साथ अंत तक रहा। बेचारे सीधे आदमी हैं। हिन्दी भर जानते हैं। रामायण के बड़े भक्त हैं। वे सबकी सह भी लिया करते थे। इस समय भी वे डिस्ट्रिक्ट जेल में हैं। अभी उनकी रिहाई में लगभग सात-आठ मास होंगे।

जेल के एक कर्मचारी महाशय कई फाटक और आंगन लंघवाते हुए मुझे उस बैरक में ले गये जहां मुझे रहना था। यह यूरोपियन बैरक थी। इसमें यूरोपियन अपराधियों को रखा जाता था। उसका दरवाजा खुला और भीतर प्रवेश करते ही पांच आदमियों के दर्शन हुए। इनमें तीन हिन्दुस्तानी थे। एक था स्काच और दूसरा यों कहिए यूरेशियन। स्काच व्यक्ति का बाप तो पूरा स्काच था, परन्तु स्वयं उस बेचारे को यूरोपियन लोग पूरा यूरोपियन मानने को तैयार न थे। उसने जहाज की नौकरी चाही। उसका बाप इसी प्रकार की नौकरी करता युद्ध में मारा गया था। परन्तु उसे नौकरी नहीं मिली क्योंकि यूरोपियन बोर्ड की राय से उसका रंग भूरा था, श्वेत नहीं। इस व्यक्ति का नाम था मैकमट्रे। वह इस समय हिरासत में था। उस पर किसी की बाइसिकल बेच देने का इल्जाम था। इसी अमानत में खयानत के मामले में उसे तीन-तीन मास की दो अलग-अलग सजाएं आगे चलकर हो गयी थीं। दूसरा व्यक्ति जिसे यूरेशियन कहा गया है, तीन-चौथाई हिन्दुस्तानी था। उसका नाम था--मिसमला। मिसमला रेलों में नौकर था। शराब पीने लगा और अंत में शराब के कारण किसी काम का न रहा। शराब के ही कारण उसे जेल आना पड़ा। किसी की कुछ चीजें बेचकर शराब पी गया और फल यह हुआ कि छह सप्ताह के लिए सम्राट जार्ज के होटल का उसे मेहमान बनना पड़ा। हमारे तीनों भाई राजनीतिक कैदी थे।

श्री रामनाथ गुर्टू दफा-108 में आये थे। लखनऊ में उन्होंने व्याख्यान दिया था और वहीं उन्हें सजा हुई थी। मेरी और उनकी सजा की तारीख एक थी। दफा भी एक थी। अन्तर इतना था कि वे पहले से जेल में आये थे और उन्हें कठिनाइयां भी सहनी पड़ी थीं। चक्की पीसी और बान बटे। मुझे यह सब कुछ नहीं करना पड़ा। यह महाशय पंडित जगतनारायण साहब, जो मिनिस्टर हैं, के पास के रिश्तेदारों में से एक हैं। दूसरे सज्जन थे श्री सीताराम जी, वे बस्ती जिले के हैं। जमींदार हैं। दफा-108 में वे भी आये थे। उन्होंने भी बड़ी कठिनाइयां झेली हैं। तीसरे सज्जन थे श्री शिवचरण शर्मा इन्हें मैनपुरी षड़यंत्र वाले मामले में पांच वर्ष की सजा हुई थी। पांच मास तक सजा भोग चुकने के पश्चात् आगे उपद्रव न करने के वादे पर वे छूट गये थे। परन्तु जब कौंसिल के निर्वाचन का समय आया तब शिवचरण लाल जी ने वोटरों को उकसाया कि वोट मत दो। बस, इसी बड़े भारी कसूर पर बेचारे शिवचरण लाल फिर जेल में डाल दिये गये और अभी तक जेल में पड़े सड़ रहे हैं। बहुत-सी जेलों में रहे और सब प्रकार के जेल-जीवन का अनुभव उन्हें प्राप्त है।

मैं इन लोगों से मिलकर प्रसन्न हुआ और वे मुझसे बहुत दिनों के पश्चात् उन्हें अपना हाथ-पंथ का एक नया आदमी मिला था और मुझे भी उस दस दिन रूपी दस मास के बाद ये मित्र मिले थे। रात को अलग-अलग कोठरियों में बन्द रहते हुए भी बहुत समय तक अपनी-अपनी बातें चिल्ला-चिल्लाकर कहते और सुनते रहे।

यूरोपियन बैरक में पांच कोठरियाँ थीं। उस समय पांच आदमी थे। एक-एक में एक-एक बंद किया जाता था। शाम होते ही नहीं, सूर्य छिपता नहीं था, पांच बजे के पहले ही अपनी-अपनी कोठरियों में बंद कर लिये जाते, ताले पड़ जाते और फिर सवेरे 6 बजे तक खोले जाते। रात को यदि पाखाने-पेशाब की हाजत होती, तो भीतर एक कोने में मिट्टी के दो पात्र रखे रहते। कोठरी कोई 8X12 फीट होगी। इतनी अच्छी थी कि दोनों तरफ लोहे के छड़ दरवाजे थे और हवा की कमी न थी। इससे कष्ट होता था। जब जाड़ा बढ़ा, तब दोनों ओर से सर-सर चलने वाली हवा कष्ट देती थी। दोनों तरफ सायबान था। इसलिए जब तक यहां रहा, रात्रि को चन्द्र के दर्शन कभी न हुए। हां, एक बार हुए थे। बैरक की खपरैल में छेद था। एक रात को कदाचित कुछ तरस खाकर चन्द्रदेव उसी के द्वारा झांकते हुए नजर आये थे। बैरक के घेरे में नीम के वृक्ष की छाया से आगे बढ़कर शुक्ल पक्ष के दिनों में चांदनी दिखायी पड़ती थी। चन्द्र के विश्व में होने की वह खासी पहचान थी। सवेरे मुंह-हाथ धोने के पश्चात् बैरक के घेरे में, जो कोई 100X100 फुट होगा, चहलकदमी करते। नौ बजे के लगभग, जेल के परमदेव 'सुपरिन्टेंडेंट' दलबल सहित पधारते। जब वे आते मालूम पड़ता कोई नवाब आया। बेतार के तार पहले से चलते। बड़े साहब आते हैं--दूर से सुनायी पड़ता। फाटक का वार्डर कपड़े-लत्ते दुरुस्त करके सजग हो जाता, ऐसा अकड़कर खड़ा हो जाता, मानो सतर्कता की जीती-जागती मूर्ति हो। फिर, पास आते ही, धड़ाके से फाटक खुलता और जाड़े के दिनों में तख्तेताऊस के झालर छत्र को भी मात करने वाले लम्बे और झालरदार छाते की छाया में, डल बढ़ाते हुए या लपकते हुए साहब बहादुर दिखायी पड़ते। पीछे उनकी सेना होती। जेलर होता, असिस्टेंट जेलर होता। जेल के स्टाफ के और भी कई शानदार प्राणी होते। कई वार्डर होते और होते साथ में ऐसे, पक्के कैदी जो जेल सेवाओं की बदौलत जेल के वार्डरों के तुल्य पदाधिकारी से बना दिये जाते हैं। सुपरिन्टेंडेंट से हम लोगों को खड़े होकर बातें करनी पड़ती थीं। परन्तु बैठी हुई अवस्था से उठने की अवस्था में न आने के लिए उस समय तक जब तक कि जेल के परमदेव नहीं जाते या उनके जाने की शंका दूर न हो जाती, तब तक हम लोग घेरे के भीतर टहलते ही रहते। वे आते, पहले वह खुद सलाम करते और कभी-कभी हम लोग 'गुड मार्निंग'।

पूछते, अच्छे तो हैं। हमें भी जो कुछ कहना होता कहते। कोई बीमार होता तो बीमारी की बात कही जाती। कोई असुविधा होती तो उसकी व इधर-उधर की

भी बातें होतीं और इस प्रकार पांच-सात मिनट और कभी कुछ अधिक बातें होती और इसके बाद साहब बहादुर उसी प्रकार चले जाते, जिस प्रकार आते। इसके पश्चात लीडर और इंगलिशमैन मिल जाते। यहीं दोनों पत्र मिल पाते थे। इनका पाठ होता--देश के अन्य पत्रों के दर्शन न होते। एक-आध बार सुपरिन्टेंडेंट से कहा भी। 'स्वदेश' के नाम से उन्हें कंपकंपी आ गयी। एक-दो अंक 'स्वदेश' के और अन्य देशी पत्रों के मिले भी, परन्तु फिर बंद कर दिये गये, इसके पश्चात नहाते-धोते और कपड़े साफ करते। भोजन तैयार होता और उसे पेट में पहुंचाते। शाम के लिए भोजन की जल्दी पड़ती। तीन बजे ही जो कुछ होता, वह तैयार हो जाता। उसे अपनी कोठरी में रख लेते और पांच बजे तक बंद हो जाते। रात को रोशनी मिल जाती। भोजन करते, पढ़ते और रात्रि की निस्तब्ध शांति में ईश्वर का नाम लेते हुए सो जाते। रात को सोते-सोते जागते भी और जागते-जागते सोते। संध्या से ही, जेल भर में आवाजें आने लगतीं। एक, दो, तीन, चार, वगैरह-वगैरह कैदी, तेल, लालटेन, ताला सब ठीक हुजूर।' जेल भर में रह-रहकर रात की निस्तब्धता को चीरने वाली ध्वनि होती। पहली रात को, रह-रहकर होने वाले कोलाहल पर बड़ा अचरज हुआ। पूछने पर पता लगा, हर दसवें मिनट पर प्रत्येक बैरक के कैदियों की गणना होती है, गणना, करने वाला कैदी होता है। वह 'एक, दो, तीन' करके गिनता है और वह अपने अनुपस्थित हुजूर को पुकारकर सब कुछ न केवल कैदियों की गिनती ही, किन्तु बेड़ी, ताला, लालटेन आदि तक के ठीक होने की सूचना देता है। उसके 'हुजूर' के कान में यह बात पड़ती है या नहीं उसे तो मशीन की तरह हर दस मिनट पर अपनी बात को दोहराते रहना ही वाजिब है। जब जेल में राजनीतिक कैदी बढ़े और साधारण कैदियों के साथ रखे गये, तो इस बारम्बार की जोरदार पुकार ने उन्हें बहुत परेशान किया। वे सोना चाहें , परन्तु कानों पर लगातार पड़ने वाली हर टेर उनकी नींद को बार-बार तोड़ देती थी। इस पर उन्हें भी कुछ सूझी। लगे वे भी आवाजें लगाने, इधर हुजूर का भक्त कहता, कैदी लालटेन, ताला ठीक है। वे चिल्लाते, कैदी भाग गये और लालटेन ताला टूट गये। इस पर, वार्डर बिगड़ा और जेल वाले बहुत नाराज हुए। अंत में वे लोग अलग रखे जाने लगे। एक बार इसी प्रकार की आवाजें देने पर दो राजनीतिक कैदी हमारी बैरक में भेज दिये गये। परन्तु सीधे हमारे यहां नहीं भेजे गये। पहले उन्हें काल कोठरी में बंद किया गया। वहां भी वे 'वन्दे मातरम्' की ध्वनि उठाते रहे। बड़े साहब एक काले साहब थे। उनका नाम था मि० मैककटिंग। आदमी अच्छे थे। उनका जिक्र आगे आयेगा। इस पर वे बहुत परेशान हुए। उन्हें यह भी पता लगा कि वे लोग जेल के इंस्पैक्टर जनरल की आज्ञा बिना काल-कोठरी में रखे भी नहीं जा सकते। वे दौड़े हुए हम लोगों के पास आये। हमसे मदद चाही। इस बात की कि इन दोनों बिगड़े दिलों को शांत रखें। हमने अपने ऊपर यह भार लिया। वे दोनों हमारे बैरक में भेज दिये गए। एक थे स्वामी इंस्पैक्टर गणेशानन्द जी, अपने स्वदेशी चना जोर गरम के लटके और प्रचार के कारण दफा-108 के शिकार बने थे। और दूसरे थे उन्नाव जिले के एक ब्रह्मचारी जी। वे भी दफा-108 में आये थे। और हमारी पांच कोठरियों में से दो में अब दो-दो आदमी हो गये। पहले दिन नवागंतुकों के लिए एक ही कोठरी में डेरा दिया गया। परन्तु उन्हें यहाँ कलह रोग ने सताया। दोनों आपस में ही लड़ पड़े और अंत में, उनकी लड़ाई जब तक वे हमारे साथ रहे, बराबर चलती रही। लोगों की दाब वे मानते और हमसे दबते रहते। परन्तु जहां तनिक देर के लिए भी अकेले पड़ जाते तो लड़ पड़ते। बड़ी मुश्किल से शांत होते । दोनों को अपनी-अपनी योग्यता और देशभक्ति का दावा था। ब्रह्मचारी जी बड़े प्रभावशाली वक्ता बनते और स्वामी जी बड़े भारी कार्यकर्ता।

ब्रह्मचारी जी स्वामी जी को निरा ढोंगी कहते और स्वामी जी ब्रह्मचारी जी को निरा चिरकिटा। बातें बढ़ जाती और केवल हाथापाई की कसर रह जाती। उनको सुलझाये रखने का हम लोग सदा ख्याल रखते और अंत में कुछ दिनों बाद वे दोनों बनारस जेल में भेज दिये गये, तो इस बात का खेद रहा कि उनको आपस में लड़ने से कौन बचायेगा। परन्तु वह संतोष भी हुआ कि अब वहां जेल के वार्डरों तक के सामने लज्जाजनक दृश्य न होंगे। वे दोनों अब तक जेल से रिहा हो चुके हैं। आशा है अब वे न लड़ते होंगे।

रात को एक बात पर और भी कुछ विचार करना पड़ा था। कई दिन तक लगातार 'किट-किट' का -शब्द सुनने के पश्चात् मैंने शिवचरण लाल जी से कहा, "या तो बैरक के घेरे में सांप रहता है जो रात को बोलता है या फिर आपकी कोठरी मेरी कोठरी से सटी हुई है, आप रात को दाँत किटकिटाते हैं।" उन्होंने कहा कि दाँत किटकिटाने की बीमारी मुझे नहीं है। आप जिसे दाँत किटकिटाना या सांप की बोली समझते हैं, वह कुछ और ही बात है। सामने काल कोठरियाँ हैं, इनमें कैदी रहते हैं जिन्हें काल कोठरी या एकांत में रहने की सजा दी जाती है। जो चौकीदार बाहर से उन कोठरियों पर पहरा देते हैं वे कोठरियों के छड़दार दरवाजे पर अपना डंडा फेरते हैं। उससे यह आवाज होती है। जब कैदी सो जाता है, डंडे से दरवाजा पीटते हैं और उठ-उठ चिल्लाते हैं। मैंने ध्यान से ध्वनि को सुना और इस नतीजे पर पहुँचा कि शिवनारायणलाल जी की बात ठीक है। परन्तु वह कितनी बड़ी क्रूरता है। कैदियों को इस प्रकार से सोने ही नहीं दिया जाता है। उनके कानों पर ढोल से पीटे जाते हैं साधारण कैदियों के लिए तो गिनती गिनने वाला है और काल-कोठरी वालों के लिए डंडा पीटने वाला। उठ-उठ की आवाज इसलिए लगाई जाती है कि कहीं किसी प्रकार का धोखा न हो जाये। कहीं कैदी गायब न हो जाये और उसके गायब होने का तुरंत ही पता न लगे। आप कहेंगे कैदी मुँह न ढांपे, रोशनी से उसका मुंह दिखलाया जाया करे। परन्तु इस पर जेल के लाल बुझक्कड़ कहेंगे कि केवल मुँह देखने से काम न चलेगा। यदि कैदी उस समय तक मर चुका हो तो मरने की रिपोर्ट भी तो तुरंत ही करनी चाहिए।

मतलब यह कि आप जेल वालों के क्रूर तर्क से कदापि जीत नहीं सकते। आप समझते हैं कि फिर, कैदी सोते कैसे होंगे ? वे सोते तो हैं, परन्तु उसी प्रकार जिस प्रकार तीसरे दर्जे की खूब भरी गाड़ी में यात्री लोग किसी प्रकार बैठे-बैठे ही नेत्र मूंदकर नींद का झपाटा मार लिया करते हैं। यदि कैदी रात को बिलकुल ही न सोयें या इस कोलाहल में वे नींद लेने के अभ्यासी न हो जायें, तो वे जीते कैसे रहें और दिन को काम कैसे करें ? कहते हैं, नेपोलियन रणक्षेत्र में घोड़े की पीठ पर बैठे-बैठे कुछ मिनटों की नींद ले लिया करता था। नींद के सम्बन्ध में तो भारतवर्ष के जेल के कैदियों को भी नेपोलियन के ही समान समझिये।

हाँ, यह कहना तो रह ही गया कि खाने-पीने की क्या व्यवस्था थी। यूरोपियन बैरक का अपना अलग रसोईघर था। साहब लोग कैदी हो जाने पर भी साहब लोग ही रहते हैं। साहब कैदियों को बावर्ची मिलता है, उन्हें जिनिस मिलती है। जिनिस अच्छी होती है-- मक्खन-डबलरोटी, तरकारी, चावल आदि। हम लोग कैदी साहब लोगों के साथ रखे गये थे। इधर राजनीतिक कैदियों के व्यवहार के सम्बन्ध में सरकार की गति कुछ बदली भी थी। इसलिए, हमारे साथ भी वैसा ही व्यवहार हुआ जैसा कि कैदी साहबों के साथ। अर्थात् हमें चावल, आटा, दाल, कुछ घी, पाव भर दूध, नमक आदि सामग्री मिल जाती थी। एक कैदी मिल गया था भोजन बनाने को।

तरकारी की एक छोटी-सी डलिया जेल के बाग से यूरोपियन बैरक में सदा आती थी। उसमें से साग-पात ले लेते, छूतछात का मसला चलाये से भी न चलता। हमने जगन्नाथपुरी बना रखी थी। भोजन बनता और उसे बनवाते भी, परन्तु ऐसा भद्दा बनता कि किसी प्रकार पेट में पहुँचा भर देते। आटा साफ होता। बाकी समान भी ऐसा-वैसा ही होता, परन्तु तो भी हम लोग जेल में खासे नवाब थे। औरों को यह भोजन भी कहाँ नसीब ? आटा, चावल, दाल आदि बच जाती। लुक-छिपकर वार्डरों के हाथ-पैर जोड़कर, दूसरी बैरकों के साधारण कैदी, गाँधी के चेलों से मिलने के लिए यूरोपियन बैरक में आते और जब हम लोग अपने बचे हुए सामान में से उन्हें कुछ दे देते, तो वे प्रसन्न होते, जैसे कि उन्हें आकाश के तारे हाथ लग गये हों। अपने पैसों से फल, मिठाई आदि मंगा लेने की आज्ञा थी, परन्तु कौन लाता ? जेल वाले कभी-कभी दया करते। वे फल ला देते और इसलिए कि सुपरिन्टेंडेंट की आज्ञा थी और मुझे अग्निमांद्य था।

लखनऊ के इस जेल में पहुँचने के तीन-चार दिन बाद मुझसे कहा गया, आप डिस्ट्रिक्ट जेल जायें, वहाँ, आपके साथ विशेष व्यवहार होगा। इस जेल के साथियों के मोह ने पल्ला पकड़ लिया। मैंने कहा-- "मैं ऐसा ही अच्छा, विशेष व्यवहार से नमस्कार।"

हम लोगों से उस समय काम नहीं लिया जाता था। परन्तु कुछ दिन पहले बात ऐसी नहीं थी। शिवचरणलाल जी, सीताराम जी और रामनाथ जी, इन तीनों को साधारण कैदियों के बीच में रहकर काम करना पड़ता था। मुझे काम नहीं करना पड़ा था। हमारे दो गोरे साथियों से काम लिया जाता था। बान बटने का काम उन्हें मिला था। सवेरे ही मूँज आ जाती। सुपरिन्टेंडेंट के आने के समय टाट बिछाकर दोनों बैठ जाते और बान बटने लगते। जब तक वह निकाल जाता, तब मूंज उठाकर अलग रख देते। कोई न पूछता कि काम पूरा क्यों न हुआ। पूरा काम 300 गज बान बटना है। हमारे गोरे साथी सात-आठ गज़ बटकर ही रह जाते। मिसमला तो इतना भी न बटता। हाँ, मैकमट्रे लड़का था। उसे डर लगता। इसलिए अपनी खुराक में से आधी पावरोटी एक बाहरी कैदी को दे दिया करता और वह कैदी डेढ़ घंटे में 100-150 गज़ बान बटकर उसे दोपहर को दे जाता। मैंने भी बान बटना सीख लिया और पालीवाल जी को सूचना दी कि जेल में आकर मैंने यह काम सीखा है। बाहर पहुँच कर आपकी चारपाई के लिए बान बट दूँगा। पालीवाल जी ने उत्तर दिया कि "आपको यहाँ आकर मेरे लिए बान बटने की जरूरत न पड़ेगी, क्योंकि मैं भी शीघ्र ही आपके पास पहुँच जाऊँगा और इस कला को सीख लूँगा। मैं उनके आने का इंतजार करता रहा पर वे मेरे पास न आये। हाँ, मैं बाहर आ गया हूँ और किये हुए वादे को पूरा करने के लिए तैयार हूँ। जमादार लोग हमारी बैरक में दूसरे कैदियों को नहीं आने देते थे। उन्हें मनाही थी। एक दिन डाक्टर ने हमें तोलने के लिए फाटक पर बुलाया, आदमी के साथ हम लोग जा रहे थे। उस ओर से सुपरिन्टेंडेंट आ रहा था। उसने हमें रोक दिया । बोला, इन्हें बाहर मत ले जाओ, इनकी तोल भीतर ही कर लो। यह सब इसलिए कि कोई भी कैदी हमारे संसर्ग में न आने पाये। तो भी साधारण कैदी नज़र बचाकर, जमादारों के हाथ-पैर जोड़कर, हमारी बेरक में आ ही जाते थे।

सूर्यास्त के पहले हम लोग कोठरियों में बन्द कर दिये जाते। जगह की कमी से सीताराम जी और रामनाथ जी एक ही कोठरी में बन्द होते। दोनों को गाने का शौक था। रामनाथ जी अलापना आरंभ करते। वे उर्दू में कविता किया करते हैं। जेल में जो बीती उस पर उन्होंने कुछ शेर कहे थे। किसी तरह उन्हें पेंसिल का एक टुकड़ा मिल गया था। उसी से उन्होंने अपनी रामायण के हाशिये पर उन शेरों को नोट कर लिया था। संध्या होते ही उन शेरों को वे गाते। सीताराम जी ने एक घड़े को पखावज बनाया था। उसी पर वे ताल देते। जब रामनाथ जी चुप होते तो सीताराम जी भी कुछ गाते। रामनाथ जी को गाने का बेहद शौक था। यदि किसी दिन वे किसी कारण गाने की इच्छा न करते तो उन्हें बहुत मनाने की जरूरत न पड़ती। सीताराम जी कोई चीज छेड़ देते। सीताराम जी की चीज पूरी भी न होने पाती कि रामनाथ जी जोर से अलापने लगते। बन्द होने के पहले, कुछ व्यायाम करने के लिए बैरक की दीवारों के किनारे-किनारे या तो हम लोग दौड़ लगाते या जोर से चलते। मैकमट्रे को बहुत से यूरोपियन खेलकूद आते थे। वह उन्हें दिखलाता, हम उन्हें सीखते भी। घूंसेबाजी (बाक्सिंग) वह खूब जानता था। शिवचरणलाल जी ने उससे घूंसेबाजी सीखी। मैकमट्रे में और भी अनेक गुण थे। वह तैरना जानता था। घोड़े की सवारी वह अच्छी तरह कर लेता था। कुछ गाना जानता था। पियानो आदि कई साज़ों को बजाना जानता था। पढ़ा-लिखा भी था। सीना पिरोना और अच्छे कसीदे काढ़ना भी उसे आता था। खेलकूद, व्यायाम आदि में भी वह निपुण था। सफाई का उसे बहुत ख्याल था। चीजों के सजाने का उसे अभ्यास था। सजावट की परख उसमें थी। उसकी उम्र उस समय मुश्किल से 21-22 वर्ष की होगी। परन्तु इस उम्र में ही उसे इतना आता था जितना कि इस उम्र के भारतीय युवकों में बहुत कम पाया जाता है। वे बातें उसमें विशेष रूप से न थीं। उसका तो कहना था और बात बिलकुल सच है कि उन स्कूलों में जहाँ यूरोपियन बालक पढ़ते हैं, ये सब बातें सिखाई जाती हैं और बालक वहाँ से इतना योग्य होकर निकलता है कि अपने बाहुबल द्वारा अपनी रोटी कमा सके और अपमान करने या आक्रमण करने वाले से अपनी रक्षा कर सके। लाला लाजपतराय ने एक बार 'मार्डन रिव्यू' में लिखते हुए कहा था कि भारतीय युवकों के पढ़ने-लिखने का क्रम ऐसा दूषित है कि पढ़ -लिखकर वे इस योग्य भी नहीं होते कि कहीं किसी समाज में उन्हें बैठा दिया जाये, तो वे अपने किसी गुण से लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लें और इस प्रकार अपने लिए बैठने या खड़े होने का स्थान प्राप्त कर लें। बात अक्षरशः ठीक है। हमारे शिक्षा प्राप्त युवकों के अनेक दबे हुए गुण दबे ही रह जाते हैं। केवल साक्षरता का ही नाम शिक्षा नहीं है। शिक्षा से मनुष्य के गुणों का विकास होना चाहिए। जिस शिक्षा से ऐसा नहीं होता उसे शिक्षा के नाम से पुकारे जाने में हिचकिचाहट होनी चाहिए। खयानत के जुर्म में कैद में आये हुए मैकमट्रे की शिक्षा हम लोगों की शिक्षा से अच्छी थी। खुले हुए संसार में छोड़ देने पर भी वह अपने बाहुबल से रोटी कमा सकता था। उसे अनेक बातें आती थीं। नियमित और वैज्ञानिक व्यायाम ने उसका शरीर बहुत दृढ़ कर दिया था। वह अच्छी तरह मेहनत-मजदूरी भी कर सकता था। परन्तु हम लोगों में से कोई भी ऐसा न था जो अपने गुणों और अपनी शारीरिक शक्ति का इस हद तक भरोसा कर सकता। मिसमला इसके विपरीत था। वह आलसी था। उसे सफ़ाई से भी प्रेम नहीं था। जब हजरत आये थे तब भी रूप बनाये आये थे। बड़े-बड़े फौजी जूतों में धोती की किनारी का फीता लगाये थे और फटे-पुराने साहबी कपड़े पहने हुए थे। जब छूटे तब भी जेल के उस फंड से जो कैदियों की सहायता के लिए रहता है, उन्हें पाँच रुपये की सहायता दी गई। हाँ, था मसखरा। बहुधा जब सन्नाटा होता और कुछ कहने-सुनने को जी न चाहता तब मिसमला को मसखरेपन से हँस देना पड़ता। प्रसिद्ध आयरिश गीत 'टिपरेरी' वह इस अदा के साथ हाथ-पैर हिलाते और आँखें चमकाते हुए गाता कि सबको हंसी आ जाती। बहुधा वह नकल करता

और हम भी दिल बहलाने के लिए उसकी इन बातों को देखना-सुनना चाहते। उसे अपने यूरोपियन होने का ख्याल भी कभी-कभी आ जाता। अपनी नस्ल 17वीं और 18वीं शताब्दी में भारतवर्ष में आये हुए फ्रांसीसियों से मिलाता। एक दिन स्वामी गणेशानंद जी ने अपना 'चना जोर गरम' वाला गीत जोर से गाया। उस गीत में एक कड़ी इस आशय की थी कि कलकत्ता की कालिका माई के सामने ऐसे बकरों का बलिदान होना चाहिए जो सफेद हों और जिन पर तिल भर भी स्याही न हो। इस कड़ी पर मिसमला बेतरह बिगड़ कर बोला, तुम स्वराज्यवादी इस प्रकार हम लोगों को मारना चाहते हो, मैं सुपरिन्टेंडेंट से शिकायत करूँगा कि इस प्रकार से हमें धमकाया जाता है। हमने बहुत समझाया। कहा, 'किसी को मारने की किसी की नीयत नहीं है और न कोई किसी को धमकाता है।' बड़ी मुश्किल से मिसमला माना। एक-आध बार इसी प्रकार किसी जातीय बात पर उससे इतनी रार बढ़ गई कि हाथापाई तक नौबत आ जाने वाली थी। बड़ी मुश्किल से उसका पारा नीचे लाया जाता था। एक दिन मिसमला ने अपना यूरोपियनत्व जिस प्रकार से प्रकट किया उस पर उसे बहुत झेंपना पड़ा। मैकमट्रे ने एक कैदी का सिर अपनी जांघ पर रखकर उसे दाबना शुरू किया। मिसमला ने इस दृश्य को देखा और दिल ही दिल में जल भरा। इस समय तो कुछ न बोला, परन्तु अकेले पाकर मैकमट्रे से बोला, 'ऐ ! यह तुम क्या करते हो, तुम एक काले आदमी का सिर दबाकर गोरों की प्रतिष्ठा कम करते और कालों के हौसले बढ़ाते हो ? मैकमट्रे मिसमला को पसन्द नहीं करता था। वह उसक मैलेपन से नाराज रहता था। इस उपदेश को सुनकर वह बिगड़ पड़ा और बोला--'मैं जो चाहूँगा सो करूँगा तुमसे मतलब।' बेचारे मिसमला साहब अपना-सा मुँह लेकर रह गये। मिसमला ही को यूरोपियन होने का दावा नहीं था। एक साहब और भी थे जो कदम बढ़ाकर यूरोपियन बने जा रहे थे, हालांकि आपके रंग में और शुद्ध शिलाजीत के रंग में थोड़ा-सा अन्तर था। यह साहब थे जेल के सुपरिन्टेंडेंट डाक्टर मैककर्टिस। वैसे तो बहुत भले आदमी हैं। परन्तु कहते हैं उन्हें अपना देशीपन पसन्द नहीं। इसलिए, जब वे बोलते थे, तब जबान खून ऐंठकर बोलते थे। मालूम पड़ता था कि वे हिन्दी जानते ही नहीं। हम लोगों से बहुधा खूब बातें करते थे। एक दिन बातों ही बातों में आपने फरमाया कि हम तीन यूरोपियनों के कन्धे पर ही इस 2000 कैदियों के जेलखाने का पूरा भार है, उन्हीं पर सारी जिम्मेदारी है। ये तीन यूरेपियन कौन थे ? एक जेलर, दूसरे असिस्टेंट जेलर और तीसरे ? जब बहुत ख्याल दौड़ता तो मालूम हुआ कि तीसरे आदमी डाक्टर मैककर्टिस साहब खुद ही हैं। तो भी डाक्टर मैककर्टिस बहुत भले आदमी थे। या यों कहिये हैं क्योंकि वे इस समय फतेहगढ़ जेल के सुपरिन्टेंडेंट हैं। वे हम लोगों को सुविधा और आराम वहाँ तक अवश्य देते थे, जहाँ तक वे दे सकते थे। बड़ी शिष्टता के साथ बात करते और आते ही पूछते-- 'आर यू हैपी ?' आप सुखी तो हैं ? हम सदा उत्तर दिया करते, 'ऐज़ हैपी ऐज़ वन कैन बी इन जेल।' उतने ही सुखी जितना जेल में हुआ जा सकता है। वे नियम के बाहर काम न करते, परन्तु नियम के भीतर हमें पूरी आजादी देते। साधारण कैदियों तक को उनसे आराम मिलता। साधारण कैदियों की जबानी मालूम होता कि जब से कलुआ साहब आया है तब से पेट भर भोजन मिलता है और आटे में कुछ मिलाया नहीं जाता। बाग की तरकारियाँ कैदी को मिलनी चाहिए, परन्तु वे जाती हैं जेल के कार्यकर्त्ताओं के पेट में। मिस्टर मैककर्टिस ने बाग में तरकारी न होने पर बाजार से तरकारी मंगाकर कैदियों को दी और खुद रसोईघर में रोटी की सूरत और वज़न देखने जाया करते थे। जेल के कैदी उनसे खुश थे और जेल के कर्मचारी उनसे नाराज, कारण स्पष्ट ही है। इस जेल में तीन-चार गोरों से और साबका पड़ा था। परन्तु एक गोरे का ज़िक्र करके इस कांड को समाप्त कर दूँगा। जिस समय इस जेल में पहुँचा था उस समय इसका जेलर था, फोर्डम। उसकी बड़ी-बड़ी मूँछें थीं और बहुत अकड़कर चला करता था। कैदी उसके नाम से काँपते थे। राजनीतिक कैदियों को तंग करना वह अपना धर्म समझता था। पाठक प्रतापगढ़ के उन छः लड़कों को न भूले होंगे जो पंडित मोतीलाल नेहरू के उस संदेश के बाँटने पर,

जो किसानों के लिए था, पकड़े गये और छः-छः मास की सजा पाकर लखनऊ जेल भेज दिये गये थे। इलाहाबाद की एक सभा में इन लड़कों से अपनी जेल में बीती सुनाई थी। एक युवक ने यह कहा था, जेलर ने मेरे तमाचे लगाये थे। जिसने इस युवक को तमाचे लगाये थे, वह था मिस्टर फोर्डम, बड़ी बेदर्दी से इस शख्स ने उस युवक को मारा था। मेरे साथियों में एक या दूसरे ने उसे मारते हुए देखा था। मेरी बैरक एक जमादार ने मुझसे कहा था कि मैंने फोर्डम साहब को मारते हुए देखा था। जब बातें खुलीं तो इस डर से कि कहीं तहकीकात में सारा भंडा न फूट जाये, फोर्डम साहब ने इस जमादार के हाथ जोड़े थे कि बाबा, इस बात को किसी से कहना नहीं। मेरे साथ मि० फोर्डम साहब का व्यवहार अच्छा रहा। मुझसे तो वह घुल-घुल कर बातें करता और एक बार वह मुझसे पढ़ने के लिये एक किताब भी ले गया था। परन्तु दूसरे लोग उससे परेशान रहते थे और मेरे साथी राजनीतिक कैदी भी उसके हाथों बहुत दुख भोग चुके थे और अपमान सह चुके थे। मि० मैककर्टिस के आते ही, यह शख्स छुट्टी लेकर चला गया। मुझसे कहता था कि पेंशन लेकर आस्ट्रेलिया में जा बसूँगा। इसका एक लड़का नैनी जेल में जेलर है। उसके ऊपर एक कैदी पर आक्रमण करने और उसकी नाक काट लेने का हाल ही में पत्रों मे छपा था। यह सुना गया था कि पिता और पुत्र सख्ती में एक समान हैं। शायद यह दुर्घटना इसी कारण हुई हो।

हम तो भी मजे में थे। साधारण कैदियों की बहुत बुरी कटती है। उन्हें एक जांघिया मिलता है, एक टोपी और एक नीमस्तानी कुर्ता, एक लंगोटी भी दी जाती है। सवा हाथ लम्बी और एक बालिश्त चौड़ी। जांघिया के लिए डोरा या इजारबंद नहीं दिया जाता। उसके बिना तो वह पहना भी नहीं जा सकता। कैदी उसे पैदा कर लेते हैं। बर्तन के नाम से एक तसला और एक कटोरी मिलती है। तसला लोटा और थाली और सब कुछ का काम देता है। गर्मी के दिनों में भीतर बंद होने के समय उससे घड़े का काम लिया जाता है। पानी उसी में रख लिया जाता है। जंग के कारण उसमें रखा हुआ पानी पीने योग्य नहीं रह जाता, परन्तु पीना उसी को पड़ता है। जाड़े से बचने के लिए केवल दो कम्बल मिलते हैं। वे भी बहुधा फटे-पुराने और ऐसे कि उनमें जाड़ा जाना कठिन है। सफाई न रख सकने के कारण कैदियों के कपड़े और कम्बल में जुओं और चीलरों की फसल खूब आती है। जाड़े के दिनों में हम अपने कम्बल दूसरे कैदियों को रात के लिए दे दिया करते थे। भला यह हुआ कि सवेरे उन पर बैठने के कारण जुएं और चीलर सबने अपने सब कपड़ों में फैला लिए थे।

गर्मी के दिनों में पचास-पचास, साठ-साठ आदमियों को घुस-घुसकर थोड़ी-सी जगह पर शाम से ही पड़ रहना और सोने का यत्न करना या समय-समय पर निद्रा पर धावा मारना, यह जेल का सबसे क्रूर दृश्य है। इतने मच्छर और इतनी गर्मी होती है कि निद्रा का आना असंभव है। मच्छरों से बचने के लिए साधारण कैदी हम लोगों से कपड़ों के टुकड़े मांगते थे। धोतियाँ फाड़-फाड़ कर उन्हें दी जातीं। वे उसे छिपाकर ले जाते क्योंकि मिले हुए कपड़ों के अतिरिक्त पास में और कुछ

का होना जुर्म माना जाता है। रात को उससे मुँह, हाथ, और पैर ढांप कर लेटते। तब मच्छरों के आक्रमण से रक्षा होती। यह लखनऊ जिला जेल का हाल है। और जगह मच्छरों का क्या हाल है, सो पता नहीं साधारण कैदियों को साधारण ढंग से मिट्टी मिली रोटी मिलती है। और कीचड़ सदृश काली और पानी की तरह पतली दाल। उसके सिवा और कभी कुछ नहीं। जिला जेल में मैंने एक कैदी को अमरूद दिया,वह बोला, आज दो वर्ष बाद इस चीज को खा रहा हूँ। होली पर बाहर से चीजें आ गई थीं। वे चीजें साधारण कैदियों में भी बंटी। एक कैदी ने एक लड्डू पाकर कहा था, आज चार वर्ष बाद मुझे लड्डू खाने को मिला। पहनने को कम और खाने को खराब तो मिलता ही है, व्यवहार बहुत बुरा होता है। नये नियमों के अनुसार तो पाखाना और पेशाब तक उन्हें कवायद के ढंग से करना पड़ता है। एक साथ खुले स्थान में इन कामों को करना पड़ता हैं मेहनत खासी पड़ती ही है। अन्याय यह होता है कि कभी तंग करने के लिए, कभी पैसा वसूल करने के लिए, कमजोर आदमियों को ऐसे काम में लगा दिया जाता है, जिसे कर नहीं पाते, फिर उन्हें दण्ड दिया जाता है। गालियाँ और मार तो मामूली चीज है। काल कोठरी में रख दिये जाते हैं, पैरों में बेड़ियाँ डाल दी जाती हैं, और भी फजीहतें होती हैं। काल कोठरी में सांप-विच्छू निकल आयें तो भी चिल्ला कर मर जाइये, कोई सुनने वाला नहीं। जिला जेल में मथुरा के श्री मदनमोहन चौबे मेरे साथी थे। पहले उन्हें काल-कोठरी में रखा गया था और उनसे चक्की पीसने का काम लिया गया था। एक दिन रात को एक सांप कोठरी में निकल आया। वे चिल्ला-चिल्ला कर रह गये, किसी ने उनकी बात न सुनी, रात भर चक्की के ऊपर चढ़कर, चक्की आदमी की छाती के बराबर ऊँची होती है, समय काटा। साधारण कैदियों की बीमारी, बीमारी नहीं समझी जाती। बीमारियों के आरंभ होते ही कैदियों को पंक्ति में बैठाकर, घड़े में भरा हुआ कुनैन मिक्सचर या यों कहिये कि कुनैन का पानी पिलाया जाता है। वे मुँह खोले बैठे रहते हैं, कम्पाउंडर इन खुले मुंहों में पानी डालता जाता है। मेरे साथी रामनाथ जी के कान में वहुत दर्द होता था। डाक्टर साहब से बहुत दवाइयाँ लीं, परन्तु कोई लाभ नहीं। एक दिन डाक्टर साहब आये, बड़े गौर से उन्होंने देखा, फिर एक सलाई कान में डाली। एक मिनट बाद हम लोग देखते क्या हैं कि रामनाथ जी ने चीख मारी और बेहोश होकर गिर पड़े। जब होश में आये तब पता लगा कि डाक्टर साहब ने कृपाकर सलाई से कान के पर्दे पर हमला कर दिया। मैकमट्रे बीमार पड़ा। दस्त आने शुरू हुए। कुछ खाया न जाता था। डाक्टर साहब मिक्स्चर देते जाते थे। कोई फायदा न होता था। हाँ, दिल्लगी थी कि जब तोला जाता था तो उसका वजन बढ़ा हुआ मिलता। चेहरा पीला पड़ गया था और हम लोगों के वाह्य चक्षु उसे दुवला ही पाते थे। परन्तु तराजू का काँटा उसका वजन बड़बड़ बढ़ाता जाता। इस पर उसे बड़ा आश्चर्य था। मुझे भी 10-12 दिन के अन्दर ही जेल की तराजू ने पाँच पौंड बढ़ा दिया था। मुझे मालूम पड़ता था कि मैं घट गया हूँ, परन्तु जेल की तराजू कुछ और ही बात कहती थी। इसका रहस्य खुला और उस समय जब अपनी मसूरी यात्रा याद आई। हम कुछ मित्र मसूरी में एक अंग्रेजी दुकान में दाम देकर तुले। सब लगभग पाँच-पाँच पौड बढ़े निकने । खुश थे कि मसूरी में आकर बढ़े। दुकान वाले अंग्रेज ने भी कहा कि मसूरी की आबोहवा ऐसे ही फायदा करती है। तीन-चार रोज बाद, जब बिना दाम दिये हुए एक मित्र की दुकान पर तुले, तब मालूम हुआ कि अभी मसूरी की आबोहवा और अन्न-जल ने कुछ भी करामात नहीं दिखाई है। वह तो अंग्रेजी दुकान की तराजू का हृदयाकर्षक चकमा था। यही अपनी कीर्ति के लिए जेल वाले अपनी तराजुओं से कराते हैं। मैं जेल के चिकित्सा प्रबंध के असंतोषजनक होने की बात कह रहा था। मैं उसे फिर दोहराता हूँ क्योंकि इसी कुप्रबन्ध पर अवधनारायण लाल का बलिदान हुआ था। साधारण कैदियों की दशा का पूरा वर्णन किया जाये, तो एक बड़ी पोथी तैयार हो जाये। यहाँ उसकी आवश्यकता नहीं। न इस बात की आवश्यकता है कि यह बतलाया जाये कि जेल में क्या-क्या सुधार हों। सुधार चाहने वाले, सुधार की सोचें। इन पंक्तियों का लेखक वर्तमान जेलों की उपयोगिता पर विश्वास ही नहीं करता। ये जेल तोड़ दिये जाने चाहिए। देश के कल्याण के लिए जिन लोगों की आज़ादी का छीना जाना आवश्यक समझा जाये, उनके और किसी प्रकार से रखने की व्यवस्था होनी चाहिये। यूरोप के ढंग के इन कैदखानों मे पशुता का राज्य है। इनसे मनुष्यों का पशु और पशुओं को दैत्य बनाया जाता है। जिन अपराधों के लिए इनमें रखे जाते हैं, उन्हीं अपराधों के अधिक होशियारी और निडरता के साथ करने के लिए उन्हें तैयार किया जाता है। चोर जेल से निकलकर डाकू बनता है और डाकू हत्यारा। उन्नति होती है, परन्तु उल्टी दिशा में। बाहर की हवा न लगने पावे, इसके लिए चौकी, पहरा, ताले और बेड़ियाँ होती हैं, बड़े-बड़े फाटक और बड़ी-बड़ी जंजीरें होती हैं, परन्तु देश का कोई भी जेल ऐसा नहीं, जहाँ वही काम जोरों से न होते हों, जिनके लिए लोग जेल भेजे जाते हैं।

जेलों में चोरी होती है, दगाबाजी होती है, दुराचार होता है और व्यभिचार होता है और कराते हैं वे लोग जो उनके सिर पर अंकुश लिए सदा खड़े रहते हैं। दो-दो आने तक की रिश्वत चलती है। जो कैदी पैसे वाला होता है उसे सताकर घर से पैसा मांगने पर मजबूर किया जाता है। आने वाले पैसे में से एक चौथाई लाने वाले का, तीन चौथाई में से कुछ जेल वालों के पेट में जाता है। यदि न जाये तो तंग किये जायें और कड़े से कड़े काम पर लगा दिये जायें। शेष में जेल के जमादार कैदी के लिए तम्बाकू आदि चीजें ला देते हैं। मेरे जेल के एक साथी ने घर से बीस रुपये मंगाये। जमादार ने साढ़े सात रुपये दिये। कहा, केवल दस रुपये मिले थे। ढाई रुपये अपना कमशीन लेकर साढ़े सात रुपया आपको देता हूँ। पीछे मालूम कि घर से वह पूरे बीस रुपये लाया था, अब इन साढ़े सात रुपये में, जमादारों से जो मंगाया जाता है उसमें वह अपनी दलाली के रूप में एक चौथाई काट लेते हैं। इस प्रकार जो कैदी पैसे खर्च कर सकते हैं, वे जेल में भी अच्छी तरह से रह सकते हैं। अच्छा खा सकते हैं और हल्का काम पा सकते हैं। हमारी बैरक का एक जमादार हम लोगों से बहुधा कहा करता था कि जो चीज कहिये ला दूँ। मैंने आधी-आधी रात पर कैदियों को गरमागरम इमरतियाँ खिलाई हैं, बस शर्त यह है कि खर्च करना चाहिये। हम लोग जमादार साहब को सूखा धन्यवाद दे दिया करते। न पैसा पास था और न इस प्रकार चोरी से मंगाने की कुछ इच्छा थी। वह इच्छा इसलिये और भी न थी कि प्रत्येक रविवार को कानपुर से भेंट के लिए आने वाले मित्रों द्वारा कुछ खाने की चीजें प्राप्त हो जाया करती थीं और सुपरिन्टेंडेंट इन चीजों को जेल में आ जाने देते थे। जिन कैदियों को पैसे का ठिकाना नहीं, वे कष्ट पाते हैं और धमकी-घुड़की सहते। जेल में जुआ तक होता है और कराते हैं उसे जेल वाले। रोटियों तक का जुआ होता है। जेल में खरीद-फरोख्त होती है। रोटियाँ बिकती हैं और साथ ही बिकता है आटा, घी, तेल आदि। और ये सब चीजें इतनी सस्ती कि बाहर वालों के मुँह में पानी आ सकता है। वे शायद यह चाहने लगें कि यदि चीजें इतनी सस्ती हैं, तो क्यों न परिवार सहित, इस महंगी के समय में जेल में ही रहा जाये। आटा 16 सेर का मिल सकता है, घी दो सेर

का, तेल चार सेर का और इसी प्रकार और चीजों का हाल है। यह सब चोरी का माल है । जेल के भंडार में चोरियाँ होती हैं और माल इस प्रकार निकाला जाता है। कभी-कभी कैदी लोग जमादारों को मिलाकर इसी प्रकार के माल से त्यौहार तक मना डाला करते हैं। मेर सामने एक बार बहुत धूमधाम से सत्यनारायण की कथा हुई थी। जेल के पुराने कैदी गले के अन्दर एक थैली बना या बनवा लेते हैं। सीसे की गोली डालकर उसे बड़ा कर लेते हैं। इस थैली में दोअन्नी-चौवन्नी रखते हैं। रुपये पैसे भी रखते हैं। परन्तु अलग और छिपाकर दुराचार कम नहीं होता है। कम उम्र के लड़के कैदी दुराचारियों को सौंप दिये जाते हैं और सौंपते हैं जेल वाले। इस काम में रिश्वतें चलती हैं और फिर आपस में छुरियाँ चल जाती हैं। लखनऊ जेल में मेरे पहुँचने के कुछ पहले छुरियों के चलने की एक घटना हो गई थी। उसे चुपचाप दाब दिया गया। जेल में दाब तो न मालूम क्या-क्या बातें दी जाती हैं। कहने को जेल का प्रबन्ध बहुत अच्छा समझा जाता है। जेल के हाकिम इस इंतजाम पर इतराते हैं। परन्तु सच बात यह है कि जेल का जितना खराब इंतजाम है उतना खराब और किसी भी विभाग का नहीं। जेल के कर्मचारी पुलिस वालों से भी अधिक रिश्वतखोर और अत्याचारी हैं। मानों मनों-मनों माल जेल का साफ उड़ा लेते हैं। खूब रुपया खाते हैं। कैदियों से खाते और कैदियों का पेट काट-काट कर खाते और सरकारी खाते। जेल के कर्मचारियों के घरों की तलाशी हो तो मनों माल जेल का उनके घर से निकले। जेल के बने फर्नीचर और कालीनों से तो उनके घर पटे रहते हैं। जेल के बाग का साग और फल उनकी पैतृक सम्पत्ति है। अन्न तक उनके घरों में पहुँचता है और बड़े साहब के घोड़े तक के लिए जेल से चना जाता है। सरकार को सब बातें मालूम हैं। इसलिए वह जेल के कर्मचारियों की तनख्वाह नहीं बढ़ाती। जेल के एक कर्मचारी ने बातों ही बातों में कहा कि बड़े-बड़े अफसर सब जानते हैं कि हम लोग कितना कमाते हैं, जेल की आमदनी तो इतनी मशहूर है कि यदि आप चाहें तो एक ही जगह दस-दस काम करने वाले आ जायें, और वे भी बिना तनख्वाह के अर्थात् लोग जेल का काम बिना तनख्वाह तक करने के लिए तैयार हैं। सचमुच जेल अपने कर्मचारियों के लिए कल्पवृक्ष या कपिला गौ है। जो संस्था इतनी भ्रष्ट हो तो वह तो तुरंत नष्ट कर दी जानी चहिये। उसे कम से कम इस बात का दावा कदापि न होना चाहिये कि उससे लोक-कल्याण होता हैं जेल के कितने ही उच्च अधिकारी इस बात का दावा बड़े जोर से किया करते हैं। लखनऊ जेल के वर्तमान सुपरिन्टेंडेंट मि० क्लीमेंट्स भी उस श्रेणी के आदमियों में से हैं। वे कई बार जेल के प्रबन्ध की तारीफ मुझसे कर चुके हैं। एक बार बोले--जेल का भोजन इतना स्वास्थ्यकर है कि यहाँ आदमी बहुत कम काम करते हैं और कैदियों का वजन खूब बढ़ता है। मुझे मिस्टर क्लीमेंट्स की यह डींग कभी भली न लगी थी। मैंने उस समय कह भी दिया था, फिर आप इसे जेल क्यों कहते हैं, जेल के स्थान पर इसे सेनेटोरियम (स्वास्थ्यवर्धक स्थान) क्यों नहीं कहते। वर्तमान जेलों की उपयोगिता पर जेल के कई कर्मचारियों से बातें हुईं, तब वे वर्तमान जेलों के ढंग की खराबी कुछ-कुछ दबी जबान से स्वीकार भी करते हैं।

दिसम्बर के आरंभ में मिस्टिर मैककर्टिस फतेहगढ़ बदल दिये गये। वे निःसंदेह बहुत अच्छे आदमी थे। चलते समय उन्होंने कहा, "मैंने यथाशक्ति आप लोगों को कष्ट नहीं होने दिया।" हमने कृतज्ञता के साथ उनकी इस बात को स्वीकार किया। अंतिम नमस्कार करते हुए वे बोले, "मेरा ख्याल है, आप शीघ्र ही छूट जायेंगे, ईश्वर आप लोगों को सकुशल रखे।" हमने भी कुछ शिष्टाचार के शब्द कहे। उस समय राजनीतिक कैदियों के छूट जाने की खबर बहुत मशहूर थी। 9 दिसम्बर को युवराज लखनऊ आने वाले थे। बहुत से साधारण कैदी उस दिन रिहा होने वाले थे। उनकी सूची बन गयी थी। मि० मैककर्टिस का ख्याल था कि राजनीतिक कैदियों की रिहाई की आज्ञा पीछे आयेगी। परन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ। जिनके मन में आशा थी, उनकी आशा वहीं की वहीं बेचारी ठंडी पड़ गयी। मिस्टर मैककर्टिस की जगह पर मि० क्लीमेंट्स आये। ये आइरिश हैं और इस समय तक

लखनऊ के दोनों जेलों के अध्यक्ष हैं। आते ही इन्होंने हम लोगों से हमारे अपराध पूछे। हमने अपने-अपने अपराध कहे। उस दिन और कुछ न हुआ। हमने उनसे कलम-दवात के पाने की प्रार्थना की। प्रार्थना अस्वीकार हुई। इस अस्वीकृति से हमें कोई खेद नहीं हुआ। मिस्टर मैककर्टिस भी हमारी इस प्रार्थना को पूरी नहीं कर सके थे, मिस्टर क्लीमेंटस् भी उसे पूरा न कर सके। परन्तु हमने इन प्रार्थनाओं के पहले इच्छा पूरी कर ली थी। हम लोगों ने एक कलम और एक दवात प्राप्त कर ली थी। कहाँ से ? यह नहीं बतायेंगे। बतलाने की आवश्यकता भी नहीं। मैंने तीन साल पहले विक्टर ह्यूगो के प्रसिद्ध उपन्यास 'नाइनटी थ्री' का स्वतंत्र अनुवाद प्रारंभ किया था। आधा कर चुका था। इतना हो चुकने पर हस्तलिपि गुम हो गयी। जेल में समय काफी था चाहता था, उस काम को फिर हाथ में लूँ और पूरा कर डालूँ। कागज तो मेरे पास कुछ निकल आया। कलम-दवात की कसर थी। वह भी एक ढंग से पूरी हो गयी। उस काम में हाथ लगा दिया गया, दोपहर में उस काम को करता। मैं बोलता जाता और हम में से एक महाशय लिखते जाते। साथ ही, ऐसे ढंग से बैठते कि फाटक से जो आदमी आता उसकी दृष्टि उस पर पड़ जाती। लिखते-लिखते बहुधा ऐसा हुआ कि असिस्टेंट जेलर या जेल का कोई और कर्मचारी आ गया। फाटक खुलने की आहट पाते ही कम चौकन्ने हो जाते और कलम-दवात और कागज बिछौने के नीचे छिपा देते। जब वह निकल जाता तब फिर काम आरंभ हो जाता। जब काम कर चुकते, तब कलम-दवात को रसोईघर के टाट संधि में छिपाकर रख देते। तलाशी का डर सदा लगा रहता था, इसलिए ऐसा करना पड़ता था। मैंने 'नाइनटी थ्री' के आधे हिस्से को इस प्रकार पूरा किया। शेष खण्ड डिस्ट्रिक्ट जेल में समाप्त किये, जहाँ लिखने-पढ़ने की रुकावट नहीं थी।

जेल में जो कैदी पाखानों को साफ करने का काम कर रहे हैं उनमें से अधिकांश भंगी नहीं हैं। ब्राह्मण कैदी तक इस काम को करने के लिए या तो विवश किये जाते हैं या फिर वे अधिक कठिन काम से ऊबकर अपेक्षाकृत इस सरल काम को स्वीकार कर लेते हैं। किसी ने 'प्रताप' में एक पत्र इस सम्बन्ध में छपवा दिया। लखनऊ सेंट्रल जेल का उसमें हाल था। कैदियों के नाम दिये हुए थे और नम्बर भी। कहा गया था, ये लोग भंगी नहीं है। इनसे भंगी का काम लिया जाता है। इसके कुछ दिनों पहले ही, सरकार कौंसिल में एक प्रश्न के उत्तर में कह चुकी थी कि लखनऊ सेंट्रल जेल में केवल एक आदमी ऐसा है जो भंगी नहीं है। परन्तु खुशी से भंगी का काम करता है। यहाँ 'प्रताप' में लगभग 20 आदमियों के नाम और नम्बर दिये हुए थे जो सब जातियों के थे और जिनसे जेल में पाखाना साफ कराया जाता था। इस पत्र के छपने पर शायद सरकार ने जेल वालों से कैफियत तलब की। उसी दिन जेल में तहलका मचा रहा। कई कैदी अस्पृश्यता से उद्धार पा गये। बड़ी तहकीकात हुई कि किसने 'प्रताप' में इस चिट्ठी को छपवाया। सुपरिन्टेंडेंट मेरे पास भी दौड़े आये। एकांत में ले गये। बहुत दम-दिलासा देकर पूछने लगे--'क्या आप ही ने 'प्रताप' में इस पत्र को छपाया है ?" मैंने कहा "नहीं"। लिखने वाले का नाम जानने के लिए बहुत उत्सुक थे, बड़े चिंतित थे और अन्त

में उन्होंने अपनी उत्सुकता और चिंता यह कहकर शायद मेट दी कि मुझसे इन बातों का कोई सरोकार नहीं, यह साहब डाक्टर मैककर्टिस की कार्यवाही है, उसी पर इसकी जवाबदेही है।

दिसम्बर का महीना था। देश भर में धर-पकड़ जारी थी। जेल के अंदर तक बाहर की आँधी और तूफान की बातें पहुँच जाती थीं। साधारण कैदी कहते थे, गाँधी जी के चेले-लोगों के मारे सरकार कांप उठी है, गाँधी जी, बस जल्दी ही हम लोगों को जेल से रिहाई दे देंगे। सजा पा-पाकर लोग जेलों में आने लगे। लखनऊ जिले में मलिहाबाद परगना है। वहाँ मुसलमान जमींदार है। उनमें खिलाफत की भक्ति है। वहाँ के साधारण लोगों में भी उत्साह की बाढ़ आयी। खिलाफत और गाँधी के नाम पर शेख सट्टे से लेकर हामू तेली और ददम्मी कुनबी तक 'अल्लाह हो अकबर' कहते और 'गाँधी महाराज की जय' पुकारते जेल आने लगे। पहले खास-खास आदमी ही पकड़े गये, फिर तो यह इज्ज़त सभी के लिए लुटने लगी। हमारी बैरक के पास एक और बड़ी बैरक थी। उसे खाली कराया गया। हमने सुना, नये मेहमान आने वाले हैं। जब वे आये, तब जेल के फाटक पर और फिर बैरक में पहुँचकर उन्होंने 'अल्लाह हो अकबर', ' वन्दे मातरम्' और 'महात्मा गाँधी की जय' आदि की ध्वनियाँ ऊँची उठायीं, जेल भर गूँज उठा। पहले थोड़े आदमी थे। कोई एक दर्जन परन्तु शीघ्र ही संख्या दिन-दूनी और रात चौगुनी बढ़ चली। पहली टोली जब आयी तब उससे कहा गया कि जेल के कपड़े लो और अपने दे दो। उसने कहा, इतने कपड़े दो कि जाड़ा कट जाये। जेल वाले चुप हो गये, परन्तु दूसरे ही दिन से तंग करने लगे। खाने और कपड़े, दोनों मामलों में इन युवकों को तंग और जलील किया जाता। गले में हंसली और पैर में कड़े तो उन्होंने डाल लिया परन्तु रद्दी खाने और नाकाफी कपड़ों से वे राजी न हुए। कपड़े उनके छीन लिए गये, उस समय जाड़ा भी खूब पड़ने लगा था। दो कम्बलों में कैसे गुजर होता। तय हुआ कि इन दो कम्बलों को नमस्कार करो। उघारे बैठे ही रात काटो, जाड़ा लगे तो घुटनों को छाती से सटाकर बैठ जाओ। यदि इस पर भी जाड़ा न जाये तो परवाह न करो, मरना हो तो मर जाना और जेल-जीवन की पाशविकता का यश संसार में बढ़ा जाना। निश्चय के अनुसार काम हुआ। हम लोग अलग बैरक में थे। परन्तु घड़ी-घड़ी की खबर हम तक पहुँच जाती थी। हमारे पास काफी कपड़े थे, परन्तु वे इस समय काटते से थे। हमारे अनेक भाई पास ही, दीवार पार, नंगे और उघारे, कठिन शीत में, रात बिता रहे थे और हम गरम कपड़ों से ढके हुए आनंद से सोते? यह विचार हृदय को मसले डालता था। आधी रात के बाद, जब शीत का जोर बढ़ता, हवा जोर से चलती और रात का सन्नाटा चारों दिशाओं में व्याप्त होता, उस समय, हमारे शीत से कष्ट पाने वाले भाई एक स्वर से देश और धर्म की बलि हो जाने का उत्साहवर्धक संदेश देने वाले शेर एक साथ जोर से गाते। जेल भर में संगीत की लहर फैल जाती। मीठी ध्वनि, सजीव गाना और फिर आपदाओं में पड़े हुए सच्चे लोगों के कंठ से निकला हुआ, हृदय पर जादू का-सा असर करता था। हम लोग दुखी मन से दीवार के उस पार से इन गीतों को सुनते। करुणा के इस स्रोत में जी भरकर डुबकी लगाने को जी चाहता, परन्तु कुछ भी बस न था। हमारे उस पार के भाइयों की संख्या बढ़ती गयी। रोज कुछ लोग आते। ये लोगे लखनऊ के ही थे और वालंटियर थे। इनमें से कुछ सादी कैद में आये थे और कुछ सख्त कैद में। परन्तु रखे सब साथ ही गये थे। जब भीड़ बढ़ी, तब जेल वालों को संभालना कठिन हुआ।

उन्होंने सबसे कह दिया, अपने ही कपड़े पहने रहो। कपड़े की बात तो इस प्रकार हल हो गयी। और हमारे भाइयों का जाड़े में रात जाग-जागकर बिताना दूर हुआ परन्तु अब भोजन की बात ने जोर पकड़ा। कितने ही लोग बीमार थे कई थे कान्यकुब्ज। बीमारों के लिए जेल का भोजन ठीक नहीं था और न कान्यकुब्ज के लिए। कान्यकुब्ज सज्जनों ने पहले भूखे रहना आरम्भ किया और फिर अंत में कच्चे चनों पर उन्होंने संतोष किया। अंत में, बहुत कहा-सुनी के पश्चात जेल वाले इस बात पर राजी हो गये कि इन लोगों को सामग्री दे दी जाये, वे अपना भोजन अपने आप बना लें। जेल वालों की बात का कोई ठिकाना नहीं। यह बात तय हुई थी बड़ी मुश्किल से इसके तय करने में हम लोगों का भी कुछ हाथ था। हमने यूरोपियन जेलर से इस सम्बन्ध में बार-बार बातें की थीं और अंत में बहुत कहने-सुनने पर वह राजी हुआ था। परन्तु पीछे पता चला कि यह ढंग अधिक दिन तक नहीं चला।

मिस्टर क्लीमेंट्स ने उसे पलट दिया। जेल के भंडार से ही मिट्टी मिली रोटी और कीचड़ जैसी दाल मिलने लगी। कुछ लोगों ने इस भोजन को नहीं लिया। वें भूखे रहे और अंत में कच्चे चनों पर दिन बिताने लगे। एक सज्जन ने तो इतना उपवास किया कि चलने-फिरने लायक न रहे। ऐसी दशा में वे अस्पताल भेज दिये गये। वहाँ भी उन्होंने कुछ नहीं खाया। दस-बारह दिनों के इस उपवास पश्चात् अंत में उन्होंने अपने ही हाथ का बना भोजन किया। इतने दिनों तक भूखे रहे। परन्तु उनके भूखे रहने का जिक्र जेल के कागजों में कहीं नहीं है। जेल में अपनी तकलीफों की ओर ध्यान आकर्षित करने का एक यही उपाय है कि उपवास किया जाये। इसी से जेल वालों में कुछ हलचल मचती है अन्यथा उनसे बढ़कर जड़-जीव दूसरे नहीं। कैदी के हर-दूसरे दिन भूख रहने पर ऊँचे पदाधिकारी उसकी शिकायत सुनने और उस पर ध्यान देने के लिए आने का कष्ट उठाते हैं। परन्तु लखनऊ जेल के सुपरिन्टेंडेंट मिस्टर क्लीमेंट्स के दिल में इतनी भी दया नहीं है। दीवार पार के आदमियों को भूखा सुनकर एक दिन हम लोगों से भी नहीं खाया गया। सीताराम जी ने कहा कि जब तक वे लोग अन्न-जल ग्रहण नहीं करेंगे तब तक मैं भी भोजन नहीं करूँगा। हम सभी लोग भूखे रह गये। हमने आया हुआ सामान लौटा दिया। 24 घंटे बीत गये, दूसरे दिन मिस्टर क्लीमेंट्स आये और बोले कि यदि भूखे मर भी जाओगे तो मुझे इसकी परवाह नहीं। उत्तर में कह दिया गया कि तुमसे परवाह करने की प्रार्थना ही कौन करता है, हमारी इच्छा आज खाने की नहीं थी, इसलिए नहीं खाया। जब खाने की इच्छा होगी, खा लेंगे। जेल मिस्टर हर्न ने उस दिन दीवार पार वालों को कुछ खिलाया-पिलाया। हमें भी उपवास से छुट्टी मिली।

जब पंडित मोतीलाल जी, पंडित जवाहरलाल जी, श्रीयुत पुरुषोत्तमदास आदि हमारे पास ही के जिला जेल में आ गये, तब हम लोगों को कुछ विशेष संतोष हुआ। यह इसलिये नहीं कि हम उनका आजाद रहना नहीं देख सकते थे, किन्तु इसलिये कि उनके निकट होने से यद्यपि उनकी खबर हम तक नहीं पहुँचती थी और न ही हमारी खबर उन तक पहुँच सकती थी। हम सब लोगों को ढाढ़स-सा हुआ। हमने यह भी समझा कि पाप का पहाड़ बढ़ता चला जा रहा है। जितना बढ़ेगा उतना ही शीघ्र ढहेगा भी। दिसम्बर के दूसरे सप्ताह में जब प्रांत के 55 वीर पकड़े गये, तब इधर-धकड़ होती थी और उधर भीतर हमारे हौसले और हमारी हिम्मत बढ़ती थी। जेल की चहारदीवारी के भीतर रात्रि की निस्तब्धता में इस दिशा से लेकर उस दिशा तक जब 'वन्दे मातरम्' और 'महात्मा गाँधी की जय' की ध्वनि गूँजती थी, तब हमें यह मालूम पड़ता था कि विजय की देवी पूरे वेग के साथ अट्टहास

करती हुई हमारी ओर बढ़ती चली जा रही है और जेल के कोने-कोने में ही नहीं देश के कोने-कोने में हमारा राज्य है। हमारी इस भावना की प्रतिध्वनि दूर-दूर तक होती थी। यूरोपियन सुपरिन्टेंडेंट और यूरोपियन जेलर, हिन्दुस्तानी दरोगा और हिन्दुस्तानी जमादार तक हमारे मन की बात को दोहराते थे। सब समझते थे कि जो लोग आ रहे हैं, वे बला के हैं और उनके पीछे एक बड़ी ताकत काम कर रही है। वे समझते थे कि इनसे सीधी टक्कर लेना ठीक नहीं। कई बार जिक्र हुआ। जेलर ने कहा, ये चिड़ियाँ जिस प्रकार आयी हैं, शीघ्र ही उसी प्रकार उड़ जायेंगी। जेल के यूरोपियन पदाधिकारियों में से एक ने कहा था कि भारतीय बहुत तेजी से आगे बढ़ रहे हैं। हमें एक दिन हिन्दुस्तानियों की मातहती में ही काम करना पड़ेगा। शाम को संध्या-उपासना करने वाले एक वालिंटियर को जबर्दस्ती हाथ पकड़ कर जेलर और सुपरिन्टेंडेंट ने उन्हें उठा दिया था और उसे औरों के साथ बैठक में बंद कर दिया था। जब इस घटना पर बात बढ़ी तब जेलर ने कई बार खेद प्रकट किया और कहा हम नहीं जानते थे। हमारा मतलब यह कदापि नहीं था कि धर्म-कार्य में किसी प्रकार हस्तक्षेप करें। इन बातों के कहने से बस यही दिखलाना है कि उस समय हवा का रुख किधर था।

8 दिसम्बर को युवराज लखनऊ आये थे। जेल के जमादार लोग कहते थे, बाहर बड़ी तैयारियाँ हैं। खूब फौजें इकट्ठी की गयीं हैं और कई जगह तोपें लगायी गयी हैं। पता नहीं उनकी इस बात में कितनी सच्चाई थी। परन्तु इसमें संदेह नहीं कि तैयारियाँ खूब की गयी थीं। सर हरकोर्ट बटलर ने अपनी सारी शक्ति लगा दी, ताल्लुकेदारों का जमघट उस समय लखनऊ में था और देहात वालों का हुजूम। देहात से लोग किराये और खुराक दे-देकर लाये गये थे। युवराज जिस समय निकले, तब वे रास्ते में बिठाये गये थे। रास्ते सजाये गये थे और आदमी बटोरे गये थे। परन्तु, तो भी लखनऊ में बड़ी जबर्दस्त हड़ताल रही और युवराज का जलूस बड़ा ठंडा जलूस था। किराये की मोटरे दौड़ती थी कि लोग मुफ़्त सवारी करें और जलूस देखने जायें, तो भी लोगों का मन चलायमान न होता था। शहर भर में खाली मोटरें दौड़ती रहीं। कहते हैं एक बार एक मोटर में एक छोटा-सा बालक बैठ गया। जब वह किसी सड़क से निकलता तो वहाँ खड़े आदमियों को देखकर वह चिल्लाया, 'महात्मा गाँधी की जय'। हम लोगों को जेल में बंद रहते हुए भी सब बातें मालूम हो जाया करती थीं। युवराज का स्वागत करके मिस्टर क्लीमेंट्स जेल के फाटक पर पहुंचे और फाटक से वे हम लोगों के पास तशरीफ लाये। उनकी त्यौरियां चढ़ी हुई थीं। गुस्सा उनके चेहरे से टपक रहा था। आते ही बोले, अभी तक तुम लोगों के साथ जो रियायत खाने-पीने और पहनने-ओढ़ने के मामलों में है, वह अब नहीं रहेगी। अब तुमसे साधारण कैदियों सा काम लिया जायेगा और उसी प्रकार तुम्हें रखा जायेगा। हम लोगों ने उत्तर दिया, जो चाहे सो कीजिये, हम इस बात को जरूर चाहेंगे कि आपका व्यवहार मानुषिक हो, अर्थात कम कपड़े और रद्दी भोजन के अपने क्रम में उचित परिवर्तन कर दीजिए। बोले, कोई परिवर्तन नहीं होता, आज ही से तुम लोग साधारण कैदी बना दिये जाते, परन्तु आज युवराज के आने की खुशी में मैं ऐसा नहीं करूंगा और इसीलिए एक हफ्ते की मोहलत देता हूँ। मिस्टर क्लीमेंट्स इसी जंगी हुक्म को देकर चलते बने। दो दिन बाद, इतवार का दिन था और कुछ लोग मुलाकात करने आये थे। फाटक के पास हम लोग एक पंक्ति में खड़े किये गये। मलिहाबाद और लखनऊ वाले भी हमारे साथ खड़े हुए। दूसरी पंक्ति में हमारे मिलने वाले खड़े किए गये। 30 मिनट का समय मिला करता है। बातें आरम्भ हुईं। जल्दी-जल्दी और जोर-जोर से, क्योंकि धीरे-धीरे कहने से काम नहीं चलता था, सभी लोग जोर-जोर से बातें कर रहे थे और उस समय वहां एक बाजार का सा दृश्य उपस्थित था--जो कुछ कहना था सो मित्रों से कह दिया।

साधारण कैदियों में रखे जाने की बात भी कह दी। अन्त में गले मिलकर बिदा हुए और यह इसलिये कि ख्याल था कि अब छह मास तक हम लोगों में से कोई बाहर के किसी व्यक्ति से न मिल सकेगा। सात दिन समाप्त होने के पश्चात जेल के कर्मचारी, जेल के कपड़े, कम्बल, हंसली, कड़ा और बटने के मूंज लेकर पहुंचे और बोले, इन्हें लीजिए और अपने कपड़े दीजिए। हम उन कपड़ों को खुशी से लेते, परन्तु वे काफी न थे। दो कम्बलों से शीत जाना असंभव था। एक जांघिये और एक कुर्ते से सफ़ाई नहीं रखी जा सकती थी। हमने साफ-साफ कह दिया कि जब तक तुम कपड़ों के जोड़े और तीन कम्बल नहीं दोगे तब तक हम कपड़े कदापि न देंगे। हमारे कपड़े तुम उसी समय ले सकोगे जब तुम बाहुबल का प्रयोग करोगे। यह बात काफी डांट-डपट के साथ कही गयी थी। जेल के कर्मचारी चीजों को छोड़कर चले गये। थोड़ी देर बाद मिस्टर क्लीमेंट्स आये। उनसे भी दो-दो बातें हुई। हमने कहा, हम आराम नहीं चाहते, परन्तु रजामंदी के साथ अपने ऊपर 'पाशविक व्यवहार' कदापि न होने देंगे। 'पाशविक व्यवहार' पर बहस चल पड़ी। मिस्टर क्लीमेंट्स ने जेल के प्रबंध की तारीफ आरंभ की, हमने उसका प्रतिवाद। उन्होंने उसके भोजन और कपड़े को अच्छा बतलाया, हमने उसे दूषित और लज्जा का भी निवारण न कर सकने योग्य सिद्ध किया। अंत में स्वास्थ्य-रक्षा पर बात आ अटकी। वे हम लोगों की शरीर-परीक्षा के लिए तैयार हुए। स्टैथोस्कोप छातियों पर लगाये गये, मेरी कमजोरी को देखकर हजरत बोले, तुम सिपाही नहीं बन सकते। मैंने उत्तर दिया, 'आप निश्चिंत रहिये, सिपाही बनने की मेरी इच्छा भी नहीं है।' अंत में उस दिन जेल की पोशाक का दिया जाना रुक गया। हमारी इस लड़ाई की जेल भर में शोहरत हो गयी। जेल के कर्मचारी समझे, इन लोगों ने सुपरिन्टेंडेंट साहब को दबोच लिया। साधारण कैदी महात्मा गांधी के इन चेलों की इस जीत पर बहुत खुश थे। वे कहते थे, बड़े साहब की भी इनके सामने एक न चली। हम लोगों की मिस्टर क्लीमेंट्स से कहा-सुनी काफी हो गई थी परन्तु हमारी कहा-सुनी से वे पीछे नहीं हटे थे। मेरा ख्याल है कि उन्हें अपनी जिद पर अड़ते हुए इसलिए डर मालूम हुआ कि उस समय तक उन्हें अपने अफसरों से राजनीतिक कैदियों के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट आदेश नहीं मिला था। परन्तु जेल के छोटे कर्मचारियों और साधारण कैदियों ने कुछ और ही नतीजा निकाला। वे तो उस समय हर काम में महात्मा गाँधी की विभूति के दर्शन करते थे। हमारी बैरक के सामने नीम का वृक्ष था। उसमें कुछ ऐसी फलियां लगीं जिनके भीतर रूई होती थी। जेल वालों ने कहना आरम्भ किया, यह देखो महात्मा गांधी की करामात, नीम में भी रूई लगा दी, अब देखें, अंग्रेज कितनी रूई देश से विलायत ढो ले जाते हैं। कुछ वालिंटियर पकड़े जाकर जेल लाये जा रहे थे। जेल की मोटर पर सवार थे। जेल के पास आकर मोटर का इंजन फट गया। उससे वालिंटियरों को तो चोट आई नहीं, जेल के कर्मचारियों और खासकर पुलिस के एक जमादार को खतरनाक हालत में अस्पताल भेजा गया। इस पर भी महात्मा गांधी की महिमा बहुत गाई गयी। जेल के लोगों और कैदियों के मन की यह दशा ठीक नहीं थी, परन्तु उस समय उसका जो रूप था वह ठीक ऐसा ही था।

26 दिसम्बर की दोपहर को मिस्टर क्लीमेंट्स ने मुझे अपने दफ्तर से अर्थात् फाटक पर बुलाया। भोजन के बाद मैं दफ्तर में गया। हज़रत बोले, तुम्हारे मित्र झूठमूठ मेरी शिकायत करते हैं, उन्होंने इंस्पेक्टर जनरल को लिखा है कि तुम्हारे
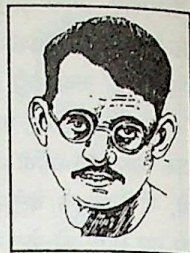
साथ बुरा व्यवहार करता हूँ। मैंने तुम्हारे साथ कोई बुरा व्यवहार नहीं किया। तुम इस झूठी बात का प्रतिवाद कर दो। मैंने कहा, जब तक ठीक-ठीक यह पता न लगे कि क्या शिकायत की गयी, तब तक उसका प्रतिवाद कैसे किया जाये। एक पत्र का एक कोना और दो-तीन पंक्तियाँ दिखाकर मिस्टर क्लीमेंट्स बोले, यह देखो, इस पत्र में 'प्रताप' के एडीटर ने लिखा है कि मैंने तुम्हारे साथ बुरा सलूक किया और तुम्हें मारना चाहता हूँ। मैंने कहा, मुझे पत्र देखने दीजिये। मिस्टर क्लीमेंट्स ने पत्र नहीं दिखाया। अंत में उन्होंने यह माना कि पत्र में बुरे सलूक किये जाने के बात नहीं है, बल्कि उसमें यही लिखा है बुरा सलूक किया जाने वाला है। इस बुरे सलूक की परिभाषा पर बहस छिड़ गयी। मिस्टर क्लीमेंट्स साधारण कैदियों के साथ जो व्यवहार होता है, उसे बहुत उचित और अच्छा कहते रहे और मैं उसे बुरा और निर्दयातापूर्ण। अंत मे यह तय हुआ कि मेरे साथ अभी तक निर्दयतापूर्ण व्यवहार नहीं हुआ, इसलिए मैं लिख दूँ कि मेरे साथ बदसलूकी नहीं हुई । मैंने लिख दिया कि अभी तक जिस प्रकार का व्यवहार मेरे साथ होता रहा है वैसा ही हो रहा है। लिखने के बाद ही मिस्टर क्लीमेंट्स ने कहा, मैं तुम्हें जिला जेल भेजता हूँ। तुम वहाँ विशेष व्यवहार पाने वाले कैदियों के साथ रखे जाओगे। मैंने कहा, मैं वहाँ नहीं जाना चाहता। मैं यहीं अच्छा हूँ। आप जिस तरह व्यवहार करना चाहें करें। वे बोले, ऐसा नहीं हो सकता, तुम्हें जाना पड़ेगा। मैंने कहा, मैं रज़ामंदी से नहीं जाता। मिस्टर क्लीमेंट्स ने यूरोपियन असिस्टेंट जेलर मिस्टर विलियम्स को बुलाया। मैं फिर भीतर न जा सका। मेरा सामान कैदियों द्वारा सीधा ज़िला जेल भेज दिया गया।

मिस्टर विलियम्स मुझे जिला जेल तक पहुँचा आये थे। चाहिए तो यह था कि सिर पर असबाब लादकर मैं जिला जेल भेजा जाता। पंडित मोतीलाल नेहरू, बाबू पुरुषोत्तम दास टंडन, बाबू रणेन्द्रनाथ बसु और मौलाना कमालुद्दीन जाफ़री जैसे भद्र पुरुष जब फर्स्ट क्लास में प्रयाग से लाये जाकर लखनऊ स्टेशन से कुछ दूर पर गाड़ी छोड़कर अपना-अपना असबाब लादकर जेल तक चलने के लिए विवश किये गये थे, तब यदि मेरे सिर पर असबाब लदा हुआ होता तो कोई आश्चर्य की बात न होती। मथुरा के श्रीयुत मदनमोहन चौबे ने अपना बिस्तरा एक नम्बरदार कैदी से एक बार उठवाया था। इसी पर, उस समय के यूरोपियन जेलर मिस्टर फोर्डम ने उन्हें फटकारा था कि नम्बरदार तुम्हारा अफसर है, तुम अपना बिस्तरा खुद उठाओ। परन्तु यहाँ मेरा समान चार-चार कैदी लेकर चले गये थे।

सेंट्रल जेल छोड़ते हुए दुःख हुआ ? पुराने मित्र अचानक छूट गये। श्रीयुत रामनाथ गुर्टू कुछ पहले ही जिला जेल भेज दिये गये थे। मैकमट्रे नैनी भेज दिया गया था। मिसमला बहुत पहले रिहा हो चुका था। पुराने साथियों में से दो थे-- शिवचरण लाल शर्मा और सीताराम जी शुक्ल, इन दोनों को भी बहुत दुःख हुआ। आगे चलकर ये दोनों फिर जिला जेल में मिले। शर्मा जी ने कहा था। आप हमें छोड़कर चले आये थे। मैंने कहा, ऐसा नहीं था धक्के देकर निकाला गया था, अब आपको भी घसीट बुलाया। परन्तु ये बातें केवल बातें ही थीं। बेचारे शर्मा अधिक दिनों तक साथ न रह सके। जिला जेल में कुछ दिनों तक विशेष व्यवहार पाने वाले कैदी के समान रखे गये, फिर फैजाबाद भेज दिये गये। जाते समय उनसे मिल सका था। बेचारे के पैरों में बेड़ियाँ पड़ीं थीं। भुजा पसार-पसार कर मिले। बोले, भूलियेगा नहीं। फैजाबाद से वे बरेली भेज दिये गये और आजकल वहीं हैं। उनकी याद से चित्त खिन्न होता है। उन्होंने बड़े कष्ट पाये हैं और इस पर तुर्रा यह कि कुछ किया भी नहीं जा सकता। सीताराम जी ने जिला जेल का आराम न पाया। सत्याग्रह कर बैठे, अच्छा भोजन लेने से उन्होंने इन्कार कर दिया। कैदियों के साधारण भोजन पर ही रहने का उन्होंने निश्चय कर लिया। नमक खाना छोड़ रखा था। अंत में सूखी रोटियाँ और थोड़ा सा दूध उनके नित्य के आहार की सामग्री रह गये। वे मई में रिहा हुए। परन्तु उसके पहले ही उनका दूसरा सत्याग्रह संग्राम प्रारंभ हुआ। वे अड़ गये कि अपने कपड़े क्यों पहनें, जेल ही के कपड़ों पर कनाअत करेंगे। साधारण कैदियों में ही रहेंगे और उन्हीं सा काम करेंगे और उन्हीं का सा आराम। उनके आग्रह ने अन्त में विजय पायी। वे फिर सेन्ट्रल जेल भेज दिये गये। खुशी-खुशी गये और अंत तक साधारण कैदियों की भांति रहे और मशक्कत करते रहे। जब छूटे तो फिर देश के काम में जुट गये और ऐसे जुटे कि बस्ती जिले के हाकिमों की आंखों में बेतरह खटक गये। एक दिन गत मास के प्रारंम्भ में मुझे एक पोस्ट कार्ड मिला। सीताराम जी ने भेजा था। लिखा था, पुलिस मुझे इस समय लिये जा रही है, पता नहीं क्या करेगी, परन्तु उसका फल यह अवश्य होगा कि मैं फिर कृष्ण मंदिर में पहुंच जाऊंगा। इस पर विश्वास न हुआ, परन्तु अंत में विश्वास कर लेना पड़ा। पुलिस ने उन्हें राजनीतिक आवारा बयान किया। मजिस्ट्रेट ने दफा 108 फौजदारी में जमानत तलब की। सीताराम जी बड़ी हिम्मत के आदमी हैं। उन्होंने कह दिया, एक तौक की जगह सौ तौक पहना दो और एक बेड़ी की जगह दो बेड़ी, इससे ज्यादा तुम कर ही क्या सकते हो। बस्ती जेल में रखे गये। फिर, उसके बाद सीतापुर जेल भेजे गये थे और उसके बाद, सुना है कि आगरा जेल भेज दिये गये। उनसे इस समय बड़ा काम लिया जा रहा है और केवल सूखी रोटियाँ उन्हें खाने को मिल रही हैं। वे अच्छे जमींदार हैं। चाहते तो आनंद से घर रहते। परन्तु देशभक्ति का नशा उनके सिर पर ऐसा सवार है कि वे भय को भय नहीं मानते और न आराम को आराम। जेल-जीवन ने कठिन से कठिन परिश्रम और कष्ट सहन करने के योग्य बना दिया है और ये आपदाएं उनके हृदय को ऊँचा बनाती चली जाती हैं। तीन-चार सप्ताह तक तो जिला जेल में अपनी नवाबी रही। मनमाने खेल-खेले गये और मनमाने ढंग से रखे गये। कोई पूछने वाला न था और न किसी को ऐसा करने की हिम्मत थी। सुपरिन्टेंडेंट वही मिस्टर क्लीमेंट्स आते और आते भीगी बिल्ली की तरह। जेलर मोहम्मद इब्राहिम झुक-झुक कर सलाम करते और घुलमिलकर बातें। हर तरह खुश रखने की कोशिश करते। मालूम पड़ता, हम लोग उनके मुअज्ज़िज मेहमान हैं। उस समय हम लोग राजनीतिक कैदी लगभग 25-26 के थे। इलाहाबाद के कुछ लोग थे,पंडित मोतीलाल नेहरू, पंडित जवाहर लाल नेहरू, पंडित मोहनलाल नेहरू, बाबू पुरुषोत्तम दास टंडन,श्रीयुत रणेन्द्रनाथ बसु, मौलाना कमालुद्दीन जाफ़री, पंडित श्यामलाल नेहरू आदि। लखनऊ के पंडित बालमुकुन्द बाजपेयी, डॉ० शिवराज नारायण, मौलाना शौकतअली, खलीकुज्जमां चौधरी, मोहनलाल सक्सेना, डॉ० बेनी प्रसाद सिंह आदि सज्जन थे। मथुरा के राधाकृष्ण भार्गव और श्रीयुत मदनमोहन चतुर्वेदी थे और पीलीभीत के डॉ० इब्राहिम तथा कोई और एक मुसलमान सज्जन थे। सब तीन बैरकों में बंटे हुए थे। और रात के दस-ग्यारह बजे तक एक-दूसरे से मिल सकते थे। मुझे जिस बैरक में जगह मिली, उसमें टंडन जी, बसु बाबू, भार्गव जी और चौबे जी थे। यहाँ आराम का पूरा सामान था। अपने ही कपड़े थे। पढ़ने की बहुत-सी पुस्तकें थीं और लिखने को कलम-दवात और कागज की कोई कमी न थी। भोजन का सामान इतना था कि खाये न घटता था, तरह-तरह की चीजें, घी और दूध भी खूब और फल भी कम नहीं। जिन लोगों ने डबल रोटियाँ और मक्खन नहीं खाया था, वे इसलिए कि उनकी इफरात थी। उनका खाना, उनका

छुरी से काटना उन्हें सेंकना और मक्खन लगाना सीखने लगे थे। सवेरे, दोपहर और संध्या के भोजन की सूची और क्रम तैयार होता। दिन-रात मुँह चलाना, भोजन से या बातों से। कोई और काम ही न था। पहले यह हाल था कि जेल वालों को भोजन की जिस चीज की फरमाइश की जाती, वह हाजिर हो जाती। पीछे से ऐसा हुआ कि डेढ़ रुपया प्रति आदमी का हिसाब लगाने लगा। कुछ दिनों तक डेढ़ रुपया रोज के हिसाब से भोजनालय के निरीक्षक सज्जनों को दे दिया जाता व मनमाने ढंग से, जेल के आदमियों द्वारा ही सामान मंगा लेते। पंडित मोतीलाल जी को यह क्रम बुरा लगा। उन्होंने कहा, जेल वाले जो कुछ दें, उसे ले लो, रुपया लेना ठीक नहीं। कई घंटे इस पर बहस रही और अंत में देशभक्तों में बड़ी कहा-सुनी के पश्चात् त्याग और कुर्बानी के नाम पर रुपया न लेना और जो कुछ मिल जाये उसी पर कनाअत करना तय किया। इस मसले पर बहस हुई, उसमें बड़ी संजीदगी थी। मालूम होता था कोई बड़ी भारी समस्या है। भोजन बनाने, बैरकों में सफाई रखने, पानी लाने और सेवा के लिए साधारण कैदी दिये गये थे। वे लोग रात के दस बजे तक साथ रहते थे और जेल के नवाबों की पूरी सेवा करते थे। पहले शायद इन लोगों को सेवा के काम से जल्दी ही हटा दिया जाता था। इन लोगों की सहायता के बिना संध्या का भोजन तैयार करना कठिन हो जाता था। एक दिन इसी सम्बन्ध में जेल वालों से कुछ अनबन हो गई। यह घटना मेरे जिला जेल पहुँचने के पहले की है। मुझे ठीक-ठीक बातों का पता नहीं। परन्तु इस अनबन का एक दिन यह नतीजा हुआ कि सब लोगों ने इस साधारण कैदियों की सेवा से लाभ उठाने का इन्कार कर दिया। दिन भर अपना काम अपने हाथ से करते रहे। पानी खींचते रहे, बर्तन मलते रहे। सबने इस काम को किया। बात यहाँ तक पहुँची कि उस दिन जेल भंगियों तक से काम न लिया। सबने अपने-अपने पाखाने अपने हाथों से साफ किये। दूसरे दिन जेल वालों के होश ठिकाने आ गये और उन्होंने अड़चनें दूर कर दीं। पाखाने तक साफ करने की बात एक बार हुई थी, जलियावाला हत्याकांड के स्मारक का दिन था। पूरा की बैरक में बनारस और आगरा जेल से आये हुए भाई टिकाये गये। उस दिन लोगों ने सब काम अपने हाथ से किया था। पाखाने तक अपने हाथ से साफ किये थे। उस समय घूमने-फिरने की खूब आजादी थी। जेल में चारों तरफ आते-जाते थे। कोई रोक-टोक न थी। मालूम पड़ता था, जेल पर अपना ही राज्य है। कोई भी कभी दिन में मिलने आता, विमुख न लौटता। लोग भीतर आ जाते। घंटो बातचीत होतीं। इतवार के दिन तो मेला सा लग जाता। वालिंटियर पकड़े जा रहे थे, उन्हें सज़ायें दी जा रही थीं। उनसे मिलने लखनऊ के सैकड़ों आदमी आते थे। इतवार को फाटक खुला-सा रहता। लोग दस बजे से आने का सिलसिला लगाते। शाम को छः बजे यह सिलसिला खत्म होता। वालिंटियर लोग जाली के पीछे खड़े कर दिये जाते। उनसे बाहर से बातें करते। हम लोग विशेष व्यवहार के कैदी बेनकेल के ऊँट की भाँति छूटे रहते और इधर-उधर घूमते-फिरते सबसे मिलते। एक दिन शाम को बहुत कुछ मित्र मिलने आये। कलकत्ता के श्रीयुत महादेव प्रसाद झुनझुनवाला उनमें थे। देर हो गयी थी। सुपरिन्टेंडेंट चाहते थे कि ये लोग बाहर फाटक से ही बातें कर लें। बुलाकर उन्होंने मुझसे कहा, फाटक ही से बातें कर लो। मैंने कहा, मैं ऐसा नहीं करूँगा। अंत में मजबूर होकर मिस्टर क्लीमेंट्स ने इन लोगों को भीतर आ जाने दिया। वे लोग एक घंटे से अधिक समय तक भीतर रहे। जितनी चिट्ठियाँ चाहते उतनी भेजते और जितने पत्र और समाचार पत्र आते, वे सब कुछ समाचारपत्रों को छोड़कर, मिल जाते।

आनंद से दिन बीत रहे थे। एक दिन अचानक खबर आयी कि जो लोग लखनऊ के हैं, वे बाहर जाएंगे। वे फौरन तैयार हो जायें। जेल वाले बार-बार आकर कहने लगे, चलिये, गाड़ी को देर हो रही है। 11 बजे की गाड़ी से जाना होगा। कहाँ जाना होगा ? इस सवाल के जवाब के लिए सबके मुँह सिले हुए थे। जल्दी-जल्दी बिस्तरे बाँधे गये। कच्चा-पक्का भोजन गले के नीचे उतारा गया। गले मिल-मिलकर हमारे लखनवी मित्र चल पड़े। कहा गया, सामान कम कर दो, क्योंकि सफर का मामला है। लोगों ने अपना कुछ-कुछ सामान घर पहुँचाने के लिए छोड़ भी दिया। पंडित बालमुकुन्द बाजपेयी के पास अमरूदों की एक टोकरी थी। मिस्टर क्लीमेंट्स ने इनसे कहा, इस बोझ को क्यों लादते हो, यहीं के लोगों में बाँट दो, परन्तु बाजपेयी जी में उस समय उदारता की बहुत कमी हो गयी थी। साफ इनकार कर बैठे। इधर ये बिदा हुए उधर हम लोगों का जी इस बात को जानने के लिए टंगा रहा कि ये लोग कहाँ भेजे गये ? थोड़ी ही देर के बाद मालूम हुआ कि ये हमारे मित्र अधिक दूर नहीं गये। इन लोगों को सेंट्रल जेल में रखा गया है और ये सब उसी यूरोपियन बैरक की कोठरियों में हैं, जिसमें मैं रह चुका था। वहाँ इनके कपड़े ले लेने की कोशिश हुई थी। परन्तु इन लोगों ने कपड़े दिये नहीं। इनको भोजन साधारण कैदियों का दिया गया। किसी प्रकार इन लोगों ने उसे गले के नीचे उतारा। बाजपेयी जी सूखे चनों पर गुजारा करते रहे। इधर हम लोगों में बहुत असंतोष फैल गया। खलीकुज्जमां चौधरी, मौ० सलामतुल्ला और मौ० शौकतअली ऐसे इज्ज़तदार लखपति मित्रों की आँखों के सामने यह दशा हो और हम नवाबी के सुख भोगते रहें। पंडित जवाहरलाल ने सुपरिन्टेंडेंट के नाम एक पत्र लिखा। उसमें 'विशेष व्यवहार' से आखिरी सलाम था। कहा गया था, जिस प्रकार हमारे वे भाई हैं उसी प्रकार हमको रखें। इस पर हम लोगों ने दस्तखत किये। इसका और अन्य दूसरे उद्योगों का फल यह हुआ कि पाँच-छह दिन के बाद हमारे लखनवी मित्र हमारे पास लौट आये और हमारे दिन पहले के जैसे कटने लगे।

बाहर जोरों से धर-पकड़ जारी थी। रोज़ वालिंटियर पकड़े जाते थे। टोली की टोली जेल में नित्य पदार्पण करती थी। हमें पता लग जाता कि आज इतने मेहमान आयेंगे। जेल वाले ही उनकी संख्या पहले से बता देते। बात यह होती कि डिप्टी कमिश्नर उनसे पूछते, आज जेल में कितने आदमियों को ले सकोगे ? जब लोग कहते कि इतने आदमियों की जगह है, तब संध्या को उतने ही आदमी 'महात्मा गांधी की जय', 'मोहम्मद अली, शौकत अली की जय' पुकारते हुए जेल के फाटक पर पहुँचते। लखनऊ की बड़ी-बड़ी सड़कों पर कांग्रेस और खिलाफत का चिह्न लगाये हुए सैकड़ों नौजवान गश्त लगाया करते थे, जेल की गाड़ी वहाँ पहुँचती। पुलिस वाले उनके साथ होते। नौजवान उनसे कहते, 'हम वालिंटियर हैं'। वे जवाब देते-- 'आइये, तशरीफ लाइये'। वालिंटियर गाड़ी में बैठ चलते। जब गाड़ी भर जाती, तब दरवाजा बंद हो जाता और पुलिस वाले आगे बढ़ने वाले नौजवानों से कहते, 'आज बस, अब कल।' जेल के भीतर जेल वालों से इंतजाम नहीं करते बनता था। वालिंटियर आते। उन्हें रात को भोजन नहीं मिलता। जाड़े के दिन थे। कम्बल भी न मिलते। भूखे और जाड़ा खाते निद्रा देवी का आह्वान करना पड़ता। एक बार नहीं, अनेक बार पंडित मोतीलाल नेहरू और अन्य लोगों ने अपने खाने की सामग्री में से बहुत-सा वालिंटियरों के लिए भेजा। अपने कम्बल और कपड़े इकट्ठे कर-कर वालिंटियरों को जाड़े से बचने के लिए भेज देते। पंडितजी ने तो सैकड़ों रुपये के चैक काट-काटकर इसलिए दी कि वालिंटियरों को भूखा न मरना पड़े। जेल में कपड़ों की इतनी कमी थी कि एक दिन सुपरिन्टेंडेंट ने कह दिया

कि जो लोग (वालिंटियरों में से) अपने घर के कपड़े लाना चाहें, वे जेल के सिपाही के साथ चले जायें और घर से कपड़ा ले आयें। सुपरिन्टेंडेंट की इस उदारता से किसी ने लाभ उठाना पसन्द न किया। कुछ लोगों ने रोज-रोज जाड़े में मरने से बचने के लिए घर के कपड़े मंगा लिए, औरों ने पहले खूब जाड़ा खाया और फिर, जेल से मिले हुए फटे पुराने, थेगड़े लगे हुए कम्बलों ही से संतोष किया।

वालिंटयरों पर अपना हाथ फेरने के लिए सरकारी आदमी बहुत कोशिश कर रहे थे। उनसे कहा जाता था, माफी मांग लो और घर चले जाओ, इस झगड़े में क्या रखा है। जेल वालों ने उस समय व्यास की गद्दी ले ली थी। वालिंटयरों में जगह-जगह वे कथा-सी पढ़ते थे। खूब समझाते थे। परन्तु वालिंयटरों की खोपड़ियाँ उलटी थीं। उनकी समझ में कुछ आया ही नहीं। कहते हैं वालिंटियरों में कुछ काली भेड़ें थीं और इन भेड़ों को उनमें मिला दिया था पुलिस ने। ये लोग भीतर ही भीतर चाहें जो कहते रहे हो, परन्तु खुलकर खेलने की हिम्मत उन्हें कभी नहीं पड़ी। कहते हैं, ऐसे कई आदमियों ने माफी मांगकर दूसरों को रास्ता दिखाना चाहा था। परन्तु इसका नेतृत्व बहुत छूंछा निकला। जो स्त्रियाँ अपने बेटों, भाइयों और पतियों से मिलने आती थीं, वे बाहर ही से मुलाकात करती थीं। उनसे मिलने के लिए कैदियों को फाटक से बाहर चला जाने दिया जाता था। एक दिन एक मजेदार घटना हुई। वालिंटियर लोग अपने घर की स्त्रियों से मिल भेंट रहे थे। बाहर खूब भीड़ थी, बाहरी आदमी ऐसे अवसर पर यों ही एक दृश्य देखने के लिए आ जाया करते थे। तभी पंडित मोतीलाल जी को किसी काम से फाटक से बाहर जाना पड़ा था। वहां लोगों ने उनसे कुछ कहने के लिए प्रार्थना की। पंडित जी ने उन सबके समान कुछ बातें कहीं। उन्होंने कहा कि नौजवानों को इस्तिक्लाल के साथ आगे बढ़ना चाहिए और माताएं पुत्रों को ऐसा बनायें कि ये माफी मांगकर उनके दूध को न लजाएं। इस छोटी-सी बात का विजली का असर हुआ। जो माताएं वहां थीं, वे हाथ पसारकर अपने अपने बेटों से बोलीं-- 'बेटा ! मर जाना पर माफी न मांगना, हमारे दूध की लाज रखना।' लड़कों ने भी पूरे उत्साह से कहा--'नहीं, मर जायेंगे पर माफी न मांगेंगे।' इस घटना ने जेल भर के लोगों की नसों में बिजली-सी दौड़ा दी।

नवाबी बहुत दिनों तक न चली। इतने आदमियों को धड़ाधड़ आते देखकर जेल वाले घबरा गये थे। उनकी समझ में न आया कि क्या करें और क्या न करें। परन्तु धीरे-धीरे उनकी अक्ल संभलती गयी और हमारी नवाबी पर हाथ साफ करती गयी। हम लोग सब एक-दूसरे से मिल पाते थे। नत्थू नाई स्वयंसेवक बनकर जेल आये और वे पंडित मोतीलाल तक तुरंत पहुंच जाते थे। आदमी पंडित जी के पास पहुंचते थे और खबरें पहुंचती थीं। छोटी-छोटी से लेकर बड़ी-बड़ी बातों तक दिन भर पंचायतें हुआ करतीं। दृश्य वैसा ही था जैसा कि कांग्रेस कान्फ्रेंस के समय हुआ करता है। इस स्थान से उस स्थान पर आदमियों की टोलियां आया-जाया करतीं। यहां बहस होती और वहां बहस होती। दुनिया भर की चर्चाएं उठतीं और उन पर दुनिया भर की राय दी और ली जाती। स्वयंसेवकों के प्रतिनिधि चुने गये। वे पंडित मोतीलाल के स्थान में पहुंचते हैं। अपने आराम-तकलीफ पर ये प्रतिनिधि बहसें करते, किसी-किसी बात पर जोरों का मतभेद होता। बड़े-बड़े लोगों को बड़े-बड़े ढंगों से समझाने की आवश्यकता पड़ जाती। लोग कुछ समझते और कुछ न समझते। कुछ शांत रहते और कुछ अशांति में जलते-भुनते संध्या को अपने-अपने ठिकानों पर बसेरा लेने चल देते। रात किसी तरह कटती और सबेरे से वही बातें फिर आरंभ होती। बातें बढ़ती गयीं। अंत में हालत यहां तक पहुंची कि मनमाने ढंग से घूमना-फिरना, हमारा वैसा ही नैसर्गिक धर्म हो गया जैसा कि स्वराज्य है। कहीं कोई, यदि इस हक में, इशारे से भी बाधा पहुँचाने का इरादा करता, तो हमारे आदमी उससे भी लड़ने-भिड़ने तक के लिए तैयार हो जाते। एक-दो घटनाएँ ऐसी हुई थीं और अंत में एक दिन भरा हुआ प्याला छलक पड़ा। संध्या का समय था, फाटक पर कुछ लोग मिलने आये थे। जेल वाले कह रहे थे कि आज नहीं, बहुत देर हो गयी है। कुछ स्वयंसेवक फाटक पर पहुँच गये। सुपरिन्टेंडेंट

भी वहाँ थे और जेलर भी। ये लोग अब बाहर वालों को मुलाकात करने की इजाजत नहीं देना चाहते थे और इधर हमारे धर्मवीर इस 'आजादी' से वंचित रहना बुरा समझ रहे थे। हमारे वीरों के अगुआ थे बनारस के डाक्टर अब्दुल करीम साहब। डाक्टर अब्दुल करीम सच्ची तबियत के जीवट हैं। उन्हें स्पेशल ट्रीटमेंट दिया जाता था, उन्होंने उसे नहीं लिया। उनके तन पर जो कपड़े थे वे जेल के थे। लोग जब कहते कि डाक्टर साहब, घर से अच्छे कपड़े मंगा लीजिये, तो उत्तर मिलता कि ऐसी बेवकूफी क्यों करूं। जेल में रहकर अपने कपड़ों का नाश क्यों करूं। भोजन अच्छा दिया जाता, परन्तु उसे न लेते। कहते, वही लूंगा जो साधारण कैदी को मिलता है और अंत में वैसा ही लेते और उसी को खाते। उनकी तपस्या पर उनके अनेक साथी मुग्ध थे। जैसा वे कहते वैसा करना वे धर्म समझते। डाक्टर साहब रायबरेली जेल से आये थे और वहां भी उनका यही हाल था। जो भीड़ फाटक पर जमा थी डाक्टर साहब ने उससे जोर-जोर से जेलर और सुपरिन्टेंडेंट की शिकायत करनी शुरू की। साहब बहादुर जल उठे। दूसरे दिन जेल में पूरी नाकेबंदी हो गयी। इधर-उधर का जाना-आना बंद हुआ। डाक्टर साहब लखनऊ सेंट्रल जेल भेज दिये गये और वहां और लोगों से अलग रखे गये। सुना गया था कि उन्हें वहां और भी कष्ट हुआ, परन्तु पता नहीं कब और कितना ? इस रोक-टोक का एक और भी कारण कहा-सुना जाता है और लेखक की समझ में तो यह आता है कि इस रोक-टोक का सबसे प्रधान कारण वही है। स्वयंसेवकों पर जेल वाले अपनी जादू की लकड़ी फेरते थे। उन्हें फुसलाते थे कि माफी मांग लो और चले जाओ। यह बात जेल भर में फैल जाया करती थी इसलिए उनकी मेहनत अकारथ जाती थी। उधर वे मेहनत करते, इधर यार लोग पहुंचते और सांप काटे का जहर अपने मंत्र द्वारा उतार दिया करते। जब सब लोगों का आना-जाना रोका गया, तब भी तीन-चार आदमियों को स्वयंसेवकों के पास जाने की आजादी थी। पं० मोतीलाल, बाबू पुरुषोत्तमदास, पं० जवाहरलाल नेहरू और चौधरी खलीकुज्जमां इन रियायती आदमियों में से थे। इनके साथ रियायत इसलिए थी कि बेचारे स्वयंसेवकों में से कितने ही अपढ़-कुपढ़ थे और उनका समय नष्ट होता था। ये उन लोगों को कुछ पढ़ावें-लिखावें, सुपरिन्टेंडेंट साहब को स्वयंसेवकों के कल्याण का इतना खयाल था। खयाल तो उन्हें इतना था कि वे चाहते थे कि हम लोग जेल भर का स्वयं इंतजाम कर लें और इस जेल को अपना उपनिवेश-सा समझें। एक दिन साहब बहादुर ने अपने विचार इसी प्रकार प्रकट किये थे। परन्तु साहब की राय के अनुसार, क्योंकि आगे के अनुभव ने बारम्बार हृदय पर इस बात को अंकित किया, किसी बात पर थोड़ी देर टिकना भी मूर्खता का काम था। इसीलिए दो ही चार दिन बाद इन तीन-चार आदमियों का आना-जाना भी रुक गया और इस प्रकार हम लोग एक-दूसरे से एक घेरे के भीतर रहते हुए भी, मिलने-जुलने से वंचित कर दिये गये। बहुधा ऐसी बातें होती, ऐसी घटनाएं होती सुन पड़तीं कि इच्छा होती, दीवार पार के भाई को एक मिनट के लिए देख लेते, परन्तु इसके लिए तरस-तरस कर रह जाना पड़ता। धीरे-धीरे स्वयंसेवक लखनऊ जेल से हटाये जाने लगे। वे फैजाबाद

भेज दिये गये। जाते समय उनके पैरों में बेड़ियाँ होतीं। सुबह से ही उनके पैरों में लोहा डाल दिया जाता। शाम को वे स्टेशन के लिए रवाना होते। चलते वक्त वे 'वन्दे मातरम्' 'गांधी जी की जय' और 'अल्लाह हो अकबर' की ध्वनियां ऊपर उठाते। हम भी अपनी-अपनी आवाजों को ऊपर उठाते। यही हमारा आलिंगन था। एक-दूसरे से न मिल सकने के कारण बहुत हानि हुई। पीछे से मलिहाबाद के 54 वालंटियर आये। तनिक-सी बात पर वे अड़ गये। खाना-पीना छोड़ बैठे और अंत में परेशान होकर उन्होंने भोजन कर लिया और बढ़ते-बढ़ते यहां तक बढ़े या यों कहिये यहां तक झुके कि उनमें से अधिकांश माफी मांग कर घर चले गये। स्वयंसेवकों को फुसलाया भी जाता था और धीरे-धीरे उन्हें तंग भी किया जाता था और साथ ही ज़लील भी। जाली लगा दी गयी थी और वे लोग खुले बंदों अपने मित्रों से मिलते थे, इस बात के लिए मजबूर किये गये कि जाली के भीतर से मिलें। इस पर भी उनका अपमान किया जाता। जब चलने लगते तब तलाशी ली जाती। एक बार बात बहुत बढ़ गयी। जेलर ने एक स्वयंसेवक को गालियाँ दे दीं। इस पर उसने जेलर पर हमला कर दिया। कहते हैं, स्वयंसेवक ने जेलर के सिर पर जूता मारा था। यह भी सुना गया कि वह स्वयंसेवक और उसके दो साथी पकड़कर कहीं बांध दिये गये और उन पर खूब मार पड़ी। कायरता की इस केलि-क्रीड़ा ही से बात समाप्त नहीं हुई। जेलर ने उन पर हमला करने का मामला चलाया और उन्होंने जेलर पर। कई दिन तक मुकदमा चला और अंत में स्वयंसेवकों की सजा में कुछ और इज़ाफ़ा हो गया।

भोजन, भत्ता और लिखने-पढ़ने के अतिरिक्त और भी काम बड़े उत्साह से हुआ करते थे। कुछ दिनों तक लोगों को दौड़ने का मर्ज था। पं० मोतीलाल जी की बैरक का मैदान लम्बा-चौड़ा था। मोटे आदमी तो तनिक दौड़ने में ही हांफ उठते। कबड्डी तो नहीं खेली गई, परन्तु कुछ दिनों तक गिल्ली-डंडे का शौक पूरा किया गया था। बित्ती बोली जाती और हमारे धुरंधर टंगड़ी चलाते, अखाड़े पर भी कुछ दिन दया-दृष्टि रही। कुछ लोग कसरत करते और कुश्तियां लड़ते और कुछ केवल थोड़ी-सी उछल-कूद से ही संतोष मान लेते। खलीकुज्जमां साहब खूब फांदते। कुश्ती के उस्ताद आशुफ्ता साहब थे। शतरंज बेचारी पं० श्यामलाल नेहरू और मौलाना जाफ़री से हार मान गई थी। पानदान सामने रखे और पान की गिलौरी मुंह में दबाये पं० श्यामलाल एक ठिकाने बैठ जाते और शतरंज का न्यौता दोस्तों को देते चलते। जो मिल जाता, पकड़ लेते और इतना खेलते कि शाम ही करके छोड़ते। कई दिनों एक शतरंज का भूत सिर पर सवार रहा। टूर्नामेंट आरंभ हुआ और हजारों घंटे इस खेल को चुपचाप नज़र कर दिये गये। कुछ लोगों को गाने का भी शौक था। लखनऊ के भुनेश्वरी प्रसाद वर्मा और मुहम्मद वली साहब अक्सर चहका करते। हमारे मित्र राधाकृष्ण भार्गव को भोजन बनाने का शौक था और भोजन खिलाने का भी। श्री मदनमोहन चौबे की रुचि न कसरत पर थी, न अपने शरीर को संवारने की। थोड़ा-बहुत पढ़ते सभी लोग हैं। कुछ मुसलमान सज्जनों ने हिन्दी पढ़नी शुरू की। हिन्दुओं से कुछ मौलाना बन चले थे। मौलाना जाफ़री (इलाहाबाद), मकसूद आलम साहब (पीलीभीत) और मोहम्मद नवाब साहब (लखनऊ), हिन्दी पढ़ते और श्रीयुत पुरुषोत्तम दास टंडन और श्री रणेन्द्रनाथ बसु फारसी। कई आदमियों ने अपनी दाढ़ी बढ़ा ली थी। टंडन जी और बसु बाबू भी उनमें थे। कहा जाता, दाढ़ी फारसी के अध्ययन में सहायक होती है। खलीकुज्जमां साहब के दाढ़ी न थी। वे उसके सख्त मुखालिफ थे। इसलिए वे हमारे दाढ़ी वाले सिद्धान्त पर बहुत बिगड़ा करते। रात को कोई गीता-रहस्य पढ़ता और कोई रामायण। खेलों में सब खेल के खेलने की इजाजत मिल गई थी। जिस प्रकार पैर से फुटबाल खेला जाता है, उसी प्रकार हाथ से वह खेल खेला जाता है। बहुत दिनों तक वह खेल हुआ। सब रियासतों के छिन जाने पर भी यह रियासत बनी रही। पत्र 15 दिन में एक मिलने लगा था और मुलाकातें भी एक सप्ताह में एक ही रह गई थी। आने-जाने में रुकावट थी और खाने-पीने में कोई दस बार धीरे-धीरे करके इतनी कमी हुई कि दोनों समय की खुराक केवल दो रोटी की रह गई थी। तो बालीबाल खेलने की रियायत ज्यों की त्यों बनी रही। अन्त में, एक दिन उसका भी अंत हो गया। हम लोग भीतर जेल के चक्कर में भेज दिये गये। एक-एक बैरक में 35-35 आदमी कर दिये गये और उसी के घेरे में दिन भर बंद रहने लगे। इस प्रकार पढ़ना-लिखना भी दिन-ब-दिन रंग बदलता गया। पहले कुछ ठोस विषयों पर बंधकर पठन-पाठन चलता रहा। फिर आजादी हो गई जो चाहे सो पढ़े। अंत में यह हालत हो गयी कि केवल समाचार पत्र से ही संतोष कर लेना पड़ता था। पढ़ने वाले तो पढ़ते ही थे और लिखने वाले कुछ लिखते ही, परन्तु जिन्हें बन्द बैरकों में, गरमी में, गरमी के दिनों में बारातों की भीड़ में रहना पड़ा हो, वे कह सकते हैं कि ऐसी अवस्था में कितना और कैसे पढ़ा और लिखा जा सकता है।

फरवरी के पहले सप्ताह में, एक रात को, लगभग 11 बजे, लखनऊ बैरक में बड़े जोर से जय-जयकार हुआ। बात क्या है, यह जानने के लिए वहां पहुंचा। मालूम हुआ, फाल उठाया जा रहा है और रामायण पर। पीलीभीत के इब्राहिम हई साहब ने रामायण की प्रश्नावली के कोष्ठक पर उंगली रखी थी और लखनऊ के श्रीयुत मोहनलाल सक्सेना के हाथ में रामायण थी। इस पर लंका कांड की कुछ पंक्तियां निकलीं जिनका अर्थ था कि रामचन्द्र जी ने रावण के हृदयस्थल पर तान-तानकर 100-100 वाण मारे, जिनसे रावण बेहोश होकर गिर पड़ा। सत्याग्रह का मामला उस समय पेश था। चौरी-चौरा की दुर्घटना हो चुकी थी, परन्तु उस समय तक उसका विष नहीं फैला था। इन पंक्तियों ने दिलों में अजब नशा-सा पैदा कर दिया। लोग झूम उठे और चिल्ला पड़े, 'महात्मा गांधी की जय'। रावण के बेहोश होकर गिर पड़ने की बात ने दबे हुए दिलों को बहुत ऊपर उठा दिया। उन्हें नई-नई आशाओं और प्रफुल्लता से पूर्ण कर दिया। मौ० सुलामतुल्ला साहब तक खूब प्रसन्न थे। दो ही दिन बाद, हवा का रुख बदला। बारदोली के निर्णय की खबर आयी। बाहर का तो पता नहीं कि क्या हालत थी, परन्तु जो लोग जेल में थे वे तो ऐसे कुम्हला गये जैसे तुषार से बतिया कुम्हला जाती है। लोगों में निराशा थी और उससे रोष भी था। वे बिगड़-बिगड़ उठते थे। किसी को समझाना कठिन था। समझाने का प्रयत्न करो और वे काटने के लिए लपके। एक ने नहीं अनेक ने और अनेक में बड़े समझदार, बड़े प्रसिद्ध और बड़े त्यागी तक शामिल हैं। एक बार नहीं, बार-बार कहा कि अन्त में गांधी बनिया ही है न। एक महाशय बोले, चौरी-चौरा कांड पर उपवास ही क्यों, माघ मेले में जिस प्रकार कीलदार पीढ़े पर साधू लोग बैठकर अपनी तपस्या की प्रदर्शनी किया करते हैं वैसा ही एक पीढ़ा गांधी के पास भेज देना चाहिए और वे उस पर बैठकर तपस्या भी करें। एक बार एक साहब ने यहां तक कहा कि हजारों आदमियों को तो जेल भेज दिया, अब अपनी बारी आयी तो कावा काट गये। यह उन लोगों की बातें हैं जो गांधी के नाम पर एक दिन पहले तक लड़ने-मरने को तैयार थे। जहां गांधी जी का पसीना गिरता, वहां इनका दावा था, अपना खून गिराते। न मुझे बारदोली के निर्णय से निराशा थी और न इन लोगों के बर्रानि से । यहां इन बातों पर कोई आशा कभी

बांधी ही गई थी, न एक वर्ष में स्वराज्य की शीतल छाया में होने का स्वप्न देखा गया था और न यही खयाल था कि बस, अब स्वराज्य मिला और उसके मिलने पर न केवल जेल के बाहर होंगे, किन्तु पहले से बहुत अच्छे और बहुत ऊँचे होंगे। इसलिए जो कुछ सामने दिखाई देता था उस पर कुछ हंसी आती थी और कुछ दुख होता था।

धीरे-धीरे सख्तियाँ बढ़ती गईं। जो लोग आंख उठाकर देखने की हिम्मत नहीं करते थे, वही बात-बात पर आंखें दिखाने लगे। जेलर खां साहब मोहम्मद इब्राहिम झुक-झुककर हाथों से सलाम किया और दब-दबकर मुंह से बात निकाला करता था, परन्तु धीरे-धीरे ये ढंग से दूर हो गये और आगे चलकर नौबत यहां तक पहुंची कि हम लोगों को बात-बात पर वह झिड़क-सा देता और बाहर से जो लोग मिलने आते, उन्हें गालियां दे बैठता। छोटी छोटी बातों में इतनी खुचर निकालता, तनिक-तनिक कामों में इतनी बाधाएं डालता कि हम में से बहुतों ने उससे बोलना तक छोड़ दिया। तो भी लोग उससे याराना रखते। उसको तथा उसके मातहतों को, जिन्हें उसने गुर्राने और काट खाने की काफी शह दे रखी थी, लोग बुला-बुलाकर मीठे शब्दों में और शब्दों से भी बढ़कर मीठे ढंगों से पान खिलाते और जलपान तक कराते। इस आदर-सत्कार का लगे हाथों फल भी मिलता। इन लोगों के साथ रियायतें होती थीं। 15 दिन में पत्र भेज सकने या पा सकने की कैद इनके लिए न रहती। मुलाकातों के लिए भी इसके लिए दरवाजा खुला रहता। किसी डाह के कारण यह बातें नहीं कही जा रहीं हैं। यह शरम की बात थी कि जहां और जिनसे इतने असहयोगियों का अपमान हो, वहीं हमारे ही कुछ आदमी छोटे-छोटे आराम और तनिक-सी सुविधा के लिए उनसे भिक्षा-सी मांगें और खुशामद-सी करें। जेल के अधिकारी झूठ बोलने में बड़े उस्ताद हैं। जेल के सुपरिटेंन्डेंट, मि० क्लीमेंट्स तो झूठों के सरदार हैं। बात बदलते उन्हें देर नहीं लगती। एक दिन कुछ कहते हैं और दूसरे ही दिन कुछ और। लोग अपनी बैरकों का दरवाजा खोलकर सोया करते, इस बात को मिस्टर क्लीमेंट्स भली भांति जानते थे। जब गरमी पड़ी तब लोगों ने बाहर सोना चाहा, परन्तु मि० क्लीमेंट्स की मरजी थी कि गरमी में घुट-घुटकर भीतर ही मरो और मच्छरों को शिकार बनो। फरमाया, हमें नहीं मालूम था कि आप लोग रात को खुले रहते हैं, यह तो जेल के नियम के विरुद्ध है। इस मामले में गहरा सत्याग्रह होता, परन्तु अंत में गवर्नमेंट ही ने बाहर सोने की आज्ञा भेज दी। इस तरह के झूठ मिस्टर क्लीमेंट्स ने एक बार नहीं, न मालूम कितने बार बोले। एक बार जेलर ने आश्चर्य से कहा, "नहीं मि० क्लीमेंट्स भले आदमी हैं, वे झूठ नहीं बोलते।" मैंने क्लीमेंट्स के अनेक झूठों को गिनाते हुए कहा कि मिस्टर क्लीमेंट्स के 51 झूठ तो मैं ही गिनाए देता हूँ, उसके आगे आप उनके अन्य झूठों को खोजकर जोड़ते चले जाइये। इस पर जेलर ने फारसी का एक मसला कहते हुए फरमाया कि मसलहत के लिए झूठ बोलना भी अच्छा होता है। जेलवालों का दूसरा बड़ा भारी गुण यह है कि वे किसी को भी सच्चा और ईमानदार समझने के लिये तैयार नहीं। हम में से कितने ही बीमार पड़े। परन्तु सुपरिन्टेंडेंट और जेलर यही समझते कि बीमारी नहीं, बहाना है। प्रयाग के प्रोफेसर रलाराम को हृदय और मस्तिष्क की अनेक भयंकर बीमारियां थीं। कभी-कभी बेचारे की बहुत बुरी हालत हो जाया करती। परन्तु सुपरिन्टेंडेंट इसे केवल बहाना ही समझा करते। अवधनाराण लाल की मृत्यु के पश्चात् लोगों की बीमारी पर कुछ ध्यान दिया जाने लगा। प्रो० रलाराम देहरादून भेज दिये गये। यहां भी सुना, उनके साथ बुरा व्यवहार हुआ। अंत में घबराकर उन्होंने माफी मांगी थी। पता नहीं, माफी स्वीकार हुई और वे रिहा हुए या नहीं ? एक प्रोफेसर रलाराम क्या औरों के साथ भी बीमारी की दशा में बुरा व्यवहार हुआ। अल्मोड़ा की 'शक्ति' सम्पादक पंडित बदरीदत्त जी गरमी के मारे बेतरह बेचैन हो उठे थे। उस्पताल में पहुंचाये गये, परन्तु अस्पताल अस्पताल हो तब तो कुछ आराम मिले। वहां खूब लू के थपेड़े लगते। बदरीदत्त जी बेचारे पहाड़ के आदमी। धूप और लू की चपेटों में भुन गये। लगे मछली की तरह छटपटाने, उनका शरीर पीला पड़ गया। उनकी आंखें चढ़ गईं। इस पर भी चिकित्सक, चूड़ामणि, कर्नल क्लीमेंट्स इस दशा को बहानेबाजी ही समझते थे। पंडित बदरीदत्त जी का एक भतीजा था बहुत ही कोमल बालक, मुश्किल से 17-18 वर्ष का। उसका नाम शायद चन्द्रधर था नरमी के मारे वह भी परेशान था। उसकी नाक से रोज खून निकलता। कमजोर हो चला। बजन घट चला। शहर के अस्पताल में रोगग की जांच के लिए जेल वालों ने उसे भेजा। इसके पहले कर्नल क्लीमेंट्स कहा करते, यह लड़का नाखून मार-मार कर नाक से खून बहा लिया करता है। शहर के अस्पताल के अध्यक्ष के नाम जो चिट्ठी कर्नल ने लिखी थी, कहते हैं उसमें लिखा था कि यह सिफारिश न करना कि इस किसी पहाड़ी स्थन की जेल में भेज दो। परन्तु अंत में, इन दोनों की दशा ऐसी बिगड़ी कि मि० क्लीमेंट्स को इन्हें पहाड़ी स्थान की जेल में भेजना पड़ा। यह मि० क्लीमेंट्स की कृपा न थी। सरकारी आज्ञा से ऐसा हुआ। जब श्रीयुत देवदास गांधी आये, तब उन्हें कुछ ज्वर था। अस्पताल भेज दिये गये। वहां उनकी नाक से खून गिरने लगा। इस पर सुपरिटेंडेंट ने कहा, 'कोई हर्ज नहीं, यह बहुत साधारण बात है। यदि औरों को थोड़ा-थोड़ा खून निकल जाये तो इससे असहयोगियों को फायदा होगा, उनके दिमाग की गरमी कम हो जायेगी। मेरे साथियों में सीतापुर के ठा० इन्दुशेखर सिंह जी और बाबू शम्भूनाथ जी भी थे। दोनों पुराने मरीज थे। ठा० इन्दुशेखर सिंह ने अस्पताल का सहारा नहीं ढूंढ़ा। कभी पसली में दर्द भी हुआ तो अस्पताल की दवा उन्हें लगी नहीं, परन्तु वे जेल में दिन-ब-दिन अच्छे होते गये। उनका वजन बढ़ता गया और बढ़ती गई उनकी दाढ़ी भी। यह नहीं कहा जा सकता कि इन दोनों की वृद्धि में किसकी बुद्धि अधिक रही। परन्तु इसमें संदेह ही नहीं, बढ़ी दोनों और खूब बढ़ी। ठाकुर साहब का प्रातःकालीन कलेवा था। सहज ही निगल जाते। इसी की बदौलत मूंग की खिचड़ी से ठाकुर साहब का आहार रबड़ी और मलाई तक हो गया। उसी के सहारे उनका स्वास्थ्य और वजन बढ़ा। उन्हें कर्नल क्लीमेंट्स और जेल के अस्पताल की शरण नहीं लेनी पड़ी। श्रीयुत शम्भुनाथ जी को कुछ वर्ष पहले यक्ष्मा के लक्षण मालूम पड़े थे। सीतापुर के सिविल सर्जन ने उनके कैदी टिकट पर लिख दिया था कि मर्ज खतरनाक है, गर्मी के दिनों में उन्हें काफी आराम पहुंचाया जाये। परन्तु मि० क्लीमेंट्स उन्हें मीठे ढंग से दो अक्षर लिखकर जेल से बिल्कुल बाहर चले जाने के लिए मनाते रहे। पंडित मोतीलाल नेहरू को श्वास का कष्ट था। जब डॉ० मुरालीलाल और डॉ० जवाहरलाल बनारस से लखनऊ जेल में पहुंचे, तब उन्होंने उनका इलाज किया। उससे आराम भी मिला। कर्नल क्लीमेंट्स पंडित जी पर बड़े मेहरबान थे, परन्तु पंडितजी ने कर्नल की चिकित्सा सम्बन्धी योग्यता से लाभ उठाने का साहस नहीं किया। बीमारी के मामले में बहुतों पर बहुत तरह की बीती। केवल इसी बात में सबकी एक तरह की बीती कि किसी की अच्छी नहीं बीती। अवधनारायण लाल के बलिदान के बाद से कुछ रंग-ढंग बदला। मनुष्य किसी अंश में मनुष्य समझे जाने लगे। उनकी स्वास्थ्य रक्षा की ओर कुछ ध्यान दिया जाना उचित समझा जाने लगा।

कहने के लिए बातें बहुत-सी है, परन्तु, अब अधिक कहने को जी नहीं

चाहता। इधर-उधर की कुछ घटनाओं पर भी कुछ कहकर यह झलक आगे चलकर अपने आप लोप हो जायेगी। जेल जीवन में हम में से बहुतों को बहुत ही असुविधाएं नहीं थीं। बहुतों को सुविधाओं की अधिक भूख थी। परन्तु ऐसे आदमी बहुत ही कम नजर आये, जिसके आगे मुक्ति की लालसा इतनी प्रबल न हो कि वह रह-रह जिनकी नोक तक न आ जाती। समाचारपत्र में कोई बात निकलती, कौंसिलों में रिहाई के सम्बन्ध में किसी प्रश्न का प्रस्ताव का जिक्र आ जाता, कभी कोई बाहरी आदमी मिलने के समय ऊपर के वायुमंडल के कुछ समाचार सुना जाता, इधर-उधर से कहीं से किसी भी उड़ती-उड़ाती कोई बात राजनैतिक कैदियों की रिहाई के सम्बन्ध में किसी रूप में भी जेल के अहाते के भीतर पहुंच जाती, तो हमारी हृदयतंत्रिका बड़ी उत्कंठा से उस बात के सुनने, उस बात पर बारम्बार विचार करने, उन पर बड़ी-बड़ी आशाओं के बांधने और आगे की आशापूर्ण घड़ियों और उसके क्षणों के गिनने के लिए ऊपर उठ-उठ पड़ा करती। विक्टर ह्यूगो ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'ला मिजरेबल' में साध्वियों के ऐसे आश्रय का जिक्र किया है, जहां वे संसार भर के पुरुषों की दृष्टि से छिपाकर अलग रखी जाती थीं। उनमें पुरुषों के देखने, उनकी बात सुनने की लालसा, अंत में, इतनी बढ़ गई थी कि एक अवसर पर जब एक पंगु कोढ़ी रात्रि के अंधकार में आश्रम के पास एक वृक्ष के तले अपनी वंशी बजा रहा था तो कई युवती साध्वियां झांक-झांककर उसे देखने को विकल हो उठीं और उनके ध्यान में यह बात समा गई कि कोई अत्यंत सुंदर पुरुष इस प्रकार वंशी की मनोहर ध्वनि से उन्हें अपने पास बुला रहा है।

हम कैदियों का भी कुछ ऐसा ही हाल था। छुटकारे के समाचार बड़े ही अच्छे लगते। हवा के झोंकों में हम उन्हें ढूंढते। आकाश के कोने-कोने में उनके दर्शन चाहते। बहुधा कल्पना दर्शन करा देती। बहुधा अखबारों की शोशेबाजी और बाहरी मित्रों की आशा भरी मीठी बातें दिलों पर उनका राज्य अटल बनाये रखतीं। इसलिए, हममें से बहुत से समझते कि हम सब अब छूटे और तब छूटे। कलकत्ता में लार्ड रीडिंग की स्पीच हुई। इधर यारों ने समझा कि अब क्या है, घर चलने की तैयारी करो। फिर एक दिन एक समाचार अहमदाबाद से आया। उसके आधार पर, हम लोग एक-दूसरे की बतियाते से देखे सुने गये कि फरवरी में ब्रिटिश गवर्नमेंट हमें कैदखाने में न रख सकेगी। एक दिन प्रांतीय कौंसिल में, सर लूडविक पोर्टर ने अपने भाषण के मोती बिखराये। सरकारी न्याय की ध्वजा आकाश छूने के लिए ऊपर लपकी और क्रिमिनल ला एमेंडमेंट एक्ट के अपराधियों पर विचार करने के लिए मि० लाइल मुकर्रर किये गये। बहुतों के दिल इसी बात पर हरे हो गये। अंत में जब लाइल साहब ने पहाड़ खोदकर चूहा निकाला, तब भी, लोगों की आशा का तागा नहीं टूटा। हम कहते थे, हमारे 55 वीर तो इसलिये छूट ही जायेंगे कि उनके मामले में जो बेकायदगी हुई, उसे सरकार ने मान लिया है। अन्य लोग भी किसी न किसी प्रकार शीघ्र छूट जायेंगे। धीरे-धीरे आदमी छूटते भी गये, परन्तु अपना-अपना समय पूरा करके। परन्तु इस आशा का युग अभी तक समाप्त न हुआ। इस अग्नि में कहीं न कहीं से कुछ लकड़ी सदा पड़ती गई और इस समय तक बराबर पड़ रही है। अभी तक लोगों को आशा है कि राजनीतिक कैदियों की रिहाई के सम्बन्ध में अक्तूबर तक कुछ होगा। कुछ लोग कहते हैं कि बटलर साहब उन्हें छोड़ जायेंगे। कुछ कहते हैं कि यदि लोग बटलर साहब के इस प्रांत में गवर्नर बने रहने के लिये जोर मारते, जैसाकि बटलर साहब चाहते थे, तो आज से कहीं पहले ये लोग छोड़ दिये गये होते। इन बातों में सार कम है, परन्तु आशा का यह कच्चा धागा करता है एक बड़ा काम। इसे थाम कर बहुत से लोगों ने कैद रूपी वैतरणी पार पर डाली और बहुत से आगे कर डालेंगे। दूर से टिमटिमाता हुआ आशा का यह झूठा तारा बहुतेरों के लिए अप्रत्यक्ष रूप से बड़ा भारी सहारा सिद्ध हुआ है। मेरे साथियों में से दो सज्जन इस प्रकार की व्यर्थ लालसा से सदा ऊपर रहा करते थे। इनमें से एक तो थे श्रीयुत पुरुषोत्तमदास टंडन और दूसरे डॉ० मुरारीलाल। जेल भर में मुझे टंडन जी से अधिक साधु प्रकृति का आदमी नहीं मिला। उनके मन पर इन आने-जाने वाली लहरों का कोई असर नहीं पड़ता

था। वे सदा अटल रहते। कोई भी दिक्कत उनके चित्त को विचलित न करती। उनकी जरूरतें बिल्कुल कम थीं और उनका हृदय साधारण से साधारण, नीचे से नीचे आदमी के साथ चलने के लिए सदा तत्पर रहता। उनका हृदय क्या है एक ऐसा विशाल क्षेत्र है जिसका ओर-छोर साधारण दृष्टि नहीं पा सकती। उनमें जितनी तेजस्विता है, उतनी ही शिष्टता और भद्रता है। उनमें जितनी प्रखरता है उतनी ही उदारता और नम्रता है। हम उनके निकट के आदमी, उनके चरित्र पर मुग्ध थे। हम उन्हें उत्यंत निःस्वार्थी समझते थे और मैं उन्हें इस प्रांत के सार्वजनिक आदमियों में सबसे ऊंचा मानता हूं। उनके हृदय में रिहाई और जेल से बाहर होने की क्षुद्र लालसा कभी नहीं आई। कभी-कभी बात चली तो उन्होंने यही कहा कि मेरा ख्याल है कि मुझे जेल में एक बार और आना है। डाक्टर मुरारीलाल बड़े जबर्दस्त व्यवसायी थे। दिन-रात व्यवसाय और काम में कटता। परन्तु बाहर वे जितने चलायमान रहते थे, जेल में उतने ही अचल और शांत हो गये थे, कठिनाइयों और असुविधाओं से तो वे पहले भी कभी नहीं घबराते थे, परन्तु जेल जीवन के कांटों को भी उन्होंने फूल की तरह सहा। जो कांटा उन्हें चुभता उसे वे हँसकर चुन लेते। इन दोनों का यह हाल था कि हम लोग आपस में कहा करते थे कि यदि डेढ़ वर्ष की जगह यह दोनों तीन-तीन वर्ष के मेहमान बना दिये जाते तो भी समय से पहले इनके मन में जेल से बाहर निकलने की कभी उकताहट न होती। जब लोग छूटते तब धूमधाम से उनके साथ उन्हें विदा करते। कह नहीं सकता कि अन्य अवसरों पर लोगों के दिलों पर अपने किसी साथी के छूटने का क्या असर होता था, परन्तु मार्च के आरंभ में जब पंडित जवाहरलाल, डॉ० शिवराज नारायण, डॉ० लक्ष्मीदत्त, मौ० सलामतुल्ला, मौ० शौकतअली, पं० बालमुकुन्द बाजपेयी और श्रीयुत मोहनदास सक्सेना अपनी-अपनी सजा के पहले ही, मि० लाइल के फतवे के अनुसार छोड़ दिये गये, तब उनसे गले मिलने और उन्हें हँसी-खुशी विदा करते हुए कई हृदय में उनकी इस समय की रिहाई पर मीठी-मीठी ईर्ष्या की थपकियां आवश्य लगी थीं। दिन के तीन बजे ये लोग छूटे थे। ये लोग भी खुश। मौ० सलामतुल्ला तो थोड़ी देर ठहर जाना चाहते थे, इसलिए कि मोटर आ जाये और ढंग से शहर में जायें। परन्तु जेल वालों ने उन्हें अधिक देर तक अपना मेहमान रखना पसंद नहीं किया। इसलिए, बेचारों को जाना ही पड़ा। उसी दिन शाम को, लखनऊ में इन लोगों की रिहाई की खूब धूमधाम रही, जुलूस निकले, मौ० सलामतुल्ला के वकील हमारे दोस्त अखबारे 'हमदम' के, बाजारों में दोनों तरफ खड़े हुए आदमियों को सलाम किये। मौलाना अब भी बहुत काम कर रहे हैं। 'हमदम' में लोगों ने पढ़ा था कि वे मुल्क और मजहब के लिये हर तरह तैयार रहें और अब उसी सभा में जाना फर्ज समझते हैं जहां 75 फीसदी आदमी खालिस खद्दर पहने हुए हों। हममें से एक ने 'हमदम' की इस बात को पढ़कर कहा कि 'न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी' परन्तु हम मौलाना की देशभक्ति को ऐसा नहीं मानते। रिहा होते समय पंडित जवाहरलाल के चेहरे पर हर्ष-विषाद का कोई चिन्ह नहीं था। वे अचल थे। साधारण ढंग से हम लोगों में मिले। हमारा ख्याल था और

वे भी यही समझते थे कि शीघ्र ही लौटना होगा। परन्तु पंडित श्यामलाल नेहरू ने एक बार फरमाया कि जवाहरलाल जी अपनी रिहाई पर खुश थे। एक दिन, यों ही, रिहाई की बातचीत के सिलसिले में, मेरे सामने पंडित मोतीलाल जी और पंडित श्यामलाल जी से कुछ बातें हो गई थीं। पंडित मोतीलाल जी ने हम लोगों से कहा था कि क्या दिन-रात रिहाई-रिहाई की ही चर्चा किया करते हो? पंडित श्यामलाल ने सच ही कहा था कि इस चर्चा में कुछ मजा आता है उसी अवसर, परन्तु कुछ देर बाद को पंडित श्यामलाल जी ने फरमाया था कि भाई, रिहाई की बात मजेदार न होती तो उस दिन जवाहरलाल जी का चेहरा चमकता नजर न आता। मुझे तो यह चमकदार नज़र आया नहीं था। रिहाई की चर्चा के अतिरिक्त एक बात की चर्चा और हुआ करती। कुछ लोग उसे गंभीरता के साथ करते और कुछ अगंभीरता के साथ। जेल में रहकर हमें जो 'कुर्बानियां और त्याग' करना पड़ता था, करना पड़ा, उसकी याद हमारे दिलों में रह-रहकर वैसी ही ताजा हो जाया करती जैसा कि पुरवैया के चलने पर दबी हुई चोटों की कसक उमड़ पड़ा करती है। शायद हममें से कुछ ने डायरी में, उन बड़ी-बड़ी कुर्बानियों को भलीभांति दर्ज कर रखा हो, क्योंकि क्रम से दर्जे-ब-दर्जे उनका वर्णन करना प्रत्येक आदमी की स्मरण शक्ति के लिए तो कठिन कार्य के समान तक हो सकता है। सफरिंग्स की याद की इस ताजगी के कारण, त्याग और तपस्या की रह-रहकर उठ बैठने वाली इस बेचैनी से, दिल और दिमाग में बहुधा लड़ाई हुआ करती थी और जिनके दिमागों में जरा बल की उतनी अधिकता न होती जितना होने की लोग कुछ आवश्यकता भी समझ बैठा करते हैं, वे बेचारे अपने दिल के मचल-मचल पड़ने के कारण हवा में नये-नये किले बनाने और बिगाड़ने को बहुधा विवश हो जाया करते थे। लीडरशिप आपसे आप उनकी दृष्टि के सामने झूल-झूल जाया करती और उन्हें आकाशपथ पर विचरण करने के लिए विवश किया करती। इसमें उन बेचारों का दोष ही क्या था? हमारे मित्र रणेन्द्रनाथ बसु एक छोटी-सी घटना सुनाया करते थे। एक छोटा वच्चा जलपान के लिए तश्तरी में चार रसगुल्ले रखकर भीतर से लाया। रास्ते में ही दो उसने गट कर लिए। नित्य नियम से चार रसगुल्ले खाने वाले ने एक बार तश्तरी में दो रसगुल्ले देखकर दो के गायब हो जाने का कारण तुरंत समझ लिया। तहकीकात होते ही अपराधी रोते-रोते बोला, 'मेरा कसूर नहीं, मैं क्या करूँ, रसगुल्ले ही मेरे सामने आ गये।' इसी प्रकार जेल में रहने वाले हमारे दोस्तों का आकाशचारी होने में कोई दोष नहीं था, कुर्बानियों, सफरिंग्स, त्याग ही का एक सारा दोष था जो सामने आ-आकर उन्हें तंग किया करता और उन्हें सब्ज़बाग दिखाया करता। इन बातों के अतिरिक्त हममें धार्मिकता भी बहुत बढ़ गयी थी। गीता के परायण तो जेल में इतने हुए कि शायद ही इतने बड़े स्थान में और कहीं हुए हों। रामायण भी खूब पढ़ी गयी। एक महाशय तो कभी-कभी रात को रामायण इतने जोर से पढ़ा करते कि दूर होने पर भी हम लोग उनके शब्दों को साफ-साफ सुनते। कुरानखानी भी खूब होती। हमारे मुसलमान दोस्त पांचों वक्त नमाज़ पढ़ते। हमारे आर्यसमाजी भाइयों ने हवनकुण्ड बना लिया था और संध्या को उसका इस्तेमाल होता। एकादशी का व्रत रखा जाता और किसी-किसी बैरक में संध्या को जोर से ईश्वर प्रार्थना होती। पांचों नमाज के पश्चात् अल्लाह हो अकबर की आवाज़ सदा उठाई जाती। मि० क्लीमेंट्स इस पर बहुत नाराज हुए। उन्होंने बहुत कोशिश की कि 'हल्ला' न होने पाये। मुसलमान मित्रों ने कह दिया कि हमारा मज़हब कहता है कि जिस मज़हबी काम को करने में कोई बाधा डाले उसे अवश्य करना चाहिए। सुपरिन्टेंडेंट की एक न चली। साधारण कैदियों को तो धार्मिक कामों तक में तनिक भी आजादी नहीं थी। उनके जनेऊ उतरवा लिए जाते हैं और उन्हें व्रत और रोजा तक नहीं रखने दिया जाता है। जिला जेल में, अंत में एक झगड़ा हो गया। स्वामी भास्कर तीर्थ जिस बात पर अड़ जाते हैं उस पर खूब ही अड़ते हैं। जेल में तो अड़ने की दशा पर सबसे पहला काम उनका यही हुआ करता कि वे भोजन छोड़ देते। कई बार उनके भोजन छोड़ देने की घटना घट चुकी है। इसलिए उनके इस अस्त्र की अधिक प्रशंसा करने की आवश्यकता नहीं। जेल वाले उन पर नाराज रहते। एक दिन एक जमादार से स्वामी जी बिगड़ उठे। शौच के लिए दूसरे बैरक में जाना चाहते थे, उसने जाने नहीं दिया और शायद शख्ती से पेश आया। इस पर स्वामी जी को क्रोध आ गया, उन्होंने उसे एक पात्र खींच मारा। जमादार बच तो गया परन्तु जेल वाले बिगड़ पड़े। इधर स्वामी जी से एक युद्ध और ठन गया। भगवान श्रीकृष्ण का चित्र उन्होंने टांग रखा था। जेल वालों ने कहा, जेल में चित्र नहीं टांग सकते। स्वामी जी ने परवाह नहीं की। सुपरिन्टेंडेंट ने चित्र जबर्दस्ती उतरवा लिया। दूसरे दिन श्रीकृष्ण के चित्र उस बैरक में और लोगों ने भी लगा दिये। हवा बही और जेल भर में श्रीकृष्ण के चित्रों को हर स्थान पर टांगने की चर्चा चल पड़ी। मुसलमान मित्रों तक का यही विचार था। सुपरिन्टेंडेंट ने धमकी दी, परन्तु कोई विचलित न हुआ। 'इंडिपेंडेंट' के मिस्टर रंगा अय्यर से इसी मामले में सुपरिन्टेंडेंट से कुछ कहा-सुनी हो गयी। जिस समय मि० क्लीमेंट्स जबरदस्ती करने पर उतारू थे, मि० रंगा अय्यर ने उनकी आज्ञा का विरोध किया और जब वे नहीं गये तब मि० अय्यर ने क्रोध के आवेश में कुछ अपशब्दों का प्रयोग किया। इस पर वे सेंट्रल जेल भेज दिये गये। वहां बंद और अलग रखे गये और अंत में फैजाबाद जेल भेज दिये गये। स्वामी भास्कर तीर्थ को भी फैजाबाद जेल की कैद की सजा मिली। उन दोनों के चले जाने पर भी श्रीकृष्ण के चित्र का झगड़ा समाप्त नहीं हुआ। अंत में पं० मोतीलाल जी ने बीच में पड़कर उसे रफा-दफा कराया। समझौता यह हुआ कि श्रीकृष्ण के चित्र अपने पास रखो, परन्तु दीवारों पर टांगो मत। इस सम्बन्ध में एक दिल्लगी की बात हुई जेल के भीतर श्रीकृष्ण के सैकड़ों चित्र पहुंच गये थे। कड़ा पहरा और पूरी चौकसी थी, तो भी जेल वालों की आंखों में धूल झोंक दी गयी। धर्म के कामों में अपनी आत्मा को तृप्त करते हुए जब कोई त्योहार पड़ता तब हम उसे भी अपने ढंग से धूमधाम के साथ मना लिया करते। होली खूब मनाई गयी। अलग-अलग बंद होने के कारण हम एक-दूसरे से नहीं मिल सके, परन्तु जो लोग पास थे, वे सब आपस में खूब रंग खेले और दिन भर मुंह चलाते रहे। मुसलमान मित्रों ने होली में खूब साथ दिया, उनमें एक आध ने खूब ही होली खेली। मिर्जापुर के यूसुफ साहब ने सब मित्रों को हँसा-हँसाकर रंग से तर-बतर किया और हमारे साथ के लखनऊ के हकीम आशुफ्ता साहब सवेरे से ही साफ कपड़े पहनकर होली खेलने के लिए पास आ गये थे। दोपहर को रंग का रेला रहा, परन्तु उसके बाद, एक ऐसी घटना हुई जिसमें सबका रंग फीका पड़ गया और दिन खिन्नतों में कटा। उनका वर्णन नहीं करूंगा। इतना ही समझ लीजिये कि उनका न कहना ही अच्छा है।

7-8 मई के दिन बड़े ही बुरे थे। 7 की संध्या को देवरिया के अवधनारायण लाल की मृत्यु हुई। इस दुर्घटना पर बहुत कुछ कहा जा चुका है इसलिए अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। चार बजे का वक्त था। सुपरिन्टेंडेंट का एक आदमी डाक्टर जवाहरलाल को बुलाने आया। एक मिनट बाद ही दूसरा आदमी आया। फिर तीन-चार मिनट के भीतर दो आदमी और आये। जल्दी-जल्दी कपड़े पहन कर डाक्टर जवाहरलाल अस्पताल पहुंचे। मि० क्लीमेंट्स वहां मिले। मिलते ही बोले,

डाक्टर जवाहरलाल, इस आदमी को बुखार है, मलेरिया है, मुझे आपकी मदद नहीं चाहिए, यहां के एक कैदी ने कहा कि आपको बुला लिया जाये। केवल डॉ० मुरारीलाल और डॉ० जवाहरलाल ही दो होशियार डाक्टर अब रह गये हैं। अगर मैं आपको यहां न बुलाता तो कल ही पत्रों में छपता कि प्रार्थना करने पर भी सुपरिन्टेंडेंट ने कानपुर के चतुर डाक्टर मुरारी लाल और डॉ० जवाहरलाल को इस अवसर पर रोगी के पास न आने दिया तो भी यह समझ लीजिए कि मैंने आपको इलाज के लिए नहीं बुलाया, इलाज का तो प्रबन्ध हो गया है। आपको तो मैंने इस हिकमत अमली (पॉलिटिकल मूव) की आड़ लेकर बुलाया है कि कोई फिर यह न कह सके कि ऐसे अवसर पर मैंने आपको बुलाया ही नहीं। डाक्टर जवाहरलाल को हुजूर सुपरिन्टेंडेंट साहब की यह बातें बुरी तो बहुत लगीं, परन्तु एक विपत्तिग्रस्त भाई के कारण उन्होंने चुपचाप यह अपमान सहा। मि० क्लीमेंट्स कहते थे, रोगी पहले से अच्छा है। डॉ० जवाहरलाल ने उसे देखकर यह मत स्थिर किया, उसकी दशा खराब है, उसकी नब्ज नहीं मिलती और हृदय बहुत कमजोर है। पहले तो मि० क्लीमेंट्स ने इस बात को मजाक में उड़ा देना चाहा, परन्तु अन्त में जब कुछ बातें हुईं और रोगी के शरीर की फिर से परीक्षा हुई, तब उनके मिज़ाज का चढ़ा हुआ पारा कुछ नीचे उतरा और वे फिर डॉ० जवाहरलाल से इलाज के सम्बन्ध में सलाहें मांगने लगे। पिचकारी द्वारा शरीर के भीतर दवा पहुंचाना तय हुआ परन्तु उस लखनऊ डिस्ट्रिक्ट जेल का अस्पताल केवल कबाड़ी गोदाम सदृश पड़ा था। उनमें न ठीक-ठीक दवाइयां थीं और न समान ही। पिचकारी से शरीर में दवा पहुंचाने के लिए विशुद्ध जल की आवश्यकता थी। पं० मोतीलाल जी के पास इस प्रकार का जल था। जब तक आदमी दौड़कर वहां से जल लाये और पिचकारी तैयार की जाये, तब तक रोगी का और बुरा हाल हो गया। इधर चिकित्सा कुल चूड़ामणि मि० क्लीमेंट्स पिचकारी लेकर दवा देने के लिए आगे बढ़े और उधर रोगी के प्राण-पखेरू ऊपर उड़ गये। दवा रख दी गयी और मृतक के शरीर पर चादर डाल दी गयी। रातभर कितने ही लोग लाश के पास बैठे रहे। पहले इस बात की आज्ञा न थी कि लाश के पास कोई रहे, परन्तु अन्त में दया के देवता ने मि० क्लीमेंट्स ने दिल को कुछ हिला दिया और उन्होंने कुछ लोगों को आज्ञा दे दी। सवेरे सात बजे लाश उठी। मुश्किल से सब को आखिरी दीदार देखने की आज्ञा मिली। लगभग सभी ने अर्थी में कंधा लगाया। चलते समय कुछ श्लोक पढ़े गये। एक सज्जन ने एक कविता पढ़ी। कविता में था कुछ नहीं, परन्तु उसमें अपनी बेबसी और उसमें सरो-सामनी का जिक्र था जिसमें अवध नारायण लाल ने केवल तीन दिन की बीमारी में, बिना इलाज के अपनी जान दे दी। इस कविता के एक दो-पदों पर तो यह जी चाहता था कि खूब जी खोल और दहाड़ें मार-मार रो लें। कितने ही लोग रोये भी और खूब रोये और कितने ही हृदय मसोस-मसोस कर रह गये। फाटक पर लखनऊ कांग्रेस कमेटी, खिलाफत कमेटी, और आर्य समाज के कुछ सज्जन आ गये थे, हम उन्हें लाश दे आये। वे उसे लेकर चले गये। उसके बाद बाहर जो कुछ हुआ, उसका पता देश भर को है। जेल वालों ने कहा, हमने अवध नारायण लाल का खूब इलाज किया। कैदियों में से एक महाशय मुरादाबाद जिले के डाक्टर नरोत्तम शरण इस बात के गवाह तुल्य पेश किये गये कि इलाज में कोई कसर नहीं की गयी। परन्तु इन बातों का खंडन छप चुका है। लखनऊ के डाक्टर किशनलाल नेहरू और अन्य लोगों ने जेल वालों की नृशंसता का पर्दा बिलकुल खोल दिया। बातें इतनी पते की कही गयीं और जेल वालों के बयानों में इतनी गलतियां साबित की गईं कि अब अधिकारियों ने इस मामले में चुप्पी साध लेना मुनासिब समझा है। कौंसिल में इस मामले पर एक बार खुलकर बातें होने वाली थीं। परन्तु इस विचार से कि समय पाकर गहरे से गहरे घाव सूख जाते हैं, अधिकारी वर्ग, कौंसिल की तिथि आगे बढ़ाता गया। जेल के भीतर भी इस दुर्घटना का कुछ असर हुआ। राजनीतिक कैदियों के स्वास्थ्य की रक्षा का ख्याल होने लगा। बस्ती के हरनारायण पाण्डेय श्वास कष्ट से बहुत पीड़ित थे। कई बार उनके अब और तब की नौबत पहुंच चुकी थी। एक दिन वे अचानक छोड़ दिये गये। एक मित्र से मि० क्लीमेंट्स ने कहा था कि यह आदमी मक्कर किये हुए था, आह-ऊह बहुत करता था, परन्तु उसे था कुछ भी नहीं, तो भी मैंने उसे छोड़ दिया। एक और सज्जन ने इस मित्र से कहा भी था कि तुमने मि० क्लीमेंट्स को इस दयालुता पर धन्यवाद देकर पूछ क्यों न लिया कि यदि इसी प्रकार आह-ऊह मैं भी करने लगूं तो क्या आप छोड़ देने की कृपा करेंगे ? बरेली के मौलाना अब्दुल वहूद साहब जब अधिक बीमार पड़े, तब पहले तो जेल के चिकित्सक कुल चूड़ामणि ने अपने हुनर का परिचय दिया। परन्तु मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की । बुखार 106 डिग्री हो गया। बेहोशी आने लगी। गलसुए बढ़ गए। अन्त में मौलाना, डॉ० जवाहरलाल के साथ बलरामपुर अस्पताल भेजे गये। पीछे से कुछ बीमार कैदी और भी छूटे और शहर के अस्पताल में भेजे गये। इतना होने पर भी, जेल के अस्पताल पर किसी को विश्वास न था। लोग उससे दूर ही रहना चहते। जो बीमार पड़ता, लोट-पोट कर अच्छा हो जाता या इस प्रकार अच्छे हो जाने की कोशिश करता। डॉ० मुरारीलाल और डॉ० जवाहरलाल की सेवाओं से लोग खूब लाभ उठाते, परन्तु सुपरिन्टेंडेंट साहब ने समझा कि यह तो ठीक नहीं, दोनों डाक्टर बहुत आगे बढ़े जाते हैं। इसलिए अन्त में दोनों डाक्टर रोक दिये गये। इस रोकथाम का एक कारण और भी था। खुली बैरकों में गर्मी और लू के आनंदमयी थपेड़ों को खा-खाकर लोग और अधिक आराम की लालसा से रह-रहकर बीमार पड़ने लगे। जेल में एन्फ्लुएंजा का कुछ दौर-दौरा आरंभ हुआ। सुपरिन्टेंडेंट साहब ने प्रकट किया, नहीं जेल में कोई बीमार नहीं। डाक्टर द्वय कहते, बीमारी है और लोग बीमार हैं। अन्त में सत्य की जय के लिए डाक्टर द्वय का मुंह बंद करना आवश्यक समझा गया और इसीलिए उनकी इधर-उधर जाने की आजादी छीन ली गयी। बीमारियों के अवसर पर हमारे मित्र कपिलदेव मालवीय भी चिकित्सक का कुछ काम कर डाला करते थे। वे सलाह दिया करते कि शारीरिक व्याधियों से यदि पार पाना हो, तो बीमारी के अवसर पर जितना बने उतना डटकर खाओ। एक बार उन्हें पेचिश हुई। उन्हें उनके नुक्से की याद दिलायी गयी। उस समय आपने फरमाया कि नुसखा इस मामले में ठीक बैठा। खूब ठूंस-ठूंसकर खाने का सिद्धांत गलत नहीं है। वह इसलिए ठीक नहीं बैठा कि अभी तक इस आविष्कार में इस ज्ञान की कमी है कि किसी बीमारी में कौन सी वस्तु ठूंस-ठूंसकर कितनी खानी चाहिये ?

पंडित मोतीलाल नेहरू से महमूदाबाद के राजा साहब मिलने आये। एकांत में दोनों दोस्त खूब बगलगीर होकर मिले। देर तक बातचीत हुई राजा साहब पंडित जी को टटोलने आये थे महात्मा गांधी आदर्शवादी हैं, उन्हें राजनीति का ज्ञान नहीं है, वे क्यों परछाई के पीछे दौड़े जा रहे हैं, बने हुए क्षेत्र में आकर क्यों नहीं लाभ पहुंचाते। कहते हैं राजा महमूदाबाद की बातें इसी ढंग की थीं। पंडित जवाहरलाल नेहरू को भी अपने बूढ़े माता-पिता का खयाल समझदार बन जाने की सलाह देने का विचार भी राजा साहब प्रकट करते सुने गये थे। परन्तु उस समय जवाहरलाल जी न तो वहां थे और न उन्हें अपनी सबसे बूढ़ी माता के मुकाबले में अपने कम बूढ़े माता-पिता का कोई खयाल ही आता। पंडित को पहाड़ पर रखने का विचार

भी पेश किया गया था। परन्तु कहते हैं पंडित जी ने चतुर वकील की भांति, राजा साहब को सब बातों में से किसी भी बात के पा लेने का संतोष प्राप्त न होने दिया। वे भरे हुए हाथों आए थे और खाली हाथों वापस गये। कुछ दिनों बाद, पंडित जगतनारायण साहब भी पधारे। पंडित मोतीलाल जी से उनकी कोई खास बात नहीं हुई। ये दोनों सम्बन्धी हैं। पंडित मोतीलाल के भतीजे डॉ० किशनलाल मंत्री महोदय की पुत्री से ब्याहे हैं। 11 मई को जवाहरलाल अपने पिता से मिलने आये। नेहरू परिवार के लोग जेल के भीतर आ पाते थे। दोपहर का समय था। जवाहरलाल जी पंडित जी से बातें कर रहे थे, इतने ही में जवाहरलाल जी की गिरफ्तारी के लिये पुलिस खड़ी हुई है। फाटक पर जवाहर लाल जी को वारंट दिखलाया गया वे पुलिस की हिरासत में हो गये। पुलिस ने उन्हें संध्या तक जेल के फाटक पर ही रक्खा, और रात में में एक तीसरे दर्जे की गाड़ी में इलाहाबाद भेज दिया। पंडित मोतीलाल का ख्याल था कि जवाहरलाल जी पर जो अनेक दफायें लगाई गई हैं, उनका अर्थ यह है कि उन्हें गुरु गांधी जी की भांति लम्बी सजा दी जाये। इस घटना के एक दिन पहले सुपरिन्टेंडेंट ने पंडित मोतीलाल से कहा था कि कल आप बाहर जायेंगे, तैयार रहिये। मि० क्लीमेंट्स ने इस ढंग से बात की थी मानों पंडित जी छोड़े जाने वाले हों। मि० क्लीमेंट्स ने यह भी कहा था किसी ने आपका जुर्माना अदा कर दिया है, इसलिये अब आपको एकमाह अधिक जेल में नहीं रहना पड़ेगा। जवाहरलाल जी के पकड़े जाने के दूसरे दिन, संध्या को पंडित मोतीलाल जी जेल से बाहर किये गये। पीछे पता लगा, वे छूटे नहीं, उनका जुर्माना भी अदा नहीं हुआ, वे नैनीताल जेल भेजे गये।

22 मई को मैं जेल से बाहर हुआ। 11 बजे दिन को छोड़ा गया था। रिहाई के समय मि० क्लीमेंट्स से बातें हुईं। आपने फरमाया, 'अब कुछ अपना काम करना।' मैंने कहा, 'पहले भी करता था।' बोले, 'नहीं, आप लोगों के पास दूसरों को भड़काने के सिवा कोई काम नहीं, कपड़ा बुनने का एक कारखाना खोलना।' नेक सलाह के लिए धन्यवाद देते हुए मैंने कहा, 'आपका ख्याल गलत है, मेरे पास काफी काम हैं। 'बोले क्या है ?' मैंने कहा,'प्रेस और पत्र।' बोले, वे आपके नहीं, उनमें आप नौकर हैं।' मैंने कहा, मैं वैसे ही नौकर हूँ। जैसे आप इस जेल के नौकर हैं। इस पर बातों का रुख पलटा। बोले, 'जेल आने की इच्छा भले आदमियों में नहीं होनी चाहिये। मैंने कह दिया, 'जब तक देश की यह अवस्था है तब तक हर भले आदमी का दूसरा घर जेल ही है।' बोले, 'आप बहुत कमजोर हैं, जरा मजबूत होकर आइयेगा।' मैंने उत्तर में कहा, 'आप बहुत बड़े चिकित्सक हैं, आपके हाथों में अपने को सौंपकर अधिक चिन्ता की आवश्यकता न रहेगी ?' बाहर कुछ मित्र खड़े थे। फाटक की खिड़की खोल दी गई।

उससे निकल कर कुछ खुली दुनिया में पहुंच गया।

जेल में जो दिन बीते, वे कैसे बीते, इस पर अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। परन्तु यहाँ, अंत में, इतना कह देना आवश्यक है कि हमारे शासकों की भेदनीति यहाँ भी काम कर गई। विशेष व्यवहार कम होते-होते बहुत ही दुबला-पतला हो गया था, तो भी, जिस दिशा में हमारे हजार भाई अपनी देश-भक्ति के कारण अपना जेल जीवन काट रहे थे, उसमें और इस दो-तीन सौ आदमियों के विशेष व्यवहार के जीवन में आकाश-पाताल का अन्तर तब भी है। वैसे तो कोई बात न थी जब कोई बात आंखों के सामने आ पड़ती, तब शरम से गर्दन लच जाती और हृदय अपने ही को धिक्कारता। लखीमपुर के चालीस युवक स्वयंसेवक होने के कारण जेल के निवासी बने। उन्हें कठिन कारागार का दण्ड था। वे रखे गए थे हमारी ही जेल में। उनका काम था हमारी बैरकों को साफ करना। जब पता चला कि ये लोग इस तरह से आये हैं, तब लोग उनका आदर करने लगे। उन्हें खिलाते और अपने पास बैठाते। जेल वाले खटक गए, वे बेचारे वहां से हटा दिए गए गये और सख्त कामों में लगा दिए गये। उनमें से एक बालक था, मुश्किल से 16 वर्ष का, उसे साढ़े सात वर्ष की सजा थी। एक दिन दोपहर को तीन कैदी दिखाई दिये। दो रो रहे थे। जमादार उन्हें धक्के दे रहा था। वे भी वालिंटियर थे, उन पर मार पड़ी थी और उस समय

वे सेंट्रल जेल भेजे जा रहे थे। एक दिन यह सुना गया कि सीतापुर के कुछ वालिंटियर सेंट्रल जेल में धूप में खड़े किये गये और उनमें से किसी ने कुछ एतराज किया तो उस पर बेतरह मार पड़ी। बहुधा देखते थे कि जो आज सबेरे तक हमारा साथी था, वही शाम को हथकड़ी-बेड़ी पहने साधारण कैदी बनाया जाकर दूसरी जेल को भेजा जा रहा है। पं० नरदेव शास्त्री आर्य समाज के प्रसिद्ध हैं। एक दिन संध्या को छड़ों द्वारा उनसे भेंट हुई। वे जंजीरों को धारण किये बाहर जा रहे थे। श्रीयुत मकसूद आलम पीलीभीत के थे। ये हमारे साथी थे। एक दिन वे भी लोहे से कस दिये गये और इलाहाबाद जेल भेज दिये गये। अपमान तो पग-पग पर होता था। तो भी अपनी ख्वारी तो कुछ भी न थी। हां देश के उसी काम के लिए जिसके लिए हम जेल पहुंचे थे, अपने भाइयों की सच्ची यातनाओं का हाल सुनकर तथा उसकी कल्पना करके और फिर, उस समय, उसी के साथ अपनी दशा पर विचार करके और अपने आदमियों में से अनेक की चित्तवृत्तियों और मानसिक अवस्था को देखकर, बहुधा लज्जा आती थी और स्वीकार करना पड़ता था कि हमारे शासकों की चाल ने यहां भी बुरा काम किया और हममें से बहुतेरों को शायद अधिकांश को नीचे गिरा दिया। कष्टों की उपासना के पक्ष में ये पंक्तियां नहीं लिखी जा रही है। कष्टों के लिए सहने की बात नहीं कही जा रही है। शरीर और मन को पुष्ट करने के लिए तपस्या करने का न्यौता नहीं दिया जा रहा है। खामख्वाह आग में कूद पड़ने की सलाह भी नहीं दी जा रही है। परन्तु इंसानियत का तकाजा है, भाईपने की राह है, एक पथ के पथिक होने की अवस्था है जिसकी ओर अत्यन्त विनय के साथ इशारा किया जा रहा है। जहां जंजीरें खनक रही हों, काल कोठरी का अंधेरा हो, जहां बात-बात पर तिरस्कार और मारामार हो, जहां पग-पग पर फटकार और प्रहार पर प्रहार हो, जहां मनुष्यता को रौंद डालने का विचार काम करता हो, जहां मनुष्यों को निकृष्ट से निकृष्ट प्राणी की भांति मिली दाल हो, पहनने के लिए जूं भरे फटे कम्बल और लज्जा का भी निवारण न कर सकने योग्य वस्त्र हों, जहां हमारे पथ के पथिक हमारे साथी, हमारे सखा, हमारे दोस्त, हमारे प्यारे भाई, हमारे अपने एक नहीं, दो नहीं, दस नहीं,'सौ नहीं, हजारों की तादाद में, रामरत्न और चांदमल के रूप में, मलखान सिंह और महावीर त्यागी के वेष में, नरदेव और कबड़िया की शक्ल में, यातनाओं और अपमानों के जीवन पथ में, अपने दिन बिता रहे हों, वहीं हम विशेष व्यवहार के इस प्रपंच में पड़े हुए, मुंह का स्वादिष्ट ग्रास गले के नीचे उतारने में अच्छे आरामदेह वस्त्रों को शरीर पर धारण करने में, अपने भद्दे बिछौने पर सुख से शयन करने में बिना पतित हुए, बिना अपना हृदय खोये बिना अपने को नीचे गिराये कैसे समर्थ हो सकते थे ? इन पंक्तियों का लेखक एक व्यक्ति की हैसियत से स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करता है कि जेल में अपने जो दिन कटे, बहुत कुछ बेचैनी से कटे और उनकी याद, दिशा की दूसरी ओर की स्मृति के साथ, गर्दन को नीचे झुक जाने के लिए विवश करती है। ❑❑

(निकष, कानपुर द्वारा प्रकाशित गणेश शंकर विद्यार्थी स्मृति ग्रंथ 'संघर्ष और सृजन' से साभार)

'नील दर्पण' नाटक के रोमांचक मुकदमे का फैसला

○ डॉ० शरद नागर

भारतीय साहित्य के इतिहास में दीनबंधु मित्र कृत नाटक 'नील दर्पण' युग की सर्वाधिक विवादास्पद कृति रही है। इस नाटक को लेकर कलकत्ता से इंग्लैंड तक जो तूफान उठ खड़ा हुआ, निश्चय ही उसे देश की आजादी की लड़ाई के इतिहास के एक परिच्छेद के रूप में याद किया जाता रहेगा।

'नील दर्पण' का प्रकाशन 1860 में हुआ। बंकिम चंद्र चटर्जी के अनुसार 1848-60 का काल बंगला साहित्य में नवीन और प्राचीन साहित्य की धारा का संधिकाल रहा है। 1859 में प्राचीन धारा के अंतिम प्रतिनिधि ईश्वर गुप्ता अस्तमित हुए और मधुसूदन नवोदित हुए।

अत्याचारों का सजीव चित्रण

इस युग में आधुनिक बंगला गद्य-साहित्य की दाग-बेल पड़ रही थी। अतः भाषा, कला एवं शिल्प की दृष्टि से गद्य साहित्य नवीन दिशा को पकड़ने की प्रक्रिया से गुजर रहा था। ऐसे समय में दीनबंधु मित्र ने, जो मुख्यतः हास्य रस के कवि थे, अपना पहला नाटक 'नील दर्पण' (जिसका हास्य-रस से दूर-दराज का नाता नहीं था) लिखकर तत्कालीन साहित्य-जगत को निश्चय ही चौंकाया होगा। दूसरी बात यह भी महत्वपूर्ण है कि उन्होंने मात्र नीलहे गोरों द्वारा किये जानेवाले अत्याचारों का चित्रण करके अपनी कृति को चर्चित बनाने की कोशिश नहीं की। बंगला साहित्य मर्मज्ञ महादेव साहा के अनुसार यह नीलहों के अत्याचार की कहानी मात्र नहीं है, इसमें ग्रामीण जीवन के रोजमर्रा के दुख-दर्द, उनकी यथार्थ अनुभूति और संवेदना तथा संघर्ष का चित्र अंकित है।

'नील दर्पण' का पहला प्रकाशन सितंबर, 1860 में ढाका से हुआ। प्रकाशन के समय दीनबंधु मित्र इंस्पेक्टिंग पोस्ट मास्टर के रूप में सरकारी डाक विभाग में थे। इस आशंका से कि 'नील दर्पण' के लेखक के रूप में नाम उजागर होने से दीनबंधु मित्र का अहित हो सकता है, ग्रंथ में लेखक का नाम प्रकाशित नहीं किया गया। लेखक के स्थान पर 'किसी यात्री द्वारा नीलहे रूपी कोब्रा (काले नाग) के काटे से पीड़ित खेतिहरों के भले के लिए लिखा गया' उल्लिखित है। किंतु बंगाल में यह बात छिपी न रह सकी कि 'नील दर्पण' का लेखक कौन है। धीरे-धीरे सभी दीनबंधु मित्र का नाम जान ही गये।

बंगला साहित्य के ज्ञाता पादरी रेवरेंड जेम्स लांग (जो उन दिनों बंगला साहित्य के सूचीकरण का कार्य संपन्न कर रहे थे) ने 'नील दर्पण' में भारतीय ग्रामीणों का सजीव चित्रण होने के कारण इस नाटक का अनुवाद अंग्रेजी में कराये जाने का प्रस्ताव बंगाल सरकार के तत्कालीन मुख्य सचिव डब्ल्यू. एस. सीटेक्कार के सामने रखा और कुछ ही समय में नाटक का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित करने की स्वीकृति प्राप्त कर ली। पुस्तक का अनुवाद लांग ने माइकेल मधुसूदन दत्त से कराया, जो अप्रैल या मई, 1861 में प्रकाशित हुआ।

इस अनुवाद की 500 प्रतियां बंगाल ऑफिस को भेजी गयी, जिनमें से सरकारी मुहरयुक्त 202 प्रतियां इंग्लैंड भेजी गयीं। महादेव साहा के अनुसार 'लांग ने विलायत में पार्लियामेंट के 11 सदस्यों के अलावा अनेक विशिष्ट व्यक्तियों एवं समाचार पत्रों को इसकी प्रतियां भेजीं।'

27 मई को कट्टर भारत-विरोधी अंग्रेजी अखबार 'इंग्लिश मैन' को 'नील दर्पण' के अंग्रेजी अनुवाद की प्रति मिली। 'इंग्लिश मैन' और 'बंगाल हरकारू' ने 'नील दर्पण' के खिलाफ जम कर लिखा।

नीलहों की संस्था 'लैंड होल्डर्स ऐंड एसोसिएशन ऑफ ब्रिटिश इंडिया' ने 25 और 29 मई, 1861 को बंगाल सरकार को लिखित ऐतराज भेजे कि किताब की प्रतियां सरकारी देख-रेख में बांटी गयी है। इसके द्वारा नीलहों के खिलाफ राजद्रोहात्मक आंदोलन के लिए किसानों को भड़काया गया है। इस मामले से संबद्ध लोगों के खिलाफ सख्त कानूनी कारवाई की जाये।

3 जून, 1861 को दिये गये सरकारी स्पष्टीकरण में लिखा गया कि 'गवर्नर की गैर-हाजिरी में और उनकी इजाजत के बिना ही सरकारी मुहर लगा कर
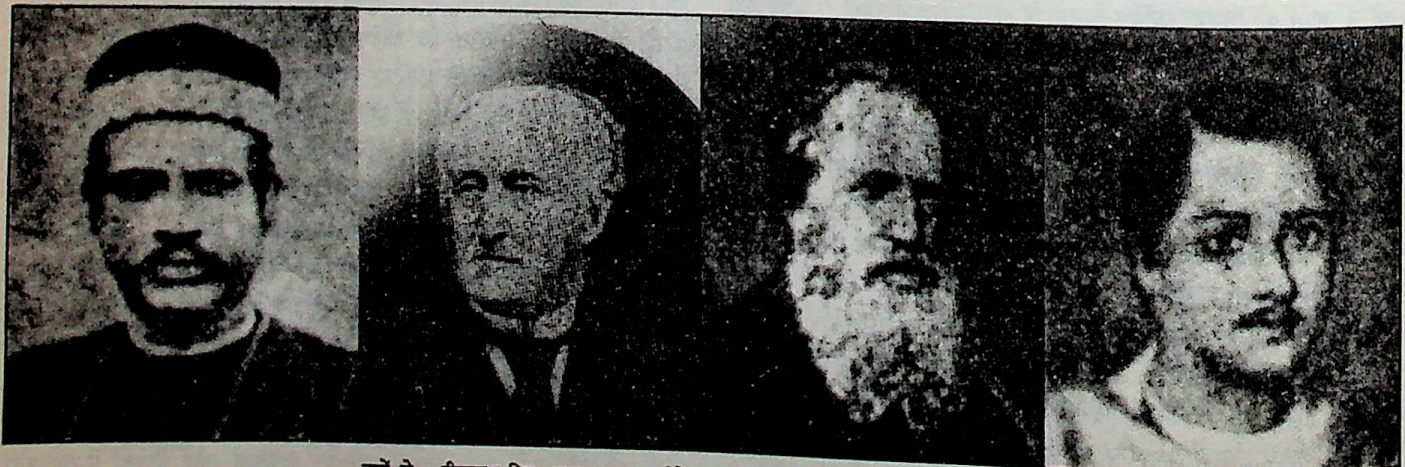
बायें से— दीनबन्धु मित्र, डब्ल्यू० एस० सीटेक्कार, रेवरेण्ड जेम्स लांग और कालीप्रसन्न सिंह

किताबें भेजी गयीं। इसमें हल्के-इज्जत की गैर-कानूनी कोई बात नहीं है, गवर्नर को इस बात का खेद है कि किताबें सरकारी मुहर लगा कर भेजी गयीं।'

'नील दर्पण' पर मुकदमा

इस प्रतिक्रिया के फलस्वरूप पुस्तक के मुद्रक सी.एच. मेनुअल के नाम सरकारी आरोप-पत्र जारी किया गया। मुद्रक ने लिखित रूप में अपनी गलती स्वीकार की, जिसको दृष्टिगत रखते हुए सुप्रीम कोर्ट, कलकत्ता के आदेशानुसार मुद्रक पर दस रुपये जुर्माना किया गया।

इसके बाद जेम्स लांग के खिलाफ बाकायदा मुकदमा चला। शुक्रवार 19 जुलाई, 1861 को रानी (मलिका विक्टोरिया) बनाम रेवरेंड जेम्स लांग का मुक़दमा कलकत्ता हाईकोर्ट में फौजदारी के सत्र न्यायाधीश सर मैरडंट वेल्स की अदालत में पेश हुआ। इस बात का विवरण मिलता है कि मुख्य न्यायाधीश निष्पक्ष न हो कर रानी अर्थात नीलहे अंग्रेजों का पक्ष ही लेते रहे। मुकदमे का फैसला 24 जुलाई, 1861 को ही हुआ।

न्यायाधीश ने 'हरकारू' में उद्धरित नाटक के इन संवादों का उल्लेख किया :

दरोगा : "मजिस्ट्रेट साहब की आज आने की बात है न !"

जमादार : "जी नहीं, उनके आने में अभी और चार दिन की देर है। शनिवार को सच्चीगंज की कोठी में साहबों की शराब (शैम्पेन) पार्टी है, बीवियों का नाच होगा। वुड साहब की बीबी हमारे साहब के अलावा किसी और के साथ नहीं नाच सकती। मैं जब बेयरा था। देखा है, वुड साहब की दीवी बड़ी दयावान हैं, साहब पर अपने असर से एक चिट्ठी में मुझे जेल का जमादार बनवा दिया।"

इन संवादों को उद्धृत करते हुए जज ने जूरी का ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट किया कि, 'इसका यह अर्थ लगाया जायेगा कि नीलहे, जिला मजिस्ट्रेटों को अपने चंगुल में रखने के लिए अपनी बीवियों का इस्तेमाल करते हैं। इस किताब में सरकार के खिलाफ इस तरह की बातें भरी पड़ी हैं।'

अंग्रेज पादरी की निर्भीकता

इस वितर्क के उत्तर में जेम्स लांग ने कहा "कि इस प्रकार के अर्थ निकालना ठीक नहीं है--मैं एक धर्म प्रचारक (मिशनरी) हूं और मेरी अंतरात्मा धर्म के ही वशीभूत है। मैंने जो कुछ किया है, वह अठारह करोड़ भारतवासियों, जिन पर रानी और पार्लियामेंट की हुकूमत है, के कल्याण के लिए ही किया है।"

लांग ने यह विश्वास प्रगट किया कि 'मैं जानता हूं कि मुझे भारत और इंग्लैंड में, इस देश के निवासियों के शुभचिंतकों और मनुष्य जाति के बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास में अटूट आस्था रखनेवाले समस्त विश्व के लोगों की सहानुभूति अवश्य मिलेगी।

"श्रीमान ! अदालत ने यह फैसला दिया है कि ये कार्य आपत्तिजनक हैं और फैसले को स्वीकार करना मेरा कर्तव्य है, किंतु मेरी अंतरात्मा इस बात को स्वीकार नहीं करती कि मैंने कोई अनैतिक कार्य किया है और न ही जूरी द्वारा मेरे विरुद्ध जिस भाषा का प्रयोग किया गया है, वह उचित प्रतीत होती है।"

न्यायाधीश सर मैरडंट वेल्स ने सजा सुनाते हुए पादरी लांग को उपदेश दिया, "यह तथ्य कि तुम धर्म शिक्षक हो, तुम्हारे अपराध को दोगुना कर देता है और इस अदालत से अपने खिलाफ सजा सुनने के लिए हाजिर होने के वक्त सरेआम यह कह कर कि बहुत से अंग्रेजों द्वारा अधार्मिक तरीकों से मसीही-धर्म का प्रचार किया जा रहा है, तुम अपने बहुतेरे देशवासियों को अपराधी सिद्ध करने की कोशिश कर रहे हो, जो गैर-वाजिब है।" अंत में न्यायाधीश ने मुकदमे का फैसला सुनाया, 'इस अदालत के फैसले के मुताबिक तुम्हें मलिका को एक हजार रुपये का जुर्माना अदा करना होगा और साथ ही एक महीने की साधारण जेल की सजा काटनी होगी। अगर जुर्माने की रकम अदा न की गयी तो कैद की मियाद बढ़ा दी जायेगी।'

अदालत में उपस्थित कई भारतीय धनिक अपने साथ पर्याप्त रकम लेकर आये थे और इस बात के लिए कृत-संकल्प थे कि लांग साहब पर चाहे जितना जुर्माना हो, वे फौरन अदा करेंगे। सुप्रसिद्ध साहित्यकार बाबू कालीप्रसन्न सिंह ने फैसला सुनने के बाद तुरंत एक हजार रुपये की रकम जमा कर दी, लेकिन एक महीने की कैद की सजा तो रेवरेंड जेम्स लांग ही काट सकते थे। अतः वे मन मसोस कर रह गये। ❑ ❑

'नील दर्पण' का मंचन लखनऊ में

बात सन् 1875 ई० की है, कलकत्ता का सुप्रसिद्ध नाट्य-दल 'ग्रेट नेशनल थियेटर' दीनबन्धु मित्र कृत अत्यन्त विवादास्पद नाटक 'नील दर्पण' का प्रदर्शन देश के विभिन्न नगरों में करने के लिये निकला। इस नाटक में नाटककार ने नीलहे गोरों द्वारा निरीह किसानों पर किये जाने वाले अत्याचारों का अत्यंत जीवन्त एवं मर्मस्पर्शी चित्रण किया था। 1860 में मूल बंगला में प्रकाशित इस नाटक का जब 1861 में अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित हुआ तो कलकत्ता से लेकर इंग्लैण्ड तक तूफ़ान उठ खड़ा हुआ।

दिल्ली, वृन्दावन, मथुरा, आगरा में सफलतापूर्वक इस नाटक के प्रदर्शन करता हुआ 'ग्रेट नेशनल थियेटर' का दल लखनऊ आया। विगत सभी प्रदर्शनों में दल के सभी कलाकारों ने अपनी भूमिकाएं चरित्रों के अनुरूप अत्यन्त कुशलतापूर्वक अभिनीत कीं।

जहां-जहां इस नाटक के प्रदर्शन हुए, दर्शक नीलहे उड और रोग के अत्याचारों के दृश्य देखकर रोमांचित हो उठे और प्रदर्शन ने दर्शकों के अन्तस्तल को छू लिया। लखनऊ में नाटक का मंचन छतरमंजिल के हाल (वर्तमान में सी०डी०आर०आई० का सभागृह) में हो रहा था। नाटक के तीसरे अंक के तृतीय गर्भांक का प्रदर्शन हो रहा था जिसमें पदी हलवाइन गर्भवती एवं विवाहिता क्षेत्रमणि को लेकर आती है और उस नीलहे अंग्रेज रोग के कक्ष में अकेला छोड़कर चली जाती है। रोग दोनों हाथों से क्षेत्रमणि के दोनों हाथों को पकड़कर पलंग की ओर खींचता है, फिर उसे निर्वस्त्र करने का प्रयत्न करता है, प्रतिरोध करने पर उसके पेट में घूंसे मारता है। क्षेत्रमणि तड़प उठती है-- उसी समय नवीनमाधव तथा तोराप खिड़की तोड़कर कमरे में कूद पड़ते हैं और तोराप रोग की जमकर पिटाई शुरू करता है और इस बीच नवीन माधव नुची-खुची क्षेत्रमणि को अपनी बाहों में उठाकर मंच से प्रस्थान करता है।

इस दृश्य में जब तोराप का अभिनय करने वाले अभिनेता ने अंग्रेज नीलहे गोरे रोग का अभिनय करने वाले पात्र पर थप्पड़ और घूंसे के प्रहार करने के बाद जब लातें जड़ना शुरू किया तो प्रेक्षागृह में बैठे कुछ अंग्रेज दर्शक उत्तेजित हो उठे और दौड़कर मंच पर जा पहुंचे और गुस्से में तोराप का अभिनय करने वाले मणिलाल सुर पर टूट पड़े, अन्य अभिनेताओं की पिटाई भी करने लगे। बमुश्किल तमाम स्थिति पर काबू पाया गया-- जिलाधिकारी ने नाट्य प्रदर्शन बीच में ही रुकवा दिया और नाट्य दल को तुरन्त कलकत्ता के लिए प्रस्थान करने के आदेश दिये गये। नाट्य दल को पुलिस की कड़ी सुरक्षा में स्टेशन तक छोड़ा गया।

❍ डॉ० शरद नागर

नील दर्पण

○ दीनबन्धु मित्र

भूमिका

नीलकर निकर के करों में 'नील दर्पण' अर्पण करता हूँ। तब वे निज-निज मुखसंदर्शन पूर्वक उनके ललाट पर विराजमान स्वार्थपरता-कलंक-तिलक विमोचन करके उनके बदले परोपकार-श्वेत चन्दन धारण करें, तभी मेरा परिश्रम सफल, निराश्रम प्रजाव्रज का मंगल और विलायत की लाज रहेगी। हे नीलकरगण, तुम लोगों के नृशंस व्यवहार से प्रातः स्मरणीय सिडनी, हावर्ड, हाल आदि महानुभाव द्वारा अलंकृत अँगरेजों के कुल में कलंक लगा है। तुम लोगों की धनलिप्सा क्या इतनी बलवती है कि तुम अकिंचित्कर घनानुरोध से अँगरेज जाति के बहुकालार्जित विमल यशस्तामरस में कीट की भाँति छेद बनाने के लिये आमादा हो गये हो ? आजकल तुम लोग जो सातिशय अत्याचार से विपुल अर्थ प्राप्त कर रहे हो, उसका परिहार करो तो अनाथ प्रजागण सपरिवार कालातिपात कर सकेंगे। तुम लोग इस समय दस करके सौ रुपए का माल ले रहे हो, इससे प्रजापुंज को जो क्लेश हो रहा है उसे तुम लोग भलीभाँति जानते हो, केवल धनलाभपरत होकर उसे प्रकट नहीं करना चाहते। तुम लोग कहते हो कि तुममें कोई-कोई विद्यादान के लिये धन वितरण करते हैं और अवसर पड़ने पर दवा देते हैं। यह बात सत्य हो भी सकती है; किन्तु विद्यादान दुधार गाय मार कर जूता दान करने से अधिक घृणित है और दवा दोनों कालकूट के कुंभ को क्षीर से ढँकने के बराबर है। कोड़े की मार के बाद थोड़ा सा तारपीन का तेल डाल देना ही अगर दवाखाना बनाना है तो कहना पड़ेगा कि तुम्हारी हरेक कोठी में औषधालय है। दोनों दैनिक समाचार पत्रों के सम्पादक तुम्हारी तारीफ़ से अपने पत्रों को भर रहे हैं, इससे दूसरे जो कुछ भी सोचें लेकिन तुम्हारे मन में कभी भी आनन्द नहीं उत्पन्न हो सकता, क्योंकि तुम लोग उनके इस काम के कारणों को भली-भाँति जानते हो। चाँदी की जैसी आश्चर्यजनक आकर्षक शक्ति होती है। चाँदी के तीस टुकड़ों के लिये अवज्ञास्पद जुडास ने ईसाई-धर्म प्रचारक महात्मा ईसा को कराल पाइलट के हाथों में सौंप दिया था। सम्पादक-द्वय हज़ार टुकड़ों के वश होकर लाचार दीन प्रजा को तुम्हारे चंगुल में झोंक देंगे, इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है ? किन्तु 'चक्रवत् परिवर्त्तन्ते दुःखानि च सुखानि च !' प्रजावृन्द के सुख सूर्योदय की संभावना दिखाई पड़ रही है। दासी से सन्तान को दूध पिलाना अवैध समझकर दयाशीला प्रजा-जननी महारानी विक्टोरिया प्रजा को अपनी गोद में लेकर दूध पिला रही हैं। सुधीर, सुविज्ञ, साहसी, उदार चरित्र कैनिंग महोदय गवर्नर जनरल बने हैं। प्रजा के दुःख में दुःखी, प्रजा के सुख में सुखी, दुष्टों के दमनकर्ता, शिष्टों के पालक, न्यायपरायण ग्रांट महामति लेफ्टिनैंट गवर्नर हुए हैं और क्रमशः सत्य परायण, विचक्षण, निरपेक्ष, इडेन, हर्सेल आदि राजकार्य परिचालकगण शतदल स्वरूप सिविल सर्विस सरोवर में विकसित हो रहे हैं। अतएव इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि नीलकर दुष्टराहुग्रस्त प्रजावृन्द के असहनीय कष्ट के निवारण के लिये उपर्युक्त महानुभावगण अचिरात् सद्विचार रूपी सुदर्शनचक्र धारण करेंगे; इसका प्रारम्भ हो गया है।

कस्यचित् पथिकस्य !
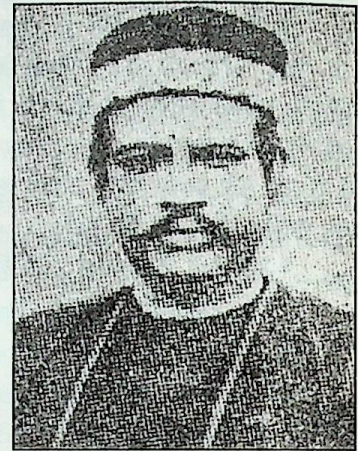
नाट्योल्लिखित व्यक्ति

पुरुष

गोलकचन्द्र वसु	
नवीनमाधव बिन्दुमाधव	गोलकचन्द्र वसु के पुत्रद्वय
साधुचरण	पड़ोसी रैयत
राईचरण	साधुचरण का भाई
गोपीनाथ दास	दीवान
आई.आई. उड पी.पी. रोग	निलहे
अमीन	
खलासी	

ताईदगार

मैजिस्ट्रेट, अमला, मुख्तार, डिप्टी इन्सपेक्टर, पंडित, जेल का दारोग़ा, डाक्टर, गोप, कविराज, चार बच्चे, लठैत, चरवाहे।

कामिनी

सावित्री	गोलक की स्त्री
सैरिन्ध्री	नवीन की स्त्री
सरलता	बिन्दुमाधव की स्त्री
रेवती	साधुचरण की स्त्री
क्षेत्रमणि	साधु की कन्या
आदुरी	गोलक वसु की महरी
पदी	हलवाइन

प्रथम अंक

प्रथम गर्भांक

गोलकचन्द्र वसु की खत्तियों का चबूतरा

(गोलकचन्द्र वसु और साधुचरण बैठे हैं)

साधु-- मैंने तभी कहा था मालिक, अब इस देश में नहीं रहा जा सकता, मगर आपने नहीं सुना। गरीव की सुने कब, बासी हो जाय तब!

गोलक-- भाई, देश छोड़कर जाना क्या मुँह का कौर है? मैं यहाँ सात पुश्त से रह रहा हूँ। पिछले मालिक लोग जो जमीन जायदाद बना गये हैं, उससे कभी भी दूसरे की चाकरी नहीं करनी पड़ी। जितना धान पैदा होता है उससे साल भर का खर्च चल जाता है, अतिथि सेवा भी हो जाती है और पूजा का खर्च भी निकल आता है; जितनी सरसों पाता हूँ उससे तेल का खर्च निकालकर साठ सत्तर रुपए की बिक जाती है। यह क्या कहते हो? मेरा स्वरपुर सोने का है, किसी बात का कष्ट नहीं है। खेत का चावल, खेत की दाल, खेत का तेल, खेत का गुड़, बगीचे की तरकारी, तालाब की मछली, ऐसे सुख की जगह छोड़ने में किसका हृदय विदीर्ण नहीं हो जाएगा? और कौन इस काम को आसानी से कर सकता है?

साधु-- अब तो यह सुख की जगह नहीं है। आपका बगीचा चला गया, जो थोड़ी सी जमीन है, उसका भी अब तब लगा हुआ है। ओफ़्! साहब को पट्टा लिए तीन साल भी नहीं हुए, इसी बीच गाँव का सत्यानाश कर डाला। चौधरी के मकान की ओर तो देखा भी नहीं जाता-- ओफ़! क्या था, क्या हो गया! तीन साल पहले दोनों जून साठ पत्तलें बिछती थीं, दस हल थे, बैल भी चालीस-पचास होंगे। कैसा आँगन था, मानो घुड़दौड़ का मैदान-- ओफ़! जब बरसात में होने वाले धान के बोझ की छल्लियाँ सजाता तो लगता कि चन्दन ताल में कमल के फूल खिले हुये हैं। बथान मानों पहाड़ सा था। पिछले साल बथान की मरम्मत न करा सकने के कारण वह गिर पड़ा है। धान के खेत में नील न बोने के कारण मझले-सझले दोनों भाइयों को पकड़कर साहब बेटे ने पिछले साल कितनी बुरी तरह से पीटा था! उन्हें छुड़ा लाने में कितनी परेशानी हुई; हल-बैल बिक गए, उसी धक्के में दो चौधरियों को गाँव छोड़ देना पड़ा।

गोलक-- बड़ा चौधरी अपने भाइयों को बुलाने गया था न?

साधु-- उन्होंने कहा है कि झोली लेकर भीख माँग कर खाएँगे, मगर अब गाँव में नहीं रहेंगे। बड़ा चौधरी अब अकेला पड़ गया है। दो हल रखे हैं जो नील की ज़मीन में ही जुते रहते हैं। वह भी भागने की तैयारी में है। मालिक, आप भी देश की माया छोड़िये। पिछली बार आपका धान गया है, इस बार मान जाएगा।

गोलक-- मान जाने में अब बाक़ी ही क्या रह गया है? पोखरे के चारों ओर जोत दिया है, उसमें इस बार नील बोएगा, तब औरतों का पोखरे पर जाना बन्द हुआ! साहब ने कहा है कि अगर मैं पूरब वाले खेतों में नील नहीं बोता हूँ तो वह नवीन माधव को सात कोठियों का पानी पिलाएगा।

साधु-- बड़े बाबू कोठी पर गए हैं न?

गोलक-- प्यादा ले गया है।

साधु-- बड़े बाबूजी की कितनी हिम्मत है। उस दिन साहब ने कहा, 'अगर तुम अमीन खलासी की बात नहीं सुनते, और निशान लगाई ज़मीन में नील नहीं बोते तो तुम्हारा घर खोदकर वेत्रावती के पानी में फेंकवा दूँगा और तुम्हें कोठी के गोदाम में धान चबवाऊँगा।' इस पर बड़े बाबू ने कहा, "हमारे पिछले साल के पचास बीघे नील का दाम चुकता नहीं हुआ। इस साल एक बीघा भी नील नहीं बोऊँगा, इसके लिये प्राणों की बाजी लगा दूँगा, घर की क्या बिसात!

गोलक-- यह कहने के सिवा चारा ही क्या है। देखो, पचास बीघे धान होता तो मुझे गृहस्थी की क्या कोई फ़िक्र रहती। इसलिए नील का दाम चुकता कर देता तो अनेक कष्टों से छुटकारा मिलता।

(नवीन माधव का प्रवेश)

क्यों भैया, क्या कर आए?

नवीन-- जी, माँ के कष्ट की बात सोचकर कालसर्प गोद के बच्चे को काटने में कहीं सकुचाता है? मैंने अनेक स्तुति गाई, लेकिन उन्होंने कुछ भी नहीं सुना। साहब की वही बातें; वे कहते हैं पचास रुपए लेकर साठ बीघे नील की लिखा-पढ़ी कर दो, बाद में दोनों सालों का हिसाब चुकता कर दिया जाएगा।

गोलक-- साठ बीघे नील बोया जाय तो दूसरी फसल में हाथ लगाने की फ़ुरसत नहीं मिलेगी। अन्न के बिना ही मर जाना पड़ेगा।

नवीन-- मैंने कहा, साहब, हमारे आदमी, हल, बैल, सभी को अपनी नील की जमीन में लगा रखिए, हमें सिर्फ साल भर का खाना दें, हम तनख्वाह नहीं माँगते; इस पर मज़ाक करते हुए बोले, ' तुम लोग तो यवन का भात नहीं खाता!'

साधु-- जो लोग पेट पर चाकरी करते हैं, वे भी हम लोगों से सुखी हैं।

गोलक-- हल एक तरह से छोड़ दिया है, फिर भी तो नील से पिण्ड नहीं छूटता। इस तरह पीछे पड़ने से लाभ ही क्या है? साहब से झगड़ा करना तो सम्भव नहीं है, बाँध कर मारे सो भी अच्छा, इसलिये बोना ही पड़ेगा।

(आदुरी का प्रवेश)

साधु-- (खड़ा होकर) मालिक, इसकी कोई व्यवस्था कीजिए, नहीं तो मैं मारा जाऊँगा। डेढ़ हल से नौ बीघे नील देना पड़ा तो हाँड़ी छींके पर चली जाएगी, मैं चलूँ, मालिक प्रणाम, बड़े बाबू, नमस्कार!

(साधुचरण का प्रस्थान)

गोलक-- भगवान इस घर में रहने और भोजन करने देगा, ऐसा नहीं लगता।

(सबका प्रस्थान)

अंक 1

द्वितीय गर्भांक

साधुचरण का घर

(हल लेकर राईचरण का प्रवेश)

राई-- (हल रख कर) अमीन साला मानो शेर है। बाप रे! मेरी ओर किस तरह लपका था! मैंने समझा कि मुझे खा जाएगा। साले ने किसी भी तरह नहीं सुना, जबर्दस्ती निशान लगा ही गया। साँपोलतला की पाँच बीघा जमीन अगर नील के लिये ही चली गई तो मैं बीबी-बच्चों को क्या खिलाऊंगा? रो-धोकर देखूँगा; अगर छुट्टी नहीं मिली तो हम देश छोड़कर चले जाएँगे।

(क्षेत्रमणि का प्रवेश)

बड़े भैया घर लौटे हैं क्या?

क्षेत्र-- पिता जी बाबुओं के घर गए हैं, बस आते ही होंगे, अब देर नहीं है। चाची को बुलाने नहीं जाओगे? तुम बक क्या रहे हो?

राई-- बक रहा हूँ अपना सिर। थोड़ा पानी लाओ तो पीऊँ, प्यास से छाती फटी जाती है। साले से इतना कहा, कुछ भी नहीं सुना।

(साधुचरण का प्रवेश और क्षेत्रमणि का प्रस्थान)

साधु-- राईचरण, तू इतने सबेरे कैसे आ गया ?

राई-- बड़े भैया, अमीन साले ने साँपोलतला की जमीन में निशान लगा दिया है। क्या खाऊँगा, साल कैसे कटेगा ? कितनी अच्छी जमीन, अहा जमीन नहीं सोना है। एक कोने की फसल से महाजन का देना-पावना चुका देता था। अब क्या खाऊँगा, बच्चों को क्या खिलाऊँगा ? इतना बड़ा परिवार भूखों मर जाएगा। सबेरा होते ही दो बिस्वा की उपज के बराबर चावल का खर्च है; मेरी फूटी तक़दीर; गोरों की नील ने क्या कर डाला ?

साधु-- इन्हीं कुछ बीघे जमीन के बल पर तो रहना था, अगर वही चली गई तो यहाँ रहकर क्या करूँगा और जिस दो-एक बीघे जमीन में नोना लग गया है उसमें कुछ भी नहीं पैदा होता। और नील की जमीन में हल लेकर पड़ा रहूँगा तो उस जमीन को साफ कैसे करूँगा ? तू रो मत, कल हल-बैल बेच गाँव-घर को लात मार कर बसन्त बाबू की जमींदारी में भाग जाऊँगा।

(क्षेत्रमणि और रेवती का जल लेकर प्रवेश)

पानी पी, पानी पी, डर किस बात का ? जिसने प्राण दिया है वही आहार देगा। तो तू अमीन को क्या कह आया ?

राई-- मैं क्या कहूँगा, जमीन में निशान लगाने लगा। मेरी छाती में मानो हँसुए से काटकर आग लगाने लगा। मैंने पैर पकड़े, रुपए देने चाहे, लेकिन एक न सुनी। बोला, 'जा अपने बड़े बाबू के पास जा।' मैं फ़ौजदारी करूँगा कह कर धमका आया हूँ। (अमीन को दूर ही देखकर) वह देखो साला आ रहा है, प्यादे संग लाया है, गर्दन पकड़कर ले जाएगा।

(अमीन और दो प्यादों का प्रवेश)

अमीन-- बाँध, राई साले को बाँध !

(प्यादों का राईचरण को बाँधना)

रेवती-- हाय मेरी माँ, यह क्या, अजी, बाँधते क्यों हो? सत्यानाश हो गया ! सत्यानाश हो गया ! (साधु के प्रति) तुम खड़े देख क्या रहे हो ? बाबुओं के घर जाओ, बड़े बाबू को बुला लाओ।

अमीन-- (साधु के प्रति) तू कहाँ जाएगा ? तुझे भी जाना होगा। पेशगी लेना राई का काम नहीं है। तू लिखना-पढ़ना जानता है, तुझे बही में दस्तखत बना आना होगा।

साधु-- अमीन महाशय, क्या इसी को नील की पेशगी कहते हो ? इसे नील की मार कहना क्या अच्छा नहीं होगा ?

अमीन-- (क्षेत्रमणि की ओर देखकर, स्वगत) यह छोकरी तो बुरी नहीं है। छोटा साहब ऐसा माल औंधे मुंह लेगा-- अपनी बहन देकर जो बड़ी पेशकारी नहीं मिली वह इसे देकर लूँगा; माल अच्छा है, देखा जाय।

रेवती-- क्षेत्र, बेटी तू घर के अन्दर जा।

(क्षेत्रमणि का प्रस्थान)

अमीन-- चलो साधु, इसी वक्त मान-इज्जत बचाकर कोठी चलो।

(जाने के लिये आगे बढ़ना)

रेवती-- उसने जो जरा पीने के लिये पानी माँगा, अरे अमीन जी, तुम लोगों के क्या बीबी-बच्चे नहीं है; सिर्फ हल और यही मारपीट ही है ! अरे दैया, यह तो चढ़ती उम्र का लड़का है, वह तो इस बीच दो बार खाता है, बिना खाए साहब की कोठी पर कैसे जायगा, बहुत दूर है। दोहाई साहब की, उसे चार कौर खिलाकर ले जाओ। ओफ़, बीबी-बच्चे के लिये बेहाल है, अभी भी आँखों से आँसू बह रहा है, मुँह सूख गया है--क्या करूँ; कैसे सत्यानाशी देश में आया, धन-जन से मारा गया, हाय, धन-जन से मारा गया !

(रोना)

अमीन-- अरी छिनाल अपना नकियाना अभी रहने दे, पानी देना हो तो दे, नहीं तो ऐसे ही ले जाऊँ।

(राईचरण का पानी पीना और सभी का जाना)

तृतीय गर्भांक

बेगूनबेड़े की कोठी-- बड़े बंगले का बरामदा

(आई.आई. उड साहब और गोपीनाथ दास दीवान का प्रवेश)

गोपी-- हुजूर, मैं कौन सा कसूर कर रहा हूँ, आप अपनी आँखों से ही देख रहे हैं। तड़के ही गश्त लगाना शुरू करता हूँ तो तीसरे पहर घर लौटता हूं, इसमें किसी-किसी दिन रात तक बीत जाती है, किसी दिन एक भी बज जाता है।

उड-- तुम शाला बड़ा नालायक है। स्वरपुर, श्यामनगर, शान्तिधारा-इन तीनों गाँवों में कुछ भी दादनी नहीं हुई। श्यामचंद का बगैर तोम दुरुस्त नहीं होगा।

गोपी-- धर्मावतार, अधीन हुजूर का नौकर है, आपने कृपा करके पेशकारी से दीवानी दी है। हुजूर मालिक हैं, मारना चाहें तो मार भी सकते हैं, काट डालना चाहें तो काट भी सकते हैं। इस कोठी के कई प्रबल शत्रु बन गए हैं, उनको दुरूस्त किए बग़ैर नील का मंगल होना कठिन है।

उड-- मुझको मालूम नहीं होने से कैसे दुरुस्त कर सकता है ? रुपया, घोड़ा, लठैत, बल्लमवाला हमारा बहुत है, इससे दुरुस्त नहीं हो सकता ? पहले वाला दीवान मुझको दुश्मन का बात बताता था। तुम देखा नहीं, हम बज्जात लोगों को कीड़ा लगाया है, गाय छीन लाया है, जोरू क़ैद किया है, जोरू क़ैद करने से शाला लोग बहुत दुरूस्त होता है। बज्जाती का बात हम कुछ सुना नहीं-तुम बेटा नालायक हमको कुछ बोला नहीं; तुम शाला बड़ा नालायक है। देवानी काम कायेटका है नहीं बाबा--तुम को जूता मार के निकाल देंगे, हम एक केवट आदमी को ये काम देगा।

गोपी-- धर्मावतार, बन्दा बात में कायस्थ है, मगर काम में केवट है, केवट की तरह ही काम करना दिखा रहा है। मुल्लों के धान की ज़मीन तोड़ कर नीम बोने के लिए और गोलक बोस की सात पुश्त के लखराज बगीचे और राजा के ज़माने की ज़मीन निकाल लेने के लिए मैंने जो काम किए हैं, उन्हें केवट क्या, चमार भी नहीं कर सकता; मेरी तक़दीर खोटी है, इसीलिए इतना करने पर भी यश नहीं पाता हूँ।

उड-- नवीन माधव सब रुपया चुकता माँगता है--उसको हम एक कौड़ी नहीं देगा, उसका हिसाब दुरुस्त करके रखो ! वह.....बड़ा मामलाबाज है, हम देखेगा शाला किस तरह रुपया लेता है।

गोपी-- धर्मावतार, वही कोठी का एक प्रधान शत्रु है। पलाशपुर का आग लगाना किसी भी तरह साबित न होता, अगर नवीन बोस उसके अन्दर नहीं होता। वह खुद दरखास्त का मसविदा बना लेता है, वकील-मुखतारों को ऐसी सलाह दी थी कि उसी के बल पर हाकिम की राय उलट गई। इसी के तिकड़म

से पुराने दीवान को दो साल की सजा हो गई। मैंने मना किया था, 'नवीन बाबू, साहब के खिलाफ मत जाओ। और जब साहब ने तो तुम्हारा घर नहीं जलाया है, इस पर बेटे ने जवाब दिया, 'गरीब प्रजा की रक्षा में दीक्षित हुआ हूँ, निठुरे नीलहों के जुल्म से अगर एक प्रजा को भी बचा सकूँ तो अपने को धन्य समझूँगा, और दीवान जी को जेल भिजवाकर बगीचे का बदला लूँगा।' वह क्या साज़िश कर रहा है, कुछ भी समझ में नहीं आता।

उड-- तुम बहुत डर गया है, हम बोला कि नहीं तुम बड़ा नालायक है, तुमसे काम होगा नहीं।

गोपी-- हुजूर ने डर जाने के लायक कौन सी बात देखी, जब इस पदवी में पदार्पण किया है, तो डर, लज्जा, शर्म, मान, मर्यादा को धता बता दी है। गोहत्या, ब्रम्ह हत्या, स्त्री हत्या, घर जलाना अंग का आभूषण बन गया है, और जेलखाने को सिरहाने रख कर बैठा हूँ।

उड-- हम बात नहीं माँगता, काम माँगता है।

(साधुचरण, राईचरण, अमीन और प्यादों का सलाम करते हुए प्रवेश)

इस बज्जात के हाथ में रस्सी क्यों बँधी है?

गोपी-- धर्मावतार, यह साधुचरण एक मातबर रैयत है, लेकिन नवीन बोस के परामर्श से नील का सत्यानाश करने पर तुला हुआ है।

साधु-- धर्मावतार, नील का विरोध नहीं किया है, नहीं कर रहा हूँ और करने की ताक़त भी नहीं है। इच्छा से करूँ या अनिच्छा से करूँ, इस बार भी मैं नील बोने के लिए तैयार हूँ। लेकिन सभी बातों में संभव और असंभव बातें होती हैं: आधे अंगुल के चोंगे में आठ अंगुल बारूद ठूँसने से वह फटती ही है। मैं बहुत गरीब प्रजा हूँ, डेढ़ हल हैं, जोत बीस बीघे की है, जिसमें नौ बीघे नील ने हड़प लिए हैं, इसलिए कुछ मलाल स्वाभाविक है। अपने मलाल की आग खुद ही बुझाऊँगा मैं, हुजूर का क्या होगा?

गोपी-- साहब को डर है कि कहीं तुम साहब क. अपने बड़े बाबू की गोदाम में क़ैद न कर रखो।

साधु-- दीवान जी महाशय, मरे को और क्या मारते हो, मैं अदना से भी अदना हूँ। साहब को क़ैद करूँ ऐसा प्रबल प्रतापशाली....

गोपी-- साधु, अपनी टकसाली भाषा रहने दो, किसान के मुँह अच्छी नहीं लगती; बदन पर मानो कोड़े लगाती है.....

उड-- बहन..... बड़ा पंडित बन रहा है!

गोपी-- कंडे बटोरने वाली का बेटा बना है सदर नायब!...... धर्मावतार, गावों में मदरसे खुलने से किसानों की खुराफ़ात बढ़ गई है।

उड-- इस मामला में सरकार को दरखास्त लिखने को सभी को लिखना होगा, मदरसे बन्द कराने के वास्ते लड़ना होगा।

अमीन-- बेटा मुक़दमा करना चाहता है।

उड-- (साधुचरण के प्रति) तुम शाला बड़ा बदमाश है। तुमको अगर बीस बीघा में नौ बीघा नील करने को बोला है तो तुम नया नौ बीघा में धान क्यों नहीं बोता?

गोपी-- धर्मावतार, जो नुकसान बाक़ी पड़ा हुआ है, उससे नौ बीघे क्यों बीस बीघे पट्टा कर दे सकता हूँ।

साधु-- (स्वगत) हे भगवान्! कलवार का गवाह शराबी। (जाहिरा) हुजूर जो नौ बीघे नील के लिए निशान लगा दिए गए हैं, उसे अगर कोठी के हल, बैल, और हलवाहों से जोता-बोया जाय तो नए नौ बीघे धान के लिए ले सकता हूँ। धान की जमीन में जितना निराना पड़ता है उसका चौगुना निराना पड़ता है नील की जमीन में; इसलिए अगर मुझे नौ बीघे नील बोनी पड़े तो बाकी बारह बीघे परती रह जाएँगे। तो फिर नई ज़मीन कैसे जोतूँगा?

उड-- शाला, हरामजादा, दादनी का रुपया लेगा तुम, खेती करेगा हम; शाला बड़ा बदमाश है (जूते से ठोकर मारना)। श्यामचन्द का साथ मुलाकात होने से हरामजदगी सब भाग जाएगा।

(दीवान से श्यामचन्द लेना)

साधु-- हुजूर, मक्खी मार कर हाथ काला कर रहे हैं, हम....!

राई-- (सबंध) बड़े भैया, तुम चुप रहो, जो लेना चाह रहा है, लेने दो। भूख से अँतड़ियां हजम हो रही हैं, दिन बीत चला, नहा भी नहीं पाया, खा भी नहीं पाया।

अमीन-- क्यों साले, फौजदारी नहीं करोगे?

(कान उमेठना)

राई-- (हाँफते हुए) मरा, ओ माँ! माँ!

उड-- ब्लडी निगर, मारो....। (श्यामचन्द से मारना)

(नवीनमाधव का प्रवेश)

राई-- बड़े बाबू, मरा। पानी....! मार डाला....

नवीन-- धर्मावतार, इन लोगों ने अभी तक नहाया भी नहीं है, खाया भी नहीं है। इनके घर वालों ने अभी तक मुँह में पानी तक नहीं डाला है। अगर श्यामचन्द से मार-मार कर रैयतों को बरबाद कर देंगे तो आपका नील कौन बोएगा? इसी साधुचरण ने पिछले साल कितने कष्ट से चार बीघे नील बोया था। अगर उसे इस बुरी तरह पीट कर और ज़्यादा दादनी देकर फ़रार करते हैं तो आप ही का नुकसान होगा। आज इन्हें छोड़ दीजिए। मैं कल सबेरे इन्हें साथ लाकर आप जैसी आज्ञा करेंगे, वैसा ही कर जाऊँगा।

उड-- दूसरा का मामला में बात करने का क्या जरूरत है? साधु घोष, तुम्हारा राय क्या है-- बोलो? हमारा खाना का टाइम हो गया है।

साधु-- हुजूर, मेरी राय की क्या कोई ज़रूरत है? आप खुद जाकर अच्छे-अच्छे चार बीघों में निशान लगा आए हैं, आज अमीन साहब, जो बचे-खुचे अच्छे खेत थे, उनमें भी निशान लगा आए हैं। मेरी राय लिए बग़ैर ज़मीन में निशान लगाया गया है, नील भी वैसा ही होगा। मैं इकरार करता हूँ कि बिना दादनी के नील तैयार कर दूँगा।

उड-- मेरा दादनी सब झूठा है--हरामजादा, बज्जात, बेईमान.....!

(श्यामचन्द कोड़ा से मारना)

नवीन-- (साधुचरण की पीठ को हाथ से ढँकते हुए) हुजूर, गरीब गृहस्थ पर दया करो! इसके घर में बहुत से खाने वाले हैं। इस मार से इसे महीने भर चारपाई पर पड़े रहना होगा। इसमें ओफ! इसके घरवालों को कितनी तकलीफ हो रही है! साहब, आपके भी बालबच्चे हैं, अगर आपको खाने के समय कोई पकड़ ले जाए तो मेमसाहब के मन में कैसी तकलीफ़ होगी?

उड-- चुप रहो शाला,..... पाजी, गोरूखाने वाला। यह कोई अमर नगर का मजिस्ट्रेट नहीं है कि बात बात में नालिश करेगा और कोठी का आदमी को पकड़ कर सजा देगा। रैस्कल-- उसी दिन तुम साठ बीघा का दादनी लिख देगा तब तुमको छोड़ेगा, नहीं तो श्यामचन्द तेरा सिर पर तोड़ेगा! इतनी गुस्ताखी! तेरा दादनी का वास्ते दस गाँव का दादनी बन्द है।

नवीन-- (लम्बी साँस छोड़ते हुए) हे, धरतीमाता! जिन्दगी में मेरा ऐसा

अपमान कभी नहीं हुआ। हे विधाता !

गोपी-- नवीन बाबू, आगे बढ़ने की जरूरत नहीं, आप घर जायं।

नवीन-- साधु, परमेश्वर को पुकारो, वही दीनों के रक्षक हैं।

(नवीन माधव का जाना)

उड-- गुलाम का बच्चा--दीवान, दफ़्तर में ले जाओ, दस्तूर मुताबिक दादनी दो।

(उड का जाना)

गोपी-- चलो साधु, दफ़्तर में चलो। साहब कहीं बातों में भूलता है।

बाड़ा भाते छाइ तब बाड़ा भाते छाइ।

घरेछे नीलेय यमे आर रक्षा नाइ।।

(तुम्हारी परोसी थाली में राख पड़ गई है-- यानी भोजन नष्ट हो गया है-- नीलहे यम ने पकड़ा है, अब बचने की सूरत नहीं।)

अंक 1
चतुर्थ गर्भांक

गोलक वसु का दालान

(सैरिन्ध्री बालों की रस्सी बना रही है)

सैरिन्ध्री-- मैंने बालों की ऐसी रस्सी एक भी नहीं बनाई थी। छोटी बहू बड़ी भाग्यवान् है। छोटी बहू का नाम लेकर जो कुछ भी करती हूँ, सभी अच्छा होता है। बालों की रस्सी मैंने काफ़ी महीन बनाई है। जैसा बाल था वैसी ही रस्सी बनी है। अहा ! यह तो बाल नहीं है मानो श्यामा ठकुराइन का केश है। मुँह मानो कमल का फूल है, सदा हँसता रहता है। लोग कहते हैं, 'जिसे जो देख नहीं सकता !' मैं तो उसका कुछ भी नहीं देखती हूँ। छोटी बहू का मुँह देखते ही मेरा कलेजा जुड़ा जाता है। मेरा विपिन भी वैसा ही है जैसी कि छोटी बहू। छोटी बहू मुझे माँ की तरह प्यार करती है।

(छींका लेकर सरला का प्रवेश)

सरला-- दीदी, देखो तो, मैं छींके का निचला हिस्सा बुन पाई हूँ या नहीं ?-- नहीं बना है ?

सैरिन्ध्री-- (अवलोकन करके) हाँ, अब खूब बना है! अरी बहन, यहाँ तो तुमने सब डुबा दिया है, लाल के बाद ज़र्द नहीं खुलता।

सरला-- मैंने तुम्हारा छींका देख कर बुना था--

सैरिन्ध्री-- उसमें क्या लाल के बाद ज़र्द है ?

सरला-- नहीं,

उसमें लाल के बाद सब्ज़ है। लेकिन मेरा सब्ज़ सूत खत्म हो गया है, इसलिए मैंने वहाँ ज़र्द लगा दिया है।

सैरिन्ध्री-- तुमसे बाज़ार के दिन तक सब्र नहीं किया जा सका !... तुम बहन सभी बातों में जल्दबाजी करती हो-कहते हैं....!

वृन्दाबंद आछेन हरि

इच्छा होले रइते नारि !

(हरि वृन्दावन में हैं। दर्शन की अभिलाषा होने पर विलम्ब नहीं किया जा सकता)

सरला-- वाह, वाह ! मेरा क्या देय है, बाजार में क्या मिलता है। जेठानी जी, मैंने पिछले बाजार के दिन उनसे लाने को कहा था, उन्हें भी मिला ही नहीं।

सैरिन्ध्री-- जब वे देवर को चिट्ठी लिखेंगे, तब पाँच रंग के सूत की बात लिख देने के लिए कहूँगी।

सरला-- दीदी, इस महीने में अब कितने दिन रह गए हैं ?

सैरिन्ध्री-- (हँसते हुए) जिसके जहाँ दर्द होता है उसका हाथ वहीं होता है। कालिज बन्द होने पर देवर के घर आने की बात है--इसीलिए तुम दिन गिन रही हो ! और बहन, मन की बात खुल गई है।

सरला-- सौगन्ध खाकर कहती हूँ दीदी, मैंने इसे सोचकर नहीं पूछा था !

सैरिन्ध्री-- हमारा देवर कैसा चरित्रवान् है ! उसकी बातें मानों मधु से सनी हुई है ! वे लोग जब देवर की चिट्ठियाँ पढ़ते हैं तो मानो अमृत बरसता रहता है। बड़े भाई के प्रति ऐसी भक्ति कभी नहीं देखी थी। बड़े भाई का स्नेह भी कैसा है, विन्दुमाधव के नाम पर मुँह से लार टपकती है, और छाती गज़ भर हो जाती है। जैसा मेरा देवर है वैसी ही मेरी छोटी देवरानी।-- (सरला का गाल दबाते हुए) सरलता तो सरलता है।-- मैं क्या तम्बाकू की जट्ठी की डिबिया नहीं लाई हूँ, जट्ठी न मिलने से मानो मेरा क्षण भर भी नहीं चलता, डिबिया मानो पहले ही भूल गई हूँ।

(आदुरी का प्रवेश)

अरी आदर, तम्बाकू की जट्टीवाली डिबिया ला तो दीदी।

आदुरी-- मैं इस वक्त कहाँ ढूँढती फिरूँ ?

सैरिन्ध्री-- अरे रसोई की किवाड़ की दाहिनी ओर छान में रक्खा हुआ है।

आदुरी--तो खत्तियों के पास से सीढ़ी ले आऊँ, नहीं तो छान तक कैसे पहुँचूंगी ?

सरला-- खूब समझा !

सैरिन्ध्री-- क्यों, वह तो जेठानी की बातें अच्छी तरह समझती है। तू दरवाजा किसे कहते हैं, नहीं जानती, दाहिना नहीं समझती ?

आदुरी-- मैं डाइन क्यों बनने गई। मेरे भाग्य का दोष है, गरीब की बेटी अगर बूढ़ी हुई और दाँत गिर पड़े तो वह डाइन बन गई। मैं सासजी से कहूँगी कि क्या मैं डाइन होने लायक बूढ़ी हो गई हूँ।

सैरिन्ध्री-- अरी मरी कहीं की ! (उठते हुए) छोटी बहू बैठना, मैं आ रही हूँ, विद्यासागर का बैताल सुनूंगी।

(सैरिन्ध्री का जाना)

आदुरी-- उस सागर नाड़ी में कोई ब्याह करता है, छीः ! सुना है दो दल हो गए हैं, मैं आजाद के दल में हूँ।

सरला-- क्यों आदुरी, तेरा आदमी तुझे प्यार करता था ?

आदुरी-- छोटी हालदारिनी, उस खेद की बात को न उठा। उसके चेहरे की याद आते ही मेरा प्राण फफककर रो उठता है। मुझे बहुत प्यार करता था। वह मुझे एक जोड़ा कड़ा देना चाहता था।

'अरे मेरे प्राण ! कड़े सचमुच कितने भारी हैं ! ये मुझे अच्छे लगते हैं, मैं इन्हें पहनूँगी !'

'देखो, तो ठीक होती है कि नहीं।'-- मुझे सोने नहीं देता था, झपकी आने पर कहता, 'अरी रानी, सो गई ?'

सरला-- तू आदमी का नाम लेकर पुकारती थी ?

आदुरी-- छी ! छी ! छी ! आदमी गुरू होता हैं, कहीं उसका नाम लिया जाता है ?

सरला-- तो तू क्या कह कर पुकारती थी ?

आदुरी-- मैं कहती थी, अजी, ओ, सुनते हो।

(सैरिन्ध्री का पुनः प्रवेश)

सैरिन्ध्री-- फिर पगली को किसने चिढ़ा दिया ?

आदुरी-- मेरे आदमी की सुधि दिला रही हैं, इसीलिए मैं कह रही हूँ।

सैरिन्ध्री-- (हँसते हुए) छोटी बहू जैसा पागल दूसरा नहीं, इतनी बातों के रहते आदुरी के भतार की बातें खोद-खोद कर सुनी जा रही हैं।

(रेवती और क्षेत्रमणि का प्रवेश)

आ, घोष दीदी आज तुझे आज कई दिनों से बुलवा रही हूँ लेकिन तू निकलती ही नहीं।-- छोटी बहू, यह लो, तुम्हारी क्षेत्रमणि आ गई हैं, आज कई दिनों से मुझे पागल बना डाला है, कहती है-- दीदी, घोष की क्षेत्र ससुराल से आई है, लेकिन हमारे यहाँ नहीं आई ?

रेवती-- तो हम लोगों के प्रति ऐसी कृपा ! क्षेत्र, अपनी चाचियों को परनाम कर।

(क्षेत्रमणि का प्रणाम करना)

सैरिन्ध्री-- अहिवाती बनो, पके बालों में सिन्दूर पहनो, हाथ का लोहा घिस जाय, बेटा खिलाती ससुराल जाओ।

आदुरी-- मुझे लगता है कि छोटी हालदारिनी के मुँह से फूल झड़ते हैं, लड़की ने परनाम किया, तो मरो या ज़िन्दा रहो बोली भी नहीं।

सैरिन्ध्री-- इससे क्या हुआ ? आदुरी, जा सास को बुला ला।

(आदुरी का जाना)

मुँहजली कुछ कहते कुछ कह डालती है, कुछ समझती नहीं।-- कै महीने हुए ?

रेवती-- इस बात को क्या दीदी ने आज भी परगट किया है ? मेरी तकदीर फूटी है, सच या झूठ कैसे जानूँ ? तुम अपनी हो इसीलिए कहती हूँ, इस महीने के और कई दिन बीत जाने पर चौथा महीना लगेगा।

सरला-- आज भी पेट नहीं निकला।

सैरिन्ध्री-- यह एक और पागल है, आज अभी तीन महीने पूरे नहीं हुए, वह अभी से देख रही है कि पेट निकला या नहीं।

सरला-- क्षेत्र, तुमने अपनी अलकें काट क्यों डालीं ?

क्षेत्र-- मेरी अलकें देखकर मेरा जेठ ख़फ़ा होता है। सास ने कहा, अलकें रखना कसबियों और बड़े आदमियों की लड़कियों को शोभा देता है। मैं सुनकर लाज के मारे मर गई। उसी दिन अलकें काट डालीं।

सैरिन्ध्री-- छोटी बहू, जाओ दीदी, कपड़ों को उठा लाओ, साँझ हो गई।

(आदुरी का पुनः प्रवेश)

सरला-- (खड़ी होकर) आ आदुरी, छत पर जाकर कपड़े उठा लें।

आदुरी-- छोटा हालदार पहले घर तो आए, हा, हा, हा।

(सरलता का जीभ काट कर प्रस्थान)

सैरिन्ध्री-- (सरोष और हँसते हुए) भाग अभागिन, सभी बातों में तमाशा। बड़ी बहू कहाँ हैं री ?

(सावित्री का प्रवेश)

यह लो आ गई।

सावित्री-- घोष की बहू आ गई है, अपनी बेटी को लाई है, अच्छा किया। विपिन अदरा रहा था, उसे शान्त करके बाहर दे आई।

रेवती-- माई जी, प्रणाम करती हूँ। क्षेत्र, अपनी नानी को प्रणाम कर।

(क्षेत्रमणि का प्रणाम करना)

सावित्री-- सुखी होओ, सात बेटों की माँ बनो--

(नैपथ्य में खाँसी)-- बड़ी पतोहू घर में जाओ, पिता की नींद शायद टूट गई है। अहा ! भैया को क्या समय पर नहाना, समय पर खाना होता है, सोच के मारे मेरा नवीन सूखकर काँटा हो गया है--

(नैपथ्य में आदुरी)-- माँ जाओं, शायद पानी माँग रहे हैं।

सैरिन्ध्री-- (स्वगत आदुरी के प्रति) आदुरी, देख तुझे बुला रहे हैं।

आदुरी-- बुला रहे हैं मुझे लेकिन जरूरत है तुम्हारी।

सैरिन्ध्री-- मुँह जली।-- घोष दीदी, फिर किसी दिन आना।

(सैरिन्ध्री का प्रस्थान)

रेवती-- माई जी, यहाँ और तो कोई नहीं है-- मैं तो बड़ी मुसीबत में पड़ गई हूँ, पदी हलवाइन हमारे घर आई थी--

सैरिन्ध्री-- राम ! राम ! उस लुच्चिन को कोई घर में पैर रखने देता हैं ?-- उसके लिए अब बाकी ही क्या है ? नाम लिखाने की देर है।

रेवती-- माई, तो मैं करूँ क्या ? मेरा घर तो चहारदीवारी वाला नहीं है, दों के रात-- खलिहान में चले जाने पर उसे चाहे घर कहो चाहे हाट कहो- -नीच औरत ने कहा कि-- माँ मेरे बदन में मानो कोई काँटे चुभा रहा हो-- वह कहती है, घोड़े पर चढ़ कर जाते समय क्षेत्र को देखकर छोटा साहब पागल हो गया है, उसने उसे कोठी के कमरे में लाने के लिए कहा है।

आदुरी-- थू ! थू ! थू ! गन्ध ! प्याज़ की गन्ध ! हम क्या साहब के पास जा सकती हैं ! गन्ध, गन्ध, थू ! प्याज की गन्ध !-- मैं तो अब अकेली नहीं निकलूँगी, मैं सब कुछ सह सकती हूँ, प्याज की गन्ध नहीं सह सकती हूँ-- थू ! थू ! गन्ध ! प्याज की गन्ध !

रेवती-- माँ, तो क्या गरीबों का धर्म, धर्म नहीं है ? बेहया कहती है, रुपया देगा, धान की ज़मीन छोड़ देगा, और दामाद को काम देगा-- आग लगे रुपए में ! धरम क्या बेचने की चीज़ है, या इसकी कोई क़ीमत भी होती है ? क्या कहूँ, बेहया साहब की कुटनी है, नहीं तो लात मार कर मुँह तोड़ देती। मेरी बेटी अवाक् हो गई है, कल से चौंक-चौंक उठती है।

आदुरी-- माँ, ऐसी दाढ़ी है ! बात करता है तो मानो बकरा चिल्लाता है। दाढ़ी प्याज को छोड़े बगैर मैं कभी नहीं जा सकूँगी। थू ! थू ! थू ! गन्ध ! प्याज़ की गन्ध !

रेवती-- माँ, सत्यानाशी कहती है, अगर मेरे साथ नहीं भेजती है तो लठैतों से पकड़वा मँगवाएगा।

सावित्री-- मानो अन्धेर नगरी है।-- अँगरेजों के राज में क्या कोई घर उजाड़कर लड़की छीन ले जा सकता है ?

रेवती-- माँ, किसान के घर में सब कुछ कर सकता है। मर्दों को मुसीबत में डालकर औरतों को पकड़ते हैं, नील दादनी यह कर सकता है। निगाह पड़ी तो क्यों नहीं पकड़ सकता है ? माँ, जानती नहीं हो, नयदा दादा ने राज़ीनामा नहीं देना चाहा, इसलिए उनकी मझली बहू को घर तोड़कर पकड़ ले गए।

सावित्री-- कैसी अराजकता है ! साधु को यह बतलाया है ?

रेवती-- नहीं, माँ, एक तो वह नील की चोट से पागल है, तिस पर इस बात को सुनने से फिर चारा नहीं रहेगा। गुस्से में आकर अपने सिर पर आप ही कुल्हाड़ी चला देगा।

सावित्री-- अच्छा, मैं मालिक से यह बात साधु को कहला दूँगी, तुम्हें कुछ कहने की ज़रूरत नहीं।-- कैसी सत्यानाशी बात है! निलहे साहब सब कुछ कर सकते हैं, तो क्यों कहते हैं कि साहब बहुत न्याय करते हैं, हमारा बिन्दु साहबों को बहुत अच्छा कहता है; तो क्या ये साहब हैं, नहीं,नहीं, ये साहबों में चण्डाल हैं।

रेवती-- बेहया हलवाइन एक बात और कह गई है, उसे बड़े बाबू ने शायद नहीं सुना है ;-- कौन-सा एक नया हुकुम जारी हुआ है, कहते हैं उससे निलहे साहब मजिस्टर साहब से मिलकर जिसको तिसको छै महीने की सज़ा दे सकेंगें। कहते हैं मालिक को इसी फन्दे में फँसाने का रास्ता तैयार कर रहे हैं।

सावित्री-- (लम्बी साँस छोड़ते हुए)-- भगौती जी की इच्छा है तो यही होगा।

रेवती-- माँ, न जाने कितनीं बातें कह गई, सब क्या मेरी समझ में आती हैं, इस सज़ा में अपील नहीं होगी--

आदुरी-- मैं समझती थी कि उस दाढ़ीजार ने सज़ा बढ़ाने में शह दी है।

सावित्री-- आदुरी, तुम बेटी ज़रा चुप रहो।

रेवती-- कोठी की बीबी ने इस मुकदमें को खड़ा करने के लिए मजिस्टर साहब को चिट्ठी लिखी है। कहते हैं बीबी की बात हाकिम बहुत सुनता है।

आदुरी-- बीबी को मैंने देखा है, लाज- शरम छू तक नहीं गया है। मजिस्टर जिले का हाकिम है-- उसके इर्द-गिर्द सिपाही-फकड़े चक्कर काटते रहते हैं। बाप रे, नाम लेने पर हाथ-पैर मानो पेट में घुस जाना चाहते हैं-- इसी साहब के साथ घोड़े पर चढ़ कर घूमने आई। और जात है, घोड़े पर चढ़ती है-- केश की चाची ने घर के जेठ के साथ हँस-हँस कर बाते कीं, इसीलिए लोगों ने कितना धिक्कारा, यह तो जिले का हाकिम है।

सावित्री-- तू अभागी किसी दिन डुबोएगी, देखती हूँ;-- तो साँझ हो गई, घोष की बहू तुम लोग घर जाओ, दुर्गा हैं।

रेवती-- जाती हूँ माँ, अभी तेली के घर होकर तेल ले जाना है, तब दीया जलेगा।

(रेवती और क्षेत्रमणि का प्रस्थान)

सावित्री-- सभी बातो में टाँग न अड़ाने से क्या तेरा काम नहीं चलता?

(सरलता का सिर पर कपड़े लेकर प्रवेश)

आदुरी--यह लो धोबी की बहू कपड़े ले आई।

(सरलता का जीभ काट कर कपड़े उतार रखना)

सावित्री-- धोबी की बहू क्यों होने जायगी री, मेरी सोने की बहू है, मेरी राजलक्ष्मी है। (पीठ पर हाथ रख कर) क्यों बेटी, तुम्हारे अलावा मेरे कपड़े लाने के लिए क्या आदमी नहीं हैं, तुम क्या किसी जगह क्षण भर चुप नहीं बैठ सकती हो; ऐसी पागल के गर्भ में भी तुम्हारा जन्म हुआ था।-- कैसे कपड़े को फाड़ दिया? तो लगता है तुम्हारा बदन भी छिल गया।- अहा! मेरी बेटी का लाल कमल जैसा रंग है, जरा-सा छिल गया है मानो खून निकल रहा है। तुम बिटिया, अंधेरे जीने से अब इस तरह से न आना-जाना।

(सैरिन्ध्री का प्रवेश)

सैरिन्ध्री-- आ, छोटी बहू घाट पर चलें।

सावित्री-- जाओ बिटिया, तुम देवरानी-जेठानी अभी बेला रहते-रहते नहा आओ।

(सबका जाना)

द्वितीय अंक
प्रथम गर्भांक

बेगुनबेड़े की कोठी का गोदामघर

(तोराप तथा चार और रैयत बैठे हुए हैं)

तोराप-- मार क्यों न डालें, मैं नमकहरामी नहीं कर सकूँगा-- जिस बड़े बाबू के कारण जान बची, जिसके हिल्ले बचने की जगह मिली, जिस बड़े बाबू ने बैलों को बचाया, झूठी गवाही देकर उन्हीं बड़े बाबू के बाप को कैद करा दूँगा? मुझसे यह कभी नहीं होगा,-- जान भले ही जाए।

पहला रैयत-- कुन्दे के सामने टेढ़ापन नहीं रह जाएगा। श्यामचन्द को सँभालना हँसी-मजाक नहीं है। हमारी आँखों में क्या शर्म नहीं है, या हम लोगों ने क्या बड़े बाबू का नमक नहीं खाया है?-- करूँ क्या, गवाही नहीं देने से जिन्दा न छोड़ता। उड साहब मेरी छाती पर खंभा हो गया था-- देखो तो तभी से खून टपक रहा है,-- गोरे का पैर मानो बैलों के खुर जैसा है।

दूसरा--कील जड़ा है,-- साहब लोग कील जड़े जूते पहनते हैं, तू नहीं जानता।

तोराप-- (दाँत किटकिटाते हुए) धत् तेरी कील की ऐसी-तैसी, लहू देखकर मेरे बदन का खून खौल रहा है। ओफ़! क्या बताऊँ, साले को अगर एक बार भतारमारी के मैदान में पा जाऊँ, थप्पड़ों से ऐसा मारूँगा कि साले के जबड़ों को आसमान में उड़ा दूँगा, उसका गिटपिट करना निकाल दूँगा।

तीसरा-- मैं बगैर खेत का किसान हूँ-- दूसरे की मजूरी करके खाता हूँ। मैंने मालिक की सलाह से नील नहीं बोया, तो कहने से तो काम नहीं चलेगा, तो मुझे गोदाम में क्यों बन्द किया।-- उसके सीमन्तोन्नयन के दिन करीब आ रहे हैं, सोचा था इसी धूम में खटकर कुछ पैसे जमा करूँगा, जमा करके सीमन्तोन्नयन के समय पाँच सम्बन्धियों को बुलाऊँगा, इधर तो पाँच दिनों तक गोदाम में सड़ता रहा, फिर आन्दारबाद ठेलेगा।

दूसरा-- आन्दारबाद मैं एक बार गया था-- वह जो भावनीपुर की कोठी है, जिस कोठी के साहब को सभी अच्छा कहते हैं-- उसी साले ने मुझे एक बार फौजदारी में फँसा दिया था। उस बार मैंने कचहरी के अन्दर बहुत सारे तमाशे देखे। वाह! दुम के पास बैठे मजिस्टर साहब ने जैसे ही आवाज दी वैसे ही दो मुख्तार साले आ पहुँचे, इस तरह लड़ने लगे, मुझे लगा जैसे मयना के मैदान में तेली का धौला और जमादार का बुधुवा इन दोनों साँड़ों में मुठभेड़ हो गई।

तोराप-- तेरा दोष क्या था? भवानीपुर का साहब तो झूठ-मूठ हंगामा नहीं मचाता है। सच्ची बात कहूँगा-- घोड़े पर चढ़ूँगा। सब साले अगर उस साले की तरह होते तो सालों की इतनी बदनामी नहीं होती।

दूसरा-- अब तो मारे खुशी के रहा नहीं जाता।

भाल करे ग्यालाम केलोर मार काछे।

केलोर मा बले आमार जामाई संगे आछे।।

(मैंने समझा कलुआ की माँ अच्छी है। पहुँचने पर उसने कहा कि मैं अपने दामाद के संग हूँ।)

अब साले को जुल्म करने का मज़ा मिलेगा। साले की गोदाम से सात रैयत निकले हैं। एक निरा बच्चा है। साले ने गाय-बछड़ों को गोदाम में भर

दिया। साला इस तरह हमले करने लगा है, अरे बाप रे!

तोराप-- साला भले आदमी को पाने पर खाने को दौड़ता है, मजिस्टर साहब को खदेड़ने के लिए कमेटी बना रहा है।

दूसरा-- इस जिले का मजिस्टर या उस जिले का, मजिस्टर में क्या दोष पाया, यह भी तो समझ में नहीं आ रहा है।

तोराप-- कोठी पर खाने नहीं गया। हाकिम को मुट्ठी में करने के लिए खाना पकवाया था। हाकिम छिपता फिरा, खाने नहीं गया। वह बड़े आदमी का लड़का है, निलहे शैतानों के यहाँ क्यों जाएगा? मुझे उसकी बातें मालूम हुई हैं, ये साले विलायत की छोटी जात के हैं।

पहला-- तो पहले वाला कुँवारा गवर्नर साहब कोठियों में कैसा भात खाता फिरता था? देखा नहीं, साले इकट्ठा होकर उसे दूल्हा बनाकर हमारी कोठी में आए थे?

दूसरा-- उसका क्या हिस्सा था?

तोराप-- अरे नहीं, लाट साहब क्या नील का हिस्सा ले सकता है? वह नाम कमाने आए थे। हाल के गवर्नर साहब को खुदा बचा रखेंगे तो हम लोगों को पेट भर खाना मिलेगा और साले निलहे शैतान गर्दन पर सवार नहीं हो सकेंगे।

तीसरा-- (डरते हुए) तब तो मैं मरा। इस भूत के चढ़ने पर कहते हैं जल्दी नहीं छोड़ता? बीबी यही कहती है।

तोराप-- इस साले को क्यों लाए हो? यह साला सीधी बात नहीं समझ सकता है। साहबों के डर से सारे लोग गाँव छोड़कर जाने लगे। इस पर बचोरद्दी नाना ने बनाया था-

ब्याराल चोको हाँक हेमदो।
नील कुठीर नील मेम्दो।

(बिल्ली जैसी आँखो वाला आदमी अहमक होता है। नील कोठी का नीला साहब नीला शैतान है!)

दूसरा-- निताई आताइ ने एक और कविता बनाई है, सुना नहीं?

जात माल्ले पादरी धरे।
भात माल्ले नील बाँदरे।।

(पादरियों ने धर्म बिगाड़ दिया है। नीलहे बन्दरों ने रोटी छीन ली है।)

तोराप-- (ऊपर की बात दोहराता है)!

'जात माल्ले' यह क्या है? इससे क्या होना है?

दूसरा-- जात माल्ले पादरी धरे।
भात माले नील बाँदरे।।

चौथा-- हाय! मेरा घर कैसा होता जा रहा है, इसका कुछ भी पता नहीं चलता। मैं दूसरे गाँव की रैयत हूँ। मैं कबका स्वरपुर आया, सो बोस महाशय की सलाह में आकर दादनी को ठुकरा दी। मेरे दुधमुँहे बच्चे को बुखार हो गया, इसीलिए बोस महाशय से मिसरी लेने आया।-- अहा! कैसे दयावान् थे, चेहरे पर कैसी दमक थी, कैसा अपरूप रूप देखा, मानो गजेन्द्रगामिनी जैसे बैठे हुए हैं।

तोराप-- इस बार कितने बीघे पर हाथ मारा है?

चौथा-- पिछली बार दस बीघा बोया था, उसका दाम देने में आधा-तीहा किया, इस बार पन्द्रह बीघे की दादनी लाद दी है; जैसा कह रहा है वैसा ही कर रहा हूँ, फिर भी बेइज्जत करने से बाज़ नहीं आता।

पहला-- मैंने तो दो साल जोतकर एक बन्द जमीन में बोया, इस बार काम बना था, सरसों के लिए ही ज़मीन रख छोड़ी थी, उस दिन छोटा साहब घोड़े पर चढ़ कर आया और खड़े रहकर जमीन का सत्यानाश कर दिया। किसान की कहीं जान बचती है?

तोराप-- यह सब अमीन साले की कारसाज़ी है। साहब को क्या सारी ज़मीन की बात मालूम है? वह साला सारी ज़मीनों को ढूँढ़ निकालता है। साला मानों पागल कुत्ते की तरह चक्कर काटता है, अच्छी जमीन देखी नहीं कि साहब ने सत्यानाश कर दिया। साहब को तो रुपए की कमी नहीं है। उसे तो महाजन से रुपया नहीं काढ़ना पड़ता है। तब साला ऐसा क्यों करता है, नील बोएगा तो बो, बैल खरीद, हल बनवा, खुद नहीं जोत सकता है तो हलवाहा रख, तुझे ज़मीन की कमी क्या है, गाँव के गाँव क्यों न जोत डाल, हम लोग मुफ़्त खटने के लिए ग़ैर राजी नहीं है, ऐसा हो तो दो साल में नील की ढेर लग जाएगी; साला यह नहीं करेगा, साले को रैयतों का ठेंगा बहुत अच्छा लगता है, इसीलिए उसे चूस रहा है-- उसी को चूस रहा है।

(नैपथ्य में...हा, हा, हा, माँ, माँ, माँ)

गाजी साहब, गाजी साहब, दरगाह, तुम लोग राम का नाम लो। इसमें भूत है, चुप रह, चुप रह--

(नेपथ्य में-- हा नील-- तू हमारे सर्वनाश के लिए ही इस देश में आया था!-- ओफ! यह दुर्गति तो अब नहीं सही जाती, इस 'कन्सर्न' की न जाने कितनी कोठियाँ हैं, डेढ़ महीने में चौदह कोठियों का पानी पिया, अब किस कोठी में हूँ यह भी तो नहीं जान सका; जानूँ भी तो कैसे रात में आँख बाँध कर एक कोठी से दूसरी कोठी में ले जाते हैं; ओफ! माँ तुम कहाँ हो!)

तीसरा-- राम, राम, राम, काली, काली, दुर्गा, गणेश, असुर!--

तोराप-- चुप, चुप।

(नैपथ्य में-- हाय पाँच बीघे के हिसाब से दादनी ले लूँ तो इस नरक से छुटकारा मिले। हे मातुल, दादनी लेना ही उचित है। खबर भेजने की तो कोई सूरत नहीं देखता, कलेजा मुँह को आ गया, बोलने की शक्ति नहीं है; माँ तुम्हारा चरण डेढ़ महीने से नहीं देखा है।)

तीसरा-- बीबी से जाकर कहूँगा-- सुना न, सुना न, मर कर भूत हो गया फिर भी दादनी से पिण्ड नहीं छूटा।

पहला-- तू ऐसा घोंघा बसन्त है--

तोराप-- तुम भले आदमियों के लड़के हो। मुझे बातों से मालूम हुआ है--परान काका मुझे कंधे पर ले सकता है, मैं झरोखे से उससे पूछूँ उसका घर कहाँ है।

पहला-- तू तो मुसल्ला है।

तोराप-- तब तू मेरे कन्धे पर चढ़ कर देख। (बैठकर) चढ़-- (कंधे पर चढ़ना) दीवाल पकड़ना, झरोखे के पास मुँह ले जा (गोपीनाथ को दूर देख कर) चाचा उतर, चाचा उतर, गोपिया साला आ रहा है।

(पहले रैयत का जमीन पर गिरना)

(गोपीनाथ और रमाकान्त को पकड़े रोग साहब का प्रवेश)

तीसरा-- दीवान साहब, इस घर में भूत है। इतनी देर तक रो रहा था।

गोपी-- तुझे जैसा सिखाए दे रहा हूँ वैसा अगर नहीं बोलेगा तो तू भी उसी तरह भूत होगा। (स्वगत रोग के प्रति) मजूमदार के बारे में इन्हें मालूम हो गया है, इस कोठी में अब नहीं रखेंगे। उस घर में रखना ही गैरकानूनी

हो गया था।

रोग-- वह बात बाद में सुनी जाएगी। गैर राजी कौन है ? कौन बज्ज़ात, बदमाश है ? (पैर की आवाज)।

गोपी-- ये सब दुरुस्त हो गए हैं। यह मुसल्ला बेटा बड़ा हरामज़ादा है, कहता है नमकहरामी नहीं कर सकूँगा।

तोराप-- (स्वगत) बाप रे ! कैसा ज़बर्दस्त लट्ठ है ! फिलहाल तो राज़ी हो जाऊँ, बाद में जैसा जानता हूँ वैसा करूँगा। (जाहिरा तौर से) दुहाई साहब की, दुहाई साहब की, मैं भी सीधा हो गया हूँ।

रोग-- चुप रह, सूअर का बच्चा। रामकान्त बड़ा मीठा होता है !

(रामकान्त से मारना और पैर से ठोकर लगाना।)

तोराप-- अल्ला ! अरी मेरी माँ, मरा ! अरी मेरी माँ, मरा ! परान चाचा, जरा पानी दे, बाप, बाप।

रोग-- तेरे मुँह में पेशाब नहीं कर देगा ?

(जूते की ठोकर)

तोराप-- मुझे जो कहोगे वही करूँगा।-- दोहाई साहब की, दोहाई साहब की, खुदा की कसम !

रोग-- बहन.... की हरामज़दगी दूर हो गई है। आज रात में सबको चालान दूँगा। मुख्तार को लिखो, गवाह नहीं मिलने से कोई बाहर न जाने पावे। पेशकार साथ जाएगा-- (तीसरे रैयत के प्रति) तुम रोता है काहे ? (ठोकर लगाना)।

तीसरा-- बहू तू कहाँ हैं, मुझे मार डाला, माँ री, बहू री, मार डाला रे, मार डाला रे, (जमीन पर चित गिरना)।

रोग-- बहन... पगला है।

(रोग का प्रस्थान)

गोपी-- क्यों तोराप बेइज्जती से पेट भर गया न--दोनों ही तो हुए।

तोराप-- दीवान साहब, मुझे जरा पानी देकर बचाओं, मैं मरा, मैं मरा !

गोपी-- बाप रे, नील का गोदाम क्या इन्जन का घर है, पसीना भी छूटता है, पानी भी पिलाता है, आओ, तुम सभी आओ, तुम लोगों को पानी पिला लाऊं।

(सबका जाना)

अंक 2
द्वितीय गर्भांक

बिन्दुमाधव का सोने का कमरा

(हाथ में चिट्ठी लिए सरलता बैठी है)

सर-सरला-ललना- जीवन एल ना।

कमल - हृदय - द्विरद - दलना।।

बड़ी आशा में निराशा हुई। प्रियतम की आगमन प्रतीक्षा में नवसलिल-शीकराकांक्षिणी चातकी की अपेक्षा भी व्याकुल हुई थी। दिन गिन रही थी, दादी ने जो कहा था, वह तो झूठ नहीं है, मेरे एक-एक दिन एक-एक साल की तरह बीते हैं।-- (लम्बी साँस) नाथ के आने की आशा तो निराधार हुई; अब जिस महान् कार्य में प्रवृत्त हुए हैं उसमें सफल होने पर ही उनका जीवन सार्थक है। प्रियतम, हमारा नारी-वंश में जन्म हुआ है, हम पाँच एक उम्र की एक साथ बगीचे में नहीं जा सकतीं, हम नगर-भ्रमण में अक्षम हैं, हमारे लिए मंगल-सूचक-सभा-स्थापन करना संभव नहीं है, हमारे लिए कॉलेज नहीं है, कचहरी नहीं है, ब्राह्म समाज नहीं है-- मणी का मन कातर होता है, तो मन बहलाव के लिए कोई उपाय नहीं है; मन समझाए न समझे तो उसे दोष नहीं दे सकती। प्राणनाथ हमारे एकमात्र अवलम्बन हैं;-- पति ही ध्यान, पति ही ज्ञान, पति ही अध्ययन, पति ही उपार्जन, पति ही सभा, पति ही समाज, पतिरत्न ही सती का सर्वस्व है। हे लिपि ! तुम मेरे हृदय-वल्लभ के हाथ से आई हो, तुम्हें चूमती हूँ-- (लिपि-चुम्बन)। तुम पर मेरे प्राण-कान्त का नाम लिखा है, तुम्हें तापित वक्ष पर धारण करती हूँ-- (वक्ष पर धारण)। अहा ! प्राणनाथ के वचन अमृत-सम हैं, पत्र को जितना ही पढ़ती हूँ, उतना ही मन मोहित होता है। एक बार फिर पढ़ूँ-- (पढ़ना)

'प्राणों की सरला,

तुम्हारा मुखारविन्द देखने के लिए मेरा हृदय कितना व्याकुल हुआ है, इसे पत्र में व्यक्त नहीं किया जा सकता। तुम्हारे चन्द्रमुख को वक्ष में धारण करके मुझे कैसा अनिर्वचनीय सुख प्राप्त होता है। सोचा था उस सुख का समय आ गया है लेकिन हर्ष में विषाद हुआ; कॉलेज बन्द हो गया है लेकिन बड़ी विपत्ति में पड़ गया हूँ; यदि परमेश्वरी की कृपा से उत्तीर्ण न हो सका तो फिर मुँह नहीं दिखा सकूँगा। निलहे गोरों ने छिप-छिप कर पिता के नाम एक झूठा मुकदमा दायर किया है; उनकी विशेष चेष्टा है कि वे किसी तरह जेल भेजें। दादा को यह बात विस्तारपूर्वक लिखकर मैं यहाँ पैरवी कर रहा हूँ। तुम किसी बात की चिन्ता न करना। करुणानिधान की कृपा से अवश्य ही सफल होऊँगा। प्रेयसि, मैं तुम्हारी वंग-भाषा के शेक्सपियर की बात नहीं भूला हूँ। आजकल बाजार में नहीं मिलती है लेकिन प्रियवयस्य बंकिम ने अपनी दी है, घर जाते वक्त ले जाऊँगा।-- विधु-मुखि ! लिखाई-पढ़ाई की उत्पत्ति कैसा सुख का आकर है, इतनी दूर रहकर भी तुमसे बातचीत कर रहा हूँ। अहा ! माता जी अगर तुम्हारे लिखने में आपत्ति न करतीं तो तुम्हारी लिपि-सुधा का पान करके मेरा चित्त-चकोर चरितार्थ होता; इति।

तुम्हारा ही बिन्दुमाधव।'

मेरा ही-- इसमें मेरा पूर्ण विश्वास है। प्रियतम, तुम्हारे चरित्र को अगर दोष स्पर्श करता हैं तो सुचरित्र का आदर्श कौन होगा ?-- मैं स्वभावतः चंचल हूँ, एक जगह क्षण भर चुप नहीं बैठ पाती हूँ, इसलिए सास जी मुझे पगली की बेटी कहती हैं। अब मेरा वह चांचल्य कहाँ है ? जिस जमह बैठकर प्राणपति का पत्र खोला है, उसी जगह एक पहर से बैठी हूँ। भात उफनाकर जब फेन से ढँक जाता है तब ऊपर का हिस्सा थिरा जाता है लेकिन भीतर उबला करता है; मैं अब उसी तरह हो गई हूँ।-- प्राणनाथ, तुम्हारे सफल होने पर ही सबकी रक्षा होगी, तुम्हारे मुख के म्लान होने पर मुझे दसों दिशाओं में अन्धेरा दिखाई पड़ता है।-- हे अबोध मन, तुम प्रबोध नहीं मानोगे ? तुम्हारे अबोध होने पर पार पाया जा सकता है, तुम्हारा क्रन्दन कोई नहीं देख पाता!, कोई सुन नहीं पाता; लेकिन नयन, तुम्हीं हमें लजाओगे,-- (आँखें पोंछकर)-- तुम शान्त नहीं होते तो मैं घर से बाहर नहीं जा सकती।

(आदुरी का प्रवेश)

आदुरी--अरे तुम अभी तक यहीं बैठी हो, बड़ी हालदारिनी घाट पर नहीं जा पा रही हैं; कहती हैं, जिसकी ओर देखती हूँ, उसी का मुँह फूल कर कुप्पा हो जाता है।

सर-- (लम्बी साँस छोड़ते हुए) चलो, चलें।

आदुरी--तेल में देखती हूँ अभी तक हाथ नहीं लगाया है। बाल मिट्टी

से सन रहे हैं; चिट्ठी अभी तक छोड़ी नहीं ?-- छोटा हालदार सारी चिट्ठियों में मेरा नाम लिख देता है।

सर-- बड़े जेठ ने नहाया है ?

आदुरी-- बड़े हालदार तो गाँव गए, जिले में मुकदमा जो शुरू हो गया है; तुम्हारी चिट्ठी में लिखा नहीं है ? मालिक जो रोने लगे।

सर--(स्वगत) प्राणनाथ, सफल न होने पर सचमुच ही मुँह नहीं दिखा पाओगे। (खुलेआम) चलो रसोई घर में जाकर तेल लगाएँ।

(दोनों का प्रस्थान)

अंक 2

तृतीय गर्भांक

स्वरपुर-निरास्ता

(पदी हलवाइन का प्रवेश)

पदी-- अमीन दाढ़ीजार ही तो देश को रसातल में ले जा रहा है। मेरी क्या यही साध है कि कच्ची उम्र की लड़कियों को साहब से पकड़वा कर अपने पैरों पर खुद ही कुल्हाड़ी मारूँ ? राय ने जो इन्तजाम किया था उसे अगर साधु भैया मिट्टी में न मिलाते तो ज़िन्दगी भर रोटी-कपड़ा देता। ओफ ! क्षेत्रमणि का मुँह देखने से कलेजा फट जाता है ! यार रक्खा है तो क्या शरीर में दया-मया नहीं रह गई है; मुझे देखकर हलवाइन बुआ कहकर पास आती है। ऐसे सोने के हिरण को माँ क्या कहीं शेर के मुँह में डाल सकती है !-- छोटे साहब अब आगे नहीं बढ़ते हैं, मैं हूँ, कलीबन है;-- बाप रे, कैसी घिनौनी बात है ! रुपए के लिए जात-पाँत गई, जंगली का विस्तर छूना पड़ा। लुच्चा बड़ा साहब जब मुझे पाता है पीटता है, कहता है नाक-कान काट देगा। बुड्ढा हो गया है फिर भी भतार खाने वाली का भतार औरतों को पकड़ कर गोदाम में रख सकता है, औरतों के चूतड़ पर लात मार सकता है, ऐसा पाजी आदमी तो कहीं नहीं देखा। चलूँ, अमीन कलमुँहे को कह दूँ मुझसे यह नहीं होगा। मेरे लिए क्या गाँव में निकलने की सूरत है, टोले के लौण्डे, दाढ़ीजार के बेटे, मुझे देखते ही पीछे लग जाते हैं-- (नेपथ्य में-गीत)

यखन ख्याते ख्याते बसे धान काटि।
मोर मने जागे ओ तार लयान दुटि।।

(जब मैं खेत में धान काटने बैठता हूँ तो उसके दोनो नैन मेरी आँखों के सामने आ जाते हैं।)

(एक चरवाहे का प्रवेश)

चरवाहा-- साहब, तुम्हारे नील के पौधे में कहते हैं कीड़े लग गए ?

पदी-- तेरी माँ-बहनों के लगें, दाढ़ीजार का बेटा, माँ की गोद सूनी करो, यमलोक जाओ, कलमीघाटा जाओ--

चरवाहा-- मैंने दो खुरपियाँ बनाने को दी हैं--

(एक लठैत का प्रवेश)

बाप रे ! कोठी का लठैत है ! (चरवाहे का तेजी से भागना)

लठैत-- कमलमुखी, मिस्सी ने तो तुझे और भी खूबसूरत बना दिया है।

पदी-- (लठैत की चाँदी की करधन को देख कर) तेरा चन्द्रहार बड़ा बहारदार है।

लठैत-- जानती नहीं हो रानी, प्यादे की पोशाक, और नटी का भेष।

पदी-- तुझसे एक काली कलोर गाय माँगी थी, तूने आज तक नहीं दी। अब तुझसे कभी कुछ नही मांगूँगी।

लठैत-- पद्यमुखी, नाराज न हो। हम कल श्यामनगर लूटने जाएँगे अगर कल काली कलोर मिल गई तो उसे अपने बथान में बँधी समझ। मैं मछली ले जाते समय तेरी दुकान पर होकर जाऊँगा।

(लठैत का प्रस्थान)

पदी-- साहबों को लूट के सिवा और कोई काम नहीं है। थोड़ा कम लें तो किसान भी ज़िन्दा रहें, और नील भी पैदा हो। श्यामनगर के मुन्शी को दस बीघा ज़मीन छोड़ने के लिए कितनी चिरौरी विनती की। 'चोर को धर्म की बातें नहीं रुचतीं।' दाढ़ीजार बड़े साहब ने कलमुँहे का मुँह जला दिया।

(मदरसे के चार बच्चों का प्रवेश)

चारों बच्चे-- (बस्ता रख, ताली पीट कर)

हलवाइन ! कहाँ है तेरा नील !
हलवाइन ! कहाँ है तेरा नील !
हलवाइन ! कहाँ है तेरा नील !

पदी-- छीः बेटा केशव, बुआ लगती हूँ, ऐसी बात नहीं कहते-- चारों बच्चे (नाच कर)

हलवाइन-- ! कहाँ है तेरा नील !

पदी-- छीः भैया अम्बिका, बड़ी बहन को वैसा नहीं कहते--

चारों बच्चे-- (पदी हलवाइन को घेर कर नाचते हुए)

हलवाइन ! कहाँ है तेरा नील !
हलवाइन ! कहाँ है तेरा नील !
हलवाइन ! कहाँ है तेरा नील !

(नवीनमाधव का प्रवेश)

पदी-- मैं तो लाज से मरी ! बड़े बाबू को मुँह दिखाया।

(घूंघट खींच कर पदी का प्रस्थान)

नवीन-- दुराचारिणी, पापी। (बच्चों के प्रति) तुम लोग रास्ते में खेल रहे हो, घर जाओ, काफ़ी देर हो गई है।

(चारों बच्चों का प्रस्थान)

नील का अत्याचार अगर बन्द हो जाय तो मैं पाँच दिनों के अन्दर इन बच्चों के पढ़ने के लिए स्कूल बनवा दूँ। इस प्रदेश के इन्स्पेक्टर बाबू बड़े सज्जन हैं; विद्या होने पर आदमी कैसा सुशील होता है ! बाबू जी की उम्र के हैं सही, लेकिन बातचीत में विलक्षण प्रवीण हैं। बाबू जी की बड़ी इच्छा है कि यहाँ एक स्कूल बन जाय। मैं भी इस मंगल कार्य में रुपए खर्च करने में कातर नहीं होऊँगा; मेरा बड़ा दालान सुन्दर विद्या मन्दिर बन सकता है; गाँव के बच्चे मेरे घर में बैठ कर विद्यार्जन करें, इससे बढ़कर सुख और क्या हो सकता है ? अर्थ और परिश्रम की सार्थकता ही यही है। बिन्दुमाधव इन्स्पेक्टर बाबू को साथ लाया था; बिन्दुमाधव की इच्छा है कि गाँव के सभी लोग स्कूल के लिए तत्पर हों। लेकिन गाँव की दुर्दशा देखकर भैया के मन की बात मन ही में रह गई। मेरा बिन्दु कैसा धीर, कैसा शान्त, कैसा सुशील, कैसा विज्ञ है। कम उम्र की विज्ञता छोटे पौधे के फल की तरह मनोहर होती है। भैया ने चिट्ठी में जो खेद प्रकट किया है, उसे पढ़ने से पत्थर का हृदय भी पिघल जाता है। निलहों का अन्तःकरण भी दहल जाता है।-- घर जाने के लिए पैर नहीं उठते, कोई सूरत नहीं देखता; पाँच में से एक का भी पता नहीं लगा सका; उन्हें कहाँ ले गया है, कोई नहीं बता सकता। तोराप शायद कभी झूठ नहीं बोलेगा। बाकी

चारों ने गवाही दी तो सत्यानाश हो जाएगा; विशेष करके मैं अभी तक़ कोई तैयारी नहीं कर पाया हूँ, तिस पर मजिस्ट्रेट साहब उड साहब के परम मित्र हैं।

(एक रैयत, फौजदारी के दो प्यादे और कोठी के ताईदगीरों का प्रवेश)

रैयत-- बड़े बाबू, मेरे दोनों लड़कों को देखिए, उन्हें खिलानेवाला और कोई नहीं है। पिछले साल आठ गाड़ी नील दिया, उसका एक पैसा भी नहीं दिया, और तिस पर बाक़ी है कह कर रस्से से बाँधा है, फिर अन्दाराबाद ले जाएगा--

ताईद-- नील की दादनी धोबी की निशानी है, एक बार लगने पर फिर नहीं छूटती।-- तू चल, दीवान साहब के यहाँ से होकर जाना होगा। तेरे बड़े बाबू का भी ऐसा ही होगा।

रैयत-- चलो चलूँगा, डरता नहीं, जेल में सड़ मरूँगा फिर भी गोरे का नील नहीं बोऊँगा।-- हा विधाता, हा विधाता, कंगाल को कोई नहीं देखता-- (रोना)। बड़े बाबू, मेरे दोनों लड़कों को खाने को देना, मुझे खेत से पकड़ लाए, उन्हें एक बार देख भी नहीं सका।

(नवीनमाधव के अलावा सभी का प्रस्थान)

नवीन-- कैसा अन्याय है! नवप्रसूति साही को जब किरात पकड़ लेता है तो उसके बच्चे बिना खाए मर जाते हैं। उसी तरह इस रैयत के बच्चे बिना अन्न के मर जाएँगे!

(राईचरण का प्रवेश)

राईचरण-- बड़े भैया नहीं पकड़ते तो गोरे को मार ही डालता; मार तो डालता, इसके बाद न हो छः महीने की फाँसी हो जाती।-- साली-!

नवीन-- अरे राईचरण, कहाँ जाता है?

राईचरण-- माई जी ने ऊटू महाराज को बुला लाने के लिए कहा है। पदी... ने कहा कि कल प्यादे पकड़ने आएँगे।

(राईचरण का प्रस्थान)

नवीन-- हा विधाता! इस वंश में पहले जो नहीं हुआ था वही हुआ। मेरे पिता अति निरीह, अति सरल, अति निष्कपट हैं, झगड़ा-फ़साद किसे कहते हैं, नहीं जानते, कभी गाँव से बाहर नहीं निकलते, फौजदारी के नाम से काँपते हैं; पत्र पढ़कर आँसू बहाया है; इन्द्राबाद जाना पड़ा तो पागल हो जाएँगें; क़ैद किए गए तो पानी में कूद पड़ेंगे। मेरे जीवित रहते पिता की यह दुर्गति होगी! मेरी माता, पिता की तरह नहीं डरती। उसमें साहस है, वह कभी निराश नहीं होती, वह एकाग्रचित्त होकर भगवती को बुला रही है। डर और चिंता में पागल-सी हो रही है; नील कोठी के गोदाम में उनके पिता की मृत्यु हुई, उनकी निरन्तर यही चिन्ता है कि कहीं पति की भी वही दशा न हो। मैं किसको सान्त्वना दूँ? सपरिवार भागना क्या उचित होगा?-- नहीं, परोपकार परम धर्म है, सहसा विमुख नही होऊँगा।-- श्याम नगर का कोई उपकार नहीं कर सकता। चेष्टा से क्या कोई काम असाध्य है? देखूँ, क्या कर सकता हूँ--

(दो अध्यापकों का प्रवेश)

पहला-- क्यों भाई गोलकचन्द्र वसु का मकान इसी गाँव में है न? पितृव्य के प्रमुखात् सुना है वसुजी बड़े साधु व्यक्ति हैं, कायस्थकुल तिलक हैं।

नवीन-- (प्रणिपात होकर) महाराज मैं उनका ज्येष्ठ पुत्र हूँ।

पहला-- अच्छा, अच्छा, अहा, साधु, साधु, एवंविध सुसंतान साधारण पुण्य का फल नहीं है; जैसा वंश--

अस्मिंस्तु निर्गुणं गोत्रे नापत्यमुपजायते।
आकरे पद्मरागाणां ज़न्म काचमणेः कुतः।।

शास्त्र का वचन व्यर्थ नहीं होता।-- तर्कालंकार भाई, श्लोक को प्रणिधान नहीं किया-- हा, हा, हा, (सुंघनी सूँघना)।

दूसरा-- हमें सौगन्ध्या के अरविन्द बाबू ने बुलाया है, आज गोलकचन्द्र के आलय में अवस्थान करेंगे, तुम लोगों को चरितार्थ करेंगे।

नवीन-- परम सौभाग्य की बात है; इधर से चलिए।

(सबका प्रस्थान)

तृतीय अंक

प्रथम गर्भांक

बेगुनबेड़े की कोठी के दफ़्तरखाने का सम्मुख भाग

(गोपीनाथ और एक खलासी का प्रवेश)

गोपी-- तुम लोगों के हिस्से में कम नहीं पड़ता तो तुम लोग कोई बात मुझसे नहीं कहते।

खलासी-- उस विष्टा को क्या अकेला खाकर हज़म किया जा सकता है? मैंने कहा 'अगर खाओगे तो दीवान जी को देकर खाओ', तो कहा, 'बड़ा बना है तेरा दीवान, यह तो वह केवट का बेटा नहीं है कि साहब का बन्दर खिलाता फिरेगा।'

गोपी-- अच्छा, तू अभी जा, कायथ का बच्चा कैसा होता है, उसे मैं दिखाऊँगा।

(खलासी का प्रस्थान)

छोटे साहब के बल पर बेटा इतना कूदता है। बहनोई अगर मालिक हो तो काम करने में बड़ा सुख मिलता है, इसे भी कहूँगा; बड़ा साहब इस बात को सुनकर आगबबूला होता है। लेकिन बेटा मुझ पर बहुत गुस्सा है, बात-बात पर श्यामचन्द दिखाता है, उस दिन मोजा पहने लात मारी। कई दिनों से इरादा अच्छा नहीं देखता। गोलक बोस के तलब किए जाने के बाद से मुझ पर दया दृष्टि पड़ी है। लोगों का सत्यानाश करने पर साहब की शबासी मिलती है। 'शतमारी भवेत वैद्यः।' (उड को देखकर) लो यह आ रहे हैं, बोस लोगों की बातें करके पहले ठण्डा करूँ।

(उड का प्रवेश)

धर्मावतार, नवीन बोस की आँखों से अब आँसू निकला है। बेटे इतने सीधे नहीं हुए थे, बेटे का बगीचा निकाल लिया गया है, साझीदार गदाई पोद को पट्टा लिख दिया गया है, खेती एक तरह से बन्द हो गई है, बेटे की खत्तियाँ सब खाली पड़ी हुई हैं जिसको दो-दो बार फ़ौजदारी में फंसाया गया है, इतने कष्ट में भी साला अब पतन हुआ है।

उड-- तुम साला श्यामनगर में कुछ नहीं कर सका।

गोपी-- हुजूर, मुंशी उसके पास आया था तो बेटे से उसने कहा, 'मेरा मन स्थिर नहीं है, पिता के रोने से अंग शिथिल हो गए हैं, मैं भी बोल गया हूँ।' नवीन बोस की दुर्गति देखकर श्यामनगर की प्रजा के सात-आठ घर फरार हो गए और बाकी सब हुजूर जैसा कह रहे हैं, वैसा ही करते हैं।

उड-- तुम अच्छे दीवान हो। अच्छी सूरत निकाली है।

गोपी-- मैं जानता था कि गोलक बोस बड़ा डरपोक आदमी है, फ़ौजदारी में जाना पड़ा तो पागल हो जाएगा, नवीन बोस जैसा पितृभक्त है उससे आसानी

से हाथ में आ जाएगा; इसीलिए बुड्ढे को आसामी बनाने के लिए कहा, हुज़ूर ने जो तरीका निकाला है वह भी बुरा नहीं है, उनके पोखरे के किनारे नील बोया गया है, उसके कलेजे में साँप ने अण्डे दिए हैं।

उड-- एक तीर से दो शिकार, दस बीघे में नील हुआ, बहन... को दुख पहुँचा। साला बहुत रोया-धोया था, कहता है पोखरे पर नील बोने से मैं उजड़ जाऊँगा। मैंने जवाब दिया है, बस्ती की ज़मीन में नील बहुत अच्छा होता है।

गोपी-- यह जवाब पाकर उसने नालिश की है।

उड-- मुकदमा कुछ नहीं होगा, यह मजिस्ट्रेट साहब बहुत अच्छा आदमी है। दीवानी करने पर भी पाँच साल मं भी मुकदमा खतम नहीं होगा। मजिस्ट्रेट मेरा बड़ा दोस्त है। देखो, तुम्हारा गवाह मातबरी करके नये कानून में चार बदमाश को हवालात भिज़वा दिया है।

गोपी-- धर्मावतार, इन चार रैयतों की फ़सल बर्बाद होगी, इसलिए नवीन बोस अपना हल-बल हलवाहा देकर उनकी ज़मीन जोत रहा है और उनके परिवार वालों को जिसमें तकलीफ़ न हो, इसकी कोशिश कर रहा है।

उड-- साले को जब दादनी की जमीन जोतना पड़ता है तो कहता है हल-बैल कम हो गया है; बहन.....बड़ा बज्जात है, अच्छी सज़ा मिली है। दीवान, तुम अच्छा काम किया है, तुमसे काम अच्छा चलेगा।

गोपी-- धर्मावतार की कृपा ! मेरी इच्छा है कि हर साल दादनी बढ़ाऊँ; यह काम अकेले नहीं हो सकता; इसके लिए विश्वासी अमीन-खलासी की ज़रूरत है, जो आदमी दो रुपए के लिए हुज़ूर का तीन बीघे का नील खराब करता है इससे काम की कभी तरक्की होती है ?

उड-- मैं समझ गया, अमीन साला ने गोलमाल किया है।

गोपी-- हुज़ूर, चन्द्र महाजन यहाँ क्या बसा है, दादनी कुछ नहीं लेता है; अमीन ने उसके आंगन में बाकायदा एक रुपए की दादनी फेंक दी। रुपया लौटाने के लिए वह बहुत रोया-धोया और विनती करते-करते रथ-थान तक अमीन के साथ आया। रथ-थान में नीलकण्ठ बाबू से उसकी मुलाकात हुई जो कालेज से एकदम वकील होकर निकले हैं।

उड-- मैं उसको जानता हूँ, वह बहन.....मेरी बात अखबार में लिख देता है।

गोपी-- आपके अखबार के सामने उसका अखबार नहीं टिक सकता है। दोनों का मुकाबला नहीं होता, राजा भोज के सामने गंगू तेली। लेकिन अखबार को मुट्ठी में करने के लिए हुज़ूर लोगों को बहुत खर्च करना पड़ा है, जैसा समय है--

समय गुणे आप्त पर।
खोंडा गाधा घोड़ार दर।।

(समय का फेर है। दोस्त दुश्मन बन जाता है। लंगड़ा गधा घोड़े के भाव बिकता है।)

उड-- नीलकण्ठ ने क्या किया ?

गोपी-- नीलकण्ठ बाबू ने अमीन को बहुत जद्द-बद्द कहा; अमीन लजाकर महाजन के घर गया और दो रुपए के साथ दादनी का रुपया भी वापस ले आया है। चन्द्र महाजन मालदार है, तीन-चार बीघे नील आसानी से बो सकता था और यह क्या नौकर का काम है ? मैं दीवान और अमीन दोनों का काम कर सकता हूँ, तभी यह नमकहरामी खत्म होगी।

उड-- बड़ा बज्जाती है, साफ नमकहरामी है।

गोपी-- धर्मावतार, बेअदबी माफ़ हो-- अमीन आपकी बहन को छोटे साहब के कमरे में लाया था।

उड-- हाँ, हाँ, मैं जानता हूँ, उस बहन.... और पदी हलवाइन ने छोटा साहब को खराब किया है। बदजात को हम जरूर सबक देगा; उस बहन... को हमारा बैठने का घर में भेज दो।

(उड का प्रस्थान)

गोपी-- देखो तो भई, बन्दर किसके हाथों में अच्छा नाचता है, कायथ धूर्त होता है और कौआ धूर्त होता है।

टेकियाछे एइबार कायतेर छाय।
बोनाइ बाबार बाबा हार मेने जाय।।

(अब तुम कायस्थ के पल्ले पड़े हो, जहाँ बहनोई का दादा भी मात खाए बिना नहीं रह सकता।)

अंक 3

द्वितीय गर्भांक

नवीन माधव का शयन गृह

(नवीन माधव और सैरिन्ध्री बैठे हैं)

सैरिन्ध्री-- प्राणनाथ, गहना पहले या ससुर पहले; तुम जिस लिए दिन-रात घूमते फिर रहे हो, जिसके लिए आहार-निद्रा छोड़ दिया है, जिसके लिए तुम्हारी आँखों से निरन्तर आँसू झर रहे हैं, जिसके लिए तुम्हारा खिला हुआ चेहरा मुर्झा गया है, जिसके लिए तुम्हारे सिर में दर्द है, क्या मैं उसके लिए इन मामूली आभूषणों को नहीं दे सकती ?

नवीन-- प्रेयसि, तुम अनायास दे सकती हो, लेकिन मैं लूँ किस मुँह से ! कामिनी को अलंकारहीन करने में पति को कितना कष्ट होता है; बेगवती नदी में तैरने, भीषण समुद्र में डूबने, युद्ध में कूदने, पर्वत पर चढ़ने, जंगल में रहने, शेर के मुँह में जाने-- पति इतने कष्टों को सहकर पत्नी को भूषित करता है; मैं क्या ऐसा मूर्ख हूँ कि उसी पत्नी के गहनों का हरण करूँगा। कमलनयने, प्रतीक्षा करो। आज देखूँ अगर रुपए का इन्तजाम न कर सकूँ तो कल तुम्हारे गहने लूँगा।

सैरिन्ध्री-- हृदय वल्लभ हमारे लिए बड़ा ही दुःसमय है, इस समय विश्वास करके कौन तुम्हें पांच सौ रुपए उधार देगा ? मैं फिर विनती करती हूँ कि मेरे और छोटी बहू के गहने महाजन के यहाँ बन्धक रखकर रुपए लाओ। तुम्हारा कष्ट देखकर सोने के कमल जैसी हमारी छोटी बहन कुम्हला गई है।

नवनी-- बस करो चन्द्रमुखी तुमने ये कैसी दारुण बातें कहीं, मेरे अन्तःकरण मे मानो अग्निबाण ने प्रवेश किया है। हमारी छोटी बहू बालिका है, उत्तम वसन, उत्तम भूषण ही उसके लिए सुख हैं; वह क्या समझती है, वह संसार का क्या जानती है; हँसी में विपिन के गले का हार छीन लेने से जैसे वह रोता है, बहू के गहने लेने से वह उसी तरह रोएगी। हे ईश्वर ! मुझे ऐसा कायर बना दिया ! मैं ऐसा कठोर डाकू बन गया हूँ। मैं बालिका को वंचित करूँगा ? प्राण रहते यह नहीं होगा-- नराधम, निर्दयी निलहा भी यह काम नहीं कर सकता।-- ऐसी बात अब ज़बान पर न लाना।

सैरिन्ध्री-- मैंने जिस कष्ट में यह दारुण बात कही है, उसे मैं जानती हूँ और अन्तर्यामी परमेश्वर जानते हैं; इसमें सन्देह नहीं कि इस अग्निबाण ने मेरा अन्तःकरण विदीर्ण किया है, जिह्वा को जला डाला है, बाद में ओठ चीरकर तुम्हारे अन्तःकरण में प्रवेश किया है-- तुम्हारा पागलों की तरह घूमना, ससुर

का रोना, सास का आह भरना, छोटी बहू का म्लान चेहरा, नाते-रिश्तेदारों का लटका हुआ मुँह, रैयतों का हाहाकार,-- इन सबको देखकर क्या आमोद-प्रमोद की बात याद पड़ती हैं ? किसी तरह बच निकलें तो सभी को छुटकारा मिले। हे नाथ, विपिन का गहना देने में मुझे जो कष्ट होता है छोटी बहू का गहना देने में भी मुझे वही कष्ट होता है। लेकिन छोटी बहू के गहने देने के पहले विपिन का गहना देने से छोटी बहू के प्रति मेरा निष्ठुर आचरण प्रकट होगा, छोटी बहू सोच सकती है कि दीदी ने मुझे शायद पराया समझा। क्या ऐसा काम करके मैं उसके सरल हृदय को चोट पहुँचा सकती हूँ ? यह क्या मातृ तुल्य जेठानी का काम है ?

नवीन-- तुम्हारा अन्तःकरण, तुम्हारे जैसी सरल नारी, नारी कुल में दूसरी नहीं। मेरा क्या था क्या हो गया ! मेरी सात सौ रुपए बीघे मुनाफ़े की ज़मीन, मेरे पन्द्रह खत्ती धान, सोलह बीघे का बगीचा, मेरे बीस हल, पचास हलवाहे-- पूजा में कैसा समारोह होता था, घर लोगों से भर जाता था, ब्राह्मण भोजन, भिखमंगों को अन्न बाँटना, आत्मीय जनों को भोजन कराना, वैष्णवों का गान, प्रबोधजनक यात्राएँ-- मैंने कितना धन व्यय किया है, किसी-किसी को सौ रुपए तक दान दिया है; जहां ऐसा ऐश्वर्यशाली होकर मैं इस समय स्त्री, भ्रातृ-वधू के गहने हरण करने पर उतारू हो गया हूँ ! कैसी विडम्बना है !

सैरिन्ध्री-- तुम्हें कातर देखकर मेरा हृदय भी रोने लगता है।-- (सजल नेत्रों से) मेरे भाग्य में इतना कष्ट लिखा था, इतनी दुर्गति देखनी पड़ी ! अब बाधा न दो-- (गहने खोलना)।

नवीन-- तुम्हारी आँखों में आँसू देखकर मेरा कलेजा फट जाता है। (आँसू पोंछकर) चुप रहो, चन्द्रमुखी, चुप रहो,-- (हाथ पकड़कर) रक्खो एक दिन और देखूँ।

सैरिन्ध्री-- अब, चारा ही क्या है ? मैं जो कहती हूँ वही करो, भाग्य में लिखा होगा तो बहुत गहने होंगे। (नैपथ्य मेंछींक।)-सचमुच ही आदुरी आ रही है।

(दो चिट्ठियाँ लिए आदुरी का प्रवेश)

आदुरी-- ये दोनों चिट्ठियाँ कहाँ से आई हैं, मैं नहीं कह सकती, माई जी ने तुम्हें देने को कहा है !

(चिट्ठी देकर आदुरी का प्रस्थान)

नवीन-- तुम्हारे गहने लेने पड़ेंगे या नहीं लेने पड़ेंगे-- (पहली चिट्ठी खोलना)

सैरिन्ध्री-- ज़ोर से पढ़ो

नवीन-- (चिट्ठी पढ़ना)।

"...

आपको रुपए देना प्रत्युपकार करना मात्र है, लेकिन मेरी माता को कल गंगालाभ हो गया है, उनके श्राद्ध का दिन निकट है, यह समाचार महाशय को कल ही लिखा है।-- तम्बाकू अभी तक नहीं बिकी है। इति।

श्री घनश्याम मुखोपाध्याय।"

कैसा दुर्भाग्य है ! मुखोपाध्याय महाशय की माता के श्राद्ध में मेरा क्यां यही उपकार है !-- देखूँ, तुम कौन-सा अस्त्र धारण करके आई हो-- (दूसरी चिट्ठी खोलना।)।

सैरिन्ध्री-- आशा करके निराश होने में बड़ा कष्ट होता है; वह चिट्ठी वैसी ही रहने दो।

नवीन-- (चिट्ठी पढ़ना)

"प्रतिपाल्य श्री गोकुलकृष्ण पालित का विनयपूर्वक निवेदन विशेष। महाशय के मंगल से अपना मंगलयुक्त लिपि पाकर समाचार अवगत हुआ। मैंने तीन सौ रुपया इकट्ठा किया है, कल उसे लेकर पहुँचूँगा। बाकी एक सौ रुपया अगले महीने में चुकता करूँगा। महाशय ने जो उपकार किया है, मैं थोड़ा-सा सूद देना चाहता हूँ। इति।"

सैरिन्ध्री-- परमेश्वर हमारे ऊपर सदय हुए हैं।-- जाऊँ मैं छोटी बहू को कह आऊँ।

(सैरिन्ध्री का प्रस्थान)

नवीन-- (स्वगत) मेरी प्राणाधिका सरलता की मूरत है। इसी का सहारा लेकर पिता को इन्द्राबाद ले जाऊँ, आगे जो भाग्य में है सो होगा। डेढ़ सौ रुपए पास हैं-- तम्बाकू को एक महीने और रखूँ तो पाँच सौ रुपए में बिक सकती है। लेकिन क्या करूँ साढ़े तीन सौ रुपए में ही बेचना पड़ा, अमलों का खर्च बहुत लगेगा, जाने-आने में भी बहुत व्यय होगा। ऐसे झूठे मुक़दमें में अगर सजा हो गई तो समझूँगा कि इस देश में प्रलय समुपस्थित है, कैसा कठोर कानून जारी हुआ है। कानून का क्या दोष है, कानून बनाने वालों का भी क्या दोष है ? जिनके हाथों में कानून अर्पित हुआ है वे अगर तटस्थ होते, तो क्या देश का सत्यानाश हो जाता ? इस क़ानून से कितने ही व्यक्ति बिना अपराध के जेलों में आँसू बहा रहे हैं। उनके स्त्री-पुत्रों का दुख देखने से छाती फटती है; चूल्हे पर की हाँड़ी चूल्हे पर ही है, आँगन का धान आँगन में ही सूख रहा है, वथान के पशु वथान में ही हैं; सारे खेत जोते-बोए नहीं गए, खेत की घास निराई नहीं गई; वर्ष भर क्या होगा ?--'कहाँ नाथ ! कहाँ तात !' धरती पर पड़े रो रहे हैं। कोई-कोई मजिस्ट्रेट सुविचार कर रहे हैं, उनके हाथों में यह क़ानून यमदण्ड नहीं बना है। अगर सभी अमर नगर के मजिस्ट्रेट की तरह न्यायवान होते तो क्या रैयतों की खड़ी फसल बर्बाद होती, लहलहाते हुए खेतों में आग लगती तो क्या मुझे इस दुस्तर विपत्ति में गिरना पड़ता ? हे लेफ़्टिनेण्ट गवर्नर, जैसा कानून बनाया था, अगर उसी तरह के सज्जन नियुक्त करते तो ऐसा अमंगल नहीं होता। हे देशपालक, अगर एक भी दफ़ा बनाते कि मुक़दमा... झूठा साबित होने पर फ़रियादी को सज़ा मिलेगी; तो अमर नगर की जेल निलहों से भर उठती और वे इतने प्रबल न हो पाते।-- हमारे मजिस्ट्रेट का तबादला हो गया है, लेकिन यह मुकदमा अन्त तक यहाँ रहा तो हम मिट जाएँगे।

(सावित्री का प्रवेश)

सावित्री-- नवीन, सारे हलों को अगर छोड़ देते हो तो क्या तब भी दादनी लेना होगा ? हल-बैल सब बेचकर व्यापार करो, उससे जो आमदनी होगी उसे सुख से भोगेंगे; यह जुल्म तो अब नहीं सहा जाता।

नवीन-- माँ, मेरी भी यही अच्छा है। केवल बिन्दु के काम मिलने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। फ़िलहाल खेती छोड़ देने से गृहस्थी का पलना मुश्किल है, इसीलिए इतने कष्टों के बीच भी कुछ हलों को रखा है।

सावित्री-- यह सिरदर्द लेकर कैसे जाओगे, बतलाओ ?-- हे परमेश्वर, ऐसा नील यहाँ पैदा हुआ था।

(नवीन के सिर पर हाथ फेरना)

(रेवती का प्रवेश)

रेवती-- माई जी, मैं कहाँ जाऊँ, क्या करूँ, क्यों मरने आई। दूसरे की जात को घर लाकर सँभाल नहीं सकी। बड़े बाबू, मुझे बचाओ, मेरा कलेजा

फटा जाता है; मेरी क्षेत्रमणि ला दो, मेरी सोने की गुड़िया ला दो।

सावित्री-- क्या हुआ, हुआ क्या?

रेवती-- मेरी क्षेत्र शाम को पाँचू की माँ के साथ दास पोखरे से पानी लाने गई थी। बगीचे के अन्दर से आते समय चार लठैत बिटिया को पकड़ ले गए हैं। सत्यानाशी पदी दिखाकर भाग गई।

सावित्री-- कैसी सत्यानाशी बात है। ये सत्यानाशी सब कुछ कर सकते हैं-- लोगों की ज़मीन छीन रहे हैं, धान छीन रहे हैं, गाय-बच्चे छीन रहे हैं, लाठी के हूरे से नील बोआ रहे हैं, रोकर हो चाहे धोकर हो लोग नील बो रहे हैं;-- यह क्या! भले आदमियों की जान लेना!

रेवती-- माँ, आधा पेट खाकर नील बो रही हूँ, जितनी ज़मीन में निशान लगाया, उन सबमें वो रही हूँ। राय लौण्डा जमीन जोतता है और फफक-फफक कर रो उठता है; खेत से लौट इस बात को सुनकर वह पागल हो जाएगा।

नवीन-- साधु कहाँ है?

रेवती-- बाहर बैठकर रो रहा है।

नवीन-- गृहस्थ महिला के लिए सतीत्व आय़श्कान्त मणि के बराबर है। सतीत्व मणि से विभूषित रमणी कैसी रमणीय होती है। पिता के स्वरपुर वृकोदर के जीवित रहते कुल कामिनी का अपहरण! इसी क्षण जाऊँगा, कैसा दुःशासन है देखूँगा; सतीत्व-श्वेत-कमल पर नील मण्डूक कभी नहीं बैठने पावेगा।

(नवीन का प्रस्थान)

सावित्री-- सतीत्व सोनार निधि विधिदत्त घना, कांगालिनी पेले रानी एमन रतना।

(सतीत्व विधिप्रदत्त सोने का भण्डार है। यह इतना बहुमूल्य है कि कंगालिन को भी रानी बना देता है।)

अगर नील बन्दर के हाथ से पवित्र मणि को अपवित्र होने के पहले ही ला सको तभी समझूँगी कि तुम्हें गर्भ में धारण करना सार्थक हुआ है। ऐसा अत्याचार बाप-दादों के जमाने में नहीं सुना था।

(दोनों का प्रस्थान)

अंक 3
तृतीय गर्भांक

रोग साहब का कमरा

(रोग आसीन है-- पदी हलवाइन और क्षेत्रमणि का प्रवेश)

क्षेत्र-- हलवाइन बुआ मुझसे ऐसी बातें न कहो, मैं प्राण दे सकूँगी, धर्म नहीं दे सकती; मुझे काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दो, जला दो, बहा दो, गाड़ दो, मैं पराए पुरुष को नहीं छू सकती; मेरा पति क्या सोचेगा?

पदी-- तेरा पति कहाँ है, तू कहाँ है? इस बात को कोई जान नहीं पाएगा; इसी रात को ही मैं साथ ले जाकर तेरी माँ के पास पहुँचा आऊँगी।

क्षेत्र-- माना पति नहीं जान सका, ऊपर का देवता तो जानेगा, देवता की आँख में तो धूल नहीं झोंक सकूँगी? मेरे कलेजे में तो पजावे की आग जलेगी। सती समझकर मेरा पति जितना ही प्यार करेगा मेरे कलेजे में उतनी ही आग लगेगी। जाने हो या बिना जाने हो, मैं कभी भी यार न कर सकूँगी।

रोग-- पद्‌म, पलँग के ऊपर ला न।

पदी-- आ बिटिया, तू साहब के पास आ, तुझे जो कुछ कहना है, उसी से कह, मुझसे कहना बेकार है।

रोग-- मुझसे कहना सूअर के सामने मोती बिखेरना है, हा, हा, हा। हम निलहे हैं, हम यम के मौसेरे भाई हैं, खड़े होकर कितने गाँव जला दिए हैं, बेटे को दूध पिलाते-पिलाते कितनी ही माताएँ जल मरीं, यह देखकर क्या हम स्नेह करते हैं, स्नेह करने से क्या हमारी कोठी क़ायम रहती? स्वभावतः हम बुरे नहीं हैं, नील के काम में हमारा मिज़ाज़ बिगड़ गया है। एक आदमी को मार डालने में दुख होता था, अब दस औरतों को रामकान्त से पीट सकता हूँ, तभी हँसते हुए खाना खाता हूँ। मैं औरतों को अधिक प्यार करता हूँ, कोठी के नाम से इस काम में बड़ी सुविधा हो सकती है; समुद्र में सब कुछ मिला जा रहा है।-- तेरे शरीर में बल नहीं है; पदी खींच ला।

पदी-- क्षेत्रमणि, मेरी भोली बिटिया, बिस्तर पर आओ, साहब तुझे एक बीबी का पोशाक देगा, कह रहा है।

क्षेत्र-- भाड़ में जाय बीबी का पोशाक, टाट पहनकर रहूँगी वह भी भला, फिर भी बीबी का पोशाक मुझे न पहनना पड़े। हलवाइन बुआ, मुझे बड़ी प्यास लगी है, मुझे घर पहुँचा आ, मैं पानी पीकर ठण्डी होऊँ। आह, आह! मेरी माँ ने अब तक फाँसी लगा ली होगी; मेरे बाप ने सिर पर कुदाल मार ली होगी, मेरा काका जंगली भैंसे की तरह इधर-उधर दौड़ रहा होगा। मेरी माँ के और कोई लड़का नहीं है। बाप-काका दोनों के बीच मैं अकेली संतान हूँ; मुझे छोड़ दे, मुझे घर पहुँचा आ, तेरे पैर पड़ूँगी; पदी बुआ, तेरा विष्टा खाऊँ।-- माँ री मरी! प्यास से मरी!

रोग-- सुराही में पानी है, पीने को दो।

क्षेत्र-- हिन्दू की बेटी होकर मैं क्या साहब का पानी पी सकती हूँ? मुझे लठैतों ने छुआ है, मैं घर लौट कर बिना नहाए घर में नहीं जा सकूँगी।

पदी-- (स्वगत) मेरा धर्म भी गया, जात भी गई। (ज़ाहिरा तौर पर) तो मैं बेटी, क्या करूँ, साहब के चंगुल में पड़ने पर छुटकारा पाना दूभर है।-- छोटे साहब, क्षेत्रमणि आज घर जाए, तब फिर किसी दिन आएगी।

रोग-- तब तुम मेरे साथ रह कर मौज करो। तू बाहर जा, मुझमें ताकत होगी तो मैं इसे नरम करूँगा, नहीं तो तेरे साथ घर भेज दूँगा-- डैम होर; मुझे लग रहा है, तूने बाधा दी थी, इसीलिए तो भले आदमी की बेटी को लठैत से बुलाना पड़ा; मैंने नील के लठैतों को ऐसे काम में कब आसानी से दिया है?-- हरामज़ादी पदी हलवाइन।

पदी-- अपनी कली को बुलाओ, वही तुम्हारी लाड़ली है, मैं समझ गई हूँ।

क्षेत्र-- हलवाइन बुआ, मत जा! हलवाइन बुआ, मत जा।

(पदी हलवाइन का प्रस्थान)

मुझे काले साँप की बाँबी में अकेली छोड़ गई, मुझे डर लगता है, डर के मारे सिर चकरा रहा है, प्यास के मारे कलेजा फटा जाता है।

रोग-- डियर, डियर-- (दोनों हाथों से क्षेत्रमणि के दोनों हाथों को पकड़कर खींचता है) आओ आओ--

क्षेत्र-- हे साहब, तुम मेरे पिता के समान हो, हे साहब, मुझे छोड़ दो, पदी बुआ के साथ मुझे घर भेज दो; अँधेरी रात है, मैं अकेली नहीं जा सकूँगी। (हाथ पकड़ कर खींचता है) हे साहब, तुम मेरे बाप हो, हे साहब, तुम मेरे पिता हो; हाथ पकड़ने से जात जाती है, छोड़ दो, तुम मेरे पिता हो।

रोग-- मैं तेरे लड़के का पिता बनना चाहता हूँ। मैं बातों में नहीं आ सकता, बिस्तर पर आओ, नहीं तो लात मारकर पेट फाड़ दूँगा।

क्षेत्र-- मेरा लड़का मर जाएगा-- दुहाई साहब-दुहाई साहब, मेरा लड़का मर जाएगा--मैं !

रोग-- ऐसे तेरी शर्म नहीं जाएगी।

(कपड़े पकड़कर खींचना)

क्षेत्र-- हे साहब, मैं तुम्हारी माँ हूँ, तुम मेरे बेटे हो, मेरा कपड़ा छोड़ दो ! (रोग के हाथ में नख से खरोचना)

रोग-- इनफ़र्नल बिच ! (बेंत लेकर) अब तुम्हारा छिनालपन दूर होगा।

क्षेत्र-- मुझे मार डालो, मैं कुछ नहीं कहूँगी; मेरे कलेजे में एक तलवार भोंक दे मैं स्वर्ग सिधार जाऊँ-- अरे विष्टा खाने वाले का बेटा, तेरे घर में जोड़ा मौत हो; मेरे बदन को छुआ, तो मैं तेरे हाथों को काट कर टुकड़े-टुकड़े कर दूँगी; तेरे माँ-बहन नहीं हैं, जाकर उनके कपड़े क्यों नहीं छीनता ? खड़ा क्यों हैं, अरे अपनी बहन के साथ घाट करने वाला, मार, मेरी जान निकाल दे न, अब मुझसे तो सहा नहीं जाता।

रोग-- चुप रह हरामज़ादी-- छोटे मुँह बड़ी बात !

(पेट में घूँसे मारना और बाल पकड़कर खींचना)

क्षेत्र-- पिता कहाँ हो ! माँ कहाँ हो ! देखो, तुम्हारी क्षेत्र मरी !-- (काँपना)।

(खिड़की तोड़कर नवीनमाधव और तोराप का प्रवेश)

नवीन-- (रोग के हाथों से क्षेत्रमणि के बाल छुड़ा कर) अरे नराधम, नीच, निलहे, क्या यही तेरे ईसाई धर्म की जितेन्द्रियता है ? क्या यही तेरे ईसाई धर्म की दया, विनयशीलता है ? ओफ़, ओफ़ ! बालिका, अबला, गर्भवती कामिनी के प्रति ऐसा निठुर व्यवहार !

तोराप-- साला मानो कठपुतली की तरह खड़ा है; गोरे की बोलती बन्द हो गई है।-- बड़े बाबू, इस साले में ईमान नहीं है कि धरम की बात सुनेगा; वह जैसा है, मैं भी वैसा ही हूँ; साले के जैसे जबड़े हैं, वैसे ही मेरे हाथ के पहुँचे भी हैं;-- (गर्दन पकड़कर गाल पर थप्पड़ लगाना)-- चिल्लाएगा तो यमलोक जाएगा-- (गला दबोच कर) पाँच दिन चोर का तो एक दिन साह का, पाँच दिन मारा तो एक दिन मार खा--(कान उमेठता है)।

नवीन-- डर किस बात का ? अच्छी तरह कपड़े पहन।

(क्षेत्रमणि का कपड़े पहनना)

तोराप, तू ससुरे का गला दबाए रह, मैं क्षेत्र को लेकर जाता हूँ, मैं जब बुनोपाड़ा पार कर जाऊँ तो तुम भी इसे छोड़ कर चले आना। नदी के किनारे-किनारे जाने में बड़ी तकलीफ होती हैं, काँटों से मेरा शरीर छिद गया है--अब तक शायद बुनो लोग सो गए हैं, खासकर इस बात को सुनकर कुछ नहीं कहेंगे। इसके बाद तू हमारे घर आना, तू कैसे इन्द्राबाद से भाग आया, और अब कहाँ रह रहा है, इसे मैं सुनना चाहता हूँ।

तोराप-- मैं इसी रात को नदी तैरकर घर जाऊँगा।-- मेरे नसीब की बात अब क्या सुनोगे; मैं मुख़्तार साले के अस्तबल का झरोखा तोड़कर सीधे बसन्त बाबू की जमींदारी में भागा, फिर रात बीबी-बच्चे घर में पहुँचाया। इसी साले ने उजाड़ा, खेती करके अब क्या गुजर-बसर किया जा सकता है, नील की मार कैसी है; तिस पर फिर नमकहरामी करने को कहता है।-- क्यों साले, गिटपिट करके जूते की ठोकर क्यों नहीं मारता ?

(घुटने से मारना)

नवीन-- तोराप, मारने की क्या ज़रूरत है, ये निर्दयी हैं तो हमें भी निर्दयी नहीं होना चाहिए; मैं चला।

(क्षेत्र को लेकर नवीनमाधव का प्रस्थान)

तोराप-- ऐसे वसु लोगों को भी बेघरबार करना चाहता है; अपने बड़े बाप से कहकर मना-वना कर काम बना ले; ज़ोर-ज़बर्दस्ती के दिन चलती है; अरे साले, रैयत फ़रार हुई तो कोठी जहन्नुम में चली जाएगी।-- बड़े बाबू के पिछले साल के रुपए चुकता कर दे, और इस साल जितना बोना चाहते हैं, उतना ही ले, तेरे ही लिए वे लोग मुसीबत में पड़े हैं; दादनी मढ़ने से ही नहीं होता, खेती भी तो होनी चाहिए।-- छोटे साहब, सलाम मैं चला।

(चित्त करके फेंक कर भागना)

रोग-- बाइ जोव ! बीटमेंट जेली।

(प्रस्थान)

अंक 3

चतुर्थ गर्भांक

गोलकचन्द्र वसु के भवन का दालान

(सावित्री का प्रवेश)

सावित्री-- (लम्बी साँस छोड़ते हुए) रे दारुण हाकिम, तूने मुझे क्यों नहीं तलब किया, मैं भी पति-पुत्र के साथ जिले में जाती; इस श्मशान में रहने की अपेक्षा मेरे लिए वह अच्छा था। हाय ! मालिक मेरे घरघुसवा आदमी हैं, कभी भी दूसरे गाँव में न्योता खाने नहीं जाते, उनके भाग्य में इतना दुख, फौजदारी में पकड़ ले गए, उन्हें जेल जाना होगा। भगवती ! तुम्हारे मन में यही था माँ ? हाय ! वे कहते हैं कि लम्बें-चौड़े घर में नहीं सोने से नींद नही आती, वह अरवा चावल का भात खाते हैं, वह बड़ी बहू के सिवाय किसी के हाथ का नहीं खाते; हाय ! छाती पीटकर लहू-लुहान हुए हैं, रो-रोकर आँखें सुजा ली हैं; जाते समय कहा, 'मालकिन ! यह यात्रा मेरे लिए गंगा यात्रा बनी।'-- (रोना) नवीन कहते हैं, 'माँ ! अपनी भगवती को पुकारो, मैं जरूर जीतूँगा और उन्हें लेकर घर लाऊँगा।' मेरे बेटे का सोने जैसा दमकता हुआ चेहरा स्याह हो गया है; रुपए इकट्ठा करने में कितनी परेशानी होती है, दर-दर भटकते सिर में चक्कर आता है; कहीं मैं बहुओं का गहना न दे डालूँ, इसलिए हमें हिम्मत बँधाता है, माँ, रुपए की क्या कमी है, मुकदमे में कितना खर्च होगा ? साझेदार के मुकदमे में मेरे गहने गिरवी चले जाने पर उसे कितना खेद हुआ, कहता है, कुछ रुपए हाथ में आते ही पहले गहनों को छुड़ा लाऊँगा। मेरे बेटे के हृदय में साहस, आँखों में आँसू है; मेरा बेटा रोता-रोता चला गया, मेरा नवीन इसी धूप में इन्द्राबाद गया, मैं घर में बैठी रही महापापिनी ! यहीं क्या तेरा माँ का हृदय है !

(सैरिन्ध्री का प्रवेश)

सैरिन्ध्री-- माई जी, बहुत दिन चढ़ आया, नहाओ ! हमारा भाग्य खोटा है, नहीं तो ऐसी घटना क्यों होती ?

सावित्री-- (रोते-रोते) नहीं बिटिया, मेरा नवीन जब तक घर नहीं लौटता, तब तक अन्न-जल नहीं छुऊँगी; मेरे लाल को कौन खिलाएगा ?

सैरिन्ध्री-- वहाँ देवर जी के टिकने की जगह है, रसोइया है, कष्ट नहीं होगा, तुम चलो, नहाओ।

(तेल का बर्तन लेकर सरलता का प्रवेश)

छोटी बहू, तुम माई जी को तेल लगा नहलाकर रसोईघर में ले आओ,

में थाली परसूँ।

(सैरिन्ध्री का प्रस्थान, सरलता का तेल लगाना)

सावित्री-- मेरा तोता मौन हो गया है, बिटिया के मुँह से अब बात नहीं निकलती, बिटिया मेरी बासी फूल की तरह मुरझा गई है।-- हाय! बिन्दुमाधव को कितने दिनों से नहीं देखा, भैया का कालेज बन्द होगा, घर आएँगे। राह देख रही हूँ, इसी बीच यह विपत्ति आई।-- (सरलता की ठुड्डी पकड़कर) बिटिया का मुँह सूख गया है, शायद अभी तक कुछ खाया नहीं? घोर विपत्ति में पड़ी हूँ, लालों ने खाया कि नहीं इसे देखूँ कब? मैं आप ही नहा रही हूँ, तुम बिटिया कुछ खाओ, चलो मैं भी चलूँ।

(दोनों का प्रस्थान)

चतुर्थ अंक
प्रथम गर्भांक

इन्द्राबाद की फ़ौजदारी कचहरी

(उड, रोग, मजिस्ट्रेट, अमले बैठे हैं-- गोलकचन्द्र, नवीनमाधव, बिन्दुमाधव, मुद्दई, मुद्दालेह के मुख्तार, नाज़िर, चपरासी, अर्दली, रैयत वग़ैरह खड़े हैं)

पहला मुख्तार-- अधीन की इस दरखास्त की प्रार्थना मंजूर की जाय।

(सिरिश्तेदार के हाथ में दरखास्त देना)

मजिस्ट्रेट-- अच्छा पढ़ो (उड साहब से सलाह करना और हँसना)

सिरिश्तेदार-- (पहले मुख्तार के प्रति) यह तो महाभारत लिख डाला है, दरखास्त का सार न हो तो क्या पूरी पढ़ी जाती है?

(दरखास्त के पन्ने उलटना)

मजिस्ट्रेट-- (उड साहब से बातचीत के बाद हँसी रोक कर) खुलासा पढ़ो।

सिरिश्तेदार-- आसामी और आसामी के मुख्तार की गैरहाज़िरी में फ़रियादी के गवाहों की गवाही ली गई है-- अर्ज है कि फ़रियादी के गवाहों को फिर हाजिर किया जाय।

मुद्दई का मुख्तार-- धर्मावतार, मुख्तार लोग झूठी शठता, प्रवंचना में लगे हुए हैं, सही में, अनायास हलफ़ उठाकर झूठ बोलते हैं; मुख्तार लोग निरन्तर नीच कामों में लगे रहते हैं, विवाहिता स्त्री को छोड़कर वे अपने अमरालय बार महिलालय में समय बिताते हैं, फल-स्वरूप जमींदार लोग मुख्तारों से विशेष घृणा करते हैं, लेकिन अपना काम साधने के लिए उन्हें बुलाते हैं और बिस्तर पर बैठाते हैं। धर्मावतार, मुख्तारों का पेशा ही है ठगना; लेकिन निलहों के मुख्तारों से किसी प्रकार की कोई प्रवंचना नहीं हो सकती। निलहे साहब ईसाई हैं और ईसाई धर्म में झूठ को महापाप माना गया है; दूसरे का धन चुराना, परनारीगमन, नरहत्या आदि नीच कार्य ईसाई धर्म में अत्यन्त घृणित हैं। ईसाई धर्म में नीच काम करना तो दूर रहा, हृदय में नीच विचार को स्थान देने से नरकाग्नि में जलना पड़ता है; करुणा, क्षमा, विनय, परोपकार-- ईसाई धर्म के प्रधान उद्देश्य हैं; ऐसे सच्चे सनातन धर्मपरायण निलहों द्वारा झूठी गवाही दिलाना कदापि सम्भव नहीं है। धर्मावतार, हम लोग इस निलहे के तलब पाने वाले मुख्तार हैं; हम लोगों ने इसके चरित्र के अनुसार चरित्र-संशोधित किया है; हमारी इच्छा होने पर भी गवाहों को सिखाने-पढ़ाने की हिम्मत नहीं होती; क्योंकि सत्यपरायण साहबों को अगर नौकर की चालाकी की बात रंच मात्र भी मालूम हुई तो वे उसे यथोचित दण्ड देते हैं। मुद्दालेह का माना हुआ गवाह कोठी का अमीन मज़कूर इस बात का एक दृष्टान्त है। रैयत की दादनी के रुपए से रैयत को वंचित किया था इसलिए दयावान् साहब ने उसे निकाल दिया है; और गरीब बाल-बच्चे वाले रैयतों के रोने-धोने से रुष्ट होकर उसे पीटा भी है।

उड-- (मजिस्ट्रेट के प्रति) एक्स्ट्रीम प्रोवोकेशन, एक्स्ट्रीम प्रोवोकेशन!

मुद्दई का मुख्तार-- हुजूर की तरफ़ से हमारे गवाहों से बहुतेरे सवाल किए गए थे, अगर वे सिखाए-पढ़ाए गवाह होते तो उन्हीं सवालों में पकड़ में आ जाते। कानूनदानों ने कहा है-- 'हाकिम आसामी का एडवोकेट स्वरूप है।' अतएव आसामी की ओर से जो सवाल हैं वे हुजूर की तरफ़ से ही हुए हैं। अतएव गवाहों को फिर ले जाने से आसामी को कुछ भी फ़ायदा पहुँचने की संभावना नहीं है, लेकिन गवाहों को तकलीफ़ हो सकती है। धर्मावतार, गवाह लोग खेती-बारी से जीने वाले गरीब रैयत हैं, वे अपने हाथों से हल पकड़कर स्त्री-पुत्रों का प्रतिपालन करते हैं; उनके दिन भर खेतों में न रहने से खेती चौपट हो जाती है; खाने के लिए घर आने से खेती को नुकसान पहुँचता है इसलिए उनकी औरतें अँगौछे में खाना बाँधकर उन्हें खेत पर ही खिला आती हैं; किसान एक दिन के लिए भी खेत छोड़ते हैं तो उनका सत्यानाश होता है; इस समय इतने दूर के जिले में रैयतों को तलब करने से उनकी साल भर की मेहनत बर्बाद हो जाएगी; धर्मावतार! जैसी आपकी मर्जी।

मजिस्ट्रेट-- कोई कारण तो नहीं देखता हूँ। (उड से परामर्श करके) ज़रूरत नहीं पड़ रही है।

मुद्दालेह का मुख्तार-- हुजूर, निलहों की दादनी किसी भी गाँव का कोई रैयत स्वेच्छा से नहीं लेता है; अमीन खलासी के साथ निलहे साहब अथवा उनके दीवान घोड़े पर चढ़कर खेतों में जाकर अच्छी-अच्छी ज़मीन में कोठी का निशान लगाकर रैयतों को नील बोने का हुक्म दे आते हैं; बाद में ज़मीन के मालिकान को कोठी में पकड़ मँगवाकर ब्यौरेवार करके दादनी लिख लेते हैं। दादनी लेकर रैयत रोते-रोते घर जाते हैं; जिस दिन जो रैयत-दादनी ले आता है उस दिन उस रैयत के घर में किसी के मरने जैसा रोना धोना मच जाता है। नील बोकर दादनी पटाकर फ़ाज़िल रुपया निकलने पर भी रैयतों के नाम दादनी का बकाया है-- खाते में ऐसा लिख दिया जाता है। एक बार दादनी लेने से रैयत सात पुश्त तक मुसीबत झेलते हैं। रैयतों को नील बोने में कितनी तकलीफ़ होती है, इसे वे ही जानते हैं और दीनों के रक्षक परमेश्वर जानते हैं। पाँच रैयत जब मिल बैठते हैं तो एक दूसरे की दादनी का परिचय देते हैं और छुटकारा पाने का उपाय निकालते हैं; उन्हें दूसरे के सलाह-मशविरे की ज़रूरत नहीं पड़ती, वे अपनी झंझट से ही परेशान रहते हैं। ऐसे रैयत गवाही दे गए कि उन्हें नील बोने की इच्छा थी, सिर्फ़ मेरे मुवक्किल ने उन्हें सलाह देकर और डर दिखाकर नील नहीं बोने दिया-- यह अत्यन्त आश्चर्यजनक और प्रत्यक्ष प्रतारण है। धर्मावतार, उन्हें हुजूर के सामने लाया जाय, अधीन दो सवालों में उनकी गवाही झूठी साबित कर देगा। मेरे मुवक्किल का पुत्र नवीनमाधव वसु कराल नील-निशाचर के करों से लाचार किसानों की रक्षा करने के लिए प्राणप्रण चेष्टा किया करते हैं, इस बात को स्वीकार करता हूँ; और वे उड साहब का जुल्म बन्द करने में कई बार सफल भी हुए हैं, यह बात पलाशपुर में आग लगाने के मुकदमें के कागजों में देखी जा सकती हैं। लेकिन मेरा मुवक्किल गोलकचन्द्र वसु बड़ा ही भोला आदमी है; निलहे साहबों से शेर से भी ज्यादा डरता है; किसी झंझट में नहीं रहता, तभी किसी की बुराई नहीं करता, किसी को बुराई से बचाने के लिए भी साहस नहीं करता। गोलकचन्द्र बसु चरित्रवान आदमी है, इस बात को जिले के सभी आदमी जानते हैं! अमलों से पूछकर यह बात मालूम की

जा सकती है।

गोलक-- विचारपति ! मेरा पिछले साल का नील का रुपया चुकता नहीं किया गया, फिर भी मैंने फ़ौज़दारी के डर से साठ बीघें नील की दादनी लेनी चाही थी। बड़े बाबू ने कहा, 'पिता, हम लोगों की दूसरी आमदनी है, एक या दो वर्ष नील के नुकसान से क्रिया-कलाप ही बन्द होगा, हमें खाने के लिए अन्न की बिल्कुल कमी नहीं होगी; लेकिन जो लोग खेती पर ही सोलहों आने निर्भर करते हैं, उनका क्या होगा ? हम लोग इस हिसाब से नील बोऐंगे तो सभी को ऐसा ही करना होगा।' बड़े बाबू ने ये बातें विज्ञ व्यक्ति की तरह कहीं। इसलिए मैंने कहा, तो साहब के हाथ-पैर जोड़ कर पचास बीघे पर राजी कराऊँ। साहब ने हाँ-ना कुछ भी नहीं कहा, गुप्त रूप से इस बुढ़ापे में मुझे जेल भेजने की तैयारी की। मैं जानता हूँ, साहबों से मिल-जुल कर रहने में ही कल्याण है, साहबों का देश है, हाकिम भाई ब्रादर हैं, साहबों से बिगाड़ करके क्या चलना चाहिए ? मुझे छोड़ दीजिए, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि अगर हल-बैल की कमी के कारण नील न बो सकूँ तो हर साल नील के बदले साहब को सौ रुपए दूँगा। मैं क्या रैयतों को सिखाने वाला आदमी हूँ ? मुझसे क्या उनकी मुलाक़ात होती है !

मुद्दालेह का मुख्तार-- धर्मावतार, जिन चार रैयतों ने गवाही दी है, उनमें एक के पास बहुत मामूली जमीन है-- उसके पास किसी ज़माने में भी हल नहीं था, जमीन नहीं है, जोत नहीं है, बैल नहीं है, बथान नहीं है, सरज़मीन पर तहक़ीकात करने से यह बात साबित हो जाएगी। कन्हाई तरफ़दार दूसरे गाँव की रैयत हैं, उससे मेरे मुवक्किल की मुलाकात नहीं, वह व्यक्ति शिनाख्त करने में असमर्थ है। इन्हीं कारणों से मैं उन्हें फिर से अदालत के सामने हाज़िर करने की प्रार्थना करता हूँ। व्यवस्था करने वालों ने लिखा है, 'समझौते के पहले आसामी को सभी प्रकार का उपाय करने देना चाहिए या उपाय करने की सुविधा देनी चाहिए।' धर्मावतार, मेरी इस प्रार्थना को मंजूर कर लेंगे तो मेरे मन में कोई मलाल नहीं रह जाएगा।

मुद्दई का मुख्तार-- हुजूर--।

मजिस्ट्रेट-- (चिट्ठी लिखना) बोलो, बोलो, मैं कानों से नहीं लिख रहा हूँ।

मुद्दई का मुख्तार-- हुजूर, इस वक्त रैयतों को तकलीफ देकर जिले में बुलाने से उन्हें गहरा नुकसान पहुँचेगा, नहीं तो मैं भी प्रार्थना करता हूँ कि गवाहों को बुलाया जाय क्योंकि सवाल के कौशल से आसामी का साबित शुदा कसूर और भी साबित हो सकता है। धर्मावतार, गोलक वसु के दुश्चरित्र होने की बात चारों ओर फैली हुई है; उसका जो उपकार करता है वह उसी का अपकार करता है। अपार समुद्र लाँघ कर निलहे इस देश में आकर गुप्त निधि निकालकर देश का मंगल कर रहे हैं, राजकोष की धन-दौलत बढ़ा रहे हैं और आप लोग उपकृत हो रहे हैं। ऐसे महापुरुषों के महान कार्य का जो व्यक्ति विरोध करता है, उसकी जगह कारागार के सिवा और कहाँ हो सकती है ?

मजिस्ट्रेट-- (चिट्ठी का सिरनामा लिखना) चपरासी ! चपरासी-- चपरासी--खुदाबन्द।

(साहब के पास जाना)

मजिस्ट्रेट-- (उड से परामर्श करके) बीबी, उड के पास ले जाओ। खानसामा को बोलो, बाहर का साहब लोग आज नहीं जाएगा।

सिरिश्तेदार-- हुजूर, क्या हुक्म लिखा जाय ?

मजिस्ट्रेट-- नत्थी में शामिल कर लो।

(मजिस्ट्रेट का दस्तखत)

सिरिश्तेदार-- धर्मावतार, आसामी के जवाब के हुक्मनामे पर हुजूर का दस्तखत नहीं हुआ है।

मजिस्ट्रेट-- पढ़ो।

सिरिश्तेदार-- हुक्म होता है कि आसामी से दो सौ रुपए फी आदमी के हिसाब से दो आदमियों की जमानतें ली जायं और सफ़ाई के गवाहों के नाम बाक़ायदा सफ़ीना जारी किया जाय।

(मजिस्ट्रेट का दस्तखत)

मजिस्ट्रेट-- मीर गाँव की डकैती का मुकदमा कल पेश करो।

(मजिस्ट्रेट, उड,रोग, चपरासी और अर्दली का प्रस्थान)

सिरिश्तेदार-- नाज़िर महाशय, बाक़ायदा जमानतनामा लिखा-पढ़ा लो।

(सिरिश्तेदार, पेशकार, मुद्दई के मुख्तार और रैयतों का प्रस्थान)

नाज़िर-- (मुद्दालेह के मुख्तार के प्रति) आज शाम को ज़मानतनामा कैसे लिखा-पढ़ा जा सकता है, और तब जबकि मैं कुछ व्यस्त हूँ ?

मुद्दालेह का मुख्तार-- नाम बहुत बड़ा है सही, लेकिन कुछ भी नहीं है-- (नाजिर से परामर्श करके) गहने बेचकर ये रुपए देने होंगे।

नाज़िर-- मेरे तालुक भी नहीं हैं, व्यापार भी नहीं है, जमीन भी नहीं है; यही उपजीविका है। केवल तुम्हारी खातिरदारी के लिए सौ रुपए पर राजी हुआ। चलो, मेरे घर चलना होगा। कहीं दीवान जी भाई सुन न लें-- उनकी पूजा अलग हुई है न ?

(सबका प्रस्थान)

अंक 4
द्वितीय गर्भांक

इन्द्राबाद-- बिन्दुमाधव का मकान

(नवीनमाधव, बिन्दुमाधव और साधुचरण बैठे हैं)

नवीन-- इसीलिए मुझे घर जाना पड़ा। इस खबर को सुनते ही माता प्राण त्याग करेंगी। तुमसे क्या कहूँ, देखो, पिता को किसी तरह क्लेश न पहुँचने पाए। घर छोड़ना तय किया है, सर्वस्व बेचकर मैं रुपए भेज दूँगा; जो जितने रुपए माँगे, उसे उतना ही देना।

बिन्दु-- जेल दारोगा रुपए नहीं चाहता, मजिस्ट्रेट साहब के डर से रसोई बनाने वाला ब्राह्मण नहीं ले जाने दे रहा है।

नवीन-- रुपए भी दो, विनती भी करो !-- ओफ़ ! जीर्ण शरीर है ! तीन दिनों का अनाहठ ! इतना समझाया, इतनी विनती की,-- कहते हैं, 'नवीन, तीन दिन बीतने पर भोजन करूँ या न करूँ विचार करूँगा, तीन दिनों के अन्दर इस पापी मुँह में कुछ नहीं डालूँगा।''

बिन्दु-- पिताजी को किस तरह कुछ अन्न खिलाऊँ इसका कोई उपाय नहीं सूझ रहा है। निलहों के कृतदास मूढ़ मति मजिस्ट्रेट के मुँह से निठुर कारावास का आदेश निकलने के बाद से पिता ने आँखों पर जो हाथ रक्खा है उसे अभी तक नहीं हटाया, पिता के आँसुओं से हाथ बहे जा रहे हैं; जहाँ पर पहले पहल बैठाया था वहीं बैठे हुये हैं; मौन क्षीण-कलेवर स्पन्दनहीन मृत कपोतवत कारागार के पिंजड़े में पड़े हुए हैं। आज चौथा दिन है, आज उन्हें अवश्य ही भोजन कराऊँगा; आप घर जायं, मैं रोज पत्र लिखूँगा।

नवीन-- विधाता ! पिता को न जाने कितना कष्ट दे रहे हो।-- बिन्दु, तुम्हें रात-दिन जेल में रहने दे तभी मैं निश्चिन्त होकर घर जा सकता हूँ।

साधु-- मैं चोरी करूँ, आप लोग मुझे चोर कहकर पकड़वा दें। मैं एक बार करूँगा तो मुझे जेल दिया जाएगा, मैं वहाँ मालिक का नौकर बनकर रहूँगा।

नवीन-- साधु, तुम ऐसे ही साधु हो। ओफ़ ! क्षेत्रमणि की घोर पीड़ा के समाचार से तुम जिस तरह व्याकुल हो, तुम्हें जितना जल्दी घर ले जा सकूं उतना ही अच्छा !

साधु-- (लम्बी साँस) बड़े बाबू, जाकर बेटी को क्या देख पाऊँगा ? मेरी और कोई संतान नहीं है।

बिन्दु-- तुम्हें जो अर्क दिया है उसे पिलाने से अवश्य ही व्याधि दूर होगी, डाक्टर बाबू ने आद्योपान्त सुनकर वह दवा दी है।

(डेपुटी इन्सपेक्टर का प्रवेश)

डिप्टी-- बिन्दु बाबू, आपके पिता की रिहाई के लिये कमिश्नर साहब ने विशेषकर के लिखा है।

बिन्दु-- लेफ्टिनेण्ट गवर्नर रिहा कर देंगे, इसमें सन्देह नहीं।

नवीन-- रिहाई का समाचार कितने दिनों में आ सकता है ?

बिन्दु-- पन्द्रह दिन से अधिक नहीं लगेंगे।

डिप्टी-- अमरनगर के असिस्टेण्ट मजिस्ट्रेट ने एक मुख्तार को इस कानून में छः महीने की सजा दी थी। उसे सोलह दिन जेल में रहना पड़ा।

नवीन-- ऐसे दिन क्या आएँगे ? गवर्नर साहब अनुकूल होकर प्रतिकूल मजिस्ट्रेट के घिनौने फैसले का क्या खण्डन करेंगे ?

बिन्दु-- परमेश्वर हैं, अवश्य ही करेंगे। आप जाइए, बहुत दूर जाना होगा।

(नवीनमाधव बिन्दुमाधव और साधुचरण का प्रस्थान)

डिप्टी-- अहा दोनों भाई दुख के मारे जीवन्मृत हो गए हैं। लेफ्टिनेन्ट गवर्नर की रिहाई की अनुमति दोनों सहोदरों की मृतदेह को पुनर्जीवित करेगी। नवीन बाबू अति वीर पुरुष, परोपकारी, दानी, विद्योत्साही, देश हितैषी हैं; लेकिन निर्दयी निलहों के तूफान से नवीन बाबू के सद्गुण समूह के मुकुल म्रियमाण हो गये ।

(कालेज के पण्डित का प्रवेश)

आइये, विराजिये।

पण्डित-- स्वभावतः मेरा शरीर किंचित उष्ण है, धूप नहीं सहा जाता। चैत-बैसाख महीने के आतपताप से पागल हो जाता हूँ। कई दिनों से शिरःपीड़ा से अतिशय कातर हूँ; बिन्दुमाधव की भीषण विपत्ति के समय एक बार भी नहीं आ सका।

डिप्टी-- विष्णु तैल से आपको उपकार पहुँच सकता है। विष्णु बाबू के लिये विष्णु तैल प्रस्तुत किया गया है, आपके घर पर मैं कल थोड़ा सा भेज दूँगा।

पण्डित-- बड़ा बाधित हुआ। लड़कों को पढ़ाने से आदमी सहज ही पागल हो जाता है, तिस पर मेरा ऐसा शरीर है।

डिप्टी-- बड़े पण्डित महाशय को आजकल नहीं देखता।

पण्डित-- वे अपनी वृत्ति छोड़ने की राह तैयार कर रहे हैं; हीरे जैसा लड़का उपार्जन कर रहा है, उनकी गृहस्थी का निर्वाह राजा की तरह हो जाएगा। विशेषकर के वृषकाष्ठ गले में बाँधकर कालेज जाना-आना अच्छा नहीं दीखता, अवस्था तो कम नहीं हुई।

(बिन्दु माधव का पुनः प्रवेश)

बिन्दु--पण्डित महाशय आए हैं ?

पण्डित-- गोपी ने ऐसा अविचार किया है ! तुम लोगों ने सुना नहीं है, बड़े दिनों से उस कोठी में लगातार दस दिन बिता आया है। उससे प्रजा के विचार की आशा ! काजी के सामने हिन्दू का पर्व !

बिन्दु-- विधाता की जैसी इच्छा !

पण्डित-- मुख्तार किसे किया था ?

बिन्दु-- प्राणधन मल्लिक को।

पण्डित-- उसे कहीं मुख्तारनामा देते हैं ? दूसरे किसी व्यक्ति को देने से फायदा होता है; सभी देवता समान हैं।

बिन्दु-- कमिश्नर साहब ने पिता की रिहाई के लिये सरकार के पास रिपोर्ट भेजी है।

पण्डित-- जैसे नागनाथ वैसे साँपनाथ। जैसे मजिस्ट्रेट वैसा ही कमिश्नर !

बिन्दु-- महाशय, कमिश्नर को विशेष रूप से नहीं जानते इसीलिये ऐसा कह रहे हैं। कमिश्नर साहब अत्यन्त तटस्थ हैं, नेटिव लोगों की उन्नति की आकांक्षा रखते हैं।

पण्डित-- जो भी हो, अब भगवान् की कृपा से तुम्हारे पिता मुक्त हो जायं तो सब मंगल है।-- जेल में कैसे हैं ?

बिन्दु-- निरन्तर रो रहे हैं और पिछले तीन दिनों से कुछ भी नहीं खाया है। अब मैं जेल जाऊँगा, और यह शुभ समाचार सुनाकर उनको प्रसन्न करूँगा।

(एक चपरासी का प्रवेश)

तुम जेल के चपरासी हो न ?

चपरासी-- महाशय, जरा जल्दी से जेल चलिए, दारोग़ा ने बुलाया है।

बिन्दु-- मेरे पिता को तुमने आज देखा है ?

चपरासी-- आप चलिए, मैं कुछ नहीं कह सकता।

बिन्दु-- चलो भाई (पण्डित के प्रति) अच्छा नहीं मालूम हो रहा है; मैं चला।

(चपरासी और बिन्दुमाधव का प्रस्थान)

पण्डित-- चलो, हम लोग भी जेल चलें, शायद कोई घटना हो गई होगी।

(दोनों का प्रस्थान)

अंक 4

तृतीय गर्भांक

इन्द्राबाद का जेलखाना

(गोलक की मृत देह चादर की रस्सी से लटक रही है, जेल दारोग़ा और जमादार बैठे हैं)

दारोगा-- बिन्दुमाधव बाबू को कौन बुलाने गया है ?

जमादार-- मुनीरुद्दीन गया है। डाक्टर साहब जब तक न आ जायं तब तक तो उठाया नहीं जा सकता।

दारोगा-- मजिस्ट्रेट साहब के आ जाने की बात है न ?

जमादार-- जी नहीं, उनके आने में और चार दिनों की देर होगी। शनिवार को सच्चीगंज की कोठी में साहबों की शैम्पेन पार्टी है, बीबियों का नाच होगा। उड साहब की बीबी हमारे साहब के साथ नहीं नाच पाती; मैं जब अर्दली था, देखा है। उड साहब की बीबी बड़ी दयावान है, एक चिट्ठी में इस गरीब को

जेल का जमादार बनवा दिया है।

(बिन्दुमाधव का प्रवेश)

सभी परमेश्वर की इच्छा है।

बिन्दु-- यह क्या, यह क्या, हाय-हाय ! पिता ने फाँसी लगाकर आत्महत्या की है ! मैं तो पिता की रिहाई की संभावना व्यक्त करने आ रहा हूँ, कैसा मनस्ताप है ! (अपना सिर गोलक की छाती में रखकर मृत देह का आलिंगन कर रोना) पिता, हमारी माया बिल्कुल छोड़ दी ? बिन्दुमाधव के अँगरेजी ज्ञान का गौरव अब लोगों के सामने नहीं करेंगे ? नवीनमाधव को 'स्वरपुर-वृकोदर' कहना समाप्त हुआ ? बड़ी बहू को 'मेरी मां, मेरी मां' कह कर विपिन से जो आनन्द कलह था उसकी सन्धि की। हाय ! चोर की तलाश में घूमने वाले बक-दम्पत्ति में बक के व्याध द्वारा मारे जाने पर बच्चों से घिरी बक-पत्नी जिस प्रकार संकट में पड़ जाती है, मेरी जननी तुम्हारे फाँसी लगाकर मरने का समाचार पाकर उसी तरह होंगी--

दारोगा-- (हाथ पकड़कर बिन्दुमाधव को छाती से लगाकर) बिन्दु बाबू, इस समय इतने अधीर न हों। डाक्टर साहब की अनुमति लेकर शीघ्र अमृतघाट के घाट पर ले जाने की तैयारी कीजिये।

(डिप्टी इन्स्पेक्टर और पण्डित का प्रवेश)

बिन्दु-- दारोगा साहब मुझे कुछ न कहें, जो परामर्श उचित समझें पण्डित महाशय और डिप्टी बाबू से करें; शोक-विकार से मेरा गला रुँध गया है; जन्म भर के लिये एक बार पिता के चरण वक्ष पर धारण करके बैठूँ।

(गोलक के चरण वक्ष में धारण करके बैठना)

पण्डित-- (डिप्टी इन्स्पेक्टर के प्रति) मैं बिन्दुमाधव को गोद में पकड़े रहूँ, तुम बन्धन को खोलो--यह देव शरीर है, इस नरक में क्षण भर भी रखना उचित नहीं है।

दारोगा-- महाशय, थोड़ी देर इन्तजार करना होगा।

पण्डित-- आप नरक के द्वारपाल हैं क्या ? नहीं तो स्वभाव ऐसा क्यों हुआ ?

दारोगा-- आप विज्ञ हैं, मुझे बेजा फटकार रहे हैं-- (डाक्टर साहब का प्रवेश)

डाक्टर-- हो, हो, बिन्दुमाधव, गॉड्स विल् !-- पण्डित महाशय आए हैं, बिन्दु को कालेज नहीं छोड़ना चाहिए।

पण्डित-- कॉलेज के सिवा विधि नहीं होती।

बिन्दु-- हमारी जमीन-जायदाद सब गई, अन्त में पिता हमें दर-दर का भिखारी बनाकर गोलोक सिधारे-- (रोना)-- पढ़ाई अब कैसे सम्भव है ?

पण्डित-- निलहे साहबों ने बिन्दुमाधव का सर्वस्व ले लिया है।

डाक्टर-- पादरी साहबों की जबानी मैंने प्लैण्टर साहबों की बात सुनी है और मैंने भी देखा। मैं मतंगनगर की कोठी से आया, एक गाँव में बैठा; मेरी पालकी के नज़दीक से दो रैयत बाज़ार गया, एक के हाथ में दूध था; मैं दूध खरीदने माँगा, एक रैयत एक रैयत को कुछ बोला, 'निलहा भूत, निलहा भूत'-- दूध रख कर दौड़ा। मैं दूसरा रैयत को पूछा; वह बोला, 'दोनों रैयत दादनी के डर से भागा है; मैं दादनी लिया है, मुझे गोदाम में जाने का क्या जरूरत !' मैं समझा मुझको प्लैण्टर समझा है।। रैयत लोगों का हाथ में दूध देकर मैं चला गया।

डिप्टी-- वैली साहब के कन्सर्न के गाँव के अन्दर से पादरी साहब जा रहे थे। रैयत उन्हें देखकर 'निलहा भूत निकला है, निलहा भूत निकला है', कह रास्ता छोड़कर अपने-- अपने घर भाग गए थे। लेकिन पादरी साहब का दान, विनय, क्षमा देखकर रैयतों को अचरज हुआ और निलहों के अत्याचार से पीड़ित प्रजापुंज के दुख से पादरी साहब जितनी आन्तरिक संवेदना प्रकट करने लगे वे उतनी ही उनके प्रति श्रद्धा करने लगे। अब रैयत परस्पर कहते हैं-- एक ही बँसवाड़ी में तरह-तरह के बाँस होते हैं।

पण्डित-- हम मृत शरीर को ले जाँय ?

डिप्टी-- आप लोग बाहर जा सकते हैं। (बिन्दुमाधव और डिप्टी इन्स्पेक्टर द्वारा बन्धन खोलकर ले जाना और सभी का प्रस्थान)

पंचम अंक

प्रथम गर्भांक

बेगूनबेड़े की कोठी के दफ़्तरखाने के आगे का भाग

(गोपीनाथ दास और एक गोप का प्रवेश)

गोपी-- तूने इतनी खबर पाई कैसे ?

गोप-- हम गँवई के रहने वाले हैं, हमेशा चलते-फिरते रहते हैं, नमक नहीं है तो नमक माँग लाते हैं, तेल नहीं है तो तेल माँग लाते है, लड़का रोने लगा तो गुड़ माँग लिया--वसु के घर का सात पुश्त खाकर आदमी हुए हैं, हम लोग उनकी खबर नहीं रखते ?

गोपी-- विन्दुमाधव का ब्याह कहाँ हुआ था ?

गोप-- वह जो गाँव है क्या कहते हैं, कलकत्ते के पश्छिम, जिसमें उन्होने कायथों को जनेऊ पहनाना चाहा था-- जो बाभन हैं, उन्हीं से पार पाना मुश्किल है। बाभनों को बढ़ाने से फ़ायदा क्या ? छोटे बाबू के ससुर का बड़ा मान है, छोटे लाट साहब टोपी खोले बगैर नहीं आ सकते। गाँव में कहीं वह लड़की देते हैं। छोटे बाबू की लिखाई-पढ़ाई देखकर देहात नहीं माना। लोग कहते हैं कि शहराती लड़कियाँ कुछ घमण्डी होती हैं, और घरू हैं या बाजारू, नहीं पहचाना जा सकता; लेकिन वसुओं की बहू की तरह शान्त लड़की तो नहीं दिखायी पड़ती; गोमा की माँ रोज उनके घर जाती है, ब्याह के पाँच साल हो गए है, एक दिन मुँह तक नहीं देख सकी; जिस दिन ब्याह कर लाए, हम लोगों ने उसी दिन देखा, सोचा शहराती बाबू लोग अँगरेज़ों के भक्त है, इसीलिए बीबी की तरह लड़की पैदा की है।

गोपी-- बहू हमेशा सास की सेवा में लगी रहती है ?

गोप-- दीवान जी महाशय, क्या कहूँ ? हमारे गोमो की माँ ने कहा-- टोले में बात फैल गई थी, छोटी बहू न होती तो जिस दिन फाँसी लगाने की खबर सुनी, उसी दिन माँ मर जाती ! सुना था, शहराती लड़कियाँ मर्दों को भेड़ा बनाए रखती हैं, और माँ-बाप को भूखों मारती हैं; लेकिन इस बहू को देखकर जाना कि ये बातें सिर्फ़ अफ़वाह हैं।

गोपी-- नवीन बोस की माँ भी शायद बहू को बहुत प्यार करती हैं।

गोप-- माई जी संसार में किससे प्यार नहीं करती, यह भी तो जाना नहीं जा सकता। ओफ़, यह औरत मानो अन्नपूर्णा है; और तुम लोगों ने क्या अन्न रक्खा है कि वे पूर्ण होंगी; गोरे की नील ने बूढ़े को खा डाला, बूढ़ी को भी अब तब खाने वाला है--

गोपी-- चुप रह, साहब सुनेगा तो जीना दूभर हो जाएगा।

गोप-- मैं क्या करूं तुम तो खोद-खोद कर विष निकाल रहे थे। मेरी

क्या यह साध है कि कोठी में बैठ कर गोरे साले को गाली-गलौज करूँ।

गोपी-- मेरे मन में कुछ दुःख हुआ है, झूठा मुक़दमा करके मानी आदमी को बर्बाद किया, नवीन का सिर दर्द और नवीन की माँ की यह बुरी दशा सुनकर मुझे बड़ा क्लेश पहुँचा है।

गोप-- मेंढ़की को जुकाम ! दीवान जी महाशय, खफ़ा न हों, मैं जरा पागल सा हूँ। चिलम चढ़ा लाऊँ ?

गोपी-- यह तो बड़ा बेवकूफ़ मालूम होता है।

गोप-- साहब लोग सब करने लगे हैं; वे खुद ही लोहार हैं और खुद ही कटार भी; जिनकी जहाँ लाश गिराना चाहते हैं गिरा देते हैं। जहाँ साहब उजड़ जाते हैं वहां के लोग गंगा नहाकर अपना पाप धोते हैं।

गोपी-- तू बड़ा बक-बक करता है, मैं अब सुनना नहीं चाहता; तू जा अब साहब के आने का समय हो गया है।

गोप-- मैं चला, मेरे दूध का हिसाब करके मुझे कल एक रुपया देना होगा, हम लोग गंगा नहाने जाएँगे।

(प्रस्थान)

गोपी-- शायद उस सिरदर्द पर ही कल वज्र गिरेजा। साहब तुम्हारे पोखरे के किनारे नील बोएगा, उसे कोई रोक नहीं सकेगा। साहब की ज्यादती है सही, पिछले साल रुपए न पाकर भी पचास बीघे नील बोने के लिये एक तरह से राजी हो गया है, उससे भी मन नहीं भरा। पूरब वाली जमीन के धान के खेतों के लिये ही इतना गोलमाल हो रहा है; नवीन बोस को देना ही उचित था; शीतला को प्रसन्न रखना ही अच्छा है। नवीन मरकर भी मारेगा।-- (साहब को दूर देखकर) यह देखो शुभ-क्रान्ति नीलाम्बर आ रहे हैं। मुझे शायद पुराने दीवान के साथ कुछ दिनों तक रहना पड़ेगा।

(उड का प्रवेश)

उड-- इस बात को कोई न जानने पाए कि मातंगनगर की कोठी का दंगा बड़ा होगा, लठैत सारे वहीं रहेंगे। यहाँ के लिये दस पोद शड़की वालों को इकट्ठा कर रखूँ। मै जाएगा, छोटा साहब जाएगा, तुम जाएगा। साला गले में भगई बाँधकर गड़बड़ी नहीं मचा सकेगा, बीमारी है, दारोगा की मदद कैसे ला सकेगा ?

गोपी-- ससुरे इतने कातर हो गए हैं कि शड़की वालों की जरूरत नहीं पड़ेगी। हिन्दू के घर में फाँसी लगाकर खास तौर से जेल के अन्दर मरना बड़ा ही दोष का और धिक्कारास्पद है। इस घटना से ससुरों को अच्छा सबक मिला है।

उड-- तुम समझता नहीं है। बाप के मरने से रास्कल खुश हुआ-- बाप के डर से नील का दादनी लेता था, अब साले का वह डर चला गया, जैसा चाहेगा वैसा करेगा, साला ने हमारी कोठी को बदनाम कर दिया है। हम उस हरामजादा को कल गिरफ़्तार करेगा, मजूमदार से दोस्ती कर देगा, अमरनगर का मजिस्ट्रेट जैसा हाकिम आने से बज्ज़ात सब कर सकेगा।

गोपी-- मजूमदार के मुकदमें में जो साजिश की गई है, अगर नवीन बोस का यह विभाट न होता तो इतने दिनों में भयंकर हो उठती। अब भी कहा नहीं जा सकता कि क्या होगा, विशेष करके जो हाकिम आ रहें है सुना है, कि वे रैयतों के पक्ष में है। मुफ़स्सिल में आने पर वे तम्बू लाते हैं, इससे कुछ घोटाला मालूम पड़ता है और डर भी लगता है।

उड-- तुम डर-डर करके हमको दिक किया, निलहा साहब को किसी काम में डर है-- गीदड़ का साला काम अच्छा नहीं लगता तो काम छोड़ दो।

गोपी-- धर्मावतार, काम में ही डर लगता है, पहले का दीवान क़ैद हुआ तो उसका बेटा छै महीने की बाकी तलब लेने आया था; इस पर आपने दरखास्त देने को कहा; दरखास्त करने पर आपने हुक्म दिया कागज़ नहीं करने से तलब नहीं मिलेगी। धर्मावतार, नौकर के कैद होने पर क्या यही फ़ैसला है ?

उड-- मैं नहीं जानता ! अरे साला, पाजी, नमकहराम, बेईमान। तलब के रुपए से तुम्हारा क्या होता है ? तुम लोग अगर नील का दाम का रुपया नहीं खाओ तब क्या बेडली कमीशन होता, तो क्या प्रजा लोग रोते-रोते पादरी साहब का पास जाता ? तुम साला लोग ने सब बर्बाद किया है; माल कम हुआ तो तुम्हारा घर बेचकर लेगा--एरेन्ट, कावर्ड, हेलिश, नेव !

गोपी-- हम लोग, हुजूर, कसाई के कुत्ते हैं, अँतड़ियों से ही पेट भरते हैं। धर्मावतार, आप लोग अगर, महाजन जैसे कर्जदार से धान वसूल करते हैं उसी तरह नील लेते तो नील कोठी की इतनी बदनामी न होती, अमीन खलासियों की भी जरूरत न होती, और मुझे 'गोपिया गू खोर, गोपिया गू खोर' कहकर सभी लोग गालियाँ न देते।

उड-- तुम गू खाने वाला ब्लाइण्ड है, तुम्हारा आँख नहीं है--

(एक उम्मीदवार का प्रवेश)

मैंने इसी आँख से देखा है (अपनी आँखों में उँगली डालकर) महाजन लोग धान का खेत में जाता है और रैयतों से झगड़ा करता है। तुम इस आदमी को पूछो।

उम्मीदवार-- धर्मावतार, मैं इस विषय के बहुतेरे दृष्टान्त दे सकता हूँ। रैयत लोग कहते हैं, 'निलहे साहबों की बदौलत महाजनों के हाथों से छुटकारा पा रहे हैं। '

गोपी-- (उम्मीदवार के प्रति स्वगत) अरे भाई, यह खुशामद व्यर्थ है; कोई काम खाली नहीं है। (उड के प्रति) महाजन धान के खेतों में जाते हैं और अपने आसामियों से झगड़ा करते हैं, यह बात सही है; लेकिन ऐसे जाने और झगड़ने के गूढ़ मर्म को समझने पर श्यामचन्द शक्ति बाण से भूखी प्रजा सुमित्रानन्दननिचय के निपतन, आसामियों के शुभाभिलाषी महाजन के धान के खेत में घूमने से तुलना नहीं करते। हम लोगों और महाजनों में बड़ा फ़र्क है।

उड-- अच्छा, मुझे समझाओ। कोई कारण हो सकता है। साला लोग हम लोग का सब तरह का बात कह रहा है, महाजन का बात कुछ नहीं कहता है।

गोपी-- धर्मावतार, आसामियों को साल भर में जितने रुपये चाहिए, सारा महाजन के घर से लाते हैं और खाने के लिये जितना धान चाहिये, उसे महाजन के यहाँ से लेते हैं, वर्ष बीतने पर तम्बाकू, ईख, तिल, वगैरह बेचकर सूद समेत महाजन का रुपया अदा करते हैं, अथवा बाजार दर से महाजन को वे सारी चीजें देते हैं; और जो धान पैदा होता है, उससे महाजन का धान डेढ़ा या सवैया करके लौटा देते हैं, इसके बाद जितना बच रहता है, उससे तीन-चार महीने का घर खर्च चलता है। अगर अकाल की वजह से या आसामी की फ़िज़ूलखर्ची की वजह से रुपया या धान बाकी रह जाता है, बकाया नए खाते में बाकी लिख लिया जाता है; वह बाकी धीरे-धीरे वसूल होता रहता है; महाजन कभी भी आसामी के नाम नालिश नहीं करते; अतएव जो कुछ बाकी पड़ता है उसे महाजन लोग फिलहाल नुकसान समझते हैं; इसीलिए महाजन लोग कभी-कभी खेतों पर जाते हैं, धान की सफाई ठीक से हो रही है या नहीं इसे देखते हैं, मालगुजारी देने

के लिये आसामी ने जितने रुपए माँगे हैं, उसके लायक जमीन में धान बोया गया है या नहीं, उसके बारे में पूछताछ करते है। कोई-कोई अदूरदर्शी आसामी धोखा देकर अधिक रुपए लेकर हमेशा कर्ज से परेशान रहकर महाजनों का नुकसान करते हैं और खुद भी कष्ट पाते हैं; इसी कष्ट का निवारण करने के लिये महाजन खेतों पर जाते हैं, 'निलहे भूत' होकर नहीं जाते हैं-- (जीभ काट कर) धर्मावतार ये मुसल्ले हरामखोर बेटे कहते हैं।

उड-- तुझे शनि ने पकड़ा है, नहीं तो तू इतनी छान-बीन क्यों कर रहा है, इसका कारण क्या है, नहीं तो तू इतना बेअदब क्यों हुआ है? बज्ज़ात, incestuous brute!

गोपी-- धर्मावतार, गाली गलौज सुनने के लिये भी हम लोग, जेल जाने के लिये भी हम लोग; कोठी में डिस्पेंन्सरी-स्कूल बनने पर आप लोग; कत्ल होने पर हम लोग। हुजूर से सलाह करने जाने पर गुस्सा होते हैं; मजूमदार के मुकदमें में मेरे दिल को जो चोट पहुंची है, उसे गुरूदेव ही जानते हैं।

उड-- बहन... को एक साहसी काम करने के लिये कहा, वैसे ही साले ने मजूमदार की बात कही; मैं बार-बार कहता आ रहा हूँ कि तुम साला बड़ा नालायक है। नवीन बोस को शचीगंज गोदाम में भेजकर तुम क्यों नहीं शान्त होता?

गोपी-- आप गरीब के माँ-बाप हैं, गरीब नौकर की रक्षा के लिये एक बार नवीन बोस से इस मुकदमें की बात पूछी जाय तो अच्छा होगा।

उड-- चुप रहो, यू बेस्टर्ड ऑफ होर्स बिच, तेरा वास्ते हम उस कुत्ता से मुलाकात करेगा-- साला कॉवर्ड कायथ का बच्चा। (पदाघात से गोपीनाथ का भूमि पर गिरना) कमीशन में तुझे गवाही देने के लिये भेजने से तू हरामजादा सत्यानाश करता, डेविलिश निगर! (फिर दो लात मारना) इस मुँह से तुम केवट का माफिक काम देगा? साला कायथ, कालका काम देख के हम तुमको आपसे जेल भेज देगा।

(उड और उम्मीदवार का प्रस्थान)

गोपी-- (बदन झाड़ते-झाड़ते उठकर) सात सौ गिद्ध मार कर तब कहीं एक निलहे का दीवान होता है, नहीं तो अनगिनत मौजे हजम कैसे हो जाते हैं? कितने जोर से लात मारी, बाप रे! बेटा मानों हमारे कॉलेज-आउट बाबुओं की गाउन पहनी बीबी है।

(नैपथ्य में-- दीवान, दीवान)

गोपी-- बन्दा हाजिर। अब किसकी बारी है--
प्रेम सिन्धु नीरे बहे नाना तरंग!

(गोपीनाथ का प्रस्थान)

अंक 5
द्वितीय गर्भांक

(नवीनमाधव का शयनकक्ष)

आदुरी-- (बिस्तर बिछाते हुए रोना) हाय! हाय! हाय! कहाँ जाऊँ, छाती फटी जाती है, इस तरह मारा है केवल धक-धक कर रहा है, माई जी देखेंगी तो उनका कलेजा फट जायेगा। वह मर जाएँगी। पकड़कर कोठी ले गये हैं, यह जानकर वे पछाड़ खाकर पेड़ के नीचे गिर कर रोने लगीं, गोद में उठाकर हमारे घर लाये, इसे नहीं देख सकीं।

(नैपथ्य में। आदुरी, हम घर में ले जाएँगे?)

आदुरी-- तुम लोग घर में ले आओ, उन लोगों में कोई यहाँ नहीं है।

(मूर्छित नवीनमाधव को लेकर साधु और तोराप का प्रवेश)

साधु-- (नवीनमाधव को बिस्तर पर सुलाकर) माई जी कहाँ हैं?

आदुरी-- वे पेड़ के नीचे खड़ी देख रही हैं (तोराप को दिखाकर) ये जब भाग गये तो हम लोगों ने सोचा कि कोठी ले गए; वे पेड़ के नीचे पछाड़ खा-खा कर गिरने लगीं। हम भागकर घर आयीं।-- मरे लड़के को देखकर माई जी क्या जिन्दा रहेगी? तुम लोग जरा ठहरो, मैं उन लोगो को बुला लाऊँ।

(आदुरी का प्रस्थान-- पुरोहित का प्रवेश)

पुरोहित-- हे विधाता! ऐसे आदमी को भी समाप्त किया! इतने आदमियों का अन्न मारा गया, बड़े बाबू फिर उठेंगे, ऐसा तो नहीं लगता।

साधु-- परमेश्वर की इच्छा, वे मरे आदमी को भी जिला सकते हैं।

पुरोहित-- शास्त्र के अनुसार त्रिरात्रि को बिन्दुमाधव ने भागीरथी के तीर पर पिण्डदान किया है, केवल मालिकिन जी के अनुरोध पर मासिक श्राद्ध के बाद यहां से डेरा-डण्डा उखाड़ना तय हुआ था और मुझसे कहा था, अब फिर दुर्दान्त साहबों से मुलाकात भी नहीं करेंगे, तो आज क्यों चले गए?

साधु-- बड़े बाबू का अपराध नहीं है, सोचने-विचारने की भी त्रुटि नहीं है। माई जी और बहू जी ने बहुत तरह से मना किया था। उन्होंने कहा,'जो थोड़े से दिन यहाँ रहा जा सकता है, हम कुएँ से पानी भरकर नहाएँगी, अथवा आदुरी पोखरे से पानी ला देगी, हमें कोई क्लेश नहीं होगा।' बड़े बाबू ने कहा, मैं पचास रुपये नजर देकर साहब का पैर पकड़कर कहूँगा कि पोखरे के किनारे नील मत बोओ, इस विपत्ति में झगड़े की कोई बात नहीं कहूँगा।' यह तय करके बड़े बाबू मुझे और तोराप को साथ लेकर नील खेत पर गए और रोते-रोते साहब को कहा,'हुजूर! मैं आपको पचास रुपए सलामी दे रहा हूँ, इस साल यहां नील न बोएँ; और अगर यह भिक्षा नहीं देते हैं तो रुपए लेकर गरीब पितृहीन प्रजा के प्रति कृपा करके श्राद्ध के नियम भंग के दिन तक।' नराधम ने जो उत्तर दिया था उसे दोहराना भी पाप है; अभी शरीर रोमाचिंत हो रहा है। बेटे ने कहा, यवन की जेल में चोर-डाकुओं के साथ तेरे पिता ने फाँसी लगाई है, उसके श्राद्ध में बहुत से साँड़ काटना होगा, उसके लिये रुपए रख दे', और पैर का जूता बड़े बाबू के घुटनों से लगाकर कहा, 'तेरे बाप के श्राद्ध में यही भिक्षा है।'

पुरोहित-- नारायण! नारायण! (कानों पर हाथ रखना)

साधु-- उसी दम बड़े बाबू की आँखे लाल हो गईं, शरीर थर-थर काँपने लगा, दाँतों से ओठ काटने लगे; और क्षण भर चुप रहकर बड़े जोर से साहब की छाती पर ऐसी लात मारी कि बेटा फूस के बोझ की तरह धप् से चित जा गिरा। कशिया ढाली, जो अब कोठी का जमादार हुआ है, उस बेटे और दस शड़की वालों ने बड़े बाबू को घेर लिया; इन्हें बड़े बाबू ने एक बार डकैती के मुकदमें से बचाया था, शैतानों को बड़े बाबू के मारने में जरा शर्म आई। बड़े साहब ने उठकर जमादार को एक घूंसा मारकर उसके हाथ की लाठी बड़े बाबू के सिर पर मारी, बड़े बाबू का सिर फट गया और बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़े; मैं बड़ी कोशिश करने पर भी गोल के भीतर नहीं जा सका; तोराप दूर खड़ा देख रहा था, बड़े बाबू के गिरते ही भैंसे की तरह दौड़कर गोल चीर कर बड़े बाबू को गोद में ले तेजी से भाग आया।

तोराप-- मुझसे कहा, 'तू जरा दूर रह, क्या जानूँ धर-पकड़ कर ले जाय।' मेरे ऊपर साले बहुत गुस्सा हैं; मार-पीट होगी यह जानने पर मैं क्या छिपा

रहता ? जरा पहले जाने पर बड़े बाबू को बचा ला सकता था और दो सालों को बरकत बीबी की दरगाह में जबह कर सकता था! बड़े बाबू का सिर देख कर मेरे हाथ-पैर ठण्डे हो गए तो सालों को मारता कब।-- अल्ला ! बड़े बाबू ने मुझे इतनी बार बचाया, मैं बड़े बाबू को एक बार नहीं बचा सका !

(सिर पीटकर रोना)

पुरोहित-- छाती में किसी हथियार का घाव देख रहा हूँ ?

साधु-- तोराप के गोल में पहुँचते ही छोटे साहब ने गिरे हुये बड़े बाबू को तलवार से मारा, तोराप ने हाथ से रोका, तोराप का बायाँ हाथ कट गया, बड़े बाबू की छाती में जरा खरोच लगी।

पुरोहित-- (सोचकर)

बन्धुस्त्रीभृत्यवर्गस्य बुद्धेः सत्वस्य चात्मनः।

आपन्निकषणपाणे नरोजानाति सारताम्।

बड़े घर के किसी को नहीं देख रहा हूँ लेकिन दूसरे गाँव का दूसरी जाति का तोराप बड़े बाबू के पास बैठा रो रहा है ! ओफ़ ! गरीब खटकर खाने वाला आदमी है, हाथ बिल्कुल कट गया है-- उसका मुंह खून से कैसा लथपथ हो गया है।

साधु-- छोटे साहब ने उसके हाथ पर तलवार चलाने पर दुम दबाने पर नेवला जिस तरह किचिर-मिचिर करता हुआ दाँत दबोच लेता है तोराप भी बड़े साहब की नाक काट कर ले भागा था।

तोराप-- नाक मैंने टेंट में रख छोड़ी है, बड़े बाबू जी गए तो दिखाऊँगा, यह देखो-- (कटी नाक दिखाना), बड़े बाबू अगर आप भाग पाते तो मैं साले के दोनों कान उखाड़ लाता; खुदा का जीव है, जान नहीं मारता।

पुरोहित-- पुस्तक में लिखा है, सुरपनखा की नाक काट लेने पर देवगणों को रावण के अत्याचार से छुटकारा मिला था; बड़े साहब की नाक काटने पर निलहों के उत्पात से क्या प्रजा को रिहाई नहीं मिलेगी ?

तोराप-- मैं अब धान की खत्ती में छिपा रहूँ, रात होने पर भाग जाऊँगा; साला नाक के लिये गाँव रसातल भेज देगा।

(नवीनमाधव के बिस्तर के पास जमीन पर दो बार सलाम करके तोराप का प्रस्थान)

साधु-- मालिक के गंगालाभ की बात सुनकर माई जी सूख कर काँटा हो गई हैं। बड़े बाबू की यह दशा देखते ही प्राण त्याग करेंगी, इसमें संदेह नहीं।-- इतना पानी दिया, छाती सहलाई, किसी भी तरह होश नहीं आया; आप जरा बुलाइए तो।

पुरोहित-- बड़े बाबू, बड़े बाबू, नवीनमाधव,-- (सजल नयनों से)-- प्रजापालक, अन्नदाता-- आँखें हिला रहे हैं।-- हाय ! जननी इसी दम आत्म-हत्या करेंगी। फाँसी लगाने का समाचार सुनकर प्रतिज्ञा की है कि दस दिनों तक इस पापी संसार का अन्न नहीं गृहण करेंगी; आज पाँचवाँ दिन है; भिनसारे नवीनमाधव जननी का गला पकड़कर बहुत रोए और बोले, 'माता ! अगर आज आप भोजन नहीं करेंगी तो मातृ-आज्ञा- लंघन-जनित नरक को मस्तक रूप धारण करके मैं हविष्य नहीं करूँगा, बिना खाये रहूँगा।' इस पर जननी ने नवीन का मुँह चूम कर कहा, 'बेटा, राजमहिषी थी, राजमाता बनी, मेरे मन में कोई खेद नहीं रह जाता यदि मरने के समय उनके चरणों को एक बार मस्तक पर धारण कर पाती; ऐसे पुण्यात्मा की अल्पमृत्यु हुई, इसलिये मैं उपवास कर रही हूँ। दुखिया की आँखों की तुम लोंग पुतली हो; तुम्हारा और बिन्दुमाधव का मुँह देखकर मैं आज पुरोहित महाराज का प्रसाद गृहण करूँगी; तुम मेरे सामने आँसू न बहाओ।'-- कहकर नवीन को पाँच साल के बच्चे की तरह गोद में ले लिया। (नेपथ्य में विलाप सूचक ध्वनि)

(सावित्री, सैरिन्ध्री, सरलता, आदुरी, रेवती, नवीन की चाची तथा दूसरी पड़ोसिनों का प्रवेश)

डर की बात नहीं, जीवित हैं;--

सावित्री-- (नवीन के मृतवत् शरीर को देखकर) नवीन माधव, भैया मेरे, बेटा मेरे, मेरे बेटे, कहां हो, कहां हो,? हाय !

(मूर्छित होकर गिरना)

सैरिन्ध्री-- (रोते हुये) छोटी बहू, तुम माई जी को पकड़ो, मैं प्राणकान्त को एक बार जी भर कर देखूँ। (नवीन माधव के मुँह के पास बैठ कर।)

पुरोहित-- (सैरिन्ध्री के प्रति) बेटी, तुम पतिव्रता, साध्वी, सती हो, तुम्हारा शरीर सुलक्षणा से मण्डित है; पतिरता सुलक्षणा भार्या के भाग्य से मृत पति भी जीवित हो जाता है;-- आँखें हिला रहे हैं-- निश्चिन्त होकर सेवा करो।-- साधु, मालिकिन जी को जब तक होश नहीं आता, तब तक तुम यहीं रहो।

(प्रस्थान)

साधु-- माता जी के नाक पर हाथ रखकर देखो तो मृत शरीर से भी उनका शरीर अधिक स्थिर देख रहा हूँ।

सरलता-- (नाक पर हाथ रखकर रेवती के प्रति धीरे से) सांस अच्छी तरह चल रही है, लेकिन मस्तक से ऐसी आग निकल रही है मानों मेरा गला जला जा रहा है।

साधु-- गुमाश्ता महाशय कविराज बुलाने जाकर साहबों के हाथ में पड़ गए क्या ? मैं कविराज के घर जाऊँ।

(प्रस्थान)

सैरिन्ध्री-- हाय ! हाय ! प्राणनाथ ! जिस जननी के उपवास के लिये इतना खेद कर रहे थे, जिस जननी की क्षीणता देखकर रात दिन चरणों की सेवा में लगे हुये थे, जो जननी कई दिनों से तुम्हे गोद में लिये बगैर सो नहीं पाती थी, वही जननी तुम्हारे सामने मूर्छित होकर पड़ी हुई हैं, एक बार देखा भी नहीं ?-- (सावित्री को देखकर) हाय ! हाय ! वत्सहारा हम्मा रव करती घूमती हुई गाय सर्प के दंशन से पंचत्व प्राप्त होकर जिस तरह चारागाह में पड़ी रहती है, जीवनाधार-पुत्र-शोक में जननी उसी तरह धराशायी हुई हैं। प्राणनाथ ! एक बार दृग खोलकर देखो, एक बार दासी को अमृत वचन से दासी कह पुकार कर श्रवण को तृप्त करो; मध्यान्ह काल में मेरा सुखसूर्य अस्ताचल को गया; मेरे विपिन का क्या होगा ! (रूदन करते हुये नवीनमाधव की छाती पर गिरना)

सरलता-- दीदी....

सैरिन्ध्री-- (उठकर) मैं अत्यन्त शैशव में पितृहीन हुई थी। हाय ! इस काल नील के लिये ही पिता को कोठी में पकड़ ले गए, पिता फिर नहीं लौटे। नील की कोठी उनके लिये यमलोक बन गई। मेरी कंगाल जननी मुझे लेकर ननिहाल गई। पति-शोक में वहीं उनकी मृत्य हुई; मामा ने वहीं मुझे पाल पोसकर बड़ा किया। मैं मालिनी के हाथ से अचानक गिरे पुष्प की तरह पथ पर गिरी थी। प्राणनाथ ने मुझे आदर के साथ उठाकर मेरा गौरव बढ़ाया था; मैं जनक-जननी का शोक भूल गई थी।; प्राणकान्त के जीवन में मेरे पिता-माता पुनर्जीवित हुए थे-- (लम्बी साँस) मेरे सारे शोक नए बन रहे हैं। हाय ! सर्वाच्छादक पतिहीन होने पर मैं फिर माता-पिता-हीन होकर दर-दर की भिखारिन हो जाऊँगी।

(धरती पर गिरना)

रेवती-- (हाथ पकड़कर उठाते हुए) डर किस बात का? उतावली क्यों होती हो? बिटिया, बिन्दुमाधव को डाक्टर लाने के लिए लिख दिया है। डाक्टर के आने पर ठीक हो जाएँगे।

सैरिन्ध्री-- मझली दीदी, मैंने लड़कपन में व्रत किया था; ऐपन पर हाथ रखकर कहा था, राम की तरह पति मिले, कौशल्या की तरह सास मिलें, दशरथ की तरह ससुर मिलें, लक्ष्मण की तरह देवर मिलें। विधाता ने मुझे सब कुछ आशा से अधिक दिया था; तेज पुँज प्रजापालक रघुनाथ मेरे पति थे, अविरल अमृतमुखी वधुप्राणा कौशल्या मेरी सास है-- स्नेहपूर्ण नयन प्रफुल्ल मुख बहूजी बहूजी कह कर चरितार्थ होती हैं; दसों दिशाओं को उद्भासित करने वाले मेरे ससुर हैं; शारद-कौमुदी-निन्दित विमल मेरे बिन्दुमाधव सीताजी के देवर लक्ष्मण से भी प्रियतर हैं। माँ जी! सभी मिले हैं, केवल एक बात मैं अनमेल देख रही हूँ-- मैं अभी भी जीवित हूँ, राम वन जा रहे हैं, सीता के सहगमन का कोई आयोजन नहीं देख रही हूँ। हाय! हाय!अनाहार से पिता की मृत्यु की बात सुनकर अतिशय कातर थे, पिता के पारण के लिये ही दाग देने की हालत में स्वर्ग धाम सिधार रहे हैं। (एकटक चेहरे को देखकर) बलि जाऊँ, नाथ के होंठ बिल्कुल सूख गए हैं।-- अजी, तुम लोग मेरे विपिन को पाठशाला से बुला दो, मैं एक बार-- (साश्रु नयनों से)-- विपिन के हाथों से पति के सूखे मुँह में जरा गंगाजल दिला दूँ।

(मुँह पर मुँह रखकर बैठना)

सभी-- हाय! हाय!

रेवती-- (पकड़कर उठाते हुए) बेटी, इस समय ऐसी बात जबान पर न लाओ!-- (रोना)

सैरिन्ध्री-- माँ, मेरे पति ने इस लोक में बड़ा क्लेश पाया, वे परलोक में परम सुखी हों, यही मेरी कामना है। तुम्हारी दासी आजीवन जगदीश्वर को पुकारेगी। तुम परम धार्मिक, परोपकारी, दीनपालक थे; अनाथबन्धु विश्वेश्वर निश्चय ही तुम्हें स्थान देगें। हाय! हाय! जीवनकान्त! दासी को साथ ले चलो, तुम्हारे देवाराधना के लिये फूल चुन दिया करेगी।

आहा, आहा, मरि, मरि, ए कि सर्वनाश!
सीता छेड़े राम बुझि जाय वनवास।।
कि करिब कोथा जाब किसे बाँचे प्राण।
विपद्-बान्धव करे विपदे विधान।।
रक्ष-रक्ष रमानाथ! रमणी विभव।
नीलानले हय नाश नवीनमाधव।।
कोथा नाथ दीनानाथ! प्राणनाथ जाय।
अभागिनी अनाथिनी करिये आमाय।।

(ओह कितना घोर सर्वनाश हो गया! लगता है सीता को त्यागकर राम वनवास जा रहे हैं। मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? कैसे प्राण बचाऊँ? हे भगवान्, मेरी विपत्ति दूर करो! ओ रमा नाथ! इस नारी रत्न की रक्षा करो! नवीनमाधव नील की अग्नि में जल रहा है! हे दीनानाथ! तुम कहाँ हो! मेरा प्राण प्यारा जा रहा है, मैं अनाथिनी, अभागिनी हुई जा रही हूँ)

(नवीन के सीने पर हाथ रखकर लम्बी साँस लेना)

परिहरि परिजन परमेश पाय।
लय गति दिये पति विपदे विदाय।।
दयार पयोधि तुमि पतितपावन।
परिणामे कर प्राण जीवन-जीवन।।

(वह बन्धु-बान्धवों को भगवान् के भरोसे छोड़कर अपने पति को छोड़कर वह जा रही है। भगवान्, तुम दया सागर हो, पतितपावन हो, तुम जीवन के जीवन हो, तुम अन्त में मेरा त्राण करो।)

सरलता-- दीदी, माँ जी ने आँखें खोली हैं, लेकिन मेरी ओर मुँह बना रही है। (रोकर) दीदी, माँ जी ने मेरी ओर इस तरह सकोपनयनों से तो कभी नहीं देखा था।

सैरिन्ध्री-- हाय! हाय! माँ जी सरलता को इस तरह प्यार करती हैं कि अनजाने किंचित रोषपूर्ण नयनों से देखकर ऐसे चंपा के फूल को आग में फेंक दिया है। रोओ मत, होश आने पर माँ तुम्हें फिर चूमेंगी और प्यार से पगली की बेटी कहेंगी।

सावित्री-- (उठकर नवीन के पास बैठ कर और किंचित आह्लाद प्रकट कर नवीन को एकटक देखते हुये) प्रसव वेदना जैसी दूसरी वेदना नहीं है; लेकिन जिस अमूल्य रत्न को प्रसव किया है उसका मुँह देखकर सारा दुख दूर हो गया। (रोते हुए) अरे दुख! बीबी अगर यम को चिट्ठी लिख कर मालिक को नहीं मारती तो हीरे के टुकड़े जैसे बच्चे को देखकर कितना प्रसन्न होते। (ताली पीटना)

सभी-- हाय! हाय! पागल हो गयी हैं।

सावित्री-- (सैरिन्ध्री के प्रति) भाई बहू लड़के को ज़रा मेरी गोद में दो। तापित अंग को ज़रा शीतल करूँ, (नवीन का मुँह चूमना)

सैरिन्ध्री-- माँ, मैं तुम्हारी बड़ी पतोहू हूँ, देख नहीं रही हो, तुम्हारे प्राणों के राम अचेत पड़े हुये हैं, बोल नहीं पा रहे हैं।

सावित्री-- अन्नप्राशन के समय बोल निकलेगी।-- हाय! हाय! मालिक होते तो आज कितनी खुशियाँ मनाई जातीं, बधावे बजते-- (रोना)

सैरिन्ध्री-- सत्यानाश पर सत्यानाश! माँ जी पागल हो गयीं।

सरलता-- दीदी, जननी का बिस्तर छोड़ दो, मैं सेवा करके उन्हें स्वस्थ करूँ।

सावित्री-- ऐसी चिट्ठी भी लिखी थी? ऐसी खुशी के दिन बाजे नहीं बजे? (चारों ओर देखकर सशब्द उठकर सरलता के निकट जा) तुम्हारे पैरों पर पड़ती हूँ, बीबी जी, एक दूसरी चिट्ठी लिखकर यमलोक से मालिक को वापस ला दो। साहब की बीबी हो, नहीं तो मैं तुम्हारे पैर पकड़ती।

सरलता-- माँ! तुम मुझे जननी से भी अधिक स्नेह करती हो, माँ, तुम्हारे मुँह से ऐसी बात सुनकर मुझे यमलोक की यातना से भी अधिक कष्ट हुआ! (दोनो हाथों से सावित्री को पकड़कर) तुम्हारी यह दशा देखकर मेरे अन्तःकरण में आग बरस रही है।

सावित्री-- कस्बिन, पाजी, म्लेच्छ, मुझे एकादशी के दिन छू लिया! (हाथ छुड़ाना)

सरलता-- माँ तुम्हारे मुँह से ये बातें सुनकर मैं अब संसार में नहीं रह सकती। (सावित्री के पैरों को धारण करके धरती पर लेट कर)-- (रोना)

सावित्री-- खूब हुआ, नीच मर गई है; मेरे मालिक स्वर्ग सिधार गये, तू अभागी नरक में जाएगी।-- (हँसते हुये ताली पीटना)

सैरिन्ध्री-- (उठकर) हाय! हाय! सरलता मेरी अत्यन्त सुशीला है, मेरे सास की बड़े प्यारों की बहू है, जननी के मुँह से कुवाक्य सुनकर अतिशय कातर हुई है। (सावित्री के प्रति) बिटिया, तुम मेरे पास आओ।

सावित्री-- धाई, लड़के को अकेला रख आई बिटिया, मैं जाऊँ।

(दौड़कर नवीन के पास बैठना)

रेवती-- (सावित्री के प्रति) क्यों माँ, तुम जो कहती हो कि छोटी बहू जैसी बहू सारे गाँव में नहीं है, छोटी बहू को खिलाये बगैर तुम नहीं खाती हो, उसी छोटी बहू को तुमने कस्बिन कह कर गाली दी ! क्यों माँ, तुम मेरी बात नहीं सुन रही हो, हम लोग तुम्हारा खाकर आदमी बने हैं, न जाने कितना खाने को दिया है।

सावित्री-- मेरे लड़के के अठकौड़ के दिन आना, तुझे इनाम दूँगी।

रेवती-- तुम्हारा नवीन जी उठेगा, तुम पागल मत बनो।

सावित्री-- तुमने जाना कैसे ? उस नाम को तो और कोई नहीं जानता। मेरे ससुर ने कहा था, बहू जी के लड़का हुआ तो 'नवीनमाधव' नाम रक्खूंगा। मुझे लड़का मिला है, वही नाम रक्खूंगी। मालिक कहा करते थे, जब लड़का होगा, 'नवीनमाधव' कह कर बुलाऊँगा। (रोना) अगर जिन्दा रहते तो आज वह साध पूरी होती।

(नैपथ्य में आवाज)

वह बाजा आ गया-- (ताली पीटना)।

सैरिन्ध्री-- कविराज आ रहे हैं, छोटी बहू उठकर उस घर में जाओ।

(कविराज और साधुचरण का प्रवेश, सरलता, रेवती और पड़ोसिनों का प्रस्थान, सैरिन्ध्री घूँघट काढ़े एक ओर खड़ी है)

साधु-- यह लो, माँ जी उठ बैठी हैं।

सावित्री-- (रोकर) मेरे मालिक नहीं हैं, इसलिये तुम लोग मुझे ऐसे दिन कूड़े पर फेंक आए।

आदुरी-- उनके घट में क्या चेत है, वे बिल्कुल पागल हो गई हैं। वे उस मरे बड़े हाल्दार को कह रही हैं, 'मेरा दुधमुँहा बच्चा, छोटी हालदारिनी को बीबी कहकर न जाने कितनी गालियाँ दीं, छोटी हालदारिनी फफककर रोने लगीं। तुम लोगों को कहा है 'बजनिया।'

साधु-- ऐसी दुर्घटना हुई है ! कविराज-- एक तो पतिशोक से उपासी है और दूसरे नयनानन्द नन्दन की ऐसी दशा; सहसा इस प्रकार पागल होना सम्भव और निदान सम्मत है। नाड़ी की गति देखना आवश्यक है। मालकिन जी, हाथ दीजिये-- (हाथ बढ़ाकर)

सावित्री-- तू दाढ़ीजार का बेटा कोठी का आदमी है, नहीं तो भले आदमी की बेटी का हाथ पकड़ना क्यों चाह रहा है ? (उठकर) धाई, लड़के को देखना बिटिया, मैं पानी पी आऊँ, तुझे तेली की साड़ी दूँगी।

(प्रस्थान)

कविराज-- हाय ! ज्ञानप्रदीप अब फिर प्रज्ज्वलित नहीं होगा। मैं हिमसागर तैल भेजूंगा, उसी को सेवन करना इस समय की विधि है।-- (नवीन का हाथ पकड़ कर) क्षीणताधिक्य मात्र है, दूसरा कोई बुरा लक्षण नहीं देख पा रहा हूँ। डाक्टर लोग दूसरे विषयों में नीम हकीम हैं सही, लेकिन चीर-फाड़ के मामले में अच्छे हैं; व्यय अधिक होगा, लेकिन एक डाक्टर बुलाना चाहिए।

साधु-- छोटे बाबू को लिखा गया है कि डाक्टर साथ लेकर आएँ।

कविराज-- अच्छा ही हुआ।

(चार सम्बन्धियों का प्रवेश)

पहला-- ऐसी घटना होगी इसे हम स्वप्न में भी नहीं जानते थे, दोपहर के समय कोई भोजन कर रहा था, कोई नहा रहा था, कोई भोजन करके सो रहा था, मुझे अब मालूम हुआ।

दूसरा-- हाय ! सिर की चोट गहरी मालूम हो रही है। कैसी दुर्घटना है ! आज झगड़ा होने की कोई संभावना नहीं थी, नहीं तो सारे रैयत हाजिर रहते।

साधु-- दो सौ रैयत लाठियाँ लेकर मार-मार कर रहे हैं और 'हाय बड़े बाबू ! हाय बड़े बाबू।' कह कर रो रहे हैं। मैंने उन्हें अपने अपने घर जाने के लिये कहा; क्योंकि कोई बहाना मिला तो साहब बिगड़कर गाँव फूंक देगा।

कविराज-- मस्तक को धोकर फिलहाल तारपीन का तेल लगाओ; इसके पश्चात सायंकाल आकर दूसरी व्यवस्था कर जाऊँगा। रोगी के घर में हल्ला करने से व्याधि बढ़ जाती है; यहाँ किसी तरह की बातचीत नहीं होनी चाहिये।

(कविराज, साधुचरण और सम्बन्धियों का एक ओर तथा आदुरी का दूसरी ओर प्रस्थान, सैरिन्ध्री का बैठना।)

अंक 5

तृतीय गर्भांक

साधुचरण का घर

(क्षेत्रमणि की शैया.....एक ओर साधुचरण और दूसरी ओर रेवती बैठी है)

क्षेत्रमणि-- बिस्तर झाड़कर बिछा, माँ बिस्तर छोड़ दो।

रेवती-- प्यारी बिटिया, सोने की बिटिया, ऐसे क्यों बोल रही हो बिटिया ? बिस्तर छोड़ दिया है बेटी, बिस्तर पर तो कुछ नहीं है बिटिया, हमारी गुदड़ी पर तुम्हारी चाची ने जो रजाई दी है, उसी को तो बिछा रक्खा है बिटिया !

क्षेत्रमणि-- मेरे बदन में काँटे चुभ रहे हैं। मरी, हाय, मरी; मेरा मुँह पिता की ओर फेर दो।

साधु-- (धीरे-धीरे क्षेत्रमणि का करवट बदल कर स्वगत) बिस्तर गड़ना मृत्यु का पूर्व लक्षण है। (जाहिरा) मेरी बेटी दरिद्रों का रत्न है; बेटी कुछ खाओ न, इन्द्राबाद से तुम्हारे लिये अनार खरीद लाया हूँ; तुम्हें जिस चुनरी की बड़ी साध थी बेटी, उसे भी खरीद लाया हूँ, उसे देखकर तुम खुश तो नहीं हुई बेटी !

रेवती-- मेरी बिटिया को कितनी साध है, कहा था सीमन्तोन्नयन के समय मुझे फूल की माला देनी होगी। हाय ! मेरी बेटी कैसी हो गई है; क्या करूँ; बाप रे बाप ! (क्षेत्रमणि के मुँह के ऊपर मुँह रख कर) सोने की क्षेत्र मेरी कोयले जैसी हो गई है-- देखो, देखो, बेटी की आँख की पुतलियाँ कहाँ गई।

साधु-- क्षेत्रमणि ! क्षेत्रमणि ! अच्छी तरह से ताको बेटी !

क्षेत्र-- कुदाल, माँ ! बाबू ! आह !

रेवती-- मैं गोद में उठा लूँ, माँ की बेटी माँ की गोद में अच्छी रहेगी--

(गोद में उठाने के लिये उद्यत होना)

साधु-- गोद में मत उठा, वह बेहोश हो जाएगी।

रेवती-- ऐसी फूटी तकदीर थी ! हाय ! मेरा हारान मोर पर चढ़ा कार्तिकेय है, मैं हारान के रूप को भूलूँ कैसे, बाप रे !

साधु-- राय का बेटा कब का गया अभी तक नहीं लौटा ?

रेवती-- बड़े बाबू मुझे शेर के मुँह से लौटा लाए। दाढ़ी जार के बेटे ने ऐसा घूँसा मारा कि बेटी का हमल गिर गया। इसके अलावा खींचातानी तो की ही। हाय, नाती हुआ; खून का पुतला था, फिर भी सभी अंग बन गये थे। अँगुलियाँ तक थीं। छोटे साहब ने मेरी क्षेत्र को खा डाला और बड़े साहब ने

बड़े बाबू को खा डाला। हाय, हाय! कंगलों की कोई रक्षा नहीं करता।

साधु-- ऐसा क्या पुन्न किया है कि नाती का मुँह देखूँगा?

क्षेत्र-- बदन फटा जाता है-- कमर-- ओफ़्-- ओफ़्-- ओफ़्--

रेवती-- नवमी की रात शायद बीत चली, मेरी सोने की प्रतिभा के जल में जाने पर मेरा क्या होगा! मुझे माँ कहकर कौन बुलाएगी! इसी के वास्ते ले आये थे।

(साधु का गला पकड़कर रोना)

कविराज-- इस समय के उपसर्ग क्या हैं? औषध पिलाई गई थी?

साधु-- औषध पेट में नहीं गई; जो कुछ गई भी थी, फ़ौरन उल्टी हो गई। अब ज़रा हाथ तो देखिए, लगता है अन्तिम घड़ी का पूर्व लक्षण है।

रेवती-- काँटा, काँटा कह रही है; इतना मोटा बिस्तर बिछा दिया फिर भी मेरी बिटिया छटपटा रही है, ज़रा अच्छी तरह दवा लेकर प्राणदान कर जाइए।-- यह मेरी बड़ी प्यारी बिटिया है।

साधु-- नाड़ी नहीं मिलती?

कविराज-- (हाथ पकड़कर) ऐसी दशा में नाड़ी का क्षीण होना अच्छा लक्षण है--

क्षीणें बलवती नाड़ी सा नाड़ी प्रणघातिका।

साधु-- दवा इस समय देनी न देनी बराबर है; पिता-माता में अन्तिम घड़ी तक आश्वासन रहता है; देखिए अगर कोई उपाय हो।

कविराज-- अरवा चावल का जल चाहिए; पूरी मात्रा में सूचिकाभरण सेवन करना ही इस समय की विधि है।

साधु-- राईचरण उस घर में स्वस्त्ययन के लिये जो अरवा चावल बड़ी रानी ने दिया है, उसे ले आ।

(राईचरण का प्रस्थान)

रेवती-- हाय! अन्नपूर्णा को क्या होश है कि वे अरवा चावल लेकर मेरी क्षेत्रमणि को देखने आएँगी; मेरी दशा देखकर ही माई जी पागल हो गई हैं।

कविराज-- एक तो पति शोक से व्याकुल हैं, तिस पर पुत्र मृतवत् है; विक्षिप्तता क्रमशः बढ़ रही है; लगता है मालकिन जी नवीन के पहले ही परलोक सिधारेंगी, अतिशय क्षीण हो गई हैं।

साधु-- बड़े बाबू को आज कैसा देखा? मुझे लगता है, निलहे निशाचरों की अत्याचाराग्नि को बड़े बाबू ने अपने पवित्र शोणित से बुझा दिया। कमीशन से प्रजा का उपकार सम्भव है सही, लेकिन इसका नतीजा क्या होगा? चैतन तमाल के एक सौ करैत साँप अगर मेरे सारे बदन में काटते हैं तो मैं उसे भी सह सकता हूँ; ईंट के बने भट्ठे पर बड़ी कड़ाही में उबलते हुये गुड़ में डूबना मैं सह सकता हूँ; अमावस की रात में हल्ला मचाते हुये निर्दयी दुष्ट डाकू सुविद्वान एकमात्र पुत्र का वध करके आँखों के सामने परम सुन्दरी पतिप्राणा दस महीने की गर्भवती सहधर्मिणी के पेट में लात मार गर्भ गिरा सात पुश्त की कमाई सम्पत्ति का अपहरण कर ले जाँय, मेरी आँखों को तलवार से फोड़ दें, इसे भी सह सकता हूँ; गाँव में एक की जगह दस नील की कोठियाँ बने, यह भी सह सकता हूँ; लेकिन एक क्षण के लिये भी प्रजापालक बड़े बाबू का विरह नहीं सह सकता।

कविराज-- जिस आघात से सिर फटकर भेजा निकल आया है, वह भयंकर है। सान्निघातिक उपक्रम देख आया हूँ; दोपहर या संध्या को मृत्यु होगी। विपिन के हाथों से जरा-सा गंगाजल मुँह में डलवाया गया, वह भी निकल आया। नवीन की स्त्री पतिशोक से व्याकुल है लेकिन फिर भी पति की सद्गति के उपाय के प्रति अनुरक्त है।

साधु-- हाय! हाय! भाई जी अगर विक्षिप्त न हो गई होतीं तो यह दशा देखकर मर जातीं-- डाक्टर बाबू ने भी कहा है कि सिर की चोट गहरी है।

कविराज-- डाक्टर बाबू अत्यन्त दयावान हैं; बिन्दु बाबू रुपया देने लगे तो वे बोले 'बिन्दु बाबू, तुम लोग परेशान हो, तुम्हारे पिता का श्राद्ध होना भी सम्भव नहीं है, इस वक्त में तुमसे कुछ भी नहीं ले सकता, मैं जिस पालकी से आया हूँ, उसी से चला जाऊँगा, तुम्हें उन्हें कुछ नहीं देना होगा।' दुःशासन डाक्टर होता तो मालिक के श्राद्ध का रुपया ले जाता; शैतान को मैंने दो बार देखा है, जैसा दुर्मुख है वैसा ही अर्थ पिशाच भी।

साध-- छोटे बाबू डाक्टर बाबू के साथ क्षेत्रमणि को देखने आये थे लेकिन कोई व्यवस्था नहीं की। निलहों के अत्याचार से मेरा अन्नकष्ट देख क्षेत्रमणि का नाम लेकर डाक्टर बाबू मुझे दो रुपए दे गए हैं।

कविराज-- दुःशासन डाक्टर होता तो हाथ पकड़े बगैर ही कह देता नहीं बचेगा; और तुम्हारा एक बैल बेचकर रुपए ले जाता।

रेवती-- मैं सर्वस्व बेचकर रुपए दे सकती हूँ, मेरी क्षेत्र को अगर कोई बचा दे।

(चावल लेकर राईचरण का प्रवेश)

कविराज-- पथलौटी में चावल धोकर पानी ले आओ।

(रेवती का चावल लेना)

जल अधिक न देना-- पथलौटी बड़ी अच्छी देख रहा हूँ।

रेवती-- माई जी गया गई थीं, वहाँ से पथलौटियाँ लाई थीं। मेरी क्षेत्र को भी एक दी थी। हाय! मेरी वही माई जी पागल हो गई हैं; सिर पीटकर मर न जाँय, इसलिये दोनों हाथों को रस्सी से बाँध रखा गया है।

कविराज-- साधु, खरल लाओ, मैं दवा निकालूँ।

(औषध की डिबिया खोलना)

साधु-- कविराज महाशय, अब दवा नहीं निकालनी पड़ेगी, आँखों को जरा देखिए-- राईचरण इधर आ।

रेवती-- मेरी माँ! मेरे भाग्य में क्या लिखा है! माँ! हारन का रूप कैसे भूलूंगी माँ! माँ।-- अरी क्षेत्र, अरी क्षेत्र, क्षेत्रमणि! बेटी! अब क्या नहीं बोलोगी,

मेरी बिटिया, हाय दैया! हाय दैया! हाय दैया!

(रोना)

कविराज-- अन्तिम क्षण समुपस्थित है।

साधु-- राईचरण, पकड़, पकड़।

(साधुचरण और राईचरण का शैय्या सहित क्षेत्र को बाहर ले जाना)

रेवती-- मैं सोने की लक्ष्मी को नहीं बहा सकती! बेटी, मैं कहाँ जाऊँ री! साहब के साथ रहना मेरे लिये अच्छा था बेटी! मैं मुँह देखकर जुड़ाती बेटी! हाय! हाय! हाय!

कविराज-- हाय! हाय! हाय! माँ का कैसा विलाप है! सन्तान न होना ही अच्छा है।

(प्रस्थान)

अंक 5

चतुर्थ गर्भांक

गोलक वसु के मकान का दालान

(नवीनमाधव के मृत शरीर को गोद में लेकर सावित्री बैठी है)

सावित्री-- आ री निंदिया, भैया को आ री निंदिया ! गोपाल को देखकर मेरी छाती शीतल हो जाती है, सोने जैसा मुखड़ा देखकर मुझे वही मुखड़ा याद आ जाता है-- भैया मेरे सो गए हैं।-- (सिर पर हाथ रखना) हाय, हाय, मच्छड़ों ने काटकर कैसी गति बना दी है ?-- (छाती पर हाथ रखना) अरे भैया का बिस्तर कोई नहीं लगा देता; गोपाल को सुलाऊँ कैसे ? मेरे क्या कोई है, मालिक के साथ सब कुछ चला गया (रोना)। लड़के को गोद में लेकर रो रही हूँ, भाग्य फूट गया है ! (नवीन का मुँह देखकर) नहीं भैया, तुम्हें देखकर मैं सब दुख भूल गई हूँ, रो नहीं रही हूँ, (मन ही मन बिस्तर लगाना) चटाई को साफ़ नहीं किया। (हाथ बढ़ाकर) तकिया पहुँच के बाहर है; गुदड़ी मैली हो गई है। (हाथ से घर का फ़र्श साफ करना) भैया सुलाऊँ (धीरे-धीरे नवीन के मृत शरीर को धरती पर रखकर) माँ से तुम्हें डर किस बात का बेटा ? आराम से लेटे रहो; थूक जाऊँ (छाती पर थूकना)। बीबी बेहया अगर आज आती है तो गला दबोचकर उसे मार डालूँगी। बेटे को आँखों से ओझल नहीं करूँगी। मैं लकीर खींच जाऊँ (उँगली से नवीन की मृत देह के चारों तरफ घर के फ़र्श पर लकीर खींचते हुये मंत्र पढ़ना।)

सापेर फेना बाघेर नाक।
धुनोर झागुन चड़ोक् पाक।।
सात सतीनेर साक्ष चुल।
भाँटिर पाता धुतरो फूल।।
नीलेर बिचि मरिच पोड़ा।
मड़ार माथा मादार गोड़ा।।
हन्ने कुकुर चोरेर गंडी।
यमेर दाँते एइ गंडी।।

(साँप का फेन, बाघ की नाक, धूने की झाग, चड़क घूमना, सात सौतों के पके बाल, भाँटी का पत्ता, धतूरे का फूल, नील का बीज, जली लाल मिर्च, मुर्दे का सिर, मदार की जड़, पागल कुत्ता, चोर का चंडी पाठ, इन्हीं से तीर का फल बनेगा जो यम के दाँत तोड़ेगा।)

(सरलता का प्रवेश)

सरलता-- ये लोग कहाँ गईं। हाय ! मृत शरीर की परिक्रमा कर रही हैं !-- माँ, तुम कब उठकर आईं ? मैं आहार निद्रा छोड़कर निरन्तर तुम्हारी सेवा में लगी हूँ; मैं क्या इतनी बेहोश हो गई थी ? तुम्हें स्वस्थ करने के लिये मैं तुम्हारे पति को यमलोक से ला दूँगी इस बात को स्वीकार किया है, तुम थोड़ी सी शान्त थी। सभी मौन हैं; शब्दों में केवल अरण्य के भीतर अंधकार में स्यारों का कोलाहल और चोरों के लिये अमंगलजनक कुत्तों का भौंकना सुनाई पड़ रहा है। ऐसी भयावनी रात में, जननी, तुम कैसे अकेले बाहर निकलकर (मृत शरीर के निकट आना)

सावित्री-- मैंने गेंड़ली दी है, तू उसके अन्दर आई ?

सरलता-- हाय ! ऐसे देश विजयी जीवनाधिक सहोदर के विच्छेद से प्राणनाथ के प्राण नहीं रहेंगे। (रोना)

सावित्री-- तू मेरे लड़के को देखकर डाह कर रही है ? अरे सत्यानाशी, निकल, यहाँ से निकल, नहीं तो अभी तेरी गर्दन पर पैर रखकर तेरी जीभ खींच लूँगी।

सरलता-- हाय ! मेरे सास-ससुर का ऐसा सुवर्णषड़ानन पानी में चला गया !

सावित्री-- तू मेरे लड़के की ओर मत देख, तुझे मना कर रही हूँ, देखती हूँ, तेरी मौत क़रीब आ गई है।

(थोड़ा आगे जाना)

सरलता-- हाय ! कृतान्त का कराल कर कितना निष्ठुर होता है ! हे यम ! तुमने मेरी सरल सास के मन में ऐसा दुःख दिया !

सावित्री-- फिर बुला रही है, फिर बुला रही है, (दोनों हाथों से सरलता का गला दबोचकर जमीन पर गिराकर) पाजी कहीं की, यम की सुहागिन, अब तुझे मार डालूँ-- (गर्दन पर पैर रख कर खड़ी होना)। मेरे मालिक को खाया है, अब मेरे दुधमुँहे बच्चे को खाने के लिये अपने यार को बुला रही हो। मर-- मर, मर-- !

(गर्दन पर नाचना)

सरलता-- गूँ, हाय, गूँ-- गाँ-- गूँ-- गाँ

(सरलता की मृत्यु, बिन्दुमाधव का प्रवेश)

बिन्दु-- यह तो यहाँ पड़ी हुई है !-- माँ ! यह क्या ! मेरी सरलता को मार डाला, जननी ! (सरलता का सिर हाथ पर लेकर) मेरे प्राणों की सरला इस पाप से भरी पृथ्वी को छोड़ गई (रोने के बाद सरलता का मुँह चूमना)।

सावित्री-- दाँतों से काटकर मार डाल बेहया को; मेरे दुधमुँहे बेटे को खाने के लिये यम को बुला रही थी, इसीलिये मैंने गर्दन दबोचकर मार डाला।

बिन्दु-- हे माता ! जननी जिस तरह रात्रिकाल में अंगचालन से दूध पीते हुये छाती से चिपके दुधमुँहे बच्चे को मार कर नींद खुलने पर विलाप से व्याकुल हो कर आत्म-हत्या करती है; आप में अगर अब शोक-दुःख को भुलाने वाली विक्षिप्तता पैदा हो तो आप भी अपने प्राणों से अधिक सरलता के वध के मनस्ताप से प्राण-त्याग करें ! माँ, तुम्हारे ज्ञान-दीप का क्या अब उन्मेष नहीं होगा ? ज्ञान का संचार न होना ही अच्छा है, हाय ! मृत-पति-पुत्रा नारी के लिये विक्षिप्तता क्या सुखप्रद है ! माँ, मैं तुम्हारा बिन्दुमाधव हूँ।

सावित्री-- क्या, क्या कहते हो ?

बिन्दु-- माँ, मुझसे तो अब जिया नहीं जाता, जननी ! पिता के फाँसी लगाने और सहोदर की मृत्यु से आपने पागल होकर सरलता को हत्या करके मेरे जले हृदय पर नमक छिड़का !

सावित्री-- क्या ? मेरा नवीन नहीं है, नवीन मेरा नहीं है ? मरी, मरी, भैया मेरे, मेरे सोने के बिन्दुमाधव ! मैंने तुम्हारी सरलता का वध किया है ? मैंने पागल होकर छोटी बहू को मार डाला है ? (सरलता के मृत शरीर का आलिंगन करना) हाय, हाय ! मैं पति-पुत्र विहीन होकर भी जीवित रह सकती थी, लेकिन तुम्हें अपने हाथों से मारकर मेरा कलेजा फटा जाता है।

(सरलता का आलिंगन करके जमीन पर गिरकर मरना)

बिन्दु-- (सावित्री के बदन पर हाथ रखकर) जो कहा वही हुआ। होश आने के कारण ही माँ की मृत्यु हुई ! कैसी विडम्बना है ! समाप्त हो गया ? (रोना) जन्म भर के लिये जननी की चरण धूलि सिर पर चढ़ाऊँ (चरण धूलि

सिर पर रखना)। जन्म भर के लिये जननी का चरण रेणु भोजन करके मानवदेह को पवित्र करूँ-- (चरण धूलि फाँकना)

(सैरिन्ध्री का प्रवेश)

सैरिन्ध्री-- देवर, मैं साथ मरूँ, मुझे बाधा मत दो, सरलता के पास मेरा विपिन बड़े सुख से रहेगा-- यह क्या, यह क्या !

सास-बहू इस तरह क्यों पड़ी हुई हैं ?

बिन्दु-- बड़ी बहू, माँ ने सरलता का वध किया, इसके बाद सहसा होश होने पर अत्यन्त शोक सन्तप्त होकर स्वयं प्राण-त्याग किया।

सैरिन्ध्री-- अभी ? कैसे ? सत्यानाश हुआ ? क्या हुआ, क्या हुआ ? हाय, हाय ! अरी दीदी, मेरी बड़ी साध की बालों की रस्सी तुमने आज भी जूड़े में नहीं बाँधी ! हाय, हाय ! अब तुम दीदी कहकर नहीं पुकारोगी (रोना)-- माँ, तुम राम के पास चली गईं, मुझे जाने नहीं दिया। माँ, तुम्हें पाकर मैंने एक दिन भी अपनी माँ को याद नहीं किया।

(आदुरी का प्रवेश)

आदुरी-- विपिन डर गया है, बड़ी हालदारिनी जल्दी आओ।

सैरिन्ध्री-- तू वहीं से बुला सकती थी, अकेला रख आई है।

(आदुरी के साथ तेजी से प्रस्थान)

बिन्दु-- विपत्ति के सागर में विपिन मेरा ध्रुव नक्षत्र है। (लम्बी साँस छोड़ते हुए) नश्वर संसार में मानवलीला, प्रबल प्रवाहसमाकूला गहरी नदी के नीचे तट की तरह क्षणभंगुर है। तट की कैसी विचित्र शोभा है ! नयनाभिराम नवीन दुर्बादलों से ढँके खेत हैं, अभिनव पल्लव सुशोभित वृक्षराजि हैं, कहीं संतोष संकुलित धीवरों की कुटिया विराजमान है; कहीं नवदुर्वादल लोलुपा सवत्सा धेनु चरने में मग्न है; अहा ! वहाँ भ्रमण करने से विहंगमों के सुललित तान और प्रस्फुटित वन-प्रसून सौरभ से मन्द-मन्द सुगन्ध लाने वाले पूर्णानन्द आनन्दमय की चिन्ता में चित्त अवगाहन करता है। सहसा खेत में थोड़ी सी फटी जगह देखकर अचिरात् शोभासह तट को तोड़ कर गहरे नीड़ में निमज्जित हो जाती हैं। कैसा परिताप है, स्वरपुर निवासी वसु वंश नील-कर्मनाशा में विलुप्त हो गया-- नील का कर कैसा कराल है !

नीलकर विषधर विषपोरा मुख।
अनल शिखाय फेले दिल यत सुख।।
अविचारे कारागारे पितार निधन।
नील क्षेत्रे ज्येष्ठ भ्राता हलेन पतन।।
पति पुत्र शोके माता हये पागलिनी।
स्वहस्ते करेन वध सरला कामिनी।।
आमार विलापे मार ज्ञानेर संचार।
एकेबारे उथलिल दुःख पारावार।।
शोकशूले माता हलो विष विड़म्बना।
तखनि मलेन माता के शोने सान्त्वना।।
कोथा पिता कोथा पिता डाकि ज्ञानिषार।
हास्यमुखे आलिंगन कर एक बार।।
जननी जननी बले चारि दि के चाइ।
आनन्दमय मूर्ति देखिते ना पाई।।
मा बले डाकिले माता अमनि आसिये।
बालाबले काछि लन मुख मुछाइये।।
अपार जननी स्नेंह के जाने महिमा।

रणे बने भीत्सने बलि मा, मा, मा, मा।।
सुखावह सहोदर जीवनेर भाई।
पृथिवी ते हेन बन्धु आर दुटि नाई।।
नयन मेलिया दादा देख एक बार।
बाड़ी आसियाछे विन्दुमाधव तोमार।।
आहा ! 'आहा ! मरि मरि बुक फेटे जाय।
प्राणेर सरला मम लुकालो कोथाय।।
रूपवती गुणवती पतिपरायणा।
मरालगमना कान्ता कुरंगनयना।।
सहासवदने सती सुमधुर स्वरे।
बेताल करिते पाठ मम करे धरे।।
अमृत पठने मन हतो विमोहित।
विजन विपिने वनविहंग संगीत।
सरला सरोजकान्ति किंबा मनोहर।
आलो कर्ये छिल मम देह सरोवर।।
के हील सरोरूह इहया निर्दय।
शोभाहीन सरोवर अंधकारमय।।
हेरि सब शवमय श्मशान संसार।
पिता माता भ्राता द्वारा मरेछे आभार।।

(निलहे विषधर साँप हैं। उनका मुँह विष से भरा हुआ है। उन्होंने हमारे सारे सुखों को भस्म कर दिया है। अन्याय से पिता जेल में मरे, बड़े भाई नील के खेत में मारे गये। माँ अपने पति और पुत्र के शोक में पागल हो गयी। उसने अपने हाथों से एक सरल रमणी को मार डाला, मेरे विलाप से माँ को रोश हुआ, उसके दुःख का अन्त तक नहीं रहा। शोक की तीव्र व्यथा में अभाव का ज़हर दिखाई पड़ा। ढाढ़स की बात कौन सुनता, माँ भी चल बसी। मैं बारम्बार पुकारता हूँ-- पिता कहाँ हो ? पिता कहाँ हो ? हँसते हुये एक बार फिर मेरा आलिंगन करो। माँ ! माँ ! कहकर मैं चारों ओर निहारता हूँ। लेकिन आनन्दमयी माँ की मूर्ति कहीं नहीं दिखाई देती। अब मैं रण में, वन, में जब कभी माँ, माँ पुकारता हूँ। सुखदायी सहोदर जैसा बन्धु दुनिया में दूसरा नहीं। भैया ! आँखें खोलकर एक बार देखो, तुम्हारा बिन्दुमाधव घर लौट आया है। हाय ! हाय ! कलेजा टूक-टूक रोता है। मेरी प्राण-प्रिय सरला कहाँ जा छिपी। मेरी कान्ता, रूपवती, गुणवती, पतिपरायणा, मरालगमना, कुरंगनयना थी। वह हँसती हुई मधुर स्वर में मुझे बैताल सुनाती थी। उसका पढ़ना निराले वन में चिड़ियों के संगीत जैसा लगता था। उससे मेरा मन विमोहित होता था। सरला सरोजकान्ति कितनी सुन्दरी थी। उसने मेरे हृदय सरोवर को आलोकित कर रखा था। किस निठुर ने मेरे कमल को मुझसे छीन लिया ? सरोवर शोभाहीन, अंधकारमय हो गया। मैं जिस संसार को देख रहा हूँ, वह मुर्दों से पटा हुआ श्मशान है। मेरे पिता, माता, स्त्री सब मारे गये हैं।

हाय ! ये बड़े भैया का मृतदेह ढूढ़ने कहाँ गए ?-- वे आएँ तो गंगा यात्रा का आयोजन किया जाय।-- हाय पुरुष सिंह नवीनमाधव के जीवन नाटक का अन्तिम अंक कैसा भयंकर है !

(सावित्री का चरण पकड़कर बैठना) (यवनिका पतन) ❑ ❑

अनुवाद : महादेव साहा

(मित्र प्रकाशन प्रा० लि०, इलाहाबाद के सौजन्य से)

○ स्वामी नारायणानंद 'अख़्तर'

आज़ादी या मौत

स्वामी नारायणानंद 'अख़्तर' का यह गीत 'गुलामी में जीना मरने के बराबर है' का संदेश देता था :

अबस ज़िन्दगी का गुमां है, भरम है,
गुलामी में जीना न मरने से कम है।
सितमगर ने हमको जो ग़फ़लत में पाया,
तुरत दामे-फ़ित्तरत में अपने फंसाया,
कहा और कुछ, और कुछ कर दिखाया,
दिखाकर के अमृत, ज़हर को पिलाया,
न उठने की ताक़त, न चलने का दम है।

वो कहते हैं हमसे कि ख़ामोश रहना,
सहो चोटें दिल पर, ज़ुबां से न कहना,
रहे पेट ख़ाली, रहे तन बरहना,
वफ़ादार हो तुम जफ़ाओं को सहना,
खुली गर ज़ुबाँ, तो वहीं सर क़लम है।

दिये ज़ख़्म पर ज़ख़्म सैयाद तूने,
सुनी बेकसों की न फ़रियाद तूने,
न रहने दिया हमको आज़ाद तूने,
किया हर तरह हमको बरबाद तूने,
ये है ज़ुल्म कैसा, ये कैसा सितम है ?

तुझे भी क़सम है, जो रहने क़सर दे,
ये हैं ज़ख़्म ताज़े, नमक इनमें भर दे।
उठा अपना ख़ंजर, अभी क़त्ल कर दे,
है वाजिब तुझे यह, उड़ा धड़ से सर दे,
किया चाहता तू जो हम पर करम है।

सितमगर है गर ताबो-ताक़त पे नाज़ां,
तो हैं हम भी अपनी सदाक़त पर कुरबां,
यही दिल की हसरत, यही दिल में अरमां,
कि आज़ाद हों या फ़ना होवें, दे जां,
हटेगा न पीछे, बढ़ा जो क़दम है।

जियेंगे तो आज़ाद होकर रहेंगे,
जहां में कि बरबाद होकर रहेंगे,
सितमगर ही या शाद होकर रहेंगे,
कि हम शाद, आबाद होकर रहेंगे,
खुली अब हैं आंखें, खुला सब भरम है।

हमें गो कि दिक़्क़त उठानी पड़ेगी,
उन्हें खुद-ब-खुद मुंह की खानी पड़ेगी,
ये आदत पुरानी मिटानी पड़ेगी,
सरे-बज़्म गरदन झुकानी पड़ेगी,
हमें नाज़ बेजा उठाने से रम है।

चमन में न फिर ग़ैर का कुछ ख़तर हो,
वतन अपना आज़ाद हो, औज पर हो,
बुज़ुर्गों का तुम में अगर कुछ असर हो,
दिखा दो, ज़माने में फिर ऊंचा सर हो,
ग़ज़ब का ये 'अख़्तर' का तर्ज़े-रक़म है !

'ज़ब्तशुदा गीत' से (सन् 1930)